CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

8·1

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास प्रणीत

महाभारत

आठवां भाग

उद्योगपर्व अध्याय ७२ से समाप्ति तक

(मूल संस्कृत और हिन्दी अनुवाद)

अनुवादक—

श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी शास्त्री

प्रकाशक—

महाभारत प्रकाशक मण्डल

मालीवाड़ा, दिल्ली ।

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथमवार] १९९६ विक्रमी [मूल्य २॥)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक—

चतुरसेन गुप्त

प्रबन्धक

महाभारत प्रकाशक मण्डल,

दिल्ली

श्रीकृष्ण वाक्यः—

त्यजेत्कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जन पदस्याऽर्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥

महा० उद्योगपर्व अ० १२८।४६

कुल की रक्षा के लिए एक पुरुष, ग्राम की रक्षा के लिये एक कुल, देश की रक्षा के लिये ग्राम को छोड़ दे और आत्मबल की रक्षा के लिए पृथिवी तक का परित्याग करदे।

मुद्रक—

पं० काशीप्रसाद बाजपेई

प्रकाश प्रिंटिंग वर्क्स

बाजार सीताराम, दिल्ली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युधिष्ठिर उवाच।—

श्रुतं ते धार्तराष्ट्रस्य सपुत्रस्य चिकीर्षितम्।
एतद्धि सकलं कृष्ण सञ्जयो मां यदब्रवीत् ॥६॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे कृष्ण ! आपने पुत्र सहित धृतराष्ट्र की सारी चेष्टाओं को सुन लिया है, जिनको राजसभा में सञ्जय ने मुझे सुनाया था ॥ ६ ॥

तन्मतं धृतराष्ट्रस्य सोऽस्यात्माऽविवृतान्तरः।
यथोक्तं दूत आचष्टे वध्यः स्यादन्यथा ब्रुवन् ॥७॥

धृतराष्ट्र का जो मत था, वह तो सञ्जय ने स्पष्ट सामने रख दिया, क्योंकि यह सञ्जय भी धृतराष्ट्र की आत्मा है, जिससे उसका कुछ भी भाव छुपा नहीं रहता है। दूत तो भेजने वाले के अभिप्राय को सामने रखता है। वक्ता के अभिप्राय को उलट पलट कर देने वाला दूत दण्डनीय होता है ॥ ७ ॥

अप्रदानेन राज्यस्य शान्तिमस्मासु मार्गति।
लुब्धः पापेन मनसाचरन्न सममात्मनः ॥८॥

यह लुब्धक, पाप युक्त मन के कारण, राज्य के विना प्रदान किए ही हमसे शान्ति चाहता है, ऐसा करना इसके योग्य नहीं था ॥ ८ ॥

यत्तद्द्वादश वर्षाणि वनेषुत्त्युषिता वयम्।
छन्ना शरदं चैकां धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमने बारह वर्ष वन में व्यतीत कर दिए और तरहवां वर्ष भी छुपकर पूरा कर दिया। यह सब कुछ धृतराष्ट्र की आज्ञा से ही किया है ॥ ९ ॥

स्थाता नः समये तस्मिन् धृतराष्ट्र इति प्रभो।
नाहास्म समयं कृष्ण तद्धि नो ब्राह्मणा विदुः ॥१०॥

हे प्रभो ! प्रथम हम समझते थे, चौदहवाँ वर्ष आने पर हमको धृतराष्ट्र अपने राज्य पर बैठा देगा। हे कृष्ण ! इसी से हमने हमारी किसी शर्त को नहीं तोड़ा; इस बात को सब ब्राह्मण जानते हैं ॥ १० ॥

गृद्धो राजा धृतराष्ट्रः स्वधर्मं नानुपश्यति।
वश्यत्वात्पुत्रगृद्धित्वान्मंदस्यान्वेति शासनम् ॥११॥

राजा धृतराष्ट्र बड़ा लोलुप है, यह अपने धर्म को कुछ नहीं देखता है। यह पुत्र के मोह में उसके वशीभूत हो रहा है, इसीसे अपने मूर्ख पुत्र, दुर्योधन के शासन के अनुसार चलता है ॥११॥

सुयोधनमते तिष्ठन् राजास्मासु जनार्दन।
मिथ्या चरति लुब्धः सन् चरन्हि प्रियमात्मनः ॥१२॥

हे जनार्दन ! सुयोधन के कथन में चलता हुआ, लालच में फंसा हुआ, धृतराष्ट्र, हमारे विरुद्ध और अपने स्वार्थ के अनुकूल आचरण करता है ॥ १२ ॥

इतो दुःखतरं किं नु यदहं मातरं ततः।
संविधातुं न शक्नोमि मित्राणां वा जनार्दन १३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन् ! इससे अधिक क्या दुःख होगा—जो हम अपनी माता का पालन पोषण और मित्रों की कुछ सहायता नहीं कर सकते हैं ॥ १३ ॥

काशिभिश्चेदिपाञ्चालैर्मत्स्यैश्च मधुसूदन ।
भवता चैव नाथेन पञ्चग्रामा वृता मया ॥१४॥

हे मधुसूदन ! काशीराज, चेदि, पाञ्चाल, मत्स्य और आपके रक्षक होने पर भी मैंने तो पाँच ही गांव मांगे थे ॥ १४ ॥

अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दी वारणावतम् ।
अवसानं च गोविन्द किञ्चिदेवाऽत्र पञ्चमम् ॥१५॥

हे गोविन्द ! अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत और पांचवाँ कोई सा ही एक अन्य गांव मैंने मांगा है ॥ १५ ॥

पञ्च नस्तात दीयन्तां ग्रामा वा नगराणि वा ।
वसेम सहिता येषु मा च नो भरता नशन् ॥१६॥

हे तात ! हमको पाँच गाँव या पाँच नगर प्रदान कर दें, तो हम पांचों भाई वहाँ निवास कर लें । हम भरतवंश का विनाश नहीं चाहते हैं ॥ १६ ॥

न च तानपि दुष्टात्मा धार्तराष्ट्रोऽनुमन्यते ।
स्वाम्यमात्मनि मत्वाऽसावतो दुःखतरं नु किम् ॥१७॥

दुष्टात्मा धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन, उन पांच गांवों को भी देना नहीं चाहता है । वह तो सारे राज्य का अपने को ही स्वामी कहता है, इससे अधिक क्या दुःख होगा ॥ १७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुले जातस्य वृद्धस्य परवित्तेषु गृद्ध्यतः ।
लोभः प्रज्ञानमाहन्ति प्रज्ञा हन्ति हता ह्रियम् ॥१८॥
ह्रीर्हता बाधते धर्मं धर्मो हन्ति हतः श्रियम् ।
श्रीर्हता पुरुषं हन्ति पुरुषस्याऽधनं वधः ॥१९॥

कुल में उत्पन्न और वृद्ध हो जाने पर भी अन्य के धन के अपहरण के लालची पुरुष की बुद्धि का लोभ नाश कर देता है और जब बुद्धि नष्ट हो जाती है, तो वह नष्ट बुद्धि, लक्ष्मी का नाश करती है, जब लक्ष्मी का नाश हुआ, तो वह पुरुष को नष्ट कर देती है, क्योंकि पुरुष का निर्धन होना उसकी मृत्यु है ॥१८-१९॥

अधनाद्धि निवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदो द्विजाः ।
अपुष्पादफलाद्वृक्षाद्यथा कृष्ण पतत्रिणः ॥२०॥

हे कृष्ण ! निर्धन मनुष्य से बन्धु बान्धव, मित्र, ब्राह्मण, सब ऐसे दूर भाग जाते हैं जैसे—पुष्प-फल-हीन वृक्ष से पक्षी भाग निकलते हैं ॥ २० ॥

एतच्च मरणं तात यन्मत्तः पतितादिव ।
ज्ञातयो विनिवर्तन्ते प्रेतसत्वादिवाऽसवः ॥२१॥

हे तात ! यह मेरा मरण ही है, जो पतित की भांति मुझे जानकर जाति-बन्धु, मृतक से प्राण वायु के समान मुझ से दूर भाग जावेंगे ॥ २१ ॥

नाऽतः पापीयसीं काञ्चिदवस्थां शम्बरोऽब्रवीत् ।
यत्र नैवाऽद्य न प्रातर्भोजनं प्रतिदृश्यते ॥२२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इससे अधिक पापों के परिपाक की अन्य कोई अवस्था नीतिमान् शम्बर ने नहीं बताई है, कि जिसमें न तो आज का भोजन है और न कल प्रातःकाल के भोजन की ही कोई आशा है ॥ २२ ॥

धनमाहुः परं धर्मं धने सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
जीवन्ति धनिनो लोके मृता ये त्वधना नराः ॥२३॥

धन तो सबसे बड़ा धर्म है, क्याकि धन में ही सब कुछ है। संसार में धनवान् ही जीवित हैं, जो निर्धन हैं, उनको तो मरा हुआ ही समझो ॥ २३ ॥

ये धनादपकर्षन्ति नरं स्वबलमास्थिताः ।
ते धर्ममर्थं कामं च प्रमथ्नन्ति नरं च तम् ॥२४॥

जो अपने बल में चूर हुए अभिमानी पुरुष, जिस किसी पुरुष को धन से हीन कर देते हैं। वे उस मनुष्य के विनाश करने के साथ २ अपने धर्म, अर्थ और काम का भी विनाश करते हैं ॥ २४ ॥

एतामवस्थां प्राप्यैके मरणं वव्रिरे जनाः ।
ग्रामायैके वनायैके नाशायैके प्रवव्रजुः ॥२५॥

उन्मादमेके पुष्यन्ति यान्त्यन्ये द्विषतां वशम् ।
दास्यमेके च गच्छन्ति परेषामर्थहेतुना ॥२६॥

इस निर्धन अवस्था को प्राप्त करके अनेक मनुष्य मर जाना चाहते हैं और कितने ही अन्य गांव और वन में जा बसते हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और कितने ही मर जाते हैं। कोई २ मनुष्य, धन के विना पागल हो जाते हैं, कोई शत्रुओं के वश में जा पड़ते हैं तथा कुछ धन के प्राप्त करने के लिए अन्य के दास बन जाते हैं ॥ २५—२६ ॥

आपदेवाऽस्य मरणात्पुरुषस्य गरीयसी ।
श्रियो विनाशस्तद्धन्यस्य निमित्तं धर्मकामयोः ॥२७॥

धर्म और काम के कारणीभूत धन का विनाश होना ही पुरुष के लिए मृत्यु से बढ़कर आपत्ति है ॥ २७ ॥

यदस्य धर्म्यं मरणं शाश्वतं लोकवर्त्म तत् ।
समन्तात्सर्वभूतानां न तदत्येति कश्चन ॥२८॥

जो धर्म के अनुसार मनुष्य का मर जाना है, यह तो लोक धर्म है, जो सब प्राणियों को प्राप्त होता है और जिसका कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता है, परन्तु धनहीन होना महा-क्लेश है ॥ २८ ॥

न तथा बाध्यते कृष्ण प्रकृत्या निर्धनो जनः ।
यथा भद्रां श्रियं प्राप्य तया हीनः सुखैधितः ॥२९॥

हे कृष्ण ! इसमें भी जन्म से निर्धन पुरुष को दरिद्रता इतना क्लेश नहीं देती है, जितना अनुपम लक्ष्मी पाकर और सुखी होकर धनहीन होने से मनुष्य को क्लेशित करती है ॥२९॥

स तदाऽऽत्मापराधेन संप्राप्तो व्यसनं महत् ।
सेन्द्रान्गर्हयते देवान्नाऽऽत्मानं च कथञ्चन ॥३०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनेक मनुष्य, अपने दुराचरण से निर्धनता रूप महा विपत्ति को प्राप्त होते हैं, परन्तु यह अज्ञानी उस समय भी अपने दोष पर दृष्टि नहीं डालता है और इन्द्र सहित देवों की निन्दा करता है ॥ ३० ॥

न चाऽस्य सर्वशास्त्राणि प्रभवन्ति निबर्हणे ।
सोऽभिक्रुद्ध्यति भृत्यानां सुहृदश्चाऽभ्यसूयति ॥३१॥

इस निर्धन पुरुष को दुःख शान्त करने में सारे शास्त्र भी समर्थ नहीं होते हैं। यह इस समय अपने नौकरों पर कुपित होता है और मित्रों की निन्दा करने लगता है ॥ ३१ ॥

तत्तदा मन्युरेवैति स भूयः संप्रमुह्यति ।
स मोहवशमापन्नः क्रूरं कर्म निषेवते ॥३२॥
पापकर्मतया चैव सङ्करं तेन पुष्यति ।
सङ्करो नरकायैव सा काष्ठा पापकर्मणाम् ॥३३॥
न चेत्प्रबुद्ध्यते कृष्ण नरकायैव गच्छति ।
तस्य प्रबोधः प्रज्ञैव प्रज्ञाचक्षुस्तरिष्यति ॥३४॥

अब इसको क्रोध शोक आ घेरते हैं और यह फिर मोह में पड़ जाता है। जब यह मोह के वश में पड़ जाता है, तब क्रूर (निन्दित) कर्मों को करने लगता है। पाप कर्मों के करने के कारण यह कर्मों के संकर (एक दूसरे वर्ण के कर्मों) में फंस जाता है। यह कर्म संकरता पाप कर्मों की पराकाष्ठा और नरक का कारण है। यदि मनुष्य इनमें फंस कर चेतता नहीं है, तो अवश्य नरक को जाता है। इससे चेतन होने का एक मात्र

Dr. Urmila Sharma Gollection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कारण बुद्धि है, जो अपनी बुद्धि को आंख बनाता है वह, इस झमेले से पार हो जाता है ॥ ३२-३४ ॥

प्रज्ञालाभे हि पुरुषः शास्त्राण्येवाऽन्ववेक्षते ।
शास्त्रनिष्ठः पुनर्धर्मं तस्य ह्रीरङ्गमुत्तमम् ॥३५॥
ह्रीमान्हि पापं प्रद्वेष्टि तस्य श्रीरभिवर्धते ।
श्रीमान्स यावद्भवति तावद्भवति पूरुषः ॥३६॥

जब मनुष्य को बुद्धि का लाभ हो जाता है, तब वह शास्त्रों की खोज करता है और शास्त्रों के खोजने से फिर धर्म का पता लगा लेता है। धर्म के ज्ञान से वह पाप कर्म करने में लज्जा मानता है, जो सर्वोत्तम धर्म का अङ्ग है। जो लज्जाशील हैं, वह पाप से द्वेष करता है और पाप से द्वेष करने पर इस मनुष्य की लक्ष्मी बढ़ने लगती है। ज्योंही पुरुष, लक्ष्मीवान् हुआ, त्योंही यह यथार्थ पुरुष हो जाता है ॥३५-३६॥

धर्मनित्यः प्रशान्तात्मा कार्ययोगवहः सदा ।
नाऽधर्मे कुरुते बुद्धिं न च पापे प्रवर्तते ॥३७॥

जब मनुष्य धर्म परायण होकर शान्त चित्त हो जाता है, तो यह सदा कर्म योग दृष्टि से कर्म करता है। यह फिर अधर्म में बुद्धि को नहीं लगाता है और न पाप में प्रवृत्त होती है ॥३७॥

अह्रीको वा विमूढो वा नैव स्त्री न पुनः पुमान् ।
नाऽस्याऽधिकारो धर्मेऽस्ति यथा शूद्रस्तथैव सः ॥३८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो अधर्म करके लज्जित नहीं होता और मोह में फंसा रहता है, वह न तो स्त्री है और न पुरुष है। इसका धर्म में कोई अधिकार नहीं है—वह तो जैसा शूद्र है-वैसा ही है ॥३८॥

ह्रीमानवति देवांश्च पितॄनात्मानमेव च ।
तेनाऽमृतत्वं व्रजति सा काष्ठा पुण्यकर्मणाम् ॥३९॥

जो पाप कर्म करने में लज्जा मानता है, वही देव, पितर और अपना उद्धार करता है। इसीसे यह मोक्ष पाता है, क्योंकि यह लज्जा तो पुण्य कर्मों की पराकाष्ठा है ॥३९॥

तदिदं मयि ते दृष्टं प्रत्यक्षं मधुसूदन ।
यथा राज्यात्परिभ्रष्टो वसामि वसतीरिमाः ॥४०॥

हे मधुसूदन ! यह सब कुछ तुम मुझ में प्रत्यक्ष देख रहे हो, जो मैं राज्य से भ्रष्ट होकर इस तरह वन आदि में निवास करता फिरता हूँ ॥४०॥

ते वयं न श्रियं हातुमलं न्यायेन केनचित् ।
अत्र नो यतमानानां वधश्चेदपि साधु तत् ॥४१॥

अब कोई ऐसा धर्मानुसार हेतु नहीं है, जिससे हम अपनी राज्य-लक्ष्मी को प्राप्त न करें। यदि राज्य-ग्रहण करने के प्रयत्न करते हुए हमारा वध भी हो जावे, तो कोई अनुचित बात नहीं है, वह भी अच्छा ही है ॥४१॥

तत्र नः प्रथमः कल्पो यद्वयं ते च माधव ।
प्रशान्ताः शमभूताश्च श्रियं तामश्नुवीमहि ॥४२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे माधव ! इस राज्य-प्राप्ति के उद्योग में हमारा सबसे प्रथम यही उपाय है, कि शान्ति के साथ सन्धि करके हम अपने भाग की राज्य-लक्ष्मी को प्राप्त करें ॥४२॥

तत्रैषा परमा काष्ठा रौद्रकर्मक्षयोदया ।
यद्वयं कौरवान्हत्वा तानि राष्ट्राण्यवाप्नुमः ॥४३॥

यह तो हमारा बिल्कुल अन्तिम उपाय होगा, जिसमें हमें बड़ा रौद्र और विनाशकारी कर्म करना पड़ेगा, कि जो हम कौरवों को मार कर फिर अपने राज्य को प्राप्त करेंगे ॥४३॥

ये पुनः स्युरसम्बद्धा अनार्याः कृष्ण शत्रवः ।
तेषामप्यवधः कार्यः किं पुनर्ये स्युरीदृशाः ॥४४॥

हे कृष्ण ! जिन शत्रुओं से कोई सम्बन्ध नहीं होता और जो अनार्य होते हैं, जहां तक हो सके-उनको भी नहीं मारना चाहिए, फिर सम्बन्धी आर्य शत्रुओं का मारना तो अनुचित होना ही चाहिए ॥४४॥

ज्ञातयश्चैव भूयिष्ठाः सहाया गुरवश्च नः ।
तेषां वधोऽतिपापीयान्किं नु युद्धेऽस्ति शोभनम् ॥४५॥

इस विग्रह में अधिक तर जाति बन्धु. सहायक और गुरुजन हैं । इनका वध करना तो बड़ा ही पाप है, फिर युद्ध करने में कल्याण ही क्या है ॥४५ ।

पापः क्षत्रियधर्मोऽयं वयं च क्षत्रबन्धवः ।
स नः स्वधर्मोऽधर्मो वा वृत्तिरन्या विगर्हिता ॥४६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस तरह का पाप करना ही क्षत्रियों का धर्म बना दिया और हम भी क्षत्रिय वंशोत्पन्न ही है। यह अधर्म जब हमारा धर्म बन गया, तो अन्य प्रकार से वृत्ति चलाना तो निन्दनीय ही है ॥४६॥

शूद्रः करोति शुश्रूषां वैश्या वै पण्यजीविकाः ।
वयं वधेन जीवामः कपालं ब्राह्मणैर्वृतम् ॥४७॥

शूद्र तो सेवा और वैश्य व्यापार कर सकता है। हम लोग तो युद्ध में मार काट मचा कर ही अपनी वृत्ति करते हैं। भीख मांग कर निर्वाह करना तो ब्राह्मण का कर्म है ॥४७॥

क्षत्रियः क्षत्रियं हन्ति मत्स्यो मत्स्येन जीवति ।
श्वा श्वानं हन्ति दाशार्ह पश्य धर्मो यथागतः ॥४८॥

हे कृष्ण ! एक क्षत्रिय अन्य क्षत्रिय को मार कर इस तरह जीविका करता है जैसे एक मत्स्य अन्य मत्स्य को मार कर खा जाता है। कुत्ता कुत्ते को मार डालता है-यही हमारा भी कुल-क्रमागत धर्म है ॥४८॥

युद्धे कृष्ण कलिर्नित्यं प्राणाः सीदन्ति संयुगे ।
बलं तु नीतिमाधाय युद्ध्ये जयपराजयौ ॥४९॥
नाऽऽत्मच्छन्देन भूतानां जीवितं मरणं तथा ।
नाऽप्यकाले सुखं प्राप्यं दुःखं वापि यदूत्तम ॥५०॥

हे कृष्ण ! युद्ध में तो कलह होना ही है, तथा इसमें सदा प्राणों का विध्वंस लगा है। मैं तो नीति के अनुसार बलका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवलम्ब लेकर युद्ध करूंगा-परन्तु जय पराजय या जीवन मरण मनुष्यों का अपने हाथ में नहीं है। हे यदूत्तम ! मनुष्य को बिना समय आये दुःख सुख नहीं प्राप्त होते हैं ॥४९-५०॥

एको ह्यपि बहून्हन्ति घ्नन्त्येकं बहवोऽप्युत ।
शूरं कापुरुषो हन्ति अयशस्वी यशस्विनम् ॥५१॥

इस युद्ध में एक वीर अनेको को मार लेता है या अनेक मिल कर एक को मारने में समर्थ होते हैं। कायर पुरुष, शूरवीर को और अयशस्वी, यशस्वी को मार लेता है ॥५१॥

जयो नैवोभयोर्दृष्टो नोभयोश्च पराजयः ।
तथैवाऽपचयो दृष्टो व्यपयाने क्षयव्ययौ ॥५२॥

दोनों पक्ष का जय या दोनों का ही पराजय नहीं होता है। हां ? हानि तो दोनों को ही है, परन्तु पराजित होने वाले का सब तरह से ही नाश और हानि है ॥५२॥

सर्वथा वृजिनं युद्धं को घ्नन्न प्रतिहन्यते ।
हतस्य च हृषीकेश समौ जयपराजयौ ॥५३॥

हे हृषीकेश ! यह युद्ध तो सदा दुःखमय ही है, क्योंकि मारता हुआ वीर भी क्या क्षतयुक्त (जख्मी) नहीं होता है ? जब कोई मर गया, तो उसके पक्ष की तो जय पराजय उसके लिए तो समान ही है ॥५३॥

पराजयश्च मरणान्मन्ये नैव विशिष्यते ।
यस्य स्याद्विजयः कृष्ण तस्याऽप्यपचयो ध्रुवम् ॥५४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्ततो दयितं घ्नन्ति केचिदप्यपरे जनाः ।

मैं तो पराजय को मृत्यु से कम नहीं मानता हूं । हे कृष्ण ! जिसका युद्ध में विजय हो जाता है, उसकी भी निश्चय बड़ी ही हानि होती है, क्योंकि प्रतिपक्षी किसी न किसी प्रिय कुटुम्बी का बध कर ही देते हैं ॥५४॥

तस्याङ्गबलहीनस्य पुत्रान्भ्रातॄनपश्यतः ॥५५॥

निर्वेदो जीविते कृष्ण सर्वतश्चोपजायते ।

हे कृष्ण ! अपने प्रियजन के मारे जाने से बलहीन विजयी राजा को मरे हुए पुत्र,भाई के न देखने से अपने जीवन में सब ओर से वैराग्य, हो जाता है ॥५५॥

ये ह्येव धीरा धीमन्त आर्याः करुणवेदिनः ॥५६॥

त एव युद्धे हन्यन्ते यवीयान्मुच्यते जनः ।

जो बुद्धिमान्, आर्य आचरण के प्राणी, अन्य के दुःख के जानने वाले वीर होते हैं, वे ही प्रायः युद्ध में मारे जाते हैं और जो निकृष्ट आचरण का पुरुष होता है, वह छिप छिपा कर बच निकलता है ॥५६॥

हत्वाप्यनुशयो नित्यं परानपि जनार्दन ॥५७॥

अनुबन्धश्च पापोऽत्र शेषश्चाप्यवशिष्यते ॥

हे जनार्दन ! शत्रुओं के मार लेने पर भी पश्चात्ताप तो रहता ही है । इस तरह पाप का अनुबन्ध और कोई न कोई शत्रु, शेष बच ही रहता है ॥५७॥

शेषो हि बलमासाद्य न शेषमनुशेषयेत् ॥५८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वोच्छेदे च यतते वैरस्यांऽतविधित्सया ।
जयो वैरं प्रसजति दुःखमास्ते पराजितः ॥५९॥

यही शेष शत्रु बल पाकर विजयी शत्रु को शेष नहीं रहने देने का प्रयत्न करता है। यह अपना वैर निकालने के विचार से अपने शत्रु के सर्वोच्छेद के लिए प्रयत्न करता है, विजय वैर उत्पन्न करती है और पराजित तो क्लेश उठाता ही है ॥५८-५९॥

सुखं प्रशान्तः स्वपिति हित्वा जयपराजयौ ।
जातवैरश्च पुरुषो दुःखं स्वपिति नित्यदा ॥६०॥

जो जय पराजय के झगड़े में नहीं पडता, वह सुख की नींद सोता है और जिस पुरुष का वैर खड़ा हो जाता है, उसको सदा नींद भी नहीं आती है ॥६०॥

अनिर्वृत्तेन मनसा ससर्प इव वेश्मनि ।
उत्सादयति यः सर्वं यशसा स विमुच्यते ॥६१॥

जो अपने अस्वस्थ (व्याकुल) चित्त से सर्प सहित घर में रहने वाले मनुष्यों की तरह सब शत्रुओं को सदा भयभीत रखता है या मारता काटता रहता है, वह राजा यश से रहित हो जाता है ॥६१॥

अकीर्तिं सर्वभूतेषु शाश्वतीं स नियच्छति ।
नहि वैराणि शाम्यन्ति दीर्घकालधृतान्यपि ॥६२॥

ऐसा राजा, दीर्घकाल तक वैर का आचरण करता हुआ, सदा के लिए सब जगह अकीर्ति पाता है और न ऐसा करने से कभी वैर शान्त होते हैं ॥६२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आख्यातारश्च विद्यन्ते पुमांश्चेद्विद्यते कुले ।
न चापि वैरं वैरेण केशव व्युपशाम्यति ॥६३॥

हे केशव ! यदि शत्रु के कुल में कोई बालक शेष रह जाता है, तो उसके बड़े होने पर उस वैर के बता देने वाले पुरुष भी बाकी रहा ही करते हैं । इस तरह वैर से कभी वैर शान्त नहीं होता है ॥६३॥

हविषाऽग्निर्यथा कृष्ण भूय एवाऽभिवर्धते ।
अतोऽन्यथा नास्ति शान्तिर्नित्यमन्तरमन्ततः ॥६४॥

हे कृष्ण ! हवि के डालने से जैसे आग बढ़ती है, ऐसे ही यह वैर बढ़ता रहता है । एक दूसरे में छिद्र रहता ही है, इससे विना एक के बीज नाश हुए वैर की शान्ति नहीं होती है ॥६४॥

अन्तरं लिप्समानानामयं दोषो निरन्तरः ।
पौरुषे यो हि बलवानाधिर्हृदयबाधनः ॥
तस्य त्यागेन वा शान्तिर्मरणेनापि वा भवेत् ॥६५॥

शत्रु के छिद्रों को देखने वाले, राजाओं में यह दुःख सदा लगा रहता है । जो पौरुष में बलवान् है, उसको भी हृदय की व्याकुलता का क्लेश लगा ही रहता है । यदि इस झगड़े का परित्याग कर दिया जावे या मृत्यु हो जावे, तभी उस राजा को शान्ति मिलती है ॥६५॥

अथवा मूलघातेन द्विषतां मधुसूदन ।
फलनिर्वृत्तिरिद्धा स्यान्न नृशंसतरं भवेत् ॥६६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे मधुसूदन ! यदि शत्रुओं का मूल से नाश कर दिया जावे, तो कुछ फल प्राप्ति हो सकती है, परन्तु यह कार्य भी तो बड़ा निष्ठुर है ॥६६॥

या तु त्यागेन शान्तिः स्यात्तदृते वध एव सः ।
संशयाच्च समुच्छेदाद् द्विषतामात्मनस्तथा ॥६७॥
न च त्यक्तुं तदिच्छामो न चेच्छामः कुलक्षयम् ।
अत्र या प्रणिपातेन शान्तिः सैव गरीयसी ॥६८॥

एक तो राज्य के त्याग और दूसरे शत्रुओं के वध से शान्ति प्राप्त हो सकती है, परन्तु दूसरे पक्ष में अपने या शत्रु पक्ष दोनों के नाश की सम्भावना बनी रहती है। इस दशा में हम न तो राज्य का परित्याग ही कर सकते हैं और न कुल का क्षय ही चाहते हैं। अब जिस तरह सन्धि हो सके, आप वैसा ही प्रयत्न करें, क्योंकि इस तरह शान्ति होना ही बड़ी चीज है ॥६७–६८॥

सर्वथा यतमानानामयुद्धमभिकांक्षताम् ।
सान्त्वे प्रतिहते युद्धं प्रसिद्धं नाऽपराक्रमः ॥६९॥

युद्ध को न चाह कर सब तरह प्रयत्न कर लेने पर भी यदि शान्ति भङ्ग हो ही जावे, तो युद्ध करना ही पड़ेगा-क्योंकि पराक्रम छोड़ बैठना तो धर्म नहीं है ॥६९॥

प्रतिघातेन सान्त्वस्य दारुणं सम्प्रवर्तते ।
तच्छुनामिव सम्पाते पण्डितैरुपलक्षितम् ॥७०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब सन्धि के उपाय व्यर्थ हो जाते हैं, तो युद्ध होने लगता है। इस युद्ध की उपमा पण्डितों ने कुत्तों के लड़ने से दी है ॥७०॥

लांगूलचालनं क्ष्वेडा प्रतिवाचो विवर्तनम् ।
दन्तदर्शनमारावस्ततो युद्धं प्रवर्तते ॥७१॥
तत्र यो बलवान्कृष्ण जित्वा सोऽत्ति तदामिषम् ।
एवमेव मनुष्येषु विशेषो नास्ति कश्चन ॥७२॥

कुत्ते प्रथम पूंछ हिलाते है, फिर भूंकते हैं, उसका दूसरे पक्ष के कुत्ते भूंक कर ही उत्तर देते हैं। ये कुत्ते एक दूसरे के चक्कर लगाते, दांत दिखाते और शब्द करते हैं और अन्त में लड़ने लगते हैं। हे कृष्ण ! इनमें जो बलवान् होता है, वह दूसरे का मांस खा जाता है। यही ढ़ंग मनुष्यों का है, इस में कुछ भी फर्क नहीं है ॥७१–७२॥

सर्वथा त्वेतदुचितं दुर्बलेषु बलीयसाम् ।
अनादरो विरोधश्च प्रणिपाती हि दुर्बलः ॥७३॥

बलवान् यही उचित समझते हैं, कि सदा दुर्बलों का अनादर और उनसे विरोध किया जावे। क्योंकि जो दुर्बल होता है, वह शीघ्र ही झुक जाता है ॥७३॥

पिता राजा च वृद्धश्च सर्वथा मानमर्हति ।
तस्मान्मान्यश्च पूज्यश्च धृतराष्ट्रो जनार्दन ॥७४॥

हे जनार्दन ! जो पिता वृद्ध और राजा होता है, उसका सदा मान करना चाहिए-इसलिए राजा धृतराष्ट्र हमारा पूज्य और मान्य है ॥७४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुत्रस्नेहश्च बलवान्धृतराष्ट्रस्य माधव ।
स पुत्रवशमापन्नः प्रणिपातं प्रहास्यति ॥७५॥

हे माधव ! राजा धृतराष्ट्र को पुत्र स्नेह बहुत अधिक है । यह पुत्र के वश में हुआ हमारी ओर नहीं झुक सकता है ॥७५॥

तत्र किं मन्यसे कृष्ण प्राप्तकालमनन्तरम् ।
कथमर्थाच्च धर्माच्च न हीयेमहि माधव ॥७६॥

हे कृष्ण ! अब तुम हमारा इस समय क्या कर्तव्य उचित समझते हो । अब हम किस मार्ग का अवलम्बन करें, जिससे अर्थ और धर्म से च्युत न हो सके ॥७६॥

ईदृशेऽत्यर्थकृच्छ्रेऽस्मिन्कमन्यं मधुसूदन ।
उपसंप्रष्टुमर्हामि त्वामृते पुरुषोत्तम ॥७७॥

हे मधुसूदन ! पुरुषोत्तम ! इस तरह कार्य-विवेचन के संकट के उपस्थित होने पर अब तुम्हारे सिवा कौन ऐसा ज्ञानी है, जिस से इस विषय में प्रश्न किया जा सके ॥७७॥

प्रियश्च प्रियकामश्च गतिज्ञः सर्वकर्मणाम् ।
को हि कृष्णाऽस्ति नस्त्वादृक्सर्वनिश्चयवित्सुहृत् ॥७८॥

हे कृष्ण ! हमारा प्रिय, प्रिय कार्य सम्पादन करने वाला, हमारे सारे कर्मों की गतियों का ज्ञाता, सब कर्तव्यों के निश्चय का जानने वाला, हमारा हितकारी मित्र आज तुम्हारे समान कौन है ॥७८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तः प्रत्युवाच धर्मराजं जनार्दनः ।
उभयोरेव वामर्थे यास्यामि कुरुसंसदम् ॥७९॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! धर्मराज के इतना कहने पर श्रीकृष्ण बोले—मै तुम दोनों कौरव और पाण्डवों के हित के लिए कौरव सभा में स्वयं जाऊंगा ॥ ७९ ॥

शमं तत्र लभेयं चेद्युष्मदर्थमहापयन् ।
पुण्यं मे सुमहद्राजंश्चरितं स्यान्महाफलम् ॥८०॥

हे राजन् ! यदि आपके स्वार्थ का त्याग न करके, मैं सन्धि करने में समर्थ हुआ, तो मुझे बड़ा पुण्य लगेगा और मेरा चरित्र बड़ा मार्ग प्रदर्शक बन जावेगा ॥ ८० ॥

मोचयेयं मृत्युपाशात्संरब्धान्कुरुसृञ्जयान् ।
पाण्डवान्धार्तराष्ट्रांश्च सर्वां च पृथिवीमिमाम् ॥८१॥

हे धर्मराज ! बड़े आवेश में भरे हुए कौरव और सृञ्जय (द्रुपद पक्ष) तथा पाण्डु-पुत्र और धृतराष्ट्र पुत्रों ही क्या ? मैं, इस तरह सारी पृथ्वी को मृत्यु की फांसी से छुड़ा सकूंगा ॥ ८१ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

न ममैतन्मतं कृष्ण यत्त्वं यायाः कुरून्प्रति ।
सुयोधनः सूक्तमपि न करिष्यति ते वचः ॥८२॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे कृष्ण ! मेरी यह सम्मति नहीं है, कि तुम कौरवों के पास जाओ, क्योंकि दुर्योधन तुम्हारे युक्तियुक्त वचन को भी नहीं मानेगा ॥ ८२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समेतं पार्थिवं चत्रं दुर्योधनवशानुगम् ।
तेषां मध्यावतरणं तव कृष्ण न रोचये ॥८३॥

वहां दुर्योधन के अनुयायी राजाओं का झुण्ड इकट्ठा हो रहा है, उन सबके मध्य में तुम्हारा जाना मुझे अच्छा नहीं जचता है ॥ ८३ ॥

न हि नः प्रीणयेद् द्रव्यं न देवत्वं कुतः सुखम् ।
न च सर्वामरैश्वर्यं तव द्रोहेण माधव ॥८४॥

हे माधव ! हमको द्रव्य और देवत्व प्राप्ति या सारी देवों की सम्पत्ति भी प्राप्त हो जावे, तो भी तुम्हारे अनिष्ट होने पर हमको वह प्रसन्न नहीं कर सकती है, फिर अन्य सुखों की तो चर्चा ही क्या है ॥ ८४ ॥

श्रीभगवानुवाच—

जानाम्येतां महाराज धार्तराष्ट्रस्य पापताम् ।
अवाच्यास्तु भविष्यामः सर्वलोके महीक्षिताम् ॥८५॥

श्रीभगवान् बोले—हे महाराज ! मैं राजा दुर्योधन की इस पाप प्रवृत्ति को जानता हूं, परन्तु ऐसा करके हम संसार में राजाओं के सम्मुख कलङ्क से मुक्त हो जावेंगे ॥ ८५ ॥

न चापि मम पर्याप्ताः सहिताः सर्वपार्थिवाः ।
क्रुद्धस्य संयुगे स्थातुं सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥८६॥

हे राजन् ! यदि ये सारे राजा इकट्ठे होकर मुझ पर आक्रमण भी कर देंगे, तो भी ये क्रोध में भरे हुए मेरे वध या बन्धन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लिए पर्याप्त नहीं हो सकते हैं जैसे वन के जीव जन्तु किसी भी तरह सिंह को नहीं जीत सकते हैं ॥ ८६ ॥

अथ चेत्ते प्रवर्तेत मयि किञ्चिदसाम्प्रतम् ।
निर्दहेयं कुरून्सर्वानिति मे धीयते मतिः ॥८७॥

जो उन अज्ञानियों ने मुझ से कुछ अन्याय पूर्ण अनुचित व्यवहार किया, तो मैं वहीं सारे कौरवों को दग्ध कर दूंगा-यह मैंने निश्चित कर रखा है ॥ ८७ ॥

न जातु गमनं पार्थ भवेत्तत्र निरर्थकम् ।
अर्थप्राप्तिः कदाचित्स्यादन्ततो वाऽप्यवाच्यता ॥८८॥

हे पार्थ ! मेरा वहां जाना किसी भी तरह निरर्थक नहीं हैं—सम्भव है, कि कार्य की सिद्धि हो जावे, नहीं तो हम निन्दा से तो अवश्य ही छुटकारा पा सकेंगे ॥ ८८ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

यत्तुभ्यं रोचते कृष्ण स्वस्ति प्राप्नुहि कौरवान् ।
कृतार्थं स्वस्तिमन्तं त्वां द्रक्ष्यामि पुनरागतम् ॥८९॥

युधिष्ठिर बोले—हे कृष्ण ! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो आपका कल्याण हो-आप कौरवों के पास जाइए । अब मैं कृतार्थ और कल्याण के साथ लौटकर आया हुआ तुमको देखना चाहता हूं ॥ ८९॥

विष्वक्सेन कुरून्गत्वा भरताञ्शमयन्प्रभो ।
यथा सर्वे सुमनसः सह स्याम सुचेतसः ॥९०॥

हे विष्वक्सेन ! कौरवों के पास जाकर भरतवंशियों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शान्त कर दो, जिससे हम सब लोग प्रसन्न चित्त होकर आनन्द के साथ एक जगह बैठ सकें ॥ ९० ॥

भ्राता चासि सखा चासि बीभत्सोर्मम च प्रियः ।
सौहृदेनाऽविशंक्योऽसि स्वस्ति प्राप्नुहि भूतये ॥९१॥

हे प्रभो ! आप, मेरे और अर्जुन के प्रिय भ्राता और सखा हो । तुम इतने सुहृद् हो, कि हमको आप से किसी तरह की शङ्का नहीं हैं । आपको कल्याण प्राप्त हो-अब आप भी कल्याण के लिए पधारो ॥ ९१ ॥

अस्मान्वेत्थ परान्वेत्थ वेत्थाऽर्थान्वेत्थ भाषितुम् ।
यद्यदस्मद्धितं कृष्ण तत्तद्वाच्यः सुयोधनः ॥९२॥

हे कृष्ण ! तुम हमको और प्रतिपक्षी दोनों को जानते हो तथा बोलने के प्रकार को भी अच्छी तरह समझते हो । इस तरह जिस बात में हमारा हित देखो, वही तुम दुर्योधन से कहना ॥९२॥

यद्यद्धर्मेण संयुक्तमुपपद्येद्धितं वचः ।
तत्तत्केशव भाषेथाः सान्त्वं वा यदि वेतरत् ॥९३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या-
मुद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि युधिष्ठिरकृष्णप्रेरणे
द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

हे केशव ! जो २ धर्म से युक्त हमारा हितकारी वचन हो, वह चाहे सन्धि करने वाला हो या युद्ध का विधायक हो-आप उसे ही कहना ॥ ९३ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में युधिष्ठिर के श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर भेजने का बहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेहत्तरवाँ अध्याय

श्रीभगवानुवाच—

सञ्जयस्य श्रुतं वाक्यं भवतश्च श्रुतं मया ।
सर्वं जानाम्यभिप्रायं तेषां च भवतश्च यः ॥१॥

श्रीभगवान् बोले—हे राजन् ! मैंने सञ्जय वाक्य और आपके सारे वचन सुन लिए हैं। अब मैं उनका और तुम्हारा सब अभिप्राय जान चुका हूं ॥ १ ॥

तव धर्माश्रिता बुद्धिस्तेषां वैराश्रया मतिः ।
यदयुद्धेन लभ्येत तत्ते बहुमतं भवेत् ॥२॥

तुम्हारी बुद्धि तो धर्म की ओर झुकी हुई है और कौरवों की बुद्धि वैर में लिपटी हुई है। इस समय जो विना युद्ध के मिल जावे, वही बहुत समझना चाहिए ॥ २ ॥

नचैवं नैष्ठिकं कर्म क्षत्रियस्य विशाम्पते ।
आहुराश्रमिणः सर्वे न भैक्षं क्षत्रियश्चरेत् ॥३॥

हे विशाम्पते ! क्षत्रिय के लिए आजन्म ब्रह्मचर्य या भिक्षा वृत्ति से निर्वाह करना सारे आश्रमवासियों ने निषिद्ध माना है ॥ ३॥

जयो वधो वा संग्रामे धात्रा दिष्टः सनातनः ।
स्वधर्मः क्षत्रियस्यैष कार्पण्यं न प्रशस्यते ॥४॥

विधाता ने क्षत्रिय का सनातन धर्म तो युद्ध में विजय या मृत्यु प्राप्त कर लेना ही माना है। क्षत्रिय का यही स्वधर्म है, उसके लिए किसी प्रकार की कायरता धारण करना उचित नहीं है ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहि कार्पण्यमास्थाय शक्या वृत्तिर्युधिष्ठिर ।
विक्रमस्व महाबाहो जहि शत्रून्परन्तप ॥५॥

हे युधिष्ठिर ! अन्य से वृत्ति प्राप्त करना दीनता का आश्रय लिए बिना नहीं हो सकता है । हे परन्तप ! महाबाहो ! अब तुम पराक्रम दिखाओ और शत्रुओं का वध करने को उद्यत हो जाओ ॥ ५ ॥

अतिगृद्धाः कृतस्नेहा दीर्घकालं सहोषिताः ।
कृतमित्राः कृतबला धार्तराष्ट्राः परन्तप ॥६॥
न पर्यायोऽस्ति यत्साम्यं त्वयि कुर्युर्विशाम्पते ।
बलवत्तां हि मन्यन्ते भीष्मद्रोणकृपादिभिः ॥७॥

हे परन्तप ! कौरव बड़े लालची अन्य राजाओं के साथ बहुत काल से रहने के कारण उनके बड़े प्रेमी और मित्र हो रहे हैं । इस तरह उन्होंने बड़ा बल सञ्चित कर लिया है । हे विशाम्पते ! ऐसा कोई उपाय दिखाई नहीं देता है, कि जिससे सन्धि हो सके । ये धृतराष्ट्र के पुत्र, अपने को भीष्म, द्रोण और कृपादि वीरों के कारण बड़ा बलवान् समझ रहे हैं ॥६-७॥

यावच्च मार्दवेनैतान्राजन्नुपचरिष्यसि ।
तावदेते हरिष्यन्ति तव राज्यमरिन्दम ॥८॥

हे अरिमर्दन ! राजन् ! जब तक तुम इनके साथ मृदुता का व्यवहार करोगे-तब तक ये तेरे राज्य के अपहरण की चिन्ता करते ही रहेंगे ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाऽनुक्रोशान्न कार्पण्यान्न च धर्मार्थकारणात् ।
अलङ्कर्तुं धार्तराष्ट्रास्तव काममरिन्दम ॥९॥

हे अरिन्दम ! ये कौरव, दया, भय, धर्म और नीति आदि से तुम्हारी कामना पूरी करने में कभी प्रवृत्त नहीं होंगे ॥ ९ ॥

एतदेव निमित्तं ते पाण्डवाऽस्तु यथा त्वयि ।
नाऽन्वतप्यन्त कौपीनं तावत्कृत्वाऽपि दुष्करम् ॥१०॥

हे पाण्डव ! सन्धि नहीं होने का कारण तो उसी समय से खड़ा हो गया, जब से कौरवों ने तुमको कौपीन धारण करने का दुष्कर काम करा दिया और इससे उनके चित्त पर कोई भी उदासीनता नहीं आई ॥ १० ॥

पितामहस्य द्रोणस्य विदुरस्य च धीमतः ।
ब्राह्मणानां च साधूनां राज्ञश्च नगरस्य च ॥११॥
पश्यतां कुरुमुख्यानां सर्वेषामेव तत्त्वतः ।
दानशीलं मृदुं दान्तं धर्मशीलमनुव्रतम् ॥१२॥
यत्त्वामुपधिना राजन्द्यूते वञ्चितवांस्तदा ।
न चाऽपत्रपते तेन नृशंसः स्वेन कर्मणा ॥१३॥
तथाशीलसमाचारे राजन्मा प्रणयं कृथाः ।
वध्यास्ते सर्वलोकस्य किं पुनस्तव भारत ॥१४॥

हे राजन् ! युधिष्ठिर ! भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, बुद्धिमान् विदुर, उत्तम २ ब्राह्मण, राजा धृतराष्ट्र, सारे नगर निवासी तथा कुरुवंश के मुख्य २ योधाओं के अच्छी तरह देखते २ दानी, कोमल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकृति, उदार, धर्मशील, प्रतिज्ञा-परायण, आपको भी उस छली दुर्योधन ने द्यूत में ठग लिया और वह नीच अब भी अपने इस कर्म से लज्जित नहीं होता है। अब इस तरह के दुराचार में प्रवृत्त दुर्योधन पर आपको कोई प्रेम प्रकट नहीं करना चाहिए। हे भारत ! वे तो सामान्य बुद्धि के मनुष्यों को भी मार देने योग्य प्रतीत होते हैं, फिर तुम समझदार को तो उन्हें शीघ्र मार देना चाहिए ॥ ११—१४ ॥

वाग्भिस्त्वप्रतिरूपाभिरतुदत्त्वां सहानुजम् ।
श्लाघमानः प्रहृष्टः सन्भ्रातृभिः सह भाषते ॥१५॥

जो वाणी तुम से नहीं कहनी चाहिए थी, उन वाणियों से भाइयों के साथ तुम्हारे हृदय को उसने पीड़ा पहुंचाई है और बड़े हर्ष में भरकर अपने भाइयों के साथ अपनी कितनी मिथ्या प्रशंसा की है ॥ १५ ॥

एतावत्पाण्डवानां हि नास्ति किञ्चिदिह स्वकम् ।
नामधेयं च गोत्रं च तदप्येषां न शिष्यते ॥१६॥

उन्होंने तो यहाँ तक कह डाला, कि यहाँ पाण्डवों की कोई वस्तु ही नहीं है, जिस पर उनको स्वत्व हो। इनका तो नाम और गोत्र भी लुप्त हो गया है ॥ १६ ॥

कालेन महता चैषां भविष्यति पराभवः ।
प्रकृतिं ते भजिष्यन्ति नष्टप्रकृतयो मयि ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ काल के अनन्तर इनका पराजय हो जावेगा। पराजय के अनन्तर प्रजा इनका साथ छोड़ देगी और तब ये स्वयं ठण्डे पड़ कर मेरे अनुचर बन जावेंगे ॥ १७ ॥

दुःशासनेन पापेन तदा द्यूते प्रवर्तिते ।
अनाथवत्तदा देवी द्रौपदी सुदुरात्मना ॥१८॥
आकृष्य केशे रुदती सभायां राजसंसदि ।
भीष्मद्रोणप्रमुखतो गौरिति व्याहृता मुहुः ॥१९॥
भवता वारिताः सर्वे भ्रातरो भीमविक्रमाः ।
धर्मपाशनिबद्धाश्च न किञ्चित्प्रतिपेदिरे ॥२०॥

उस द्यूत (जुआ) के समय पापी दुरात्मा दुःशासन ने राज-सभा में सारे सभासदों के सन्मुख, रोती हुई द्रौपदी के बाल पकड़ कर उसको अनाथ की तरह घसीटा था। उस समय भीष्म, द्रोण जैसे मुख्य २ योधा भी देखते रहे और उन्होंने बार २ द्रोपदी को "गौ गौ" कह कर पुकारा। उस समय तुमने महा-पराक्रमी अपने भाइयों को रोक दिया। वे भी धर्म की डोरी में फँसे हुए थे, इससे कुछ नहीं बोले ॥ १८—२० ॥

एताश्चाऽन्याश्च परुषा वाचः स समुदीरयन् ।
श्लाघते ज्ञातिमध्ये स्म त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥२१॥

हे राजन् ! आपके वन में चले जाने पर वह दुरात्मा दुर्योधन, अपनी जाति के मध्य में इस तरह की अनेक कठोर बातें बनाकर अपनी प्रशंसा की डींग मारा करता है ॥ २१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये तत्राऽऽसन्समानीतास्ते दृष्ट्वा त्वामनागसम् ।
अश्रुकण्ठा रुदन्तश्च सभायामासते सदा ॥२२॥

उस समय उस सभा में जो श्रेष्ठ पुरुष बैठे थे, वे यह सब कुछ समझते थे, कि पाण्डवों का कोई अपराध नहीं है। वे लोग अपने आंसुओं को रोककर अपने भीतर ही भीतर रोते हुए सभा में बैठे थे ॥ २२ ॥

न चैनमभ्यनन्दंस्ते राजानो ब्राह्मणैः सह ।
सर्वे दुर्योधनं तत्र निन्दन्ति स्म सभासदः ॥२३॥

सभा में बैठे हुए इन महात्मा, राजा और ब्राह्मणों ने दुर्योधन की कोई बात का अनुमोदन नहीं किया, प्रत्युत वे तो दुर्योधन की निन्दा ही करते रहे ॥ २३ ॥

कुलीनस्य च या निन्दा वधो वाऽमित्रकर्शन ।
महागुणो वधो राजन्न तु निन्दा कुजीविका ॥२४॥

हे शत्रुनाशक ! कुलीन पुरुष की निन्दा और मृत्यु में मृत्यु होना ही उत्तम है, किन्तु जीवन को कलङ्कित कर देने वाली निन्दा अच्छी नहीं है ॥ २४ ॥

तदैव निहतो राजन्यदैव निरपत्रपः ।
निन्दितश्च महाराज पृथिव्यां सर्वराजभिः ॥२५॥

हे राजन् ! दुर्योधन तो उसी समय मर गया, जब वह लज्जा के काम करके भी निर्लज्ज ही बना रहा। हे महाराज ! इस तरह पृथिवी पर सारे राजाओं ने उसकी निन्दा की है ॥ २५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ईषत्कार्यो वधस्तस्य यस्य चारित्रमीदृशम् ।
प्रस्कुन्देन प्रतिस्तब्धश्छिन्नमूल इव द्रुमः ॥२६॥

जिस दुर्योधन के ऐसे बुरे चरित्र हैं, उसका मार देना तो बहुत ही सीधा कार्य है। यह तो चारों ओर से मिट्टी के चक्र के साथ उखाड़े हुए वृक्ष की तरह छिन्न मूल हो चुका है ॥ २६ ॥

वध्यः सर्प इवाऽनार्यः सर्वलोकस्य दुर्मतिः ।
जह्येनं त्वममित्रघ्नं मा राजन्विचिकित्सिथाः ॥२७॥

हे शत्रुनाशक ! जिस तरह सर्प सारे व्यक्तियों द्वारा मारे जाने योग्य है, उसी तरह यह दुष्ट भी सब तरह से वध्य है। हे राजन् ! तुम इसके वध को तय्यार हो जाओ-इस में कुछ विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥ २७ ॥

सर्वथा त्वत्क्षमं चैतद्रोचते च ममाऽनघ ।
यत्त्वं पितरि भीष्मे च प्रणिपातं समाचरेः ॥२८॥

हे राजन् ! जो तुम राजा धृतराष्ट्र और भीष्म के सन्मुख विनय युक्त आचरण करते हो यह तुम्हारे स्वरूप के अनुरूप ही है और मुझे भी बहुत रुचिकर है ॥ २८ ॥

अहं तु सर्वलोकस्य गत्वा छेत्स्यामि संशयम् ।
येषामस्ति द्विधा भावो राजन्दुर्योधनं प्रति ॥२९॥

हे राजन् ! अब मैं जा रहा हूं और जो दुर्योधन के पक्ष को युक्तियुक्त समझते हैं, मैं उनके संशय का छेदन कर दूंगा ॥२९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मध्ये राज्ञामहं तत्र प्रातिपौरुषिकान्गुणान् ।
तव संकीर्तयिष्यामि ये च तस्य व्यतिक्रमाः ॥३०॥

हे राजन् ! मैं राजसभा के मध्य में सर्व साधारण की समझ में आ जाने वाले तेरे उत्तम २ गुण और दुर्योधन के अवगुणों का कीर्तन करूंगा ॥ ३० ॥

ब्रुवतस्तत्र मे वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् ।
निशम्य पार्थिवाः सर्वे नानाजनपदेश्वराः ॥३१॥
त्वयि सम्प्रतिपत्स्यन्ते धर्मात्मा सत्यवागिति ।
तस्मिँश्चाऽधिगमिष्यन्ति यथा लोभादवर्तत ॥३२॥
गर्हयिष्यामि चैवैनं पौरजानपदेष्वपि ।
वृद्धबालानुपादाय चातुर्वर्ण्ये समागते ॥३३॥

जब मैं सभा में धर्म और राजनीति पूर्ण वाक्य कहूँगा-तो उस वाक्य को सुनकर अनेक देश देशान्तरों के राजा यह मान जावेंगे, कि युधिष्ठिर धर्मात्मा और सत्यवादी है तथा दुर्योधन को समझ लेंगे, कि यह लोभ से उनके राज्य छीनने का उपाय कर रहा है । मैं पुर और राष्ट्र के वृद्ध, बालक तथा चारों वर्णों के मनुष्यों की सभा इकट्ठी करके उसके दोषों की निन्दा करूँगा ॥ ३१–३३ ॥

शमं वै याचमानस्त्वं नाऽधर्मं तत्र लप्स्यसे ।
कुरून्विगर्हयिष्यन्ति धृतराष्ट्रं च पार्थिवाः ॥३४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम तो सन्धि चाहते हो और सन्धि चाहने वाले को अधर्म वा निन्दा प्राप्त नहीं हो सकती है। उस समय राजा लोग राजा धृतराष्ट्र और कौरवों की ही निन्दा करेंगे ॥ ३४ ॥

तस्मिन्लोकपरित्यक्ते किं कार्यमवशिष्यते ।
हते दुर्योधने राजन्यदन्यत्क्रियतामिति ॥३५॥

हे राजन् ! जो संसार दुर्योधन के पक्ष का त्याग कर देगा, तो फिर अन्य कार्य शेष ही क्या रह जावेगा। जब दुर्योधन इस तरह नष्ट हो गया, तो तुम्हें जो कार्य करना हो—वह कर लेना ॥३५॥

यात्वा चाऽहं कुरून्सर्वान्युष्मदर्थमहापयन् ।
यतिष्ये प्रशमं कर्तुं लक्षयिष्ये च चेष्टितम् ॥३६॥

अब मैं कौरवों के पास जाकर तुम्हारे हित को ध्यान में रख कर, उनसे सन्धि का प्रस्ताव और उनकी क्या २ चेष्टाएं हैं, इनका भी ध्यान से निरीक्षण करूँगा ॥ ३६ ॥

कौरवाणां प्रवृत्तिं च गत्वा युद्धाधिकारिकाम् ।
निशम्य विनिवर्तिष्ये जयाय तव भारत ॥३७॥

हे भारत ! मैं युद्ध विषयक कौरवों की चेष्टा और तय्यारी का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करके, तुम्हारी विजय के प्रयत्न में लौट आऊंगा ॥ ३७ ॥

सर्वथा युद्धमेवाऽहमाशंसामि परैः सह ।
निमित्तानि हि सर्वाणि तथा प्रादुर्भवन्ति मे ॥३८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझे तो यह निश्चय होता जा रहा है, कि प्रतिपक्षियों के साथ अवश्य ही युद्ध करना पड़ेगा-क्योंकि सारी परिस्थिति ऐसी ही बनती जा रही है ॥ ३८ ॥

मृगाः शकुन्ताश्च वदन्ति घोरं हस्त्यश्वमुख्येषु निशामुखेषु
घोराणि रूपाणि तथैव चाऽग्निर्वर्णान्बहून्पुष्यति घोररूपान्॥
मनुष्यलोकक्षयकृत्सुघोरो नो चेदनुप्राप्त इहांऽतकः स्यात् ।

पशु और पक्षी भी अशकुन पूर्ण घोर शब्द कर रहे हैं तथा हाथी, घोड़े आदि का सायंकाल को भयङ्कर रूप हो जाता है। इसी तरह भयङ्कर रूप में अग्नि अनेक रूपों को धारण करता है। यदि संसार का घोर क्षय कारी यह काल उपस्थित नहीं हुआ होता, तो यह प्रकृति की अवस्था न होती ॥ ३९ ॥

शस्त्राणि यन्त्रं कवचान् रथांश्च नागान्हयांश्च प्रतिपादयित्वा
योधाश्च सर्वे कृतनिश्चयास्ते भवन्तु हस्त्यश्वरथेषु यत्ताः ।
सांग्रामिकं ते यदुपार्जनीयं सर्वं समग्रं कुरु तन्नरेन्द्र ॥

अब तुम शस्त्र,यन्त्र (मशीन) कवच, रथ, हाथी, घोड़ों को तय्यार तथा हाथी, अश्व और रथों पर दृढ़-निश्चयी योधाओं को सावधानी से नियुक्त कर दो। हे नरेन्द्र ! जो २ साधन युद्ध के लिए तुमको अभीष्ट हों, तुम उनकी सब कुछ तय्यारी कर लो ॥ ४०-४१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधनो न ह्यलमद्य दातुं जीवंस्तवैतन्नृपते कथञ्चित्
यत्तं पुरस्तादभवत्समृद्धं द्यूते हतं पाण्डवमुख्य राज्यम्
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णवाक्ये
त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

हे राजन् ! युधिष्ठिर ! दुर्योधन ने जो तुम्हारा समृद्धिशाली राज्य द्यूत में छीन लिया है, उसको वह कभी जीवित रहता हुआ किसी प्रकार लौटा कर नहीं देगा-यह तुमको समझ लेना चाहिए ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में
श्रीकृष्ण वाक्य का तेहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ

चौहत्तरवां अध्याय

भीम उवाच—

यथा यथैव शान्तिः स्यात्कुरूणां मधुसूदन ।
तथा तथैव भाषेथा मा स्म युद्धेन भीषयेः ॥१॥

भीम बोले—हे मधुसूदन ! जिन २ ढंगों से कौरवों के चित्त की शान्ति हो, आप उसी तरह भाषण करना, किन्तु युद्ध होने से अनिष्ट की आशङ्का है, यह विचार भी चित्त में मत लाना ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अमर्षी जातसंरम्भः श्रेयोद्वेषी महामनाः ।
नोग्रं दुर्योधनो वाच्यः साम्नैवैनं समाचरेः ॥२॥

दुर्योधन बड़ा क्रोधी, उत्साही, कल्याणकारी कार्य के सोचने में असमर्थ और अभिमानी है। आप उससे उग्रता से बात न करना, जहां तक हो उसे शान्ति से ही समझाना ॥ २ ॥

प्रकृत्या पापसत्वश्च तुल्यचेतास्तु दस्युभिः ।
ऐश्वर्यमदमत्तश्च कृतवैरश्च पाण्डवैः ॥३॥
अदीर्घदर्शी निष्ठूरी क्षेप्ता क्रूरपराक्रमः ।
दीर्घमन्युरनेयश्च पापात्मा निकृतिप्रियः ॥४॥
म्रियेतापि न भज्येत नैव जह्यात्स्वकं मतम् ।
तादृशेन शमः कृष्ण मन्ये परमदुष्करः ॥५॥

यह स्वभाव से पापशील, चोर डाकुओं के समान आचरण वाला, ऐश्वर्य के मद में उन्मत्त, पाण्डवों का द्वेषी, परिणाम का नहीं देखने वाला कटुभाषी, निन्दक, क्रूर, पराक्रमी, स्थायी क्रोध धारी, शिक्षा के अयोग्य, पापात्मा तथा वञ्चना-परायण है। यह मर जावेगा, परन्तु झुकेगा नहीं एवं अपने दुराग्रह को नहीं छोड़ेगा। हे भगवन्! मैं तो ऐसे व्यक्ति के साथ सन्धि होना बहुत ही कठिन समझता हूं ॥ ३-५ ॥

सुहृदामप्यवाचीनस्त्यक्तधर्मा प्रियानृतः ।
प्रतिहन्त्येव सुहृदां वाचश्चैव मनांसि च ॥६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह अपने मित्रों के साथ भी सीधा व्यवहार नहीं करता। इसने मनुष्योचित धर्मों का त्याग कर दिया है और सदा प्यारे २ झूँठे वचन कह कर लोगों को बहकाता रहता है। यह तो अपने मित्रों के वचनों को भी काटकर उनके मनों को तोड़ता रहता है ॥ ६ ॥

स मन्युवशमापन्नः स्वभावं दुष्टमास्थितः ।
स्वभावात्पापमभ्येति तृणैश्छन्न इवोरगः ॥७॥

यह दुर्योधन आवेश में भरा हुआ, अपने दुष्ट स्वभाव के वश में रहता है। यह घास फूँस में ढ़के हुए सांप की तरह अपनी प्रकृति के वश में पापाचरण करता ही रहता है ॥ ७ ॥

दुर्योधनो हि यत्सेनः सर्वथा विदितस्तव ।
यच्छीलो यत्स्वभावश्च यद्बलो यत्पराक्रमः ॥८॥

दुर्योधन की जितनी सेना है, वह सब आपको विदित है। उसका आचरण, स्वभाव, बल और पराक्रम आपसे कुछ भी छुपा हुआ नहीं है ॥ ८ ॥

पुरा प्रसन्नाः कुरवः सहपुत्रास्तथा वयम् ।
इन्द्रज्येष्ठा इवाऽभूम मोदमानाः सबान्धवाः ॥९॥

हे कृष्ण ! पूर्वकाल में सारे कौरव अपने परिवार के साथ प्रसन्नता से रहते थे और हम भी प्रसन्न थे। उस समय हम लोग अपने बान्धवों में इन्द्र के समान सुखी थे ॥ ९ ॥

दुर्योधनस्य क्रोधेन भरता मधुसूदन ।
धक्ष्यन्ते शिशिरापाये वनानीव हुताशनैः ॥१०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे मधुसूदन ! दुर्योधन की इस आग से सारा भरतवंश इस तरह जल जावेगा जैसे—ग्रीष्म काल में बांसों की रगड़ से उत्पन्न हुए अग्नि से वन जल जाते हैं ॥ १० ॥

अष्टादशेमे राजानः प्रख्याता मधुसूदन ।
ये समुच्चिच्छिदुर्ज्ञातीन्सुहृदश्च सबान्धवान् ॥११॥

हे मधुसूदन ! ये अट्ठारह राजा प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने अपने अपराध से अपनी जाति, मित्र और बांधओं का नाश करा दिया ॥ ११ ॥

असुराणां समृद्धानां ज्वलतामिव तेजसा ।
पर्यायकाले धर्मस्य प्राप्ते कलिरजायत ॥१२॥

अपने २ तेज से देदीप्यमान समृद्धि शाली असुरों में धर्म के परिवर्तन होने पर जैसे-कलह उत्पन्न हो गया-वैसे ही इन राजाओं में हुआ है ॥ १२ ॥

हैहयानामुदावर्त्तो नीपानां जनमेजयः ।
बहुलस्तालजङ्घानां कृमीणामुद्धतो वसुः ॥१३॥
अजबिन्दुः सुवीराणां सुराष्ट्राणां रुषर्द्धिकः ।
अर्कजश्च बलीहानां चीनानां धौतमूलकः ॥१४॥
हयग्रीवो विदेहानां वरयुश्च महौजसाम् ।
बाहुः सुन्दरवंशानां दीप्ताक्षाणां पुरूरवाः ॥१५॥
सहजश्चेदिमत्स्यानां प्रवीराणां वृषध्वजः ।
धारणश्चन्द्रवत्सानां मुकटानां विगाहनः ॥१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शमश्च नन्दिवेगानामित्येते कुलपांसनाः ।
युगान्ते कृष्ण सम्भूताः कुले कुपुरुषाधमाः ॥१७॥

हैहय वंश में उदावर्त, नीपों में जनमेजय, तालजंघों में बहुल, कृमिवंश में उद्धत वसु, सुवीरों में आज बिन्दु, सुराष्ट्रों में रुषर्धिक, बलीह वंश में अर्कज, चीनों में धौतमूलक, विदेहों में हयग्रीव, महौजसों में वरयु, सुन्दर वंश में बाहु, दीप्ताक्षों में पुरूरवा, चेदि मत्स्यों में सहज, प्रवीरों में वृषध्वज, चन्द्र वत्सों में धारण, मुकुट वंश में विगाहत, नन्दि वेगों में शम नामक राजा हो गए, जिन्होंने अपने आप कुल का नाश कर दिया। हे कृष्ण ! युग के अन्त में ये पुरुषाधम अपने २ कुल में उत्पन्न हुए थे ॥ १३-१७ ॥

अप्ययं नः कुरूणां स्याद्युगान्ते कालसम्भृतः ।
दुर्योधनः कुलाङ्गारो जघन्यः पापपूरुषः ॥१८॥

इसी तरह इस युग के अन्त में काल की प्रेरणा से हमारे भरतवंश में यह कुलांगार, नीच, पापी दुर्योधन उत्पन्न हो गया है ॥ १८ ॥

तस्मान्मृदु शनैर्ब्रूया धर्मार्थसहितं हितम् ।
कामानुबद्धं बहुलं नोग्रमुग्रपराक्रम ॥१९॥

हे महापराक्रमी ! कृष्ण ! इसलिए आप अपने स्वार्थ के पोषक, उग्रता से रहित धर्म और अर्थ से युक्त वचनों को शान्ति के साथ दुर्योधन के सन्मुख उपस्थित करना ॥ १९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपि दुर्योधनं कृष्ण सर्वे वयमधश्चराः ।
नीचैर्भूत्वाऽनुयास्यामो मा स्म नो भरता नशन् ।२०॥

हे कृष्ण ! क्या हम सब कोई दुर्योधन से बल वीर्य में दुर्बल हैं, तो भी हम सब उससे नीचे होकर व्यवहार करेंगे, क्योंकि हम चाहते हैं, कि व्यर्थ भरतवंश का संहार न होवे ।।२० ॥

अप्युदासीनवृत्तिः स्याद्यथा नः कुरुभिः सह ।
वासुदेव तथा कार्यं न कुरूननयः स्पृशेत् ॥२१॥

हे वासुदेव ! कौरवों के साथ वैर मिटा कर हमारी उदासीनता के साथ व्यवहार करने का मार्ग पड़ जावे, आप ऐसा ही करना । आप कोई ऐसा उग्र मार्ग स्वीकार न कर लेना, जिससे कौरव भड़क उठें ॥ २१ ॥

वाच्यः पितामहो वृद्धो ये च कृष्ण सभासदः ।
भ्रात्दृणामस्तु सौभ्रात्रं धार्तराष्ट्रः प्रशाम्यताम् ॥२२॥

हे श्रीकृष्ण ! वहां वृद्ध भीष्म पितामह तथा अन्य उत्तम सभासदों से कहना, कि दुर्योधन ! तुम अपने भाईपन को देख कर शान्त हो जाओ ॥ २२ ॥

अहमेतद्ब्रवीम्येवं राजा चैव प्रशंसति ।
अर्जुनो नैव युद्धार्थी भूयसी हि दयाऽर्जुने ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीमवाक्ये चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह जो मैं कह रहा हूं, इसको राजा युधिष्ठिर बड़ा ही पसन्द करेंगे। अर्जुन भी कलहप्रिय नहीं हैं। अर्जुन तो बड़ा ही दयालु हैं ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में भीम वाक्य का चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

पिचहत्तरवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच--

एतच्छ्रुत्वा महाबाहुः केशवः प्रहसन्निव।
अभूतपूर्वं भीमस्य मार्दवोपहितं वचः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! भीमसेन के मृदुता से युक्त, पूर्व में कभी नहीं कहे गए वचनों को सुनकर महाबाहु श्रीकृष्ण मुस्कुराने लगे ॥ १ ॥

गिरेरिव लघुत्वं तच्छीतत्वमिव पावके।
मत्वा रामानुजः शौरिः शार्ङ्गधन्वा वृकोदरम् ॥ २ ॥
सन्तेजयंस्तदा वाग्भिर्मातरिश्वेव पावकम्।
उवाच भीममासीनं कृपयाऽभिपरिप्लुतम् ॥३॥

पर्वत में नीचापन और अग्नि में शीतलता जैसे असम्भव है, उसी तरह भीम में शान्ति का होना दुष्कर मान कर बलराम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के अनुज वृष्णि-वंश—श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण, अग्नि को पवन की भांति करुणा से युक्त बैठे हुए भीम को उत्तेजित करते हुए बोले ॥ २-३ ॥

श्रीभगवानुवाच--

त्वमन्यदा भीमसेन युद्धमेव प्रशंससि ।
वधाभिनन्दिनः क्रूरान्धार्तराष्ट्रान्मिमर्दिषुः ॥४॥

हे भीमसेन ! तुम तो मार काट के लोलुप, क्रूर, दुर्योधनादि के मर्दन की आकांक्षा रखते हुए सदा युद्ध की पुष्टि किया करते थे॥ ४ ॥

न च स्वपिसि जागर्षि न्युब्जः शेषे परंतप ।
घोरामशांतां रुषतीं सदा वाचं प्रभाषसे ॥५॥

हे परन्तप ! इसी चिन्ता में तुम सोते भी नहीं, रात भर जागते रहते हो और औंधे मुंह खाट में पड़े रहते हो तथा भयङ्कर अशान्त, क्रोधमयी सदा वाणी बोलते हो ॥ ५ ॥

निःश्वसन्नग्निवत्तेन संतप्तः स्वेन मन्युना ।
अप्रशांतमना भीम सधूम इव पावकः ॥६॥

हे भीम ! अपने क्रोध से सन्तप्त हुए तुम तो रात दिन अग्नि की तरह उष्ण निश्वास छोड़ते और धूम से आकुल आग की तरह सर्वदा उद्विग्न रहते हो ॥ ६ ॥

एकांते निःश्वसन्शेषे भारार्त इव दुर्बलः ।
अपि त्वां केचिदुन्मत्तं मन्यंतेऽतद्विदो जनाः ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे महाभाग ! तुम तो भार से पीड़ित हुए दुर्बल मनुष्य की भांति एकान्त में श्वास लेते हुए पड़े रहा करते थे। जो तुम्हारे अभिप्राय को नहीं समझ पाते हैं, वे तो तुमको उन्मत्त जैसा समझते हैं॥

आरुज्य वृक्षान्निर्मूलान्गजः परिरुजन्निव ।
निघ्नन्पद्भिः क्षितिं भीम निष्टनन्परिधावसि ॥८॥

हे भीम ! हाथी की तरह मूल रहित वृक्षों को तोड़ कर जब कभी तुम पैदल ही पृथिवी को पीटते और गर्जना करते हुए दौड़ते रहते हो॥ ८॥

नाऽस्मिञ्जनेन रमसे रहः क्षिपसि पांडव ।
नाऽन्यं निशि दिवा चापि कदाचिदभिनंदसि ॥९॥

हे पाण्डव ! क्या हम नहीं देख रहे हैं, कि तुमको मनुष्यों से बातें करना भी अच्छा नहीं लगता और तुम सदा एकान्त में बैठे रहना ही पसन्द करते हो। जब कभी रात या दिन में कोई तुम्हारे पास चला आता है, तो तुम उसका स्वागत भी नहीं करते॥ ९॥

अकस्मात्स्मयमानश्च रहस्यास्से रुदन्निव ।
जान्वोर्मूर्धानमाधाय चिरमास्से प्रमीलितः ॥१०॥

हे भीमसेन ! कभी तुम हंसने लगते हो और कभी उसी एकान्त में बैठे २ रोने लग जाते हो। कभी अपने गोड़ों में शिर देकर आँख मींचे बहुत देर बैठे रहते हो॥ १०॥

भ्रुकुटिं च पुनः कुर्वन्नोष्ठौ च विदशन्निव ।
अभीक्ष्णं दृश्यसे भीम सर्वं तन्मन्युकारितम् ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे वृकोदर ! फिर तुम अपनी भौंहें चढ़ा लेते हो और ओष्ठ चबाने लगते हो । यह तुम्हारी दशा प्रतिक्षण देखी जाती है, जिसका कारण तुम्हारा क्रोध है ॥ ११ ॥

यथा पुरस्तात्सविता दृश्यते शुक्रमुच्चरन् ।
यथा च पश्चान्निर्मुक्तो ध्रुवं पर्येति रश्मिवान् ॥१२॥
तथा सत्यं ब्रवाम्येतन्नास्ति तस्य व्यतिक्रमः ।
हंताऽहं गदयाऽभ्येत्य दुर्योधनममर्षणम् ॥१३॥
इति स्म मध्ये भ्रातॄणां सत्येनाऽऽलभसे गदाम् ।
तस्य ते प्रशमे बुद्धिर्ध्रियतेऽद्यरन्तप ॥१४॥

प्रातः काल सूर्य अपने तेज को फैलाता हुआ दिखाई देता है और फिर अस्त हो जाता है तथा फिर प्रातः काल उदित होता है । जैसे-यह अटल है, वैसे ही मैं सत्य कहता हूं, मेरा यह कथन भी विपरीत नहीं होगा, कि मैं आवेश में भरे हुए दुर्योधन को इस गदा से अवश्य मारूंगा । इस प्रकार तुम अपने भाइयों के मध्य में शपथ पूर्वक गदा को छुआ करते थे । हे परन्तप ! क्या आज तुम भी शान्ति चाहने लगे ॥ १२–१४ ॥

अहो युद्धाभिकांक्षाणां युद्धकाल उपस्थिते ।
चेतांसि विप्रतीपानि यत्त्वां भोर्भीम विन्दति ॥१५॥

यह बड़े अचम्भे की बात है, कि युद्ध के अभिलाषियों के ही चित्त, युद्ध काल के उपस्थित होने पर उलटे हो गए और वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही शान्ति चाहने लगे। हे भीम ! यही तो बात है, जिससे तुम्हारे चित्त में भी कुछ भय घुस गया है॥ १५॥

अहो पार्थ निमित्तानि विपरीतानि पश्यसि।
स्वप्नांते जागरांते च तस्मात्प्रशममिच्छसि ॥१६॥

हे कुन्तीपुत्र ! भीम ! सोने और जागने के अनन्तर जो तुम विपरीत चिन्ह देखते हो—यह उनका ही फल है, कि आज तुम भी सन्धि चाहने लगे॥ १६॥

अहो नाऽऽशंससे किंचित्पुंस्त्वं क्लीब इवाऽऽत्मनि।
कश्मलेनाऽभिपन्नोऽसि तेन ते विकृतं मनः ॥१७॥

हे महाभाग ! आज तुम नपुंसक की तरह अपने आप में कुछ भी पुरुषार्थ नहीं देख रहे हो। तुम्हारे चित्त में कुछ कायरता का सञ्चार हो गया है, इससे तुम्हारा मन उलटा चल पड़ा है।

उद्वेपते ते हृदयं मनस्ते प्रतिसीदति।
ऊरुस्तंभगृहीतोऽसि तस्मात्प्रशममिच्छसि ॥१८॥

आज तुम्हारा हृदय कांपता है, मन व्याकुल है एवं पैर जकड़ गए है-इसी से तुम सन्धि की इच्छा करने लगे हो॥ १८॥

अनित्यं किल मर्त्यस्य पार्थ चित्तं चलाचलम्।
वातवेगप्रचलिता अष्ठीला शाल्मलेरिव ॥१९॥

हे पार्थ ! मनुष्य का चित्त बड़ा चञ्चल है, वह वायु के वेग से शाल्मलि वृक्ष के फल की रूई की तरह इधर उधर उड़ जाता है॥ १९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तवैषा विकृता बुद्धिर्गवां वागिव मानुषी ।
मनांसि पाण्डुपुत्राणां मज्जयत्यप्लवानिव ॥२०॥

आज तुम्हारी बुद्धि इतनी विपरीत हो गई-जैसे गवादि पशु मनुष्य की तरह उलटे रूप में बोलने लगे हों, जो पाण्डवों के मनों को विना नौका के शोक समुद्र में डाल रही है ॥ २० ॥

इदं मे महदाश्चर्यं पर्वतस्येव सर्पणम् ।
यदीदृशं प्रभाषेथा भीमसेनाऽसमं वचः ॥२१॥

हे भीमसेन ! पर्वत के इधर उधर चलने के समान असम्भव, बड़ा आश्चर्य-जनक, तुम्हारे अयोग्य, यह तुम्हारा भाषण है, जो तुम सन्धि का प्रस्ताव कर रहे हो ॥ २१ ॥

स दृष्ट्वा स्वानि कर्माणि कुले जन्म च भारत ।
उत्तिष्ठस्व विषादं मा कृथा वीर स्थिरो भव ॥२२॥

हे भारत ! अब तुम अपने पराक्रमकारी कर्म और अपने उत्तम कुल में हुए जन्म का खयाल करो । हे वीर ! अब तुम खड़े हो जावो और विषाद को छोड़ कर दृढ़ता स्वीकार करो ॥ २२ ॥

न चैतदनुरूपंयत्ते ते ग्लानिररिन्दम ।
यदोजसा न लभते क्षत्रियो न तदश्नुते ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योग-पर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीमोत्तेजकश्रीकृष्णवाक्ये पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे अरिन्दम ! जो तुमको यह उदासी आई है-यह तुम्हारे स्वरूप के अनुरूप नहीं है। क्षत्रिय गण ! जिस राज्य आदि को विना पराक्रम प्राप्त करते हैं, वे उसको भोगने के योग्य नहीं मानते ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में भीम को उत्तेजित करने का पिचहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ

छियत्तरहवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

तथोक्तो वासुदेवेन नित्यमन्युरमर्षणः।
सदश्ववत्समाधावद्भभाषे तदनन्तरम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! श्रीकृष्ण के इतना कहने पर नित्य क्रोध में भरे रहने वाले, असहिष्णु भीमसेन, तीव्रगामी अश्व की तरह वेग में भर गए और कहने लगे ॥ १ ॥

भीमसेन उवाच—

अन्यथा मां चिकीर्षन्तमन्यथा मन्यसेऽच्युत।
प्रणीतभावमत्यर्थं युधि सत्यपराक्रमम् ॥२॥

हे अच्युत ! मैं तो कुछ और ही करना चाहता हूं और आप अन्य कुछ समझ रहे हैं। आप तो सदा से मेरे अभिप्राय के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समझ लेने वाले है, कि मैं सदा युद्ध में सत्य पराक्रम दिखाने को सर्वदा तत्पर हूं ॥ २ ॥

वेत्सि दाशार्ह सत्यं मे दीर्घकालं सहोषितः ।
उत वा मां न जानासि प्लवन्ह्रद इवाऽप्लवे॥३॥
तस्मादनमिरूपाभिर्वाग्भिर्मां त्वं समर्छसि ।

हे वृष्णिवंशश्रेष्ठ ! तुम मेरे सत्य २ अभिप्राय को जानते हो, क्योंकि तुम दीर्घकाल से हम लोगों के स्वभाव से परिचित हो अथवा विना नौका के तालाब का पार नहीं पाने के तुल्य आप हमारे हृदयों का पार नहीं पा सके हो। यही कारण है, कि तुम इस प्रकार अनुचित वाणी से मुझे पीड़ित कर रहे हो ॥ ३ ॥

कथं हि भीमसेनं मां जानन्कश्चन माधव ॥४॥
ब्रूयादप्रतिरूपाणि यथा मां वक्तुमर्हसि ।

हे माधव ! जो कोई भी मुझ भीमसेन के स्वभाव को जान लेगा-वह मेरे स्वभाव के प्रतिकूल जैसी वाणी आप कह रहे हो-नहीं कहेगा ॥ ४ ॥

तस्मादिदं प्रवक्ष्यामि बचनं वृष्णिनन्दन ॥५॥
आत्मनः पौरूषं चैव बलं च न समं परैः ।

हे वृष्णिनन्दन ! मैं इसीलिए आपसे यह वचन कहता हूं और अपने पराक्रम तथा अन्य जिसकी समानता नहीं कर सकते, ऐसे बल का निरूपण करता हूं ॥ ५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वथाऽनार्यकर्मैतत्प्रशंसा स्वयमात्मनः ॥६॥
अतिवादापविद्धस्तु वक्ष्यामि बलमात्मनः ।

अपने बल की आप ही प्रशंसा करना बिल्कुल अनार्य कर्म है, परन्तु आपके आक्षेप से प्रेरित होकर मुझे अपने बलका वर्णन करना पड़ता है ॥ ६ ॥

पश्येमे रोदसी कृष्ण ययोरासन्निमाः प्रजाः ॥७॥
अचले चाऽप्रतिष्ठे चाप्यनन्ते सर्वमातरौ ।

हे कृष्ण ! तुम इस आकाश और पृथ्वी को देख रहे हो, जिसमें सारी प्रजा निवास करती है, जो अचल, असीम, अनन्त और सबके उत्पादक हैं ॥ ७ ॥

यदीमे सहसा क्रुद्धे समेयातां शिले इव ॥८॥
अहमेते निगृह्णीयां बाहुभ्यां सचराचरे ।

यदि ये दोनों आकाश और भूमि भी क्रुद्ध होकर शिलाओं की तरह टकराने लगें, तो मैं इस चराचर जगत् के धारक द्यावा पृथिवी को अपनी भुजाओं से रोक सकता हूं ॥ ८ ॥

पश्यैतदन्तरं बाह्वोर्महापरिघयोरिव ॥९॥
य एतत्प्राप्य मुच्येत न तं पश्यामि पूरुषम् ।

बड़ी विशाल अर्गलाओं की तरह मेरी इन भुजाओं के अवकाश की ओर देखो-जिसमें फंसकर कोई भी पुरुष नहीं छुट सकता है ॥ ९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिमवांश्च समुद्रश्च वज्री वा बलभित्स्वयम् ॥१०॥
मयाऽभिपन्नं त्रायेरन्बलमास्थाय न त्रयः ।

हिमालय, समुद्र या वज्रघाती इन्द्र ये तीनों भी मेरे दबाए हुए पुरुष को अपना बल लगा कर भी नहीं छुड़ा सकते हैं ॥ १० ॥

युद्धार्हान्क्षत्रियान्सर्वान्पाण्डवेष्वाततायिनः ॥११॥
अधः पादतलेनैतानधिष्ठास्यामि भूतले ।

मैं युद्ध के अभिलाषी, पाण्डवों के घात करने की इच्छा वाले, सारे क्षत्रियों को भूमि पर गिरा कर अपने पैर के नीचे दबाए रख सकता हूं ॥ ११ ॥

नहि त्वंनाभिजानासि मम विक्रममच्युत ॥१२॥
यथा मया विनिर्जित्य राजानो वशगाः कृताः ।

हे अच्युत ! तुम मेरे पराक्रम को नहीं जानते हो-ऐसा नहीं हो सकता। क्या मैंने राजाओं को जीत कर अपने वश में नहीं किया है ॥ १२ ॥

अथ चेन्मां न जानासि सूर्यस्येवोद्यतः प्रभाम् ॥१३॥
विगाढे युधि सम्बाधे वेत्स्यसे मां जनार्दन ।

हे जनार्दन ! यदि आप उदित हुए सूर्य के प्रकाश के समान प्रकाशित मेरे पराक्रम को नहीं जानते हो, तो जब घमासान युद्ध आरम्भ होगा-तब जान लोगे ॥ १३ ॥

परुषैराक्षिपसि किं व्रणं पूतिमिवोन्नयन् ॥१४॥
यथामति ब्रवीम्येतद्विद्धि मामधिकं ततः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्गन्ध से भरे व्रण के खोलने के तुल्य कठोर वचनों से तुम मेरे ऊपर आक्षेप कर रहे हो, परन्तु मैं अपनी बुद्धि से जितना कहता हूं, तुम मुझे उससे भी अधिक समझो ॥ १४ ॥

दृष्टाऽसि युधि सम्बाधे प्रवृते वैशसेहनि ॥१५॥
मयाप्रणुन्नान्मातङ्गान्रथिनः सादिनस्तथा ।

जब महाघोर संग्राम प्रवृत्त होगा और मार काट का दिन आवेगा, तब तुम मुझसे इधर उधर फैंके हुए हाथी, महारथी और सवारों को देखोगे ॥ १५ ॥

तथा नरानभिक्रुद्धं निघ्नन्तं क्षत्रियर्षभान् ॥१६॥
द्रष्टा मां त्वं च लोकश्च विकर्षतं वरान्वरान् ।

जब मैं वीरों पर क्रोध में भरकर बड़े २ क्षत्रिय वीरों का विध्वंस करूँगा तथा छांट २ कर उत्तम महारथियों को चुन कर घसीटूँगा-तब तुम और सारा संसार मेरे पराक्रम को देख लोगे ॥ १६ ॥

न मे सीदन्ति मज्जानो न ममोद्वेपते मनः ॥१७॥
सर्वलोकादभिक्रुद्धान्न भयं विद्यते मम ।

हे कृष्ण ! मेरी मज्जा या बल कभी कम नहीं होता और न कभी मेरा मन काँपता है, चाहे सारा संसार मुझसे क्रुद्ध या अप्रसन्न हो जावे, परन्तु मेरे मन में कभी भय का सञ्चार नहीं होता है॥१७॥

किं तु सौहृदमेवैतत्कृपया मधुसूदन ॥
सर्वास्तितिक्षे संक्लेशान्मा स्म नो भरता नशन् ॥१८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि
भीमसेनवाक्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

हे मधुसूदन ! परन्तु इस समय जो मेरे चित्त में करुणा या प्रेम का सञ्चार हुआ, उसका केवल यही कारण है, कि कहीं भरतवंश का विनाश न हो जावे और मैं इसीलिए सब कुछ क्लेशों को सह रहा हूँ ॥१८॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में भीमसेन वाक्य का छियत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ।

सतहत्तरवां अध्याय

श्रीभगवानुवाच—

भावं जिज्ञासमानोऽहं प्रणयादिदमब्रवम् ।
न चाऽऽक्षेपान्न पाण्डित्यान्न क्रोधान्न विवक्षया॥१॥

श्रीभगवान् बोले—हे भीमसेन ! मैंने तुम्हारे ऊपर आक्षेप करने अपनी पण्डिताई दिखाने, क्रोध या बोलने की शक्ति प्रदर्शन करने के लिए यह नहीं कहा है, किन्तु मैंने तो तुम्हारा भाव जानने के अभिप्राय से यह बात बड़े प्रेम से कही है ॥१॥

वेदाऽहं तव माहात्म्यमुत ते वेद यद्बलम् ।
उत ते वेद कर्माणि न त्वां परिभवाम्यहम् ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं तुम्हारा सारा गौरव और शक्ति को जानता हूं तथा जो तुम पराकम कर सकते हो--वह भी मैं सब कुछ समझता हूं। मैं तुम्हारे तिरस्कार करने को यह नहीं कह रहा हूं ॥२॥

यथा चाऽऽत्मनि कल्याणं संभावयसि पाण्डव ।
सहस्रगुणमप्येतत् त्वयि संभावयाम्यहम् ॥३॥

हे वृकोदर ! जितना तुम अपने में कल्याण करने की शक्ति समझते हो--उससे सहस्रों गुण अधिक मैं तुम में शक्ति समझता हूं ॥३॥

यादृशे च कुले जन्म सर्वराजाभिपूजिते ।
बन्धुभिश्च सुहृद्भिश्च भीम त्वमसि तादृशः ॥४॥

हे भीम ! सब राजाओं से पूजित, अपने बन्धु और मित्रों से आदरणीय कुल में जन्म लेने वाले व्यक्ति का जो गौरव होना चाहिए--वही मेरे चित्त में तुम्हारा है, क्योंकि तुम ऐसे ही कुल में उत्पन्न हो ॥४॥

जिज्ञासन्तो हि धर्मस्य सन्दिग्धस्य वृकोदर ।
पर्यायं नाऽऽध्यवस्यन्ति देवमानुषयोर्जनाः ॥५॥

हे वृकोदर ! पाप पुण्य के भावी फल और पुरुषार्थ के सन्देह को निश्चय रूप से जानने की इच्छा वाले मनुष्य, दैव और पुरुषार्थ को निश्चय रूप से नहीं जान सकते हैं ॥५॥

स एव हेतुर्भूत्वा हि पुरुषस्याऽर्थसिद्धिषु ।
विनाशेऽपि स एवाऽस्य सन्दिग्धं कर्म पौरुषम् ॥६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरुष को मनोरथ की सिद्धि का वही दैव धर्म का कारण बन कर भी कभी कभी सिद्धि का विघातक हो जाता है, इससे दैव और पुरुषार्थ का फल सदा सन्देह में ही रहता है॥६॥

अन्यथा परिदृष्टानि कविभिर्दोषदर्शिभिः ।
अन्यथा परिवर्तन्ते वेगा इव नभस्वतः ॥७॥

अपने उद्योग की त्रुटि और प्रक्रिया के जानने वाले विद्वान् कभी किसी कार्य की सिद्धि अन्य प्रकार से सोचते हैं, परन्तु वह प्रकार कभी वायु के झोकों की तरह बिल्कुल उलट पलट हो जाता है ॥७॥

सुमन्त्रितं सुनीतं च न्यायतश्चोपपादितम् ।
कृतं मानुष्यकं कर्म दैवेनाऽपि विरुद्ध्यते ॥८॥

अच्छी तरह सोचा विचारा और अनुष्ठान किया तथा नीति के अनुसार प्रतिपादित उद्योग भी दैव से उलटा कर दिया जाता है ॥८॥

दैवमप्यकृतं कर्म पौरुषेण विहन्यते ।
शीतमुष्णं तथा वर्षं क्षुत्पिपासे च भारत ॥९॥

हे भारत ! भोग के लिए उपस्थित नहीं हुए सञ्चित या आधिदैविक कर्मों का पुरुषार्थ से क्षय देखा जाता है। लोग शीत, उष्ण, भूख, प्यास, वर्षादि का अपने २ उद्योग से निवारण कर ही लेते हैं ॥९॥

यदन्यद्दिष्टभावस्य पुरुषस्य स्वयं कृतम् ।
तस्मादनुपरोधश्चविद्यते तत्र लक्षणम् ॥१०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो प्रारब्ध कर्म से भिन्न सञ्चित कर्म है, उसका जन्मान्तर में ज्ञानादि से निरोध हो जाता है, ऐसा भी शास्त्र का निर्देश है ॥ १० ॥

लोकस्य नाऽन्यतो वृत्तिः पाण्डवाऽन्यत्र कर्मणः ।
एवं बुद्धिः प्रवर्तेत फलं स्यादुभयान्वये ॥११॥

हे पाण्डव ! इस लोक की इन सब कारणों को देख कर पुरुषार्थ के अतिरिक्त अन्य वृत्ति नहीं देखी जाती हैं । जब मनुष्य ऐसी बुद्धि द्वारा कर्म करने में प्रवृत्त हो जाता है, तो पूर्व कर्म और पुरुषार्थ के संयोग से सिद्धि हो जाती है ॥ ११ ॥

य एवं कृतबुद्धिः स कर्मस्वेव प्रवर्तते ।
नाऽसिद्धौ व्यथते तस्य न सिद्धौ हर्षमश्नुते ॥१२॥

जिस मनुष्य की इस प्रकार बुद्धि परिमार्जित हो जाती है, वह अपने कर्म में प्रवृत्त हो जाता है । यह मनुष्य, अपने कर्म के असिद्ध होने में दुःखी और सिद्ध होने में कभी हर्षित नहीं होता ॥ १२ ॥

तत्रेयमनुमात्रा मे भीमसेन विवक्षिता ।
नैकान्तसिद्धिर्वक्तव्या शत्रुभिः सह संयुगे ॥१३॥

हे भीमसेन ! मैंने यह तुमको शासन का निश्चय बता दिया है । शत्रुओं के साथ युद्ध में समागम होने पर विजय अवश्यम्भावी नहीं होता है ॥ १३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाऽतिप्रहीणरश्मिः स्यात्तथा भावविपर्यये ।
विषादमर्छेद् ग्लानिं वाऽप्येतमर्थं ब्रवीमि ते ॥ १४ ॥

यदि भाग्य विपरीत हो जावे-तो भी कभी तेजहीन (उदास) न होवे । मैं तुमको यह बात बतला देना चाहता हूं, कि चाहे कितनी ही असिद्धि क्यों न हो जावे, परन्तु विषाद और ग्लानिको कभी प्राप्त न होवे अर्थात् कभी कर्म का परित्याग करे ॥ १४ ॥

श्वोभूते धृतराष्ट्रस्य समीपं प्राप्य पाण्डव ।
यतिष्ये प्रशमं कर्तुं युष्मदर्थमहापयन् ॥ १५ ॥

हे पाण्डुपुत्र ! भीमसेन ! कल में धृतराष्ट्र के पास पहुंच जाऊंगा और तुम्हारी अर्थ सिद्धि का लक्ष्य रख कर, मैं उनके सम्मुख सन्धि का प्रस्ताव रखूंगा ॥ १५ ॥

शमं चेत्ते करिष्यन्ति ततोऽनन्तं यशो मम ।
भवतां च कृतः कामस्तेषां च श्रेय उत्तमम् ॥ १६ ॥

यदि उन्होंने सन्धि को स्वीकार कर लिया, तो मेरा बहुत यश होगा, इससे तुम्हारा काम निकल आवेगा और कौरवों का कल्याण होगा ॥ १६ ॥

ते चेदभिनिवेक्ष्यन्ते नाऽभ्युपेष्यन्ति मे वचः ।
कुरवो युद्धमेवाऽत्र घोरं कर्म भविष्यति ॥ १७ ॥

यदि कौरव आवेश में आकर मेरे वचन को नहीं मानेंगे-तो तुम समझ लो, कि फिर महा भयानक घमासान युद्ध होगा ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्मिन्युद्धे भीमसेन त्वयि भारः समाहितः ।
धूरर्जुनेन धार्या स्याद्वोढव्य इतरो जनः ॥ १८ ॥

हे भीमसेन ! इस युद्ध का सम्पूर्ण सारा भार तुमको सम्भालना पड़ेगा । इस की धुर का धारण करने वाला अर्जुन होगा अर्थात् तुम रथ और अर्जुन अश्व के समान होगे एवं तुम अन्य बीरों को उसमें लद २ कर ले जाने वाले माने जावोगे ॥ १८ ॥

अहं हि यन्ता बीभत्सोर्भविता संयुगे सति ।
धनञ्जयस्यैष कामो नहि युद्धं न कामये ॥ १९ ॥

जब युद्ध का आरम्भ हो जावेगा, तब मैं अर्जुन का सारथि बनूंगा, क्योंकि अर्जुन की अभिलाषा ऐसी ही है, इससे तुम समझ लो, कि मैं युद्ध को अनुचित रीति से टलाना नहीं चाहता हूं ॥ १९ ॥

तस्मादाशङ्कमानोऽहं वृकोदर मतिं तव ।
गदतः क्लीबया वाचा तेजस्ते समदीदिपम् ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि
कृष्णवाक्ये सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

हे वृकोदर ! तुमको भी करुणापूर्ण कमजोर वाणी बोलते देख कर मुझे तुम्हारे विचार पर शंका हो गई, इससे मैंने तुम्हारे तेज को अपने कथन से उद्दीप्त किया है ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में कृष्ण वाक्य का सतहत्तरवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अठहत्तरवां अध्याय

अर्जुन उवाच--

उक्तं युधिष्ठिरेणैव यावद्वाच्यं जनार्दन ।
तव वाक्यं तु मे श्रुत्वा प्रति भाति परन्तप ॥ १ ॥

अर्जुन कहने लगे --हे परन्तप ! जनार्दन ! जो कुछ कहने की बात थी, वह तो महाराज युधिष्ठिर कह चुके, परन्तु तुम्हारे वाक्य सुन कर मुझे ऐसा प्रतीत होता है ॥ १ ॥

नैव प्रशममत्र त्वं मन्यसे सुकरं प्रभो ।
लोभाद्वा धृतराष्ट्रस्य दैन्याद्वा समुपस्थितात् ॥ २ ॥

प्रभो ! राजा धृतराष्ट्र के लोभ और हमारी दयालुता से आप सन्धि का होना सुलभ नहीं देख रहे हो ॥ २ ॥

अफलं मन्यसे वापि पुरुषस्य पराक्रमम् ।
न चांऽतरेण कर्माणि पौरुषेण बलोदयः ॥ ३ ॥

आप दैव के विपरीत होने पर पुरुष के पराक्रम को निष्फल मानते हो और बिना पुरुषार्थ के कोई कर्म या बल का प्रकाश भी नहीं हो सकता है ॥ ३ ॥

तदिदं भाषितं वाक्यं तथा च न तथैव तत् ।
न चैतदेवं द्रष्टव्यमसाध्यमपि किंचन ॥ ४ ॥

आपने जो कुछ यह कहा है—यह भी ज्यों का त्यों हो जावे, यह भी निश्चित नहीं है तथा यह भी नहीं समझना, कि कोई काम भी संसार में दुष्कर है ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किञ्चैतन्मन्यसे कृच्छ्रमस्माकमवसादकम् ।
कुर्वंति तेषां कर्माणि येषां नास्ति फलोदयः ॥ ५ ॥

यदि आप युद्ध को हमारे लिए हानिकारक और संकट-प्रद समझते हो, तो जिनके पुरुषार्थ का उदय नहीं है, उनके अन्य कर्म भी निष्फल हो जाते हैं ॥ ५ ॥

सम्पाद्यमानं सम्यक्च स्यात्कर्म सफलं प्रभो ।
स तथा कृष्ण वर्तस्व यथा शर्म भवेत्परैः ॥ ६ ॥

प्रभो ! यदि किसी कर्म को उचित युक्ति के साथ सम्पादित किया जावे, तो वह सफल भी हो सकता है। हे कृष्ण ! अब आप ऐसा करें, जिससे प्रतिपक्षियों के सन्मुख हमको कल्याण की प्राप्ति होवे ॥ ६ ॥

पाण्डवानां कुरूणां च भवान्नः प्रथमः सुहृत् ।
सुराणामसुराणां च यथा वीर प्रजापतिः ॥ ७ ॥

हे वीर ! आप पाण्डव और कौरवों के सदा से सर्व श्रेष्ठ हितकारी हो, जैसे सुर और असुरों के प्रजापति हित करते रहते हैं ॥७॥

कुरूणां पाण्डवानां च प्रतिपत्स्व निरामयम् ।
अस्मद्धितमनुष्ठानं मन्ये तव न दुष्करम् ॥ ८ ॥

हे भगवान् ! आप कौरव और पाण्डवों के कल्याण का प्रयत्न करो। मेरी राय में हमारा हित करना आपके लिए कोई दुष्कर नहीं है ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवं च कार्यतामेति कार्यं तव जनार्दन ।
गमनादेवमेव त्वं करिष्यसि जनार्दन ॥ ९ ॥

हे जनार्दन ! आपने जो ढङ्ग सोचा है—उसके व्यवहार में लाने से शीघ्र कार्य सफल हो जावेगा। आपके वहां चले जाते ही सिद्धि अवश्य होगी ॥९॥

चिकीर्षितमथाऽन्यत्तो तस्मिन्वीर दुरात्मनि ।
भविष्यति च तत्सर्वं यथा तव चिकीर्षितम् ॥ १० ॥
शर्म तैः सहः वा नोऽस्तु तव वा यच्चिकीर्षितम् ।
विचार्यमाणो यः कामस्तव कृष्ण स नो गुरुः ॥

हे वीर ! दुरात्मा दुर्योधन के विषय में जो कुछ आप करना चाहते हैं—वह जो २ आपके करने की इच्छा है—वह सब कुछ हो जावेगा। हमारा दुर्योधनादि के साथ या तो सन्धि हो जावेगी या जो इनके अनन्तर आप युद्ध करना चाहते हैं—वह होगा। हे कृष्ण ! आपका विचार ही हम सब का मार्ग प्रदर्शक होगा॥१०॥

न स नाऽर्हति दुष्टात्मा वधं ससुतबान्धवः ॥ ११ ॥
येन धर्मसुते दृष्टा न सा श्रीरुपमर्षिता ।

यह दुष्टात्मा दुर्योधन, अपने बन्धु-बान्धव और पुत्रों के साथ अवश्य वध को प्राप्त होगा, जिसने धर्मराज की राज्यलक्ष्मी से डाह किया है ॥११॥

यच्चाऽप्यपश्यतोपायं धर्मिष्ठं मधुसूदन ॥ १२ ॥
उपायेन नृशंसेन हृता दुर्द्यूतदेविना ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे मधुसूदन ! जब दुष्ट दुर्योधन ने उस राज्यलक्ष्मी के छीनने का कोई उचित उपाय नहीं देखा, तो अधम उपाय कपट के द्यूत से उसका अपहरण कर लिया ॥१२॥

कथं हि पुरुषो जातः क्षत्रियेषु धनुर्धरः ॥ १३ ॥
समाहूतो निवर्तेत प्राणत्यागेऽप्युपस्थिते ।

कौन क्षत्रियों में ऐसा धनुर्धर वीर होगा, जो आह्वान करने पर पीछे हट जाय—चाहे उससे प्राण-संकट ही क्यों न उपस्थित हो जावे ॥१३॥

अधर्मेण जितान्दृष्ट्वा वने प्रव्रजितांस्तथा ॥ १४ ॥
बध्यतां मम वार्ष्णेय निर्गतोऽसौ सुयोधनः ।

हे वृष्णिवंशोत्पन्न ! जब उसने हमको अधर्म से जीता और वन को भेज दिया—दुष्ट दुर्योधन उसी दिन से मेरे मारने के योग्य बन गया ॥१४॥

क्रिया कथं च मुख्या स्यान्मृदुना चेतरेण वा ॥ १५॥
अथवा मन्यसे ज्यायान्वधस्तेषामनन्तरम् ।
तदेव क्रियतामाशु न विचार्यमतस्त्वया ॥ १६ ॥

अब आप बताइये, कि सन्धि करना उत्तम है या युद्ध करना अच्छा है। क्या आप उनका शीघ्र से शीघ्र वध हो जाना ही उत्तम समझते हो। आपके विचार में जो आवे-आप शीघ्र कर डालें- इसमें विचार की कोई आवश्यकता नहीं है ॥१५-१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जानासि हि यथैतेन द्रौपदी पापबुद्धिना ।
परिक्लिष्टा समामध्ये तच्च तस्योपमर्षितम् ॥ १७ ॥

आप स्वयं जानते हैं—जिस तरह इस पापी दुर्योधन ने द्रौपदी का अपमान किया और हमने वह सब कुछ सह लिया था ॥१७॥

स नाम सम्यग्वर्तेत पांडवेष्विति माधव ।
न मे सञ्जायते बुद्धिर्बीजमुप्तमिवोषरे ॥ १८ ॥

हे माधव ! दुर्योधन अब हम लोगों के साथ न्याय का व्यवहार करेगा—यह आशा करना ऊषर में बीज बोने के सदृश निष्फल है । मेरी तो बुद्धि में यह आता नहीं, कि वह सन्धि के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगा ॥१८॥

तस्माद्यन्मन्यसे युक्तं पांडवानां हितं च यत् ।
तथाऽऽशु कुरु वार्ष्णेय यन्नः कार्यमनन्तरम् ॥१९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योग-पर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णवाक्येऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः

हे कृष्ण ! इसलिए आप जो पाण्डवों के हित के लिए उचित समझें और जो हमको शीघ्र करना चाहिए, वह बताओ और आप भी अपना कार्य शीघ्र सम्पादित करो. ॥१९॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में श्रीकृष्ण वाक्य का अठहत्तरवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनासीवां अध्याय

श्रीभगवानुवाच—

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव ।
पाण्डवानां कुरूणां च प्रतिपत्स्ये निरामयम् ॥१॥
सर्वं त्विदं ममाऽऽयत्तं बीभत्सो कर्मणोर्द्वयोः ।

श्रीकृष्ण बोले—हे महाबाहो ! अर्जुन ! तुम जो कह रहे हो। वही होगा। मैं पाण्डव और कौरव दोनों के ही कल्याण का प्रयत्न करूंगा। हे पाण्डु-पुत्र ! इस समय सन्धि और युद्ध ये दोनों महान् कर्म मेरे अधीन हैं ॥ १ ॥

क्षेत्रं हि रसवच्छुद्धं कर्मणैवोपपादितम् ॥२॥
ऋते वर्षान्न कौन्तेय जातु निर्वर्तयेत्फलम् ।

हे कौन्तेय ! परन्तु जो क्षेत्र जल से परिपूर्ण, शुद्ध और हल जोत कर उत्तम भी बना लिया है, उसमें भी वर्षा के विना कभी फल उत्पन्न नहीं हो सकते हैं ॥ २ ॥

तत्र वै पौरुषं ब्रूयुरासेकं यत्र कारितम् ॥३॥
तव चापि ध्रुवं पश्येच्छोषणं दैवकारितम् ।

इस विषय में कोई यह कह सकता है, कि क्षेत्र में कृत्रिम जल सींचकर भी फल उत्पन्न किया जा सकता है, इसी तरह दैव को छोड़ अपने अधीन सन्धि और विग्रह किए जा सकते हैं, परन्तु जल सींचने पर भी दैव की प्रतिकूलता से जल व्यर्थ ही सूखता चला जाता है ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदिदं निश्चितं बुद्ध्या पूर्वैरपि महात्मभिः ॥४॥
दैवे च मानुषे चैव संयुक्तं लोककारणम् ।

इन कारणों को विचार कर पूर्वज महात्माओं ने निश्चित किया है, कि संसार में किसी कार्य की सिद्धि उद्योग और दैव दोनों के अधीन है ॥ ४ ॥

अहं हि तत्करिष्यामि परं पुरुषकारतः ॥५॥
देवं तु न मया शक्यं कर्म कर्तुं कथञ्चन ।

जितना मनुष्य कर सकता है, मैं उतना प्रयत्न अवश्य करूंगा, परन्तु मैं दैव के करने योग्य कार्य को तो किसी प्रकार भी नहीं कर सकता हूं ॥ ५ ॥

स हि धर्मं च लोकं च त्यक्त्वा चरति दुर्मतिः ॥६॥
न हि सन्तप्यते तेन तथारूपेण कर्मणा ।

राजा दुर्योधन धर्म और लौकिक नीति को छोड़ कर चलता है और उस तरह का आचरण करते हुए उसको कुछ सन्ताप या लज्जा नहीं होती है ॥ ६ ॥

तथापि बुद्धिं पापिष्ठां वर्धयंत्यस्य मन्त्रिणः ॥७॥
शकुनिः सूतपुत्रश्च भ्राता दुःशासनस्तथा ।

एक तो वह स्वयं पापी हैं, फिर उसके मन्त्री शकुनि और सूत-पुत्र कर्ण तथा उसका भाई दुःशासन उसकी इस पाप-बुद्धि को और बढ़ाते रहते हैं ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स हि त्यागेन राज्यस्य न शमं समुपैष्यति ॥८॥
अन्तरेण वधं पार्थ सानुबन्धः सुयोधनः ।

हे पार्थ ! अपने साथियों के साथ बिना मृत्यु प्राप्त किए राज्य का परित्याग करने से राजा दुर्योधन को सन्तोष नहीं हो सकता है ॥ ८ ॥

न चापि प्रणिपातेन त्यक्तुमिच्छति धर्मराट् ॥
याच्यमानश्च राज्यं स न प्रदास्यति दुर्मतिः ॥९॥

धर्मराज भी अनुनय विनय से राज्य नहीं छोड़ना चाहते और वह दुर्मति दुर्योधन भी सीधी तरह राज्य मांगने पर देने को तय्यार नहीं है ॥ ९ ॥

न तु मन्ये स तद्वाच्यो यद्युधिष्ठिरशासनम् ।
उक्तं प्रयोजनं यत्तु धर्मराजेन भारत ॥१०॥

हे भारत ! जो राजा युधिष्ठिर का कथन या प्रयोजन है, कि किसी प्रकार पांच गावों पर ही सन्धि कर ली जावे, यह बात दुर्योधन से कहने को भी जी नहीं चाहता ॥ १० ॥

तथा पापस्तु तत्सर्वं न करिष्यति कौरवः ।
तस्मिंश्चाऽक्रियमाणेऽसौ लोके वध्यो भविष्यति ॥११॥

राजा दुर्योधन बड़ा दुष्ट है, वह इन सब बातों को कभी नहीं मानने वाला है और इन बातों के न मानने से वह अवश्य इस संसार में मार देने के योग्य है ॥ ११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मम चापि स वध्यो हि जगतश्चापि भारत ।
येन कौमारके यूयं सर्वे विप्रकृताः सदा ॥१२॥

हे भारत ! दुर्योधन मेरे द्वारा मारा जाना उचित है या उसको जगत् में कोई भी मारने का अधिकार रखता है, क्योंकि उसने बचपन में ही तुम्हारे साथ बड़े २ अपकार किए हैं ॥ १२ ॥

विप्रलुप्तं च वो राज्यं नृशंसेन दुरात्मना ।
न चोपशाम्यते पापः श्रियं दृष्ट्वा युधिष्ठिरे ॥१३॥

उस नीच दुरात्मा दुर्योधन ने तुम्हारा राज्य छीन लिया है । राजा युधिष्ठिर को राजसिंहासन पर देख कर उस पापी को कभी चैन नहीं पड़ सकता है ॥ १३ ॥

असकृच्चाऽप्यहं तेन त्वत्कृते पार्थ भेदितः ।
न मया तद्गृहीतं च पापं तस्य चिकीर्षितम् ॥१४॥

हे अर्जुन ! उस दुष्ट ने कई बार मुझे तुमसे फोड़ लेना चाहा, परन्तु मैंने उसकी इस पाप इच्छा के पूर्ण होने का कभी समय नहीं दिया ॥ १४ ॥

जानासि हि महाबाहो त्वमप्यस्य परं मतम् ।
प्रियं चिकीर्षमाणं च धर्मराजस्य मामपि ॥१५॥

हे महाबाहो ! दुर्योधन के अभिप्राय को भी तुम जानते हो और मुझे भी तुम जानते हो, कि मैं धर्मराज का कितना हित करना चाहता हूं ॥ १५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सञ्जानंस्तस्य चाऽऽत्मानं मम चैव परं मतम् ।
अजानन्निव मां कस्मादर्जुनाऽद्याऽभिशङ्कसे ॥१६॥

हे अर्जुन ! तुम दुर्योधन के स्वरूप और मेरे स्वभाव को जान कर भी आज कैसे अजान की तरह मुझ पर शङ्का कर रहे हो ॥ १६ ॥

यच्चापि परमं दिव्यं तच्चाऽप्यनुगतं त्वया ।
विधानं विहितं पार्थ कथं शर्म भवेत्परैः ॥१७॥

हे पार्थ ! इस विषय में जो दैव का विधान है, वह भी तुम्हें स्पष्ट विदित हो रहा है, फिर तुम को यह ज्ञात रहना चाहिए, कि विरोधियों से कैसे सन्धि हो सकती है ॥ १७ ॥

यत्तु वाचा मया शक्यं कर्मणा वापि पाण्डव ।
करिष्ये तदहं पार्थ न त्वाशंसे शमं परैः ॥१८॥

हे पाण्डुपुत्र ! अर्जुन ! मैं वाणी और कर्म से जो कुछ कर सकता हूं-करूंगा, परन्तु यह मेरा दृढ़ विश्वास है, कि मैं दुर्योधन के साथ सन्धि करने में सफल नहीं हो सकूंगा ॥ १८ ॥

कथं गोहरणे ह्युक्तो नैतच्छर्म तथा हितम् ।
याच्यमानो हि भीष्मेण संवत्सरगतेऽध्वनि ॥१९॥

जब गत वर्ष दुर्योधन, राजा विराट की गायों के अपहरण के लिए पहुंचा था, तब क्या मार्ग में भीष्म ने सन्धि के लिए उसको बहुत कुछ नहीं समझाया ॥ १९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदैव ते पराभूता यदा संकल्पितास्त्वया ।
लवशः क्षणशश्चापि न च तुष्टः सुयोधनः ॥२०॥

तुम जब उसके पराजय करने का विचार कर लोगे, उसे उसी क्षण पराजित समझो, परन्तु तुम एक मिनट या सैकेण्ड के लिए भी यह चाहो, कि वह सन्धि के लिए तय्यार हो जावे-यह नहीं हो सकता है ॥ २० ॥

सर्वथा तु मया कार्यं धर्मराजस्य शासनम् ।
विभाव्यं तस्य भूयश्च कर्म पापं दुरात्मनः ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥७१॥

अब तो मुझे धर्मराज की आज्ञा पूरी करनी है, उस दुष्ट के पाप कर्मों की आलोचना तो फिर कभी होती रहेगी ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में श्रीकृष्ण वाक्य का उनासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्सीवां अध्याय

नकुल उवाच—

उक्तं बहुविधं वाक्यं धर्मराजेन माधव ।
धर्मज्ञेन वदान्येन श्रुतं चैव हि तत्त्वया ॥१॥

नकुल कहने लगे—हे माधव ! धर्म के जानने वाले, उदार, धर्मराज युधिष्ठिर ने आप से बहुत सी बातें कही और आपने वे सब सुन ली हैं ॥ १ ॥

मतमाज्ञाय राज्ञश्च भीमसेनेन माधव ।
संशमो बाहुवीर्यं च ख्यापितं माधवाऽऽत्मनः ॥२॥

हे भगवन् ! राजा युधिष्ठिर के मत को जान कर भीमसेन ने भी सन्धि और विग्रह को लक्ष्य करके बहुत कुछ अपने पराक्रम के विषय में कहा है ॥ २ ॥

तथैव फाल्गुनेनाऽपि यदुक्तं तत्त्वया श्रुतम् ।
आत्मनश्च मतं वीर कथितं भवताऽसकृत् ॥३॥

इसी तरह अर्जुन ने भी बहुत कुछ कहा और आपने सब कुछ सुन लिया । हे वीर ! आपने अपना मत भी बार २ सब के सामने रख दिया ॥ ३ ॥

सर्वमेतदतिक्रम्य श्रुत्वा परमतं भवान् ।
यत्प्राप्तकालं मन्येथास्तत्कुर्याः पुरुषोत्तम ॥४॥

हे पुरुषोत्तम ! आप अन्य के मतों को सुन कर और उन सब पर विचार करके जो कुछ समयानुसार उचित समझो, वह करो ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्मिंस्तस्मिन्निमित्ते हि मतं भवति केशव ।
प्राप्तकालं मनुष्येण क्षमं कार्यमरिन्दम ॥५॥

हे अरिनाशक ! केशव ! अपने २ भिन्न २ कारणों से मनुष्यों के मत भी भिन्न २ हुआ करते हैं । जो मनुष्य, समय के अनुसार कर्म करता है, वही अपने कार्य में सफल होता हैं ॥ ५ ॥

अन्यथा चिन्तितो ह्यर्थः पुनर्भवति सोऽन्यथा ।
अनित्यमतयो लोके नराः पुरुषसत्तम ॥६॥

हे पुरुषसत्तम ! आज किसी कार्य का अन्य रीति से निश्चय किया है और कल वह अन्य रीति से करना उचित प्रतीत होने लगता है । समय के भेद से मनुष्य के भिन्न २ विचार होते हैं ॥ ६ ॥

अन्यथा बुद्धयो ह्यासन्नस्मासु वनवासिषु ।
अदृश्येष्वन्यथा कृष्ण दृश्येषु पुनरन्यथा ॥७॥

हे कृष्ण ! जब हम वन में थे, उस समय अन्य ढङ्ग से कार्य करना चाहते थे और जब छुप कर विराट भवन में निवास करते थे, उस समय कार्य करने का अन्य ही प्रकार था एवं अब प्रकट होने पर हम अन्य प्रकार से कार्य करना चाहते हैं ॥ ७ ॥

अस्माकमपि वार्ष्णेय वने विचरतां तदा ।
न तथा प्रणयो राज्ये यथा सम्प्रति वर्तते ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निवृत्तवनवासान्नः श्रुत्वा वीर समागताः ।
अक्षौहिण्यो हि सप्तैमास्त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥९॥

हे वृष्णिवंशोत्पन्न वीर, जनार्दन ! जब हम वन में घूमते थे, उस समय हमारा राज्य में इतना प्रेम नहीं था, जितना वनवास से लौट कर आप की कृपा से इकट्ठी हुई, इस सात अक्षौहिणी सेना को सुनकर हो रहा है ॥ ८-९ ॥

इमान्हि पुरुषव्याघ्रानचिन्त्यबलपौरुषान् ।
आत्तशस्त्रान्रणे दृष्ट्वा न व्यथेदिह कः पुमान् ॥१०॥

इन शस्त्र धारी, महाबल और पुरुषार्थ से सुशोभित, इन वीरों को देखकर किस विरोधी के चित्त में भय उत्पन्न नहीं होगा।

स भवान्कुरुमध्ये तं सान्त्वपूर्वं भयोत्तरम् ।
ब्रूयाद्वाक्यं यथा मन्दो न व्यथेत सुयोधनः ॥११॥

अब आप कौरवों के मध्य में शान्ति के साथ भय-जनक वाक्य इस ढंग से कहना, जिससे वह मूर्ख दुर्योधन भड़क न उठे ॥ ११ ॥

युधिष्ठिरं भीमसेनं वीभत्सुं चाऽपराजितम् ।
सहदेवं च मां चैव त्वां च रामं च केशव ॥१२॥
सात्यकिं च महावीर्यं विराटं च सहात्मजम् ।
द्रुपदं च सहामात्यं धृष्टद्युम्नं च माधव ॥१३॥
काशिराजं च विक्रान्तं धृष्टकेतुं च चेदिपम् ।
मांसशोणितभृन्मर्त्यः प्रतियुद्ध्येत को युधि ॥१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे माधव ! युधिष्ठिर, भीमसेन, विजयी अर्जुन, सहदेव, मुझ नकुल, आप, बलराम, महाबली सात्यकि, विराटराज, उनका पुत्र उत्तर, मन्त्रियों सहित द्रुपद, धृष्टद्युम्न, महापराक्रमी काशिराज, चेदिराज धृष्टकेतु, इन वीरों से कौन मांस शोणित से भरपूर मनुष्य है, जो युद्ध कर सकता है ॥ १२-१४ ॥

स भवान्गमनादेव साधयिष्यत्यसंशयम् ।
इष्टमर्थं महाबाहो धर्मराजस्य केवलम् ॥१५॥

हे महाबाहो ! आप हस्तिनापुर जाते ही राजा युधिष्ठिर के अभीष्ट कार्य को सिद्ध कर लेंगे-यह हमको निश्चय है ॥ १५ ॥

विदुरश्चैव भीष्मश्च द्रोणश्च सहबाह्लिकः ।
श्रेयः समर्था विज्ञातुमुच्यमानास्त्वयाऽनघ ॥१६॥

हे अनघ ! विदुर, भीष्म, द्रोण, बाह्लिक आदि से जब आप राजा युधिष्ठिर के कल्याण की बात कहोगे-तो वे उसका अवश्य समर्थन करेंगे ॥ १६ ॥

ते चैनमनुनेष्यन्ति धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ।
तं च पापसमाचारं सहामात्यं सुयोधनम् ॥१७॥

ये लोग राजा धृतराष्ट्र और मन्त्रियों सहित दुराचारी दुर्योधन को अवश्य समझावेंगे ॥ १७ ॥

श्रोता चाऽर्थस्य विदुरस्त्वं च वक्ता जनार्दन ।
कमिवार्थं निवर्तन्तं स्थापयेतां न वर्त्मनि ॥१८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योग-पर्वणि भगवद्यानपर्वणि नकुलवाक्येऽशीतितमोऽध्यायः

हे जनार्दन ! आप जिस विषय का प्रतिपादन करें और विदुर आदि जिसके सुनने वाले हों, उस कार्य का सीधे मार्ग पर आना कौन कठिन बात है ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में नकुल के वाक्य का अस्सीवां अध्याय पूरा हुआ ।

इक्यासीवां अध्याय

सहदेव उवाच—

यदेतत्कथितं राज्ञा धर्म एष सनातनः ।
यथा च युद्धमेव स्यात्तथा कार्यमरिन्दम ॥१॥

सहदेव कहने लगा-हे अरिन्दम ! जो कुछ राजा युधिष्ठिर ने कहा है, वह सनातन क्षत्रिय धर्म है, तो भी आप इस ढंग से बात-चीत करना, जिससे युद्ध का प्रारम्भ होवे ॥ १ ॥

यदि प्रशममिच्छेयुः कुरवः पाण्डवैः सह ।
तथापि युद्धं दाशार्ह योजयेथाः सहैव तैः ॥२॥

हे दशार्ह-देश-श्रेष्ठ ! जो पाण्डवों के साथ कौरव सन्धि करने को उद्यत भी हो जावें, तो भी आप इस तरह का ढङ्ग स्वीकार करना, जिससे युद्ध की घोषणा हो जावे ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कथं नु दृष्ट्वा पाञ्चालीं तथा कृष्ण सभागताम् ।
अवधेन प्रशाम्येत मम मन्युः सुयोधने ॥३॥

हे कृष्ण ! द्रौपदी को उस तरह नग्न सभा में देखने पर दुर्योधन पर बढ़ा हुआ मेरा कोप विना उसके मारे कैसे शान्त हो सकता है ॥ ३ ॥

यदि भीमार्जुनौ कृष्ण धर्मराजश्च धार्मिकः ।
धर्ममुत्सृज्य तेनाऽहं योद्धुमिच्छामि संयुगे ॥४॥

हे कृष्ण ! यदि भीम, अर्जुन, धर्मराज युधिष्ठिर धार्मिक रहेंगे, तो भी मैं अकेला ही धर्म छोड़ कर युद्ध में शत्रुओं से भिड़ जाऊँगा ॥ ४ ॥

सात्यकिरुवाच–

सत्यमाह महाबाहो सहदेवो महामतिः ।
दुर्योधनवधे शान्तिस्तस्य कोपस्य मे भवेत् ॥५॥

सात्यकि कहने लगे—हे महाबाहो ! कृष्ण ! महा बुद्धिमान् सहदेव ठीक तो कह रहे हैं । मेरे कोप की शांति भी दुर्योधन के वध हो जाने पर ही होगी ॥ ५ ॥

न जानासि यथा दृष्ट्वा चीराजिनधरान्वने ।
तवापि मन्युरुद्भूतो दुःखितान्प्रेक्ष्य पाण्डवान् ॥६॥

वन में फटे पुराने वस्त्र पहने हुए दुःखी पाण्डवों को देखकर आपको भी क्रोध आ गया था-यह सब कुछ आपको याद होगा ॥६॥

तस्मान्माद्रीसुतः शूरो यदाह रणकर्कशः ।
वचनं सर्वयोधानां तन्मतं पुरुषोत्तम ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे पुरुषोत्तम ! रण मस्त, माद्री पुत्र शूरवीर सहदेव ने इन सब बातों को सोच कर सब योद्धाओं के सन्मुख जो वचन कहा है-वही मेरा मत है। ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं वदति वाक्यं तु युयुधाने महामतौ ।
सुभीमः सिंहनादोऽभूद्योधानां तत्र सर्वशः ॥८॥

वैशम्पायन बोले—इस प्रकार महामति सात्यकि के कहने पर सब ओर से योद्धाओं का सिंहनाद होने लगा ॥ ८ ॥

सर्वे हि सर्वशो वीरास्तद्वचः प्रत्यपूजयन् ।
साधु साध्विति शैनेयं हर्षयन्तो युयुत्सवः ॥९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वाणि सहदेवसात्यकिवाक्ये एकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

सब ओर से सारे वीरों ने सात्यकि के वचन का अनुमोदन किया और युद्ध के अभिलाषी हर्षोन्मत्त, उन सारे वीरों ने शिनि-पुत्र सात्यकि को बड़ा साधुवाद दिया ॥ ९ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में सहदेव और सात्यकि के वाक्य का इक्यासीवां अध्याय पूरा हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बयासीवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा धर्मार्थसहितं हितम् ।
कृष्णा दाशार्हमासीनमब्रवीच्छोककर्शिता ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! राजा युधिष्ठिर के धर्मयुक्त वचन सुन कर शोक से व्याकुल द्रौपदी, दशार्ह देशोत्पन्न बैठे हुए श्रीकृष्ण से कहने लगी ॥ १ ॥

सुता द्रुपदराजस्य स्वसितायतमूर्धजा ।
सम्पूज्य सहदेवं च सात्यकिं च महारथम् ॥२॥
भीमसेनं च संशान्तं दृष्ट्वा परमदुर्मनाः ।
अश्रुपूर्णेक्षणा वाक्यमुवाचेदं मनस्विनी ॥३॥

द्रुपदराज की पुत्री, लम्बे और काले बालों से सुन्दर, मनस्विनी, द्रौपदी ने सहदेव और महारथी सात्यकि के—वाक्यों का आदर किया। वह भीमसेन को सन्धि का अनुमोदन करता हुआ देख कर बड़ी कातर हुई और रोती रोती यह वाक्य कहने लगी ॥२—३॥

विदितं ते महाबाहो धर्मज्ञ मधुसूदन ।
यथा निकृतिमास्थाय भ्रंशिताः पाण्डवाः सुखात् ।४।
धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सामात्येन जनार्दन ।

हे महाबली ! धर्मात्मन् ! मधुसूदन ! जिस तरह छल का आश्रय लेकर मन्त्रियों सहित धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन ने पाण्डवों को सुख से वञ्चित किया है, वह सब कुछ आपको ज्ञात है ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथा च सञ्जयो राजा मन्त्रं रहसि श्रावितः ॥५॥
युधिष्ठिरस्य दाशार्ह तच्चापि विदितं तव ।
यथोक्तः सञ्जयश्चैव तच्च सर्वं श्रुतं त्वया ॥६॥
पञ्च नस्तात दीयन्तां ग्रामा इति महाद्युते ।
अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम् ॥७॥
अवसानं महाबाहो कश्चिदेकं च पञ्चमम् ।
इति दुर्योधनो वाच्यः सुहृदश्चाऽस्य केशव ॥८॥
न चापि ह्यकरोद्वाक्यं श्रुत्वा कृष्ण सुयोधनः ।
युधिष्ठिरस्य दाशार्ह श्रीमतः सन्धिमिच्छतः ॥९॥

हे दाशार्हदेशोत्पन्न ! राजा युधिष्ठिर ने एकान्त में संजय को ले जाकर जो अपना सन्धि का प्रस्ताव सुनाया था, कि हमको अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत और इनमें अन्य कोई भी एक और ग्राम मिला कर पांच गांव दे दो—यह दुर्योधन और उसके मित्रों से कहना। सन्धि के अभिलाषी राजा युधिष्ठिर के इस प्रस्ताव को भी दुर्योधन ने नहीं माना—हे महाद्युते ! श्रीकृष्ण ! यह सब कुछ आपको विदित ही है ॥५-९॥

अप्रदानेन राज्यस्य यदि कृष्ण सुयोधनः ।
सन्धिमिच्छेन्न कर्तव्यं तत्र गत्वा कथञ्चन ॥१०॥

हे कृष्ण ! यदि हमारे सारे राज्य के विना लौटाये पांच ग्राम आदि देकर दुर्योधन सन्धि करना चाहे, तो आप वहां जाकर यह कभी स्वीकार मत करना ॥१०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्ष्यन्ति हि महाबाहो पाण्डवाः सृञ्जयैः सह ।
धार्तराष्ट्रबलं घोरं क्रुद्धं प्रतिसमासितुम् ॥११॥

हे महाबाहो ! सृञ्जय वंशी क्षत्रियों के साथ पाण्डव, धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन की क्रुद्ध हुई घोर सेना के साथ युद्ध करने में समर्थ हो सकेंगे-इसमें सन्देह नहीं है ॥११॥

नहि साम्ना न दानेन शक्योऽर्थस्तेषु कश्चन ।
तस्मात्तेषु न कर्तव्या कृपा ते मधुसूदन ॥१२॥

साम और दान से कौरवों से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। हे मधुसूदन ! इन दुष्टों पर तो किसी प्रकार दया दिखानी ही नहीं चाहिए ॥१२॥

साम्ना दानेन वा कृष्ण ये न शाम्यन्ति शत्रवः ।
योक्तव्यस्तेषु दण्डः स्याज्जीवितं परिरक्षता ॥१३

हे कृष्ण ! साम और दान अर्थात समझाने और कुछ भाग प्रदान कर देने पर भी जब शत्रु चुप न हो—तो फिर अपना जीवन सुरक्षित रखने के लिए उस शत्रु के प्रति दण्ड का ही प्रयोग करना उचित है ॥१३॥

तस्मात्तेषु महादण्डः क्षेप्तव्यः क्षिप्रमच्युत ।
त्वया चैव महाबाहो पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ॥१४॥

हे महाबाहो ! अच्युत ! यह सब कुछ समझ कर पाण्डवों और सृञ्जयों को साथ लेकर आपको कौरवों में बड़े से बड़े दण्ड का प्रयोग करना चाहिए ॥१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एतत्समर्थं पार्थानां तव चैव यशस्करम् ।
क्रियमाणं भवेत्कृष्ण क्षत्रस्य च सुखावहम् ॥१५॥

हे कृष्ण ! दण्ड का प्रयोग करना ही पाण्डवों के स्वरूप के अनुरूप और आप के यश का बढ़ाने वाला है। इस समय इसका प्रयोग करना ही सारे क्षत्रिय समाज को सुखकारी है ॥१५॥

क्षत्रियेण हि हन्तव्यः क्षत्रियो लोभमास्थितः ।
अक्षत्रियो वा दाशार्ह स्वधर्ममनुतिष्ठता ॥१६॥

हे दाशार्ह ! जो क्षत्रिय या अन्य कोई भी वर्ण, लोभ में फंस गया है, उसको कर्तव्य-परायण, सच्चे क्षत्रिय द्वारा अवश्य मार देना चाहिए ॥१६॥

अन्यत्र ब्राह्मणात्तात सर्वपापेष्ववस्थितात् ।
गुरुर्हि सर्ववर्णानां ब्राह्मणः प्रसृताग्रभुक् ॥१७॥

हे तात ! यदि कोई सच्चा ब्राह्मण है और भूल से लोभ आदि किसी भी पाप में फंस गया है, तो उसका वध नहीं करना चाहिए, क्योंकि ब्राह्मण सब वर्णों का गुरू और पूज्य है, वह स्वयं अपने को पाप की कीच से निकाल लेगा ॥१७॥

यथाऽवध्ये वध्यमाने भवेद्दोषो जनार्दन ।
स वध्यस्याऽवधे दृष्ट इति धर्मविदो विदुः ॥१८॥

हे जनार्दन ! जैसे मारने के अयोग्य मनुष्य के मार देने पर पाप होता है, वैसे ही मारने योग्य के छोड़ देने पर पाप है। धर्म के जानने वाले मनुष्यों ने ऐसी व्यवस्था की है ॥१८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथा त्वां न स्पृशेदेष दोषः कृष्ण तथा कुरु ।
पाण्डवैः सह दाशार्हैः सृञ्जयैश्च ससैनिकैः ॥१९॥

हे कृष्ण ! पाण्डव, दाशार्ह, सेनासहित सृञ्जयों के साथ उपर्युक्त अधर्म आपका स्पर्श न करे, आप ऐसा ही उपाय करो ॥१९॥

पुनरुक्तं च वक्ष्यामि विश्रम्भेण जनार्दन ।
का तु सीमन्तिनी मादृक् पृथिव्यामस्ति केशव ॥२०॥

सुता द्रुपदराजस्य वेदिमध्यात्समुत्थिता ।
धृष्टद्युम्नस्य भगिनी तव कृष्ण प्रिया सखी ॥३१॥

आजमीढकुलं प्राप्ता स्नुषा पाण्डोर्महात्मनः ।
महिषी पाण्डुपुत्राणां पञ्चेन्द्रसमवर्चसाम् ॥२२॥

सुता मे पञ्चभिर्वीरैः पञ्च जाता महारथाः ।
अभिमन्युर्यथा कृष्ण तथा ते तव धर्मतः ॥२३॥

साऽहं केशग्रहं प्राप्ता परिक्लिष्टा सभां गता ।
पश्यतां पाण्डुपुत्राणां त्वयि जीवति केशव ॥२४॥

हे जनार्दन ! मुझे आप पर भरोसा है, इससे बार बार कहती हूं, कि मुझ जैसी कौन स्त्री पृथ्वी पर होगी, जो द्रुपद जैसे महापराक्रमी राजा की पुत्री, यज्ञ की वेदी से उत्पन्न धृष्टद्युम्न जैसे वीर की बहिन, तुम्हारी प्यारी सखी, अजमीढ़ वंश में विवाहित, महात्मा पाण्डु की पुत्रवधू, पांच इन्द्रों के तुल्य पाण्डवों की महिषी, मैंने पांच वीर पुत्र उत्पन्न किए, जो पांचों ही महारथी हैं और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपको अभिमन्यु के तुल्य प्रिय है, ऐसे पांच पुत्रों की माता होकर भी मैं राजसभा में अपमानित और क्लेशित की गई। मेरे बाल पकड़ कर खेंचे गए। हे कृष्ण! दुःख तो यह है, कि यह सब कुछ पाण्डवों के देखते देखते और आपके जीवत रहते हुए हुआ है ॥२०-२४॥

जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु पञ्चालेष्वथ वृष्णिषु।
दासीभूताऽस्मि पापानां सभामध्ये व्यवस्थिता ॥२५॥

मैं पाण्डव, पञ्चाल और वृष्णियों के जीवित रहने पर भी उन पापियों की दासी हो गई और मुझे सभा में खैंचकर लाया गया ॥२५॥

निरमर्षेष्वचेष्टेषु प्रेक्षमाणेषु पाण्डुषु।
पाहि मामिति गोविन्द मनसा चिन्तितोऽसि मे ॥२६॥

हे केशव! जिस समय क्रोध शून्य, चेष्टाहीन पाण्डव, इस सारे दृश्य को देख रहे थे, उस समय मैंने रक्षा के लिए आपका मन में ध्यान किया ॥२६॥

यत्र मां भगवान्राजा श्वशुरो वाक्यमब्रवीत्।
वरं वृणीष्व पाञ्चालि वरार्हाऽसि मता मम ॥२७॥

तब तेजस्वी मेरे श्वशुर राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे द्रौपदी! तू वर मांग, क्योंकि तू तो वर ग्रहण करने के योग्य है ॥२७॥

अदासाः पाण्डवाः सन्तु सरथाः सायुधा इति।
मयोक्ते यत्र निर्मुक्ता वनवासाय केशव ॥२८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे कृष्ण ! जब मैंने यह वर मांगा, कि पाण्डव, शस्त्र, रथ आदि के सहित स्वतन्त्र हो जावे, तो मेरे कहने पर वन गमन के लिए पाण्डवों को स्वतन्त्र कर दिया ॥२८॥

एवंविधानां दुःखानामभिज्ञोऽसि जनार्दन ।
त्रायस्व पुण्डरीकाक्ष सभर्तृज्ञातिबान्धवान् ॥२९॥

हे कमलनेत्र ! केशव ! तुम इन सारे क्लेशों के स्वयं ज्ञाता हो, अब आप बन्धु बान्धों के सहित हमारी रक्षा करो ॥२९॥

नन्वहं कृष्ण भीष्मस्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः ।
स्नुषा भवामि धर्मेण साऽहं दासी कृता बलात् ॥३०॥

हे कृष्ण ! मैं भीष्म और राजा धृतराष्ट्र इन दोनों की धर्म सम्बन्ध से पुत्रवधू थी, परन्तु इन्होंने भी मुझे बलपूर्वक दासी बनाया ॥३०॥

धिक्पार्थस्य धनुष्मत्तां भीमसेनस्य धिग्बलम् ।
यत्र दुर्योधनः कृष्ण मुहूर्तमपि जीवति ॥३१॥

अर्जुन के धनुषधारीपन को और भीम के बल को धिक्कार है, जब कि पापी दुर्योधन क्षण भर भी संसार में जीवित है ॥३१॥

यदि तेऽहमनुग्राह्या यदि तेऽस्ति कृपा मयि ।
धार्तराष्ट्रेषु वै कोपः सर्वः कृष्ण विधीयताम् ॥३२॥

हे कृष्ण ! यदि आप मुझे अनुग्रह करने के योग्य समझते हो और जो आपकी मुझ पर कृपा है, तो अपने इस कोप को धृतराष्ट्र के पुत्रों पर निकालो ॥३२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

इत्युक्त्वा मृदुसंहारं वृजिनाग्रं सुदर्शनम् ।
सुनीलमसितापाङ्गी सर्वगन्धाधिवासितम् ॥३३॥
सर्वलक्षणसम्पन्नं महाभुजगवर्चसम् ।
केशपक्षं वरारोहा गृह्य वामेन पाणिना ॥३४॥
पद्माक्षी पुण्डरीकाक्षमुपेत्य गजगामिनी ।
अश्रुपूर्णेक्षणा कृष्णा कृष्णं वचनमब्रवीत् ॥३५॥

वैशम्पायन बोले—हे अर्जुन ! कृष्ण नेत्र प्रान्तों से सुशोभित, कमल के समान नेत्र और हाथी के तुल्य गति वाली द्रौपदी इतना कहकर और अग्रभाग में कुटिल, सुन्दर, सब प्रकार की गन्ध से भरे हुए, साधारण शृङ्गार युक्त, नीलवर्ण वाले, सब लक्षणों से समन्वित, अजगर के समान काले और चमकीले, केशसमूह को बायें हाथ में लेकर रोती रोती भगवान् कृष्ण से कहने लगी ॥३३-३५॥

अयं ते पुण्डरीकाक्ष दुःशासनकरोद्धृतः ।
स्मर्तव्यः सर्वकार्येषु परेषां सन्धिमिच्छता ॥३६॥

हे पुण्डरीकाक्ष ! दुःशासन के हाथों से खैंचे हुए इस केशसमूह को आप, शत्रुओं के साथ सन्धि करने के समय याद रखना ॥३६॥

यदि भीमार्जुनौ कृष्ण कृपणौ सन्धिकामुकौ ।
पिता मे योत्स्यते वृद्धः सह पुत्रैर्महारथैः ॥३७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे कृष्ण ! यदि कातर हुए भीम और अर्जुन सन्धि की अभिलाषा करते हैं, तो करने दो-मेरा वृद्ध पिता अपने महारथी पुत्रों के साथ कौरवों से लड़ने को अवश्य तय्यार हैं ॥३७॥

पञ्च चैव महावीर्याः पुत्रा मे मधुसूदन ।
अभिमन्युं पुरस्कृत्य योत्स्यन्ते कुरुभिः सह ॥३८॥

हे मधुसूदन ! मेरे महा-शक्ति-शाली पांच पुत्र हैं—ये सब अभिमन्यु को साथ लेकर कौरवों से अवश्य युद्ध करेंगे ॥३८॥

दुःशासनभुजं श्यामं संछिन्नं पांसुगुंठितम् ।
यद्यहं तु न पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥३९॥

जब तक कटी हुई काली और मिट्टी में सनी हुई दुःशासन की भुजा को न देख लूँगी-तब तक मेरे चित्त को कैसे शान्ति हो सकती है ॥३९॥

त्रयोदश हि वर्षाणि प्रतीक्षन्त्या गतानि मे ।
विधाय हृदये मन्युं प्रदीप्तमिव पावकम् ॥४०॥
विदीर्यते मे हृदयं भीमवाक्शल्यपीडितम् ।
योऽयमद्य महाबाहुर्धर्ममेवाऽनुपश्यति ॥४१॥

मैंने आग की तरह जलते हुए अपने कोप को हृदय में रोक कर आज की प्रतीक्षा में ही तेरह वर्ष व्यतीत किए हैं। भीमसेन की वाणी के बाण से पीड़ित मेरा हृदय फटा जा रहा है, जो यह महाबली आज सन्धि के लिए धर्म की डींग मार रहा है ॥४०-४१॥

इत्युक्त्वा बाष्परुद्धेन कण्ठेनाऽऽयतलोचना ।
रुरोद कृष्णा सोत्कम्पं सस्वरं बाष्पगद्गदम् ॥४२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशाल नेत्रों वाली द्रौपदी, इतना कहकर आंसुओं से रुके हुए कण्ठ द्वारा, गद्गद वाणी से कांपती २ जोर से रोने लगी ॥ ४२ ॥

स्तनौ पीनायतश्रोणी सहितावभिवर्षति ।
द्रवीभूतमिवाऽत्युष्णं मुञ्चती वारि नेत्रजम् ॥४३॥

पुष्ट और विशाल नितम्बों वाली द्रौपदी, अपने आंसुओं से एक दूसरे से सटे हुए स्तनों को सींच रही थी। यह पिघल कर बहते हुए हृदय के तुल्य मानो उष्ण आंसू छोड़ रही थी ॥४३॥

तामुवाच महाबाहुः केशवः परिसान्त्वयन् ।
अचिराद् द्रक्ष्यसे कृष्णे रुदतीर्भरतस्त्रियः ॥४४॥

महाबाहु, श्रीकृष्ण, द्रौपदी को सान्त्वना देते हुए बोले—हे कृष्णे ! तुम शीघ्र ही कौरवों की स्त्रियों को इस तरह रोती देखोगी ॥४४॥

एवं ता भीरु रोत्स्यन्ति निहतज्ञातिबान्धवः ।
हतमित्रा हतबला येषां क्रुद्धाऽसि भामिनी ॥४५॥

हे भीरु ! जिन पर तुम कुपित हो रही हो, वे सब मारे जावेंगे और अपने बन्धु बान्धव, मित्र और सेना के मरने से दीन शत्रु स्त्रियां इसी तरह रुदन करेगी ॥४५॥

अहं च तत्करिष्यामि भीमार्जुनयमैः सह ।
युधिष्ठिरनियोगेन दैवाच्च विधिनिर्मितात् ॥४६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव को साथ लेकर राजा युधिष्ठिर की आज्ञा से यह सब कुछ मैं स्वयं करूंगा, क्योंकि विधाता की यही इच्छा प्रतीत होती है ॥४६॥

धार्तराष्ट्राः कालपक्वा न चेच्छृण्वन्ति मे वचः ।
शेष्यन्ते निहता भूमौ श्वसृगालादनीकृताः ॥४७॥

यदि मेरे वचनों को काल से मारे हुए धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनादि नहीं सुनेंगे, तो कुत्ते और गीदड़ों के भोजन बनकर भूमि में मरे हुए पड़े रहेंगे ॥४७॥

चलेद्धि हिमवाञ्शैलो मेदनी शतधा फलेत् ।
द्यौः पतेच्च सनक्षत्रा न मे मोघं वचो भवेत् ॥४८॥

यह हिमालय पर्वत चल सकता है, पृथिवी के सैंकड़ों टुकड़े हो सकते हैं, इन नक्षत्रों के साथ आकाश भी गिर सकता हैं, परन्तु यह मेरे वचन निष्फल नहीं होंगे ॥४८॥

सत्यं ते प्रतिजानामि कृष्णे बाष्पो निगृह्यताम् ।
हतामित्राञ्श्रियायुक्तान्न चिराद् द्रक्ष्यसे पतीन् ॥४९॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि
द्रौपदीकृष्णसंवादे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

हे कृष्णे ! मैं यह सत्य प्रतिज्ञा कर रहा हूँ. तुम अपने आंसुओं को रोको। तुम थोड़े ही दिनों में अपने पतियों को शत्रु रहित और राज्यलक्ष्मी से युक्त देखोगी ॥४९॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में द्रौपदी और कृष्ण के सम्वाद का बयासीवां अध्याय समाप्त हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिरासीवां अध्याय

अर्जुन उवाच—

कुरूणामद्य सर्वेषां भवान्सुहृदनुत्तमः ।
सम्बन्धी दयितो नित्यमुभयोः पक्षयोरपि ॥१॥

अर्जुन ने कहा—हे भगवन् ! आप आजकल सारे कौरवों के बहुत अधिक मित्र माने जाते हो—इस तरह आप दोनों पक्षों के प्रिय सम्बन्धी हो ॥१॥

पाण्डवैर्धार्तराष्ट्राणां प्रतिपाद्यमनामयम् ।
समर्थः प्रशमं चैव कर्तुमर्हसि केशव ॥२॥

हे केशव ! आप कौरव और पाण्डव दोनों के लिए सम्पादन करने योग्य कल्याण के सम्पादन करने में समर्थ हो–इसलिए प्रथम आपको सन्धि के लिए ही प्रयत्न करना योग्य हैं ॥२॥

त्वमितः पुण्डरीकाक्ष सुयोधनममर्षणम् ।
शान्त्यर्थं भ्रातरं ब्रूया यत्तद्वाच्यममित्रहन् ॥३॥

हे पुण्डरीकाक्ष ! शत्रुनाशक ! तुम यहां से जाकर असहिष्णु भ्राता दुर्योधन से सन्धि के लिए जो कुछ कह सकते हो—कहना ॥३॥

त्वया धर्मार्थयुक्तं चेदुक्तं शिवमनामयम् ।
हितं नाऽऽदास्यते बालो दिष्टस्य वशमेष्यति ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे कृष्ण ! आप यद्यपि धर्म और नीति युक्त, कल्याणकारी, सुखदायक, हितकारी वचन-कहोगे, परन्तु काल के वश में हुआ दुर्योधन उनको नहीं मानेगा ॥४॥

श्रीभगवानुवाच—

धर्म्यमस्मद्धितं चैव कुरूणां यदनामयम् ।
एष यास्यामि राजानं धृतराष्ट्रमभीप्सया ॥५॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन ! ठीक है—जो धर्म-युक्त-हमारा और कौरवों का कल्याणकारी वचन होगा--मैं वही कहूंगा और इसके सम्पादन के लिए अभी धृतराष्ट्र के पास जाता हूं ॥५॥

वैशम्पायन उवाच—

ततो व्यपेततमसि सूर्ये विमलवद्गते ।
मैत्रे मुहूर्ते सम्प्राप्ते मृद्वर्चिषि दिवाकरे ॥६॥
कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे ।
स्फीतसस्यसुखे काले कल्पः सत्ववतां वरः ॥७॥
मङ्गल्याः पुण्यनिर्घोषा वाचः शृण्वंश्च सूनृताः ।
ब्राह्मणांना प्रतीतानामृषीणामिव वासवः ॥८॥
कृत्वा पौर्वाह्णिकं कृत्यं स्नातः शुचिरलंकृतः ।
उपतस्थे विवस्वन्तं पावकं च जनार्दनः ॥९॥
ऋषभं पृष्ठ आलभ्य ब्राह्मणानभिवाद्य च ।
अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा पश्यन्कल्याणमग्रतः ॥१०॥
तत्प्रतिज्ञाय वचनं पाण्डवस्य जनार्दनः ।
शिनेर्नप्तारमासीनमभ्यभाषत सात्यकिम् ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! जब अन्धकार रहित निर्मल आकाश में दिनकर सूर्य के कुछ न्यून तेज के साथ चमकने के समय, मैत्र (जन्म नक्षत्र से आठवें) नक्षत्र रेवती के आने पर, शरद् ऋतु के अन्त में कुछ कुछ शीतकाल के आविर्भूत होने पर, अन्न के जङ्गलों में लहराने के सुन्दर काल वाले कार्तिक मास में जो प्राणियों के लिए बड़ा उत्तम समय है—ऋषियों की इन्द्र के तुल्य, ब्राह्मणो की माङ्गलिक, पुण्यजनक, मधुर वाणी सुनते हुए, प्रातः-काल का कृत्य, स्नान और शुद्ध वस्त्रधारण एवं सन्ध्या हवन समाप्त करके भगवान् कृष्ण ने वृषभ की पीठ का स्पर्श और ब्राह्मणो को प्रणाम किया। इस समय इन्होंने अग्नि की प्रदक्षिणा की। इनके चित्त को ऐसा उत्साह हो रहा था, जैसे सामने कल्याण खड़ा हो। श्रीकृष्ण ने पाण्डवों से उनकी इच्छानुसार बोलने की प्रतिज्ञा करके अपने पास बैठे शिनि-पौत्र सात्यकि से कहा ॥६-११॥

रथ आरोप्यतां शंखश्चक्रं च गदया सह ।
उपासङ्गाश्च शक्त्यश्च सर्वप्रहरणानि च ॥१२॥
दुर्योधनश्च दुष्टात्मा कर्णश्च सहसौबलः ।
न च शत्रुरवज्ञेयो दुर्बलोऽपि बलीयसा ॥१३॥

हे सात्यकि ! तुम मेरे रथ में शङ्ख, चक्र, गदा, तूणीर, शक्ति तथा अन्य शस्त्र रख दो। दुर्योधन और शकुनि सहित कर्ण बड़े दुष्ट हैं। बलवान् मनुष्यों को भी कभी शत्रु को दुर्बल समझ कर उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ॥१२—१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततस्तन्मतमाज्ञाय केशवस्य पुरः सराः ।
प्रससृर्योजयिष्यन्तो रथं चक्रगदाभृतः ॥१४॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण के विचार को जानकर सेवक लोग चक्र, गदा आदि लेकर रथ को सुसज्जित करने के लिए दौड़ पड़े ॥१४॥

तं दीप्तमिव कालाग्निमाकाशगमिवाऽऽशुगम् ।
सूर्यचन्द्रप्रकाशाभ्यां चक्राभ्यां समलंकृतम् ॥१५॥
अर्धचन्द्रैश्च चन्द्रैश्च मत्स्यैः समृगपक्षिभिः ।
पुष्पैश्च विविधैश्चित्रं मणिरत्नैश्च सर्वशः ॥१६॥
तरुणादित्यसङ्काशं बृहन्तं चारुदर्शनम् ।
मणिहेमविचित्राङ्गं सुध्वजं सुपताकिनम् ॥१७॥
सूपस्करमनाधृष्यं वैयाघ्रपरिवारणम् ।
यशोघ्नं प्रत्यमित्राणां यदूनां नन्दिवर्धनम् ॥१८॥
वाजिभिः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ।
स्नातैः सम्पादयामासुः सम्पन्नैः सर्वसम्पदा ॥१९॥

यह रथ, कालाग्नि के समान प्रदीप्त था और इतना शीघ्रगामी था, मानो आकाश में उड़कर चलता हो। इसके चक्र(पहिए) सूर्य और चन्द्रमा की भाँति चमक रहे थे। अर्द्ध चन्द्र, पूर्ण चन्द्र, मत्स्य मृग, पक्षियों के चित्र, अनेक प्रकार के पुष्प और मणि रत्नों से यह रथ सुशोभित था। यह प्रचण्ड, चमकते हुए सूर्य के समान चमकीला, विशाल, सुन्दर मणि और सुवर्णों से जटित, ध्वजा और पताकाओं से विभूषित, सारी युद्ध आदि की सामग्रियों से परि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्ण था। इस पर कोई आक्रमण करने में समर्थ नहीं था, जिसमें व्याघ्र चर्म बिछा था। यह शत्रुओं के यश का नाशक और यादवोंके आनन्द का वर्धक था। स्नान करा कर और अनेक भाँति के आभूषणों से भूषित करके शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामक अश्वों को इस रथ में जोड़ा गया ॥ १५-१६॥

महिमानं तु कृष्णस्य भूय एवाऽभिवर्धयन् ।
सुघोषः पतगेन्द्रेण ध्वजेन युयुजे रथः ॥२०॥

भगवान् कृष्ण की महिमा को अधिक बढ़ाने वाले सुन्दर ध्वनिकारी रथ को गरुड़ की ध्वजा से सुशोभित किया ॥ २० ॥

तं मेरुशिखरप्रख्यं मेघदुन्दुभिनिःस्वनम् ।
आरुरोह रथं शौरिर्विमानमिव कामगम् ॥२१॥

मेरु पर्वत की शिखर के तुल्य ऊंचे और मेघ तथा दुन्दुभि ध्वनि के तुल्य ध्वनि वाले कामचारी विमान जैसे रथ पर भगवान् कृष्ण सवार हुए ॥ २१ ॥

ततः सात्यकिमारोप्य प्रययौ पुरुषोत्तमः ।
पृथिवीं चांऽतरिक्षं च रथघोषेण नादयन् ॥२२॥

रथ घोष से पृथिवी और आकाश को शब्दायमान करते हुए, श्रीकृष्ण ने सात्यकि को रथ में बैठा कर हस्तिनापुर की ओर यात्रा की ॥ २२ ॥

व्यपोढाभ्रस्ततः कालः क्षणेन समपद्यत ।
शिवश्चाऽनुववौ वायुः प्रशान्तमभवद्रजः ॥२३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस समय क्षण भर में आकाश बादलों से रहित होकर स्वच्छ हो गया, कल्याणकारी वायु चलने लगा और सब ओर से रज उड़ना शान्त हो गया ॥ २३ ॥

प्रदक्षिणानुलोमाश्च मङ्गल्या मृगपक्षिणः ।
प्रयाणे वासुदेवस्य बभूवुरनुयायिनः ॥२४ ॥
मङ्गल्यार्थप्रदैः शब्दैरन्ववर्तन्त सर्वशः ।
सारसाः शतपत्राश्च हंसाश्च मधुसूदनम् ॥२५॥
मन्त्राहुतिमहाहोमैर्हूयमानश्च पावकः ।
प्रदक्षिणमुखो भूत्वा विधूमः समपद्यत ॥२६॥

जिस समय श्रीकृष्ण ने गमन किया, उस समय दांयी ओर अनुकूल रीति से मंगलजनक मृग पक्षी शुभ शकुन सूचक होकर आने जाने लगे। माङ्गलिक शब्द करते हुए, सारस, शतपत्र, हंस आदि उत्तम २ पक्षी भगवान कृष्ण के पीछे २ चल दिए मन्त्रों के साथ विशाल हवन से प्रज्वलित धूम रहित अग्नि दांयी ओर लपटें फैंकता हुआ जलने लगा ॥ २४–२६ ॥

वसिष्ठो वामदेवश्च भूरिद्युम्नो गयः क्रथः ।
शुक्रनारदवाल्मीका मरुतः कुशिको भृगुः ॥२७॥
देवब्रह्मर्षयश्चैव कृष्णं यदुसुखावहम् ।
प्रदक्षिणमवर्तन्त सहिता वासवानुजम् ॥२८॥

उस समय वसिष्ठ, वामदेव, भूरिद्युम्न, गय, क्रथ, शुक्र, नारद, बाल्मीक, मरुत, कुशिक, भृगु आदि देवर्षि और ब्रह्मर्षि,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकर, यदुवंश के सुखकारी, इन्द्र के अनुज श्रीकृष्ण के दांयी ओर खड़े हो गए ॥ २७–२८ ॥

एवमेतैर्महाभागैर्महर्षिगणसाधुभिः ।
पूजितः प्रययौ कृष्णः कुरूणां सदनं प्रति ॥२९॥

इस प्रकार इन महानुभाव, महात्मा महर्षियों से पूजित होकर भगवान् कृष्ण, कौरवों की राजधानी हस्तिनापुर की ओर चले।

तं प्रयान्तमनुप्रायात्कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
भीमसेनार्जुनौ चौभौ माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥३०॥

इनके चल देने पर कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी इनके पीछे २ आदर के रूप में चल दिए ॥ ३० ॥

चेकितानश्च विक्रान्तो धृष्टकेतुश्च चेदिपः ।
द्रुपदः काशिराजश्च शिखण्डी च महारथः ॥३१॥
धृष्टद्युम्नः सपुत्रश्च विराटः केकयैः सह ।
संसाधनार्थं प्रययुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ॥३२॥

महापराक्रमी चेकितान, चेदिपति, धृष्टकेतु, द्रुपद, काशिराज महारथी शिखण्डी धृष्टद्युम्न, कैकय क्षत्रिय और पुत्र सहित विराटराज आदि क्षत्रिय, क्षत्रिय श्रेष्ठ भगवान् कृष्ण की प्रतिष्ठा के निमित्त कुछ दूर तक पीछे २ चल दिए ॥ ३१–३२॥

ततोऽनुव्रज्य गोविन्दं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
राज्ञां सकाशे द्युतिमानुवाचेदं वचस्तदा ॥३३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महा तेजस्वी धर्मराज युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण के पीछे २ गमन करते हुए, इन सब राजाओं के सम्मुख यह वचन बोले ॥ ३३ ॥

यो वै न कामान्न भयान्न लोभान्नाऽर्थकारणात् ।
अन्यायमनुवर्तेत स्थिरबुद्धिरलोलुपः ॥३४॥

धर्मज्ञो धृतिमान्प्राज्ञः सर्वभूतेषु केशवः ।
ईश्वरः सर्वभूतानां देवदेवः सनातनः ॥३५॥

हे महानुभावो ! ये श्रीकृष्ण किसी कामना, भय, लोभ या स्वार्थ से कभी अन्याय का पक्ष ग्रहण नहीं करने वाले हैं, क्योंकि ये बड़े दृढ़मति और लालच रहित हैं । ये सारे प्राणियों में बुद्धिमान्, धर्मात्मा, धैर्यशील हैं और सबसे अधिक ऐश्वर्य-शाली एवं सनातन देवाधिदेव हैं ॥ ३४–३५ ॥

तं सर्वगुणसम्पन्नं श्रीवत्सकृतलक्षणम् ।
सम्परिष्वज्य कौन्तेयः सन्देष्टुमुपचक्रमे ॥३६॥

सब गुणों से सम्पन्न, श्रीवत्स के चिन्ह से विभूषित, भगवान् कृष्ण का आलिङ्गन करके कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर, उनको इस प्रकार अपना सन्देह सुनाने लगे ॥ ३६ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

या सा बाल्यात्प्रभृत्यस्मान्पर्यवर्धयताऽबला ।
उपवासतपःशीला सदा स्वस्त्ययने रता ॥३७॥

देवतातिथिपूजासु गुरुशुश्रूषणे रता ।
वत्सला प्रियपुत्रा च प्रियाऽस्माकं जनार्दन ॥३८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुयोधनभयाद्या नोऽत्रायताऽमित्रकर्शन ।
महतो मृत्युसम्बाधादुद्धरेन्नौरिवाऽर्णवात् ॥३९॥
अस्मत्कृते च सततं यया दुःखानि माधव ।
अनुभूतान्यदुःखार्हा तां स्म पृच्छेरनामयम् ॥४०॥

युधिष्ठिर बोले—हे शत्रुनाशक, जनार्दन, कृष्ण ! जिसने हमको बचपन से पालन पोषण करके बड़ा किया, जो उपवास आदि तप में संलग्न हैं और हमारे कल्याण की कामना में रत हैं तथा देवता, अतिथि और गुरु की पूजा सेवामें तत्पर है। जिसने महा मृत्यु रूप दुर्योधन के भय से समुद्र में महा-भय के उपस्थित होने पर नौका की तरह हमारी रक्षा की है। जो सुख के योग्य हमारे लिये सदा दुःख भोगती रही है, उस माता कुन्ती से प्रथम कुशल पूछना ॥ ३७–४० ॥

भृशमाश्वासयेश्चैनां पुत्रशोकपरिप्लुताम् ।
अभिवाद्य स्वजेथास्त्वं पाण्डवान्परिकीर्त्तयन् ॥४१॥

आप पुत्र शोक से व्याकुल कुन्ती को बहुत सी सान्त्वना देना और हम पाण्डवों की ओर से उसको प्रणाम और आलिङ्गन करना ॥ ४१ ॥

ऊढात्प्रभृति दुःखानि श्वशुराणामरिन्दम ।
निकारानतदर्हा च पश्यन्ती दुःखमश्नुते ॥४२॥

हे अरिमर्दन ! जब से उसके श्वशुरों ने उसका अपने पुत्र के साथ विवाह किया, तभी से दुःख के अयोग्य वह कुन्ती, सारे अपमानों को सहती हुई दुःख उठा रही है ॥ ४२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपि जातु स कालः स्यात्कृष्ण दुःखविपर्ययः ।
यदहं मातरं क्लिष्टां सुखं दद्यामरिन्दम ॥४३॥

हे अरिन्दम ! कृष्ण ! क्या कभी दुःख से विरुद्ध सुखकारी वह समय आवेगा, जब हम अपनी दुःखी माता को सुख प्रदान करने में समर्थ हो सकेंगे ॥ ४३ ॥

प्रव्रजन्तोऽनुधावन्तीं कृपणां पुत्रगृद्धिनीम् ।
रुदतीमुपहायैनामगच्छाम वयं वनम् ॥४४॥

हाय ! वन गमन करते हुए हम लोग पुत्र के प्रेम से रोती हुई और पीछे दौड़ती हुई, माता को छोड़ कर वन को चल दिए थे ॥ ४४ ॥

न नूनं म्रियते दुःखैः सा चेज्जीवति केशव ।
तथा पुत्राधिभिर्गाढमार्त्ता ह्यानर्त्तसत्कृत ॥४५॥

हे आनर्त—देश-पूज्य ! केशव ! अब मुझे पता लग गया, कि कैसे भी दुःख पड़े, परन्तु मनुष्य दुःखों से मरता नहीं है । यही कारण है, कि इस प्रकार पुत्रों के शोक से व्याकुल भी कुन्ती अभी तक मर नहीं चुकी है ॥ ४५ ॥

अभिवाद्याऽथ सा कृष्ण त्वया मद्वचनाद्विभो ।
धृतराष्ट्रश्च कौरव्यो राजानश्च वयोधिकाः ॥४६॥

हे प्रभो ! आप मेरी ओर से सर्व प्रथम कुन्ती से प्रणाम करना । इसके अनन्तर कुरुपति राजा धृतराष्ट्र तथा आयु में बड़े राजाओं से प्रणाम कहना ॥ ४६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाभारत चित्र संख्या ६२

श्रीकृष्ण और पाण्डवों का वार्तालाप

महाभारत उद्योग पर्व अ० ७२
पृष्ठ २

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीष्मं द्रोणं कृपं चैव महाराजं च बाल्हिकम् ।
द्रौणिं च सोमदत्तं च सर्वांश्च भरतान्प्रति ॥४७॥

भीष्म, द्रोण, कृप, महाराज बाल्हिक, अश्वत्थामा, सोमदत्त तथा अन्य भरतवंशी वृद्धों से मेरा नमस्कार कहना ॥ ४७ ॥

विदुरं च महाप्रज्ञं कुरूणां मन्त्रधारिणम् ।
अगाधबुद्धिं मर्मज्ञं स्वजेथा मधुसूदन ॥४८॥

हे मधुसूदन ! महाबुद्धिमान् कौरवों के मन्त्री अगाध विचार वाले, सारी बातों के मर्म के ज्ञाता, विदुर से प्रणाम कहकर उनका आलिङ्गन करना ॥ ४८ ॥

इत्युक्त्वा केशवं तत्र राजमध्ये युधिष्ठिरः ।
अनुज्ञातो निववृते कृष्णं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥४९॥

इस प्रकार उन राजाओं के मध्य में श्रीकृष्ण से कहकर और उनकी प्रदक्षिणा करके, राजा युधिष्ठिर कृष्ण के आग्रह से यहीं से वापिस लौट चले ॥ ४९ ॥

व्रजन्नेव तु बीभत्सुः सखायं पुरुषर्षभम् ।
अब्रवीत्परवीरघ्नं दाशार्हमपराजितम् ॥५०॥
यदस्माकं विभो वृत्तं पुरा वै मन्त्रनिश्चये ।
अर्धराज्यस्य गोविन्द विदितं सर्वराजसु ॥५१॥
तच्चेद्दद्यादसङ्गेन सत्कृत्याऽनवमन्य च ।
प्रियं मे स्यान्महाबाहो मुच्येरन्महतो भयात् ॥५२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चलते २ श्रीकृष्ण के सखा अर्जुन, शत्रुसैन्यनाशक, विजयी, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण से बोले—हेविभो ! गोविन्द ! जो हम सबकी सभा में मन्त्रणा के समय सारे राजाओं के समक्ष आधे राज्य पर सन्धि करना निश्चित हुआ है । यदि दुर्योधन इस विचार के अनुसार विना लाग लपेट सत्कार के साथ किसी प्रकार के भी अपमान से रहित आधा राज्य, प्रदान कर दे, तो मैं बड़ा प्रसन्न होऊँगा और आगे उपस्थित होने वाली उलझन से मुक्त हो जाऊँगा ॥ ५०—५२ ॥

अतश्चेदन्यथा कर्ता धार्तराष्ट्रोऽनुपायवित् ।
अन्तं नूनं करिष्यामि क्षत्रियाणां जनार्दन ॥५३॥

हे जनार्दन ! यदि अपने हितके उपाय को नहीं समझने वाला दुर्योधन इसके विरुद्ध करना चाहे, तो फिर परवश होकर मुझे सारे क्षत्रियों का संहार करना पड़ेगा ॥ ५३ ॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्ते पाण्डवेन समहृष्यद्वृकोदरः ।
मुहुर्मुहुः क्रोधवशात्प्रावेपत च पाण्डवः ॥५४॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! जब अर्जुन ने यह कहा-तो भीमसेन बड़ा प्रसन्न हुआ । इस समय पाण्डु-पुत्र भीम क्रोध के वश में होकर बार २ कांपने लगा ॥ ५४ ॥

वेपमानश्च कौन्तेयः प्राक्रोशन्महतो रवान् ।
धनञ्जयवचः श्रुत्वा हर्षोत्सिक्तमना भृशम् ॥५५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्जुन के वचन को सुनकर हर्षोत्फुल्ल भीमसेन, कोप से कांपने और गर्जना करने लगा ॥ ५५ ॥

तस्य तं निनदं श्रुत्वा सम्प्रावेपन्त धन्विनः ।
वाहनानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रे प्रसुस्रुवुः ॥५६॥

भीमसेन के इस सिंहनाद को सुन कर वहां सारे धनुर्धर कांप उठे और सारे वाहन, मूत्र और पुरीषोत्सर्ग करने लगे ॥ ५६ ॥

इत्युक्त्वा केशवं तत्र तथा चोक्त्वा विनिश्चयम् ।
अनुज्ञातो निववृते परिष्वज्य जनार्दनम् ॥५७॥

अर्जुन इस प्रकार अपने निश्चय को श्रीकृष्ण को सुनाकर उनसे अलिङ्गन करके उनकी आज्ञानुसार वापिस लौट आए॥ ५७ ॥

तेषु राजसु सर्वेषु निवृत्तेषु जनार्दनः ।
तूर्णमभ्यगमद्धृष्टः शैव्यसुग्रीववाहनः ॥५८॥

उन सारे राजाओं के लौट आने पर शैव्य, सुग्रीव आदि अश्वों से युक्त रथ से श्रीकृष्ण बड़ी प्रसन्नता से शीघ्र २ चलने लगे ॥ ५८ ॥

ते हया वासुदेवस्य दारुकेण प्रचोदिताः ।
पन्थानमाचेमुरिव ग्रसमाना इवांऽबरम् ॥५९॥

दारुक सारथि से हांके हुए, वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण के अश्व, इस प्रकार मार्ग को उलांघने लगे- जैसे आकाश को निगल रहे हों ॥ ५९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथाऽपश्यन्महाबाहुर्ऋषीनध्वनि केशवः ।
ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानान्स्थितानुभयतः पथि ॥६०॥

महाबाहु श्रीकृष्ण ने मार्ग में अपने रथ के दांयी बांयी ओर ब्रह्म की ज्योति से देदीप्यमान अनेक ऋषियों को देखा ॥ ६० ॥

सोऽवतीर्य रथात्तूर्णमभिवाद्य जनार्दनः ।
यथावृतानृषीन्सर्वानभ्यभाषत पूजयन् ॥६१॥

जनार्दन श्रीकृष्ण, रथ से उतर पड़े और ऋषियों को प्रणाम करके आदर के साथ सदाचार मग्न उन ऋषियों से बोले ॥ ६१ ॥

कच्चिल्लोकेषु कुशलं कच्चिद्धर्मः स्वनुष्ठितः ।
ब्राह्मणानां त्रयो वर्णाः कच्चित्तिष्ठन्ति शासने ॥६२॥

हे भगवन् ! आपके तपोबन या संसार में कुशल तो हैं ? आप लोग अपने धर्म का अनुष्ठान तो उत्तम रीति से कर रहे हैं ? तीनों वर्ण आपकी आज्ञा में तो चल रहे हैं ॥ ६२ ॥

तेभ्यः प्रयुज्य तां पूजां प्रोवाच मधुसूदनः ।
भगवन्तः क्व संसिद्धाः का वीथी भवतामिह ॥६३॥

उन लोगों का इस प्रकार आदर करके श्रीकृष्ण ने कहा—हे भगवन् ! आप कहाँ से आ रहे हैं और आप कहां जा रहे हैं ॥६३॥

किं वा कार्यं भगवतामहं किं करवाणि वः ।
केनार्थेनोपसम्प्राप्ता भगवन्तो महीतलम् ॥६४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आप लोगों का क्या कार्य शेष है, मुझे आप कोई सेवा बताइए—जिसे पूरा करूं। आप लोग किस कारण से इस पृथिवी (स्थान) पर आए हैं ॥ ६४ ॥

तमब्रवीज्जामदग्न्य उपेत्य मधुसूदनम् ।
परिष्वज्य च गोविन्दं सुरासुरपतेः सखा ॥६५॥

सुर और असुरों के पति ब्रह्मा के सखा जमदग्नि पुत्र परशुराम, मधुसूदन कृष्ण के पास जाकर और उनका आलिङ्गन करके बोले।

देवर्षयः पुण्यकृतो ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः ।
राजर्षयश्च दाशार्ह मानयन्तस्तपस्विनः ।
देवासुरस्य द्रष्टारः पुराणस्य महामते ॥६६॥
समेतं पार्थिवं क्षत्रं दिदृक्षन्तश्च सर्वतः ।
सभासदश्च राजानस्त्वां च सत्यं जनार्दनम् ॥६७॥
एतन्महत्प्रेक्षणीयं द्रष्टुं गच्छाम केशव ।
धर्मार्थसहिता वाचः श्रोतुमिच्छाम माधव ॥६८॥
त्वयोच्यमानाः कुरुषु राजमध्ये परन्तप ।

हे दशार्ह ! पुण्यमान् देवर्षि विद्वान् ब्राह्मण, तपस्वियों के आदर करने वाले राजर्षि, पुराने देवासुर संग्राम के देखने वाले ये लोग तथा सभासद राजा इकट्ठे हुए क्षत्रियों और आपके देखने को आये हैं, जहां आपका वार्तालाप होगा—वह दृश्य तो बड़ा ही देखने योग्य होगा। हे परन्तप ! हम लोग आप की धर्म और नीति से युक्त वाणी के सुनने के बड़े ही उत्सुक हैं, जो वाणी कौरवों की राज सभा में कही जावेगी ॥ ६६-६८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीष्मद्रोणादयश्चैव विदुरश्च महामतिः ॥६९॥
त्वं च यादवशार्दूल सभायां वै समेष्यथ

हे यदु-वंश-श्रेष्ठ ! भीष्म, द्रोण आदि कौरव, महामतिमान् विदुर और आप उस राज-सभा में विराजमान होंगे ॥ ६९ ॥

तव वाक्यानि दिव्यानि तथा तेषां च माधव ॥७०॥
श्रोतुमिच्छाम गोविन्द सत्यानि च हितानि च ।

हे माधव ! वहां आपकी और उनकी सत्य तथा हितकारी दिव्य वाणी सुनने को हम बड़े ही लालायित हो रहे हैं ॥ ७० ॥

आपृष्टोऽसि महाबाहो पुनर्द्रक्ष्यामहे वयम् ॥७१॥
याह्यविघ्नेन वै वीर द्रक्ष्यामस्त्वां समागतम् ।
आसीनमासने दिव्ये बलतेजःसमाहितम् ॥७२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णप्रस्थाने त्र्यशीतितमोऽध्यायः॥८३॥

हे महाबाहो ! अब हम विदा होते हैं, आप से फिर मिलेंगे। आप निर्विघ्नता से यात्रा कीजिए। हम कौरवों की राज सभा में दिव्य आसन पर बैठे हुए बल और तेज से देदीप्यमान आपके फिर दर्शन करेंगे ॥ ७१-७२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में श्रीकृष्ण के प्रस्थान का तिरासीवां अध्याय पूरा हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौरासीवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

प्रयान्तं देवकीपुत्रं परवीररुजो दश ।
महारथा महाबाहुमन्वयुः शस्त्रपाणयः ॥१॥
पदातीनां सहस्रं च सादिनां च परन्तप ।
भोज्यं च विपुलं राजन्प्रेष्याश्च शतशोऽपरे ॥२॥

वैशम्पायन बोले—हे महाबाहो ! राजन् ! देवकी पुत्र श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर जाने के समय शत्रु वीरों के नाशक दश महारथी, शस्त्र लेकर साथ चल दिए ! हे परन्तप ! इनके साथ एक हजार सवार और पैदल बहुत सी भोजन की सामग्री तथा दास थे ॥१-२॥

जनमेजय उवाच—

कथं प्रयातो दाशार्हो महात्मा मधुसूदनः ।
कानि वाव्रजतस्तस्य निमित्तानि महौजसः ॥३॥

जनमेजय ने कहा—हे महाराज ! महात्मा मधुसूदन श्रीकृष्ण ने किस भांति गमन किया और उन महाओजस्वी कृष्ण के गमन के समय क्या क्या शकुन हुए ॥३॥

वैशम्पायन उवाच—

तस्य प्रयाणे यान्यासन्निमित्तानि महात्मनः ।
तानि मे शृणु सर्वाणि दैवान्यौत्पातिकानि च ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! भगवान् कृष्ण के प्रयाण के समय जो जो दैवप्रेरित शकुन और उत्पात हुए वे मैं तुमसे कहता हूं, तुम ध्यान से सुनो ॥४॥

अनभ्रेऽशनिनिर्घोषः सविद्युत्समजायत ।
अन्वगेव च पर्जन्यः प्रावर्षद्विघने भृशम् ॥५॥

हे राजन्! उस समय विना बादल के गर्जना होने और बिजली चमकने लगी। इसी के अनन्तर विना बादल स्वच्छ आकाश रहने पर भी मेघ बरसने लगा ॥५॥

प्रत्यगूहुर्महानद्यः प्राङ्मुखाः सिन्धुसप्तमाः ।
विपरीतादिशः सर्वा न प्राज्ञायत किञ्चन ॥३॥

सिन्ध आदि सात बड़ी बड़ी नदियां उलटी होकर पूर्व की ओर बहने लगी। दिशाओं के कृत्य उलटे हो गए। इस समय कुछ भी ज्ञात नहीं होता था ॥६॥

प्राज्वलन्नग्नयो राजन्पृथिवी समकम्पत ।
उदपानाश्च कुम्भाश्च प्रासिञ्चञ्शतशो जलम् ॥७॥

हे राजन्! सब ओर अग्नि प्रज्वलित हो उठी, पृथ्वी कांपने लगी एवं कूप और कुम्भ (घड़े) स्वयमेव उभलने लगे ॥७॥

तमः सम्वृतमप्यासीत्सर्वं जगदिदं तथा।
न दिशो नाऽदिशो राजन्प्रज्ञायन्ते स्म रेणुना ॥८॥

हे राजन्! उस समय सारे जगत् में अन्धेरा छा गया। धूलि इतनी छाई, कि दिशा और विदिशाओं का कुछ पता न चला ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रादुरासीन्महाञ्छब्दः खे शरीरं न दृश्यते ।
सर्वेषु राजन्देशेषु तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥९॥

आकाश में कड़ कड़ाहट का शब्द हो रहा था और अपना ही हाथ अपने को दिखाई नहीं देता था। हे राजन्! उस समय सारे ही देशों में अद्भुत सी घटनाएं हो रही थी ॥९॥

प्रामथ्नाद्धास्तिनपुरं वातो दक्षिणपश्चिमः ।
आरुजन्गणशो वृक्षान्परुषोऽशनिनिःस्वनः ॥१०॥

दक्षिण पच्छिम से उठे हुए वायु ने सारे हस्तिनापुर को हिला दिया और कठोर बिजली के पतन ने बहुत से वृक्षों को तोड़ डाला ॥१०॥

यत्र यत्र च वार्ष्णेयो वर्तते पथि भारत ।
तत्र तत्र सुखो वायुः सर्वं चाऽऽसीत्प्रदक्षिणम् ॥११॥

हे भारत! इस समय भी जिस २ मार्ग में भगवान् कृष्ण पहुँचते थे, वहां २ का वायु सुखकारी और अनुकूल होता जाता था ॥११॥

ववर्ष पुष्पवर्षं च कमलानि च भूरिशः ।
समश्च पंथा निर्दुःखो व्यपेतकुशकण्टकः ॥१२॥

अनेक कमल, बहुत सी पुष्प वर्षा कर रहे थे और मार्ग सरल दुःख रहित एवं कुश कण्टकों से रहित होता जाता था ॥१२॥

संस्तुतो ब्राह्मणैर्गीर्भिस्तत्र तत्र सहस्रशः ।
अर्च्यते मधुपर्कैश्च वसुभिश्च वसुप्रदः ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनेक स्थानों पर सहस्रों ब्राह्मणों ने अपनी वाणी से भगवान् कृष्ण की स्तुति और अमूल्य मधुपर्क से पूजा की। उदार-प्रकृति भगवान् ने भी उनको बहुत सा धन प्रदान किया ॥१३॥

तं किरन्ति महात्मानं वन्यैः पुष्पैः सुगंधिभिः।
स्त्रियः पथि समागम्य सर्वभूतहिते रतम् ॥१४॥

इन महात्मा सब प्राणियों के हितकारी श्रीकृष्ण की वन के सुगन्धित पुष्पों की वर्षा से स्त्रियां आ आ कर मार्ग में पूजा कर रही थीं ॥१४॥

स शालिभवनं रम्यं सर्वसस्यसमाचितम्।
सुखं परमधर्मिष्ठमभ्यगाद्भरतर्षभ ॥१५॥
पश्यन्बहुपशून्ग्रामान्रम्यान्हृदयतोषणान्।
पुराणि च व्यतिक्रामन्राष्ट्राणि विविधानि च ॥१६॥

हे भरतर्षभ! इसके अनन्तर बहुत से पशु, सुन्दर और हृदय के आल्हाद करने वाले ग्राम, नगर और अनेक राष्ट्रों को उलांघते हुए, भगवान् कृष्ण, सब प्रकार के अन्न से समन्वित, सुखदायी, सुन्दर और धर्म के कृत्यों से परिपूर्ण शालि-भवन नामक स्थान पर पहुंचे ॥१५-१६॥

नित्यं हृष्टाः सुमनसो भारतैरभिरक्षिताः।
नोद्विग्नाः परचक्राणां व्यसनानामकोविदाः ॥१७॥
उपप्लव्यादथाऽऽगम्य जनाः पुरनिवासिनः।
पथ्यतिष्ठन्त सहिता विष्वक्सेनदिदृक्षया ॥१८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस समय श्रीकृष्ण के दर्शन की लालसा से बड़े प्रसन्नचित्त भरतवंशी राजाओं से सुरक्षित, हृष्टपुष्ट, उद्वेग रहित, शत्रुओं द्वारा उठायी हुई विपत्ति के अनभिज्ञ, अनेक नागरिक मनुष्य, उपप्लव्य नगर से आकर मार्ग में खड़े हो गए ॥१७-१८॥

ते तु सर्वे समायान्तमग्निमिद्धमिव प्रभुम् ।
अर्चयामासुरर्चार्हं देशातिथिमुपस्थितम् ॥१९॥

उन सब नागरिकों ने अग्नि के समान तेजस्वी, पूजा के योग्य, अन्य देश से आये हुए पूज्य अतिथि भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा की ॥१९॥

वृकस्थलं समासाद्य केशवः परवीरहा ।
प्रकीर्णरश्मावादित्ये व्योम्नि वै लोहितायति ॥२०॥

शत्रु-विजयी श्रीकृष्ण, विस्तृत किरणों से युक्त सूर्य के आकाश में रक्त वर्ण हो जाने पर वृकस्थल स्थान में पहुँचे ॥२०॥

अवतीर्य रथात्तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि ।
रथमोचनमादिश्य सन्ध्यामुपविवेश ह ॥२१॥

भगवान् कृष्ण ने रथ से उतर कर विधिपूर्वक शौच किया और रथ से घोड़े खोलने की आज्ञा देकर आप सन्ध्या के लिए बैठ गए ॥२१॥

दारुकोऽपि हयान्मुक्त्वा परिचर्य च शास्त्रतः ।
मुमोच सर्वयोक्त्रादि मुक्त्वा चैतानवासृजत् ॥२२॥

दारुक सारथि ने भी अश्वों को खोल दिया और अश्व-शास्त्र के अनुसार उनकी सेवा की। सारथि ने उन अश्वों के सारे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बन्धन खोल दिए और बन्धनों को खोल कर अश्वों को टहलने के लिए छोड़ दिया ॥२२॥

अभ्यतीत्य तु तत्सर्वमुवाच मधुसूदनः ।
युधिष्ठिरस्य कार्यार्थमिह वत्स्यामहे क्षपाम् ॥२३॥

अपने सारे नित्यकर्मों को समाप्त करके मधुसूदन श्रीकृष्ण ने कहा—कि आज युधिष्ठिर के कार्य के ध्यान से हम रात्रि को यहीं व्यतीत करेंगे ॥२३॥

तस्य तन्मतमाज्ञाय चक्रुरावसथं नराः ।
क्षणेन चाऽन्नपानानि गुणवन्ति समार्जयन् ॥२४॥

श्रीकृष्ण की इस आज्ञा को सुन कर नौकरों ने वहीं ठहरने के (तम्बू आदि) साधन बना दिए और क्षण भर में अनेक स्वाद-युक्त अन्न-जल का संग्रह कर दिया ॥२४॥

तस्मिन्ग्रामे प्रधानास्तु य आसन्ब्राह्मणा नृप ।
आर्याः कुलीना ह्रीमन्तो ब्राह्मीं वृत्तिमनुष्ठिताः ।२५।
तेऽभिगम्य महात्मानं हृषीकेशमरिन्दमम् ।
पूजां चक्रुर्यथान्यायमाशीर्मंगलसंयुताम् ॥२६॥

हे राजन् ! उस ग्राम में जो आर्य, कुलीन, लज्जाशील, वेद-वृत्ति के करने वाले प्रधान २ ब्राह्मण थे, वे अरिमर्दन महात्मा श्रीकृष्ण के पास पहुंचे। उन्होंने अशीर्वाद और मङ्गलानुशासन के अनन्तर विधिपूर्वक श्रीकृष्ण की पूजा की ॥२५-२६॥

ते पूजयित्वा दाशार्हं सर्वलोकेषु पूजितम् ।
न्यवेदयन्त वेश्मानि रत्नवन्ति महात्मने ॥२७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्राह्मणों ने सब लोकों में पूजित महात्मा श्रीकृष्ण की पूजा करके उनके लिए अपने रत्न जटित भवनों को ठहरने के लिए बताया ॥२७॥

तान्प्रभुः कृतमित्युक्त्वा सत्कृत्य च यथार्हतः ।
अभ्येत्य चैषां वेश्मानि पुनरायात्सहैव तैः ॥२८॥

भगवान् ने उनसे कहा—अच्छी बात है। उन्होंने उन ब्राह्मणों की यथायोग्य पूजा की और उनके घर जाकर फिर उनके साथ २ अपने ही स्थान को लौट आए ॥२८॥

सुमृष्टं भोजयित्वा च ब्राह्मणांस्तत्र केशवः ।
भुक्त्वा च सह तैः सर्वैरवसत्तां क्षपां सुखम् ॥२९॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि
श्रीकृष्णप्रयाणे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

श्रीकृष्ण ने वहाँ ब्राह्मणों को मिष्टान्न भोजन करवाया और आपने भी साथ साथ भोजन किया। इस तरह उन्होंने वह रात्रि वृकस्थल में ही समाप्त की ॥२९॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में
श्रीकृष्ण प्रयाण का चौरासीवां अध्याय पूरा हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पिचासीवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

तथा दूतैः समाज्ञाय प्रयान्तं मधुसूदनम् ।
धृतराष्ट्रोऽब्रवीद्भीष्ममर्चयित्वा महाभुजम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! जब राजा धृतराष्ट्र को अपने दूतों द्वारा यह पता लगा, कि श्रीकृष्ण सन्धि के लिए चल दिए है, तो वह महाबाहु भीष्म से बड़े आदर के साथ कहने लगा ॥१॥

द्रोणं च सञ्जयं चैव विदुरं च महामतिम् ।
दुर्योधनं सहामात्यं हृष्टरोमाऽब्रवीदिदम् ॥२॥

उसने द्रोणाचार्य, सञ्जय, महाबुद्धिमान् विदुर और मन्त्रियों सहित दुर्योधन से रोमाञ्चित होकर यह वचन कहा ॥२॥

अद्भुतं महदाश्चर्यं श्रूयते कुरुनन्दन ।
स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च कथयन्ति गृहे गृहे ॥३॥
सत्कृत्याऽऽचक्षते चाऽन्ये तथैवाऽन्ये समागताः ।
पृथग्वादाश्च वर्तन्ते चत्वरेषु सभासु च ॥४॥
उपायास्यति दाशार्हः पाण्डवार्थे पराक्रमी ।
स नो मान्यश्च पूज्यश्च सर्वथा मधुसूदनः ॥५॥

हे कुरुनन्दन ! यह बड़े आश्चर्य की बात सुनी जा रही है, जिसे घर २ में स्त्रियाँ, बालक और वृद्ध सब कह रहे हैं। कुछ विराट नगर की ओर से आने वाले लोग कहते हैं और कुछ लोग उसका बड़े आदर से अनुमोदन करते हैं। चौराहे और सभाओं में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भिन्न २ रूप से यही चर्चा सुनी जा रही है, कि पाण्डवों के कार्य की सिद्धि के लिए दशार्ह-देश-पूजित महापराक्रमी श्रीकृष्ण आ रहे हैं। वे श्रीकृष्ण हमारे भी मान्य और पूज्य हैं ॥३-५॥

तस्मिन्हि यात्रा लोकस्य भूतानामीश्वरो हि सः ।
तस्मिन्धृतिश्च वीर्यं च प्रज्ञा चौजश्च माधवे ॥६॥

प्रत्येक मनुष्य उन तक पहुचना चाहता है। वे सारे प्राणियों में ऐश्वर्य शील हैं। उन लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण में धैर्य, पराक्रम, बुद्धि और ओज आदि सब कुछ विद्यमान है ॥६॥

स मान्यतां नरश्रेष्ठः स हि धर्मः सनातनः ।
पूजितो हि सुखाय स्यादसुखः स्यादपूजितः ॥७॥

आप लोग उन नर-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण के प्रति आदर प्रदर्शित करना-क्योंकि वे सनातन धर्म का स्वरूप हैं। उनका आदर हो गया, तो सुख है और उनका अनादर हुआ, तो दुःख का कारण होगा ॥७॥

स चेष्टुष्यति दाशार्ह उपचारैररिन्दम ।
कृष्णात्सर्वानभिप्रायान्प्राप्स्यामः सर्वराजसु ॥८॥

हे अरिमर्दन ! हमारी सेवा शुश्रूषा से यदि दशार्हपति कृष्ण सन्तुष्ट हो गए—तो सारे राजाओं के मध्य में इन से हमारे सारे कार्य सिद्ध हो जावेंगे ॥८॥

तस्य पूजार्थमद्यैव संविधत्स्व परन्तप ।
सभाः पथि विधीयन्तां सर्वकामसमन्विताः ॥९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे परन्तप ! उनके स्वागत के लिए आज से ही तय्यारी करो। सारे सुख के साधनों से युक्त मार्ग में सभाएँ (ठहरने के स्थान) बना दो ॥ ९ ॥

यथा प्रीतिर्महाबाहो त्वयि जायेत तस्य वै ।
तथा कुरुष्व गान्धारे कथं वा भीष्म मन्यसे ॥१०॥

हे महाबाहो ! दुर्योधन ! श्रीकृष्ण की जिस तरह तुम लोगों में प्रीति उत्पन्न हो जावे, तुम वैसा ही विधान करो। कहिए--भीष्म ! आपकी क्या सम्मति है ॥ १० ॥

ततो भीष्मादयः सर्वे धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ।
ऊचुः परममित्येवं पूजयन्तोऽस्य तद्वचः ॥११॥

भीष्म आदि सारे सभासदों ने राजा धृतराष्ट्र के वचन का बड़ा आदर किया और कहा, कि यह बहुत ठीक है ॥ ११ ॥

तेषामनुमतं ज्ञात्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।
सभावास्तूनि रम्याणि प्रदेष्टुमुपचक्रमे ॥१२॥

इस सबके अभिप्रायों को जानकर राजा दुर्योधन ने बड़े सुन्दर सभा भवन बनाने की आज्ञा दी ॥ १२ ॥

ततो देशेषु देशेषु रमणीयेषु भागशः ।
सर्वरत्नसमाकीर्णाः सभाश्चक्रुरनेकशः ॥१३॥
आसनानि विचित्राणि युतानि विविधैर्गुणैः ।
स्त्रियो गन्धानलङ्कारान्सूक्ष्माणि वसनानि च ॥१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुणवन्त्यन्नपानानि भोज्यानि विविधानि च ।
माल्यानि च सुगन्धीनि तानि राजा ददौ ततः ।१५।

शिल्पियों (कारीगरों) ने सुन्दर २ स्थानों पर सारे रत्नों से जटित अनेक सभाएँ बना डाली। उन सभाओं में अनेक गुणों से युक्त विचित्र २ आसन, अनेक स्त्रियां, गंध, अलङ्कार, सूक्ष्म २ वस्त्र, स्वाद युक्त अन्न, पान, अनेक प्रकार की भोजन की सामग्री एवं सुगन्धित मालाएँ रखवा दी ॥ १४–१५ ॥

विशेषतश्च वासार्थं सभां ग्रामे वृकस्थले ।
विदधे कौरवो राजा बहुरत्नां मनोरमाम् ॥१६॥

कौरवों के राजा दुर्योधन ने विशेष रीति से वृकस्थल में श्रीकृष्ण के निवास के लिए सभा बनवाई, जिसमें बहुत से रत्न जड़े थे और जो बड़ी सुन्दर थी ॥ १६ ॥

एतद्विधाय वै सर्वं देवार्हमतिमानुषम् ।
आचख्यौ धृतराष्ट्राय राजा दुर्योधनस्तदा ॥१७॥

देवो के योग्य, मनुष्यों को दुर्लभ, यह सब कुछ सामग्री तय्यार करा कर दुर्योधन ने राजा धृतराष्ट्र को सूचना दी ॥ १७ ॥

ताः सभाः केशवः सर्वा रत्नानि विविधानि च ।
असमीक्ष्यैव दाशार्ह उपायात्कुरुसद्म तत् ॥१८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां-
उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मार्गे सभानिर्माणे
पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण ने उन सभा और अनेक रत्नों की ओर दृष्टि भी नहीं उठाई, वे उनका बिना उपयोग किए ही कुरुराज के भवन पर पहुंचे ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में दुर्योधन द्वारा श्रीकृष्ण के स्वागत में सभा बनवाने का पिचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ

छियासीवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

उपप्लव्यादिह क्षत्तरुपायातो जनार्दनः ।
वृकस्थले निवसति स च प्रातरिहैष्यति ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—हे विदुर ! उपप्लव्यनगर से चल कर श्रीकृष्ण वृकस्थल में आ पहुंचे हैं। आज वे वहां निवास करके प्रातःकाल यहाँ आ पहुंचेंगे ॥ १ ॥

आहुकानामधिपतिः पुरोगः सर्वसात्वताम् ।
महामना महावीर्यो महासत्वो जनार्दनः ॥२॥
स्फीतस्य वृष्णिराष्ट्रस्य भर्ता गोप्ता च माधवः ।
त्रयाणामपि लोकानां भगवान्प्रपितामहः ॥३॥

ये श्रीकृष्ण, आहुक क्षत्रियों के अधिपति, यादवों के अग्रगामी महामनस्वी, महापराक्रमी, महात्मा, दुष्ट जन विद्वेषी, विशाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृष्णिराष्ट्र के भरण पोषण करने वाले, लक्ष्मीपति, तीनों लोकों में तेजस्वी, ब्रह्मा से भी अधिक पूज्य हैं ॥२-३॥

वृष्ण्यंधकाः सुमनसो यस्य प्रज्ञामुपासते ।
आदित्या वसवो रुद्रा यथा बुद्धिं बृहस्पतेः ॥४॥

आदित्य, वसु, रुद्र आदि देवता, जैसे बृहस्पति की बुद्धि के अनुसार चलते हैं, वैसे ही वृष्णि और अधक वंशी क्षत्रिय, श्रीकृष्ण की सम्मति के पीछे बड़ी प्रसन्नता से चलते हैं ॥ ४ ॥

तस्मै पूजां प्रयोक्ष्यामि दाशार्हाय महात्मने ।
प्रत्यक्षं तव धर्मज्ञ तां मे कथयतः शृणु ॥५॥

हे धर्मात्मन् ! जो भेंट पूजा मैं उन महात्मा, दशार्ह-देश-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण को समर्पण करना चाहता हूं, वह मैं तुम्हारे सम्मुख उपास्थित करता हूं-तुम सुनो ॥ ५ ॥

एकवर्णैः सुकल्पांगैर्बाह्लिजातैर्हयोत्तमैः ।
चतुर्युक्तान्रथांस्तस्मै रौक्मान्दास्यामि षोडश ॥६॥
नित्यप्रभिन्नान्मातंगानीषादन्तान्प्रहारिणः ।
अष्टानुचरमेकैकमष्टौ दास्यामि कौरव ॥७॥

हे कौरव ! एक वर्ण के बड़े शक्तिशाली, बाह्लिक देशोत्पन्न चार २ घोड़ों से युक्त सुवर्ण के सोलह रथ देना चाहता हूं । इसी तरह हल के आकार के विशाल दांत वाले आठ मस्त हाथी, जिसके पीछे आठ २ अन्य हाथी होंगे प्रदान करूंगा ॥ ६-७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दासीनामप्रजातानां शुभानां रुक्मवर्चसाम् ।
शतमस्मै प्रदास्यामि दासानामपि तावताम् ॥८॥

जिनके सन्तान उत्पन्न नहीं हुई-ऐसी सुवर्ण के वर्ण वाली सौ दासी और इतने ही दास भेंट करना चाहता हूं ॥ ८ ॥

आविकं च सुखस्पर्शं पार्वतीयैरुपाहृतम् ।
तदप्यस्मै प्रदास्यामि सहस्राणि दशाऽष्ट च ॥९॥
अजिनानां सहस्राणि चीनदेशोद्भवानि च ।
तान्यप्यस्मै प्रदास्यामि यावदर्हति केशवः ॥१० ॥

पर्वत वासी जनों के लाये हुए पहाड़ी भेड़ों के बालों से बने हुए दश हजार उत्तम २ कम्बल और आठ हजार चीन देश के मृगों की छालाएँ समर्पण करूंगा। इनके अतिरिक्त जो अन्य सामग्री श्रीकृष्ण के भेंट देने के योग्य समझूंगा-प्रदान करूंगा ॥९-१०॥

दिवा रात्रौ च भात्येष सुतेजा विमलो मणिः ।
तमप्यस्मै प्रदास्यामि तमर्हति हि केशवः ॥११॥

यह जो महातेजस्वी रात दिन चमकने वाला चमकीला मणि (कोहनूर हीरा) है-यह भी मैं श्रीकृष्ण के भेंट करना चाहता हूं, क्योंकि वे ही इसके योग्य हैं ॥ ११ ॥

एकेनाऽभिपतत्यह्ना योजनानि चतुर्दश ।
यानमश्वतरीयुक्तं दास्ये तस्मै तदप्यहम् ॥१२॥

एक ही दिन में जिसके द्वारा चौदह योजन (छप्पन कोश) तक जाया जा सकता है-उत्तम अश्वतरियों (युवति घोड़ियों) से युक्त उस यान को भी मैं श्रीकृष्ण को दे देना चाहता हूं ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यावन्ति वाहनान्यस्य यावन्तः पुरुषाश्च ते ।
ततोऽष्टगुणमप्यस्मै भोज्यं दास्याम्यहं सदा ॥१३॥

श्रीकृष्ण के साथ जितने वाहन और जितने मनुष्य है, उन के भोजन से अठगुणा अधिक भोजन सामग्री उनकी सेवा में उपस्थित करूंगा ॥१३॥

मम पुत्राश्च पौत्राश्च सर्वे दुर्योधनादृते ।
प्रत्युद्यास्यन्ति दाशार्हं रथैर्मृष्टैः स्वलंकृताः ॥१४॥

दुर्योधन के अतिरिक्त मेरे सारे पुत्र और पौत्र, वस्त्र आभूषणों से सुसज्जित होकर साफ सुथरे रथों के साथ श्रीकृष्ण के स्वागत के लिए जावेंगे ॥ १४ ॥

स्वलंकृताश्च कल्याण्यः पादैरेव सहस्रशः ।
वारमुख्या महाभागं प्रत्युद्यास्यन्ति केशवम् ॥१५॥

वस्त्र और आभूषणों से अलंकृत अनेक सुन्दर वेश्याएँ महाभाग श्रीकृष्ण के स्वागत में पैदल ही पहुँचेगी ॥ १५ ॥

नगरादपि याः काश्चिद्गमिष्यन्ति जनार्दनम् ।
द्रष्टुं कन्याश्च कल्याण्यस्ताश्च यास्यन्त्यनावृताः ॥

हस्तिनापुर की अन्य भी सुन्दर २ कन्याएँ जो श्रीकृष्ण को देखने या उनके स्वागत में जाना चाहती है, वे सब बेरोक टोक जा सकेंगी ॥ १६ ॥

सस्त्रीपुरुषबालं च नगरं मधुसूदनम् ।
उदीक्षतां महात्मानं भानुमन्तमिव प्रजाः ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नगर के सारे स्त्री, पुरुष और बालक उदित होते हुए सूर्य को प्रजा की तरह निःशङ्क होकर महात्मा कृष्ण के दर्शन करें ॥ १७ ॥

महाध्वजपताकाश्च क्रियन्तां सर्वतोदिशः ।
जलावसिक्तो विरजाः पन्थास्तस्येति चाऽन्वशात् ।१८।

बड़ी २ ध्वजा और पताकाओं से युक्त सारी दिशाएँ सजा दी जावें और सड़कें छिड़काव करके मिट्टी धूल से रहित शुद्ध बना ली जावें-ऐसी घोषणा हो जावे ॥ १८ ॥

दुःशासनस्य च गृहं दुर्योधनगृहाद्वरम् ।
तदद्य क्रियतां क्षिप्रं सुसम्मृष्टमलंकृतम् ॥१९॥

दुःशासन का भवन दुर्योधन के भवन से सुशोभित है। तुम आज ही उसको साफ कराके सजवादो ॥ १९ ॥

एतद्धि रुचिराकारैः प्रासादैरुपशोभितम् ।
शिवं च रमणीयं च सर्वर्तु सुमहाधनम् ॥२०॥
सर्वमस्मिन्गृहे रत्नं मम दुर्योधनस्य च ।
यद्यदर्हति वार्ष्णेयस्तत्तद्देयमसंशयम् ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या-
मुद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये
षडशीतितमोऽध्याय ॥८७॥

दुःशासन का भवन, सुन्दर आकार के उत्तम २ कमरों से सुशोभित है। वह बड़ा सुखदायी, रमणीक, सब ऋतुओं के योग्य, महाधन के व्यय से तय्यार किया हुआ है। इस भवन में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे या दुर्योधन के पास जो उत्तम रत्न आदि सामग्री है और जो श्रीकृष्ण के योग्य हो-वह उसमें निःसन्देह सजवादी जावें- ॥ २०-२१ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में धृतराष्ट्र के वाक्य का छियासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

सत्तासीवां अध्याय

विदुर उवाच—

राजन्बहुमतश्चाऽसि त्रैलोक्यस्याऽपि सत्तम ।
सम्भावितश्च लोकस्य सम्मतश्चाऽसि भारत ॥१॥

विदुर ने कहा—हे राजसत्तम ! भारत ! आप तीनों लोकों में ऐश्वर्यशाली प्रसिद्ध हैं। आपकी संसार में बड़ी प्रतिष्ठा और सम्मान है ॥ १ ॥

यत्त्वमेवङ्गते ब्रूयाः पश्चिमे वयसि स्थितः ।
शास्त्राद्वा सुप्रतर्काद्वा सुस्थिरः स्थविरो ह्यसि ॥२॥

इस अवस्था में तुम जो कह रहे हो, वह शास्त्र और युक्ति से प्रमाणित है। आपकी आयु ढल चुकी है। आप बड़े अनुभवी, दृढ़ बुद्धि वाले वृद्ध हैं ॥ २ ॥

लेखा शशिनि भाः सूर्ये महोर्मिरिव सागरे ।
धर्मस्त्वयि तथा राजन्निति व्यवसिताः प्रजाः ॥३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन् ! चन्द्रमा के साथ कला, सूर्य में चमक और समुद्र में लहरें जिस तरह विद्यमान हैं, उसी तरह आप में धर्म की स्थिति है । ऐसा समस्त पुरुषों का ख्याल है ॥ ३ ॥

सदैव भावितो लोको गुणौघैस्तव पार्थिव ।
गुणानां रक्षणे नित्यं प्रयतस्व सबान्धवः ॥४॥

हे राजन् ! आपने अपने गुण समूह से सारे संसार को चकित कर रखा है । अब भी तुम अपने परिवार के सहित अपने इन दिव्य गुणों के रक्षण में प्रयत्न करो ॥ ४ ॥

आर्जवं प्रतिपद्यस्व मा बाल्याद्बहु नीनशः ।
राजन्पुत्रांश्च पौत्रांश्च सुहृदश्चैव सुप्रियान् ॥५॥

हे राजन् ! आप सरलता को स्वीकार करो और किसी प्रकार के अज्ञान से अपने पुत्र, पौत्र तथा प्रिय मित्रों को नष्ट न करो ॥ ५ ॥

यत्त्वमिच्छसि कृष्णाय राजन्नतिथये बहु ।
एतदन्यच्च दाशार्हः पृथिवीमपि चाऽर्हति ॥६॥

हे राजन् ! अतिथि रूप से आने वाले श्रीकृष्ण के लिए जो आप सम्मान प्रकट करना चाहते हैं, श्रीकृष्ण उस पूजा और उससे भी अधिक पृथिवी तक की भेंट के प्रदान करने के योग्य हैं ॥ ६ ॥

न तु त्वं धर्ममुद्दिश्य तस्य वा प्रियकारणात् ।
एतद्दित्ससि कृष्णाय सत्येनाऽऽत्मानमालभे ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन् ! मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है, कि आप श्रीकृष्ण के लिए ये सब कुछ धर्म समझ कर या उनके प्रेम के कारण से देना नहीं चाहते हो–यह सब कुछ मैं सत्य कहने की अभिलाषा से कह रहा हूं ॥ ७ ॥

मायैषा सत्यमेवैतच्छन्नैतद्भूरिदक्षिण ।
जानामि त्वन्मतं राजगूढं वाह्य न कर्मणा ॥८॥

हे राजन् ! श्रीकृष्ण को बहुत सी भेंट देने की आपकी इच्छा कपट और छल से भरी हुई दिखाई देती है । इस बाहरी दिखावे के भीतर तुम्हारी आन्तरिक छल पूर्ण भावना का पता लग रहा है ,यह बिल्कुल सत्य है ॥ ८ ॥

पञ्च पञ्चैव लिप्स्यन्ति ग्रामकान्पाण्डवा नृप ।
न च दित्ससि तेभ्यस्तांस्तच्छमं न करिष्यसि ॥९॥

हे राजन् ! पाण्डव, केवल पाँच गाँव ही मांगते हैं, तुम उनको पांच गांव भी देना नहीं चाहते हो–फिर सन्धि कैसे हो सकती है ॥ ९ ॥

अर्थेन तु महाबाहुं वार्ष्णेयं त्वं जिहीर्षसि ।
अनेन चाप्युपायेन पाण्डवेभ्यो विभेत्स्यसि ॥१०॥

तुम वृष्णिवंशश्रेष्ठ, श्रीकृष्ण को धन से अपने वश में करना चाहते हो और इसी उपाय से पाण्डवों से उनको फोड़ लेने की अभिलाषा कर रहे हो ॥ १० ॥

न च वित्तेन शक्योऽसौ नोद्यमेन न गर्हया ।
अन्यो धनञ्जयात्कर्तुमेतत्तत्त्वं ब्रवीमि ते ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् कृष्ण, धन या किसी प्रकार के दबाव आदि उपायों से अर्जुन से पृथक् नहीं किए जा सकते हैं-यह मैं तुमको तत्व बतला देना चाहता हूं ॥ ११ ॥

वेद कृष्णस्य माहात्म्यं वेदाऽस्य दृढभक्तिताम् ।
अत्याज्यमस्य जानामि प्राणैस्तुल्यं धनञ्जयम् ॥१२॥

मैं कृष्ण के महत्व को जानता हूं और पाण्डवों के प्रति होने की उनकी दृढ़ भक्ति को भी जानता हूं और यह भी जानता हूं, कि अर्जुन उनके प्राणों के तुल्य हैं, वे उसे कभी नहीं छोड़ेंगे ॥ १२ ॥

अन्यत्कुम्भादपां पूर्णादन्यत्पादावसेचनात् ।
अन्यत्कुशलसम्प्रश्नान्नैवेक्ष्यति जनार्दनः ॥१३॥

जल से पूर्ण घड़ों द्वारा चरण प्रक्षालन और कुशल प्रश्न के अतिरिक्त अन्य सामग्री की ओर श्रीकृष्ण दृष्टि भी नहीं उठावेंगे ॥ १३ ॥

यच्चास्य प्रियमातिथ्यं मानार्हस्य महात्मनः ।
तदस्मै क्रियतां राजन्मानार्होऽसौ जनार्दनः ॥१४॥

हे राजन् ! मान के योग्य इन महात्मा श्रीकृष्ण के जो प्रिय सत्कार हो, वही आप करें, क्योंकि वे अवश्य ही मान करने के योग्य हैं ॥ १४ ॥

आशंसमानः कल्याणं कुरूनभ्येति केशवः ।
येनैव राजन्नर्थेन तदेवाऽस्मा उपाकुरु ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

हे राजन् ! श्रीकृष्ण, कौरवों के कल्याण की इच्छा से आ रहे हैं। अब वे जिस स्वार्थ को लेकर आ रहे हैं, आप उनका वही स्वार्थ पूरा करो ॥ १५ ॥

शममिच्छति दाशार्हस्तव दुर्योधनस्य च ।
पाण्डवानां च राजेन्द्र तदस्य वचनं कुरु ॥१६॥

हे राजेन्द्र ! दशार्ह श्रेष्ठ श्रीकृष्ण आप, दुर्योधन और और पाण्डवों में सन्धि चाहते हैं, आप उनकी इस अभिलाषा को पूरी करो ॥ १६ ॥

पिताऽसि राजन्पुत्रास्ते वृद्धस्त्वं शिशवः परे ।
वर्तस्व पितृवत्तेषु वर्तन्ते ते हि पुत्रवत् ॥१७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुरवाक्ये सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

हे राजन् ! आप उनके पिता और वे आपके पुत्र हैं। आप वृद्ध और वे बालक हैं। आप उन पर पिता के समान व्यवहार करें, वे आपके साथ पुत्रवत् रहेंगे ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में विदुर वाक्य का सत्तासीवां अध्याय पूरा हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अट्ठासीवां अध्याय

दुर्योधन उवाच—

यदाह विदुरः कृष्णे सर्वं तत्सत्यमच्युते ।
अनुरक्तो ह्यसंहार्यः पार्थान्प्रति जनार्दनः ॥१॥

दुर्योधन ने कहा—हे राजन् ! भेद को प्राप्त नहीं होने वाले कृष्ण के विषय में जो विदुर ने कहा है, वह बिल्कुल सच है। यह जनार्दन पाण्डवों में अनुरक्त है और इसका हमारी ओर मिल जाना बहुत कठिन है ॥ १ ॥

यत्तत्सत्कारसंयुक्तं देयं वसु जनार्दने ।
अनेकरूपं राजेन्द्र न तद्देयं कदाचन ॥२॥

हे राजेन्द्र ! जनार्दन कृष्ण के सत्कार में जो धन का उपयोग होगा-वही व्यय करना चाहिए । राजा धृतराष्ट्र का कहा हुआ अनेक भांति का द्रव्य कृष्ण को अर्पण करने से कोई लाभ नहीं है ॥ २ ॥

देशः कालस्तथाऽयुक्तो नहि नाऽर्हति केशवः ।
मंस्यत्यधोक्षजो राजन्भयादर्चति मामिति ॥३॥

हे राजन् ! कृष्ण को ये वस्तु अवश्य देनी चाहिए थी, परन्तु इस समय देश काल इसके विरुद्ध है, इस दशा में तो अधोक्षज कृष्ण, इस पूजा को भय से की हुई मानेंगे ॥ ३ ॥

अवमानश्च यत्र स्यात्क्षत्रियस्य विशाम्पते ।
न तत्कुर्याद् बुधः कार्यमिति मे निश्चिता मतिः ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षत्रिय का जिस काम में अपमान हो—बुद्धिमान् को उस कार्य को कभी नहीं करना चाहिए—मेरा तो यही निश्चित मत है ॥४॥

स हि पूज्यतमो लोके कृष्णः पृथुललोचनः ।
त्रयाणामपि लोकानां विदितं मम सर्वथा ॥५॥
न तु तस्मै प्रदेयं स्यात्तथा कार्यगतिः प्रभो ।
विग्रहः समुपारब्धो न हि शाम्यत्यविग्रहात् ॥६॥

हे प्रभो ! विशाल लोचन कृष्ण यद्यपि संसार में सब भांति से पूज्य हैं । मुझे यह भी विदित है, कि ये तीनों लोक में पूजित हैं, परन्तु इस समय कार्य का ढंग इस तरह का पड़ गया है, कि उनको कुछ भी धन नहीं देना चाहिए । अब तो झगड़ा खड़ा हो गया । इसकी समाप्ति विना झगड़े हुए नहीं होगी ॥ ५-६ ॥

वैशम्पायन उवाच—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भीष्मः कुरुपितामहः ।
वैचित्रवीर्यं राजानमिदं वचनमब्रवीत् ॥७॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! दुर्योधन के वचन सुन कर कुरु पितामह भीष्म, विचित्रवीर्य के पुत्र राजा धृतराष्ट्र से ये वचन बोले ॥ ७ ॥

सत्कृतोऽसत्कृतो वाऽपि न क्रुद्ध्येत जनार्दनः ।
नाऽलमेनमवज्ञातुं नाऽवज्ञेयो हि केशवः ॥८॥

हे राजन् ! जनार्दन कृष्ण का सत्कार करो या असत्कार करो—वह कभी रुष्ट नहीं होंगे, श्रीकृष्ण का किसी प्रकार अनादर न कर बैठना, क्योंकि वे अनादर के योग्य नहीं है ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यत्तु कार्यं महाबाहो मनसा कार्यतां गतम् ।
सर्वोपायैर्न तच्छक्यं केनचित्कर्तुमन्यथा ॥९॥

हे महाबाहो ! श्रीकृष्ण ने जिस कार्य को कार्य रूप में परिणत करने का विचार कर लिया-उस कार्य को किसी भी उपाय से विपरीत करवा देने की किसी में शक्ति नहीं है ॥ ९ ॥

स यद् ब्रूयान्महाबाहुस्तत्कार्यमविशङ्कया ।
वासुदेवेन तीर्थेन क्षिप्रं संशाम्य पाण्डवैः ॥१०॥

महाबाहु कृष्ण जिस कार्य के लिए कहें, तुम लोगों को वह कार्य निःशंक होकर कर देना चाहिए । जिस मार्ग से श्रीकृष्ण पाण्डवों के साथ सन्धि करने को कहें, वही मार्ग मान लेने योग्य है ॥ १० ॥

धर्म्यमर्थ्यं च धर्मात्मा ध्रुवं वक्ता जनार्दनः ।
तस्मिन्वाच्याः प्रिया वाचो भवता बान्धवैः सह ।११।

जनार्दन कृष्ण, धर्म और नीति के अनुसार दृढ़ वार्ता कहते हैं । तुम सब लोगों को अपने बान्धवों के सहित उनसे मधुर वार्तालाप करना चाहिए ॥ ११ ॥

दुर्योधन उवाच—

न पर्यायोऽस्ति यद्राजञ्श्रियं निष्केवलामहम् ।
तैः सहेमामुपाश्नीयां यावज्जीवं पितामह ॥१२॥

दुर्योधन ने कहा-हे राजन् ! पितामह ! समस्त राज्यलक्ष्मी को पाण्डवों के साथ बांट लूं—यह ढंग मुझे स्वीकार नहीं है । मैं जीवनपर्यन्त पाण्डवों के साथ दास की भांति राज्य-लक्ष्मी का उपभोग नहीं कर सकता ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदं तु सुमहत्कार्यं शृणु मे यत्समर्थितम् ।
परायणं पाण्डवानां नियच्छामि जनार्दनम् ॥१३॥

मैंने जो महान् कार्य निश्चित कर रखा है-वह आप लोग सुन लो, कि पाण्डवों के सहायक जनार्दन कृष्ण को यहीं पर बन्धन में डाल लूं ॥ १३ ॥

तस्मिन्बद्धे भविष्यन्ति वृष्णयः पृथिवी तथा ।
पाण्डवाश्च विधेया मे स च प्रातरिहैष्यति ॥१४॥

कृष्ण के बन्धन में डाल लेने से सारे वृष्णि ही क्या ? पृथिवी भर के राजा मेरे वश में हो जावेंगे और सारे पाण्डव भी मेरे दास बन जावेंगे । वही कृष्ण, प्रातःकाल यहां आवेंगे ॥ १४ ॥

अत्रोपायान्यथा सम्यङ् न बुद्ध्येत जनार्दनः ।
न चाऽपायो भवेत्कश्चित्तद्भवान्प्रब्रवीतु मे ॥१५॥

जनार्दन कृष्ण, हमारे इन उपायों को न जान सके और इस कार्य में किसी प्रकार कोई विघ्न उपस्थित न हो सके, तुम लोग मुझे ऐसा ही क्रम बताओ ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा घोरं कृष्णाभिसंहितम् ।
धृतराष्ट्रः सहामात्यो व्यथितो विमनाऽभवत् ॥१६॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! दुर्योधन के कृष्ण को बन्धन में डालने के विचार को सुनकर मन्त्रियों के साथ राजा धृतराष्ट्र बड़ा उदास और दुःखी हुआ ॥ १६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततो दुर्योधनमिमं धृतराष्ट्रोऽब्रवीद्वचः ।
मैवं वोचः प्रजापाल नैष धर्मः सनातनः ॥१७॥

अब राजा धृतराष्ट्र, दुर्योधन से यह वचन बोला—हे प्रजापालक ! दुर्योधन ! तुमको ऐसा नहीं कहना चाहिए। यह तो सनातन धर्म नहीं है ॥ १७ ॥

दूतश्च हि हृषीकेशः सम्बन्धी च प्रियश्च नः ।
अपापः कौरवेयेषु स कथं बन्धमर्हति ॥१८॥

ऋषीकेश भगवान् कृष्ण एक तो दूत बन कर आ रहे है, दूसरे वे हमारे सम्बन्धी और प्रियमित्र हैं। वे कौरवों के प्रति द्वेष नहीं रखते हैं, फिर उनको बन्धन (कैद) में डालना कैसे उचित हो सकता है ॥ १८ ॥

भीष्म उवाच—

परीतस्तव पुत्रोऽयं धृतराष्ट्र सुमन्दधीः ।
वृणोत्यनर्थं नैवाऽर्थं याच्यमानः सुहृज्जनैः ॥१९॥

भीष्म बोले—हे धृतराष्ट्र ! तुम्हारा यह पुत्र बड़ा मूर्ख और काल के वश में हो रहा है, इसके हितकारी जन इसको अनेक हितकारी उपाय बताते हैं, परन्तु यह अनर्थकारी बातों को ही करता चला जाता है, किसी अच्छी बात को ग्रहण नहीं करता ॥ १९ ॥

इममुत्पथि वर्तन्तं पापं पापानुबन्धिनम् ।
वाक्यानि सुहृदां हित्वा त्वमप्यस्याऽनुवर्तसे ॥२०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मार्ग छोड़ कर चलने वाले, पाप कर्म के दुराग्रही इस पापी दुर्योधन का ही सुहृदों के वाक्यों को छोड़कर तुम अनुसरण करते हो ॥ २० ॥

कृष्णमक्लिष्टकर्माणमासाद्याऽयं सुदुर्मतिः ।
तव पुत्रः सहामात्यः क्षणेन न भविष्यति ॥२१॥

उत्तम २ कर्मों के करने वाले श्रीकृष्ण को बन्धन में डालने के विचार से यह तेरा मूर्ख पुत्र अपने मन्त्रियों के साथ क्षण भर में नष्ट हो जावेगा ॥ २१ ॥

पापस्याऽस्य नृशंसस्य त्यक्तधर्मस्य दुर्मतेः ।
नोत्सहेऽनर्थसंयुक्ताः श्रोतुं वाचः कथञ्चन ॥२२॥

मैं तो इस नीच, पापी, अधर्मी, दुष्ट दुर्योधन की अनर्थों से भरी हुई बात किसी भी प्रकार सुनना नहीं चाहता हूं ॥ २२ ॥

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठो वृद्धः परममन्युमान् ।
उत्थाय तस्मात्प्रातिष्ठद्भीष्मः सत्यपराक्रमः ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि दुर्योधनवाक्ये अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

इतना कह कर भरत-वंश-श्रेष्ठ, सत्य-पराक्रमी, वृद्ध पितामह, भीष्म बड़े क्रोध में भरकर उठ खड़े हुए और वहां से चल दिए ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में दुर्योधन वाक्य का अट्ठासीवां अध्याय समाप्त हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नवासीवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

प्रातरुत्थाय कृष्णस्तु कृतवान्सर्वमाह्निकम् ।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः प्रययौ नगरं प्रति ॥१॥

वैशम्पायन बोले–हे राजन् ! श्रीकृष्ण ने प्रातःकाल उठकर सारे सन्ध्या वन्दनादि नित्य कर्म किए । इसके अनन्तर ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर हस्तिनापुर की ओर चल दिए ॥ १ ॥

तं प्रयान्तं महाबाहुमनुज्ञाप्य महाबलम् ।
पर्यवर्तन्त ते सर्वे वृकस्थलनिवासिनः ॥२॥

हस्तिनापुर जाने को तय्यार महाबाहु और महाबली भगवान् कृष्ण को अनुज्ञा (इजाजत) देकर वृक-स्थल नगर के निवासी जनों ने उनको घेर लिया ॥ २ ॥

धार्तराष्ट्रास्तमायान्तं प्रत्युज्जग्मुः स्वलंकृताः ।
दुर्योधनादृते सर्वे भीष्मद्रोणकृपादयः ॥३॥

जब श्रीकृष्ण चल दिए और कौरवों ने उनके आने का समाचार सुना, तो उत्तम २ वस्त्र धारण करके भीष्म द्रोण कृप आदि के सहित दुर्योधन को छोड़ कर सारे धृतराष्ट्र के पुत्र स्वागत को आए ॥३॥

पौराश्च बहुला राजन्हृषीकेशं दिदृक्षवः ।
यानैर्बहुविधैरन्यैः पद्भिरेव तथा परे ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन् ! हृषीकेश श्रीकृष्ण के दर्शनों की आकांक्षा से अनेक पुरवासी अनेक भाँति के वाहनों पर सवार होकर आए तथा कुछ लोग पैदल ही भाग पड़े ॥ ४ ॥

स वै पथि समागम्य भीष्मेणाऽक्लिष्टकर्मणा ।
द्रोणेन धार्तराष्ट्रैश्च तैर्वृतो नगरं ययौ ॥५॥

उत्तम कर्म करने वाले भीष्म तथा द्रोण और सारे धृतराष्ट्र पुत्रों ने श्रीकृष्ण को मार्ग में ही आकर घेर लिया। उन से घिरे हुए श्रीकृष्ण हस्तिनापुर की ओर चल दिए ॥ ५ ॥

कृष्णसम्माननार्थं च नगरं समलंकृतम् ।
बभूव राजमार्गश्च बहुरत्नसमाचितः ॥६॥

श्रीकृष्ण के सम्मान के लिए नगर बहुत ही सजाया गया और अनेक रत्नों से राजमार्ग (सड़क) अलंकृत कर दिए गए ॥ ६ ॥

न च कश्चिद्गृहे राजन्स्तदाऽऽसीद्भरतर्षभ ।
न स्त्री न वृद्धो न शिशुर्वासुदेवदिदृक्षया ॥७॥

हे भरतर्षभ ! उस समय कोई भी ऐसा घर नहीं था, जिस में कोई भी स्त्री, पुरुष या वृद्ध श्रीकृष्ण के दर्शनों की लालसा न रखता हो ॥ ७ ॥

राजमार्गे नरास्तस्मिन्संस्तुवन्त्यवनिं गताः ।
तस्मिन्काले महाराज हृषीकेशप्रवेशने ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे महाराज ! हृषीकेश श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर में प्रवेश करने के समय सड़क पर भूमि में खड़े लोग श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥

आवृतानि वरस्त्रीभिर्गृहाणि सुमहान्त्यपि ।
प्रचलन्तीव भारेण दृश्यन्ते स्म महीतले ॥९॥

बड़े २ भवन उत्तम २ स्त्रियों से घिर रहे थे और वे बोझे से पृथिवी की ओर मानो झुके जा रहे थे ॥ ९ ॥

तथा च गतिमन्तस्ते वासुदेवस्य वाजिनः ।
प्रनष्टगतयोऽभूवन्राजमार्गे नरैर्वृते ॥१०॥

वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण के महा गतिमान् अश्व भी मनुष्यों से घिरे हुए राजमार्ग में धीरे २ चल सके ॥ १० ॥

स गृहं धृतराष्ट्रस्य प्राविशच्छत्रुकर्शनः ।
पाण्डुरं पुण्डरीकाक्षः प्रासादैरुपशोभितम् ॥११॥

शत्रु-विजयी पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्ण, राजा धृतराष्ट्र के श्वेत भवन में प्रविष्ट हुए, जो अटारियों से सुशोभित था ॥ ११ ॥

तिस्रः कक्ष्या व्यतिक्रम्य केशवो राजवेश्मनः ।
वैचित्रवीर्यं राजानमभ्यगच्छदरिन्दमः ॥१२॥

अरिमर्दन, श्रीकृष्ण, राज मन्दिर की तीन कक्षाओं (मंजिलों) को उलांघ कर चौथी कक्षा में विचित्रवीर्य के पुत्र राजा धृतराष्ट्र के पास पहुंचे ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभ्यागच्छति दाशार्हे प्रज्ञाचक्षुर्नराधिपः ।
सहैव द्रोणभीष्माभ्यामुदतिष्ठन्महायशाः ॥१३॥

जब राजा धृतराष्ट्र को ज्ञात हुआ, कि श्रीकृष्ण आ पहुंचे हैं, तो महायशस्वी धृतराष्ट्र, भीष्म द्रोण आदि के साथ खड़ा हो गया ॥ १३ ॥

कृपश्च सोमदत्तश्च महाराजश्च बाह्लिकः ।
आसनेभ्योऽचलन्सर्वे पूजयन्तो जनार्दनम् ॥१४॥

इसी क्षण जनार्दन कृष्ण के आदर में कृप, सोमदत्त, महाराज बाल्हिक भी अपने २ आसनों से खड़े हो गए ॥ १४ ॥

ततो राजानमासाद्य धृतराष्ट्रं यशस्विनम् ।
स भीष्मं पूजयामास वार्ष्णेयो वाग्भिरञ्जसा ॥१५॥

इसके अनन्तर वृष्णि-वंश-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण भी यशस्वी राजा धृतराष्ट्र और भीष्म के पास पहुँचे और अपनी मधुर वाणी से श्रीकृष्ण ने उनका आदर प्रकट किया ॥ १५ ॥

तेषु धर्मानुपूर्वीं तां प्रयुज्य मधुसूदनः ।
यथावयः समीयाय राजभिः सह माधवः ॥१६॥

मधुसूदन कृष्ण ने प्रत्येक की धर्मानुसार पूजा की और जैसी जिस राजा की आयु और पद था, उसके अनुसार उनसे मिलें ॥ १६ ॥

अथ द्रोणं सबाह्लीकं सपुत्रं च यशस्विनम् ।
कृपं च सोमदत्तं च समीयाय जनार्दनः ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा बाह्लीक और पुत्र अश्वत्थामा के सहित यशस्वी द्रोणाचार्य, कृप तथा सोमदत्त से जनार्दन कृष्ण, आदर के साथ मिले ॥ १७॥

तत्राऽऽसीदूर्जितं मृष्टं काञ्चनं महदासनम् ।
शासनाद्धृतराष्ट्रस्य तत्रोपाविशदच्युतः ॥१८॥

वहां पर एक अर्जित (वेश कीमती) चमकदार सुवर्ण का आसन विछा हुआ था, जिस पर धृतराष्ट्र की आज्ञा से भगवान् कृष्ण बैठ गए ॥१८॥

अथ गां मधुपर्कं चाऽप्युदकं च जनार्दने ।
उपजह्रुर्यथान्यायं धृतराष्ट्रपुरोहिताः ॥१९॥

इसके अनन्तर धृतराष्ट्र के पुरोहितों ने न्यायानुसार श्रीकृष्ण के लिए गौ, मधुपर्क और अर्घ्य आदि का जल प्रदान किया ॥१९॥

कृतातिथ्यस्तु गोविन्दः सर्वान्परिहसन्कुरून् ।
आस्ते साम्बन्धिकं कुर्वन्कुरुभिः परिवारितः ॥२०॥

जब श्रीकृष्ण का अतिथि सत्कार हो चुका-तो वे सारे कौरवों से हँस २ कर बार्तालाप करते रहे तथा सारे कौरवों से घिरे हुए अपने सम्बन्ध की चर्चा में बहुत देर तक निमग्न रहे ॥ २० ॥

सोऽर्चितो धृतराष्ट्रेण पूजितश्च महायशाः ।
राजानं समनुज्ञाप्य निरक्रामदरिन्दमः ॥२१॥

अरिमर्दन महा-यशस्वी श्रीकृष्ण, अर्चित और पूजित होकर राजा धृतराष्ट्र से आज्ञा लेकर चल दिए ॥ २१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तैः समेत्य यथान्यायं कुरुभिः कुरुसंसदि ।
विदुरावसथं रम्यमुपातिष्ठत माधवः ॥२२॥

उस कौरवों की सभा में न्यायानुसार सब कौरवों से मिलकर श्रीकृष्ण रमणीक विदुर के भवन को चल दिए ॥ २२ ॥

विदुरः सर्वकल्याणैरभिगम्य जनार्दनम् ।
अर्चयामास दाशार्हं सर्वकामैरुपस्थितम् ॥२३॥

सब प्रकार की कामनाओं से परिपूर्ण जनार्दन श्रीकृष्ण, जब विदुर के भवन में पहुँचे, तो विदुर ने बड़ी २ उत्तम २ वस्तुओं से दशार्ह श्रेष्ठ श्रीकृष्ण की पूजा की ॥ २३ ॥

या मे प्रीतिः पुष्कराक्ष त्वद्दर्शनसमुद्भवा ।
सा किमाख्यायते तुभ्यमन्तरात्माऽसि देहिनाम् ॥२४॥

हे कमललोचन ! आपके दर्शन से जो मुझे आनन्द हुआ है, मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता हूं । आप तो प्राणियों के आन्तरिक भाव के पहचानने वाले हो-इससे आपसे कुछ कहने की क्या आवश्यकता है ॥ २४ ॥

कृतातिथ्यं तु गोविन्दं विदुरः सर्वधर्मवित् ।
कुशलं पाण्डुपुत्राणामपृच्छन्मधुसूदनम् ॥२५॥

सब धर्मों के जानने वाले विदुर श्रीकृष्ण का अतिथि सत्कार करके उनसे पाण्डवों की कुशल पूछने लगे ॥ २५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रीयमाणस्य सुहृदो विदुरो बुद्धिसत्तमः ।
धर्मार्थनित्यस्य सतो गतरोषस्य धीमतः ॥२६॥
तस्य सर्वं सविस्तारं पाण्डवानां विचेष्टितम् ।
क्षत्तुराचष्ट दाशार्हः सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यांउद्योग-पर्वणि भगवद्यानपर्वणि धृतराष्ट्रगृहप्रवेशपूर्वकं श्रीकृष्णस्य विदुरगृहप्रवेशे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

बुद्धिमान् विदुर ने प्रसन्न चित्त, सुहृद्भूत, धर्म और नीति के ज्ञाता, रागद्वेष रहित, बुद्धिमान् श्रीकृष्ण से पाण्डवों की सारी सविस्तार चेष्टाएँ पूछी। सब कुछ प्रत्यक्ष देखने वाले दशार्ह श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने विदुर को उनकी सारी चेष्टाएँ स्पष्ट कह सुनाई ॥ २६–२७ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में श्रीकृष्ण का धृतराष्ट्र के गृह प्रवेश के अनन्तर विदुर के गृह प्रवेश का नवासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नव्वेवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

अथोपगम्य विदुरमपराह्णे जनार्दनः ।
पितृष्वसारं स पृथामभ्यगच्छदरिन्दमः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! अरिन्दम जनार्दन श्रीकृष्ण इस प्रकार विदुर से मिलकर दोपहर को अपनी पिता की बहन (भूआ कुन्ती के पास पहुँचे ॥ १ ॥

सा दृष्ट्वा कृष्णमायान्तं प्रसन्नादित्यवर्चसम् ।
कण्ठे गृहीत्वा प्राक्रोशत्स्मरन्ती तनयान्पृथा ॥२।

मेघों से निर्मुक्त स्वच्छ सूर्य के समान देदीप्यमान् श्रीकृष्ण को आता हुआ देखकर कुन्ती अपने पुत्रों का स्मरण करके और कृष्ण के गले में बाहु डाल कर उच्च स्वर से रोने लगी ॥ २ ॥

तेषां सत्ववतां मध्ये गोविन्दं सहचारिणम् ।
चिरस्य दृष्ट्वा वार्ष्णेयं बाष्पमाहारयत्पृथा ॥३॥

उन महाबली पाण्डवों के मध्य में सदा साथ घूमने वाले वृष्णि-वंश-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण को बहुत दिनों में देखकर कुन्ती के आंसुओं की धारा बह निकली ॥ ३ ॥

साऽब्रवीत्कृष्णमासीनं कृतातिथ्यं युधां पतिम् ।
बाष्पगद्गदपूर्णेन मुखेन परिशुष्यता ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योद्धाओं में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण का कुन्ती ने अतिथि सत्कार किया और वह फिर उनके आसन पर बैठ जाने पर आंसुओं से पूर्ण गद्गद शुष्क मुख से कहने लगी ॥ ४ ॥

ये ते बाल्यात्प्रभृत्येव गुरुशुश्रूषणे रताः ।
परस्परस्य सुहृदः सम्मताः समचेतसः ॥
निकृत्या भ्रंशिता राज्याज्जनार्हा निर्जनं गताः ॥५॥

हे जनार्दन ! जो तेरे मित्र, बचपन से ही गुरु की सेवा में तत्पर रहते थे, जो आपस में प्रेम करने वाले, एक दूसरे का आदर करने वाले, एक चित्त भाई थे, जिनको छल पूर्वक राजा दुर्योधन ने राज्य से भ्रष्ट करके निर्जन वन में भेज दिया, जो कि जन समूह में रहने के योग्य थे ॥ ५ ॥

विनीतक्रोधहर्षाश्च ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ।
त्यक्त्वा प्रियसुखे पार्था रुदतीमपहाय माम् ॥६॥
अहार्षुश्च वनं यान्तः समूलं हृदयं मम ।

जिन मेरे पुत्रों ने क्रोध और हर्ष को भी जीत रखा है, जो ब्राह्मणों के रक्षक और सत्यवादी हैं। वे अपने प्रिय परिवार और सुख को एवं रोती हुई मुझे छोड़ कर वन को चल दिए और वन में जाते २ मेरे समस्त हृदय को साथ ले गए ॥ ६ ॥

अतदर्हा महात्मानः कथं केशव पाण्डवाः ॥७॥
ऊषुर्महावने तात सिंहव्याघ्रगजाकुले ।

हे केशव ! वे महात्मा पाण्डव इन सब क्लेशों के अयोग्य थे, परन्तु उनको बल पूर्वक इन में धकेल दिया गया। हे तात ! अब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बताओ ? वे सिंह, व्याघ्र और हाथियों से व्याप्त उस महा-वन में कैसे निवास कर पाए ॥ ७ ॥

बाला विहीनाः पित्रा ते मया सततलालिताः ॥८॥
अपश्यन्तश्च पितरौ कथमूषुर्महावने ।

पिता हीन पाण्डवों को मैंने ही जैसे तैसे पालन पोषण किया है। वे माता और पिता को न देखकर महावन में कैसे निवास कर सके होंगे ॥ ८ ॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्मृदङ्गैर्वेणुनिःस्वनैः ॥९॥
पाण्डवाः समबोध्यन्त बाल्यात्प्रभृति केशव ।
ये स्म वारणशब्देन हयानां ह्रेषितेन च ॥१०॥
रथनेमिनिनादैश्च व्यबोध्यन्त तदा गृहे ।
शङ्खभेरीनिनादेन वेणुवीणानुनादिना ॥११॥
पुण्याहघोषमिश्रेण पूज्यमाना द्विजातिभिः ।

हे केशव ! पाण्डव तो बचपन से ही शङ्ख, दुन्दुभियों के ऊंचे शब्द तथा मृदङ्ग और वेणु वीणा के मधुर स्वर से जागा करते थे। ये मेरे पुत्र तो घर पर हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिन-हिनाहट और रथ की नेमिकी ध्वनि से नींद को छोड़ा करते थे। शंख भेरी के शब्द, वेणु और वीणा की मधुर झंकार के साथ ब्राह्मणों के पुण्याहवाचन की वेदध्वनि से नित्य पूजित होते थे।९-११।

वस्त्रै रत्नैरलङ्कारैः पूजयन्तो द्विजन्मनः ॥१२॥
गीर्भिर्मङ्गलयुक्तभिर्ब्राह्मणानां महात्मनाम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्चितैरर्चनार्हैश्च स्तुवद्भिरभिनन्दिताः ॥१३॥
प्रासादाग्रेष्वबोध्यन्त राङ्कवाजिनशायिनः ।

उस समय पाण्डव, वस्त्र, रत्न और आभूषणों से ब्राह्मणों की पूजा करते थे। वे पूजा को प्राप्त हुए महात्मा ब्राह्मण, अपनी माङ्गलिक वाणी से तथा आदर प्रकट करने वाली स्तुतियों से सदा पाण्डवों की स्तुति करते थे। उत्तम मृगों की चर्मों के आसनों (गलीचों) पर सोने वाले पाण्डव, ब्राह्मणों की स्तुति पाठ की ध्वनि से ही महलों में जागा करते थे ॥ १२-१३ ॥

क्रूरं च निनदं श्रुत्वा श्वापदानां महावने ॥१४॥
न स्मोपयान्ति निद्रां ते न तदर्हा जनार्दन ।

हे जनार्दन! अब वे महावन में वनैले जन्तुओं के क्रूर चीत्कार सुनकर कैसे सोते होंगे, क्योंकि वे तो इस प्रकार के दुःखद शब्दों के सुनने के अभ्यासी नहीं हैं ॥ १४ ॥

भेरीमृदङ्गनिनदैः शङ्खवैणवनिःस्वनैः ॥१५॥
स्त्रीणां गीतनिनादैश्च मधुरैर्मधुसूदन ।
बन्दिमागधसूतैश्च स्तुवद्भिर्बोधिताः कथम् ॥१६॥
महावनेष्वबोध्यन्त श्वापदानां रुतेन च ।

हे मधुसूदन! जो भेरी, मृदङ्ग शंख, वेणु आदि की ध्वनि, स्त्रियों के मधुर गीत तथा बन्दि, मागध और सूतों की स्तुतियों से जैसे तैसे सचेत होते थे, वे आज महावन में जंगली जीवों के शब्दों से कैसे जागते होंगे ॥ १५-१६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ह्रीमान्सत्यधृतिर्दान्तो भूतानामनुकम्पिता ॥१७॥
कामद्वेषौ वशे कृत्वा सतां वर्त्माऽनुवर्तते ।
अम्बरीषस्य मान्धातुर्ययातेर्नहुषस्य च ॥१८॥
भरतस्य दिलीपस्य शिबेरौशीनरस्य च ।
राजर्षीणां पुराणानां धुरं धत्ते दुरुद्वहाम् ॥१९॥
शीलवृत्तोपसम्पन्नो धर्मज्ञः सत्यसङ्गरः ।
राजा सर्वगुणोपेतस्त्रैलोक्यस्याऽपि यो भवेत् ॥२०॥
अजातशत्रुर्धर्मात्मा शुद्धजाम्बूनदप्रभः ।
श्रेष्ठः कुरुषु सर्वेषु धर्मतः श्रुतवृत्ततः ॥
प्रियदर्शी दीर्घभुजः कथं कृष्ण युधिष्ठिरः ॥२१॥

हे कृष्ण ! लज्जाशील, सत्यव्रत का धारण करने वाला, उदार, प्राणियों पर दया करने वाला और काम द्वेष को वश में करके सज्जनों के मार्ग पर चलने वाला अम्बरीष, मान्धाता, ययाति, नहुष, भरत, दिलीप, उशीनर पुत्र शिबि आदि प्राचीन उत्तम २ राजर्षियों के अनुसार धारण करने में कठिन राज्य धुर का धारण करने वाला, शील और सदाचार से युक्त, धर्मात्मा, सत्य प्रतिज्ञा वाला, सब गुणों से युक्त, त्रिलोकी का भी राजा बनने के योग्य, सारे कौरवों में धर्मात्मा, शास्त्र ज्ञान और सदाचार से श्रेष्ठ, सुन्दर दर्शनों वाला, दीर्घ भुजाधारी, राजा युधिष्ठिर अच्छी तरह तो है ॥ १७-२१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यः स नागायुतप्राणो वातरंहा महाबलः ।
सामर्षः पाण्डवो नित्यं प्रियो भ्रातुः प्रियङ्करः ॥२२॥
कीचकस्य तु सज्ञातेर्यो हन्ता मधुसूदन ।
शूरः क्रोधवशानां च हिडिम्बस्य बकस्य च ॥२३॥
पराक्रमे शक्रसमो मातरिश्वसमो बले ।
महेश्वरसमः क्रोधे भीमः प्रहरतां वरः ॥२४॥
क्रोधं बलममर्षं च यो निधाय परन्तपः ।
जितात्मा पाण्डवोऽमर्षी भ्रातुस्तिष्ठति शासने ॥२५॥
तेजोराशिं महात्मानं वरिष्ठममितौजसम् ।
भीमं प्रदर्शनेनापि भीमसेनं जनार्दन ॥२६॥
तं ममाऽऽचक्ष्व वार्ष्णेय कथमद्य वृकोदरः ।

हे मधुसूदन ! जो महाबली, वायु के समान वेगशील, दश हजार हाथियों के बल से समन्वित, आवेश युक्त, भाई का प्रिय, भाई के हित में तत्पर, बन्धु बान्धवों सहित कीचक का नाशक, क्रोध करने वालों के सन्मुख शूरवीर, हिडिम्ब और बकासुर का घातक, पराक्रम में इन्द्र के तुल्य और बल में वायु के समान, क्रोध में महेश्वर के सदृश, प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ, भयकारी, क्रोध, आवेश, बल को धारण करके शत्रुविजयी, अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाला, तेजस्वी, भ्राता का आज्ञाकारी, तेजोराशि, महा ओजस्वी, सर्व श्रेष्ठ और देखने मात्र से भयोद्वेगकारी है, तुम उन भीमसेन के समाचार मुझे सुनाओ, कि वह पाण्डु-पुत्र धर्मात्मा भीमसेन किस दशा में है ॥ २२-२६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आस्ते परिघबाहुः स मध्यमः पाण्डवो बली ॥२७॥
अर्जुनेनाऽर्जुनो यः स कृष्ण बाहुसहस्रिणा ।
द्विबाहुः स्पर्धते नित्यमतीतेनाऽपि केशव ॥२८॥
क्षिपत्येकेन वेगेन पञ्चबाणशतानि यः ।
इष्वस्त्रे सदृशो राज्ञः कार्तवीर्यस्य पाण्डवः ॥२९॥
तेजसाऽऽदित्यसदृशो महर्षिसदृशो दमे ।
क्षमया पृथिवीतुल्यो महेन्द्रसमविक्रमः ॥३०॥
आधिराज्यं महद्दीप्तं प्रथितं मधुसूदन ।
आहृतं येन वीर्येण कुरूणां सर्वराजसु ॥३१॥
यस्य बाहुबलं सर्वे पाण्डवाः पर्युपासते ।
स सर्वरथिनां श्रेष्ठः पाण्डवः सत्यविक्रमः ॥३२॥
यं गत्वाऽभिमुखः संख्ये न जीवन्कश्चिदाव्रजेत् ।
यो जेता सर्वभूतानामजेयो जिष्णुरच्युत ॥३३॥
योऽपाश्रयः पाण्डवानां देवानामिव वासवः ।
स ते भ्राता सखा चैव कथमद्य धनञ्जयः ॥३४॥

हे कृष्ण ! महाबली, मध्यम पाण्डुपुत्र परिघ (आगल) के समान भुजाओं वाला, एक हजार भुजाओं के धारी अर्जुन के समान जो अर्जुन है । हे केशव ! जो दो बाहु वाला होकर भी उस भूतकाल में हुए सहस्त्र बाहु अर्जुन के पराक्रमों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतिक्रमण में लगा है। जो एक ही झटके में पांच सौ बाण छोड़ देता है। जो बाण विद्या में राजा कार्तवीर्य (सहस्त्रबाहु) के सदृश है, जो तेज में सूर्य के सदृश और इन्द्रिय दमन में महर्षियों के समान है, जो क्षमा में पृथिवी और विक्रम प्रदर्शन में महेन्द्र के तुल्य है। हे मधुसूदन ! जिसने सारे राजाओं के मध्य में महाविशाल प्रसिद्ध कौरवों का राज्य अपने पराक्रम से स्थापित किया। जिसके बाहुबल का सारे पाण्डव सहारा लिए हुए हैं। जो सम्पूर्ण महारथियों में श्रेष्ठ, सत्य पराक्रमी है। जिसके सम्मुख युद्ध में जाकर कोई जीवित नहीं रह सकता, जो समस्त प्राणियों का विजयी किसी से नहीं हारने वाला है। जो देवों को इन्द्र के तुल्य पाण्डवों का आश्रय है। वह तेरा सखा या भाई धनञ्जय अर्जुन अच्छा तो है ? ॥ २७-३४ ॥

दयावान्सर्वभूतेषु ह्रीनिषेवो महास्त्रवित् ।
मृदुश्च सुकुमारश्च धार्मिकश्च प्रियश्च मे ॥३५॥
सहदेवो महेष्वासः शूरः समितिशोभनः ।
भ्रातॄणां कृष्ण शुश्रूषुर्धर्मार्थकुशलो युवा ॥३६॥
सदैव सहदेवस्य भ्रातरो मधुसूदन ।
वृत्तं कल्याणवृत्तस्य पूजयन्ति महात्मनः ॥३७॥
ज्येष्ठोपचायिनं वीरं सहदेवं युधाम्पतिम् ।
शुश्रूषुं मम वार्ष्णेय माद्रीपुत्रं प्रचक्ष्व मे ॥३८॥

हे मधुसूदन ! सब प्राणियों पर दयाशील, लज्जा करने वाला, शस्त्र विद्या में कुशल, कोमल और सुकुमार प्रकृतिवाला, धार्मिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रिय, महा धनुर्धर, युद्ध में शोभा पाने वाला शूरवीर, भाइयों की सेवा में तत्पर, धर्म और नीति का ज्ञाता, युवा, पांचो भाई पाण्डव, जिस महात्मा के आचरण के प्रशंसक हैं, उस ज्येष्ठ भ्राता के भक्त, योद्धाओं में श्रेष्ठ, मेरी सेवा में तत्पर रहने वाला माद्री-पुत्र सहदेव, कुशलता से युक्त तो हैं ॥ ३५-३८ ॥

सुकुमारो युवा शूरो दर्शनीयश्च पाण्डवः ।
भ्रातॄणां चैव सर्वेषां प्रियः प्राणो बहिश्चरः ॥३९॥
चित्रयोधी च नकुलो महेष्वासो महाबलः ।
कच्चित्स कुशली कृष्ण वत्सो मम सुखैधितः ॥४०॥

हे कृष्ण ! बड़ा सुकुमार, युवा, शूरवीर, मनोहर सारे भाइयों का बाहर घूमने वाला प्रिय प्राण, महाधनुर्धर, महाबली, अद्भुत युद्ध करने वाला, सुख में पला हुआ मेरा पुत्र नकुल कुशल से तो है ॥ ३९-४० ॥

सुखोचितमदुःखार्हं सुकुमारं महारथम् ।
अपि जातु महाबाहो पश्येयं नकुलं पुनः ॥४१॥

हे महाबाहो ! सुख के योग्य और दुःख के अयोग्य, सुकुमार महारथी नकुल को मैं फिर कब देखूंगी ॥ ४१ ॥

पक्ष्मसम्पातजे काले नकुलेन विनाकृता ।
न लभामि धृतिं वीर साऽद्य जीवामि पश्य माम् ४२॥

हे वीर ! मैं आंखों की पलक झपकाने में जितना समय लगे, उतने समय में ही विना नकुल के देखे घबरा जाती थी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वही मैं आज नकुल को इस दशा में देखकर जीवन धारण किये हुए हूं—यह अचम्भे की बात देखो ॥ ४२ ॥

सर्वैः पुत्रैः प्रियतरा द्रौपदी मे जनार्दन ।
कुलीना रूपसम्पन्ना सर्वैः समुदिता गुणैः ॥४३॥

हे जनार्दन ! द्रौपदी, मुझे अपने सारे पुत्रों से अधिक प्रिय है। जो बड़ी कुलीन, रूपवती और सारे गुणों से सम्पन्न है ॥४३॥

पुत्रलोकात्पतिलोकं वृण्वाना सत्यवादिनी ।
प्रियान्पुत्रान्परित्यज्य पाण्डवाननुरुध्यते ॥४४॥

सत्यवादिनी द्रौपदी ने पुत्र लोक को छोड़ कर पति लोक का ही वरण किया। इसने प्यारे पुत्रों को छोड़ कर पाण्डवों के प्रेम को ही गौरव दिया है ॥ ४४ ॥

महाभिजनसम्पन्ना सर्वकामैः सुपूजिता ।
ईश्वरी सर्वकल्याणी द्रौपदी कथमच्युत ॥४५॥

हे अच्युत ! बड़े कुलीन घर में उत्पन्न, सब कामनाओं के प्राप्त होने के योग्य, ऐश्वर्यशालिनी कल्याण-गुण-धारिणी, द्रौपदी कैसे जीवन धारण कर रही है ॥ ४५ ॥

पतिभिः पञ्चभिः शूरैरग्निकल्पैः प्रहारिभिः ।
उपपन्ना महेष्वासैर्द्रौपदी दुःखभागिनी ॥४६॥

अग्नि के समान तेजस्वी, युद्ध विशारद, शूरवीर, धनुर्धर, पांच पतियों से युक्त हो कर भी द्रौपदी दुःख उठा रही है-यह बड़े खेद की बात है ॥ ४६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्दशमिदं वर्षं यन्नाऽपश्यमरिन्दम ।
पुत्राधिभिः परिद्यूनां द्रौपदीं सत्यवादिनीम् ॥४७॥

हे अरिन्दम ! अपने पुत्रों के क्लेश से कृश शरीर धारिणी, सत्यवादिनी, द्रौपदी को विना देखे मुझे यह चौदहवां वर्ष व्यतीत हो रहा है ॥ ४७ ॥

न नूनं कर्मभिः पुण्यैरश्नुते पुरुषः सुखम् ।
द्रौपदी चेत्तथावृत्ता नाऽश्नुते सुखमव्ययम् ॥४८॥

हे केशव ! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, कि मनुष्य पुण्य कर्मों से भी कभी सुख नहीं प्राप्त कर पाता है, जो इस तरह के पुण्य कर्म करने वाली द्रौपदी भी निरन्तर सुख को नहीं प्राप्त होती है ॥ ४८ ॥

न प्रियो मम कृष्णाया बीभत्सुर्न युधिष्ठिरः ।
भीमसेनो यमौ वापि यदपश्यं सभागताम् ॥४९॥

द्रौपदी उस दुर्दशा में मेरे पुत्रों के सन्मुख सभा में लाई गई और वे कुछ नहीं बोले--यह देख कर तो मुझे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव कोई भी प्रिय नहीं दिखाई देता है ॥ ४९ ॥

न मे दुःखतरं किञ्चिद्भूतपूर्वं ततोऽधिकम् ।
स्त्रीधर्मिणीं द्रौपदीं यच्छ्वशुराणां समीपगाम् ॥५०॥
आनायितामनार्येण क्रोधलोभानुवर्तिना ।
सर्वे प्रैक्षन्त कुरव एकवस्त्रां सभागताम् ॥५१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इससे अधिक दुःख, मुझे पूर्वकाल में कभी नहीं हुआ, जो स्त्री धर्म से युक्त, द्रौपदी को क्रोध और लोभ के वशवर्ती दुःशासन सभा में खैंच लाया। तब एक वस्त्र धारिणी द्रौपदी को सारे कौरवों ने सभा में देखा ॥ ५०-५१ ॥

तत्रैव धृतराष्ट्रश्च महाराजश्च बाह्लिकः ।
कृपश्च सोमदत्तश्च निर्विण्णाः कुरवस्तथा ॥५२॥

उस समय वहीं पर राजा धृतराष्ट्र और महाराज बाह्लिक भी थे। कृपाचार्य, सोमदत्त तथा सारे कौरव उस समय उदास हो रहे थे ॥ ५२ ॥

तस्यां संसदि सर्वेषां क्षत्तारं पूजयाम्यहम् ।
वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया ॥५३॥

उस सभा में एक विदुर ही ऐसा था, जो आदर के योग्य है। यह नीच-योनि होकर भी आर्य था, क्योंकि मनुष्य आचरण से ही आर्य होता है, धन या विद्या से नहीं हो सकता ॥ ५३ ॥

तस्य कृष्ण महाबुद्धेर्गम्भीरस्य महात्मनः ।
क्षत्तुः शीलमलङ्कारो लोकान्विष्टभ्य तिष्ठति ॥५४॥

हे कृष्ण ! उस महा बुद्धिमान, गम्भीर, महात्मा, क्षत्ता (विदुर) का उत्तम आचरण ही अलंकार था, जो तीनों लोकों को व्याप्त करके स्थित था ॥ ५४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

सा शोकार्ता च हृष्टा च दृष्ट्वा गोविन्दमागतम् ।
नानाविधानि दुःखानि सर्वाण्येवाऽन्वकीर्तयत् ॥५५॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! शोकार्त हुई कुन्ती आये हुए श्रीकृष्ण को देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। यह श्रीकृष्ण के सन्मुख अपने अनेक प्रकार के दुःखों को कहने लगी ॥ ५५ ॥

पूर्वैराचरितं यत्तत्कुराजभिररिन्दम ।
अक्षद्यूतं मृगवधः कच्चिदेषां सुखावहम् ॥५६॥

अरिमर्दन ! पूर्वकाल के बुरे राजाओं ने जिनका आचरण किया था, ऐसे द्यूत और मृगों का शिकार क्या पाण्डवों को सुखकारी हो सकता है ? ॥ ५६ ॥

तन्मां दहति यत्कृष्णा सभायां कुरुसन्निधौ ।
धार्तराष्ट्रैः परिक्लिष्टा यथा न कुशलं तथा ॥५७॥

जो द्रौपदी को कौरवों के सन्मुख सभा में लाया गया और धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनादि से उसको अपमानित किया गया—यह घटना मुझे बड़ा ही क्लेशित कर रही है । यह सब कुछ मृत्यु के तुल्य कष्ट दायी घटना थी ॥ ५७ ॥

निर्वासनं च नगरात्प्रव्रज्या च परन्तप ।
नानाविधानां दुःखानामभिज्ञाऽस्मि जनार्दन ॥५८॥

हे परन्तप ! जनार्दन ! मैंने नगर से पाण्डवों का निकालना और वन को भेजना—यह सब कुछ देखा है। मैं उनको दिये हुए नाना प्रकार के क्लेशों को प्रत्यक्ष देख चुकी हूं ॥५८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अज्ञातचर्या बालानामवरोधश्च माधव ।
न मे क्लेशतमं तत्स्यात्पुत्रैः सह परन्तप ॥५९॥

हे माधव ! परन्तप ! मेरे पुत्रों को लुक छिप कर जो अज्ञात वास करना पड़ा—उसके बराबर मुझे और मेरे पुत्रों को कभी कष्ट नहीं हुआ ॥५९॥

दुर्योधनेन निकृता वर्षमद्य चतुर्दश ।
दुःखादपि सुखं नः स्याद्यदि पुण्यफलक्षयः ॥६०॥

जिस समय दुर्योधन ने पाण्डवों का छल करके अपमान किया है—उस समय को आज चौदहवां वर्ष व्यतीत हो रहा हैं । यदि पुण्य के फल के नाश से दुःख होता है, तो पाप के फल दुःख के भोग लेने पर सुख अवश्य प्राप्त होगा ॥६०॥

न मे विशेषो जात्वासीद्धार्तराष्ट्रेषु पाण्डवैः ।
तेन सत्येन कृष्ण त्वां हतामित्रं श्रिया वृतम् ॥
अस्माद्विमुक्तं संग्रामात्पश्येयं पाण्डवैः सह ॥६१॥
नैव शक्याः पराजेतुं सर्वे ह्येषां तथाविधम् ।
पितरं त्वेव गर्हेयं नाऽऽत्मानं न सुयोधनम् ॥६२॥
येनाऽहं कुन्तिभोजाय धनं वृक्षैरिवाऽर्पिता ।

हे कृष्ण ! मैंने तो कभी पाण्डवों और कौरवों में भेद बुद्धि नहीं की । यदि मैं यह सत्य कह रही हूँ—तो शत्रुओं से रहित, लक्ष्मी से युक्त और इस घोर संग्राम में विजयी हुए तुमको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाण्डवों से समन्वित देखूंगी। इन पाण्डवों को कोई भी जीतने में समर्थ नहीं है, क्योंकि इनका सब कुछ अद्वितीय है। इस समय मुझे यही प्रतीत होता है, कि इसमें मेरे दुर्भाग्य या दुर्योधन की दुष्टता निन्दा के योग्य नहीं है, किन्तु मेरा पिता ही निन्दा के योग्य है, जिसने मुझे राजा कुन्तिभोज को ऐसे अर्पण कर दी—जैसे दानी मनुष्य धन का प्रदान कर देता है ॥६१-६२॥

बालां मामार्यकस्तुभ्यं क्रीडन्तीं कन्दुहस्तिकाम् ।६३।
अदात्तु कुन्तिभोजाय सखा सख्ये महात्मने ।
साऽहं पित्रा च निकृता श्वशुरैश्च परन्तप ॥
अत्यन्तदुःखिता कृष्ण किं जीवितफलं मम ॥६४॥

हे कृष्ण ! तुम्हारे कुन्तिभोज के मित्र पितामह ने गैंद हाथ में लेकर खेलने वाली मुझे अपने मित्र महात्मा कुन्ति भोज को समर्पित कर दी। हे परन्तप ! इस प्रकार पिता से निकाली हुई और श्वशुर से भी तिरस्कार पाई हुई, अत्यन्त दुःखी हो गई—इस दशा में मेरे जीवन से ही क्या लाभ है ॥६३-६४॥

यन्मां वागब्रवीन्नक्तं सूतके सव्यसाचिनः ।
पुत्रस्ते पृथिवीं जेता यशश्चाऽस्य दिवं स्पृशेत् ॥६५॥

हे कृष्ण ! जब मेरे अर्जुन उत्पन्न हुआ, तब सूतकागार में ही रात्रि में एक वाणी सुनाई दी थी, कि तेरा यह पुत्र पृथिवी का विजयी होगा और इसका यश इन्द्रलोक में छा जावेगा ॥६५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हत्वा कुरून्महाजन्ये राज्यं प्राप्य धनञ्जयः
भ्रातृभिः सह कौन्तेयस्त्रीन्मेधानाहरिष्यति ॥६६॥

यह अर्जुन महायुद्ध में कौरवों को मार कर सारा राज्य प्राप्त करेगा। यही तेरा पुत्र अपने भाईयों के साथ तीन अश्वमेघ यज्ञ करेगा ॥६६॥

नाऽहं तामभ्यसूयामि नमो धर्माय वेधसे।
कृष्णाय महते नित्यं धर्मो धारयति प्रजाः ॥६७॥

मैं आज उस वाणी को मिथ्या कहकर उसकी निन्दा नहीं कर रही हूं। यह सब कुछ सम्पादन कर देने वाले धर्म को नमस्कार हैं। महाशक्तिधारी कृष्ण तुमको भी प्रणाम है। यह धर्म ही सारी प्रजा को धारण किये हुए है ॥६७॥

धर्मश्चेदस्ति वार्ष्णेय यथा वागभ्यभाषत।
त्वं चापि तत्तथा कृष्ण सर्वं सम्पादयिष्यसि ॥६८॥

हे वार्ष्णेय! जैसी आकाशवाणी हुई और उसके अनुसार धर्म जागृत है—तो तुम सब कुछ सम्पादन करवा लोगे ॥६८॥

न मां माधव वैधव्यं नाऽर्थनाशो न वैरता।
तथा शोकाय दहति यथा पुत्रैर्विना भवः ॥६९॥

हे माधव! मुझे विधवापन, धननाश, वैरियों की वृद्धि, इतना शोक का कारण बनकर न जला सकी, जितना पुत्रों के विना यह जीवन जला रहा है ॥६९॥

याऽहं गाण्डीवधन्वानं सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
धनञ्जयं न पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इतश्चतुर्दशं वर्षं यन्नाऽपश्यं युधिष्ठिरम् ॥७०॥
धनञ्जयं च गोविन्द यमौ तं च वृकोदरम् ।

सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, गाण्डीव धनुषधारी, अर्जुन को जब तक मैं नहीं देख लूंगी—तब तक मेरे हृदय को कैसे शान्ति हो सकती है। जब से आज तक चौदह वर्ष व्यतीत हो गए—मैंने युधिष्ठिर भी नहीं देखा है। हे गोविन्द ! न भीमसेन, अर्जुन और नकुल-सहदेव को ही मैं देख पायी हूं ॥७०॥

जीवनाशं प्रनष्टानां श्राद्धं कुर्वन्ति मानवाः ॥७१॥
अर्थतस्ते मम मृतास्तेषां चाऽहं जनार्दन ।

हे जनार्दन ! प्राणों के निकल जाने पर मृतक हुए लोगों का उसके सम्बन्धी जन श्राद्ध करते हैं, परन्तु मेरे पुत्र मेरे लिए और मैं उनके लिए श्राद्ध के विना ही वास्तव में मृतक हो रहे हैं ॥७१॥

ब्रूया माधव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥७२॥
भूयांस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक वृथा कृथाः ।

हे माधव ! तुम जाकर धर्मात्मा युधिष्ठिर से मेरी ओर से कहना, कि हे पुत्र ! अब तक तुम्हारे धर्म की बहुत हानि हो चुकी, अब उसको वृथा नष्ट न करो ॥७२॥

पराश्रया वासुदेव या जीवति धिगस्तु ताम् ॥७३॥
वृत्तेः कार्पण्यलब्धाया अप्रतिष्ठैव ज्यायसी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे वासुदेव ! जो स्त्री अन्य के आश्रित होकर प्राणधारण करती है—उसको धिक्कार है। जिसको अपने भरण पोषण की भी दीनता है, उसकी तो जगत् में महान् अप्रतिष्ठा ही है।।७३।।

अथो धनञ्जयं ब्रूया नित्योद्युक्तं वृकोदरम् ॥७४॥
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ।

अब तुम धनञ्जय अर्जुन और युद्ध के लिए सदा सन्नद्ध भीमसेन से कहना, कि तुम्हारी माता ने कहा है, कि क्षत्राणी जिस दिन काम आने के लिए पुत्र उत्पन्न करती है, उसका अब समय आ गया है ।।७४।।

अस्मिंश्चेदागते काले मिथ्या चाऽतिक्रमिष्यति ॥७५॥
लोकसम्भाविताः सन्तः सुनृशंसं करिष्यथ ।

इस समय के उपस्थित हो जाने पर भी जो तुम लोग इस समय को व्यर्थ खोओगे—तो लोक में प्रथम प्रतिष्ठा पाकर भी अब नीच कर्म करने वाले कहाओगे, जो बड़ी निन्दा की बात है ।।७५।।

नृशंसेन च वो युक्तांस्त्यजेयं शाश्वतीः समाः ॥७६॥
काले हि समनुप्राप्ते त्यक्तव्यमपि जीवनम् ।

यदि तुमने समय पड़ने पर नीच कर्म का आश्रय लिया, तो मैं तुमको सदा के लिए छोड़ दूंगी। समय के आने पर मनुष्य को अपना जीवन भी छोड़ देना चाहिए ।।७६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतौ सदा ॥७७॥
विक्रमेणाऽर्जितान्भोगान्वृणीतं जीवितादपि ।

हे केशव ! क्षत्रिय धर्म में संलग्न माद्री-पुत्र नकुल और सहदेव से कहना, कि तुम लोग अपने जीवन पर खेल कर अपने पराक्रम से राज्य के भोगों को प्राप्त करो ॥७७॥

विक्रमाधिगता ह्यर्थाः क्षत्रधर्मेण जीवतः ॥७८॥
मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम ।

जो मनुष्य क्षत्रिय के धर्म से जीता है, उसको अपने पराक्रम से अपने कार्यों का सम्पादन करना चाहिए। हे पुरुषोत्तम ! मनस्वी मनुष्य का मन, विक्रम से प्राप्त भोगों से ही सन्तुष्ट हो सकता है ॥७८॥

गत्वा ब्रूहि महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥७९॥
अर्जुनं पाण्डवं वीरं द्रौपद्याः पदवीं चर ।

हे महाबाहो ! तुम जाकर सब शस्त्र धारी और वीर पाण्डु-पुत्र अर्जुन से कहना, कि तुम लोग द्रौपदी की लज्जा की रक्षा के लिए प्रयत्न करो ॥७३॥

विदितौ हि तवाऽत्यन्तं क्रुद्धौ तौ तु यथाऽन्तकौ ॥८०॥
भीमार्जुनौ नयेतां हि देवानपि परां गतिम् ।

हे जनार्दन ! तुम यह अच्छी तरह जानते हो-कि भीम और अर्जुन जब काल के समान कोप करते हैं, उस समय वे देवों को भी विनष्ट कर सकते हैं ॥८०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तयोश्चैतदवज्ञानं यत्सा कृष्णा सभां गता ॥८१॥
दुःशासनश्च कर्णश्च परुषाण्यभ्यभाषताम् ।

इन भीम और अर्जुन का यह कितना बड़ा अपमान है, जो द्रौपदी को सभा में खैंच लाया गया और दुःशासन तथा कर्ण ने उस समय कठोर वचनों का प्रयोग किया ॥८१॥

दुर्योधनो भीमसेनमभ्यगच्छन्मनस्विनम् ॥८२॥
पश्यतां कुरुमुख्यानां तस्य द्रक्ष्यति यत्फलम् ।

उस समय दुर्योधन ने भी सारे मुख्य मुख्य कौरवों के सम्मुख मनस्वी भीमसेन का अपमान किया था । अब वह उस का फल भोगेगा ॥८२॥

नहि वैरं समासाद्य प्रशाम्यति वृकोदरः ॥८३॥
सुचिरादपि भीमस्य नहि वैरं प्रशाम्यति ।
यावदन्तं न नयति शात्रवाञ्छत्रुकर्शनः ॥८४॥

जब भीमसेन का किसी से वैर पड़ जाता है, तो वह विना बदला चुकाए शान्त नहीं होता । यह शत्रु नाशक भीम, जब तक शत्रुओं का नाश नहीं कर लेता है, तब तक इसका वैर बहुत काल व्यतीत होने पर भी ठण्डा नहीं पड़ता है ॥८३–८४॥

न दुःखं राज्यहरणं न च द्यूते पराजयः ।
प्रव्राजनं तु पुत्राणां न मे तद् दुःखकारणम् ॥८५॥
यत्तु सा बृहती श्यामा एकवस्त्रा सभां गता ।
अशृणोत्परुषा वाचः किं नु दुःखतरं ततः ॥८६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे कृष्ण ! मुझे न तो राज्य के अपहरण और न जुआ में हुए पराजय तथा न पुत्रों के वन में जाने का इतना दुःख है, जितना विशाल कुलोत्पन्न, सुन्दरी द्रौपदी को एक वस्त्र धारण करने के समय में ही सभा में लाया गया। वहां उसने बड़ी कटुवाणी श्रवण की। बताओ ? मुझे इससे अधिक दुःख और क्या हो सकता हैं ॥ ८५-८६ ॥

स्त्रीधर्मिणी वरारोहा क्षत्रधर्मरता सदा ।
नाऽभ्यगच्छत्तदा नाथं कृष्णा नाथवती सती ॥८७॥

यह सुन्दरी द्रौपदी उस समय ऋतुमती थी। यह सदा क्षत्राणी के धर्मों में प्रेम करने वाली है। यद्यपि द्रौपदी के स्वामी विद्यमान थे, परन्तु उस समय तो यह अनाथ ही दिखाई दे रही थी ॥८७॥

यस्या मम सपुत्रायास्त्वं नाथो मधुसूदन ।
रामश्च बलिना श्रेष्ठः प्रद्युम्नश्च महारथः ॥८८॥
साऽहमेवंविधं दुःखं सहेयं पुरुषोत्तम ।
भीमे जीवति दुर्धर्षे विजये चाऽपलायिनि ॥८९॥

हे मधुसुदन ! एक तो मेरे पुत्र हैं, दूसरे आप, बलवानों में श्रेष्ठ बलराम और महारथी प्रद्युम्न मेरे सहायक हैं। दुर्धर्ष भीम और युद्ध से नहीं हटने वाला अर्जुन भी जीवित हैं, तो भी मैं इस तरह कष्ट झेल रही हूं ॥८८-८९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

तत आश्वासयामास पुत्राधिभिरभिप्लुताम् ।
पितृष्वसारं शोचन्तीं शौरिः पार्थसखः पृथाम् ॥६०॥

शम्पायन ने कहा—हे राजन् ! अर्जुन के सखा श्रीकृष्ण ने इस प्रकार अपने पुत्रों के दुःख से दुःखी, शोकार्त अपने पिता की भगिनी कुन्ती को सान्त्वना दी ॥६०॥

वासुदेव उवाच—

का तु सीमन्तिनी त्वादृग्लोकेष्वस्ति पितृष्वसः ।
शूरस्य राज्ञो दुहिता आजमीढकुलं गता ॥६१॥
महाकुलीना भवती ह्रदात्ह्रदमिवाऽऽगता ।
ईश्वरी सर्वकल्याणी भर्त्रा परमपूजिता ॥६२॥

श्रीकृष्ण बोले—हे भूवाजी ! तुम जैसी मनिस्वनी स्त्री अन्य कौन हो सकती है। तुम शूरवीर राजा की पुत्री और अजमीढ़ के पवित्र कुल में विवाहित हो। महाकुल प्रसूत होकर श्वसुर के महाकुल में एक सरोवर से अन्य सरोवर के जल की भांति प्राप्त हुए हो। तुम सब ऐश्वर्य से युक्त कल्याण कामना वाली अपने पति से आदर प्राप्त करती आई हो ॥६१-६२॥

वीरसूर्वीरपत्नी त्वं सर्वैः समुदिता गुणैः ।
सुखदुःखे महाप्राज्ञे त्वादृशी सोढुमर्हति ॥६३॥

तुम वीर—पत्नी और वीर पुत्र उत्पन्न करने वाली समस्त गुणों से युक्त स्त्री हो। हे महाप्राज्ञे ! तुम जैसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनस्विनी स्त्री, ही समय २ पर प्राप्त हुए सुख दुःखों को सहने की शक्ति रखती हो ॥९३॥

निद्रातन्द्रे क्रोधहर्षौ क्षुत्पिपासे हिमातपौ ।
एतानि पार्था निर्जित्य नित्यं वीरसुखे रताः ॥९४॥

पाण्डव, निद्रा, तन्द्रा, क्रोध, हर्ष, भूख, प्यास, शीत, उष्ण आदि द्वन्द्वों को जीत कर नित्य वीर कर्मों में निमग्न रहते हैं ॥९४॥

त्यक्तग्राम्यसुखाः पार्था नित्यं वीरसुखप्रियाः ।
न तु स्वल्पेन तुष्येयुर्महोत्साहा महाबलाः ॥९५॥
अन्तं धीरा निषेवन्ते मध्यं ग्राम्यसुखप्रियाः ।

पाण्डवों ने नगरों में प्राप्त होने वाले भोग विलासों का त्याग कर रखा है और वे नित्य वीरों के योग्य अपने कर्तव्य कर्मों में सुख से दिन बिता रहे हैं। ये महा उत्साही और महाबली पाण्डव, स्वल्प ऐश्वर्य से सन्तुष्ट होने वाले नहीं हैं, क्योंकि धीर जन अपने अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति से सन्तुष्ट होते हैं। जो भोग विलासों के चाहने वाले है, वे कार्य के मध्य में थोड़ी सिद्धि पर चुप हो जाते हैं ॥९५॥

उत्तमांश्च परिक्लेशान्भोगांश्चाऽतीव मानुषान् ॥९६॥
अन्तेषु रेमिरे धीरा न ते मध्येषु रेमिरे ।
अन्तप्राप्तिं सुखामाहुर्दुःखमन्तरमेतयोः ॥९७॥

मनस्वी जन, अधिक से अधिक क्लेश या मनुष्यों को दुर्लभ ऐश्वर्य का उपभोग करते हैं। धीर लोग विनिश्चित कार्य की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्णता पर ही शान्ति प्राप्त करते हैं, वे मध्य में कभी नहीं रुकते। अपने उद्देश्य के अन्त तक पहुंचना ही सुख और प्रारम्भ तथा अन्त के बीच में ही ठहर जाना दुःख है ॥९६-९७॥

अभिवादयन्ति भवतीं पाण्डवाः सह कृष्णया ।
आत्मानं च कुशलिनं निवेद्याऽऽहुरनामयम् ॥९८॥

हे मनस्विनी ! द्रौपदी सहित पाण्डवों ने तुमको प्रणाम कहा है और अपनी कुशलता का निवेदन करके आरोग्यता के समाचार कहे है॥९८॥

अरोगान्सर्वसिद्धार्थान्क्षिप्रं द्रक्ष्यसि पाण्डवान् ।
ईश्वरान्सर्वलोकस्य हतामित्राञ्श्रियावृतान् ॥९९॥

अब तुम शीघ्र सारे प्रयोजनों से परिपूर्ण रोग रहित हृष्ट पुष्ट सारे संसार में अधिक ऐश्वर्यशाली शत्रुहीन राज्यलक्ष्मी से युक्त पाण्डवों को देखोगी ॥९९॥

एवमाश्वासिता कुन्ती प्रत्युवाच जनार्दनम् ।
पुत्राधिभिरभिध्वस्ता निगृह्याऽबुद्धिजं तमः ॥१००॥

इस प्रकार समझायी हुई, पुत्र क्लेश से क्लेशित कुन्ती, अज्ञान जन्य शोक को रोक कर श्रीकृष्ण से कहने लगी ॥१००॥

कुन्त्युवाच—

यद्यत्तेषां महाबाहो पथ्यं स्यान्मधुसूदन ।
यथा यथा त्वं मन्येथाः कुर्याः कृष्ण तथा तथा ।१०१।

हे महाबाहो ! मधुसूदन ! कृष्ण ! आप जो २ पाण्डवों के लिये हितकारी समझो—वैसा २ कार्य करो ॥१०२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अविलोपेन धर्मस्य अनिकृत्या परन्तप ।
प्रभावज्ञाऽस्मि ते कृष्ण सत्यस्याऽभिजनस्य च ।१०२।
व्यवस्थायां च मित्रेषु बुद्धिविक्रमयोस्तथा ।

हे परन्तप ! धर्म के लोप से रहित और छलहीन कार्य को सम्पादन करने को तुम्हारे प्रभाव को मैं जानती हूँ तथा तुम्हारे सत्य और कुल के गौरव को भी मैं समझती हूँ । मित्रों के साथ अपनी बुद्धि और पराक्रम का जो प्रयोग करते हो--मैं उसको भी अच्छी तरह जानती हूँ ॥१०२॥

त्वमेव नः कुले धर्मस्त्वं सत्यं त्वं तपो महत् ॥१०३॥
त्वं त्राता त्वं महद्ब्रह्म त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
यथैवाऽऽत्थ तथैवैतत्त्वयि सत्यं भविष्यति ॥१०४॥

हमारे कुल में तुम ही धर्म, सत्य और तप रूप हो । तुम ही हमारे रक्षक ईश्वर हो । हमारे सारे कार्य तुम्हारे पर ही अवलम्बित हैं । आप जो कह रहे हो-वही ठीक है और उसे ही सत्य कर दिखाओगे ॥ १०३-१०४ ॥

वैशम्पायन उवाच—

तामामन्त्र्य च गोविन्दः कृत्वा चाऽभिप्रदक्षिणम् ।
प्रातिष्ठत महाबाहुर्दुर्योधनगृहान्प्रति ॥१०५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णकुन्तीसंवादे
नवतितमोऽध्याय ॥९०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैशम्पायन कहने लगे—हे राजन् ! महाबाहु श्रीकृष्ण, कुन्ती से आज्ञा लेकर और उसकी प्रदक्षिणा करके राजा दुर्योधन के घर की ओर चल दिए ॥ १०५ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में श्रीकृष्ण और कुन्ती के सम्वाद का नव्वेवां अध्याय पूरा हुआ

एकानवेवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

पृथामामन्त्र्य गोविन्दः कृत्वा चाऽभिप्रदक्षिणम् ।
दुर्योधनगृहं शौरिरभ्यगच्छदरिन्दमः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे जनमेजय ! शूरसेन वंशोद्भव अरिन्दम, श्रीकृष्ण, कुन्ती से आज्ञा लेकर और उनकी प्रदक्षिणा करके दुर्योधन के भवन की ओर चल दिए ॥१॥

लक्ष्म्या परमया युक्तं पुरन्दरगृहोपमम् ।
विचित्रैरासनैर्युक्तं प्रविवेश जनार्दनः ॥२॥

राजा दुर्योधन का राजभवन अनेक भांति के ऐश्वर्यों से युक्त इन्द्र के भवन जैसा अद्भुत था। उसमें विचित्र २ आसन (गलीचे) आदि बिछे हुए थे, जिसमें भगवान् कृष्ण प्रविष्ट हुए ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्य कक्ष्या व्यतिक्रम्य तिस्रो द्वाःस्थैरवारितः ।
ततोऽभ्रघनसङ्काशं गिरिकूटमिवोच्छ्रितम् ॥३॥
श्रिया ज्वलन्तं प्रासादमारुरोह महायशाः ।

श्रीकृष्ण ने उस महल की तीन कक्षाओं (मंजिलों) का अतिक्रमण किया। उनके प्रवेश के समय इनको किसी भी द्वारपाल ने नहीं रोका। महायशस्वी कृष्ण, श्वेत बादलों के समूह की भांति उज्ज्वल, पर्वत के शिखर के समान ऊंचे, शोभा से युक्त, राजमहल में चढ़ गए ॥३॥

तत्र राजसहस्रैश्च कुरुभिश्चाऽभिसंवृतम् ॥४॥
धार्तराष्ट्रं महाबाहुं ददर्शाऽऽसीनमासने ।

इसके अनन्तर श्रीकृष्णने सहस्रों राजा और कौरवों से घिरे हुए, सिंहासन पर बैठे हुए महाबाहु राजा धृतराष्ट्र को देखा ॥४॥

दुःशासनं च कर्णं च शकुनिं चापि सौबलम् ॥५॥
दुर्योधनसमीपे तानासनस्थान्ददर्श सः ।

श्रीकृष्ण ने दुर्योधन के पास ही अपने २ उत्तम २ आसनों पर बैठे हुए दुःशासन, कर्ण और सुबल पुत्र शकुनि को देखा ॥५॥

अभ्यागच्छति दाशार्हे धार्तराष्ट्रो महायशाः ॥६॥
उदतिष्ठत्सहामात्यः पूजयन्मधुसूदनम् ।

दशार्हा देशाधिपति, मधुसूदन श्री कृष्ण के आने पर उनके स्वागत में अपने मन्त्रियों के साथ महायशस्वी राजा धृतराष्ट्र खड़ा हो गया ॥६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समेत्य धार्तराष्ट्रेण सहामात्येन केशवः ॥७॥
राजभिस्तत्र वार्ष्णेयः समागच्छद्यथावयः ।

श्रीकृष्ण, प्रथम मन्त्रियों सहित राजा धृतराष्ट्र से मिले और फिर उन्होंने जैसी जिसकी आयु थी उसके अनुसार अन्य राजाओं से भेंट की ॥७॥

तत्र जाम्बूनदमयं पर्यङ्कं सुपरिष्कृतम् ॥८॥
विविधास्तरणास्तीर्णमभ्युपाविशदच्युतः ।

इसके अनन्तर अनेक आसन (गलीचों) से युक्त, सुवर्ण के बने हुए, चमचमाते हुए सिंहासन पर श्रीकृष्ण बैठ गए ॥ ८ ॥

तस्मिन्गां मधुपर्कं चाऽप्युदकं च जनार्दने ॥९॥
निवेदयामास तदा गृहान्राज्यं च कौरवः ।

जनार्दन कृष्ण के बैठ जाने पर राजा धृतराष्ट्र ने उनको गौ, मधुपर्क, अर्घजल अनेक भवन और किसी प्रान्त का राज्य भेंट में देने की घोषणा की ॥ ९ ॥

तत्र गोविन्दमासीनं प्रसन्नादित्यवर्चसम् ॥१०॥
उपासाञ्चक्रिरे सर्वे कुरवो राजभिः सह ।

उज्वल सूर्य के समान तेजस्वी, बैठे हुए श्रीकृष्ण की अनेक राजाओं के साथ सारे कौरव उपासना करने लगे ॥१०॥

ततो दुर्योधनो राजा वार्ष्णेयं जयतां वरम् ॥११॥
न्यमन्त्रयद्भोजनेन नाऽभ्यनन्दच्च केशवः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसके अनन्तर राजा दुर्योधन ने वृष्णि-वंश-श्रेष्ठ, महापराक्रमी श्रीकृष्ण से भोजन करने को कहा, परन्तु उन्होंने बहाना बना कर निषेध कर दिया ॥ ११ ॥

ततो दुर्योधनः कृष्णमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥१२॥
मृदुपूर्वं शठोदर्कं कर्णमाभाष्य कौरवः ।

अब कौरवों की राजसभा में कर्ण की ओर देखते हुए राजा दुर्योधन ने ऊपर से कोमल और शठता से भरे हुए वचन श्रीकृष्ण से कहा ॥ १२ ॥

कस्मादन्नानि पानानि वासांसि शयनानि च ॥१३॥
त्वदर्थमुपनीतानि नाऽग्रहीस्त्वं जनार्दन ।

हे जनार्दन ! अन्न, पान, वस्त्र, शय्या आदि आपके स्वागत के लिए तय्यार कराई गई थी । आपने इनको क्यों नहीं स्वीकार किया ॥ १३ ॥

उभयोश्च ददत्साह्यमुभयोश्च हिते रतः ॥१४॥
सम्बन्धी दयितश्चासि धृतराष्ट्रस्य माधव ।

हे माधव ! आप तो कौरव और पाण्डव दोनों ही पक्ष की सहाता करना चाहते हो और दोनों के ही हित की आकांक्षा रखते हो । आप तो राजा धृतराष्ट्र से प्रेम करने वाले, सम्बन्धी, (रिश्तेदार) हो ॥ १४ ॥

त्वं हि गोविन्द धर्मार्थौ वेत्थ तत्त्वेन सर्वशः ॥
तत्र कारणमिच्छामि श्रोतुं चक्रगदाधर ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे गोविन्द ! तुम तो धर्म और नीति के तत्वों को अच्छी तरह जानते हो। हे गदाधर ! आपने हमारे यहाँ भोजन नहीं किया-मैं इसका कारण जानना चाहता हूं ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच—

स एवमुक्तो गोविन्दः प्रत्युवाच महामनाः ।
उद्यन्मेघस्वनः काले प्रगृह्य विपुलं भुजम् ॥१६॥

अलघूकृतमग्रस्तमनिरस्तमसंकुलम् ।
राजीवनेत्रो राजानं हेतुमद्वाक्यमुत्तमम् ॥१७॥

वैशम्पायन बोले–हे राजन् ! दुर्योधन के इतना कहने पर उठे हुए मेघ के समान गंभीर स्वर के साथ महामनस्वी, कमल के समान नेत्र वाले श्रीकृष्ण, अपनी दायीं भुजा उठा कर किसी प्रकार की भी क्षुद्रता से रहित, वर्ण और अर्थ की उत्तमता से युक्त, स्पष्ट, युक्ति-युक्त वाक्य राजाओं के सन्मुख कहने लगे ॥१६-१७॥

कृतार्था भुञ्जते दूतः पूजां गृह्णन्ति चैव ह ।
कृतार्थां मां सहामात्यं समर्चिष्यसि भारत ॥१८॥

हे भारत ! दूतों के जब संदेश पूरे करा दिए जाते हैं, तब वे भोजन और तभी वे पूजा ग्रहण करते हैं। जब तुम लोग मेरे संदेश को पूर्ण कर दो–तब मेरे साथियों के साथ मेरा भी स्वागत करना या भोजनादि करवाना ॥ १८ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच धार्तराष्ट्रो जनार्दनम् ।
न युक्तं भवताऽस्मासु प्रतिपत्तुमसाम्प्रतम् ॥१९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

इतना कहने पर धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन, श्रीकृष्ण से बोले—हे जनार्दन ! आपको हमारे साथ अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहिए ॥१९॥

कृतार्थं वाऽकृतार्थं च त्वां वयं मधुसूदन ।
यतामहे पूजयितुं दाशार्ह न च शक्नुमः ॥२०॥

हे दशार्ह—देशोद्भव ! मधुसूदन ! आप अपने दूत कार्य में सफल हो या न हो—इससे क्या ? हम तो अपने सम्बन्ध के कारण आपकी पूजा करना चाहते हैं, परन्तु हम उसको कर नहीं सकते हैं ॥२०॥

न च तत्कारणं विद्मो यस्मिन्नो मधुसूदन ।
पूजां कृतां प्रीयमाणैर्नाऽमंस्थाः पुरुषोत्तम ॥२१॥

हे मधुसूदन ! पुरुषोत्तम ! हमको तो इसके कारण का पता नहीं लगता, कि जब हम प्रीति-पूर्वक आपकी पूजा करना चाहते हैं, तो आप उसको स्वीकार क्यों नहीं करते हो ? ॥२१॥

वैरं नो नास्ति भवता गोविन्द न च विग्रहः ।
स भवान्प्रसमीक्ष्यैतन्नेदृशं वक्तुमर्हति ॥२२॥

हे गोविन्द ! हमारा आपके साथ न तो कोई वैर है और न किसी प्रकार का झगड़ा है । आपको इन सब बातों को सोचकर ऐसा नहीं कहना चाहिए ॥२२॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तः प्रत्युवाच धार्तराष्ट्रं जनार्दनः ।
अभिवीक्ष्य सहामात्यं दाशार्हः प्रहसन्निव ॥२३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैशम्पायन ने कहा—दुर्योधन के इतना कहने पर दशार्हपति, जनार्दन कृष्ण, मन्त्रियों के सहित दुर्योधन की ओर देख कर हँसते २ धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन से बोले ॥२३॥

नाऽहं कामान्न संरम्भान्न द्वेषान्नाऽर्थकारणात् ।
न हेतुवादाल्लोभाद्वा धर्मं जह्यां कथञ्चन ॥२४॥

हे राजन्! मैं किसी कामना, क्रोध के वेग, द्वेष, स्वार्थ, हेतुवाद (कपट) या लोभ से अपने कर्त्तव्य को कभी नहीं छोड़ सकता हूँ ॥२४॥

सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः ।
न च सम्प्रीयसे राजन्न चैवाऽऽपद्गता वयम् ॥२५॥

हे दुर्योधन! भोजन तो दो प्रकार से किया जाता है—या तो कोई प्रीति-पूर्वक भोजन करावे—या कोई विपत्ति में पड़ा हुआ स्वयं किसी के भोजन करे। हे राजन्! न तो आप हम से प्रीति रखते हैं और न हम ही किसी आपत्ति में फँसे हुए हैं ॥२५॥

अकस्माद् द्वेष्टि वै राजञ्जन्मप्रभृति पाण्डवान् ।
प्रियानुवर्तिनो भ्रातॄन्सर्वैः समुदितान्गुणैः ॥२६॥

हे राजन्! तुम लोग विना कारण जन्म से ही पाण्डवों से द्वेष करते हो, पाण्डव तो अपने प्रेम करने वालों के अनुचर, आपके भाई और सारे उत्तम २ गुणों से युक्त हैं ॥२६॥

अकस्माच्चैव पार्थानां द्वेषणं नोपपद्यते ।
धर्मे स्थिताः पाण्डवेयाः कस्तान्किं वक्तुमर्हति ॥२७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विना कारण अचानक पाण्डवों से द्वेष करना धर्मानुसार नहीं है। पाण्डव तो धर्मात्मा हैं, उनके विषय में कौन क्या कह सकता है ॥२७॥

यस्तान्द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु ।
ऐकात्म्यं मां गतं विद्धि पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ॥२८॥

जो उनसे द्वेष करता है, वह मुझ से भी वैर रखता है और जो उनका प्रेमी है, वही मेरा प्रेमी है। धर्म के अनुसार आचरण करने वाले पाण्डव और मुझ में कोई भेद न समझो ॥२८॥

कामक्रोधानुवर्ती हि यो मोहाद्विरुरुत्सति ।
गुणवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुः पुरुषाधमम् ॥२९॥

जो काम क्रोध के वश में होकर गुणवान् से विरोध या उससे द्वेष करता है—वह पुरुष अधम कहाता है ॥२९॥

यः कल्याणगुणाञ्ज्ञातीन्मोहाल्लोभाद्दिदृक्षते ।
सोऽजितात्माऽजितक्रोधो न चिरं तिष्ठति श्रियम् ॥३०॥

जो उत्तम २ गुणों से युक्त अपने बान्धवों को मोह और लोभ की दृष्टि से देखता है, वह इन्द्रिय-लोलुप, क्रोधी बहुत काल तक राज्य-लक्ष्मी का सुख नहीं भोग सकता है ॥३०॥

अथ यो गुणसम्पन्नान्हृदयस्याऽप्रियानपि ।
प्रियेण कुरुते वश्यांश्चिरं यशसि तिष्ठति ॥३१॥

जो मनुष्य, गुणों से समन्वित जनों को अपने हृदय के अप्रिय होने पर भी उनके प्रिय कार्य सम्पादन से वश में कर लेता है, वही चिरकाल तक यश पाता है ॥३१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वमेतन्न भोक्तव्यमन्नं दुष्टाभिसंहितम् ।
क्षत्तुरेकस्य भोक्तव्यमिति मे धीयते मतिः ॥३२॥

मैंने तो यही विचारा है, कि दुष्ट अभिप्राय से दूषित आपके इस अन्न का भक्षण नहीं करूँगा। केवल विदुर ही इस दोष से मुक्त है, इससे उनके यहाँ ही भोजन करना उचित प्रतीत होता है ॥३२॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्दुर्योधनममर्षणम् ।
निश्चक्राम ततः शुभ्राद्धार्तराष्ट्रनिवेशनात् ॥३३॥

महाबाहु श्रीकृष्ण, ऐसा कह कर और दुर्योधन को इससे कुछ कुपित हुए देख कर उस श्वेत, दुर्योधन के राजभवन से बाहर चल दिए ॥३३॥

निर्याय च महाबाहुर्वासुदेवो महामनाः ।
निवेशाय ययौ वेश्म विदुरस्य महात्मनः ॥३४॥

महामनस्वी, महाबाहु श्रीकृष्ण, वहाँ से चलकर महात्मा विदुर के घर पर पहुँचे ॥३४॥

तमभ्यगच्छद् द्रोणश्च कृपो भीष्मोऽथ बाह्लिकः ।
कुरवश्च महाबाहुं विदुरस्य गृहे स्थितम् ॥३५॥

त ऊचुर्माधवं वीरं कुरवो मधुसूदनम् ।
निवेदयामो वार्ष्णेय सरत्नांस्ते गृहान्वयम् ॥३६॥

महाबाहु श्रीकृष्ण के चले जाने पर उनके पीछे २ द्रोणाचार्य, कृप, भीष्म, महाराज बाह्लिक तथा अन्य कौरव, विदुर के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घर पहुँचे और वहाँ स्थित वीर, मधुसूदन, लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण से कहने लगे। हे वार्ष्णेय ! आप रत्न-जटित हमारे राजमहलों में ठहरिए—यह हम आपसे निवेदन करते हैं ॥३५-३६॥

तानुवाच महातेजाः कौरवान्मधुसूदनः ।
सर्वे भवन्तो गच्छन्तु सर्वा मेऽपचितिः कृता ॥३७॥

महातेजस्वी मधुसूदन उन सारे कौरवों से बोले—आप सब लोग पधारें, आप लोगों ने मेरी सारी पूजा कर दी ॥३७॥

यातेषु कुरुषु क्षत्ता दाशार्हमपराजितम् ।
अभ्यर्चयामास तदा सर्वकामः प्रयत्नवान् ॥३८॥

जब श्रीकृष्ण के आग्रह पर सारे कौरव चले गये, तो दशार्हपति, महापराक्रमी श्रीकृष्ण की बड़े प्रयत्न से विदुर ने सेवा शुश्रूषा की ॥३८॥

ततः क्षत्ताऽन्नपानानि शुचीनि गुणवन्ति च ।
उपाहरदनेकानि केशवाय महात्मने ॥३९॥

विदुर ने बड़े पवित्र और गुणकारी अनेक भाँति के भोजन-पान, महात्मा कृष्ण के लिए उपस्थित किए ॥३९॥

तैस्तर्पयित्वा प्रथमं ब्राह्मणान्मधुसूदनः ।
वेदविद्भ्यो ददौ कृष्णः प्रथमं द्रविणान्यपि ॥४०॥

उस भोजन से श्रीकृष्ण ने प्रथम अनेक ब्राह्मणों को तृप्त किया तथा वेद के ज्ञाता ब्राह्मणों को बहुत सा धन दान दिया ॥४०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततोऽनुयायिभिः सार्धं मरुद्भिरिव वासवः ।
विदुरान्नानि बुभुजे शुचीनि गुणवन्ति च ॥४१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या-
मुद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि दुर्योधनसम्वादे
एकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

इसके अनन्तर देवों के साथ इन्द्र की तरह अपने साथियों के साथ विदुर के पवित्र और गुणकारी भोजन को श्रीकृष्ण ग्रहण करने लगे ॥४१॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में दुर्योधन के सम्वाद का इक्यानवेवां अध्याय समाप्त हुआ

बानवेवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

तं भुक्तवन्तमाश्वस्तं निशायां विदुरोऽब्रवीत् ।
नेदं सम्यग्व्यवसितं केशवाऽऽगमनं तव ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! जब भगवान कृष्ण भोजन करके शान्ति के साथ बैठ गये—तो उसी रात में विदुर उनसे कहने लगे—हे केशव ! आपका यहाँ आना उचित नहीं था ॥१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थधर्मातिगो मन्दः संरम्भी च जनार्दन ।
मानघ्नो मानकामश्च वृद्धानां शासनातिगः ॥२॥

हे जनार्दन ! दुर्योधन, नीति और धर्म के मार्ग को उलांघ कर चल रहा है। यह मूर्ख, बड़ा क्रोधी, अन्य के मान का विघातक और अपने मान का सदा अभिलाषी रहता है। यह वृद्ध-जनों की आज्ञा का सदा उल्लंघन करता है ॥२॥

धर्मशास्त्रातिगो मूढो दुरात्मा प्रग्रहं गतः ।
अनेयः श्रेयसां मन्दो धार्तराष्ट्रो जनार्दन ॥३॥

हे जनार्दन ! यह दुर्योधन, धर्मशास्त्र के शासन का उलंघन करने वाला, मूर्ख, दुरात्मा और दुराग्रही है। यह बेसमझ तो बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी कल्याण मार्ग पर नहीं ले जाया जा सकता है ॥३॥

कामात्मा प्राज्ञमानी च मित्रध्रुक्सर्वशङ्किता ।
अकर्ता चाऽकृतज्ञश्च त्यक्तधर्मा प्रियानृतः ॥४॥

यह बड़ा स्वार्थी, अपने आपको विद्वान् मानने वाला, मित्र-द्रोही, किसी पर विश्वास नहीं करने वाला, प्रत्युपकार के करने में असमर्थ, उपकार का नहीं मानने वाला, धर्महीन और मिथ्याचरण में तत्पर है ॥४॥

मूढश्चाऽकृतबुद्धिश्च इन्द्रियाणामनीश्वरः ।
कामानुसारी कृत्येषु सर्वेष्वकृतनिश्चयः ॥५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस मूर्ख की बुद्धि अनुभवहीन है और यह इन्द्रियों के परवश है। यह अपनी कामनाओं के पीछे दौड़ने वाला और अपने किसी भी कार्य के करने में दृढ़-निश्चयी नहीं है ॥५॥

ऐतैश्चाऽन्यैश्च बहुभिर्दोषैरेव समन्वितः।
त्वयोच्यमानः श्रेयोऽपि संरम्भान्न ग्रहीष्यति ॥६॥

यह दुर्योधन, इन तथा अन्य इसी तरह के अनेक दोषों से युक्त है। जो तुम इसको इसका हित भी बतलाओगे, तो भी यह क्रोध के वश में होकर उसको नहीं मानेगा ॥६॥

भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे द्रोणपुत्रे जयद्रथे।
भूयसीं वर्तते वृत्तिं न शमे कुरुते मनः ॥७॥

भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा, जयद्रथ आदि वीरों के विजयी होने में इसको बड़ा ही विश्वास है। यह किसी भी तरह सन्धि करना नहीं चाहता है ॥७॥

निश्चितं धार्तराष्ट्राणां सकर्णानां जनार्दन।
भीष्मद्रोणमुखान्पार्थानशक्तः प्रतिवीक्षितुम् ॥८॥

हे जनार्दन! धृतराष्ट्र-पुत्र अपने मन्त्री कर्ण आदि के साथ यह निश्चित माने बैठे हैं, कि भीष्म, द्रोण आदि के सम्मुख पाण्डव बिलकुल अशक्त हैं, देख भी नहीं सकते हैं ॥८॥

सेनासमुदयं कृत्वा पार्थिवं मधुसूदन।
कृतार्थं मन्यते बाल आत्मानमविचक्षणः ॥९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे मधुसूदन ! यह ज्ञान और अनुभव शून्य, दुर्योधन, पृथिवी भर की सेना इकट्ठी करके अपने आपको कृतार्थ मान रहा है ॥९॥

एकः कर्णः पराञ्जेतुं समर्थ इति निश्चितम् ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेः स शमं नोपयास्यति ॥१०॥

इस मूर्ख, दुर्योधन को तो यह निश्चित हो रहा है, कि अकेला कर्ण ही पाण्डवों के पराजित करने में समर्थ है। इस दशा में यह सन्धि कैसे कर सकता है ॥१०॥

संविच्च धार्तराष्ट्राणां सर्वेषामेव केशव ।
शमे प्रयतमानस्य तव सौभ्रात्रकाङ्क्षिणः ॥११॥
न पाण्डवानामस्माभिः प्रतिदेयं यथोचितम् ।
इति व्यवसितास्तेषु वचनं स्यान्निरर्थकम् ॥१२॥

हे केशव ! आप तो सारे धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधनादि के हित में तत्पर हो तथा पाण्डव और कौरवों के मातृ सम्बन्ध को स्थापित करने के लिए ही सन्धि का प्रयत्न कर रहे हो, परन्तु धृतराष्ट्र-पुत्रों ने तो यह निश्चित कर रखा है, कि हमें पाण्डवों को कुछ नहीं देना है । इस दशा में इनसे कुछ कहना निरर्थक ही प्रतीत होता है ॥११--१२॥

यत्र सूक्तं दुरुक्तं च समं स्यान्मधुसूदन ।
न तत्र प्रलपेत्प्राज्ञो बधिरेष्विव गायनः ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे मधुसूदन ! इस दशा में अच्छा कहना या बुरा बकना सब एक सा ही है। बधिरों के सामने गाने के सदृश ऐसे समय में बुद्धिमान् मनुष्य, वृथा समझ कर कुछ भी नहीं कहते हैं ॥१३॥

अविजानत्सु मूढ़ेषु निर्मर्यादेषु माधव ।
न त्वं वाक्यं ब्रुवन्युक्तश्चाण्डालेषु द्विजो यथा ॥१४॥

हे माधव ! कथन के तत्व पर ध्यान नहीं देने वाले, मर्यादा-हीन, धृतराष्ट्र के मूर्ख पुत्रों के सम्मुख, चाण्डालों के सम्मुख ब्राह्मणों की तरह तुमको कुछ भी कहना उचित नहीं है ॥१४॥

सोऽयं बलस्थो मूढश्च न करिष्यति ते वचः ।
तस्मिन्निरर्थकं वाक्यमुक्तं सम्पत्स्यते तव ॥१५॥

दुर्योधन बलसम्पन्न और मूर्ख है, इससे आपके वचन को कभी नहीं मानेगा। उससे कुछ भी वचन कहो—वह तुम्हारा सारा वचन निरर्थक ही होगा ॥१५॥

तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां पापचेतसाम् ।
तव मध्यावतरणं मम कृष्ण न रोचते ॥१६॥

हे कृष्ण ! उन सारे पाप विचार वाले बैठे हुए कौरवों के मध्य में आपका जाना मुझे तो उचित मालूम होता नहीं है ॥१६॥

दुर्बुद्धीनामशिष्टानां बहूनां दृष्टचेतसाम् ।
प्रतीपं वचनं मध्ये तव कृष्ण न रोचते ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे कृष्ण ! असभ्य, दुर्बुद्धि अनेक दुष्टों के मध्य में जाकर उनके विरुद्ध भी कहना मेरी सम्मति में तो निरर्थक ही है ॥१७॥

अनुपासितवृद्धत्वाच्छ्रियो दर्पाच्च मोहितः ।
वयोदर्पादमर्षाच्च न ते श्रेयो ग्रहीष्यति ॥१८॥

वृद्धों की आज्ञा के न मानने, राज्यलक्ष्मी के मद, यौवन और आवेश से दुर्योधन मोहित हो रहा है। वह तुम्हारे कल्याणकारी वचनों को भी नहीं मानेगा ॥१८॥

बलं बलवदप्यस्य यदि वक्ष्यसि माधव ।
त्वय्यस्य महती शङ्का न करिष्यति ते वचः ॥१९॥

हे माधव ! दुर्योधन की सेना भी बड़ी बलवान् है। इस समय यदि तुम कुछ कहोगे-तो वह तुम पर भी सन्देह करने लगेगा और तुम्हारे वचनों को वह कभी भी नहीं मानेगा ॥१९॥

नेदमद्य युधा शक्यमिन्द्रेणापि सहाऽमरैः ।
इति व्यवसिताः सर्वे धार्तराष्ट्रा जनार्दन ॥२०॥

हे जनार्दन ! देवों के साथ यदि इन्द्र भी युद्ध करे, तो वह भी हम से नहीं जीत सकता है—ऐसी धारणा सारे धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधनादि की हो रही है ॥२०॥

तेष्वेवमुपपन्नेषु कामक्रोधानुवर्तिषु ।
समर्थमपि ते वाक्यमसमर्थं भविष्यति ॥२१॥

काम और क्रोध के पीछे चलने वाले और इस तरह मदोन्मत्त हुए कौरवों में आपके समर्थ वाक्य भी असमर्थ रहेंगे ॥२१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मध्ये तिष्ठन्हस्त्यनीकस्य मन्दो रथाश्वयुक्तस्य बलस्य मूढः
दुर्योधनो मन्यते वीतभीतिः कृत्स्ना मयेयं पृथिवी जितेति

हे कृष्ण ! यह मूर्ख दुर्योधन, हाथी, रथ, अश्वों से युक्त अपनी सेना के मध्य में खड़ा होकर निर्भय हो जाता है और समझने लगता है, कि अब मैंने सारी पृथिवी ही जीत ली है ॥२२॥

आशंसते वै धृतराष्ट्रस्य पुत्रो महाराज्यमसपत्नं पृथिव्याम् ।
तस्मिञ्शमः केवलो नोपलभ्यो बद्धं सन्तं मन्यते लब्धमर्थम्

धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन, शत्रु रहित, सारी पृथिवी के राज्य की अभिलाषा कर रहा है। यद्यपि उसके मनोरथों को आपने रोक रखा है, तो भी वह अपने कार्य को सिद्ध हुआ ही समझ रहा है। इस दशा में उससे कैसे सन्धि हो सकती है ॥२३॥

पर्यस्तेयं पृथिवी कालपक्वा दुर्योधनार्थे पाण्डवान्योद्धुकामाः
समागताः सर्वयोधाः पृथिव्यां राजानश्च क्षितिपालैःसमेताः

काल से परिपाक को प्राप्त हुई, पृथिवी, अब उलट पलट हो जाने वाली प्रतीत होती है, जो दुर्योधन के लिए पाण्डवों से युद्ध करने को पृथिवी भर के योद्धा और अपने २ सामन्तों के साथ सारे राजा इकट्ठे हो गए हैं ॥२४॥

सर्वे चैते कृतवैराः पुरस्तात्त्वया राजनो हृतसाराश्च कृष्ण ।
तवोद्वेगात्संश्रिता धार्तराष्ट्रान्सुसंहताः सह कर्णेन वीराः ॥

हे कृष्ण ! इन सब राजाओं का तुमसे पूर्वकाल से ही वैर चला आता है और वे तुम से पराजित हो चुके हैं। तुम्हारे द्वेष से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही ये धृतराष्ट्र-पुत्रों से मिले हैं। ये सारे वीर, कर्ण को साथ लेकर संगठित हो रहे हैं ॥२५॥

त्यक्तात्मानः सह दुर्योधनेन हृष्टा योद्धुं पाण्डवान्सर्वयोधाः
तेषां मध्ये प्रविशेथा यदि त्वं न तन्मतं मम दाशार्हवीर ॥

हे दशार्ह देश के वीर ! कृष्ण ! ये सारे योद्धा दुर्योधन के लिए अपने प्राणों का मोह छोड़ कर पाण्डवों से युद्ध करने को बड़े उत्साह से तय्यार हो रहे हैं। यदि आप उन लोगों में प्रवेश करेंगे–तो मेरी सम्मति में यह ठीक नहीं है ॥२६॥

तेषां समुपविष्टानां बहूनां दुष्टचेतसाम्।
कथं मध्यं प्रपद्येथाः शत्रूणां शत्रुकर्शन ॥२७॥

हे शत्रुकर्शन ! उन बहुत से दुष्ट अभिप्राय धारी बैठे हुए शत्रु योद्धाओं के मध्य में आप कैसे निःशङ्क प्रविष्ट होना चाहते हैं ॥२७॥

सर्वथा त्वं महाबाहो देवैरपि दुरुत्सहः।
प्रभावं पौरुषं बुद्धिं जानामि तव शत्रुहन् ॥२८॥

हे महाबाहो ! आप देवों से भी आक्रमण के अयोग्य हो। हे शत्रुघ्न ! मैं आपके प्रभाव, पौरुष और बुद्धि को जानता हूँ ॥२८॥

या मे प्रीतिः पाण्डवेषु भूयः सा त्वयि माधव।
प्रेम्णा च बहुमानाच्च सौहृदाच्च ब्रवीम्यहम् ॥२९॥

हे माधव ! जो मेरी पाण्डवों में प्रीति है और आप में अधिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेम है। इस प्रेम, बहुमान और मित्र भाव के कारण से ही मैं यह सब कुछ कह रहा हूं ॥२९॥

या मे प्रीतिः पुष्कराक्ष त्वद्दर्शनसमुद्भवा ।
सा किमाख्यायते तुभ्यमन्तरात्माऽसि देहिनाम् ॥३०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या-मुद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णविदुरसंवादे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥२२॥

हे कमल नेत्र ! आपके दर्शन से जो मुझे आनन्द हुआ है, उसका मैं कथन नहीं कर सकता। आप तो प्राणियों की आत्मा में घुसकर सब कुछ पहचान लेते हो, इससे मेरी क्या दशा है, इसका आप अनुभव कर रहे होगे ॥३०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में श्रीकृष्ण और विदुर के सम्वाद का बानवेवां अध्याय पूरा हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिरानवेवाँ अध्याय

श्रीभगवानुवाच—

यथा ब्रूयान्महाप्राज्ञो यथा ब्रूयाद्विचक्षणः ।
यथा वाच्यस्त्वद्विधेन भवता मद्विधः सुहृत् ॥१॥
धर्मार्थयुक्तं तथ्यं च यथा त्वय्युपपद्यते ।
तथा वचनमुक्तोऽस्मि त्वयैतत्पितृमातृवत् ॥२॥
सत्यं प्राप्तं च युक्तं वाऽप्येवमेव यथात्थ माम् ।
शृणुष्वागमने हेतुं विदुराऽवहितो भव ॥३॥

श्री भगवान् बोले–हे विदुर ! जिस प्रकार महा बुद्धिमान् और विद्वान् बोल सकता है या मुझ जैसे मित्र से आप जैसा मित्र कह सकता है, धर्म और नीति से युक्त, सत्य वचन जैसा आपके स्वरूप के अनुरूप है, माता और पिता के वचनों के तुल्य वे ही उत्तम वचन आपने मुझसे कहे हैं। जो आपने मुझ से कहा है, वह बिलकुल सत्य, समयानुकूल और युक्ति-युक्त है, परन्तु आप मेरे आगमन के कारण को सावधानी से सुनो ॥१-३॥

दौरात्म्यं धार्तराष्ट्रस्य क्षत्रियाणां च वैरताम् ।
सर्वमेतदहं जानन्क्षत्तः प्राप्तोऽद्य कौरवान् ॥४॥

हे राजपुत्र ! मैं धृतराष्ट्र-पुत्रों की दुष्टता और क्षत्रियों के वैर को जानता हूँ, परन्तु यह सब कुछ जानकर भी मैं कौरवों की सभा में आया हूँ ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पर्यस्तां पृथिवीं सर्वां साश्वां सरथकुञ्जराम् ।
यो मोचयेन्मृत्युपाशात्प्राप्नुयाद्धर्ममुत्तमम् ॥५॥

अश्व, रथ और हाथियों सहित सारी पृथिवी उलट पलट होने वाली दिखाई दे रही है। जो इस पृथिवी को मृत्युपाश से छुड़ा दे—तो उसे बड़ा ही धर्म प्राप्त हो सकता है ॥५॥

धर्मकार्यं यतञ्शक्त्या नो चेत्प्राप्नोति मानवः ।
प्राप्तो भवति तत्पुण्यमत्र मे नास्ति संशयः ॥६॥

यदि मनुष्य धर्म कार्य के करने का अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न करे और उसमें सफलता न प्राप्त कर सके, तो भी वह उसके पुण्य को प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥६॥

मनसा चिन्तयन्पापं कर्मणा नाऽतिरोचयन् ।
न प्राप्नोति फलं तस्येत्येवं धर्मविदो विदुः ॥७॥

जो मनुष्य, मन से पाप का चिन्तन करता है और उसको कार्य में परिणत नहीं कर सकता है, तो वह उस पाप का भागी नहीं होता—ऐसा धर्म के जानने वाले मनुष्य कहते हैं ॥७॥

सोऽहं यतिष्ये प्रशमं क्षत्तः कर्तुममायया ।
कुरूणां सृञ्जयानां च संग्रामे विनशिष्यताम् ॥८॥

हे विदुर ! मैं इसीलिए निश्छल भाव से सन्धि कराने के प्रयत्न में लगा हूँ, क्योंकि आगे चल कर युद्ध में कौरव और सृञ्जयों (द्रुपदानुयायियों) के विनाश की निश्चय सम्भावना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सेयमापन्महाघोरा कुरुष्वेव समुत्थिता ।
कर्णदुर्योधनकृता सर्वे ह्येते तदन्वयाः ॥९॥

यह संसार की घोर विपत्ति कौरवों के यहाँ से कर्ण और दुर्योधन के कारण से खड़ी हुई है। इसमें इनके सारे वंशज भी सम्मिलित हैं ॥९॥

व्यसने क्लिश्यमानं हि यो मित्रं नाऽभिपद्यते ।
अनर्थाय यथाशक्ति तन्नृशंसं विदुर्बुधाः ॥१०॥

जो मनुष्य, विपत्ति में फँसे हुए मित्र की यथाशक्ति सहायता करके अनर्थ से नहीं बचाता, उस मनुष्य को नीच समझना चाहिए -ऐसा विद्वान् मानते हैं ॥१०॥

आकेशग्रहणान्मित्रमकार्यात्सन्निवर्त्तयन् ।
अवाच्यः कस्यचिद्भवति कृतयत्नो यथाबलम् ॥११॥

यदि सच्चा मित्र, अपने मित्र को बाल पकड़ कर भी बुरे कार्यों से निवृत्त कर दे, तो भी वह निन्दनीय नहीं हो सकता है, क्योंकि उसने तो अपने मित्र के लिए अपने बल के अनुसार उपकार का प्रयत्न किया है ॥११॥

तत्समर्थं शुभं वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् ।
धार्तराष्ट्रः सहामात्यो ग्रहीतुं विदुराऽर्हति ॥१२॥

हे विदुर ! धर्म और नीति के अनुसार कहे हुए अपने अर्थ के स्फुट करने में समर्थ, मेरे वाक्यों को धृतराष्ट्र-पुत्रों को अपने साथियों के साथ स्वीकार कर लेने चाहिए ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हितं हि धार्तराष्ट्राणां पाण्डवानां तथैव च ।
पृथिव्यां क्षत्रियाणां च यतिष्येऽहममायया ॥१३॥

मैं तो निष्कपट रूप से धृतराष्ट्र-पुत्र तथा पाण्डव और पृथिवी के समस्त राजाओं के हित के लिए प्रयत्न कर रहा हूँ ॥१३॥

हिते प्रयतमानं मां शङ्केद् दुर्योधनो यदि ।
हृदयस्य च मे प्रीतिरानृण्यं भविष्यति ॥१४॥

यदि हित कार्य में प्रयत्न करने पर भी दुर्योधन मेरे ऊपर सन्देह करता है, तो करे। मेरे तो हृदय को सन्तोष हो जावेगा और मैं तो अपने कर्तव्य को पूरा करके उऋण हो जाऊँगा ॥१४॥

ज्ञातीनां हि मिथो भेदे यन्मित्रं नाऽभिपद्यते ।
सर्वयत्नेन माध्यस्थं न तन्मित्रं विदुर्बुधाः ॥१५॥

जब भाइयों में फूट पड़े और जो मित्र एकता के लिए प्रयत्न न करे तथा सब तरह से अपने को तटस्थ रखे—वह मित्र नहीं है—यही विद्वानों का मत है ॥१५॥

न मां ब्रूयुरधर्मिष्ठा मूढा ह्यसुहृदस्तथा ।
शक्तो नाऽवारयत्कृष्णः संरब्धान्कुरुपाण्डवान् ॥१६॥

इस दशा में धर्म हीन, मूर्ख, प्रीति से रहित मनुष्य, मुझसे यह नहीं कह सकेंगे, कि समर्थ होकर भी कृष्ण ने क्रोध से भिड़ते हुए कौरव और पाण्डवों को नहीं रोका ॥१६॥

उभयोः साधयन्नर्थमहमागत इत्युत ।
तत्र यत्नमहं कृत्वा गच्छेयं नृष्ववाच्यताम् ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं तो दोनों के स्वार्थों की सिद्धि के लिए यहाँ आया हूँ। मैं इस विषय में प्रयत्न करके योग्य मनुष्यों की निन्दा से तो अवश्य बच सकूँगा ॥१७॥

मम धर्मार्थयुक्तं हि श्रुत्वा वाक्यमनामयम्।
न चेदादास्यते बालो दिष्टस्य वशमेष्यति ॥१८॥

धर्म और नीति के अनुसार मेरे कल्याणकारी वाक्यों को सुनकर भी मूर्ख दुर्योधन यदि ग्रहण नहीं करेगा--तो यही मानना पड़ेगा, कि वह होनहार के वश में पड़कर रहेगा ॥१८॥

अहापयन्पाण्डवार्थं यथावच्छमं कुरूणां यदि चाऽऽचरेयम्
पुण्यं च मे स्याच्चरितं महात्मन्मुच्येरंश्च कुरवो मृत्युपाशात्

हे महात्मन्! मैं जहाँ तक हो सका, पाण्डवों के स्वार्थ को न छोड़ कर यदि कौरवों के साथ सन्धि कराने में सफल हो सका, तो मुझे बड़ा पुण्य होगा और कौरव लोग भी मृत्यु की पाश से मुक्त हो जावेंगे ॥१९॥

अपि वाचं भाषमाणस्य काव्यां धर्मारामामर्थवतीमहिंस्राम्
अवेक्षेरन्धार्तराष्ट्राः शमार्थं मां च प्राप्तं कुरवः पूजयेयुः ॥

जब मैं विद्वानों के कथन के योग्य, युद्ध की पुष्टि से हीन, धर्म से युक्त, सार्थक वाणी कहूँगा, तब सारे धृतराष्ट्र-पुत्र, यह देख लेंगे, कि मैं निश्चय सन्धि के लिए ही आया हूँ और सारे कौरव भी मेरी वाणी का आदर करेंगे-मुझे ऐसी आशा है ॥२०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न चापि मम पर्याप्ताः संहिताः सर्वपार्थिवाः ।
क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥२१॥

इसके अतिरिक्त जब मैं क्रुद्ध होकर सम्मुख खड़ा होऊँगा-तब मेरे सम्मुख इकट्ठे हुए सारे राजा, सिंह के सम्मुख मृगों की भाँति नहीं ठहर सकते हैं ॥२१॥

वैशम्पायन उवाच—

इत्येवमुक्त्वा वचनं वृष्णीनामृषभस्तदा ।
शयने सुखसंस्पर्शे शिश्ये यदुसुखावहः ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि
श्रीकृष्णवाक्ये त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इतना कहकर यदुवंश को सुखकारी, वृष्णि-वंश-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण, आनन्ददायी उत्तम-शय्या पर सो गए ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में श्रीकृष्ण के वाक्य का तिरानवेवां अध्याय समाप्त हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौरानवेवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच--

तथा कथयतोरेव तयोर्बुद्धिमतोस्तदा ।
शिवा नक्षत्रसम्पन्ना सा व्यतीयाय शर्वरी ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इस प्रकार उन दोनों बुद्धिमान् श्रीकृष्ण और विदुर की बातचीत करते २ नक्षत्रों से सुशोभित दिव्य रात्रि समाप्त हो गई ॥१॥

धर्मार्थकामयुक्ताश्च विचित्रार्थपदाक्षराः ।
शृण्वतो विविधा वाचो विदुरस्य महात्मनः ॥२॥
कथाभिरनुरूपाभिः कृष्णस्याऽमिततेजसः ।
अकामस्येव कृष्णस्य सा व्यतीयाय शर्वरी ॥३॥

धर्म, अर्थ और काम से सम्पन्न, विचित्र अर्थ, पद और अक्षरों से समन्वित, बीच २ में अत्यन्त तेजस्वी भगवान् कृष्ण की अनुरूप युक्तियों से विभूषित, महात्मा विदुर की वाणी को सुनते २ रात्रि के व्यतीत होने के अनिच्छुक श्रीकृष्ण की यह रात बीत गई ॥२-३॥

ततस्तु स्वरसम्पन्ना बहवः सूतमागधाः ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः केशवं प्रत्यबोधयन् ॥४॥

प्रातःकाल होते ही स्वर के साथ गाते हुए बहुत से सूत, मागधादि, स्तुति पाठक, शंख, दुन्दुभि आदि के घोषों से श्रीकृष्ण को जगाने लगे ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत उत्थाय दाशार्ह ऋषभः सर्वसात्वताम् ।
सर्वमावश्यकं चक्रे प्रातःकार्यं जनार्दनः ॥५॥

सब यादवों में श्रेष्ठ, दशार्ह-देश-रत्न, जनार्दन कृष्ण ने उठ कर अपनी सारी प्रातःकाल की शौच स्नानादि क्रिया समाप्त की ॥५॥

कृतोदकानुजप्यः स हुताग्निः समलंकृतः ।
ततश्चाऽऽदित्यमुद्यन्तमुपातिष्ठत माधवः ॥६॥

स्नान आचमन के अनन्तर श्रीकृष्ण ने सन्ध्या बन्दन किया और हवन करके वस्त्र आभूषण पहिने। फिर वे उदय को प्राप्त होते हुए सूर्य के उपस्थान के मंत्रों का पाठ करने लगे ॥६॥

अथ दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौबलः ।
सन्ध्यां तिष्ठन्तमभ्येत्य दाशार्हमपराजितम् ॥७॥

आचक्षेतां तु कृष्णस्य धृतराष्ट्रं सभागतम् ।
कुरूंश्च भीष्मप्रमुखान्राज्ञः सर्वांश्च पार्थिवान् ॥८॥

त्वामर्थयन्ते गोविन्द दिवि शक्रमिवाऽमराः ।
तावभ्यनन्दद् गोविन्दः साम्ना परमवल्गुना ॥९॥

महापराक्रमी, दशार्ह देशोत्पन्न श्रीकृष्ण के सन्ध्या के समय सुबल-पुत्र शकुनि और राजा दुर्योधन पहुंचा। इन दोनों ने श्रीकृष्ण से कहा—हे गोविन्द! राजा धृतराष्ट्र सभा में पहुंच चुके हैं तथा भीष्म आदि सारे कौरव और सारे राजाभी राज-सभा में उपस्थित हैं। स्वर्ग में देवता, इन्द्र के आगमन की जिस भांति प्रतीक्षा करते हैं, ऐसे ही ये सब बैठे हुए आपकी प्रतीक्षा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर रहे हैं। श्रीकृष्ण ने भी बड़ी शान्त और मधुर वाणी से इन दोनों का स्वागत किया ॥७-९॥

ततो विमल आदित्ये ब्राह्मणेभ्यो जनार्दनः ।
ददौ हिरण्यं वासांसि गाश्चाऽश्वांश्च परन्तपः ॥१०॥

जब सूर्य स्पष्ट रीति से चमकने लगा, तो शत्रु विजयी जनार्दन कृष्ण ने ब्राह्मणों के लिए सुवर्ण, वस्त्र, गौ और अश्व आदि प्रदान किए ॥१०॥

विसृज्य बहुरत्नानि दाशार्हमपराजितम् ।
तिष्ठन्तमुपसङ्गम्य ववन्दे सारथिस्तदा ॥११॥

अनेक भांति के रत्नों के दानके अनन्तर विजयशील श्रीकृष्ण के स्थित होने पर दारुक सारथि ने समीप आकर प्रणाम किया ॥११॥

ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना ।
हयोत्तमयुजा शीघ्रमुपातिष्ठत दारुकः ॥१२॥

इसके अनन्तर किङ्किणियों (घूघरुओं) से सुशोभित, उत्तम २ अश्वों से युक्त विशाल शुभ्र रथ को लेकर दारुक सारथि आ उपस्थित हुआ ॥१२॥

तमुपस्थितमाज्ञाय रथं दिव्यं महामनाः ।
महाभ्रघननिर्घोषं सर्वरत्नविभूषितम् ॥१३॥
अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा ब्राह्मणांश्च जनार्दनः ।
कौस्तुभं मणिमामुच्य श्रिया परमया ज्वलन् ॥१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुरुभिः संवृतः कृष्णो वृष्णिभिश्चाऽभिरक्षितः ।
आतिष्ठत रथं शौरिः सर्वयादवनन्दनः ॥१५॥

महामनस्वी जनार्दन कृष्ण को जब यह ज्ञात हुआ, कि रथ आ गया है, तो उन्होंने अग्नि और ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा की और कौस्तुभ मणि को धारण किया, जिससे बड़े ही सुशोभित हुए। कौरवों से घिरे हुए वृष्णि वीरों से सुरक्षित, शूरसेन वंश श्रेष्ठ श्रीकृष्ण, महामेघ के समान ध्वनि करने वाले, सब रत्नों से विभूषित, दिव्य रथ पर चढ़ गए, जिसको देखकर सारे यादवों को बड़ा आनन्द हुआ ॥१३-१५॥

अन्वारुरोह दाशार्हं विदुरः सर्वधर्मवित् ।
सर्वप्राणभृतां श्रेष्ठं सर्वबुद्धिमतां वरम् ॥१६॥

समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ और सारे बुद्धिमानों में उत्तम, श्रीकृष्ण के रथ पर चढ़ जाने पर सब धर्मों के जानने वाले विदुर भी उसी रथ पर चढ़ गए ॥१६॥

ततो दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौबलः ।
द्वितीयेन रथेनैनमन्वयातां परन्तपम् ॥१७॥

फिर परन्तप श्रीकृष्ण के रथ के पीछे पीछे दूसरे रथ में बैठ कर सुबलपुत्र शकुनि और राजा दुर्योधन चल दिए ॥१७॥

सात्यकिः कृतवर्मा च वृष्णीनां चाऽपरे रथाः ।
पृष्ठतोऽनुययुः कृष्णं गजैरश्वै रथैरपि ॥१८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सात्यकि, कृतवर्मा और अन्य वृष्णि-वीरों के पृथक् २ रथ श्रीकृष्ण के पीछे पीछे चल दिए—तथा हाथी, घोड़े और अन्य रथों से अन्य वीर पीछे २ चले ॥१८॥

तेषां हेमपरिष्कारैर्युक्ताः परमवाजिभिः ।
गच्छतां घोषिणश्चित्ररथा राजन्विरेजिरे ॥१९॥

हे राजन् ! चलते हुए उन वृष्णिवीरों के उत्तम उत्तम अश्वों से युक्त, सुवर्ण से चमकीले, ध्वनि करने वाले विचित्र २ रथ बड़े ही सुन्दर प्रतीत होते थे ॥१९॥

सम्मृष्टसंसिक्तरजः प्रतिपेदे महापथम् ।
राजर्षिचरितं काले कृष्णो धीमाञ्श्रिया ज्वलन् ॥२०॥

राजकान्ति से देदीप्यमान, बुद्धिमान् श्रीकृष्ण भी राजर्षिगण जिस मार्ग से होकर गये थे, उसी साफ सुथरे और छिड़काव से युक्त राज-मार्ग से चल दिए ॥२०॥

ततः प्रयाते दाशार्हे प्रावाद्यंतैकपुष्कराः ।
शङ्खाश्च दध्मिरे तत्र वाद्यान्यन्यानि यानि च ॥२१॥

जब दशार्ह-देश-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण राजसभा की ओर चले—तो काहल, शंख तथा अन्य प्रकार के भेरीं आदि बाजे बजने लगे॥२१॥

प्रवीराः सर्वलोकस्य युवानः सिंहविक्रमाः ।
परिवार्य रथं शौरेरगच्छन्त परन्तपाः ॥२२॥

सारे संसार में महावीर, सिंह के समान पराक्रमी, शत्रु-विजयी युवा यादव वीर, श्रीकृष्ण के रथ को घेर कर साथ २ चल दिए॥२२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततोऽन्ये बहुसाहस्रा विचित्राद्भुतवाससः ।
असिप्रासायुधधराः कृष्णस्याऽऽसन्पुरःसराः ॥२३॥

इसी प्रकार विचित्र और अदभुत वस्त्र और तलवार, प्रास आदि शस्त्र धारी कई सहस्त्र योद्धा, श्रीकृष्ण के आगे २ चलने लगे ॥२३॥

गजाः पञ्चशतास्तत्र रथाश्चाऽऽसन्त्सहस्रशः ।
प्रयान्तमन्वयुर्वीरं दाशार्हमपराजितम् ॥२४॥

पांच सौ हाथी, एक हज़ार रथ, महापराक्रमी, दशार्ह-देश-श्रेष्ठ वीरवर श्रीकृष्ण के चलने पर उनके पीछे २ चल दिए ॥२४॥

पुरं कुरूणां संवृत्तं द्रष्टुकामं जनार्दनम् ।
सबालवृद्धं सस्त्रीकं रथ्यागतमरिन्दम ॥२५॥

हे अरिमर्दन ! श्रीकृष्ण के दर्शनों की लालसा से हस्तिनापुर के बालक, वृद्ध और स्त्रियों का समूह गली में आकर इकट्ठा हो गया ॥२५॥

वेदिकामाश्रिताभिश्च समाक्रान्तान्यनेकशः ।
प्रचलन्तीव भारेण योषिद्भिर्भवनान्युत ॥२६॥

उत्तम २ भवनों की छत पर चढ़ी हुई स्त्रियों से आक्रान्त हुए अनेक भवन उनके भार से चलायमान से हो रहे हैं ॥२६॥

स पूज्यमानः कुरुभिः संशृण्वन्मधुराः कथाः ।
यथार्हं प्रतिसत्कुर्वन्प्रेक्षमाणः शनैर्ययौ ॥२७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कौरवों से पूजा ग्रहण करते और उनकी मधुर वाणी सुनते तथा योग्य सत्कार करते एवं सब की ओर प्रेम की दृष्टि से देखते हुए श्रीकृष्ण धीरे २ चले जा रहे थे ॥२७॥

ततः सभां समासाद्य केशवस्याऽनुयायिनः ।
सशङ्खैर्वेणुनिर्घोषैर्दिशः सर्वा व्यनादयन् ॥२८॥

श्रीकृष्ण के अनुयायी वीर राजसभा में पहुंचकर शंख, वेणु आदि बाजों के शब्दों से सारी दिशाओं को उद्घोषित कर रहे थे ॥२८॥

ततः सा समितिः सर्वा राज्ञामममिततेजसाम् ।
सम्प्राकम्पत हर्षेण कृष्णागमनकांक्षया ॥२९॥

यह अत्यन्त तेजस्वी राजाओं की सभा श्रीकृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा में हर्ष से डावाडोल हो रही थी ॥२९॥

ततोऽभ्याशगते कृष्णे समहृष्यन्नराधिपाः ।
श्रुत्वा तं रथनिर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥३०॥

श्रीकृष्ण जब राजसभा के समीप पहुंचे, तो मेघ की गर्जना के तुल्य उनके रथ की ध्वनि सुन कर सारे राजा बड़े प्रसन्न हुए ॥३०॥

आसाद्य तु सभाद्वारमृषभः सर्वसात्वताम् ।
अवतीर्य रथाच्छौरिः कैलासशिखरोपमात् ॥३१॥

सारे यादवों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण, राजसभा के द्वार पर पहुंचकर कैलास के शिखर के तुल्य रथ से नीचे उतरे ॥३१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नवमेघप्रतीकाशां ज्वलन्तीमिव तेजसा ।
महेन्द्रसदनप्रख्यां प्रविवेश सभां ततः ॥३२॥

बिजली से देदीप्यमान, नवीन मेघ के समान उच्च तथा महेन्द्र के सदन के समान विशाल, कौरवों की राजसभा में श्रीकृष्ण प्रविष्ट हुए ॥३२॥

पाणौ गृहीत्वा विदुरं सात्यकिं च महायशाः ।
ज्योतींष्यादित्यवद्राजन्कुरून्प्राच्छादयच्छ्रिया ॥३३॥

हे राजन् ! महायशस्वी भगवान् कृष्ण, महात्मा विदुर और सात्यकि का हाथ पकड़ कर राजसभा में घुसने लगे । इन्होंने अन्य ज्योतियों को सूर्य के समान कौरवों को अपनी कान्ति से ढक लिया ॥३३॥

अग्रतो वासुदेवस्य कर्णदुर्योधनावुभौ ।
वृष्णयः कृतवर्मा चाऽप्यासन्कृष्णस्य पृष्ठतः । ३४॥

बसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण के आगे २ राजा दुर्योधन और कर्ण चल रहे थे और उनके पीछे २ वृष्णिवीर तथा कृतवर्मा थे ॥६४॥

धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य भीष्मद्रोणादयस्ततः ।
आसनेभ्योऽचलन्पूर्वे पूजयन्तो जनार्दनम् ॥३५॥

जनार्दन श्रीकृष्ण के स्वागत के लिए प्रथम राजा धृतराष्ट्र और उनके साथ भीष्म, द्रोण आदि सारे वीर अपने २ आसनों पर चञ्चल हो उठे ॥३५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभ्यागच्छति दाशार्हे प्रज्ञाचक्षुर्नरेश्वरः ।
सहैव द्रोणभीष्माभ्यामुदतिष्ठन्महायशाः ॥३६॥

दशार्ह-रत्न श्रीकृष्ण के राजसभा में आते ही महा-यशस्वी राजा धृतराष्ट्र, भीष्म और द्रोण आदि वीरों के साथ २ खड़े हो गए ॥३६॥

उत्तिष्ठति महाराजे धृतराष्ट्रे जनेश्वरे ।
तानि राजसहस्राणि समुत्तस्थुः समन्ततः ॥३७॥

कौरवराज महाराज धृतराष्ट्र के उठते ही राजसभा में सहस्रों राजा सब ओर से खड़े होगए ॥३७॥

आसनं सर्वतोभद्रं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ।
कृष्णार्थे कल्पितं तत्र धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥३८॥

सब तरह से सुखदायी, तपे हुए सुवर्ण से निर्मित, सिंहासन, राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा से श्रीकृष्ण के निमित्त राजसभा में बिछा हुआ था ॥३८॥

स्मयमानस्तु राजानं भीष्मद्रोणौ च माधवः ।
अभ्यभाषत धर्मात्मा राज्ञश्चाऽन्यान्यथावयः ॥३९॥

मुस्कुराते हुए श्रीकृष्ण राजा धृतराष्ट्र और भीष्म तथा द्रोण से मिले। इसी तरह धर्मात्मा कृष्ण ने अन्य राजाओं से उनकी आयु के अनुसार भेंट की ॥३९॥

तत्र केशवमानर्चुः सम्यगभ्यागतं सभाम् ।
राजानः पार्थिवाः सर्वे कुरवश्च जनार्दनम् ॥४०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्र तिष्ठन्स दाशार्हो राजमध्ये परन्तपः ।
ततस्तानभिसम्प्रेक्ष्य नारदप्रमुखानृषीन् ॥४१॥
अभ्यभाषत दाशार्हो भीष्मं शान्तनवं शनैः ।
पार्थिवीं समितिं द्रष्टुमृषयोऽभ्यागता नृप ॥४२॥
निमन्त्र्यन्तामासनैश्च सत्कारेण च भूयसा ।
नैतेष्वनुपविष्टेषु शक्यं केनचिदासितुम् ॥४३॥
पूजा प्रयुज्यतामाशु मुनीनां भावितात्मनाम् ।

जब जनार्दन श्रीकृष्ण, अच्छी तरह सभा में उपस्थित हो गए—तो सारे राजा और कौरवों ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया। शत्रुविजयी, दशार्ह-वंशोत्पन्न, श्रीकृष्ण, जब सभा में उपस्थित हुए—तो उन्होंने द्वार पर नारद आदि ऋषियों को देखा। वे धीरे से शान्तुन-पुत्र भीष्म से बोले—हे राजन्! देवलोक से ऋषिलोग, इस पृथिवी की राजसभा को देखने आए हैं। इनको आसन प्रदान करके इनका अच्छी तरह सत्कार कीजिए। जब तक ये बैठ न जावेंगे—तब तक कोई नहीं बैठेगा। इन महात्मा मुनियों की शीघ्र पूजा का प्रबन्ध करो ॥४०-४३॥

ऋषीञ्शान्तनवो दृष्ट्वा सभाद्वारमुपस्थितान् ॥४४॥
त्वरमाणस्ततो भृत्यानासनानीत्यचोदयत् ।

शान्तुन-पुत्र, भीष्म ने राजसभा के द्वार पर उपस्थित ऋषियों को सुनकर बड़ी शीघ्रता से सेवकों को आज्ञा दी, कि तुम उनके लिए आसन बिछवादो ॥४४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आसनान्यथ मृष्टानि महान्ति विपुलानि च ॥४५॥
मणिकाञ्चनचित्राणि समाजह्रुस्ततस्ततः ।

भृत्यगण, बड़े स्वच्छ, महाविशाल, सुवर्ण और मणियों से चित्रित, उच्च आसनों को उठा लाए ॥४५॥

तेषु तत्रोपविष्टेषु गृहीतार्घेषु भारत ॥४६॥
निषसादाऽऽसने कृष्णो राजानश्च यथासनम् ।

हे भारत ! जब ऋषि लोग, अर्घ ग्रहण करके अपने अपने आसनों पर बैठ गए, तब श्रीकृष्ण, अपने आसन पर और अन्य राजा भी अपने आसनों पर जा विराजे ॥४६॥

दुःशासनः सात्यकये ददावासनमुत्तमम् ॥४७॥
विविंशतिर्ददौ पीठं काञ्चनं कृतवर्मणे ।

दुःशासन ने सात्यकि को और विविंशति ने कृतवर्मा को सुवर्ण का उत्तम मञ्च, शीघ्रता-पूर्वक प्रदान किया ॥४८॥

अविदूरे तु कृष्णस्य कर्णदुर्योधनावुभौ ॥४८॥
एकासने महात्मानौ निषीदतुरमर्षणौ ।

श्रीकृष्ण के पास में ही असहिष्णु, तेजस्वी राजा दुर्योधन और कर्ण बैठ गए ॥४८॥

गान्धारराजः शकुनिर्गान्धारैरभिरक्षितः ॥४९॥
निषसादाऽऽसने राजा सहपुत्रो विशाम्पते ।

हे विशाम्पते ! गान्धार देश के वीरों से अभिरक्षित गान्धार-राज शकुनि, अपने पुत्रों के साथ उत्तम आसन पर बैठ गया ॥४९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

विदुरो मणिपीठे तु शुक्लस्पर्ध्याजिनोत्तरे ॥५०॥
संस्पृशन्नासनं शौरेर्महामतिरुपाविशत् ।

श्रीकृष्ण के सिंहासन को आदर पूर्वक छूता हुआ महामति विदुर भी श्वेत उत्तम मृग चर्म के बिछौने से युक्त, अपने मणि-जटित सिंहासन पर बैठ गया ॥५०॥

चिरस्य दृष्ट्वा दाशार्हं राजानः सर्व एव ते ॥५१॥
अमृतस्येव नाऽतृप्यन्प्रेक्षमाणा जनार्दनम् ।

राजसभा में उपस्थित अनेक राजा जनार्दन श्रीकृष्ण को बहुत देर तक देखते रहने पर भी अमृत से तृप्त नहीं होने के सदृश तृप्त नहीं हो रहे थे ॥५१॥

अतसीपुष्पसङ्काशः पीतवासा जनार्दनः
व्यभ्राजत सभामध्ये हेम्नीवोपहितो मणिः ॥५२॥

अलसी के नील पुष्प के समान वर्ण और पीताम्बर धारी श्रीकृष्ण, सुवर्ण में जड़ी हुई मणि के समान सुन्दर प्रतीत होते थे ॥५२॥

ततस्तूष्णीं सर्वमासीद्गोविन्दगतमानसम् ।
न तत्र कश्चित्किञ्चिद्वा व्याजहार पुमान्क्वचित् ॥५३॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णसभाप्रवेशे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

उस समय सारे राजा श्रीकृष्ण की ओर देख रहे थे और सब का मन उस ओर ही लगा था, जिससे सारी राजसभा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चुपचाप थी और वहाँ पर कोई भी पुरुष कुछ भी नहीं बोल रहा था ॥५३॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में श्रीकृष्ण के सभा में प्रवेश होने का चौरानवेवां अध्याय समाप्त हुआ

पिच्चानवेवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

तेष्वासीनेषु सर्वेषु तूष्णींभूतेषु राजसु ।
वाक्यमभ्याददे कृष्णः सुदंष्ट्रो दुन्दुभिस्वनः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! जब सारे राजा बैठ गए और चुपचाप हो गए, तब सुन्दर दन्त धारी श्रीकृष्ण, दुन्दुभि के समान ध्वनि से कहने लगे ॥१॥

जीमूत इव घर्मान्ते सर्वां संश्रावयन्सभाम् ।
धृतराष्ट्रमभिप्रेक्ष्य समभाषत माधवः ॥२॥

ग्रीष्म काल के अनन्तर वर्षाकाल के आरम्भ में गर्जते हुए, मेघ के तुल्य गर्जते हुए श्रीकृष्ण, सारी सभा को सुना कर एवं राजा धृतराष्ट्र की ओर मुख करके कहने लगे ॥२॥

श्रीभगवानुवाच—

कुरूणां पाण्डवानां च शमः स्यादिति भारत ।
अप्रणाशेन वीराणामेतद्याचितुमागतः ॥३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे भारत ! कौरव और पाण्डवों में सन्धि हो जावे और वीरों का भावी विनाश रुक जावे, मैं इसी अभिलाषा की पूर्ति के लिए यहाँ आया हूँ ॥३॥

राजन्नाऽन्यत्प्रवक्तव्यं तव नैःश्रेयसं वचः ।
विदितं ह्येव ते सर्वं वेदितव्यमरिन्दम ॥४॥

हे राजन् ! इसके अतिरिक्त आपसे कहने योग्य अन्य कोई कल्याणकारी वचन नहीं है । हे अरिमर्दन ! इस विषय में जो कुछ जानना चाहिए—वह सब कुछ आप जानते हो ॥४॥

इदं ह्यद्य कुलं श्रेष्ठं सर्वराजसु पार्थिव ।
श्रुतवृत्तोपसम्पन्नं सर्वैः समुदितं गुणैः ॥५॥

हे राजन् ! आजकल यह कुरुकुल सब राजकुलों में श्रेष्ठ माना जाता है । यह कुल वेद शास्त्र के अनुसार चलने वाला सदाचार से सम्पन्न है तथा इसमें अन्य अनेक गुण इकट्ठे हो रहे हैं ॥५॥

कृपाऽनुकम्पा कारुण्यमानृशंस्यं च भारत ।
तथाऽऽर्जवं क्षमा सत्यं कुरुष्वेतद्विशिष्यते ॥६॥

हे भारत ! दया, अनुग्रह, करुणा, उदारता, सरलता, क्षमा, सत्य, आदि गुण केवल कौरवों में ही दिखाई देते हैं ॥६॥

तस्मिन्नेवंविधे राजन्कुले महति तिष्ठति ।
त्वन्निमित्तं विशेषेण नेह युक्तमसाम्प्रतम् ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन् ! इस प्रकार के विशाल गुणों से युक्त इस कुल के होने पर आपके निमित्त से इसमें किसी उपर्युक्त गुणों के विपरीत गुण का उदय नहीं होना चाहिए ॥७॥

त्वं हि धारयिता श्रेष्ठः कुरूणां कुरुसत्तम ।
मिथ्या प्रचरतां तात बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च ॥८॥

हे कुरुसत्तम ! आप कुरुवंश में श्रेष्ठ--और इसके धारक हो। हे तात ! अब कुछ कुरुवंशी अपने आन्तरिक और बाह्य राजाओं के साथ मिथ्या आचरण करने लगे हैं ॥८॥

ते पुत्रास्तव कौरव्य दुर्योधनपुरोगमाः ।
धर्मार्थौ पृष्ठतः कृत्वा प्रचरन्ति नृशंसवत् ॥९॥

हे कौरव ! दुर्योधन आदि तेरे पुत्र, धर्म और नीति की उपेक्षा करके नीच मनुष्य की भाँति आचरण करते हैं ॥९॥

अशिष्टा गतमर्यादा लोभेन हृतचेतसः ।
स्वेषु बन्धुषु मुख्येषु तद्वेत्थ पुरुषर्षभ ॥१०॥

हे पुरुषर्षभ ! आपके पुत्र, बड़े असभ्य, मर्यादाहीन और लोभ के परवश हो रहे हैं। इनका अपने धर्मपूर्वक आचरण करने वाले भाइयों के साथ तो बड़ा ही अनुचित बर्ताव है—जो सब कुछ आप जानते हो ॥१०॥

सेयमापन्महाघोरा कुरुष्वेव समुत्थिता ।
उपेक्ष्यमाणा कौरव्य पृथिवीं घातयिष्यति ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे कुरुराज ! यह महा-घोर विपत्ति कौरवों से खड़ी हो रही है। यदि आपने इसकी उपेक्षा की तो यह पृथिवी भर का नाश कर डालेगी ॥११॥

शक्या चेयं शमयितुं न चेद्दित्ससि भारत ।
न दुष्करो ह्यत्र शमो मतो मे भरतर्षभ ॥१२॥

हे भारत ! यदि तुम कुल का नाश नहीं करना चाहते हो, तो अब भी सन्धि हो सकती है। हे भरतर्षभ ! मेरी सम्मति में अब भी सन्धि होना कठिन नहीं है ॥१२॥

त्वय्यधीनः शमो राजन्मयि चैव विशाम्पते ।
पुत्रान्स्थापय कौरव्य स्थापयिष्याम्यहं परान् ॥१३॥

हे प्रजापालक ! महीपते ! यह शान्ति स्थापन करना आपके और मेरे आधीन है। हे विशाम्पते ! तुम अपने पुत्रों को रोक रखो, मैं पाण्डवों को रोक दूंगा ॥१३॥

आज्ञा तव हि राजेन्द्र कार्या पुत्रैः सहाऽन्वयैः ।
हितं बलवदप्येषां तिष्ठतां तव शासने ॥१४॥

हे राजेन्द्र ! तुम्हारे पुत्रों को तुम्हारी आज्ञा का पालन करना चाहिए। यदि ये लोग, तुम्हारी आज्ञा के अनुसार चलेंगे, तो इनका बड़ा ही हित होगा ॥१४॥

तव चैव हितं राजन्पाण्डवानामथो हितम् ।
शमे प्रयतमानस्य मम शासनकाङ्क्षिणः ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन् ! शान्ति स्थापन के निमित्त मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। यदि पुत्रशासनेच्छुक मेरे कथन को स्वीकार करोगे—तो तुम्हारा और पाण्डवों का हित होगा ॥१५॥

स्वयं निष्फलमालक्ष्य संविधत्स्व विशाम्पते ।
सहायभूता भरतास्तवैव स्युर्जनेश्वर ॥१६॥

हे विशाम्पते ! आप इस वैर को निष्फल समझ कर सन्धि का प्रयत्न करो। हे जनेश्वर ! आपके इस उद्योग में ये सारे भरतवंशी क्षत्रिय सहायता करेंगे ॥१६॥

धर्मार्थयोस्तिष्ठ राजन्पाण्डवैरभिरक्षितः ।
नहि शक्यास्तथाभूता यत्नादपि नराधिप ॥१७॥

हे राजन् ! फिर पाण्डवों से सुरक्षित होकर धर्म और नीति का अनुष्ठान करो। हे नराधिप ! ऐसे सहायक प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं कर सकोगे ॥१७॥

नहि त्वां पाण्डवैर्जेतुं रक्ष्यमाणं महात्मभिः ।
इन्द्रोऽपि देवैः सहितः प्रसहेत कुतो नृपाः ॥१८॥

हे राजन् ! महाबली पाण्डवों से सुरक्षित आपको देवों के सहित इन्द्र भी नहीं सह सकता है, फिर अन्य साधारण राजाओं की तो क्या शक्ति है ॥१८॥

यत्र भीष्मश्च द्रोणश्च कृपः कर्णो विविंशतिः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तोऽथ बाह्लिकः ॥१९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सैन्धवैश्च कलिङ्गश्च काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
युधिष्ठिरो भीमसेनः सव्यसाची यमौ तथा ॥२०॥
सात्यकिश्च महातेजा युयुत्सुश्च महारथः ।
को नु तान्विपरीतात्मा युद्ध्येत भरतर्षभ ॥२१॥

हे भरतर्षभ ! जिस ओर भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, विविंशति, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, बाल्हिक, सिन्धुराज की सेना के कलिङ्गाधिपति, काम्बोज और दक्षिण के स्वामी, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, महातेजस्वी सात्यकि, महारथी युयुत्सु आदि वीर होंगे, उनसे कौन उलटी बुद्धि का मनुष्य युद्ध कर सकता है ॥१९-२१॥

लोकस्येश्वरतां भूयः शत्रुभिश्चाऽप्यधृष्यताम् ।
प्राप्स्यसि त्वममित्रघ्न सहितः कुरुपाण्डवैः ॥२२॥

हे शत्रुनाशक ! इस तरह पाण्डवों के सहयोग से तुम सारे संसार का राज्य और शत्रु से दुष्प्रधर्ष हो जावोगे ॥२२॥

तस्य ते पृथिवीपालास्त्वत्समाः पृथिवीपते ।
श्रेयांसश्चैव राजानः सन्धास्यन्ते परन्तप ॥२३॥

हे परन्तप ! पृथिवीपते ! इस तरह तुम्हारी समानता के सारे राजा और तुम से भी बड़े होने का विचार रखने वाले राजा भी तुमसे सन्धि करने को उत्कण्ठित रहेंगे ॥२३॥

स त्वं पुत्रैश्च पौत्रैश्च पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा ।
सुहृद्भिः सर्वतो गुप्तः सुखं शक्ष्यसि जीवितुम् ॥२४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन् ! इस तरह आप, पुत्र, पौत्र, चाचा, ताऊ, भाई और मित्रों से सुरक्षित रह कर सुख से अपने जीवन को बिता सकोगे ॥२४॥

एतानेव पुरोधाय सत्कृत्य च यथा पुरा ।
अखिलां भोक्ष्यसे सर्वां पृथिवीं पृथिवीपते ॥२५॥

हे पृथिवीपते ! इन पाण्डवों का सत्कार करके और इनको युद्ध में अग्रगामी बनाकर आप इस सारी पृथिवी का भोग कर सकोगे ॥२५॥

एतैर्हि सहितः सर्वैः पाण्डवैः स्वैश्च भारत ।
अन्यान्विजेष्यसे शत्रूनेष स्वार्थस्तवाऽखिलः ॥२६॥

हे भारत ! इन सारे पाण्डव और अपने पुत्रों को साथ लेकर तुम अपने अन्य सारे शत्रुओं को जीत लोगे—यह तुम्हारा बहुत बड़ा स्वार्थ सिद्ध होगा ॥२६॥

तैरेवोपार्जितां भूमिं भोक्ष्यसे च परन्तप ।
यदि सम्पत्स्यसे पुत्रैः सहाऽमात्यैर्नराधिप ॥२७॥

हे परन्तप ! यदि आप मन्त्रियों के सहित अपने पुत्र पाण्डवों के साथ सन्धि कर लोगे, तो इनसे सुरक्षित सारी पृथिवी का भोग कर सकोगे ॥२७॥

संयुगे वै महाराज दृश्यते सुमहान्क्षयः ।
क्षये चोभयतो राजन्कं धर्ममनुपश्यसि ॥२८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे महाराज ! यदि युद्ध ठन गया, तो बड़ा भारी विनाश होगा। हे राजन् ! इस प्रकार के दोनों ओर के विनाश में आप किस धर्म की सिद्धि देख रहे हो ॥२८॥

पाण्डवैर्निहतैः संख्ये पुत्रैर्वाऽपि महाबलैः ।
यद्विन्देथाः सुखं राजन्स्तद् ब्रूहि भरतर्षभ ॥२९॥

हे भरतर्षभ ! युद्ध में पाण्डवों के मारे जाने या महा बलवान् आपके पुत्रों के मारे जाने पर आपको क्या सुख होगा—तनिक यह तो बताइए ॥२९॥

शूराश्च हि कृतास्त्राश्च सर्वे युद्धाभिकांक्षिणः ।
पाण्डवास्तावकाश्चैव तान्रक्ष महतो भयात् ॥३०॥

हे राजन् ! पाण्डव और आपके सारे पुत्र, शूरवीर, शस्त्र-विद्या में कुशल और सदा युद्ध के अभिलाषी रहते हैं। अब इस उपस्थित महाभय से उनकी रक्षा करो ॥३०॥

न पश्येम कुरून्सर्वान्पाण्डवांश्चैव संयुगे
क्षीणानुभयतः शूरान्रथिनो रथिभिर्हतान् ॥३१॥

अब तो आप ऐसा करो, जिससे आप युद्ध में सारे कौरव और पाण्डव तथा महारथियों से मारे हुए महारथी और क्षीण हुए दोनों ओर के वीरों को न देख सकें ॥३१॥

समवेताः पृथिव्यां हि राजानो राजसत्तम ।
अमर्षवशमापन्ना नाशयेयुरिमाः प्रजाः ॥३२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजसत्तम ! यहाँ सारी पृथिवी के राजा इकट्ठे हो गए हैं। यदि इनको क्रोध आ गया, तो ये सारी पृथिवी का नाश कर सकते हैं ॥३२॥

त्राहि राजन्निमं लोकं न नश्येयुरिमाः प्रजाः ।
त्वयि प्रकृतिमापन्ने शेषः स्यात्कुरुनन्दन ॥३३॥

हे राजन् ! आप इस भूलोक की रक्षा कीजिए। इस सारी प्रजा का नाश न होवे। हे कुरुनन्दन ! यदि आप ठीक २ शान्ति धारण किये रहेंगे—तो इस प्रजा की कुछ रक्षा हो सकती है।३३।

शुक्ला वदान्या ह्रीमन्त आर्याः पुण्याभिजातयः ।
अन्योन्यसचिवा राजंस्तान्पाहि महतो भयात् । ३४॥

ये सारे भाई गौर वर्ण धारी, उदार, लज्जाशील, आर्य, कुलीन हैं, जो एक दूसरे के सहायक रहेंगे--आप इनकी आने वाली महाविपत्ति से रक्षा कीजिए ॥३४॥

शिवेनेमे भूमिपालाः समागम्य परस्परम् ।
सह भुक्त्वा च पीत्वा च प्रतियान्तु यथागृहम् ॥३५॥
सुवाससः स्रग्विणश्च सत्कृता भरतर्षभ ।
अमर्षं च निराकृत्य वैराणि च परन्तप ॥३६॥

हे राजन् ! ये सारे राजा एक दूसरे से मिल भेंट कर तथा साथ २ भोजन पान करके सुन्दर वस्त्र, माला, आभूषण आदि सत्कार पाकर और क्रोध तथा वैर को छोड़ कर सुख पूर्वक अपने २ स्थानों को जावें ॥३६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हार्दं यत्पाण्डवेष्वासीत्प्राप्तेऽस्मिन्नायुषः क्षये ।
तदेव ते भवत्वद्य सन्धत्स्व भरतर्षभ ॥३७॥

हे भरतर्षभ ! आपका जो प्रेम पाण्डवों पर पूर्वकाल में था, वही प्रेम, इस आयु-नाश-कारी युद्ध के समय में होना चाहिए। अब किसी भी तरह आप सन्धि के लिए सन्नद्ध हो जाइए ॥३७॥

बाला विहीनाः पित्रा ते त्वयैव परिवर्धिताः ।
तान्पालय यथान्यायं पुत्रांश्च भरतर्षभ ॥३८॥

हे भरत-वंश--श्रेष्ठ ! धृतराष्ट्र ! पाण्डव तो बालक, पिता विहीन, आप द्वारा ही पाले पोषे गए है। अब भी आप इन पाण्डवों की अपने पुत्रों की तरह पालना करो ॥३८॥

भवतैव हि रक्ष्यास्ते व्यसनेषु विशेषतः ।
मा ते धर्मस्तथैवाऽर्थो नश्यते भरतर्षभ ॥३९॥

हे भरत-वंश-श्रेष्ठ ! आपको पाण्डवों की रक्षा करनी चाहिए और विपत्ति के समय तो अवश्य ही सहायता करनी योग्य है। इस तरह आपका धर्म और नीति दोनों नष्ट नहीं होंगे ॥३९॥

आहुस्त्वां पाण्डवा राजन्नभिवाद्य प्रसाद्य च ।
भवतः शासनाद् दुःखमनुभूतं सहाऽनुगैः ॥४०॥

हे राजन् ! आपको प्रणाम पूर्वक प्रसन्न करके पाण्डवों ने कहा है, कि हमने आपकी आज्ञा से ही अपने अनुयायियों के साथ यह सब कुछ दुःख भोगा है ॥४०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाभारत चित्र संख्या ६३

द्रौपदी का श्रीकृष्ण को अपने केश दिखाना
महाभारत उद्योग पर्व अ० ८२—३६ पृष्ठ ८३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वादशेमानि वर्षाणि वने निर्व्युषितानि नः ।
त्रयोदशं तथाऽज्ञातैः सजने परिवत्सरम् ॥४१॥

हमने बारह वर्ष तक निर्जन वन में वास किया और एक वर्ष तक छुप कर मनुष्यों में अज्ञात रूप से दिन बिताए-इस तरह तेरह वर्ष व्यतीत किए ॥४१॥

स्थाता नः समये तस्मिन्पितेति कृतनिश्चयाः ।
नाऽहास्म समयं तात तच्च नो ब्राह्मणा विदुः ॥४२॥

पाण्डवों को निश्चय है, कि आप उनके ज्येष्ठ पिता है, इससे जो उनके साथ समय (शर्त) नियत हुआ है- उसका आप पूरा पालन करेंगे। उन्होंने कहा है —हे तात ! हमने अपने समय (शर्त) को पूरा निभा दिया—यह हमारे साथ रहने वाले सारे ब्राह्मण जानते हैं ॥४२॥

तस्मिन्नः समये तिष्ठ स्थितानां भरतर्षभ ।
नित्यं संक्लेशिता राजन्स्वराज्यांशं लभेमहि ॥४३॥

हे भरतर्षभ ! जब हम अपने निश्चित समय (शर्त) पर स्थित हैं, तो आपको भी हमारे साथ नियत हुए समय (शर्त) का पालन करना चाहिए। हे राजन् ! अब तक हमने बहुत क्लेश उठा लिया है-अब हमको अपने राज्य का भाग मिल जाना चाहिए ॥४३॥

त्वं धर्ममर्थं सञ्जानन्सम्यङ् नस्त्रातुमर्हसि ।
गुरुत्वं भवति प्रेक्ष्य बहून्क्लेशांस्तितिक्ष्महे ॥४४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आप धर्म और नीति सब कुछ जानते हैं। आपको अब अच्छी तरह हमारा उद्धार कर लेना चाहिए। हमने आप को पूज्य मान कर ही अब तक ये सारे क्लेश सहे हैं ॥४४॥

स भवान्मातृपितृवदस्मासु प्रतिपद्यताम् ।
गुरोर्गरीयसी वृत्तिर्या च शिष्यस्य भारत ॥४५॥
वर्तामहे त्वयि च तां त्वं च वर्तस्व नस्तथा ।

अब हमारे साथ माता पिता की भांति बर्ताव करो। गुरु का कर्तव्य गौरव पूर्ण है और शिष्य का कर्तव्य भी बड़ा कठिन है। हे भारत! हम आपके साथ शिष्य वृत्ति से व्यवहार करेंगे और आप हमारे साथ गुरु के तुल्य व्यवहार करो ॥४५॥

पित्रा स्थापयितव्या हि वयमुत्पथमास्थिताः ॥४६॥
संस्थापय पथिष्वस्मांस्तिष्ठ धर्मे सुवर्त्मनि ।

यदि हम मार्ग छोड़कर कुछ चलें—तो आप पिता हैं-हमको समझा सकते हैं। आप हमको सुमार्ग में लगाइये। इस प्रकार आप स्वयं भी धर्म के श्रेष्ठ मार्ग में प्रवृत्त होइए ॥४६॥

आहुश्चेमां परिषदं पुत्रास्ते भरतर्षभ ॥४७॥
धर्मज्ञेषु सभासत्सु नेह युक्तमसाम्प्रतम् ।

हे भरतर्षभ! आपके पुत्रों ने धर्म के जानने वाले सभासदों के सभा में बैठे रहने पर भी जो कुछ सभा में कहा था-वह उचित नहीं था और सभासदों में वैसा कहना बिल्कुल अनुचित था ॥४७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यत्र धर्मो ह्यर्मेण सत्यं यत्राऽनृतेन च ॥४८॥
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ।

जिस सभा में सभासदों के देखते २ अधर्म से धर्म और अनृत (झूंठ) से सत्य का विध्वंस किया जावे-वहां सभासदों की नैतिक मृत्यु समझनी चाहिए ॥४८॥

विद्धो धर्मो ह्यधर्मेण सभां यत्र प्रपद्यते ॥४९॥
न चाऽस्य शल्यं कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ।
धर्म एतानारुजति यथा नद्यनुकूलजान् ॥५०॥

अधर्म से बिंधा हुआ धर्म जिस सभा में उपस्थित होता है-तो अधर्म से दबे हुए सभासद, इस धर्म के कांटे को काट नहीं सकते हैं और धर्म, तट पर स्थित वृक्षों को नदी की भांति इन अधर्म पोषक सभासदों को उखाड़ फैंकता है ॥४९-५०॥

ये धर्ममनुपश्यन्तस्तूष्णीं ध्यायन्त आसते ।
ते सत्यमाहुर्धर्म्यं च न्याय्यं च भरतर्षभ ॥५१॥

हे भरतर्षभ ! जो सभासद, सभा में धर्म की रक्षा को चुपचाप आसन पर बैठे हुए देखते रहते हैं, उनको सत्याचरण, धर्म तथा न्याय करने का फल प्राप्त होता है ॥५१॥

शक्यं किमन्यद्वक्तुं ते दानादन्यज्जनेश्वर ।
ब्रुवन्तु ते महीपालाः सभायां ये समासते ॥५२॥

हे जनेश्वर ! इस समय पाण्डवों का राज्य उनको प्रदान कर दो-इसके अतिरिक्त और क्या कहना उचित है । अब जो महीपाल,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस सभा में बैठे हैं, वे इसका विवेचन करके कहें-कि मैंने यह उचित कहा है या अनुचित कहा है ॥५२॥

धर्मार्थौ सम्प्रधार्यैव यदि सत्यं ब्रवीम्यहम् !
प्रमुञ्चेमान्मृत्युपाशात्क्षत्रियान्पुरुषर्षभ ॥५३॥

हे पुरुषर्षभ ! यदि मैंने धर्म और नीति को ध्यान में रखकर सत्य कहा है-तो अब आप सन्धि करके मृत्यु के मुख में जाने वाले इन क्षत्रियों को मृत्यु के मुख से बचाइये ॥५३॥

प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ मा मन्युवशमन्वगाः ।
पित्र्यं तेभ्यः प्रदायांऽशं पाण्डवेभ्यो यथोचितम्॥५४॥

हे भरतश्रेष्ठ, आप प्रशान्त हो जाइये और अपने कोप के पराधीन न होइये । अब आपको पाण्डवों के लिए उनके पिता का उचित भाग प्रदान कर ही देना उचित है ॥५४॥

ततः सपुत्रः सिद्धार्थो भुंक्ष्व भोगान्परन्तप ।
अजातशत्रुं जानीषे स्थितं धर्मे सतां सदा ॥५५॥

हे परन्तप ! इस तरह ही तुम्हारे मनोरथ की सिद्धि होगी । इसके अनन्तर तुम अपने पुत्रों के साथ राज्य सुखों का उपभोग करो । आप तो जानते हैं, कि राजा युधिष्ठिर, सदा सज्जनों के मानने योग्य धर्म में स्थित रहने वाले हैं ॥५५॥

सपुत्रे त्वयि वृत्तिं च वर्तते यां नराधिप ।
दाहितश्च निरस्तश्च त्वामेवोपाश्रितः पुनः ॥५६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे नराधिप ! आप युधिष्ठिर के बर्ताव को जानते हैं, जो वे आपके और आपके पुत्रों के साथ व्यवहार में लाते हैं। जिनको आपने लाक्षागृह में जलवाने का प्रयत्न किया या घर से निकलवा दिया, वे फिर आपके ही आश्रय में आकर रहे ॥५६॥

इन्द्रप्रस्थं त्वयैवाऽसौ सपुत्रेण विवासितः ।
स तत्र निवसन्सर्वान्वशमानीय पार्थिवान् ॥५७॥
त्वन्मुखानकरोद्राजन्न च त्वामत्यवर्तत ।

हे राजन् ! अपने पुत्र के साथ सम्मति करके आपने उनको इन्द्रप्रस्थ में भेज दिया। राजा युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ में रहते हुए, सारे राजाओं को जीतकर आपके अधीन किया और आपकी आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं किया ॥५७॥

तस्यैवं वर्तमानस्य सौबलेन जिहीर्षता ॥५८॥
राष्ट्राणि धनधान्यं च प्रयुक्तः परमोपधिः ।

राजा युधिष्ठिर तो इस प्रकार धर्मानुसार चल रहे थे और उनके धन, धान्य और राज्य के अपहरण की इच्छा से सुबल-पुत्र शकुनि ने यह जुआ का खेल खड़ा कर दिया, जो बड़ा छल और झगड़े का बीज था ॥५८॥

स तामवस्थां सम्प्राप्य कृष्णां प्रेक्ष्य सभां गताम् ।५९।
क्षत्रधर्मादमेयात्मा नाऽकम्पत युधिष्ठिरः ।

धर्मराज, उस अकथनीय अवस्था को प्राप्त हुआ और अनादर के साथ सभा में लाई हुई द्रौपदी को भी उसने देखा, परन्तु वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महात्मा उस समय भी क्षत्रिय धर्म से किसी प्रकार विचलित नहीं हुआ ॥५९॥

अहं तु तव तेषां च श्रेय इच्छामि भारत ॥६०॥
धर्मादर्थात्सुखाच्चैव मा राजन्नीनशः प्रजाः ।

हे भारत ! मैं तो तुम्हारा और पाण्डव दोनों का ही कल्याण चाहता हूं। हे राजन् ! अब धर्म, धन और सुख से प्रजा को नियुक्त करके नष्ट न कीजिए ॥६०॥

अनर्थमर्थं मन्वानोऽप्यर्थं चाऽनर्थमात्मनः ॥६१॥
लोभेऽतिप्रसृतान्पुत्रान्निगृह्णीष्व विशाम्पते ।

हे विशाम्पते ! अपने स्वार्थ को अनर्थ और अनर्थ को स्वार्थ मानने वाले, लालच में फँसे हुए अपने पुत्रों को आप किसी प्रकार रोक लें ॥६१॥

स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिन्दमाः ॥६२॥
यत्ते पथ्यतमं राजंस्तस्मिंस्तिष्ठ परन्तप ।

हे परन्तप ! पाण्डव तो आपकी सेवा के लिए भी तय्यार हैं और युद्ध के लिए भी सन्नद्ध हैं। हे राजन् ! अब आपको जिसमें अपना हित दिखाई दे-आप वही करो ॥६२॥

वैशम्पायन उवाच—

तद्वाक्यं पार्थिवाः सर्वे हृदयैः समपूजयन् ।
न तत्र कश्चिद्वक्तुं हि वाचं प्राक्रामदग्रतः ॥६३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या-
मारण्यके पर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये
पंचनवतितमोऽध्यायः ॥१५॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! सारे राजा श्रीकृष्ण के इस कथन की हृदय से प्रशंसा करने लगे। उस समय उनके सन्मुख कुछ भी बोलने की किसी की इच्छा न हुई ॥६३॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में श्रीकृष्ण वाक्य का पिच्चानवेवां अध्याय समाप्त हुआ।

छियानवेवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

तस्मिन्नभिहिते वाक्ये केशवेन महात्मना।
स्तिमिता हृष्टरोमाण आसन्सर्वे सभासदः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! महात्मा श्रीकृष्ण के इतना कहने पर सारे सभासद् जड़ी भूत और रोमाञ्चित हो गए ॥१॥

कश्चिदुत्तरमेतेषां वक्तुं नोत्सहते पुमान्।
इति सर्वे मनोभिस्ते चिन्तयन्त स्म पार्थिवाः ॥२॥

श्री कृष्ण ने जो बातें कहीं हैं, उनका कोई भी पुरुष उत्तर नहीं दे सकता है—इस प्रकार सारे राजा, अपने मन ही मन विचार कर रहे थे ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा तेषु च सर्वेषु तूष्णींभूतेषु राजसु ।
जामदग्न्य इदं वाक्यमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥३॥

जब इस प्रकार सारा राजसमूह चुपचाप हो गया, तो उस कौरवों की सभा में जमदग्नि-पुत्र परशुराम कहने लगे ॥ ३ ॥

इमां मे सोपमां वाचं शृणु सत्यामशङ्कितः ।
तां श्रुत्वा श्रेय आदत्स्व यदि साध्विति मन्यसे ॥४॥

हे राजन् ! आप मेरी इस अलंकृत वाणी को सुनिए । इसमें सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है । इसको सुनकर यदि आप ठीक समझे, तो इसमें जो कल्याणकारी उपदेश हो, उसे स्वीकार कर दो ॥ ४ ॥

राजा दम्भोद्भवो नाम सार्वभौमः पुराऽभवत् ।
अखिलां बुभुजे सर्वां पृथिवीमिति नः श्रुतम् ॥५॥

पूर्वकाल में एक दम्भोद्भव नामक एक चक्रवर्ती राजा था । हमने सुना है, कि वह सारी पृथिवी का स्वामी होकर उसका सुख से उपभोग करता था ॥ ५ ॥

स स्म नित्यं निशापाये प्रातरुत्थाय वीर्यवान् ।
ब्राह्मणान्क्षत्रियांश्चैव पृच्छन्नास्ते महारथः ॥६॥
अस्ति कश्चिद्विशिष्टो वा मद्विधो वा भवेद्युधि ।
शूद्रो वैश्यः क्षत्रियो वा ब्राह्मणो वाऽपि शस्त्रभृत् ॥७॥

वह महारथी, बलवान् राजा, रात्रि के व्यतीत होने पर प्रातः—काल उठता और ब्राह्मण तथा क्षत्रियों से पूछा करता था, कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संसार में क्या कोई शस्त्र-धारी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मेरे समान या मुझ से अधिक है, जो युद्ध में अपना कौशल दिखा सके ॥ ६—७ ॥

इति ब्रुवन्नन्वचरत्स राजा पृथिवीमिमाम् ।
दर्पेण महता मत्तः कश्चिदन्यमचिन्तयन् ॥८॥

वह राजा इस प्रकार प्रत्येक से कहता हुआ सारी पृथिवी पर घूमता था। वह अपने घमण्ड में इतना उन्मत्त था, कि किसी को भी कुछ नहीं गिनता था ॥ ८ ॥

तं च वैद्या अकृपणा ब्राह्मणाः सर्वतोऽभयाः ।
प्रत्यषेधन्त राजानं श्लाघमानं पुनः पुनः ॥९॥

अपनी बार २ प्रशंसा करने वाले इस दम्भोद्भव राजा को चतुर, उदार, सब तरह से निर्भय ब्राह्मणों ने ऐसा करने से बहुत रोका ॥ ९ ॥

निषिध्यमानोऽप्यसकृत्पृच्छत्येव स वै द्विजान् ।
अतिमानं श्रिया मत्तं तमूचुर्ब्राह्मणास्तदा ॥१०॥
तपस्विनो महात्मानो वेदप्रत्ययदर्शिनः ।
उदीर्यमाणं राजानं क्रोधदीप्ता द्विजातयः ॥११॥

विद्वान् ब्राह्मणों के बहुत कुछ रोकने पर भी वह उसी तरह पूछता रहा, तो एक दिन अत्यन्त अभिमानी लक्ष्मी के मद में चूर गर्वोन्मत्त राजा से तपस्वी, वेद के सिद्धान्त के प्रत्यक्ष देखने वाले, महात्मा ब्राह्मण क्रोध में भर कर बोले ॥ १०—११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनेकजयिनौ संख्ये यौ वै पुरुषसत्तमौ ।
तयोस्त्वं न समो राजन्भविताऽसि कदाचन। ।१२॥

हे राजन् ! युद्ध में अनेक वीरों के जीतने वाले दो वीर श्रेष्ठ हैं, तुम उनके समान कभी नहीं हो सकते हो ॥ १२ ॥

एवमुक्तः स राजा तु पुनः पप्रच्छ तान्द्विजान् ।
क्व तौ वीरौ क्व जन्मानौ किङ्कर्माणौ च कौ च तौ १३

जब ब्राह्मणों ने इतना कहा--तो वह राजा कहने लगा, कि वे वीर कहां हैं, किस देश में उन्होंने जन्म लिया है और क्या काम करते हैं ॥ १३ ॥

ब्राह्मणा ऊचुः-

नरो नारायणश्चैव तापसाविति नः श्रुतम् ।
आयातौ मानुषे लोके ताभ्यां युद्ध्यस्व पार्थिव॥१४॥
श्रूयेते तौ महात्मानौ नरनारायणावुभौ ।
तपो घोरमनिर्देश्यं तप्यते गन्धमादने ॥१५॥

ब्राह्मण बोले—हे राजन् ! नर नारायण नामक दो तपस्वी हैं, जिन्होंने इस मृत्युलोक में अवतार लिया है, तुम उनके साथ युद्ध करो। सुना जाता है, कि वे महात्मा नर और नारायण, गन्धमादन पर्वत पर महाघोर तप कर रहे हैं ॥ १४—१५ ॥

स राजा महतीं सेनां योजयित्वा षडङ्गिनीम् ।
अमृष्यमाणः सम्प्रायाद्यत्र तावपराजितौ ॥१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह राजा हाथी, घोड़े आदि सेना के षट् अङ्गों से युक्त अपनी सेना को सजा कर आवेश-पूर्वक उन विजयी तपस्वी नर और नारायण पर चढ़ दौड़ा ॥ १६ ॥

स गत्वा विषमं घोरं पर्वतं गन्धमादनम् ।
मृगयाणोऽन्वगच्छत्तौ तापसौ बनमाश्रितौ ॥१७॥

वह राजा उस घोर विषम, गन्धमादन पर्वत पर पहुंच कर वन में तप करते हुए, उन दोनों ऋषियों की खोज करने लगा।

तौ दृष्ट्वा क्षुत्पिपासाभ्यां कृशौ धमनिसन्ततौ ।
शीतवातातपैश्चैव कर्शितौ पुरुषोत्तमौ ॥१८॥
अभिगम्योपसंगृह्य पर्यपृच्छदनामयम् ।

उस दम्भोद्भव ने वहां जाकर देखा, कि वे दोनों ऋषि, भूख प्यास से व्याकुल होकर बड़े ही कृश हो रहे थे, उनकी सारी नसें दिखाई देती थी। वे दोनों पुरुष-श्रेष्ठ, शीत, वायु और धूप से बड़े ही क्षीण हो रहे थे। राजा ने उनके पास जाकर उनके चरण छुए और कुशल प्रश्न किया ॥ १८ ॥

तमर्चित्वा मूलफलैरासनेनोदकेन च ॥१९॥
न्यमन्त्रयेतां राजानं किं कार्यं क्रियतामिति ।

ऋषियों ने कन्द, मूल, फल, आसन और जल से राजा का स्वागत किया और कहा, कि आपका हमसे क्या काम आ पड़ा है, जिसका सम्पादन किया जावे ॥ १९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततस्तामानुपूर्वीं स पुनरेवाऽन्वकीर्तयत् ॥२०॥
बाहुभ्यां मे जिता भूमिर्निहताः सर्वशत्रवः ।
भवद्भ्यां युद्धमाकांक्षन्नुपयातोऽस्मि पर्वतम् ॥२१॥
आतिथ्यं दीयतामेतत्कांक्षितं मे चिरं प्रति ।

दम्भोद्भव राजा ने क्रम से अपनी प्रशंसा की डींग मारी और कहा—कि मैंने अपनी भुजाओं से सारी पृथिवी जीत ली है तथा सारे शत्रु मार लिए हैं। अब मैं आपसे युद्ध करने की इच्छा से इस पर्वत पर आया हूँ। मेरे साथ युद्ध करना ही मेरा अतिथि सत्कार होगा—आप इसे स्वीकार कीजिए—यही मेरी बहुत काल की अभिलाषा है ॥२०-२१॥

नरनारायणावूचतुः—

अपेतक्रोधलोभोऽयमाश्रमो राजसत्तम ॥२२॥
न ह्यस्मिन्नाश्रमे युद्धं कुतः शस्त्रं कुतोऽनृजुः ।
अन्यत्र युद्धमाकांक्ष बहवः क्षत्रियाः क्षितौ ॥२३॥

नर और नारायण ने कहा—हे राजसत्तम ! यह आश्रम तो क्रोध, लोभ आदि दोषों से रहित है। इस आश्रम में युद्ध की क्या सम्भावना है। यहाँ न तो कोई शस्त्र है और न युद्ध प्रिय कोई वीर है। अब तुम कहीं अन्य स्थान पर जाओ। इस पृथिवी पर अनेक वीर क्षत्रिय हैं ॥२२-२३॥

उच्यमानस्तथाऽपि स्म भूय एवाऽभ्यभाषत ।
पुनः पुनः क्षम्यमाणः सान्त्व्यमानश्च भारत ॥२४॥
दम्भोद्भवो युद्धमिच्छन्नाह्वयत्येव तापसौ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परशुराम बोले—उन ऋषियों के ऐसा कहने पर भी वह बारम्बार उसी तरह कहता रहा। हे भारत ! उन ऋषियों ने उसको बारम्बार क्षमा की और अनेक बार समझाया, परन्तु वह दम्भोद्भव तो युद्ध की ही आकांक्षा करता और उन तपस्वियों को युद्ध के लिए ललकारता रहा ॥२४॥

ततो नरस्त्विषीकाणां मुष्टिमादाय भारत ॥२५॥
अब्रवीदेहि युद्ध्यस्व युद्धकामुक क्षत्रिय ।

हे भारत ! अब नर ने इषीकों (गांडर की सींक) की एक मुट्ठी भरी और कहा—हे युद्धाभिलाषी ! क्षत्रिय ! ले युद्ध कर ॥२५॥

सर्वशस्त्राणि चाऽऽदत्स्व योजयस्व च वाहिनीम् २६॥
अहं हि ते विनेष्यामि युद्धश्रद्धामितः परम् ।

हे राजन् ! अब तुम शस्त्र उठा लो और अपनी सेना को सजाओ। मैं तुम्हारी युद्ध की अभिलाषा को अभी अच्छी तरह पूरी किए देता हूँ ॥२६॥

दम्भोद्भव उवाच—

यद्येतदस्त्रमस्मासु युक्तं तापस मन्यसे ॥२७॥
एतेनापि त्वया योत्स्ये युद्धार्थी ह्यहमागतः ।

राजा दम्भोद्भव ने कहा—हे तपस्विन् ! यदि आप मेरे ऊपर यही शस्त्र चलाना उचित समझते हो, तो मैं तुमसे इन शस्त्रों से भी युद्ध कर लूंगा, क्योंकि मैं तो युद्ध के लिए ही आया हूँ ॥२७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राम उवाच—

इत्युक्त्वा शरवर्षेण सर्वतः समवाकिरत् ॥२८॥
दम्भोद्भवस्तापसं तं जिघांसुः सहसैनिकः ।

परशुराम बोले—इतना कह कर राजा दम्भोद्भव ने सेना के साथ २ सब ओर से बाण वर्षा करना आरम्भ किया। वह इन तपस्वियों को मार देना चाहता था ॥२८॥

तस्य तानस्यतो घोरानिषून्परतनुच्छिदः ॥२९॥
कदर्थीकृत्य स मुनिरिषीकाभिः समार्पयत् ।

शत्रुओं के शरीरों को छेद देने वाले बाणों के फैंकने वाले राजा दम्भोद्भव के भयङ्कर बाणों को इषीक (काश की सींक) से मुनि ने निष्फल कर दिये और उन्हीं इषीकों से वह राजा को घायल करने लगा ॥२९॥

ततोऽस्मै प्रासृजद्घोरमैषीकमपराजितः ॥३०॥
अस्त्रमप्रतिसन्धेयं तदद्भुतमिवाऽभवत् ।

किसी से पराजित नहीं होने वाले मुनि ने राजा पर घोर इषीकास्त्र चलाया। यह इषीकास्त्र इतना तीक्ष्ण रहा, कि इसको कोई नहीं रोक सका, इससे सारी सेना को यह बड़ा ही अद्भुत कार्य प्रतीत होने लगा ॥३०॥

तेषामक्षीणि कर्णांश्च नासिकाश्चैव मायया ॥३१॥
निमित्तवेधी स मुनिरिषीकाभिः समार्पयत् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी वस्तु के निर्मित्त मात्र से बेंध देने वाले मुनि ने इषीकास्त्र से सारी सेना के आँख, कान और नाक अपने तप की माया से बेंध डाले ॥३१॥

स दृष्ट्वा श्वेतमाकाशमिषीकाभिः समाचितम् ॥३२॥
पादयोर्न्यपतद्राजा स्वस्ति मेऽस्त्विति चाऽब्रवीत् ।

जब राजा दम्भोद्भव ने देखा, कि आकाश इषीकाओं से भर-कर श्वेत सा हो गया,तो वह मुनि के चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा–हे भगवन् ! मेरा कल्याण कीजिए ॥३२॥

तमब्रवीन्नरो राजञ्शरण्यः शरणैषिणाम् ॥३३॥
ब्रह्मण्यो भव धर्मात्मा मा च स्मैवं पुनः कृथाः ।

रक्षा की आकांक्षा करने वाले राजा और सैनिकों से शरणा-गत रक्षक नर नामक मुनि बोले–हे राजन् ! अब तुम ब्राह्मणों के वचनों में श्रद्धा रख कर धर्म-पूर्वक रहना–कभी आगे ऐसा फिर न करना ॥३३॥

नैतादृक्पुरुषो राजन्क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥३४॥
मनसा नृपशार्दूल भवेत्परपुरञ्जयः ।

हे नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार धर्म की श्रद्धा छोड़ने वाला क्षत्रिय, अपने क्षात्र धर्म को छोड़ कर कभी मन से भी शत्रु के जीतने में समर्थ नहीं हो सकता है ॥३४॥

मा च दर्पसमाविष्टः क्षेप्सीः कांश्चित्कथञ्चनः ॥३५॥
अल्पीयांसं विशिष्टं वा तत्ते राजन्समाहितम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृतप्रज्ञो वीतलोभो निरहङ्कार आत्मवान् ॥३६॥
दान्तः क्षान्तो मृदुः सौम्य प्रजाः पालय पार्थिव ।
मा स्म भूयः क्षिपेः कश्चिदविदित्वा बलाबलम् ३७॥

हे राजन् ! अब तुम कभी घमण्ड और कभी किसी प्रकार भी किसी का अपमान न करना, चाहे वह छोटा हो या बड़ा हो । इसका तुमको बड़ी ही सावधानी से ध्यान रखना होगा। हे सौम्य ! तुम बुद्धि-पूर्वक 'लोभ छोड़ कर, अहङ्कार रहित होकर, इन्द्रियों का विजय तथा उदार, क्षमाशील और कोमल प्रकृति रहकर प्रजा का पालन करो ॥३५--३६॥

अनुज्ञातः स्वस्ति गच्छ मेवं भूयः समाचरेः ।
कुशलं ब्राह्मणान्पृच्छेरावयोर्वचनाद्भृशम् ॥३८॥
ततो राजा तयोः पादावभिवाद्य महात्मनोः ।

अब किसी का बल या दुर्बलता विना देखे तिरस्कार न करना। अब तुम जाओ—तुम्हारा कल्याण हो; फिर कभी ऐसा न करना। हमारी तो यही आज्ञा है, कि तुम सदा ब्राह्मणों की कुशलता का ध्यान रखा करो ॥३७-३८॥

प्रत्याजगाम स्वपुरं धर्मं चैवाऽचरद्भृशम् ॥३९॥
सुमहच्चापि तत्कर्म यन्नरेण कृतं पुरा ।

इसके अनन्तर राजा उन दोनों महात्माओं के चरणों में प्रणाम कर के अपने पुर को चल दिया । वहाँ पहुँच कर उसने धर्म का आचरण करना आरम्भ किया ॥३९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततो गुणैः सुबहुभिः श्रेष्ठो नारायणोऽभवत् ॥४०॥

पूर्वकाल में नर नामक ऋषि ने यह महा अद्भुत कर्म किया। इन बहुत से गुणों से नारायण ऋषि भी श्रेष्ठ हो गया ॥४०॥

तस्माद्यावद्धनुःश्रेष्ठे गाण्डीवेऽस्त्रं न युज्यते ।
तावत्त्वं मानमुत्सृज्य गच्छ राजन्धनञ्जयम् ॥४१॥

हे राजन्! जब तक धनु-श्रेष्ठ अर्जुन गाण्डीव पर बाण नहीं चढ़ाता है—तब तक तुम मान छोड़कर उसकी शरण में चले जाओ ॥४१॥

काकुदीकं शुकं नाकमक्षिसन्तर्जनं तथा ।
सन्तानं नर्तकं घोरमास्यमोदकमष्टमम् ॥४२॥
एतैर्विद्धाः सर्व एव मरणं यान्ति मानवाः ।

काकुदीक (प्रस्वापनास्त्र) शुक (मोहनास्त्र) नाक (उन्मादनास्त्र) अक्षिसंतर्जन (त्रासनास्त्र) सन्तान (ऐन्द्रास्त्र) नर्तक (पैशाचास्त्र) घोर (राक्षसास्त्र) आस्यमोदक (याम्यास्त्र) ये आठ प्रकार के अस्त्र है। इनसे बिंधा हुआ मनुष्य मृत्यु को प्राप्त करता है ॥४२॥

कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमानौ तथैव च ॥४३॥
मात्सर्याहंकृती चैव क्रमादेत उदाहृताः ।
उन्मत्ताश्च विचेष्टन्ते नष्टसंज्ञा विचेतसः ॥४४॥
स्वपन्ति च स्रवन्ते च च्छर्दयन्ति च मानवाः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूत्रयन्ते च सततं रुदन्ति च हसन्ति च ॥४५॥

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मान, मात्सर्य और अहंकार ये आठ भी इन अस्त्रों के तुल्य ही मारक हैं। इनसे बिद्ध मनुष्य, उन्मत्तों की सी चेष्टा करते हैं, अचेत हो जाते हैं, उनको कुछ ज्ञान नहीं रहता। मनुष्य सोने लगते हैं, भागते हैं और वमन करने लग जाते हैं, मूत्र छोड़ने लगते हैं और सदा रोने या हँसने लग जाते हैं ॥४३-४५॥

निर्माता सर्वलोकानामीश्वरः सर्वकर्मवित् ।
यस्य नारायणो बन्धुरर्जुनो दुःसहो युधि ॥४६॥

सब लोकों के निर्माण कर्ता, ऐश्वर्यशाली, सब कर्मों के ज्ञाता, भगवान् नारायण जिसके बन्धु हैं, वह अर्जुन युद्ध में बड़ा ही दुःसह है ॥४६॥

कस्तमुत्सहते जेतुं त्रिषु लोकेषु भारत ।
वीरं कपिध्वजं जिष्णुं यस्य नास्ति समो युधि ॥४७॥

हे भारत! उसको तीनों लोकों में कौन सह सकता है या जीत सकता है। यह अर्जुन बड़ा वीर, विजयी और कपि की ध्वजा वाला है। इसके समान युद्ध में कोई नहीं है ॥४७॥

असंख्येया गुणाः पार्थे तद्विशिष्टो जनार्दनः ।
त्वमेव भूयो जानासि कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥४८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्जुन में असंख्यात गुण हैं और उससे भी श्रेष्ठ, जनार्दन कृष्ण हैं। तुम भी अच्छी तरह से कुन्ती-पुत्र अर्जुन को जानते हो ॥४८॥

नरनारायणौ यौ तौ तावेवाऽर्जुनकेशवौ ।
विजानीहि महाराज प्रवीरौ पुरुषोत्तमौ ॥४९॥

हे महाराज ! वे जो नर नारायण नामक दो ऋषि थे, वे ही अर्जुन और कृष्ण हैं। तुम इन दोनों पुरुषोत्तमों को सर्व श्रेष्ठ वीर समझो ॥४९॥

यद्येतदेवं जानासि न च मामभिशङ्कसे ।
आर्यां मतिं समास्थाय शाम्य भारत पाण्डवैः॥५०॥

हे भारत ! यदि इस बात में श्रद्धा हो और मेरे वचन में शङ्का न हो, तो श्रेष्ठ बुद्धि करके पाण्डवों के साथ सन्धि कर लो ॥५०॥

अथ चेन्मन्यसे श्रेयो न मे भेदो भवेदिति ।
प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ मा च युद्धे मनः कृथाः ॥५१॥

हे भरत-श्रेष्ठ ! यदि तुम इस में उत्तम समझते हो, कि हममें फूट न पड़ जावे—तो तुम शान्ति करो और युद्ध में मन न लगाओ ॥५१॥

भवतां च कुरुश्रेष्ठ कुलं बहुमतं भुवि ।
तत्तथैवाऽस्तु भद्रं ते स्वार्थमेवोपचिन्तय ॥५२॥
(जामदग्न्यवचः श्रुत्वा कण्वोऽपि भगवानृषिः ।)

नोट—यह पृष्ठ २२८ के प्रथम श्लोक की प्रथम लाइन है भूल से यहाँ छप गयी है। —अनुवादक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्यान-पर्वणि दंभोद्भवोपाख्याने षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९६॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! तुम्हारा कुल सर्व श्रेष्ठ माना जाता है। वह तुम्हारा कुल उसी तरह श्रेष्ठ बना रहना चाहिए। हे राजन् ! तुम अपने स्वार्थ पर विचार करो ॥५२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में दम्भोद्भव उपाख्यान का छियानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ

सत्तानवेवाँ अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

जामदग्न्यवचःश्रुत्वा कण्वोऽपि भगवानृषिः।
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! जमदग्नि पुत्र परशुराम के वचन सुनकर भगवान् कण्व मुनि ने कौरवों की सभा में राजा दुर्योधन से यह वचन कहा ॥१॥

कण्व उवाच—

अक्षयश्चाऽव्ययश्चैव ब्रह्मा लोकपितामहः।
तथैव भगवन्तौ तौ नरनारायणावृषी ॥२॥

संसार का पितामह ब्रह्मा, अक्षय और अव्यय है। इसी तरह भगवान् नर और नारायण नामक ऋषि समझने चाहिए ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदित्यानां हि सर्वेषां विष्णुरेकः सनातनः ।
अजय्यश्चाऽव्ययश्चैव शाश्वतः प्रभुरीश्वरः ॥३॥

सारे देवताओं में एक भगवान् विष्णु ही सनातन हैं, जो अजेय, सदा एक रस रहने वाले, अनादि काल से शक्ति और ऐश्वर्य-शाली हैं ॥३॥

निमित्तमरणाश्चाऽन्ये चन्द्रसूर्यौ मही जलम् ।
वायुरग्निस्तथाऽऽकाशं ग्रहास्तारागणास्तथा ॥४॥

अन्य चन्द्र, सूर्य, पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, ग्रह, तारागण आदि निमित्त पाकर विनाश को प्राप्त होते रहते हैं ॥४॥

ते च क्षयान्ते जगतो हित्वा लोकत्रयं सदा ।
क्षयं गच्छन्ति वै सर्वे सृज्यन्ते च पुनः पुनः ॥५॥

जब प्रलय काल आता है, तो ये सब तीनों लोकों से भिन्न होकर क्षय को प्राप्त हो जाते हैं और फिर सृष्टि रचना के समय रच दिए जाते हैं। ऐसा बारबार होता रहता है ॥५॥

मुहूर्तमरणास्त्वन्ये मानुषा मृगपक्षिणः ।
तैर्यग्योन्यश्च ये चाऽन्ये जीवलोकचरास्तथा ॥६॥

अन्य मनुष्य, मृग, पक्षियों का तो कहना ही क्या है। ये तो क्षण भर में मरते और उत्पन्न होते रहते हैं। यही दशा समस्त तिर्यक् योनि के सहित सारे जीवलोक की है ॥ ६ ॥

भूयिष्ठेन तु राजानः श्रियं भुक्त्वाऽऽयुषः क्षये ।
तरुणाः प्रतिपद्यन्ते भोक्तुं सुकृतदुष्कृते ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनेक राजा आयु के क्षय हो जाने पर राज्यलक्ष्मी का उपभोग करके फिर अपने पुण्य पाप भोगने के लिये नया जन्म धारण करते हैं ॥ ७ ॥

स भवान्धर्मपुत्रेण शमं कर्तुमिहाऽर्हति ।
पाण्डवाः कुरवश्चैव पालयन्तु वसुन्धराम् ॥८॥

हे राजन् ! अब आपको भी धर्मराज युधिष्ठिर के साथ सन्धि कर लेनी चाहिए, जिससे ये पाण्डव और कौरव मिलकर सारी पृथिवी का पालन करें ॥ ८ ॥

बलवानहमित्येव न मन्तव्यं सुयोधन ।
बलवन्तो बलिभ्यो हि दृश्यन्ते पुरुषर्षभ ॥९॥

हे सुयोधन ! तुम यह न समझो, कि मैं बलवान् हूं । संसार में एक बलवान् से अधिक दूसरा बली विद्यमान है ॥ ९ ॥

न बलं बलिनां मध्ये बलं भवति कौरव ।
बलवन्तो हि ते सर्वे पाण्डवा देवविक्रमाः ॥१०॥

हे कुरुराज ! संसार के बलवानों में जो बल है, उसकी गणना ही नहीं करनी चाहिये । ये पाण्डव तो देवो के समान पराक्रम रखते हैं, इसलिये वे सबसे अधिक बलवान् हैं ॥ १० ॥

अत्राऽप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
मातलेर्दातुकामस्य कन्यां मृगयतो वरम् ॥११॥

इस विषय में एक पुराना इतिहास कहा जा सकता है, जो कन्या दान के लिये वर खोजने वाले मातलि से सम्बन्ध रखता है ॥ ११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मतस्त्रिलोकराजस्य मातलिर्नाम सारथिः ।
तस्यैकैव कुले कन्या रूपतो लोकविश्रुता ॥१२॥
गुणकेशीति विख्याता नाम्ना सा देवरूपिणी ।
श्रिया च वपुषा चैव स्त्रियोऽन्याः साऽतिरिच्यते॥१३॥

त्रिलोक के स्वामी इन्द्र का सारथि मातलि है, जिसको सब जानते हैं। उसके एक कन्या थी, जो रूप में जगत् भर में प्रसिद्ध थी। इस देव-कन्या का नाम गुणकेशी था। इसने अपने शरीर सौन्दर्य से अन्य स्त्रियों को जीत लिया था ॥ १२—१३ ॥

तस्याः प्रदानसमयं मातलिः सह भार्यया ।
ज्ञात्वा विममृशे राजंस्तत्परः परिचिन्तयन् ॥१४॥

हे राजन् ! उस मातलि सारथी ने अपनी भार्या के साथ विचार किया, कि इस कन्या का अब प्रदान करने का समय आ गया है ॥ १४ ॥

धिक्खल्वलघुशीलानामुच्छितानां यशस्विनाम् ।
नराणां मृदुसत्वानां कुले कन्याप्ररोहणम् ॥१५॥

मातलि ने विचार किया, कि उदार-चरित, उच्च विचार वाले, यशस्वी और कोमल प्रकृति मनुष्यों के कुल में कन्या उत्पन्न होना एक बड़ी ही कठिन समस्या है ॥ १५

मातुः कुलं पितृकुलं यत्र चैव प्रदीयते ।
कुलत्रयं संशयितं कुरुते कन्यका सताम् ॥१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समझदार मनुष्यों में कन्या मातृकुल, पितृकुल और जिस कुल में प्रदान की जावे, उस श्वसुर कुल को एक झंझट में डाले रहती है ॥१६॥

देवमानुषलोकौ द्वौ मानुषेणैव चक्षुषा ।
अवगाह्यैव विचितौ न च मे रोचते वरः ॥१७॥

मैंने देव और मनुष्य दोनों लोकों को मनुष्य जितनी दृष्टि दौड़ा सकता हैं—उतनी दृष्टि से गहराई के साथ खोज डाला-परन्तु मुझे मेरी कन्या के योग्य वर अभी तक नहीं मिला ॥१७॥

कण्व उवाच—

न देवान्नैव दितिजान्न गन्धर्वान्न मानुषान् ।
अरोचयद्वरकृते तथैव बहुलानृषीन् ॥१८॥

कण्व ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार देव, दैत्य, गन्धर्व मनुष्य तथा बहुत से ऋषि, मातलि ने टटोल डाले, परन्तु अपनी कन्या के योग्य उसे कोई वर नहीं मिला ॥१८॥

भार्ययाऽनु स सम्मन्त्र्य सह रात्रौ सुधर्मया ।
मातलिर्नागलोकाय चकार गमने मतिम् ॥१९॥

एक दिन रात्रि में अपनी भार्या सुधर्मा के साथ मन्त्रणा करके मातलि, वर की खोज में नाग लोक में जाने का विचार करने लगा ॥१९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न मे देवमनुष्येषु गुणकेश्याः समो वरः ।
रूपतो दृश्यते कांश्चन्नागेषु भविता ध्रुवम् ॥२०॥

इसने सोचा, कि देव और मनुष्यों में तो मेरी कन्या गुणकेशी के योग्य सुन्दर वर नहीं मिला, परन्तु अब आशा है, कि नाग लोक में अवश्य कोई वर मिल जावेगा ॥२०॥

इत्यामन्त्र्य सुधर्मां स कृत्वा चाऽभिप्रदक्षिणम् ।
कन्यां शिरस्युपाघ्राय प्रविवेश महीतलम् ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते० भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

इस प्रकार अपनी भार्या से सम्मति और उसकी आदरपूर्वक प्रदक्षिणा करके तथा अपनी कन्या गुणकेशी का शिर सूँघकर मातलि पृथिवी पर उतर आया ॥२१॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में मातलि के वर खोज करने का सत्तानवेवां अध्याय पूरा हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अट्ठानवेवां अध्याय

कण्व उवाच—

मातलिस्तु व्रजन्मार्गे नारदेन महर्षिणा ।
वरुणं गच्छता द्रष्टुं समागच्छद्यदृच्छया ॥१॥

कण्व ने कहा—हे राजन् ! मातलि इस प्रकार चला जा रहा था, कि मार्ग में वरुण से मिलने के लिए जाते हुए, महर्षि नारद से उनकी अचानक भेंट हो गई ॥१॥

नारदोऽथाऽब्रवीदेनं क्व भवान्गन्तुमुद्यतः ।
स्वेन वा सूत कार्येण शासनाद्वा शतक्रतोः ॥२॥

नारदजी ने मातलि से कहा—हे सारथे ! आप कहां जा रहे हैं । आपको कोई अपना कार्य है या शतक्रतु (इन्द्र) ने कहीं जाने की आज्ञा दी है ॥२॥

मातलिर्नारदेनैवं सम्पृष्टः पथि गच्छता ।
यथावत्सर्वमाचष्ट स्वकार्यं नारदं प्रति ॥३॥

इस प्रकार मार्ग में चलते २ नारद ने मातलि से प्रश्न किया तो मातलि ने नारद को सारा वृतान्त ठीक ठीक सुना दिया, कि मैं मेरे ही कार्य कन्या को वर खोजने के लिए नागलोक जा रहा हूं ॥३॥

तमुवाचाऽथ स मुनिर्गच्छावः सहिताविति ।
सलिलेशदिदृक्षार्थमहमप्युद्यतो दिवः ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारद ने उससे कहा---कि तब तो हम तुम दोनों साथ २ चलेंगे। मैं भी जल के स्वामी वरुण से मिलने को स्वर्ग से आ रहा हूं ॥४॥

अहं ते सर्वमाख्यास्ये दर्शयन्वसुधातलम्।
दृष्ट्वा तत्र वरं कञ्चिद्रोचयिष्याव मातले ॥५॥

हे मातले ! मैं पृथिवी पर तुमको सब कुछ दिखाता हुआ-वहां का सारा वृतान्त सुना दूंगा। सम्भव है, वहीं कहीं कोई वर देखें और पसन्द आ जावे ॥५॥

अवगाह्य तु तौ भूमिमुभौ मातलिनारदौ।
ददृशाते महात्मानौ लोकपालमपां पतिम् ॥६॥

मातलि और नारद ने पृथिवी का भ्रमण किया और उन दोनों महात्मा ने फिर जलपति वरुण के दर्शन किए ॥६॥

तत्र देवर्षिसदृशीं पूजां स प्राप नारदः।
महेन्द्रसदृशीं चैव मातलिः प्रत्यपद्यत ॥७॥

वरुण लोक में नारद को देवर्षि के योग्य और मातलि को इन्द्र के सारथी के योग्य पूजा प्राप्त हुई ॥७॥

तावुभौ प्रीतमनसौ कार्यवन्तौ निवेद्य ह।
वरुणेनाऽभ्यनुज्ञातौ नागलोकं विचेरतुः ॥८॥

ये दोनों पूजा से बड़े प्रसन्न हुए और ये जिस कार्य के लिए भ्रमण कर रहे थे—उसका कथन किया। वरुण ने इनको आज्ञा दे दी-तब ये नागलोक में घूमने लगे ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारदः सर्वभूतानामन्तर्भूमिनिवासिनाम् ।
जानंश्चकार व्याख्यानं यन्तुः सर्वमशेषतः ॥९॥

नारद, पृथिवी पर रहने वाले सारे प्राणियों को जानता था, इसलिए मातलि सारथि को उनकी व्याख्या करके बताने लगा ॥९॥

नारद उवाच—

दृष्टस्ते वरुणः सूत पुत्रपौत्रसमावृतः ।
पश्योदकपतेः स्थानं सर्वतोभद्रमृद्धिमत् ॥१०॥

हे सूत ! तुमने पुत्र और पौत्रों से युक्त वरुण के दर्शन कर लिए, अब तुम जल के स्वामी वरुण का समृद्धिशाली और सब तरह से कल्याणकारक स्थान देखो ॥१०॥

एष पुत्रो महाप्रज्ञो वरुणस्येह गोपतेः ।
एष वै शीलवृत्तेन शौचेन च विशिष्यते ॥११॥

एषोऽस्य पुत्रोऽभिमतः पुष्करः पुष्करेक्षणः ।
रूपवान्दर्शनीयश्च सोमपुत्र्या वृतः पतिः ॥१२॥

ज्योत्स्नाकालीति यामाहुर्द्वितीयां रूपतः श्रियम् ।
आदित्याश्चैव यः पुत्रो ज्येष्ठः श्रेष्ठः कृतः स्मृतः॥१३।

हे मातलि ! जितेन्द्रिय वरुण का यह महा बुद्धिमान, सदाचार और शौच आदि गुणों में सर्व श्रेष्ठ, कमल के समान नेत्रधारी, पुष्कर नामक प्रिय पुत्र है। यह बड़ा रूपवान और दर्शनीय है। इसको सोमपुत्री ज्योत्स्ना काली ने पतिरूप में वरण कर रखा है, जो रूप में द्वितीय लक्ष्मी जैसी है तथा अदिति का बड़ा पुत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो गुणों में श्रेष्ठ सूर्य है, वह भी पतिरूप में चुना गया था-यह कहा जाता है ॥११-१३॥

भवनं पश्य वारुण्यं यदेतत्सर्वकाञ्चनम् ।
यत्प्राप्य सुरतां प्राप्ताः सुराः सुरपतेः सखे ॥१४॥

हे इन्द्र के सखा ! मातलि ! वरुण का यह सुवर्ण रचित सुरा भवन देखो, जिसको पाकर सुर देवतापन को प्राप्त हुए हैं ।

एतानि हृतराज्यानां दैतेयानां स्म मातले ।
दीप्यमानानि दृश्यन्ते सर्वप्रहरणान्युत ॥१५॥
अक्षयाणि किलैतानि विवर्तन्ते स्म मातले ।
अनुभावप्रयुक्तानि सुरैरवजितानि ह ॥१६॥

हे मातले ! जिनका राज्य छीन लिया गया है, उन दैत्यों को ये देदीप्यमान सारे शस्त्र दिखाई पड़ते हैं । ये अस्त्र शस्त्र, बड़े अक्षय, विचार मात्र से प्रयुक्त हो जाने वाले हैं, जिनको देवो ने प्राप्त कर लिया है ।॥ १५—१६ ॥

अत्र राक्षसजात्यश्च दैत्यजात्यश्च मातले ।
दिव्यप्रहरणाश्चाऽऽसन्पूर्वदैवतनिर्मिताः ॥१७॥

हे मातले ! यहाँ पर पूर्वकाल में देवताओं से रचित, दिव्य शस्त्रों की धारणा करने वाली, राक्षस और दैत्य जाति थी ॥ १७ ॥

अग्निरेष महार्चिष्मान्जागर्ति वारुणे ह्रदे ।
वैष्णवं चक्रमाविद्धं विधूमेन हविष्मता ॥१८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एष गाण्डीमयश्चापो लोकसंहारसम्भृतः ।
रक्ष्यते दैवतैर्नित्यं यतस्तद्गाण्डिवं धनुः ॥१९॥

इस वरुण के सरोवर में महा दीप्तिमान् बड़वानल जलता रहता है। इस धूम रहित अग्नि से वैष्णव चक्र घिरा हुआ है और संसार के निहार में समर्थ यह गाण्डीव धनुष है, इसकी नित्य देवता रक्षा करते रहते हैं, यह इसी से गाण्डीव धनुष कहलाता है ॥ १८—१९ ॥

एष कृत्ये समुत्पन्ने तत्तद्धारयते बलम् ।
सहस्रशतसंख्येन प्राणेन सततं ध्रुवः ॥२०॥

जब युद्ध कार्य उपस्थित होता है, तब यह अनेक भांति से बल धारण करता है। यह लाख धनुषों की शक्ति से युक्त और बड़ा दृढ़ है ॥ २० ॥

अशास्यानपि शास्त्येष रक्षोबन्धुषु राजसु ।
सृष्टः प्रथमतश्चण्डो ब्रह्मणा ब्रह्मवादिना ॥२१॥
एतच्छस्त्रं नरेन्द्राणां महच्चक्रेण भासितम् ।
पुत्राः सलिलराजस्य धारयन्ति महोदयम् ॥२२॥

राक्षसों से मेल जोल रखने वाले राजाओं में जो उद्दण्ड राजा है—यह उन पर भी शासन करता हैं। इस प्रचण्ड धनुष को ब्रह्मवादी ब्रह्मा ने सर्व प्रथम रचा है। यह राजाओं का शासन करने वाला महा चक्र सुदर्शन के तुल्य तेजस्वी है। इस महा-ओजस्वी शस्त्र को वरुण के पुत्र धारण करते हैं ॥ २१—२२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एतत्सलिलराजस्य च्छत्र छत्रगृहे स्थितम् ।
सर्वतः सलिलं शीतं जीमूत इव वर्षति ॥२३॥

इधर सलिलराज का छत्रगृह में यह छत्र है। जो सब ओर से मेघ की तरह शीत जल बरसाता रहता है ॥ २३ ॥

एतच्छत्रात्परिभ्रष्टं सलिलं सोमनिर्मलम् ।
तमसा मूर्छितं भाति येन नाऽऽर्छति दर्शनम् ॥२४॥

इस छत्र से गिरने वाला जल, चन्द्रमा से भी अधिक स्वच्छ है, परन्तु अन्धकार से इतना छुप रहा है, कि यह इतना स्वच्छ दिखाई नहीं दे रहा है ॥ २४ ॥

बहून्यद्भुतरूपाणि द्रष्टव्यानीह मातले ।
तव कार्यावरोधस्तु तस्माद्गच्छाव मा चिरम् ॥२५॥

इति श्रीमहाभारते०शतसाहस्र्यां० उद्योगपर्वणि भगवद्यान-पर्वणि मातलिवरान्वेषणेऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

हे मातले ! यहां पर बहुत से अद्भुत दृश्य देखने को विद्यमान हैं, परन्तु इनके देखने में तुम्हारे काम में अड़चन खड़ी हो जावेगी। इसलिए शीघ्र चलो—देर न कीजिए ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में मातलि के वर के अन्वेषण का अट्ठानवेवां अध्याय समाप्त हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निन्यानवेवाँ अध्याय

नारद उवाच—

एतत्तु नागलोकस्य नाभिस्थाने स्थितं पुरम् ।
पातालमिति विख्यातं दैत्यदानवसेवितम् ॥१॥

नारद ने कहा—हे सारथे ! यह जो नागलोक के मध्य में एक नगर सा स्थित है—यह पाताल कहाता है। जिसमें दैत्य और दानवों का निवास है ॥ १॥

इदमद्भिः समं प्राप्ता ये केचिद्भुवि जङ्गमाः ।
प्रविशन्तो महानादं नदन्ति भयपीडिताः ॥२॥

जो कोई पृथिवी पर रहने वाले जङ्गम प्राणी जल के साथ आ जाते है, वे यहां प्रवेश करते ही इतने भय से पीड़ित हो उठते हैं, कि महाघोर शब्द करने लगते हैं ॥ २ ॥

अत्राऽऽसुरोऽग्निः सततं दीप्यते वारिभोजनः ।
व्यापारेण धृतात्मानं निबद्धं समबुध्यत ॥३॥

जल को शोषण करने वाला, बाड़वानल यहां सदा प्रज्वलित रहता है। इस कार्य से यह समुद्र अपनी मर्यादा में सुस्थिर और बद्ध है ॥ ३॥

अत्राऽमृतं सुरैः पीत्वा निहितं निहतारिभिः ।
अतः सोमस्य हानिश्च वृद्धिश्चैव प्रदृश्यते ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने शत्रु दैत्यों को जीतने वाले देवों ने अमृत का पान करके उसको यहां सञ्चित किया है। इस अमृत के कारण ही चन्द्रमा का क्षय और वृद्धि होती रहती है ॥ ४ ॥

अत्राऽऽदित्यो हयशिराः काले पर्वणि पर्वणि ।
उत्तिष्ठति सुवर्णाख्यं वाग्भिरापूरयञ्जगत् ॥५॥

यहीं पर अदिति के गर्भ से हयग्रीवावतार समय और पर्व २ पर प्रादुर्भाव को प्राप्त होते हैं, जो सुवर्ण नाम से भी प्रसिद्ध हैं। ये अपनी वाणी से सारे जगत् को भर देते हैं ॥५॥

यस्मादलं समस्तास्ताः पतन्ति जलमूर्तयः ।
तस्मात्पातालमित्येव ख्यायते पुरमुत्तमम् ॥६॥

जितनी जल की मूर्तियां हैं, वे सब यहां गिरती रहती हैं, इसी से इस उत्तम पुर को लोग पाताल कहते हैं ॥ ६ ॥

ऐरावणोऽस्मात्सलिलं गृहीत्वा जगतो हितः ।
मेघेष्वामुञ्चते शीतं यन्महेन्द्रः प्रवर्षति ॥७॥

जगत् का हित करने वाला, इन्द्र का ऐरावत हाथी, इसी समुद्र से जल ग्रहण करके उस शीतल जल को मेघों में छोड़ देता है, जिसको महेन्द्र बरसाता है ॥ ७ ॥

अत्र नानाविधाकारास्तिमयो नैकरूपिणः ।
अप्सु सोमप्रभां पीत्वा वसन्ति जलचारिणः ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस समुद्र में अनेक प्रकार के जीव जन्तु रहते हैं, वे जल जन्तु जल में चन्द्रमा की कान्ति का पान करके बड़े आनन्द से रहते हैं ॥ ८ ॥

अत्र सूर्यांशुभिर्भिन्नाः पातालतलमाश्रिताः ।
मृता हि दिवसे सूत पुनर्जीवन्ति वै निशि ॥९॥

हे सूत ! यहां के अनेक प्राणी सूर्य के किरणों से दुःखी होकर मर जाते हैं और रात्रि में चन्द्र किरणों से जीवित हो उठते हैं ॥ ९ ॥

उदयन्नित्यशश्वाऽत्र चन्द्रमा रश्मिबाहुभिः ।
अमृतं स्पृश्य संस्पर्शात्सञ्जीवयति देहिनः ॥१०॥

अनेक किरण जाल के साथ उदय को प्राप्त होकर चन्द्रमा नित्य अमृत का ग्रहण करता है और उसी अमृत के स्पर्श से वह प्राणियों को आल्हादित करता है ॥ १० ॥

अत्र ते धर्मनिरता बद्धाः कालेन पीडिताः ।
दैतेया निवसन्ति स्म वासवेन हृतश्रियः ॥११॥

जो धर्म के आचरण करने वाले दैत्य हैं, वे काल के नियम में बद्ध हुए दुःख के साथ यहाँ निवास कर रहे हैं। उनके सारे तेज का इन्द्र ने अपहरण कर लिया है ॥११॥

अत्र भूतपतिर्नाम सर्वभूतमहेश्वरः ।
भूतये सर्वभूतानामचरत्तप उत्तमम् ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समस्त प्राणियों के स्वामी भूतपति महेश्वर ने जगत् के कल्याण के लिए यहीं पर घोर तप किया था ॥१२॥

अत्र गोव्रतिनो विप्राः स्वाध्यायाम्नायकर्शिताः ।
त्यक्तप्राणा जितस्वर्गा निवसन्ति महर्षयः ॥१३॥

इन्द्रियों के विजय करने वाले, वेद के स्वाध्याय की परिपाटी से कृशाङ्ग, प्राणों का मोह छोड़ कर स्वर्ग प्राप्ति के अभिलाषी महर्षिगण यहीं पर निवास करते हैं ॥१३॥

यत्र तत्र शयो नित्यं येन केनचिदाशितः ।
येन केनचिदाच्छन्नः स गोव्रत इहोच्यते ॥१४॥

जहाँ पर रात हो जावे, वहीं सो रहना और जो कुछ कहीं से मिल जावे, वही खा लेना तथा जो कुछ वस्त्र मिले, वे ही पहन कर शरीर ढक लेना—गोव्रत कहाता है ॥१४॥

ऐरावणो नागराजो वामनः कुमुदोऽञ्जनः ।
प्रसूताः सुप्रतीकस्य वंशे वारणसत्तमाः ॥१५॥

यहीं पर सुप्रतीक नागराज के वंश में नागराज ऐरावत, वामन, कुमुद, अञ्जन आदि उत्तम २ हाथियों ने जन्म ले रखा है ॥१५॥

पश्य यद्यत्र ते कश्चिद्रोचते गुणतो वरः ।
वरयिष्यामि तं गत्वा यत्नमास्थाय मातले ॥१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे मातले ! अब तुम यहाँ अपनी दृष्टि दौड़ा लो—यदि तुमको इनमें कोई गुण श्रेष्ठ दिखाई दे, तो यत्नपूर्वक उसके पास जाकर उसका वरण कर लो ॥१६॥

अण्डमेतज्जले न्यस्तं दीप्यमानमिव श्रिया ।
आप्रजानां निसर्गाद्वै नोद्विद्यति न सर्पति ॥१७॥

कान्ति से देदीप्यमान जल में जो अण्डाकार दिखाई देता है, यह सृष्टि के आरम्भ से यहीं पर स्थित है । यह न तो यहाँ से हटता है और न यह अण्डाकार कभी फूटता है ॥१७॥

नाऽस्य जातिं निसर्गं वा कथ्यमानं शृणोमि वै ।
पितरं मातरं चापि नाऽस्य जानाति कश्चन ॥१८॥

मैंने किसी से इसकी रचना और जन्म के विषय में कुछ नहीं सुना । कोई भी पुरुष इसके माता पिता को नहीं जानता ॥१८॥

अतः किल महानग्निरन्तकाले समुत्थितः ।
धक्ष्यते मातले सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१९॥

हे मातले ! इसी स्थान से प्रलय काल का महान् अग्नि उठता है और सारे चर अचर से पूर्ण इस त्रिलोकी को भस्म करं देता है ॥१९॥

मातलिस्त्वब्रवीच्छ्रुत्वा नारदस्याऽथ भाषितम् ।
न मेऽत्र रोचते कश्चिदन्यतो व्रज मा चिरम् ॥२०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या-
मुद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे
ऊनशततमोऽध्यायः ॥९९॥

नारद के इस कथन को सुनकर मातलि बोला—कि मुझे इनमें से कोई अच्छा नहीं लगता है। आप अन्य स्थान पर चलिए, विलम्ब न कीजिए ॥२०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में मातलि के अन्वेषण का निन्यानवेवां अध्याय समाप्त हुआ

सौवां अध्याय

नारद उवाच—

हिरण्यपुरमित्येतत्ख्यातं पुरवरं महत् ।
दैत्यानां दानवानां च मायाशतविचारिणाम् ॥१

नारद जी ने कहा—हे सारथे ! यह सामने ही अनेक प्रकार की माया करने वाले दैत्य और दानवों का बड़ा प्रसिद्ध हिरण्यपुर नामक विशाल नगर है ॥१॥

अनल्पेन प्रयत्नेन निर्मितं विश्वकर्मणा ।
मयेन मनसा सृष्टं पातालतलमाश्रितम् ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस पुर का चित्र (नक्शा) मय दैत्य ने मन से खींचा है और इसका निर्माण बड़े प्रयत्न से विश्वकर्मा ने किया है। यह पाताल में बड़ा विचित्र नगर है ॥२॥

अत्र मायासहस्राणि विकुर्वाणा महौजसः ।
दानवा निवसन्ति स्म शूरा दत्तवराः पुरा ॥३॥

इस पुर में सहस्रों प्रकार की माया करने वाले महा ओजस्वी, शूरवीर दानव रहते हैं, जिनको पूर्वकाल में ब्रह्मा से वरदान मिला हुआ है ॥३॥

नैते शक्रेण नाऽन्येन यमेन वरुणेन वा ।
शक्यन्ते वशमानेतुं तथैव धनदेन च ॥४॥

ये दानव, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर तथा अन्य किसी भी देवता के वश में आने वाले नहीं हैं ॥४॥

असुराः कालखञ्जाश्च तथा विष्णुपदोद्भवाः ।
नैर्ऋता यातुधानाश्च ब्रह्मपादोद्भवाश्च ये ॥५॥
दंष्ट्रिणो भीमवेगाश्च वातवेगपराक्रमाः ।
मायावीर्योपसम्पन्ना निवसन्त्यत्र मातले ॥६॥

हे मातले ! कालखञ्ज असुर तथा विष्णु के चरणों से उत्पन्न नैर्ऋत संज्ञक दैत्य और ब्रह्मा के पाद से उत्पन्न यातुधान, बड़े भयानक वेग धारी, वायु के समान पराक्रमी, बड़े २ दांत वाले, माया और बल से सम्पन्न हैं, वे इस नगर में निवास करते हैं ॥५-६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निवातकवचा नाम दानवा युद्धदुर्मदाः ।
जानासि च यथा शक्रो नैताञ्शक्नोति बाधितुम् ॥७॥

युद्ध में दुर्दमनीय, निवात-कवच नामक दानव हैं, तुम जानते हो, कि उनको पीड़ा पहुँचाने में इन्द्र भी समर्थ नहीं है ॥७॥

बहुशो मातले त्वं च तव पुत्रश्च गोमुखः
निर्भग्नो देवराजश्च सहपुत्रः शचीपतिः ॥८॥

हे मातले ! अनेक बार तुम और तुम्हारा पुत्र गोमुख इनसे पराजित हो चुके तथा पुत्र सहित शचीपति देवराज इन्द्र भी इनके सामने से भाग निकले हैं ॥८॥

पश्य वेश्मानि रौक्माणि मातले राजतानि च ।
कर्मणा विधियुक्तेन युक्तान्युपगतानि च ॥९॥
वैदूर्यमणिचित्राणि प्रवालरुचिराणि च ।
अर्कस्फटिकशुभ्राणि वज्रसारोज्ज्वलानि च ॥१०॥
पार्थिवानीव चाऽऽभान्ति पद्मरागमयानि च ।
शैलानीव च दृश्यन्ते दारवाणीव चाऽप्युत ॥११॥
सूर्यरूपाणि चाऽऽभान्ति दीप्ताग्निसदृशानि च ।
मणिजालविचित्राणि प्रांशूनि निबिडानि च ॥१२॥
नैतानि शक्यं निर्देष्टुं रूपतो द्रव्यतस्तथा ।
गुणतश्चैव सिद्धानि प्रमाणगुणवन्ति च ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे मातले ! तुम, सुवर्ण, चाँदी के बड़े विधि से निर्माण किए हुए चमकीले भवनों को देखो–जिनमें नील मणियां जड़ी हुई और जो प्रवाल मणियों से सुन्दर हैं। ये भवन सूर्य और स्फटिक मणियों के समान श्वेत, वज्रसार के तुल्य उज्वल तथा पद्मराग (लाल) मणियों से जटित, राजाओं के प्रासाद के सदृश सुशोभित हैं। कुछ भवन, शैल के समान उच्च और कुछ काष्ठ के ढेर से निर्माण किए हुए बड़े सुन्दर दिखाई देते हैं। ये सब सूर्य के समान देदीप्यमान और प्रदीप्त अग्नि के सदृश जाज्वल्यमान दिखाई देते हैं। इनमें मणियों के विचित्र २ जाल जड़े हुए हैं। ये भवन बड़े ऊँचे और समीप २ रचे गए हैं। इन भवनों के सौन्दर्य और द्रव्य व्यय का कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। ये अपने गौरव से प्रसिद्ध और शास्त्र प्रमाण के अनुसार बने हुए हैं ॥९-१३॥

आक्रीडान्पश्य दैत्यानां तथैव शयनान्युत ।
रत्नवन्ति महार्हाणि भाजनान्यासनानि च ॥१४॥

हे सारथे ! अब तुम इन दैत्यों के क्रीड़ा स्थानों को देखो और इनके पास ही बने हुए शयन स्थानों का निरीक्षण करो, जिनमें रत्न जड़े हुए हैं और जो बड़े मूल्यवान् हैं। इसी प्रकार के इनमें पात्र और आसन (गलीचे) आदि सजाये हुए हैं ॥१४॥

जलदाभांस्तथा शैलांस्तोयप्रस्रवणानि च ।
कामपुष्पफलांश्चापि पादपान्कामचारिणः ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ पर कृत्रिम शैल (पर्वत) बनाये हुए हैं, जो मेघों की तरह उच्च और जलधारा के बरसाने वाले हैं। इनमें कामना के अनुसार प्रत्येक ऋतु में पुष्प और फल लगते हैं तथा ये अन्य कामनाओं के पूर्ण करने वाले या कामना के अनुसार गमन करने वाले हैं ॥१५॥

मातले कश्चिदत्रापि रुचिरस्ते वरो भवेत् ।
अथवाऽन्यां दिशं भूमेर्गच्छाव यदि मन्यसे ॥१६॥

हे मातले ! यदि यहां पर तुमको कोई वर रुचिकर ज्ञात हो, तो यहाँ देख लो अथवा यदि तुम अन्य स्थान में चलना चाहो, तो अन्यत्र किसी भूमि के खण्ड पर चलो ॥१६॥

मातलिस्त्वब्रवीदेनं भाषमाणं तथाविधम् ।
देवर्षे नैव मे कार्यं विप्रियं त्रिदिवौकसाम् ॥१७॥
नित्यानुषक्तवैरा हि भ्रातरो देवदानवाः ।
परपक्षेण सम्बन्धं रोचयिष्याम्यहं कथम् ॥१८॥

इस प्रकार कहते हुए नारद से मातलि ने कहा—हे देवर्षे ! नारद ! मुझे देवों के अरुचि कर कार्य से कोई प्रयोजन नहीं है। देव और दानव यद्यपि भाई हैं:—तो भी इनमें नित्य का वैर लगा रहता है। शत्रु पक्ष के साथ सम्बन्ध करना मुझे कैसे अच्छा लग सकता है ॥१७-१८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्यत्र साधु गच्छाव द्रष्टुं नाऽर्हामि दानवान् ।
जानामि तव चाऽऽत्मानं हिंसात्मकमनं तथा ॥१९॥

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यान-पर्वणि मातलिवरान्वेषणे शततमोऽध्यायः ॥१००॥

हे देवर्षे ! मैं अन्यत्र चलना चाहता हूँ । मुझे तो दानवों को देखना भी नहीं चाहिए । मैं अपने को अहिंसक और दैत्यों की हिंसात्मक प्रवृत्ति को खूब जानता हूँ तथा आपकी मेरे ऊपर कृपा या आपके साथ दैत्यों के परिचय का भी मुझे ज्ञान है ॥१९॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में मातलि के वर अन्वेषण का सौवां अध्याय पूरा हुआ

एक सौ एकवां अध्याय

नारद उवाच—

अयं लोकः सुपर्णानां पक्षिणां पन्नगाशिनाम् ।
विक्रमे गमने भारे नैषामस्ति परिश्रमः ॥१॥

नारद जी बोले—हे मातले ! यह सामने ही सर्पों के भक्षण करने वाले सुपर्ण (गरुड़) जाति के पक्षियों का लोक है । इन सुपर्णों को पराक्रम दिखाने और दूर तक गमन करने में कोई भार या श्रम प्रतीत नहीं होता है ॥१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैनतेयसुतैः सूत षड्भिस्ततमिदं कुलम् ।
सुमुखेन सुनाम्ना च सुनेत्रेण सुवर्चसा ॥२॥

सुरुचा पक्षिराजेन सुबलेन च मातले ।
वर्धितानि प्रसूत्या वै विनताकुलकर्तृभिः ॥३॥

पक्षिराजाभिजात्यानां सहस्राणि शतानि च ।
कश्यपस्य ततो वंशे जातैर्भूतिविवर्धनैः ॥४॥

हे मातले! विनतापुत्र गरुड़ के छः पुत्र सुमुख, सुनाम, सुनेत्र, सुवर्चा, सुरुचि और पक्षिराज सुबल से यह कुल विस्तृत हुआ है। विनता के कुल के बढ़ाने वाले इन पुत्रों ने अपनी संतान से पक्षिराज गरुड़ के कुल को लाखों शाखाओं में फैला दिया है। ये सब कश्यप के वंशज कहलाते हैं, जो ऐश्वर्य में बढ़े हुए हैं ॥२-४॥

सर्वे ह्येते श्रिया युक्ताः सर्वे श्रीवत्सलक्षणाः ।
सर्वे श्रियमभीप्सन्तो धारयन्ति बलान्युत ॥५॥

ये सब लक्ष्मी से सम्पन्न और श्रीवत्स चिन्ह से सुशोभित हैं। ये सदा ऐश्वर्य की वृद्धि में तत्पर और बड़े बलशाली हैं ॥५॥

कर्मणा क्षत्रियाश्चैते निर्घृणा भोगिभोजिनः ।
ज्ञातिसंक्षयकर्तृत्वाद्ब्राह्मण्यं न लभन्ति वै ॥६॥

ये क्षत्रियों के कर्म शस्त्र से जीविका करते हैं, जो बड़े निर्दयी और सर्पों के भोगी हैं। ये एक जाति के विनाशक होने से सच्ची ब्राह्मण पदवी के अधिकारी नहीं हैं ॥६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नामानि चैषां वक्ष्यामि यथाप्राधान्यतः शृणु ।
मातले श्लाघ्यमेतद्धि कुलं विष्णुपरिग्रहम् ॥७॥

हे मातले ! अब मैं तुमसे प्रधानता के क्रम से इनके नामों का वर्णन करता हूँ—तुम सुनो । भगवान् विष्णु का वाहन होने से यह कुल बड़ा प्रतिष्ठित माना जाता है ॥७॥

दैवतं विष्णुरेतेषां विष्णुरेव परायणम् ।
हृदि चैषां सदा विष्णुर्विष्णुरेव सदा गतिः ॥८॥

भगवान् विष्णु इनका इष्टदेव है और वही इनका रक्षक है । ये सदा हृदय में विष्णु को धारण किए हुए हैं और इनका केवल विष्णु ही आश्रय है ॥८॥

सुवर्णचूडो नागाशी दारुणश्चण्डतुण्डकः ।
अनिलश्चाऽनलश्चैव विशालाक्षोऽथ कुण्डली ॥९॥

पङ्कजिद्वज्रविष्कम्भो वैनतेयोऽथ वामनः ।
वातवेगो दिशाचक्षुर्निमेषोऽनिमिषस्तथा ॥१०॥

त्रिरावः सप्तरावश्च वाल्मीकिर्दीपकस्तथा ।
दैत्यद्वीपः सरिद्द्वीपः सारसः पद्मकेतनः ॥११॥

सुमुखश्चित्रकेतुश्च चित्रबर्हस्तथाऽनघः ।
मेषहृत्कुमुदो दक्षः सर्पान्तः सोमभोजनः ॥१२॥

गुरुभारः कपोतश्च सूर्यनेत्रश्चिरान्तकः ।
विष्णुधर्मा कुमारश्च परिबर्हो हरिस्तथा ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुस्वरो मधुपर्कश्च हेमवर्णस्तथैव च ।
मालायो मातरिश्वा च निशाकरदिवाकरौ । १४॥
एते प्रदेशमात्रेण मयोक्ता गरुडात्मजाः ।
प्राधान्यतस्ते यशसा कीर्तिताः प्राणिनश्च ये ॥१५॥

सुवर्ण चूड, नागाशी, दारुण, चण्डतुण्डक, अनिल, अनल, विशालाक्ष, कुण्डली, पङ्कजित्, वज्रविष्कम्भ, वैनतेय, वामन, वातवेग, दिशाचक्षु, निमेष, अनिमेष, त्रिराव, सप्तराव, बाल्मीकि, दीपक, दैत्यदीप, सरिद्द्वीप, सारस, पद्मकेतन, सुमुख, चित्रकेतु, चित्रबर्ह, अनघ, मेषहृत्, कुमुद, दक्ष, सर्पान्त, सोमभोजन, गुरुभार, कपोत, सूर्यनेत्र, चिरान्तक, विष्णुधर्म कुमार, परिबर्ह, हरि सुस्वर, मधुपर्क, हेमवर्ण, मालाय, मातरिश्वा, निशाकर और दिवाकर, आदि गरुड़ के वंशजों का स्वल्प सा निर्देश किया है । ये सब प्राणी, यश और कीर्ति से प्रसिद्ध हैं ॥९-१५॥

यद्यत्र न रुचिः काचिदेहि गच्छाव मातले ।
तं नयिष्यामि देशं त्वां वरं यत्रोपलप्स्यसे ॥१६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

हे मातले ! यदि यहां भी तेरी रुचि नहीं है-तो आओ-आगे चलें । मैं तुम्हें उस स्थान पर ले चलूंगा, जहां तुमको वर की प्राप्ति हो जावेगी ॥१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में मातलि के वर के अन्वेषण का एक सौ एकवां अध्याय पूरा हुआ।

एक सौ दोवाँ अध्याय

नारद उवाच—

इदं रसातलं नाम सप्तमं पृथिवीतलम् ।
यत्राऽऽस्ते सुरभिर्माता गवामँमृतसम्भवा ॥१॥

नारदजी बोले--हे सारथे ! अब हम रसातल में पहुँच गए, जो पृथिवी का सातवां नीचे का भाग है। इस स्थान पर अमृत से प्रादुर्भूत, गौओं की माता सुरभि निवास करती हैं ॥१॥

क्षरन्ती सततं क्षीरं पृथिवीसारसम्भवम् ।
षण्णां रसानां सारेणं रसमेकमनुत्तमम् ॥२॥

यह सुरभि माता, षट् रसों का सारभूत रस, सर्वोत्तम, पृथिवी का तत्व, अपने क्षीर का प्रस्रवण करती रहती है ॥२॥

अमृतेनाऽभितृप्तस्य सारमुद्गिरतः पुरा ।
पितामहस्य वदनादुदतिष्ठदनिन्दिता ॥३॥

पूर्वकाल में अमृतपान करके तृप्त हुए और उसके रस की उद्गार से परिपूर्ण. ब्रह्माजी के मुख से यह सर्वाङ्ग सुन्दर गौ उत्पन्न हुई है ॥३॥

यस्याः क्षीरस्य धाराया निपतन्त्या महीतले ।
ह्रदः कृतः क्षीरनिधिः पवित्रं परमुच्यते ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पृथिवी पर पड़ती हुई, इसकी दूध की धारा से ही क्षीर समुद्र भरा है—जो बड़ा ही पवित्र है ॥४॥

पुष्पितस्येव फेनेन पर्यन्तमनुवेष्टितम् ।
पिबन्तो निवसन्त्यत्र फेनपा मुनिसत्तमाः ॥५॥

यह समुद्र, अपने फेनों (झागों) से पुष्पित सा हुआ रहता है, जो इन झागों के पुष्पों से चारों ओर से घिरा रहता है। इसके तट पर दूध के झागों का आहार करने वाले उत्तम २ मुनि निवास करते हैं ॥५॥

फेनपा नाम ते ख्याताः फेनाहाराश्च मातले ।
उग्रे तपसि वर्तन्ते येषां बिभ्यति देवताः ॥६॥

हे मातले ! ये मुनि फेनों का आहार करते हैं, इससे इनका नाम ही फेनपा पड़ गया है। ये बड़ा उग्र तप करते रहते हैं, जिनसे देवता भी डरते हैं ॥६॥

अस्याश्चतस्रो धेन्वोऽन्या दिक्षु सर्वासु मातले ।
निवसन्ति दिशां पाल्यो धारयन्त्यो दिशः स्म ताः ।७।

हे मातले ! इस क्षीर-निधि की चारों दिशाओं में अन्य चार गायें और रहती हैं। ये चारों गायें चारों दिशाओं से इसकी रक्षा करती हैं, इससे ये दिशा-पाली कहाती हैं ॥७॥

पूर्वां दिशं धारयते सुरूपा नाम सौरभी ।
दक्षिणां हंसिका नाम धारयत्यपरां दिशम् ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पश्चिमा वारुणी दिक्च धार्यते वै सुभद्रया ।
महानुभावया नित्यं मातले विश्वरूपया ॥९॥

सुरभि से उत्पन्न सुरूपा नामक गौ पूर्व दिशा की रक्षा करती है। दक्षिण दिशा की रक्षा हंसिका नामक गौ करती है। हे मातले! वरुण देवता की पश्चिम दिशा को विश्व रूपिणी सुभद्रा नामक गौ धारण करती है ॥८-९॥

सर्वकामदुघा नाम धेनुर्धारयते दिशम् ।
उत्तरां मातले धर्म्यां तथैलविलसंज्ञिताम् ॥१०॥

हे मातले! इलविल देवता से सुरक्षित उत्तर दिशा को सर्व काम-दुघा गौ धारण करती है ॥१०॥

आसां तु पयसा मिश्रं पयो निर्मथ्य सागरे ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा देवैरसुरसंहितैः ॥११॥
उद्धृता वारुणी लक्ष्मीरमृतं चापि मातले ।
उच्चैःश्रवाश्चाऽश्वराजो मणिरत्नं च कौस्तुभम् ॥१२॥

इन गौओं के दुग्ध से मिले हुए इस क्षीर समुद्र को देव और असुरों ने साथ २ मंथराचल को मथानी बना कर मथा था। हे मातले! उससे वारुणी, लक्ष्मी, अमृत, उच्चैः श्रवा अश्व, मणिरत्न कौस्तुभ आदि चौदह रत्न निकाले गए थे ॥११-१२॥

सुधाहारेषु च सुधां स्वधाभोजिषु च स्वधाम् ।
अमृतं चाऽमृताशेषु सुरभी क्षरते पयः ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुरभी गौ ऐसा दुग्ध प्रस्रावण करती है, जो सुधा-भोजी नागों को सुधा, स्वधा-भोजी पितरों को स्वधा और अमृत-भोजी देवों को अमृत बन जाता है ॥१३॥

अत्र गाथा पुरा गीता रसातलनिवासिभिः ।
पौराणी श्रूयते लोके गीयते या मनीषिभिः ॥१४॥
न नागलोके न स्वर्गे न विमाने त्रिविष्टपे ।
परिवासः सुखस्तादृग्रसातलतले यथा ॥१५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

रसातल निवासियों ने पूर्वकाल में एक पुरानी गाथा (कहावत) कही थी, जिसको आजकल भी मुनि लोग गाते हैं, कि नागलोक, स्वर्गलोक, स्वर्ग के प्रासाद में भी वह सुख नहीं है, जो सुख रसातल के मध्य में निवास करने से मिलता है ॥१४-१५॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में मातलि के वर के अन्वेषण का एक सौ दो वां अध्याय पूरा हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ तीनवां अध्याय

नारद उवाच—

इयं भोगवती नाम पुरी वासुकिपालिता ।
यादृशी देवराजस्य पुरीवर्याऽमरावती ॥१॥

नारद जी ने कहा—हे सूत ! यह नागराज बासुकि से पालित, भोगवती नाम की नगरी है, जो देवराज इन्द्र की पुरी के समान सुन्दर है ॥ १ ॥

एष शेषः स्थितो नागो येनेयं धार्यते सदा ।
तपसा लोकमुख्येन प्रभावसहिता मही । २॥

ये सामने ही शेष नाग स्थित हैं, इन्होंने त्रिलोकी में मुख्य अपने तप से सारे प्रभावों से युक्त इस पृथिवी को धारण कर रखा है ॥ २ ॥

श्वेताचलनिभाकारो दिव्याभरणभूषिताः ।
सहस्रं धारयन्मूर्ध्ना ज्वालाजिह्वो महाबलः ॥३॥

श्वेत पर्वत के समान आकार के धारण करने वाले, दिव्य आभूषणों से सुशोभित, सहस्र फनों के धारक, अग्नि की ज्वाला के समान जिह्वावाले महाबली शेषनाग हैं ॥ ३ ॥

इह नानाविधाकारा नानाविधविभूषणः ।
सुरसायाः सुता नागा निवसन्ति गतव्यथाः ॥४॥
मणिस्वस्तिकचक्राङ्काः कमण्डलुकलक्षणाः ।
सहस्रसंख्या बलिनः सर्वे रौद्राः स्वभावतः ॥५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी स्थान पर अनेक आकार और अनेक भांति के आभूषण धारी, सुरसा के पुत्र, अनेक नाग बड़े आनन्द से निवास करते हैं। ये सारे नागराज, मणि, स्वस्तिक, चक्र और कमण्डलु के चिन्हों से अङ्कित महा बलवान् सहस्रों की संख्या में यहां निवास करते हैं, जो स्वभाव से ही बड़े भयङ्कर हैं ॥ ४—५ ॥

सहस्रशिरसः केचित्केचित्पञ्चशताननाः ।
शतशीर्षास्तथा केचित्केचित्त्रिशिरसोऽपि च ॥६॥

इन नागों में बहुतों के तो सहस्र शिर और बहुतों के पांच सौ शिर हैं, कुछ के सौ शिर और किसी २ के तीन मस्तक हैं ॥६॥

द्विपञ्चशिरसः केचित्केचित्सप्तमुखास्तथा ।
महाभोगा महाकायाः पर्वताभोगभोगिनः ॥७॥

कुछ नाग दश शिरधारी, कुछ सात मस्तक वाले हैं। इनके बड़े २ शरीर और फन तथा पर्वत के समान उन फनों का विस्तार है ॥ ७ ॥

बहूनीह सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
नागानामेकवंशानां यथाश्रेष्ठं तु मे शृणु ॥८॥

इस लोक में अनेक सहस्र, लाख तथा अर्ब की संख्या में एक ही वंश के नाग रहते हैं। उनमें जो श्रेष्ठ है, तुम उनके नाम सुनो ॥ ८ ॥

वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ ।
कालीयो नहुषश्चैव कम्बलाश्वतरावुभौ ॥९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाह्यकुण्डो मणिर्नागस्तथैवाऽऽपूरणः खगः ।
वामनश्चैलपत्रश्च कुकुरः कुकुणस्तथा ॥१०॥
आर्यको नन्दकश्चैव तथा कलशपोतकौ ।
कैलासकः पिञ्जरको नागश्चैरावतस्तथा ॥११॥
सुमनोमुखो दधिमुखः शङ्खो नन्दोपनन्दकौ ।
आप्तः कोटरकश्चैव शिखी निष्टूरिकस्तथा ॥१२॥
तित्तिरिर्हस्तिभद्रश्च कुमुदो माल्यपिण्डकः ।
द्वौ पद्मौ पुण्डरीकश्च पुष्पो मुद्गरपर्णकः ॥१३॥
करवीरः पीठरकः संवृत्तो वृत्त एव च ।
पिण्डारो बिल्वपत्रश्च मूषिकादः शिरीषकः ॥१४॥
दिलीपः शङ्खशीर्षश्च ज्योतिष्कोऽथाऽपराजितः ।
कौरव्यो धृतराष्ट्रश्च कुहुरः कृशकस्तथा ॥१५॥
विरजा धारणश्चैव सुबाहुर्मुखरो जयः ।
बधिरान्धौ विशुण्डिश्च विरसः सुरसस्तथा ॥१६॥
एते चाऽन्ये च बहवः कश्यपस्याऽऽत्मजाः स्मृताः ।
मातले पश्य यद्यत्र कश्चित्ते रोचते वरः ॥१७॥

वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय, कालीय, नहुष, कम्बल, अश्वतर, बाह्यकुण्ड, मणि नाग, आपूरण, खग, वामन, चैलपत्र, कुकुर, कुकुण, आर्यक, नन्दक, कलश, पोतक, कैलासक, पिञ्जरक एरावत, नाग, सुमनो मुख, दधिमुख, शंख, नन्द, उपनन्दक, आप्त,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोटरक, शिखी, निष्टूरिक, तित्तिरि, हस्तिभद्र, कुमुद, माल्यपिण्डक, एक नाम के दो पद्म, पुण्डरीक, पुष्प, मुद्गरपर्णक, करवीर, पीठरक, संवृत्त, वृत्त, पिण्डार, विल्वपत्र, मूषिकाद, शिरीषक, दिलीप, शंखशीर्ष, ज्योतिष्क, अपराजित, कौरव्य, धृतराष्ट्र, कुहुर, कृशक, विरजा, धारण, सुबाहु, मुखर, जय, बधिर, अन्ध, विशुण्डि, विरस, सुरस नाम धारी नाग तथा अन्य बहुत से नाग हैं, जो कश्यप के पुत्र कहाते हैं। हे मातले! इनमें तुमको कोई वर उत्तम प्रतीत हो, तो बताओ ॥ ६—१७ ॥

कण्वउवाच—

मातलिस्त्वेकमव्यग्रः सततं सन्निरीक्ष्य वै ।
पप्रच्छ नारदं तत्र प्रीतिमानिव चाऽभवत् ॥१८॥

कण्व ने कहा—हे महाभाग! जब मातलि ने एक नागराज की ओर लगातार दृष्टि से देखा, तो बड़ा प्रसन्न हुआ। वह नारदजी से पूछने लगा ॥ १८ ॥

मातलिरुवाच—

स्थितो य एष पुरतः कौरव्यस्याऽऽर्यकस्य तु ।
द्युतिमान्दर्शनीयश्च कस्यैष कुलनन्दनः ॥१९॥
कः पिता जननी चाऽस्य कतमस्यैष भोगिनः ।
वंशस्य कस्यैष महान्केतुभूत इव स्थितः ॥२०॥

मातलि बोला—हे महर्षे! कौरव्य आर्यक के सन्मुख यह कौन स्थित हैं, जो बड़ा कांतिमान् और सुन्दर है। यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसके कुल को आनन्द का बढ़ाने वाला है। इसके पिता और माता कौन हैं और यह किस नागराज वंश का अंकुर और किस वंश की ध्वजा है? ॥ १९—२० ॥

प्रणिधानेन धैर्येण रूपेण वयसा च मे।
मनःप्रविष्टो देवर्षे गुणकेश्याः पतिर्वरः ॥२१॥

हे देवर्षे! इसके प्रणिधान (शान्ति) धैर्य, रूप और आयु मुझे उत्तम प्रतीत होते हैं। यही महाभाग मुझे गुणकेशी के लिए योग्य वर ज्ञात होता है ॥ २१ ॥

कण्व उवाच—

मातलिं प्रीतमनसं दृष्ट्वा सुमुखदर्शनात्।
निवेदयामास तदा माहात्म्यं जन्म कर्म च ॥२२॥

कण्व ने कहा—हे राजन्! सुमुख के दर्शन से प्रसन्न हुए, मातलि को देख कर नारदजी उससे उसके गौरव तथा जन्म और कर्म का परिचय देने लगे ॥ २२ ॥

नारद उवाच—

ऐरावतकुले जातः सुमुखो नाम नागराट्।
आर्यकस्य मतः पौत्रो दौहित्रो वामनस्य च ॥२३॥

यह ऐरावत नागराज के कुल में उत्पन्न सुमुख नामक नागराज है। यह आर्यक का पौत्र और वामन का दौहित्र (दोहता) है ॥२३॥

एतस्य हि पिता नागश्चिकुरो नाम मातले।
न चिराद्वैनतेयेन पञ्चत्वमुपपादितः ॥२४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे मातले ! इसका नागराज चिकुर पिता है। थोड़े ही दिन हुए, जब गरुड़ ने उसको मार डाला ॥ २४ ॥

ततोऽब्रवीत्प्रीतमना मातलिर्नारदं वचः ।
एष मे रुचितस्तात जामाता भुजगोत्तमः ॥२५॥

अब प्रसन्न होकर मातलि ने नारद से कहा—हे तात ! यह भुजङ्गराज मुझे अपना जामाता बनाने के लिए श्रेष्ठ प्रतीत होता है ॥ २५ ॥

क्रियतामत्र यत्नो वै प्रीतिमानस्म्यनेन वै ।
अस्मै नागाय वै दातुं प्रियां दुहितरं मुने ॥२६॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे त्र्यधिकशततमोऽध्याय ॥१०३॥

हे देवर्षे ! आप इसके लिए प्रयत्न करो, मैं इससे बड़ा प्रसन्न हूँ। हे मुने ! मैं तो इसी नागराज के लिए अपनी कन्या देना चाहता हूँ ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में मातलि के वर के अन्वेषण का एक सौ तीनवां अध्याय पूरा हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ चारवां अध्याय

नारद उवाच—

सूतोऽयं मातलिर्नाम शक्रस्य दयितः सुहृत् ।
शुचिः शीलगुणोपेतस्तेजस्वी वीर्यवान्बली ॥१॥

शक्रस्याऽयं सखा चैव मन्त्री सारथिरेव च ।
अल्पान्तरप्रभावश्च वासवेन रणे रणे ॥२॥

अयं हरिसहस्रेण युक्तं जैत्रं रथोत्तमम् ।
देवासुरेष युद्धेषु मनसैव नियच्छति ॥३॥

अनेन विजितानश्वैर्दोर्भ्यां जयति वासवः ।
अनेन बलभित्पूर्वं प्रहृते प्रहरत्युत ॥४॥

अस्य कन्या वरारोहा रूपेणाऽसदृशी भुवि ।
सत्यशीलगुणोपेता गुणकेशीति विश्रुता ॥५॥

तस्याऽस्य यत्नाच्चरतस्त्रैलोक्यममरद्युते ।
सुमुखो भवतः पौत्रो रोचते दुहितुः पतिः ॥६॥

नारद जी कहने लगे—हे अमरपते ! चिकुर ! यह मातलि नामक इन्द्र का सारथी और प्रिय मित्र है। यह बड़ा सदाचारी, शीलगुणों से युक्त, तेजस्वी, वीर्यवान् और बलवान् है। यह इन्द्र का सखा, मन्त्री और सारथि है। प्रत्येक युद्ध में इन्द्र से कुछ न्यून इसका प्रभाव रहता है। यह इतना अच्छा सारथि है कि देवासुर संग्राम में एक सहस्र अश्वों से युक्त-विजय-शील इन्द्र के विशाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रथ को विना प्रयत्न के ही रोकता और चलाता रहता है। यह मातलि, अपने अश्वों से ही असुरों को जीत लेता है। इन्द्र तो उन पर पीछे विजय प्राप्त करता है। जब प्रथम असुरों पर यह प्रहार कर लेता है, तब इन्द्र भी अपना प्रहार करता है। इस मातलि की बड़ी सुन्दरी कन्या है। जिसके रूप के सदृश अन्य स्त्री नहीं हैं। वह सत्य, शील आदि गुणों से युक्त कन्या है, जिसका गुणकेशी बड़ा ही प्रसिद्ध नाम है। यह बड़े प्रयत्न से त्रिलोकी में घूमता हुआ वर की खोज कर रहा है। इसको अपनी पुत्री का पति बनाने के लिए तुम्हारा पुत्र उत्तम प्रतीत होता है॥ १—६॥

यदि ते रोचते सम्यग्भुजगोत्तम मा चिरम्।
क्रियतामार्यक क्षिप्रं बुद्धिः कन्यापरिग्रहे ॥७॥

हे भुजगोत्तम! यदि तुमको यह सम्बन्ध अच्छा प्रतीत होता है, तो देर न करो। हे आर्यक! अब आप इस कन्या के ग्रहण करने की शीघ्र तय्यारी करो॥ ७॥

यथा विष्णुकुले लक्ष्मीर्यथा स्वाहा विभावसोः।
कुले तव तथैवाऽस्तु गुणकेशी सुमध्यमा ॥८॥

विष्णुकुल में लक्ष्मी और अग्नि कुल में स्वाहा जैसी उत्तम स्त्री मानी जाती हैं, वैसे ही यह सुन्दरी गुणकेशी तुम्हारे कुल में सुशोभित होगी॥ ८॥

पौत्रस्याऽथ भवांस्तस्माद्गुणकेशीं प्रतीच्छतु।
सदृशीं प्रतिरूपस्य वासवस्य शचीमिव ॥९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब आप अपने पौत्र सुमुख के लिए इस गुणवती को ग्रहण करो। यह योग्य वर के अनुकूल योग्य कन्या है। जैसे इन्द्र के साथ इन्द्राणी सुशोभित होती हैं---ऐसे ही तुम्हारे पुत्र के साथ यह सुशोभित होगी ॥ ९ ॥

पितृहीनमपि ह्येनं गुणतो वरयामहे।
बहुमानाच्च भवतस्तथैवैरावतस्य च ॥१०॥

यद्यपि इस वर का पिता मारा गया. तो भी हम इसके गुणी होने के कारण इसको वरना चाहते हैं तथा आपमें और ऐरावत नागराज में हमारी बड़ी श्रद्धा है ॥ १० ॥

सुमुखश्च गुणैश्चैव शीलशौचदमादिभिः।
अभिगम्य स्वयं कन्यामयं दातुं समुद्यतः ॥११॥
मातलिस्तस्य सम्मानं कर्तुमर्हो भवानपि।

आपका पौत्र सुमुख भी शील, शौच आदि गुणों के कारण बड़ा प्रसिद्ध है। यही कारण है, कि मातलि स्वयं आकर अपनी कन्या देना चाहता है, आपको भी इस मातलि का सम्मान करना चाहिये ॥ ११ ॥

कण्व उवाच—

स तु दीनः प्रहृष्टश्च प्राह नारदमार्यकः ॥१२॥
त्रियमाणे तथा पौत्रे पुत्रे च निधनं गते।
कथमिच्छामि देवर्षे गुणकेशीं स्नुषां प्रति ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कण्व बोले—हे महाभाग ! आपके पौत्र के वरण कर लेने से आर्यक बड़ा प्रसन्न हुआ, परन्तु पुत्र के मरने का स्मरण करके भी बड़ा कातर हुआ। हे देवर्षे ! मैं गुणकेशी को किस प्रकार अपनी पुत्र-बधू बना सकता हूँ ॥ १२—१३ ॥

आर्यक उवाच—

न मे नैतद्बहुमतं महर्षे वचनं तव ।
सखा शक्रस्य संयुक्तः कस्याऽयं नेप्सितो भवेत् ॥१४॥

हे महर्षे ! मुझे आपका यह वचन बड़े आदर के साथ मान्य है। यह इन्द्र का सहचारी सखा है। भला ? इसके साथ कौन सम्बन्ध करना नहीं चाहेगा ॥ १४ ॥

कारणस्य तु दौर्बल्याच्चिन्तयामि महामुने ।
अस्य देहकरस्तात मम पुत्रो महाद्युते ॥१५॥
भक्षितो वैनतेयेन दुःखार्त्तास्तेन वै वयम् ।

हे महामुने ! परन्तु इस सम्बन्ध में एक अड़चन है, उसकी मुझे बड़ी चिन्ता है। हे महाद्युते ! इस सुमुख का उत्पादक मेरे पुत्र चिकुर को गरुड़ खा गया, इससे हम बड़े ही दुःखी हो रहे हैं ॥१५॥

पुनरेव च तेनोक्तं वैनतेयेन गच्छता ॥
मासेनाऽन्येन सुमुखं भक्षयिष्य इति प्रभो ॥१६॥

हे प्रभो ! उस समय जाते हुए गरुड़ ने फिर कहा, कि एक मास के अन्दर मैं इसके पुत्र सुमुख का भी भक्षण करूँगा ।१६।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्रुवं तथा तद्भविता जानीमस्तस्य निश्चयम् ।
तेन हर्षः प्रनष्टो मे सुपर्णवचनेन वै ॥१७॥

हम गरुड़ के निश्चय को जानते हैं। वह अपने निश्चय को पूरा करके ही छोड़ेगा। गरुड़ के इस वचन से मेरा सम्पूर्ण आनन्द नष्ट हो रहा है ॥ १७ ॥

कण्व उवाच—

मातलिस्त्वब्रवीदेनं बुद्धिरत्र कृता मया ।
जामातृभावेन वृतः सुमुखस्तव पुत्रजः ॥१८॥
सोऽयं मया च सहितो नारदेन च पन्नगः ।
त्रिलोकेशं सुरपतिं गत्वा पश्यतु वासवम् ॥१९॥

कण्व बोले—हे महानुभाव ! इस विषय में मैंने यह उपाय विचारा है, कि जामाता रूप में वरण किया हुआ तुम्हारा पौत्र नागराज, मेरे और नारदजी के साथ त्रिलोकेश, सुरपति इन्द्र के दर्शनों को गमन करें ॥ १८—१९ ॥

शेषेणैवाऽस्य कार्येण प्रज्ञास्याम्यहमायुषः ।
सुपर्णस्य विघाते च प्रयतिष्यामि सत्तम ॥२०॥

हे सत्तम ! इस कार्य के अङ्गभूत वार्तालाप में मैं इसकी आयु के विषय में ज्ञान प्राप्त करूँगा और गरुड़ के इस कार्य में विघ्न करने का प्रयत्न करूँगा ॥ २० ॥

सुमुखश्च मया सार्धं देवेशमभिगच्छतु ।
कार्यसंसाधनार्थाय स्वस्ति तेऽस्तु भुजङ्गम ॥२१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे भुजङ्गम ! अब शीघ्र ही सुमुख मेरे साथ इस कार्य की सिद्धि के लिए इन्द्र के पास चलें । तुम्हारा कल्याण हो, हम चलते हैं ॥ २१ ॥

ततस्ते सुमुखं गृह्य सर्व एव महौजसः ।
ददृशुः शक्रमासीनं देवराजं महाद्युतिम् ॥२२॥

इसके अनन्तर ये सारे ओजस्वी महानुभाव, सुमुख को साथ लेकर महाद्युतिमान् देवराज इन्द्र के पास पहुँचे । वहाँ उन्होंने अपने आसन पर बैठे हुए इन्द्र को देखा ॥ २२ ॥

सङ्गत्या तत्र भगवान्विष्णुरासीच्चतुर्भुजः ।
ततस्तत्सर्वमाचख्यौ नारदो मातलिं प्रति ॥२३॥

वहीं पर इन्द्र से मिलने को चतुर्भुज भगवान् विष्णु आये हुए थे । नारदजी ने मातलि का सारा वृतान्त इन दोनों को सुना दिया ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच—

ततः पुरन्दरं विष्णुरुवाच भुवनेश्वरम् ।
अमृतं दीयतामस्मै क्रियताममरैः समः ॥२४॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! अब भगवान् विष्णु ने इन्द्र से कहा--कि तुम इनको अमृत दे दो और देवो के समान बनालो ।२४।

मातलिर्नारदश्चैव सुमुखश्चैव वासव ।
लभन्तां भवतः कामात्काममेतं यथेप्सितम् ॥२५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे देवराज ! इन्द्र ! यह मातलि, नारद और सुमुख आपके अनुग्रह से अपनी कामना को प्राप्त करें ॥ २५ ॥

पुरन्दरोऽथ सञ्चिन्त्य वैनतेयपराक्रमम् ।
विष्णुमेवाब्रवीदेनं भवानेव ददात्विति ॥२६॥

इन्द्र ने विनता-पुत्र गरुड़ के पराक्रम को विचारा, तो भगवान् से कहा, कि आप ही इन लोगों को अमृत प्रदान कर दो ॥ २६ ॥

विष्णुरुवाच—

ईशस्त्वं सर्वलोकानां चराणामचराश्च ये ।
त्वया दत्तमदत्तं कः कर्तुमुत्सहते विभो ॥२७॥

विष्णु बोले—हे विभो ! तुम सारी चर अचर सृष्टि के स्वामी हो। तुम्हारे दिये हुए अमृत को कौन रोक सकता है ॥ २७ ॥

प्रादाच्छक्रस्ततस्तस्मै पन्नगायाऽऽयुरुत्तमम् ।
न त्वेनममृतप्राशं चकार बलवृत्रहा ॥२८॥

बल और वृत्रासुर के घातक इन्द्र ने इस पन्नगराज सुमुख को अमृत प्रदान नहीं किया, परन्तु उत्तम आयु प्रदान कर दी ।२८।

लब्ध्वा वरं तु सुमुखः सुमुखः सम्बभूव ह ।
कृतदारो यथाकामं जगाम च गृहान्प्रति ॥२९॥

जब सुमुख को आयु का वर प्राप्त हो गया, तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और मातलि की कन्या से विवाह करके अपने घर को गया ॥ २९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारदश्चाऽऽर्यकश्चैव कृतकार्यौ मुदा युतौ ।
अभिजग्मतुरभ्यर्च्य देवराजं महाद्युतिम् ॥३०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे चतुरधिकशततमोऽध्यायः १०४

नारद और आर्यक भी बड़े कृतकृत्य और प्रसन्न हुए। ये दोनों महाद्युतिमान् देवराज इन्द्र की पूजा करके अपने अपने स्थान को गए ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में मातलि के वर के अन्वेषण का एक सौ चारवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ पांचवां अध्याय

कण्व उवाच—

गरुडस्तत्र शुश्राव यथावृत्तं महाबलः ।
आयुःप्रदानं शक्रेण कृतं नागस्य भारत ॥१॥

पक्षवातेन महता रुद्ध्वा त्रिभुवनं खगः ।
सुपर्णः परमक्रुद्धो वासवं समुपाद्रवत् ॥२॥

कण्व बोले—हे भारत ! जब महाबली गरुड़ ने सुना, कि नागराज सुमुख को इन्द्र ने इस प्रकार आयु प्रदान कर दी है, तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पक्षिराज गरुड़ ने अपने विशाल पक्षों से त्रिभुवन को घेर लिया और वह बड़ा क्रुद्ध होकर देवराज इन्द्र के पास पहुँचा ॥१—२॥

गरुड उवाच—

भगवन्किमवज्ञानाद्वृत्तिः प्रतिहता मम ।
कामकारवरं दत्त्वा पुनश्चलितवानसि ॥३॥

गरुड़ ने कहा—हे भगवन् ! आपने किस भूल से मेरी वृत्ति का आघात कर दिया है। आपने ही तो इच्छानुसार वृत्ति करने का वरदान दिया, अब आप ही उससे कैसे हटते हैं ॥ ३ ॥

निसर्गात्सर्वभूतानां सर्वभूतेश्वरेण मे ।
आहारो विहितो धात्रा किमर्थं वार्यते त्वया ॥४॥

सब प्राणियों के रचने वाले विधाता ने सब प्राणियों का स्वाभाविक आहार भी बनाया है, अब आप उस मेरे आहार के छीनने में क्यों प्रवृत्त हुए हो ॥ ४ ॥

वृतश्चैष मया नागः स्थापितः समयश्च मे ।
अनेन च मया देव भर्तव्यः प्रसवो महान् ॥५॥

हे देव ! मैंने अपने आहार के लिए इस नाग का संकल्प किया था और इससे कुछ समय के अनन्तर इसके भक्षण की प्रतिज्ञा (शर्त) कर ली थी। हे देव ! इस नाग से तो मुझे अपनी सन्तान की तृप्ति करनी थी ॥ ५ ॥

एतस्मिंस्तु तथाभूते नाऽन्यं हिंसितुमुत्सहे ।
क्रीडसे कामकारेण देवराज यथेच्छकम् ॥६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब इसकी यह दशा हो गई, तो मैं अन्य नागों के मारने का भी कैसे उत्साह कर सकता हूँ। हे देवराज ! आप नियमों को छोड़ कर अपनी इच्छानुसार उच्छृङ्खल व्यवहार कर रहे हो ॥६।

सोऽहं प्राणान्विमोक्ष्यामि तथा परिजनो मम ।
ये च भृत्या मम गृहे प्रीतिमान्भव वासव ॥७॥

हे वासव ! अब मैं, मेरा परिवार और सारे सेवक प्राण त्याग कर देंगे। यदि इसमें ही आपकी प्रसन्नता है, तो आप प्रसन्न हो जाइए ॥ ७ ॥

एतश्चैवाऽहमर्हामि भूयश्च बलवृत्रहन् ।
त्रैलोक्यस्येश्वरो योऽहं परभृत्यत्वमागतः ॥८॥

हे बल और वृत्त दैत्य के नाशक ! इन्द्र ! मेरी यही दशा होनी चाहिए थी, जो त्रिलोक के ईश्वर होने की शक्ति रखते हुए भी मैंने अन्य की दासता स्वीकार कर रखी है ॥ ८ ॥

त्वयि तिष्ठति देवेश न विष्णुः कारणं मम ।
त्रैलोक्यराज राज्यं हि त्वयि वासव शाश्वतम् ॥९॥

हे देवेश ! नागराज को वरदान देने के समय जब आप भी विद्यमान थे, तो मेरे इस तिरस्कार का केवल भगवान् विष्णु ही कारण नहीं हैं। हे त्रिलोकी पति ! इन्द्र! यह त्रिलोकी का निश्चल राज्य तो आपके ही अधिकार में है ॥ ९ ॥

ममाऽपि दक्षस्य सुता जननी कश्यपः पिता ।
अहमप्युत्सहे लोकान्समन्ताद्वोढुमञ्जसा ॥१०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरी भी माता प्रजापति दक्ष की पुत्री है और पिता तो कश्यप ही हैं। मुझमें भी यह शक्ति है, कि मैं भी तीनों लोकों का अच्छी तरह शासन कर सकता हूँ ॥ १० ॥

असह्यं सर्वभूतानां ममापि विपुलं बलम् ।
मयापि सुमहत्कर्म कृतं दैतेयविग्रहे ॥११॥

मुझ में भी इतना असह्य बल है, कि उसको कोई सह नहीं सकता है, जब देवासुर संग्राम हुआ था, तब मैंने भी अद्भुत वीरता पूर्ण कर्म कर दिखाये थे ॥ ११ ॥

श्रुतश्रीः श्रुतसेनश्च विवस्वान्रोचनामुखः ।
प्रस्रुतः कालकाक्षश्च मयापि दितिजा हताः ॥१२॥

मैंने भी श्रुतश्री, श्रुतसेन, विवस्वान्, रोचनामुख, प्रस्रुत कालकाक्ष आदि दैत्यों का युद्ध में विध्वंस किया था ॥ १२ ॥

यत्तु ध्वजस्थानगतो यत्नात्परिचराम्यहम् ।
वहामि चैवाऽनुजं ते तेन मामवमन्यसे ॥१३॥

जो मैं तुम्हारे लघु भाई भगवान् विष्णु की ध्वजा पर बैठा रहता हूँ और बड़े प्रयत्न से उनकी सेवा शुश्रूषा करता हूँ, बस ? इसी का यह फल है, कि आप मेरा तिरस्कार करते हैं ॥ १३ ॥

कोऽन्यो भारसहो ह्यस्ति कोऽन्योऽस्ति बलवत्तरः ।
मया योऽहं विशिष्टः सन्वहामीमं सबान्धवम् ॥१४॥

हे देवराज ! ऐसा महाबली होकर भी मैं विष्णु के सारे बोझे को उठानेवाला सेवक बन रहा हूँ। मैं इस प्रकार एक विशेष शक्ति रख कर भी परिवार सहित विष्णु का वाहन बना हुआ हूँ ॥१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवज्ञाय तु यत्तेऽहं भोजनादव्यपरोपितः ।
तेन मे गौरवं नष्टं त्वत्तश्चाऽस्माच्च वासव ॥१५॥

अब तुमने अपमान पूर्वक मुझे अपने आहार से हीन कर दिया है । हे वासव ! मेरा सारा गौरव तुमने और भगवान् विष्णुने ही नष्ट किया है ॥ १५ ॥

अदित्यां य इमे जाता बलविक्रमशालिनः ।
त्वमेषां किल सर्वेषां बलेन बलवत्तरः ॥१६॥
सोऽहं पक्षैकदेशेन वहामि त्वां गतक्लमः ।
विमृश त्वं शनैस्तात को न्वत्र बलवानिति ॥१७॥

अदिति के गर्भ से जितने बल और पराक्रम से युक्त देवता उत्पन्न हुए हैं। उनमें सबसे अधिक बलवान् तुम ही हो । मैं विना श्रम के ही तुमको एक पक्ष के भाग से धारण करके ले उड़ता हूँ । हे तात ! अब आप शान्ति से सोचिए, कि हम लोगों में कौन बलवान् हैं ॥ १६—१७ ॥

कण्व उवाच—

स तस्य वचनं श्रुत्वा खगस्योदर्कदारुणम् ।
अक्षोभ्यं क्षोभयंस्तार्क्ष्यमुवाच रथचक्रभृत् ॥१८॥

कण्व ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार गरुड़ पक्षी के दारुण और ओजस्वी वचनों को सुनकर किसी प्रकार नहीं घबराने वाले गरुड़ को व्याकुल सा करते हुए सुदर्शन-चक्र-धारी भगवान् विष्णु बोले ॥ १८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरी भी माता प्रजापति दक्ष की पुत्री है और पिता तो कश्यप ही हैं। मुझमें भी यह शक्ति है, कि मैं भी तीनों लोकों का अच्छी तरह शासन कर सकता हूँ ॥ १० ॥

असह्यं सर्वभूतानां ममापि विपुलं बलम् ।
मयापि सुमहत्कर्म कृतं दैतेयविग्रहे ॥११॥

मुझ में भी इतना असह्य बल है, कि उसको कोई सह नहीं सकता है, जब देवासुर संग्राम हुआ था, तब मैंने भी अद्भुत वीरता पूर्ण कर्म कर दिखाये थे ॥ ११ ॥

श्रुतश्रीः श्रुतसेनश्च विवस्वान्रोचनामुखः ।
प्रस्रुतः कालकाक्षश्च मयापि दितिजा हताः ॥१२॥

मैंने भी श्रुतश्री, श्रुतसेन, विवस्वान्, रोचनामुख, प्रस्रुत कालकाक्ष आदि दैत्यों का युद्ध में विध्वंस किया था ॥ १२ ॥

यत्तु ध्वजस्थानगतो यत्नात्परिचराम्यहम् ।
वहामि चैवाऽनुजं ते तेन मामवमन्यसे ॥१३॥

जो मैं तुम्हारे लघु भाई भगवान् विष्णु की ध्वजा पर बैठा रहता हूँ और बड़े प्रयत्न से उनकी सेवा शुश्रूषा करता हूँ, बस ? इसी का यह फल है, कि आप मेरा तिरस्कार करते हैं ॥ १३ ॥

कोऽन्यो भारसहो ह्यस्ति कोऽन्योऽस्ति बलवत्तरः ।
मया योऽहं विशिष्टः सन्वहामीमं सबान्धवम् ॥१४॥

हे देवराज ! ऐसा महाबली होकर भी मैं विष्णु के सारे बोझे को उठानेवाला सेवक बन रहा हूँ। मैं इस प्रकार एक विशेष शक्ति रख कर भी परिवार सहित विष्णु का वाहन बना हुआ हूँ ॥१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवज्ञाय तु यत्तेऽहं भोजनादव्यपरोपितः ।
तेन मे गौरवं नष्टं त्वत्तश्चाऽस्माच्च वासव ॥१५॥

अब तुमने अपमान पूर्वक मुझे अपने आहार से हीन कर दिया है । हे वासव ! मेरा सारा गौरव तुमने और भगवान् विष्णुने ही नष्ट किया है ॥ १५ ॥

अदित्यां य इमे जाता बलविक्रमशालिनः ।
त्वमेषां किल सर्वेषां बलेन बलवत्तरः ॥१६॥
सोऽहं पक्षैकदेशेन वहामि त्वां गतक्लमः ।
विमृश त्वं शनैस्तात को न्वत्र बलवानिति ॥१७॥

अदिति के गर्भ से जितने बल और पराक्रम से युक्त देवता उत्पन्न हुए हैं । उनमें सबसे अधिक बलवान् तुम ही हो । मैं विना श्रम के ही तुमको एक पक्ष के भाग से धारण करके ले उड़ता हूँ । हे तात ! अब आप शान्ति से सोचिए, कि हम लोगों में कौन बलवान् हैं ॥ १६—१७ ॥

कण्व उवाच—

स तस्य वचनं श्रुत्वा खगस्योदर्कदारुणम् ।
अक्षोभ्यं क्षोभयंस्तार्क्ष्यमुवाच रथचक्रभृत् ॥१८॥

कण्व ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार गरुड़ पक्षी के दारुण और ओजस्वी वचनों को सुनकर किसी प्रकार नहीं घबराने वाले गरुड़ को व्याकुल सा करते हुए सुदर्शन-चक्र-धारी भगवान् विष्णु बोले ॥ १८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गरुत्मन्मन्यसेऽऽत्मानं बलवन्तं सुदुर्बलम् ।
अलमस्मत्समक्षं ते स्तोतुमात्मानमण्डज ॥१९॥

हे गरुत्मन् ! तुम अत्यन्त दुर्बल होकर भी अपने आप को बड़ा बलवान् मानते हो । हे पक्षिराज ! तुम हमारे सामने डींग मारना बन्द करो ॥ १९ ॥

त्रैलोक्यमपि मे कृत्स्नमशक्तं देहधारणे ।
अहमेवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं वहामि त्वां च धारये ॥२०॥

हे खग ! मेरी देह के वहन करने में तो सारी त्रिलोकी भी असमर्थ है । मैं तो अपने आपको स्वयं धारण करता हूँ और तेरा भी धारण मैंने ही कर रखा है ॥ २० ॥

इमं तावन्ममैकं त्वं बाहुं सव्येतरं वह ।
यद्येनं धारयस्येकं सफलं ते विकत्थितम् ॥२१॥

यदि तू बलवान् है, तो मेरी इस दांयी भुजा को धारण करके दिखा दे । यदि तुमने इस मेरी एक भुजा को धारण कर लिया, तो तुम्हारी सारी प्रशंसा ठीक मानी जावेगी ॥ २१ ॥

ततः स भगवांस्तस्य स्कन्धे बाहुं समासजत् ।
निपपात स भारार्तो विह्वलो नष्टचेतनः ॥२२॥

इतना कह कर भगवान् ने उस गरुड़ के कन्धे पर अपनी भुजा डाल दी । गरुड़ उसके भार से गिर पड़ा और बड़ा व्याकुल होकर अचेत हो गया ॥ २२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यावान्हि भारः कृत्स्नायाः पृथिव्याः पर्वतैः सह ।
एकस्या देहशाखायास्तावद्भारममन्यत ॥२३॥

जितना बोझा पर्वतों के सहित सारी पृथिवी का होता है, उतनाही भगवान् विष्णु की एक भुजा में गरुड़ को मालूम पड़ा ॥२३॥

न त्वेनं पीडयामास बलेन बलवत्तरः ।
ततो हि जीवितं तस्य न व्यनीनशदच्युतः ॥२४॥

महाबली विष्णु ने अपने बल से गरुड़ को पीड़ित नहीं किया, इसीसे भगवान् द्वारा उसके प्राण नष्ट नहीं किये गए ॥ २४ ॥

व्यात्तास्यः स्रस्तकायश्च विचेता विह्वलः खगः ।
मुमोच पत्राणि तदा गुरुभारप्रपीडितः ॥२५॥

भगवान् की भुजा के अत्यन्त भार से पीड़ित गरुड़ पक्षी का मुँह फट सा गया, शरीर शिथिल हो गया और वह व्याकुल होकर अचेत हो गया तथा अपने पक्षों (परों) को छोड़ने लगा ॥ २५ ॥

स विष्णुं शिरसा पक्षी प्रणम्य विनतासुतः ।
विचेता विह्वलो दीनः किञ्चिद्वचनमब्रवीत् ॥२६॥

अब विनता-सुत गरुड़ ने शिर झुकाकर भगवान् विष्णु को प्रणाम किया तथा हीन, कातर और अचेत सा हुआ कुछ वचन कहने लगा ॥ २६ ॥

भगवँल्लोकसारस्य सदृशेन वपुष्मता ।
भुजेन स्वैरमुक्तेन निष्पिष्टोऽस्मि महीतले ॥२७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे भगवन् ! आपने त्रिलोकी के सारे भार से अपना शरीर रच रखा है। उस शरीर के अंगभूत विना ध्यान के मेरे ऊपर रखी हुई भुजा से मुझे पृथिवी पर पीस सा डाला है ॥ २७ ॥

क्षन्तुमर्हसि मे देव विह्वलस्याऽल्पचेतसः ।
बलदाहविदग्धस्य पक्षिणो ध्वजवासिनः ॥२८॥

हे देव ! मैं क्षुद्र बलधारी छोटा सा पक्षी हूँ, मेरा बल नष्ट हो चुका। मुझ दुःखी पर क्षमा करो। मैं तो आपकी ध्वजा पर निवास करने वाला आपका दास हूँ ॥ २८ ॥

न हि ज्ञातं बलं देव मया ते परमं विभो ।
तेन मन्याम्यहं वीर्यमात्मनो न समं परैः ॥२९॥

हे शक्तिशाली देव ! मुझे आपके बल का पता नहीं था। इसीसे मैं यह समझ बैठा था, कि मेरे बराबर अन्य कोई महाबली नहीं है ॥ २९ ॥

ततश्चक्रे स भगवान्प्रसादं वै गरुत्मतः ।
मैवं भूय इति स्नेहात्तदा चैनमुवाच ह ॥३०॥

इसके अनन्तर भगवान् ने गरुड़ के अपराध को क्षमा कर दिया और स्नेह-पूर्वक कहा-कि आगे चलकर कभी ऐसा न करना ॥ ३० ॥

पादांगुष्ठेन चिक्षेप सुमुखं गरुडोरसि ।
ततः प्रभृति राजेन्द्र सह सर्पेण वर्तते ॥३१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् ने अपने पैर के अंगूठे से गरुड़ की छाती पर सुमुख नागराज को फैंक दिया। हे राजेन्द्र ! तभी से गरुड़ उस सर्प के साथ आनन्द से क्रीड़ा करने लगा ॥ ३१ ॥

एवं विष्णुबलाक्रान्तो गर्वनाशमुपागतः ।
गरुडो बलवान्राजन्वैनतेयो महायशाः ॥३२॥

हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् विष्णु के बल से दबाए हुए भगवान् महायशस्वी बलवान् विनता-पुत्र गरुड़ का गर्व नष्ट हो गया ॥ ३२ ॥

कण्व उवाच—

तथा त्वमपि गान्धारे यावत्पाण्डुसुतान्रणे ।
नाऽऽसादयसि तान्वीरांस्तावज्जीवसि पुत्रक ॥३३॥

कण्व बोले—हे गान्धारी पुत्र दुर्योधन ! जब तक तुम भी रण में पाण्डु-पुत्रों के सन्मुख नहीं पहुंचते हो या उन वीरों के साथ युद्ध में नहीं भिड़ते हो, तभी तक जीवित हो ॥ ३३ ॥

भीमः प्रहरतां श्रेष्ठो वायुपुत्रो महाबलः ।
धनञ्जयश्चेन्द्रसुतो न हन्यातां तु कं रणे ॥३४॥

प्रहार करने वाले वीरों में वायु-पुत्र भीमसेन महाबली है तथा इन्द्र-पुत्र अर्जुन भी महा-पराक्रमी है। ये दोनों युद्ध में किसी को वध करने में समर्थ नहीं हैं ॥ ३४ ॥

विष्णुर्वायुश्च शक्रश्च धर्मस्तौ चाऽश्विनावुभौ ।
एते देवास्त्वया केन हेतुना वीक्षितुं क्षमाः ॥३५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विष्णु, वायु, इन्द्र, धर्म और दोनों अश्विनी कुमार, ये सारे देवता पाण्डवों की ओर हैं, फिर तुम उनकी ओर देख भी कैसे सकते हो ॥ ३५ ॥

तदलं ते विरोधेन शमं गच्छ नृपात्मज ।
वासुदेवेन तीर्थेन कुलं रक्षितुमर्हसि ॥३६॥

हे राज-पुत्र ! अब तुम विरोध को छोड़ कर शान्ति धारण करो । ये बसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण तुमको इस विपत्ति के पार ले जाने में समर्थ हैं, इससे तुम अपने कुल की रक्षा करने का प्रयत्न कर लो ॥ ३६ ॥

प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य नारदोऽयं महातपाः ।
माहात्म्यस्य तदा विष्णोः सोऽयं चक्रगदाधरः ॥३७॥

यह महा तपस्वी नारद, भगवान् विष्णु के सारे पराक्रम के प्रत्यक्ष देखने वाले हैं । ये कृष्ण, वही चक्र सुदर्शन धारी भगवान विष्णु हैं ॥ ३७ ॥

वैशम्पायन उवाच—

दुर्योधनस्तु तच्छ्रुत्वा निःश्वसन्भ्रुकुटीमुखः
राधेयमभिसम्प्रेक्ष्य जहास स्वनवत्तदा ॥३८॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इतना सुनकर दुर्योधन ने सांस ली और मुख भौहें क्रोध से टेढ़ी कर ली तथा कर्ण की ओर देख कर बड़े जोर से हंसने लगा ॥ ३८ ॥

कदर्थीकृत्य तद्वाक्यमृषेः कण्वस्य दुर्मतिः ।
ऊरुं गजकराकारं ताडयन्निदमब्रवीत् ॥३९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस दुर्मति दुर्योधन ने महर्षि कण्व के वाक्यों का खण्डन कर दिया और हाथी की सूंड के समान अपनी जंघाओं को फटकार कर यह वचन कहा ॥ ३९ ॥

यथैवेश्वरसृष्टोऽस्मि यद्भावि या च मे गतिः ।
तथा महर्षे वर्तामि किं प्रलापः करिष्यति ॥४०॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे पंचाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

हे महर्षे ! जैसा मुझे ईश्वर ने बनाया है या जो होनहार है तथा जहां तक मेरी पहुँच है, उतना मैं करूंगा, तुम्हारा यह प्रलाप क्या कर सकता है ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में मातलि के वरान्वेषण का एक सौ पांचवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ छः वां अध्याय

जनमेजय उवाच—

अनर्थे जातनिर्बन्धं परार्थे लोभमोहितम् ।
अनार्यकेष्वभिरतं मरणे कृतनिश्चयम् ॥१॥
ज्ञातीनां दुःखकर्तारं बन्धूनां शोकवर्धनम् ।
सुहृदां क्लेशदातारं द्विषतां हर्षवर्धनम् ॥२॥
कथं नैनं विमार्गस्थं वारयन्तीह बान्धवाः ।
सौहृदाद्वा सुहृत्स्निग्धो भगवान्वा पितामहः ॥३॥

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मर्षे ! अनर्थ के दुराग्रही, अन्य के धन के लालची, अनार्य पुरुषों के प्रेमी, मरने तक को उद्यत, अपनी जाति के दुःखों के उत्पादक, बन्धु बान्धवों के शोक को बढाने वाले, मित्रों के क्लेशदाता, शत्रुओं के हर्ष को बढ़ाने वाले, उलटे मार्ग पर जाते हुए राजा दुर्योधन को इसके बन्धु बान्धव, तथा मित्रों से स्नेह करने वाले भगवान् कृष्ण और भीष्मपितामह ने स्नेह-पूर्वक क्यों नहीं रोका ॥ १—३ ॥

वैशम्पायन उवाच—

उक्तं भगवता वाक्यमुक्तं भीष्मेण यत्क्षमम् ।
उक्तं बहुविधं चैव नारदेनाऽपि तच्छ्रुणु ॥४॥

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! भगवान् कृष्ण और भीष्म पितामह ने जो कहने योग्य वचन था, वह अवश्य कहा—इसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतिरिक्त महर्षि नारद ने भी अनेक युक्तियों से दुर्योधन को समझाया, परन्तु वह नहीं माना। इस प्रकरण को मैं तुमको कहता हूँ, तुम ध्यान से सुनो ॥ ४ ॥

नारद उवाच—

दुर्लभो वै सुहृच्छ्रोता दुर्लभश्च हितः सुहृत् ।
तिष्ठते हि सुहृद्यत्र न बन्धुस्तत्र तिष्ठते ॥५॥

नारद ने कहा—हे राजन् ! दुर्योधन ! संसार में मित्र के कटु उपदेश के सुनने वाले बहुत कम पुरुष हैं तथा सच्चा हितकारी मित्र का मिलना भी कठिन है। मित्र कठिन विपत्ति में साथ दे देता है, जिस स्थान पर बान्धव भी नहीं ठहर सकते हैं ॥५॥

श्रोतव्यमपि पश्यामि सुहृदां कुरुनन्दन ।
न कर्तव्यश्च निर्बन्धो निर्बन्धो हि सुदारुणः ॥६॥

हे कुरुनन्दन ! मेरी सम्मति में इस समय तुमको अपने सच्चे सुहृदों की बात सुननी चाहिए। उनके बताये मार्ग के विरुद्ध दुराग्रह करना उचित नहीं है, क्योंकि यह दुराग्रह ही बड़ा दारुण घातक है ॥ ६ ॥

अत्राऽप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
यथा निर्बन्धतः प्राप्तो गालवेन पराजयः ॥७॥

इस स्थान पर मैं तुमको एक पुराना इतिहास सुनाता हूँ, जिसमें गालव मुनि ने हठ करके बड़ा पराजय प्राप्त किया था ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विश्वामित्रं तपस्यन्तं धर्मो जिज्ञासया पुरा ।
अभ्यगच्छत्स्वयं भूत्वा वसिष्ठो भगवानृषिः ॥८॥
सप्तर्षीणामन्यतमं वेषमास्थाय भारत ।
बुभुक्षुः क्षुधितो राजन्नाश्रमं कौशिकस्य तु ॥९॥

हे राजन् ! एक बार विश्वामित्र ऋषि तप कर रहे थे । धर्म ने उनकी परीक्षा करनी चाही । वे भगवान् महर्षि वसिष्ठ का भेष बना कर चल दिए । महर्षि वसिष्ठ । सप्तर्षियों में से एक महर्षि हैं । यह भूख प्यासा बनकर कुशिक वंशोत्पन्न महर्षि विश्वामित्र के पास पहुंचा ॥ ८—९ ॥

विश्वामित्रोऽथ सम्भ्रान्तः श्रपयामास वै चरुम् ।
परमान्नस्य यत्नेन च तं प्रत्यपालयत् ॥१०॥
अन्नं तेन यदा भुक्तमन्यैर्दत्तं तपस्विभिः ।

विश्वामित्र भी महर्षि वसिष्ठ को देखकर बड़ी शीघ्रता से खीर बनाने लगा । विश्वामित्र की इच्छा थी कि मैं उत्तम भोजन से वसिष्ठ की तृप्ति करूं । वसिष्ठ वेष धारी धर्म ने विश्वामित्र की कोई प्रतीक्षा न की और अन्य तपस्वियों से अन्न ग्रहण करके भक्षण कर लिया ॥ १० ॥

अथ गृह्याऽन्नमत्युष्णं विश्वामित्रोऽप्युपागमत् ॥११॥
भुक्तं मे तिष्ठ तावत्त्वामित्युक्त्वा भगवान्ययौ ।

इसके अनन्तर विश्वामित्र भी आ उपस्थित हुए । तो वसिष्ठ रूपधारी धर्म ने कहा, कि हमने भोजन कर लिया, अभी तुम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपना भोजन रखो और ठहरो–इतना कह कर भगवान् धर्म चलते बने ॥ ११ ॥

विश्वामित्रस्ततो राजन्स्थित एव महाद्युतिः ॥१२॥
भक्तं प्रगृह्य मूर्ध्ना वै बाहुभ्यां संशितव्रतः ।

हे राजन् ! धर्म के इतना कहने पर महाकान्तिमान् विश्वामित्र भी वहीं ठहरे रहे। इन व्रतशील मुनि ने उस भोजन को दोनों हाथों में लेकर अपने मस्तक पर रख लिया ॥ १२ ॥

स्थितः स्थाणुरिवाऽभ्याशे निश्चेष्टो मारुताशनः॥१३।
तस्य शुश्रूषणे यत्नमकरोद्गालवो मुनिः ।
गौरवाद्बहुमानाच्च हार्देन प्रियकाम्यया ॥१४॥

विश्वामित्र ऋषि अपने आश्रम के पास वायु का भोजन करते हुए शुष्क काठ की तरह अचल खड़े रहे। इस समय उनकी सेवा बड़े प्रयत्न से गालव मुनि करने लगे। गालव मुनि के हृदय में विश्वामित्र का बड़ा गौरव, मान और प्रेम था। वे महर्षि विश्वामित्र के हित की बहुत ही कामना रखते थे ॥ १३—१४ ॥

अथ वर्षशते पूर्णे धर्मः पुनरुपागमत् ।
वासिष्ठं वेषमास्थाय कौशिकं जोनेप्सया ॥१५॥

इस तरह खड़े २ जब महर्षि विश्वामित्र को सौ वर्ष पूरे हो गये, तो फिर भोजन की इच्छा से वसिष्ठ ऋषि का भेष बनाकर धर्म, विश्वामित्र के पास पहुंचा ॥ १५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स दृष्ट्वा शिरसा भक्तं ध्रियमाणं महर्षिणा ।
तिष्ठता वायुभक्षेण विश्वामित्रेण धीमता ॥१६॥

धर्म ने देखा कि महर्षि विश्वामित्र ने उस भोजन को अपने मस्तक पर रख छोड़ा है और स्वयं वायु भक्षण कर रहा है ॥१६॥

प्रतिगृह्य ततो धर्मस्तथैवोष्णं तथा नवम् ।
भुक्त्वा प्रीतोऽस्मि विप्रर्षे तमुक्त्वा स मुनिर्गतः १७॥

धर्म ने उस भोजन को ग्रहण किया, तो वह वैसा ही उष्ण और वैसा ही नवीन (ताज़ा) था। धर्म ने उस भोजन का भक्षण करके कहा--हे ब्रह्मर्षे ! मैं इस भोजन से तृप्त हो गया हूँ। इतना कह मुनि वेषधारी धर्म चला गया ॥ १७ ॥

क्षत्रभावादपगतो ब्राह्मणत्वमुपागतः ।
धर्मस्य वचनात्प्रीतो विश्वामित्रस्तथाऽभवत् ॥१८॥

धर्म के यह वचन सुन कर विश्वामित्र बड़ा प्रसन्न हुआ, कि मेरा क्षत्रियत्व हट गया और मैं ब्राह्मण पद को प्राप्त हो गया ।१८॥

विश्वामित्रस्तु शिष्यस्य गालवस्य तपस्विनः ।
शुश्रूषया चभक्त्या च प्रीतिमानित्युवाच ह ॥१९॥

विश्वामित्र भी अपने तपस्वी शिष्य गालव की सेवा शुश्रूषा से बड़ा प्रसन्न हुआ। यह अब बड़ी प्रीति के साथ गालव से कहने लगा ॥ १९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुज्ञातो मया वत्स यथेष्टं गच्छ गालव ।
इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं गालवो मुनिसत्तमम् ॥२०॥
प्रीतो मधुरया वाचा विश्वामित्रं महाद्युतिम् ।
दक्षिणाः काः प्रयच्छामि भवते गुरुकर्मणि ॥२१॥
दक्षिणाभिरुपेतं हि कर्म सिद्ध्यति मानद ।
दक्षिणानां हि दाता वै अपवर्गेण युज्यते ॥२२॥
स्वर्गे क्रतुफलं तद्धि दक्षिणा शान्तिरुच्यते ।
किमाहरामि गुर्वर्थं ब्रवीतु भगवानिति ॥२३॥

हे वत्स ! गालव ! मैं तेरी सेवा से सन्तुष्ट हो गया । अब तुमको आज्ञा है, कि तुम कहीं भी जा सकते हो । विश्वामित्र के इतना कहने पर मुनि श्रेष्ठ महर्षि महातेजस्वी विश्वामित्र से गालव मुनि मधुर वाणी के साथ बोला–हे महर्षे ! यदि आपने मुझे घर लौटने की आज्ञा दे दी, तो अब मैं आपको गुरु भेंट में क्या दक्षिणा अर्पण करूं । हे मान्यवर ! जब दक्षिणा दे दी जाती है, तभी यज्ञ की सिद्धि होती है । जो दक्षिणा का देने वाला है, उसी को मोक्ष मिलता है । स्वर्ग में यज्ञ की सफलता भी दक्षिणा दान पर ही निर्भर है । यह दक्षिणा बड़ी शान्ति है । अब आप आज्ञा कीजिए कि आपकी गुरु पूजा के लिए क्या उपस्थित करूं ॥ २०—२३ ॥

जानानस्तेन भगवाञ्जितः शुश्रूषणेन वै ।
विश्वामित्रस्तमसकृद्गच्छ गच्छेत्यचोदयत् ॥२४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् विश्वामित्र सब कुछ समझते थे। उनको गालव ने अपनी सेवा से वश में कर रखा था, इसीलिए महर्षि विश्वामित्र ने बार २ कहा, कि अब तुम जाओ ॥ २४ ॥

असकृद्गच्छगच्छेति विश्वामित्रेण भाषितः ।
किं ददानीति बहुशो गालवः प्रत्यभाषत ॥२५॥

इधर तो बार २ विश्वामित्र कहते रहे, कि तुम अब अपने घर जाओ और उधर से बार २ गालव मुनि आग्रह करते थे, कि मैं क्या गुरु भेंट उपस्थित करूँ ॥ २५ ॥

निर्बन्धतस्तु बहुशो गालवस्य तपस्विनः ।
किञ्चिदागतसंरम्भो विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम् ॥२६॥
एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।
अष्टौ शतानि मे देहि गच्छ गालव मा चिरम् ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते० भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

जब गालव मुनि ने बहुत ही हठ दिखाया, तो विश्वामित्र को कुछ आवेश आ गया और वे यह वचन बोले-हे गालव ! तुम एक रंग रूप के चन्द्रमा के समान उज्ज्वल आठ सौ श्याम वर्ण अश्व शीघ्र मेरी भेंट के लिए ले आओ-देर न करो ॥ २६—२७ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव चरित का एक सौ छः वां अध्याय पूरा हुआ।

——**——

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ सातवां अध्याय

नारद उवाच–

एवमुक्तस्तदा तेन विश्वामित्रेण धीमता ।
नाऽऽस्ते न शेते नाऽऽहारं कुरुते गालवस्तदा ॥१॥

नारद बोले—हे राजन् ! बुद्धिमान् विश्वामित्र के इतने कहने पर गालव मुनि बड़ा चिन्तातुर हुआ और न तो वह कहीं ठहरता, न सोता और न ठीक २ भोजन ही करता था ॥ १ ॥

त्वगस्थिभूतो हरिणश्चिन्ताशोकपरायणः ।
शोचमानोऽतिमात्रं स दह्यमानश्च मन्युना ॥
गालवो दुःखितो दुःखाद्विललाप सुयोधन ॥२॥
कुतः पुष्टानि मित्राणि कुतोऽर्थाः सञ्चयः कुतः ।
हयानां चन्द्रशुभ्राणां शतान्यष्टौ कुतो मम ॥३॥

गालव मुनि चिन्ता और शोक से व्याकुल हुआ, पीला पड़ गया और इसके अस्थि तथा त्वचा मात्र शेष रह गई । यह इस शोक से बहुत ही अधिक चिन्तातुर हो कर जल सा रहा था । हे सुयोधन ! गालव मुनि इस दुःख से बड़ा ही दुःखी होकर विलाप करने लगा, कि मेरे इतने पुष्ट (मालदार) मित्र कहां हैं। मेरे पास धन भी नहीं है और मैं धन इकट्ठा भी कहां से करूंगा। इस प्रकार मुझे चन्द्रमा के समान श्वेत आठ सौ घोड़े कहां से मिलेगें ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुतो मे भोजने श्रद्धा सुखश्रद्धा कुतश्च मे ।
श्रद्धा मे जीवितस्यापि छिन्ना किं जीवितेन मे ॥४॥

अब मुझे भोजन कैसे अच्छा लग सकता है और कैसे मुझे चैन पड़ सकता है। अब तो मैं जीना भी नहीं चाहता हूँ, क्योंकि इस दशा में मेरे जीवन से ही क्या लाभ है ॥ ४ ॥

अहं पारे समुद्रस्य पृथिव्या वा परं परात् ।
गत्वाऽऽत्मानं विमुञ्चामि किं फलं जीवितेन मे ॥५॥

मैं कहीं समुद्र से पार या पृथिवी के अन्तिम भाग पर पहुँच कर अपना जीवन समाप्त कर दूंगा, क्योंकि अब मेरे जीवन का फल ही क्या है ॥ ५ ॥

अधनस्याऽकृतार्थस्य त्यक्तस्य विविधैः फलैः ।
ऋणं धारयमाणस्य कुतः सुखमनीहया ॥६॥

जिसके सारे कार्य निष्फल हो रहे हैं और जो सारे संसार के फल सुखादि से वञ्चित है, ऐसे ऋण में फँसे हुए निर्धन को सुख कहाँ से मिल सकता है। इस समय तो वह कोई चेष्टा भी नहीं कर सकता है ॥ ६ ॥

सुहृदां हि धनं भुक्त्वा कृत्वा प्रणयमीप्सितम् ।
प्रतिकर्तुमशक्तस्य जीवितान्मरणं वरम् ॥७॥

मनुष्य परस्पर प्रीति करके उसमें मित्रों के धन का उपभोग करते हैं, परन्तु जो उसके बदले का उपभोग उपस्थित नहीं कर सकता है, उसके जीने से मरना अच्छा है ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतिश्रुत्य करिष्येति कर्तव्यं तदकुर्वतः ।
मिथ्यावचनदग्धस्य इष्टपूर्तं प्रणश्यति ॥८॥

प्रथम तो यह प्रतिज्ञा कर ले, कि मैं तुम्हारा यह कार्य करूँगा; फिर अपने कर्तव्य को जो नहीं करता है, ऐसे मिथ्या वचन से दग्ध पुरुष के सारे यज्ञ-याग नष्ट हो जाते हैं ॥ ८ ॥

नरूपमनृतस्याऽस्ति नाऽनृतस्याऽस्ति सन्ततिः ।
नाऽनृतस्याऽऽधिपत्यं च कुत एव गतिः शुभा ॥९॥

भ्रष्ट प्रतिज्ञा वाले निर्धन के न तो रूप ही रहता है और न उसके सन्तान उत्तम होती है। उसका किसी पर अधिकार नहीं रह सकता, फिर उसे सद्गति तो मिल ही कैसे सकती है ॥ ९ ॥

कुतः कृतघ्नस्य यशः कुतः स्थानं कुतः सुखम् ।
अश्रद्धेयः कृतघ्नो हि कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥१०॥

कृतघ्न पुरुष को यश, किसी स्थान की प्राप्ति और सुख कैसे मिल सकता है। कृतघ्न के वचन में कोई विश्वास नहीं करता। यही कारण है, कि कृतघ्न का कोई प्रायश्चित नहीं माना है ॥१०॥

न जीवत्यधनः पापः कुतः पापस्य तन्त्रणम् ।
पापो ध्रुवमवाप्नोति विनाशं नाशयन्कृतम् ॥११॥

निर्धन मनुष्य पापी है। यह प्राण धारण करने में भी असमर्थ होता है और न यह कुटुम्ब का भरण पोषण ही कर सकता है। जो निर्धनता के पाप में फँसा है, वह अपने सारे कर्मों का नाश करके स्वयं भी नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोऽहं पापः कृतघ्नश्च कृपणश्चाऽनृतोऽपि च ।
गुरोर्यः कृतकार्यः संस्तत्करोमि न भाषितम् ॥१२॥

मैं सब तरह पापी, कृतघ्न, कृपण और भ्रष्ट प्रतिज्ञ हूं। मैंने गुरु के कार्य सम्पादन करने की प्रतिज्ञा की, परन्तु अपने इस वचन को पूरा नहीं कर सकता हूँ ॥ १२ ॥

सोऽहं प्राणान्विमोक्ष्यामि कृत्वा यत्नमनुत्तमम् ।
अर्थिता न मया काचित्कृतपूर्वा दिवौकसाम् ॥१३॥

इस कार्य के लिए महान् प्रयत्न करने के अनन्तर प्राणों का परित्याग कर दूंगा। मैंने देवों के निमित्त यज्ञ याग सब कुछ किए और उनमें से किसी भी देवता से अभी तक कुछ भी नहीं मांगा है ॥ १३ ॥

मानयन्ति च मां सर्वे त्रिदशा यज्ञसंस्तरे।
अहं तु विबुधश्रेष्ठं देवं त्रिभुवनेश्वरम् ॥
विष्णुं गच्छाम्यहं कृष्णं गतिं गतिमतां वरम् ॥१४॥

भोगा यस्मात्प्रतिष्ठन्ते व्याप्य सर्वान्सुरासुरान् ।
प्रणतो द्रष्टुमिच्छामि कृष्णं योगिनमव्ययम् ॥१५॥

यज्ञ को प्रारम्भ होने पर सारे देवता मेरा बड़ा आदर करते हैं। अब मैं त्रिभुवनपति, देवाधिदेव, रक्षा करने वाले सर्वश्रेष्ठ, पाप नाशक भगवान् विष्णु की शरण को प्राप्त होऊँगा। संसार के सारे भोग, भगवान् विष्णु से ही उद्भूत होते हैं, जिन्होंने सारे सुर और असुरों को व्याप्त कर रखा है। अब मैं सब प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से पूर्ण योगेश्वर कृष्ण की शरण होकर उनके दर्शन करना चाहता हूँ ॥ १४—१५ ॥

एवमुक्ते सखा तस्य गरुडो विनतात्मजः ।
दर्शयामास तं प्राह संहृष्टः प्रियकाम्यया ॥१६॥

गालव मुनि तो इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे, कि उनके मित्र, विनता पुत्र गरुड़ उनके सामने आकर उपस्थित हुए और उसका हित करने की कामना से प्रसन्नता के साथ बोले ॥ १६ ॥

सुहृद्भवान्मम मतः सुहृदां च मतः सुहृत् ।
ईप्सितेनाऽभिलाषेण योक्तव्यो विभवे सति ॥१७॥

आप मेरे तथा मेरे जितने मित्र हैं, उन सबके परम मित्र हो। जब एक मित्र कुछ वैभव रखता हो, तो उसको उचित है, कि वह अपने मित्र की अभिलाषा के पूर्ण करने का प्रयत्न करें ॥ १७ ॥

विभवश्चाऽस्ति मे विप्र वासवावरजो द्विज ।
पूर्वमुक्तस्त्वदर्थं च कृतः कामश्च तेन मे ॥१८॥

हे विप्रर्षे ! मेरा तो यही वैभव है, कि इन्द्र के अनुज भगवान् विष्णु मेरे सहायक हैं। मैंने तुम्हारे कार्य के लिए उनसे प्रथम ही कह दिया है, इस तरह मैंने तुम्हारे कार्य को सिद्ध कर दिया है।

स भवानेतु गच्छाव नयिष्ये त्वां यथासुखम् ।
देशं पारं पृथिव्या वा गच्छ गालव मा चिरम् ॥१९॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे गालव ! अब आप चलें। मैं भी साथ चलता हूँ। मैं तुमको सुखपूर्वक पृथिवी के अन्तिम भाग पर ले चलूँगा। अब तुम चल पड़ो--देर न करो ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव मुनि के चरित का एक सौ सातवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

एक सौ आठवां अध्याय

सुपर्ण उवाच—

अनुशिष्टोऽस्मि देवेन गालव ज्ञानयोनिना ।
ब्रूहि कामं तु कां यामि द्रष्टुं प्रथमतो दिशम् ॥१॥
पूर्वां वां दक्षिणां वाऽहमथवा पश्चिमां दिशम् ।
उत्तरां वा द्विजश्रेष्ठ कुतो गच्छामि गालव ॥२॥

गरुड़ ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! गालव ! ज्ञान-योनि भगवान् विष्णुने मुझे आज्ञा दे दी है। अब यह बताओ, कि तुम पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण इन दिशाओं में से प्रथम कौनसी दिशा में चलना चाहते हो ॥ १-२ ॥

यस्यामुदयते पूर्वं सर्वलोकप्रभावनः ।
सविता यत्र सन्ध्यायां साध्यानां वर्तते तपः ॥३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यस्यां पूर्वं मतिर्याता यया व्याप्तमिदं जगत् ।
चक्षुषी यत्र धर्मस्य यंत्रे वै सुप्रतिष्ठिते ॥४॥
कृतं यतो हुतं हव्यं सर्पते सर्वतो दिशम् ।
एतद् द्वारं द्विजश्रेष्ठ दिवसस्य तथाऽध्वनः ॥५॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! जिस दिशा में सर्व प्रथम सारे लोकों के प्रकाशक सूर्यदेव उदय को प्राप्त होते हैं, जिस दिशा में प्रत्येक सन्धिकाल में साध्य संज्ञक देवता तप करते हैं, जिस दिशा की तरफ मुख करके उपासना करने से बुद्धि की प्राप्ति होती है, जिस बुद्धि से ही संसार के सारे कार्य चलते हैं, जिस दिशा में सुरक्षित यन्त्र में धर्म की आँख लगी रहती हैं या धर्म की प्राप्ति के लिये जहाँ आँखें लगती हैं, जिस दिशा को लक्ष्य करके हवन किया हुआ हव्य सब दिशाओं में फैलता है, यह दिशा ही दिवस और देवयान या पितृयान का मार्ग हैं ॥ ३-५ ॥

अत्र पूर्वं प्रसूता वै दाक्षायण्यः प्रजाः स्त्रियः ।
यस्यां दिशि प्रवृद्धाश्च कश्यपस्याऽऽत्मसम्भवाः ॥६॥
अतो मूलं सुराणां श्रीर्यत्र शक्रोऽभ्यषिच्यत ।
सुरराज्येन विप्रर्षे देवैश्चाऽत्र तपश्चितम् ॥७॥
एतस्मात्कारणाद् ब्रह्मन्पूर्वेत्येषा दिगुच्यते ।
यस्मात्पूर्वतरे काले पूर्वमेवाऽऽवृता सुरैः ॥८॥
अत एव च सर्वेषां पूर्वामाशां प्रचक्षते ।
पूर्वं सर्वाणि कार्याणि दैवानि सुखमीप्सता ॥९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे ब्रह्मर्षे ! जिस दिशा में दक्ष प्रजापति की कन्याओं ने सन्तान उत्पन्न की, जिस पूर्व दिशा में कश्यप की सन्तान ने वृद्धि पाई, जो दिशा देवों के ऐश्वर्य का आधार है, जहाँ पर इन्द्र का देवों के राज्य पर अभिषेक किया गया, देवों ने भी जहाँ पर उग्र तप किया, यही कारण है, कि जिससे यह पूर्व दिशा कहाती है। सब से प्रथम काल में सब से पूर्व देवों ने इस दिशा को व्याप्त किया। इन बातों को लक्ष्य में रख कर ही सब लोग इसको पूर्व दिशा कहते हैं। सुख चाहने वाले को देव सम्बन्धी सब कृत्य इस दिशा में मुख करके ही करने चाहिए ॥ ६-९ ॥

अत्र वेदाङ्गगौ पूर्वं भगवाँल्लोकभावनः ।
अत्रैवोक्ता सवित्राऽऽसीत्सावित्री ब्रह्मवादिषु ॥१०॥
अत्र दत्तानि सूर्येण यजूंषि द्विजसत्तम ।
अत्र लब्धवरः सोमः सुरैः क्रतुषु पीयते ॥११॥
अत्र तृप्ता हुतवहाः स्वां योनिमुपभुञ्जते ।
अत्र पातालमाश्रित्य वरुणः श्रियमाप च ॥१२॥

लोकों के रचयिता भगवान् विष्णु ने सबसे पूर्व यहाँ वेदों का गान किया। यहीं पर सविता देव ने ब्रह्मवादियों को गायत्री का उपदेश दिया। हे द्विज सत्तम! इसी दिशा में सूर्य ने यज्ञ सम्बन्धी मन्त्रों का प्रदान किया। इसी स्थान पर बर प्राप्त करने वाले सोम का देवों ने पान किया है। इस स्थान पर ही तृप्त हुई अग्नि अपनी योनि समिधाओं को भस्म करती रहती है। इस दिशा के मार्ग से वरुण देव ने पाताल में पहुँच कर ऐश्वर्य प्राप्त किया ॥ १०-१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र पूर्वं वसिष्ठस्य पौराणस्य द्विजर्षभ ।
सूतिश्चैव प्रतिष्ठा च निधनं च प्रकाशते ॥१३॥

हे द्विजर्षभ ! इसी पूर्व दिशा में वृद्ध वसिष्ठ की उत्पत्ति स्थिति और मृत्यु बताई जाती है ॥ १३ ॥

ओंकारस्याऽत्र जायन्ते सृतयो दशतीर्दश ।
पिबन्ति मुनयो यत्र हविर्धूमं स्म धूमपाः ॥१४॥

इसी दिशा में प्रणव उपासना के एक सहस्र मार्गों का प्रारम्भ हुआ। इस दिशा में ही धूमपा मुनि हवन के धूम को पीते रहते हैं ॥ १४ ॥

प्रोक्षिता यत्र बहवो वराहाद्या मृगा वने ।
शक्रेण यज्ञभागार्थे दैवतेषु प्रकल्पिताः ॥१५॥

इसी पूर्व दिशा में इन्द्र ने यज्ञ की रचना करके अनेक बनैले वराह आदि जन्तु देवों के लिए समर्पित किये हैं ॥ १५ ॥

अत्राऽऽहिताः कृतघ्नाश्च मानुषाश्चाऽसुराश्च ये ।
उदयंस्तान्हि सर्वान्वै क्रोधाद्धन्ति विभावसुः ॥१६॥

इस दिशा में जो कृतघ्न मनुष्य और असुर स्थित होते हैं, उनको उदय होता हुआ सूर्य क्रोध से नष्ट कर देता है ॥ १६ ॥

एतद् द्वारं त्रिलोकस्य स्वर्गस्य च सुखस्य च ।
एष पूर्वो दिशां भागो विशावोऽत्र यदीच्छसि ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह दिशा, त्रिलोकी, स्वर्ग और सुख का मार्ग है। यह वही पूर्व दिशा है। यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो सर्व प्रथम इसमें प्रविष्ट होवें ॥ १७ ॥

प्रियं कार्यं हि मे तस्य यस्याऽस्मि वचने स्थितः ।
ब्रूहि गालव यास्यामि शृणु चाऽप्यपरां दिशम् ॥१८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

हे गालव ! मैं जिसके वचन से प्रेरित होकर कार्य में प्रवृत्त होता हूँ, उस के कार्य को सब भाँति से पूरा करता हूँ। यदि तुम कहो, तो इसमें चलें अथवा अन्य दिशा का तुम से वर्णन करता हूँ, तुम उस का वृत्तान्त सुनो ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव मुनि के चरित का एक सौ आठवां अध्याय समाप्त हुआ ।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ नौवां अध्याय

सुपर्ण उवाच—

इयं विवस्वता पूर्वं श्रौतेन विधिना किल ।
गुरवे दक्षिणा दत्ता दक्षिणेत्युच्यते च दिक् ॥१॥

गरुड़ बोले—हे गालव! इस दिशा को पूर्वकाल में श्रोत विधि द्वारा अपने गुरु कश्यप को सूर्य ने दक्षिणा में प्रदान की थी, इससे इसका नाम दक्षिण दिशा है ॥ १ ॥

अत्र लोकत्रयस्याऽस्य पितृपक्षः प्रतिष्ठितः ।
अत्रोष्मपाणां देवानां निवासः श्रूयते द्विज ॥२॥

हे द्विज ! इस दिशा में ही तीनों लोकों के पितरों का लोक प्रतिष्ठित है । यहीं पर उष्ण भोजी (पितरों) का निवास सुना जाता है ॥ २ ॥

अत्र विश्वे सदा देवाः पितृभिः सार्धमासते ।
इज्यमानाः स्म लोकेषु सम्प्राप्तास्तुल्यभागताम् ॥३॥

यहीं पर विश्वेदेवा पितरों के साथ आसन पर स्थित हैं । ये संसार के यजन करने पर पितरों के साथ अपना भाग प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

एतद् द्वितीयं देवस्य द्वारमाचक्षते द्विज ।
त्रुटिशो लवशश्चापि गण्यते कालनिश्चयः ॥४॥

हे द्विज ! यही दिशा धर्म का द्वार कहाती है, क्योंकि यहीं पर प्राणियों के काल के क्षण २ का बड़ी सावधानी से निर्णय होता है ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र देवर्षयो नित्यं पितृलोकर्षयस्तथा ।
तथा राजर्षयः सर्वे निवसन्ति गतव्यथाः ॥५॥

इसी दिशा में देवर्षि, पितर लोक के ऋषि तथा राजर्षि सुख-पूर्वक निवास करते हैं ॥ ५ ॥

अत्र धर्मश्च सत्यं च कर्म चाऽत्र निगद्यते ।
गतिरेषा द्विजश्रेष्ठ कर्मणामवसायिनाम् ॥६॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! इसी दिशा में धर्म, सत्य और कर्मों की व्यवस्था होती है । यहीं पर मृतक मनुष्यों के कर्मों का ठीक २ निर्णय होता है ॥ ६ ॥

एषा दिक्सा द्विजश्रेष्ठ यां सर्वः प्रतिपद्यते ।
वृता त्वनवबोधेन सुखं तेन न गम्यते ॥७॥

हे द्विजराज ! यह वही दिशा है, जिसमें प्रत्येक प्राणी को जाना पड़ता है । अज्ञान से आच्छन्न हो कर जो प्राणी इस दिशा में आते हैं, उनको अज्ञान के कारण सुख प्राप्त नहीं होता है ।

नैर्ऋतानां सहस्राणि बहून्यत्र द्विजर्षभ ।
सृष्टानि प्रतिकूलानि द्रष्टव्यान्यकृतात्मभिः ॥८॥

हे द्विजर्षभ ! इस दिशा में ईश्वर ने अनेक भयंकर यमदूतों की रचना की है, जो पापियों के विरुद्ध होते हैं और पापियों के यहां आने पर उनको कष्ट देते हैं ॥ ८ ॥

अत्र मन्दरकुञ्जेषु विप्रर्षिसदनेषु च ।
गायन्ति गाथा गन्धर्वाश्चित्तबुद्धिहरा द्विज ॥९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे द्विज ! इस दिशा के मन्दराचल की कुञ्ज और ब्रह्मर्षियों के आश्रम में चित्त और बुद्धि के खैंचने वाले गन्धर्व, गाथा(मन्त्र) गाते रहते हैं ॥ ९ ॥

अत्र सामानि गाथाभिः श्रुत्वा गीतानि रैवतः ।
गतदारो गतामात्यो गतराज्यो वनं गतः ॥१०॥

यहीं पर गाथा रूप में गाये हुए सामगान को सुन कर दैत्यराज रैवत वन को गया था। जिसकी भार्या मर चुकी थी, राज्य और मन्त्री नष्ट हो गये थे ॥ १० ॥

अत्र सावर्णिना चैव यवक्रीतात्मजेन च ।
मर्यादा स्थापिता ब्रह्मन्यां सूर्यो नाऽतिवर्तते ॥११॥

हे ब्रह्मन् ! यहीं पर सावर्णि मनु और यवक्रीत के पुत्र ने जो मर्यादा स्थापित कर दी, उसको आज तक सूर्य नहीं उलांघता है।

अत्र राक्षसराजेन पौलस्त्येन महात्मना ।
रावणेन तपश्चीर्त्वा सुरेभ्योऽमरता वृता ॥१२॥

यहीं पर पुलस्त्य वंशोत्पन्न, महात्मा रावण ने तप करके देवों से अमर रहने का वर प्राप्त किया था ॥ १२॥

अत्र वृत्तेन वृत्रोऽपि शक्रशत्रुत्वमीयिवान् ।
अत्र सर्वासवः प्राप्ताः पुनर्गच्छन्ति पञ्चधा ॥१३॥

यहीं पर वृत्रासुर वरदान की प्राप्ति करके इन्द्र का शत्रु बन गया था। जब समस्त प्राणियों के प्राण यहां उपस्थित होते हैं, तो वे फिर पञ्चतत्वों को पाकर देह में प्रविष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र दुष्कृतकर्माणो नराः पच्यन्ति गालव ।
अत्र वैतरणी नाम नदी वितरणैर्वृता ॥१४॥

हे गालव ! जो मनुष्य बुरे कर्मों के करने वाले हैं, वे अपने कर्मों के बुरे फलों को भोगते हैं। इधर ही वैतरणी नदी है, उसको पापी मनुष्य घेरे रहते हैं ॥ १४ ॥

अत्र गत्वा सुखस्याऽन्तं दुःखस्याऽन्तं प्रपद्यते ।
अत्र वृत्तो दिनकरः सुरसं क्षरते पयः ॥१५॥
काष्ठां चाऽऽसाद्य वासिष्ठीं हिममुत्सृजते पुनः ।

यहीं आकर मनुष्यों के सुख भोग और दुःख भोग का अन्त होता है। यहीं पर आकर सूर्य उत्पन्न रस उत्तम करने वाले जल की वर्षा करते हैं। जब सूर्य, वसिष्ठ सम्बन्धिनी दिशा को प्राप्त होता है, तो हिम (बर्फ) को पिघलाता है। ॥१५॥

अत्राऽहं गालव पुरा क्षुधार्त्तः परिचिन्तयन् ॥१६॥
लब्धवान्युद्धमानौ द्वौ बृहन्तौ गजकच्छपौ ।

हे गालव ! एक बार यहाँ पर मैं भूखा विचार कर रहा था, कि उस समय मैंने युद्ध करते—दो हाथी और कच्छप देखे थे ॥१६॥

अत्र चक्रधनुर्नाम सूर्याज्जातो महानृषिः ॥१७॥
विदुर्यं कपिलं देवं येनाऽऽर्ताः सगरात्मजाः ।

यहां पर चक्रधनु नामक सूर्य से उत्पन्न हुआ महर्षि निवास करते हैं, जिनको लोग कपिल के नाम से जानते हैं। जिस कपिल से सगर पुत्रों को पीड़ा प्राप्त हुई थी ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र सिद्धाः शिवा नाम ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥१८॥
अधीत्य सकलान्वेदाँल्लेभिरे मोक्षमक्षयम् ।

यहीं पर शिव संज्ञक वेद के पार गामी सिद्ध ब्राह्मणों ने सारे वेदों का पारायण करके अक्षय मोक्ष को प्राप्त किया था ॥१८॥

अत्र भोगवती नाम पुरी वासुकिपालिता ॥१९॥
तक्षकेण च नागेन तथैवैरावतेन च ।

यहीं पर वासुकि से सुरक्षित भोगवती नामक नगरी है। जिस की रक्षा में तक्षक और नागराज ऐरावत भी नियुक्त हैं ॥१९॥

अत्र निर्याणकालेऽपि तमः सम्प्राप्यते महत् ॥२०॥
अभेद्यं भास्करेणाऽपि स्वयं वा कृष्णवर्त्मना ।

जब मनुष्य की मृत्यु होती है, तो वह इस दिशा के अन्धकार में आ फंसता है, जिस अन्धकार को सूर्य या अग्नि भी नष्ट नहीं कर सकता है ॥२०॥

एष तस्याऽपि ते मार्गः परिचार्यस्य गालव ॥
ब्रूहि मे यदि गन्तव्यं प्रतीचीं शृणु चाऽपराम् ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते
नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०९॥

हे गालव ! मुझे तो तेरी सेवा करनी है। यह तेरे चलने का मार्ग है। यदि चलना है-तो कहो-नहीं तो अब पश्चिम दिशा की दशा को सुनो ॥२१॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव मुनि के चरित का एक सौ नौवां अध्याय पूरा हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ दशवां अध्याय

सुपर्ण उवाच—

इयं दिग्दयिता राज्ञो वरुणस्य तु गोपतेः ।
सदा सलिलराजस्य प्रतिष्ठा चाऽऽदिरेव च ॥१॥

गरुड़जी बोले—हे ब्रह्मन् ! यह पश्चिम दिशा जल के स्वामी वरुण राजा की बहुत प्रिय दिशा है । इसी दिशा में वरुण या सूर्य की प्रतिष्ठा है-अर्थात् सूर्य अस्त होता है और यही दिशा वरुण की आदिकारण है ॥१॥

अत्र पश्चादहः सूर्यो विसर्जयति गाः स्वयम् ।
पश्चिमेत्यभिविख्याता दिगियं द्विजसत्तम ॥२॥

इस दिशा में दिन की समाप्ति होने पर सूर्य अपनी किरणों का त्याग कर देता है । हे द्विजसत्तम ! इसीसे तो यह दिशा पश्चिम दिशा कहाती है ॥२॥

यादसामत्र राज्येन सलिलस्य च गुप्तये ।
कश्यपो भगवान्देवो वरुणं स्माऽभ्यषेचयत् ॥३॥

जल जन्तुओं पर राज्य करने और जल की रक्षा के निमित्त भगवान् दिव्यशक्ति कश्यप ने वरुण को यहां के राज्य पर अभिषिक्त किया है ॥३॥

अत्र पीत्वा समस्तान्वै वरुणस्य रसांस्तु षट् ।
जायते तरुणः सोमः शुक्लस्याऽऽदौ तमिस्रहा ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वरुण के अधिकार में रहने वाले छःओं रसों को पीकर शुक्ल पक्ष की आदि में अन्धकार नाशक चन्द्रमा उदय को प्राप्त होते रहते हैं ॥४॥

अत्र पश्चात्कृता दैत्या वायुना संयतास्तदा ।
निःश्वसन्तो महावातैरर्चिताः सुषुपुर्द्विज ॥५॥

हे द्विज ! यहीं पर देवों ने दैत्यों को युद्ध में विमुख किया और वायु ने फिर उनको तय्यार कर दिया । ये महावायु के वेग से श्वास लेते हुए पूजा होने पर सो गए ॥५॥

अत्र सूर्यं प्रणयिनं प्रतिगृह्णाति पर्वतः ।
अस्तो नाम यतः सन्ध्या पश्चिमा प्रतिसर्पति ॥६॥

इस दिशा में अपने प्रेमी सूर्य को अस्ताचल ग्रहण करता है । जब सूर्य अस्त होता है, तो यहीं से सायंकाल की संध्या की प्रवृत्ति जाननी चाहिए ॥६॥

अतो रात्रिश्च निद्रा च निर्गता दिवसक्षये ।
जायते जीवलोकस्य हर्तुमर्धमिवाऽऽयुषः ॥७॥

जब दिन की समाप्ति होती है-तो रात्रि प्रवृत्त होती है, जिस से प्राणी मात्र की आधी आयु को अपहरण करती हुई सी नींद आने लगती है ॥७॥

अत्र देवीं दितिं सुप्तामात्मप्रसवधारिणीम् ।
विगर्भामकरोच्छक्रो यत्र जातो मरुद्गणः ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने गर्भ को धारण करने वाली, निद्रा के वश में हुई, दिति को इन्द्र ने गर्भ रहित कर दिया था, जिससे मरुद्गण की उत्पत्ति हुई ॥८॥

अत्र मूलं हिमवतो मन्दरं याति शाश्वतम् ।
अपि वर्षसहस्रेण न चाऽस्याऽन्तोऽधिगम्यते ॥९॥

इसी दिशा के मध्य से हिमालय की जड़, मन्दर पर्वत तक चली गई हैं। कोई मनुष्य यदि सहस्रों वर्षों तक उसकी खोज करे-तो भी पता नहीं लगा सकता है ॥९॥

अत्र काञ्चनशैलस्य काञ्चनाम्बुरुहस्य च ।
उदधेस्तीरमासाद्य सुरभिः क्षरते पयः ॥१०॥

यहां सुवर्ण का पर्वत और सुनहरी कमल खिले हुए हैं, इसी समुद्र के तट पर खड़ी होकर सुरभि गौ अपना दूध प्रस्रवण करती है ॥१०॥

अत्र मध्ये समुद्रस्य कबन्धः प्रतिदृश्यते ।
स्वर्भानोः सूर्यकल्पस्य सोमसूर्यौ जिघांसतः ॥११॥

यहां समुद्र के मध्य में सूर्य और चन्द्रमा के हनन की इच्छा वाले राहु का कबन्ध जब तब दिखाई देता रहता है ॥११॥

सुवर्णशिरसोऽप्यत्र हरिरोम्णः प्रगायतः ।
अदृश्यस्याऽप्रमेयस्य श्रूयते विपुलो ध्वनिः ॥१२॥

दिखाई नहीं देने वाले, बुद्धि में नहीं आने वाले, नित्य युवा सुवर्ण शिरा मुनि के गान करने के समय यहां अब भी विपुल ध्वनि सुनी जाती है ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र ध्वजवती नाम कुमारी हरिमेधसः ।
आकाशे तिष्ठ तिष्ठेति तस्थौ सूर्यस्य शासनात् ॥१३॥

यहां हरिमेधा मुनि की ध्वजवती नाम की कन्या सूर्य के "ठहर" "ठहर" इस शासन को सुनकर अभी आकाश में ठहरी हुई है॥१३॥

अत्र वायुस्तथा वह्निरापः खं चापि गालव ।
आह्निकं चैव नैशं च दुःखं स्पर्शं विमुञ्चति ॥१४॥

हे गालव ! वहां पर वायु, अग्नि, जल और आकाश, दिन तथा रात्रि के दुःखदायी शीत या उष्ण स्पर्श को छोड़े रहते हैं॥१४॥

अतः प्रभृति सूर्यस्य तिर्यगावर्त्तते गतिः ।
अत्र ज्योतींषि सर्वाणि विशन्त्यादित्यमण्डलम् ॥१५॥

लोक दृष्टि में सूर्य सीधा चलता है, परन्तु वास्तव में सूर्य की गति मेरु की प्रदक्षिणा में तिरछी होती है। यहीं पर सारी ज्योतियां सूर्य में प्रविष्ट होती है ॥१५॥

अष्टाविंशतिरात्रं च चंक्रम्य सह भानुना ।
निष्पतन्ति पुनः सूर्यात्सोमसंयोगयोगतः ॥१६॥

फिर ये सारी ज्योतियां अट्ठाईस दिन तक सूर्य के साथ घूम कर चन्द्रमा के संयोग से फिर सूर्य से निकल पड़ती हैं ॥१६॥

अत्र नित्यं स्रवन्तीनां प्रभवः सागरोदयः ।
अत्र लोकत्रयस्याऽऽपस्तिष्ठन्ति वरुणालये ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी दिशा में नित्य बहने वाली नदियों की उत्पत्ति के कारण समुद्र की स्थिति है। इसी समुद्र में तीनों लोकों के जल की स्थिति है ॥१७॥

अत्र पन्नगराजस्याऽप्यनन्तस्य निवेशनम् ।
अनादिनिधनस्याऽत्र विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ॥१८॥

यहां नागराज शेषजी का निवास स्थान है और यहीं पर आदि और अन्त से हीन, भगवान् विष्णु का सर्वश्रेष्ठ स्थान है ॥१८॥

अत्राऽनलसखस्याऽपि पवनस्य निवेशनम् ।
महर्षेः कश्यपस्याऽत्र मारीचस्य निवेशनम् ॥१९॥

यहीं अग्नि के सखा वायु का स्थान है। यहीं पर मरीचि-पुत्र महर्षि कश्यप का निवास है ॥१९॥

एष ते पश्चिमो मार्गो दिग्द्वारेण प्रकीर्तितः ।
ब्रूहि गालव गच्छावो बुद्धिः का द्विजसत्तम ॥२०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते दशाधिकशततमोऽध्यायः

यह मैंने पश्चिम दिशा का मार्ग संक्षेप में कह दिया है। हे द्विजसत्तम ! गालव ! कहो—तो चलें—तुम्हारी क्या इच्छा है॥२०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव मुनि के चरित का एक सौ दशवां अध्याय पूरा हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकसौ ग्यारहवां अध्याय

सुपर्ण उवाच—

यस्मादुत्तार्यते पापाद्यस्मान्निःश्रेयसोऽश्नुते ।
अस्मादुत्तारणबलादुत्तरेत्युच्यते द्विज ॥१॥

गरुड़ ने कहा—हे द्विज ! जिस दिशा के द्वारा मनुष्य का पापों से उद्धार होता है तथा जिसके द्वारा कल्याण प्राप्ति होती है–इसी उत्तारण की व्युत्पत्ति के बल से इस दिशा का नाम उत्तर दिशा है ॥१॥

उत्तरस्य हिरण्यस्य परिवापश्च गालव ।
मार्गः पश्चिमपूर्वाभ्यां दिग्भ्यां वै मध्यमः स्मृतः ॥२॥

हे गालव ! हिरण्य आदि निधियों का यह उत्तर दिशा स्थान है । पश्चिम और पूर्व के मध्य में होकर इस दिशा से ही स्वर्ग में जाने का मार्ग है ॥२॥

अस्यां दिशि वरिष्ठायामुत्तरायां द्विजर्षभ ।
नाऽसौम्यो नाऽविधेयात्मा नाऽधर्मो वसते जनः ॥३॥

हे द्विजर्षभ ! इस सर्व श्रेष्ठ उत्तर दिशा में सुन्दर स्वभाव से हीन, अविनीत, अधर्मी मनुष्य वास नहीं कर सकता है ॥३॥

अत्र नारायणः कृष्णो जिष्णुश्चैव नरोत्तमः ।
बदर्यामाश्रमपदे तथा ब्रह्मा च शाश्वतः ॥४॥

कृष्ण रूप में अवतार लेने वाले नारायण और अर्जुन के रूप में अवतार धारी नर नामक ऋषि तथा ब्रह्माजी इस दिशा के बदरिकाश्रम में नित्य निवास करते हैं ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र वै हिमवत्पृष्ठे नित्यमास्ते महेश्वरः ।
प्रकृत्या पुरुषः सार्धं युगान्ताग्निसमप्रभः ॥५॥

यहीं हिमालय को शिखर पर अपनी प्रकृति (उमा) के साथ परम पुरुष प्रलय की अग्नि के तुल्य जाज्वल्यमान महेश्वर भी निवास करते हैं ॥५॥

न स दृश्यो मुनिगणैस्तथा देवैः सवासवैः ।
गन्धर्वयक्षसिद्धैर्वा नरनारायणादृते ॥६॥

ये महेश्वर नर नारायण नामक ऋषियों को छोड़ कर इन्द्रादि देव और मुनिगण तथा गन्धर्व, यक्ष सिद्ध आदि किसी को भी दिखाई नहीं देते हैं ॥६॥

अत्र विष्णुः सहस्राक्षः सहस्रचरणोऽव्ययः
सहस्रशिरसः श्रीमानेकः पश्यति मायया ॥७॥

इस हिमालय की शिखर पर सहस्र नेत्र, चरण और शिर धारी भगवान् विष्णु अपनी शक्ति से महेश्वर के दर्शन कर पाते हैं ॥७॥

अत्र राज्येन विप्राणां चन्द्रमाश्चाऽभ्यषिच्यत ।
अत्र गङ्गां महादेवः पतन्तीं गगनाच्च्युताम् ॥८॥
प्रतिगृह्य ददौ लोके मानुषे ब्रह्मवित्तम ।

हे ब्रह्मन् ! इसी स्थान पर ब्राह्मणों के राज्य पर चन्द्रमा का अभिषेक किया गया । यहीं आकाश से पड़ती हुई, गङ्गाजी को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महादेवजी ने अपने शिर पर धारण करके मनुष्य लोक को प्रदान की थी ॥८॥

अत्र देव्या तपस्तप्तं महेश्वरपरीप्सया ॥९॥
अत्र कामश्च रोषश्च शैलश्चोमा च सम्बभुः ।

इस उत्तर दिशा में ही पार्वती ने महेश्वर को वर रूप में प्राप्त करने के लिए घोर तप किया। इसी स्थान में काम, क्रोध, हिमालय पर्वत और पार्वती की उत्पत्ति हुई है ॥९॥

अत्र राक्षसयक्षाणां गन्धर्वाणां च गालव ॥१०॥
आधिपत्येन कैलासे धनदोऽप्यभिषेचितः ।

हे गालव ! राक्षस, यक्ष, गन्धर्वों के आधिपत्य पर इसी कैलाश में कुबेर का अभिषेक किया गया है ॥१०॥

अत्र चैत्ररथं रम्यमत्र वैखानसाश्रमः ॥११॥
अत्र मन्दाकिनी चैव मन्दरश्च द्विजर्षभ ।

हे द्विजर्षभ ! यहीं रमणीक, चैत्ररथ नामक बगीचा, यहीं वैखानस मुनियों का आश्रम, यहीं मन्दाकिनी नदी और यहीं मन्दर पर्वत है ॥११॥

अत्र सौगन्धिकवनं नैर्ऋतैरभिरक्ष्यते ॥१२॥
शाद्वलं कदलीस्कन्धमत्र सन्तानका नगाः ।

यहीं राक्षसों से सुरक्षित सौगन्धिक वन है। यहीं शाद्वल प्रदेश, कदली स्कन्ध (वन) और सन्तानक वृक्ष हैं ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र संयमनित्यानां सिद्धानां स्वैरचारिणाम् ॥१३॥
विमानान्यनुरूपाणि कामभोग्यानि गालव ।

हे गालव ! नित्य संयम शील स्वतन्त्र घूमने वाले सिद्धों के इच्छानुसार उपभोग के योग्य सात २ खण (मंजिल) के महल बने हुए हैं ॥१३॥

अत्र ते ऋषयः सप्त देवी चाऽरुन्धती तथा ॥१४॥
अत्र तिष्ठति वै स्वातिरत्राऽस्या उदयः स्मृतः ।

इसी उत्तर दिशा में सप्तऋषि और अरुन्धती देवी का स्थान है। यहीं स्वाति नक्षत्र की स्थिति और यहीं पर उसका उदय रहता है ॥१४॥

अत्र यज्ञं समासाद्य ध्रुवं स्थाता पितामहः ॥१५॥
ज्योतींषि चन्द्रसूर्यौ च परिवर्तन्ति नित्यशः ।

इसी दिशा में यज्ञ प्रारम्भ किए हुए पितामह ब्रह्मा रहते हैं यहीं चन्द्र, सूर्य आदि ज्योतियां नित्य चक्कर लगाती हैं ॥१५॥

अत्र गङ्गामहाद्वारं रक्षन्ति द्विजसत्तम ॥१६॥
धामा नाम महात्मानो मुनयः सत्यवादिनः ।

हे द्विजसत्तम ! इसी दिशा में गङ्गाद्वार है, जिसकी सत्यवादी महात्मा धाम संज्ञक मुनि रक्षा करते हैं ॥१६॥

न तेषां ज्ञायते मूर्तिर्नाऽऽकृतिर्न तपश्चितम् ॥१७॥
परिवर्तः सहस्राणि कामभोज्यानि गालव ।

हे गालव ! इन मुनियों की मूर्ति, आकृति या सञ्चित तपस्या का कुछ पता नहीं लगता है। इनके गमनागमन के मार्ग तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनेक नीति के उपभोगों का भी सामान्य दृष्टि पुरुष को कुछ ज्ञान नहीं होता ॥१७॥

यथा यथा प्रविशति तस्मात्परतरं नरः ॥१८॥
तथा तथा द्विजश्रेष्ठ प्रविलीयति गालव ।

हे द्विज—श्रेष्ठ गालव ! इस गङ्गाद्वार से आगे ज्यों ही साधारण मनुष्य प्रवेश करता है, त्यों हीं वह वहां विलीन हो जाता है ॥१८॥

नैतत्केनचिदन्येन गतपूर्वं द्विजर्षभ ॥१९॥
ऋते नारायणं देवं नरं वा जिष्णुमव्ययम् ।

हे द्विजर्षभ ! इस स्थान पर भी विजयी नर नारायण ऋषियों को छोड़ कर अभी तक कोई नहीं जा सका है ॥१९॥

अत्र कैलासमित्युक्तं स्थानमैलविलस्य तत् ॥२०॥
अत्र विद्युत्प्रभा नाम जज्ञिरेऽप्सरसो दश ।

यहां पर कैलास नामक एक स्थान है, जो ऐलविल देवता का बताया जाता है। यहीं बिजली के तुल्य दश अप्सरा उत्पन्न हुई हैं ॥२०॥

अत्र विष्णुपदं नाम क्रमता विष्णुना कृतम् ॥२१॥
त्रिलोकविक्रमे ब्रह्मन्नुत्तरां दिशमाश्रितम् ।

हे ब्रह्मन् ! अपने चरण से त्रिलोकी का आक्रमण करते हुए वामनावतार धारी विष्णु ने विष्णु पद स्थान की इस उत्तर दिशा में प्रतिष्ठा की है ॥२१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र राज्ञा मरुत्तेन यज्ञेनेष्टं द्विजोत्तम ॥२२॥
उशीरबीजे विप्रर्षे यत्र जाम्बूनदं सरः ।

हे द्विजोत्तम ! यहीं पर मरुत्त नामक राजा ने यज्ञ किया था। यहां उशीर बीज स्थान है, जहां पर जाम्बूनद नामक सरोवर है ॥ २२ ॥

जीमूतस्याऽत्र विप्रर्षेरुपतस्थे महात्मनः ॥२३॥
साक्षाद्धैमवतः पुण्यो विमलः कनकाकरः ।

यहीं पर महात्मा जीमूत नामक ब्रह्मर्षि के सम्मुख हिमालय की निर्मल और पवित्र सुवर्ण की खान है ॥ २३ ॥

ब्राह्मणेषु च यत्कृत्स्नं स्वं तं कृत्वा धनं महत् ॥२४॥
बभ्रे धनं महर्षिः स जैमूतं तद्धनं ततः ।

इस महर्षि जीमूत ने अपनी विशाल धनराशि को ब्राह्मणों को प्रदान कर दी। इस महर्षि ने अपने नाम पर उस धन का नाम चाहा, जिससे वह धन-राशि जीमूत के नाम पर जैमूत कहाती है ॥ २४ ॥

अत्रनित्यं दिशां पालाः सायंप्रातर्द्विजर्षभ ॥२५॥
कस्य कार्यं किमिति वै परिक्रोशन्ति गालव ।

हे द्विजर्षभ ! गालव ! यहां नित्य प्रातः और सायङ्काल दिशा पालक पुकारते रहते हैं, कि क्या कोई किसी का कार्य शेष है २५।

एवमेषा द्विजश्रेष्ठ गुणैरन्यैर्दिगुत्तरा ॥२६॥
उत्तरेति परिख्याता सर्वकर्मसु चोत्तरा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे द्विजश्रेष्ठ ! इसी प्रकार के अन्य २ उत्कृष्ट गुणों के कारण यह उत्तर दिशा के नाम से प्रसिद्ध हैं, क्योंकि यह सब कार्यों के लिए उत्तम है ॥ २६ ॥

एता विस्तरशस्तात तव सङ्कीर्तिता दिशः ॥२७॥
चतस्रः क्रमयोगेन कामाशां गन्तुमिच्छसि ।

हे तात ! इस प्रकार मैंने तुमको सारी दिशाओं के क्रम से वृतान्त सुना दिए । अब तुम बताओ, कि किस दिशा में चलना चाहते हो ॥ २७ ॥

उद्यतोऽहं द्विजश्रेष्ठ तव दर्शयितुं दिशः ।
पृथिवीं चाऽखिलां ब्रह्म स्तस्मादारोह मां द्विज ॥२८॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं तुमको सारी दिशा तथा समस्त पृथिवी पर घुमाने को उद्यत हूँ । अब तुम मेरे ऊपर चढ़ जाओ ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव चरित का एक सौ ग्यारहवां अध्याय पूरा हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ बारहवां अध्याय

गालव उवाच—

गरुत्मन्भुजगेन्द्रारे सुपर्ण विनतात्मज ।
नय मां तार्क्ष्य पूर्वेण यत्र धर्मस्य चक्षुषी ॥१॥

गालव मुनि बोले—हे विनतात्मज ! गरुत्मन् ! आप बड़े वेगशील और नागराज के शत्रु हैं। हे तार्क्ष्य ! आप मुझे पूर्व दिशा में ले चले, जहाँ धर्म के नेत्र खुले हुए हैं ॥ १ ॥

पूर्वमेतां दिशं गच्छ या पूर्वं परिकीर्तिता ।
देवतानां हि सान्निध्यमत्र कीर्तितवानसि ॥२॥

जिस दिशा का पूर्व नाम है, प्रथम आप उसी दिशामें पधारें। आपने बताया है, कि इस दिशा में देवताओं का निवास है ॥ २ ॥

अत्र सत्यं च धर्मश्च त्वया सम्यक्प्रकीर्तितः ।
इच्छेयं तु समागन्तुं समस्तैर्दैवतैरहम् ।
भूयश्च तान्सुरान्द्रष्टुमिच्छेयमरुणानुज ॥३॥

इसी दिशा में सत्य की प्रतिष्ठा और धर्म की स्थिति है, ऐसा आपने कहा है। अब मैं देवताओं से मिलने की इच्छा करता हूं। हे अरुणानुज ! इन देवों के दर्शन करने की मेरी उत्कट इच्छा हो रही है ॥ ३ ॥

नारद उवाच—

तमाह विनतासूनुरारोहस्वेति वै द्विजम् ।
आरुरोहाऽथ स मुनिर्गरुडं गालवस्तदा ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारद ने कहा—गरुड़ ने मुनि से कहा-हे गालव ! अब तुम मेरी पीठ पर चढ़ जाओ, इतना सुन कर गालव मुनि गरुड़ पर चढ़ गये ॥ ४ ॥

गालव उवाच—

क्रममाणस्य ते रूपं दृश्यते पन्नगाशन ।
भास्करस्येव पूर्वाह्णे सहस्रांशोर्विवस्वतः ॥५॥

हे पन्नगाशन ! जब तुम उड़ कर चल रहे हो, तो तुम्हारा रूप सहस्र किरण धारी, प्रकाश कर्ता, दिन के पूर्वार्धके सूर्य के समान चमक रहा है ॥ ५ ॥

पक्षवातप्रणुन्नानां वृक्षाणामनुगामिनाम् ।
प्रस्थितानामिव समं पश्यामीह गतिं खग ॥६॥

हे पक्षिराज ! तुम्हारे पक्षों की वायु के वेग से छिन्न भिन्न हुए वृक्ष इस तरह साथ उड़ रहे हैं, जैसे ये भी साथ ही चल रहे हों। इस प्रकार मैं तुम्हारी तीव्र गति को देख रहा हूँ ॥ ६ ॥

ससागरवनामुर्वीं सशैलवनकाननाम् ।
आकर्षन्निव चाऽऽभासि पक्षवातेन खेचर ॥७॥

हे पक्षिराज ! आप, अपने पक्षों की पवन से सागर, वन, पर्वत और गहन वनों से युक्त पृथिवी को खींचते हुए से प्रतीत होते हो।

समीननागनक्रं च खमिवाऽऽरोप्यते जलम् ।
वायुना चैव महता पक्षवातेन चाऽनिशम् ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मछली, नाग, मगर आदि जल जन्तुओं के सहित समुद्र के जल को अपने पक्षों की तीव्र पवन से आकाश में स्थित सा कर रहे हो ॥ ८ ॥

तुल्यरूपाननान्मत्स्यांस्तथा तिमितिमिङ्गिलान् ।
नागाश्वनरवक्त्रांश्च पश्याम्युन्मथितानिव ॥९॥

अब समान मुख और आकार धारी मत्स्य तथा अनेक भांति के हाथी, अश्व, मनुष्य के मुख के समान रूप धारी छोटे बड़े जीव-जन्तु उन्मथित से हो रहे हैं ॥ ९ ॥

महार्णवस्य च रवैः श्रोत्रे मे बधिरे कृते ।
न शृणोमि न पश्यामि नाऽऽत्मनो वेद्मि कारणम् ॥

मेरे कानों को महासमुद्र के शब्दों ने बहरे से कर दिए हैं। अब मैं न कुछ सुनता और न देखता हूँ और न अपने गमन के कारण पर विचार कर पाता हूँ ॥ १० ॥

शनैः स तु भवान्यातु ब्रह्मवध्यामनुस्मरन् ।
न दृश्यते रविस्तात न दिशो न च खं खग ॥११॥

हे तात ! पक्षिराज ! यह सोचकर कि कहीं यह ब्राह्मण मर न जावे, आप धीरे २ चलो। अब मुझे सूर्य, दिशा और आकाश कुछ भी दिखाई नहीं देता है ॥ ११ ॥

तम एव तु पश्यामि शरीरं ते न लक्षये ।
मणी व जात्यौ पश्यामि चक्षुषी तेऽहमण्डज ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझे तो अन्धेरा ही अन्धेरा दिखता है, तुम्हारा शरीर तक नहीं दिखाई देता। हे पक्षिराज ! केवल तुम्हारी आंखें उत्तम मणि की तरह चमकती हुई दिखाई दे रही हैं ॥ १२ ॥

शरीरं तु न पश्यामि तव चैवाऽऽत्मनश्च ह ।
पदे पदे तु पश्यामि शरीरादग्निमुत्थितम् ॥१३॥

मैं तुम्हारे और अपने शरीर तक को नहीं देख पाता हूं। मुझे तो पद २ पर शरीर से आग सी निकलती दिखाई दे रही है।१३।

स मे निर्वाप्य सहसा चक्षुषी शाम्यते पुनः ।
तन्नियच्छ महावेगं गमने विनतात्मज ॥१४॥

हे विनतात्मज ! अब तुम अपनी आंखें मींचकर मेरी इस आग को बुझाओ, क्योंकि यह आपकी आंखों की ज्वाला से उत्पन्न हुई है। अब तुम अपने इस तीव्र वेग को शान्त कर दो ॥१४॥

न मे प्रयोजनं किञ्चिद्गमने पन्नगाशन ।
सन्निवर्त महाभाग न वेगं विषहामि ते ॥१५॥

हे पन्नगाशन ! मुझे इस तरह तो पूर्व दिशा में गमन करने की भी इच्छा नहीं रही। हे महाभाग ! अब तुम अपने वेग को रोको—यह मुझसे सहा नहीं जाता है ॥१५॥

गुरवे संश्रुतानीह शतान्यष्टौ हि वाजिनाम् ।
एकतः श्यामकर्णानां शुभ्राणां चन्द्रवर्चसाम् ॥१६॥
तेषां चैवाऽपवर्गाय मार्गं पश्यामि नाऽण्डज ।
ततोऽयं जीवितत्यागे दृष्टो मार्गो मयाऽऽत्मनः ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे पक्षिराज ! मैंने अपने गुरु को दक्षिणा में देने के लिए आठ सौ चन्द्रमा के समान उज्ज्वल श्यामकर्ण अश्व देने की प्रतिज्ञा की है, परन्तु इस ऋण से मुक्त होने का कोई उपाय नहीं देखता हूँ। अब तो मुझे एक ही उपाय दिखाई देता है, कि मैं अपने प्राणों का परित्याग कर दूं ॥१६-१७॥

नैव मेऽस्ति धनं किञ्चिन्न धनेनाऽन्वितः सुहृत् ।
न चाऽर्थेनाऽपि महता शक्यमेतद्व्यपोहितुम् ॥१८॥

न तो मेरे पास धन है और न मेरे मित्रों के पास ही धन की राशि है। इसके अतिरिक्त बहुत सा धन होने पर भी आठ सौ श्यामकर्ण अश्वों का मिलना कठिन है, जिससे इस प्रतिज्ञा का पूरा करना असम्भव सा है ॥१८॥

नारद उवाच—

एवं बहु च दीनं च ब्रुवाणं गालवं तदा ।
प्रत्युवाच व्रजन्नेव प्रहसन्विनतात्मजः ॥१९॥

नारदजी ने कहा—हे महाभाग ! इस प्रकार अनेक भांति से कातर वचन कहते हुए गालव को देखकर विनतापुत्र गरुड़ चलते २ हँस कर बोले-- ॥१९॥

नाऽतिप्रज्ञोऽसि विप्रर्षे योऽऽत्मानं त्यक्तुमिच्छसि ।
न चापि कृत्रिमः कालः कालो हि परमेश्वरः ॥२०॥

हे ब्रह्मर्षे ! तुम अधिक बुद्धिमान् नहीं दिखाई देते हो, जो अपने प्राणों का परित्याग करना चाहते हो। कोई मनुष्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाभारत चित्र संख्या ६४

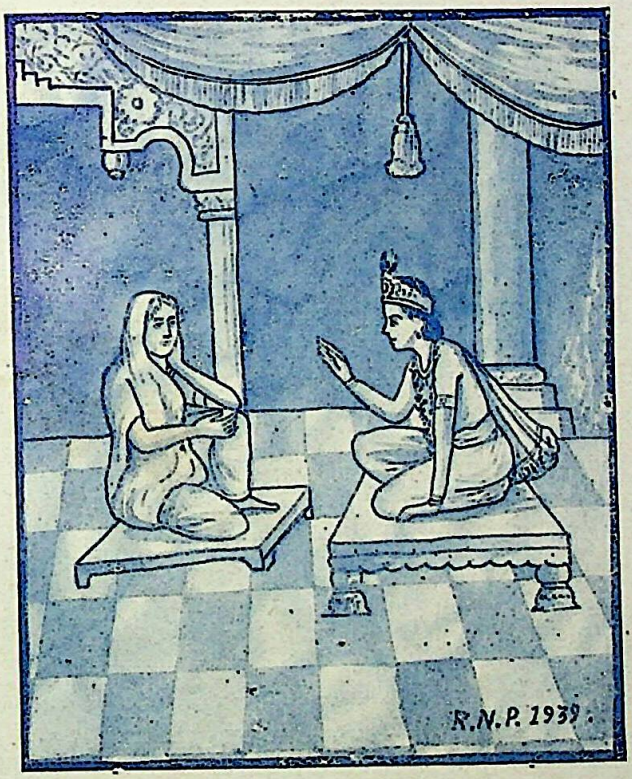

श्रीकृष्ण - कुन्ती सम्वाद

महाभारत उद्योगपर्व अ० ९०।१
पृष्ठ १३७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने अनुसार काल को नहीं बना सकता। यह काल बड़ा शक्तिशाली है ॥२०॥

किमहं पूर्वमेवेह भवता नाऽभिचोदितः ।
उपायोऽत्र महानस्ति येनैतदुपपद्यते ॥२१॥

यदि ऐसा था—तो तुमने मुझे प्रथम ही क्यों नहीं कहा। तुम्हारे कार्य सिद्धि का महान् उपाय है, जिससे यह सब कुछ किया जा रहा है ॥२१॥

तदेष ऋषभो नाम पर्वतः सागरान्तिके ।
अत्र विश्रम्य भुक्त्वा च निवर्तिष्याव गालव ॥२२

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११२॥

इस समुद्र के समीप एक ऋषभ नामक पर्वत है। हे गालव! यहां कुछ विश्राम और भोजन करके निवृत्त हो जावेंगे ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव चरित का एकसौ बारहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ तेरहवाँ अध्याय

नारद उवाच—

ऋषभस्य ततः शृङ्गं निपत्य द्विजपक्षिणौ ।
शाण्डिलीं ब्राह्मणीं तत्र ददृशाते तपोन्विताम् ॥१॥

नारद बोले—हे महाभाग ! वे दोनों गालव मुनि और गरुड़ ऋषभ पर्वत की शिखर पर उतरे, वहां पर उन्होंने एक शाण्डिली नामक तपस्विनी को देखा ॥१॥

अभिवाद्य सुपर्णस्तु गालवश्चाऽभिपूज्य ताम् ।
तया च स्वागतेनोक्तौ विष्टरे सन्निषीदतुः ॥२॥

प्रथम गरुड़ और पीछे गालव मुनि ने उसको प्रणाम किया। शाण्डिली ब्राह्मणी ने इनका सत्कार करके इनको आसन प्रदान किया, जिस पर ये दोनों बैठ गए ॥२॥

सिद्धमन्नं तया दत्तं बलिमन्त्रोपबृंहितम् ।
भुक्त्वा तृप्तावुभौ भूमौ सुप्तौ तावनुमोहितौ ॥३॥

बलि के मन्त्रों से अभिमन्त्रित भोजन, उस तपस्विनी ने उनको खाने के लिए प्रदान किया। वे दोनों उस भोजन से तृप्त होकर भूमि में गाढ़ निद्रा के वश में हो गए ॥३॥

मुहूर्त्तात्प्रतिबुद्धस्तु सुपर्णो गमनेप्सया ।
अथ भ्रष्टतनूजाङ्गमात्मानं ददृशे खगः ॥४॥

थोड़ी ही देर में गमन की अभिलाषा से गरुड़ ने चेत किया-तो देखा, कि उसके सारे पक्ष उखड़े पड़े हैं ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मांसपिण्डोपमोऽभूत्स मुखपादान्वितः खगः ।
गालवस्तं तथा दृष्ट्वा विमनाः पर्यपृच्छत ॥५॥

इस समय गरुड़, मुख-पाद-धारी, मांस पिण्ड सा दिखाई देता था। गालव ने गरुड़ की यह दशा देखकर बड़ी उदासी से पूछा॥५॥

किमिदं भवता प्राप्तमिहाऽऽगमनजं फलम् ।
वासोऽयमिह कालं तु कियन्तं नौ भविष्यति ॥६॥

हे सुपर्ण ! आपको यहां आने का यह क्या फल प्राप्त हुआ और अब हमारा यहां रहना, कितने समय तक होगा ॥६॥

किं नु ते मनसा ध्यातमशुभं धर्मदूषणम् ।
न ह्ययं भवतः स्वल्पो व्यभिचारो भविष्यति ॥७॥

आपने क्या धर्म को दूषित करने वाली बात का विचार किया है ? यह दशा किसी थोड़े बुरे संकल्प का परिणाम नहीं है ॥७॥

सुपर्णोऽथाऽब्रवीद्विप्रं प्रध्यातं वै मया द्विज ।
इमां सिद्धामितो नेतुं तत्र यत्र प्रजापतिः ॥८॥

यत्र देवो महादेवो यत्र विष्णुः सनातनः ।
यत्र धर्मश्च यज्ञश्च तत्रेयं निवसेदिति ॥९॥

गरुड़ ने कहा--हे द्विज ! मैंने कुछ नहीं विचारा। मैंने तो केवल यही सोचा था, कि जहां पर प्रजापति ब्रह्मा, देवाधिदेव महादेव, सनातन पुरुष भगवान् विष्णु तथा यज्ञ और धर्म का निवास है, वहीं पर इस सिद्ध तपस्विनी शाण्डिली ब्राह्मणी को ले चलूं। यह वहीं पर अपना निवास करे ॥८-९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोऽहं भगवतीं याचे प्रणतः प्रियकाम्यया ।
मयैतन्नाम प्रध्यातं मनसा शोचता किल ॥१०॥
तदेवं बहुमानात्ते मयेहाऽनीप्सितं कृतम् ।
सुकृतं दुष्कृतं वा त्वं माहात्म्यात्क्षन्तुमर्हसि ॥११॥

अब मैं इस भगवती तपस्विनी से बड़ी नम्रता के साथ अपनी कामना की सिद्धि के लिए प्रार्थना करूंगा। मैंने जो मनसे यह ध्यान किया था, यह तो तुम्हारे बहुमान के लिए था। यह सारा अपचार इसी कारण से हुआ है। यह मेरा सुकर्म है या दुष्कर्म, तुम अपने गौरव से मेरे इस अपराध को क्षमा करो ॥१०-११॥

सा तौ तदाऽब्रवीत्तुष्टा पंतगेन्द्रद्विजर्षभौ ।
न भेतव्यं सुपर्णोऽसि सुपर्ण त्यज सम्भ्रमम् ॥१२॥

उस समय प्रसन्न होकर वह तपस्विनी शाण्डिली, उस ब्राह्मण श्रेष्ठ, गालव और पक्षिश्रेष्ठ गरुड़ से बोली—सुपर्ण ! तुम अब अपनी चिन्ता छोड़ दो-लो तुम्हारे ये फिर सुन्दर पक्ष उत्पन्न हुए जाते हैं, तुम भय को छोड़ दो ॥१२॥

निन्दिताऽस्मि त्वया वत्स न च निन्दां क्षमाम्यहम्
लोकेभ्यः सपदि भ्रश्येद्यो मां निन्देत पापकृत् ॥१३॥

हे वत्स ! तुम ने मेरी निन्दा की थी और मैं निन्दा को क्षमा नहीं करती हूं। जो पापी मेरी निन्दा करता है, वह शुभ लोकों से तत्काल भ्रष्ट हो जाता है ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हीनयाऽलक्षणैः सर्वैस्तथाऽनिन्दितया मया ।
आचारं प्रतिगृह्णन्त्या सिद्धिः प्राप्तेयमुत्तमा ॥१४॥

मैं सारे अवगुणों से रहित और किसी भी प्रकार की निन्दा के योग्य नहीं हूं । मैंने सदाचार ग्रहण करके ही यह उत्तम सिद्धि प्राप्त की है ॥१४॥

आचारः फलते धर्ममाचारः फलते धनम् ।
आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारोहन्त्यलक्षणम् ॥१५॥

मनुष्य का उत्तम आचरण ही धर्म और धन प्रदान करता है। आचरण से ऐश्वर्य प्राप्त होता है और आचार ही मनुष्य की बुराइयों का नाश कर देता है॥१५॥

तदायुष्मन्खगपते यथेष्टं गम्यतामितः ।
न च ते गर्हणीयाऽहं गर्हितव्याः स्त्रियः क्वचित् १६॥

हे आयुष्मन् ! खगपति ! अब तुम अपनी इच्छा के अनुसार गमन करो और आगे मेरी ही क्या—कहीं पर भी किसी स्त्री की निन्दा न करना ॥१६॥

भवितासि यथा पूर्वं बलवीर्यसमन्वितः ।
बभूवतुस्ततस्तस्य पक्षौ द्रविणवत्तरौ ॥१७॥

अब तुम पूर्व की भांति अपने बल और पराक्रम से युक्त हो जावोगे । इतना कहते ही गरुड़ के उसी तरह शक्ति शाली पक्ष उत्पन्न हो गए ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुज्ञातस्तु शाण्डिल्या यथागतमुपागमत् ।
नैव चाऽऽसादयायास यथारूपांस्तुरङ्गमान् ॥१८॥

जब शाण्डिली ने उनको जाने की अनुज्ञा (इजाजत) दे दी, तो वे अपनी इच्छानुसार चल दिए, परन्तु उन्होंने कहीं भी उस रूप के अश्वों को नहीं देखा ॥ १८ ॥

विश्वामित्रोऽथ तं दृष्ट्वा गालवं चाऽध्वनि स्थितः ।
उवाच वदतां श्रेष्ठो वैनतेयस्य सन्निधौ ॥१९॥

गरुड़ और गालव मुनि को मार्ग में बोलने वालों में श्रेष्ठ विश्वामित्र मुनि मिले। इन्होंने गरुड़ के समक्ष ही गालव मुनि से कहा ॥ १९ ॥

यस्त्वया स्वयमेवाऽर्थः प्रतिज्ञातो मम द्विज ।
तस्य कालोऽपवर्गस्य यथा वा मन्यते भवान् ॥२०॥

हे द्विज ! गालव ! तुमने स्वयं अश्व देने की प्रतिज्ञा की थी। उस ऋण से मुक्त होने के लिए यह अवसर है। कहो–तुम किस समय इसको चुकाओगे ॥ २० ॥

प्रतीक्षिष्याम्यहं कालमेतावन्तं तथा परम् ।
यथा संसिद्ध्यते विप्र समार्गस्तु निशम्यताम् ॥२१॥

मैंने इतने अधिक काल तक तुम्हारी प्रतीक्षा की, परन्तु तुम कुछ नहीं कर सके। हे ब्रह्मन् ! अब जिस तरह तुम्हारे कार्य की सिद्धि हो सकेगी–वह उपाय शीघ्र सोचो ॥ २१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सुपर्णोऽथाऽब्रवीद्दीनं गालवं भृशदुःखितम् ।
प्रत्यक्षं स्वल्विदानीं मे विश्वामित्रो यदुक्तवान् ॥२२॥

यह सुनकर गालव बड़ा दुःखी और कातर हो गया। उससे गरुड़ ने कहा—हे गालव ! विश्वामित्र ने जो कुछ कहा—वह मैंने प्रत्यक्ष ही सुन लिया ॥ २२ ॥

तदागच्छ द्विजश्रेष्ठ मन्त्रयिष्याव गालव ।
नाऽदत्वा गुरवे शक्यं कृत्स्नमर्थं त्वयाऽऽसितुम् ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालव-चरिते त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१३॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! गालव ! अब तुम आओ, इस पर कुछ विचार करें। गुरु को दक्षिणा दिए बिना अब तुम चैन से नहीं बैठ सकोगे ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव चरित्र का एक सौ तेरहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ चौदहवां अध्याय

नारद उवाच—

अथाऽऽह गालवं दीनं सुपर्णः पततां वरः ।
निर्मितं वह्निना भूमौ वायुना शोधितं तथा ।
यस्माद्धिरण्मयं सर्वं हिरण्यं तेन चोच्यते ॥१॥

नारदजी बोले—हे महानुभाव ! पक्षियों में श्रेष्ठ, गरुड़ कातर हुए गालव मुनि से कहने लगा—हे गालव ! प्रथम अग्नि ने भूमि में धन को उत्पन्न और वायु ने उसका शोधन किया अर्थात् वायु के गमन से भूमि से निकाला गया । इस तरह यह सारा हिरण्यम (मोहक) होने से धन हिरण्य कहाता है ॥१॥

धत्ते धारयते चेदमेतस्मात्कारणाद्धनम् ।
तदेतत्त्रिषु लोकेषु धनं तिष्ठति शाश्वतम् ॥२॥

यह सारे संसार को धारण करता है, इस धारण के कारण से भी धन का नाम धन है । संसार के जितने कार्य हैं, वे सब धन से सम्पादित होते हैं, इससे धन की सदा से प्रतिष्ठा है ॥२॥

नित्यं प्रोष्ठपदाभ्यां च शुक्रे धनपतौ तथा ।
मनुष्येभ्यः समादत्ते शुक्रश्चित्तार्जितं धनम् ॥३॥

जब पूर्वा-भाद्र-पद और उत्तरा-भाद्र-पद नक्षत्र शुक्रवार को आते हैं, उस दिन अग्नि, धनपति कुबेर की वृद्धि के लिए मनुष्यों को अपने द्वारा सञ्चित धन का प्रदान करते हैं ॥३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अजैकपादहिर्बुध्न्यै रक्ष्यते धनदेन च ।
एवं न शक्यते लब्धुमलब्धव्यं द्विजर्षभ ।
ऋते च धनमश्वानां नाऽवाप्तिर्विद्यते तव ॥४॥

हे द्विजर्षभ ! अज-एक-पात् और अहिर्बुध्न ये दोनों इन नक्षत्रों के देवता हैं, और कुवेर धन का देवता है। ये सब धन की रक्षा करते हैं। इन सब की प्रार्थना के विना अप्राप्य धन प्राप्त नहीं हो सकता है। यदि तुमको धन की प्राप्ति नहीं हुई—तो फिर श्याम-कर्ण अश्वों की प्राप्ति कैसे हो सकती है ॥४॥

स त्वं याचाऽत्र राजानं कश्चिद्राजर्षिवंराजम्
अपीड्य राजा पौरान्हि यो नौ कुर्यात्कृतार्थिनौ ॥५॥

अब तुम किसी राजा की याचना करो---जो उत्तम क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुआ है। जो राजा अपनी प्रजा को विना पीड़ा दिए धन इकट्ठा करके हमारे मनोरथ को सफल कर दे ॥५॥

अस्ति सोमान्ववाये मे जातः कश्चिन्नृपः सखा ।
अभिगच्छावहे तं वै तस्याऽस्ति विभवो भुवि ॥६॥

हे गालव ! चन्द्रवंश में उत्पन्न एक मेरा मित्र राजा है, हम दोनों अब उसके पास चलें। पृथिवी पर उसके पास बहुत से ऐश्वर्य हैं ॥६॥

ययातिर्नाम राजर्षिर्नाहुषः सत्यविक्रमः ।
स दास्यति मया चोक्तो भवता चाऽर्थितः स्वयम् ॥७॥

इस राजा का नाम ययाति है, जो नहुष का पुत्र और सत्य-पराक्रमी है। उससे मैं जो कहूंगा वह तुमको वही प्रदान कर देगा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

या तुम स्वयं जाकर उससे जो मांगेगे-वह तुमको भी वही प्रदान कर देगा ॥७॥

विभवश्चाऽस्य सुमहानासीद्धनपतेरिव ।
एवं गुरुधनं विद्वन्दानेनैव विशोधय ॥८॥

कुबेर के समान इस राजा के पास भी महान् धन-राशि है। हे विद्वन् ! तुम इस तरह ही दान देकर अपने गुरु के ऋण को चुका डालो ॥८॥

तथा तौ कथयन्तौ च चिन्तयन्तौ च यत्क्षमम् ।
प्रतिष्ठाने नरपतिं ययातिं प्रत्युपस्थितौ ॥९॥

ये दोनों इस तरह बात चीत कर रहे थे या उस समय जो कर सकते थे-उस पर विचार कर रहे थे, कि इन दोनों ने राजा ययाति के पास जाना निश्चित कर लिया और चल पड़े ॥९॥

प्रतिगृह्य च सत्कारैरर्घ्यपाद्यादिकं वरम् ।
पृष्टश्चाऽऽगमने हेतुमुवाच विनतासुतः ॥१०॥

राजा ने सत्कार के साथ इनका अर्घ्य पाद्य आदि किया। जब राजा ने आने का कारण पूछा-तो विनतापुत्र गरुड़ बोले ॥१०॥

अयं मे नाहुष सखा गालवस्तपसो निधिः ।
विश्वामित्रस्य शिष्योऽभूद्वर्षाण्ययुतशो नृप ॥११॥

हे नहुषपुत्र, ययाति ! यह तपोनिधि गालव मेरे सखा हैं। ये दश हज़ार वर्ष तक विश्वामित्र मुनि के शिष्य रह चुके हैं ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोऽयं तेनाऽभ्यनुज्ञात उपकारेप्सया द्विजः ।
तमाह भगवान्काले ददानि गुरुदक्षिणाम् ॥१२॥

जब गुरु ने इनको घर पर लौट जाने की आज्ञा दे दी, तो इन्होंने कृतज्ञता के रूप में गुरु दक्षिणा देनी चाही। यह सोच कर महात्मा गालव मुनि ने कहा—हे गुरो ! मैं आपको दक्षिणा देना चाहता हूं ॥१२॥

असकृत्तेन चोक्तेन किञ्चिदागतमन्युना ।
अयमुक्तः प्रयच्छेति जानता विभवं लघु ॥१३॥
एकतः श्यामकर्णानां शुभ्राणां शुद्धजन्मनाम् ।
अष्टौ शतानि मे देहि हयानां चन्द्रवर्चसाम् ॥१४॥
गुर्वर्थो दीयतामेष यदि गालव मन्यसे ।
इत्येवमाह सक्रोधो विश्वामित्रस्तपोधनः ॥१५॥

जब विश्वामित्र ने दक्षिणा देने का निषेध किया—तो इन्होंने बार २ आग्रह किया–इससे गुरु विश्वामित्र रुष्ट हो गए । वे इसके स्वल्प वैभव को जानते भी थे, तो भी उन्होंने कहा-हे गालव! यदि तुम गुरु दक्षिणा देना चाहते हो—तो शुद्ध वंश में उत्पन्न चन्द्रमा के समान उज्ज्वल दिव्य आठ सौ श्याम-कर्ण अश्व प्रदान करो। यदि तुम को गुरु दक्षिणा देनी है–तो यही देना होगा। क्रोध में भर कर तपोधन विश्वामित्र ने इस प्रकार कहा ॥१३-१५॥

सोऽयं शोकेन महता तप्यमानो द्विजर्षभः ।
अशक्तः प्रतिकर्तुं तद्भवन्तं शरणं गतः ॥१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह द्विजश्रेष्ठ, उस चिन्ता से बड़ा व्याकुल है, यह उस गुरु दक्षिणा के देने में असमर्थ है, इस लिए आपके स्थान पर आया है ॥१६॥

प्रतिगृह्य नरव्याघ्र त्वत्तो भिक्षां गतव्यथः ।
कृत्वाऽपवर्गं गुरवे चरिष्यति महत्तपः ॥१७॥

हे नरव्याघ्र ! आपसे इस भिक्षा को ग्रहण करने पर इनकी सारी व्यथा नष्ट हो जावेगी । इस प्रकार गुरु के ऋण को चुकाकर फिर आनन्द से तप करने का इनका विचार है ॥१७॥

तपसः संविभागेन भवन्तमपि योक्ष्यते ।
स्वेन राजर्षितपसा पूर्णं त्वां पूरयिष्यति ॥१८॥

ये अपने तप के भाग में से आपको भी विभक्त करेगा । यद्यपि आप राजा के योग्य तप से परिपूर्ण हो—तो भी वह आप को और परिपूर्ण करना चाहता है ॥१८॥

यावन्ति रोमाणि हये भवन्तीह नरेश्वर ।
तावन्तो वाजिनो लोकान्प्राप्नुवन्ति महीपते ॥१९॥

हे नरेश्वर ! हे महीपते ! जितने अश्व के शरीर में रोम होते हैं, उतने ही अश्व के दान से प्राप्त होने वाले लोकों को अश्व का दाता प्राप्त करता है ॥ १९ ॥

पात्रं प्रतिग्रहस्याऽयं दातुं पात्रं तथा भवान् ।
शङ्खे क्षीरमिवाऽऽसक्तं भवत्वेतत्तथोपमम् ॥२०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि गालवचरिते चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

यह मुनि, दान के योग्य पात्र हैं और तुम भी दान देने के योग्य सुपात्र हो। तुम दोनों का यह योग शंख में रखे हुए दूध के समान उत्तम प्रतीत होगा॥ २०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव मुनि के चरित्र का एक सौ चौदहवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ पन्द्रहवां अध्याय

नारद उवाच—

एवमुक्तः सुपर्णेन तथ्यं वचनमुत्तमम्।
विमृश्याऽवहितो राजा निश्चित्य च पुनः पुनः ॥१॥

यष्टा क्रतुसहस्राणां दाता दानपतिः प्रभुः।
ययातिः सर्वकाशीश इदं वचनमब्रवीत् ॥२॥

नारद बोले—गरुड़ के इतना कहने पर राजाने बड़ी सावधानी से गरुड़ के सत्य वचन पर बार बार विचार करके निश्चित किया। राजा ययाति ने एक हजार यज्ञ कर रखे थे। यह बड़ा दानी, शक्तिशालि और सारी काशी का स्वामी था। यह गरुड़ से इस प्रकार कहने लगा॥ १—२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दृष्ट्वा प्रियसखं तार्क्ष्यं गालवं च द्विजर्षभम् ।
निदर्शनं च तपसो भिक्षां श्लाघ्यां च कीर्तिताम् ॥३॥
अतीत्य च नृपानन्यानादित्यकुलसम्भवान् ।
मत्सकाशमनुप्राप्तावेतां बुद्धिमवेक्ष्य च ॥४॥
अद्य मे सफलं जन्म तारितं चाऽद्य मे कुलम् ।
अद्याऽयं तारितो देशो मम तार्क्ष्य त्वयाऽनघ ॥५॥

राजा ने अपने प्रिय सखा गरुड़ और द्विज श्रेष्ठ गालव, तप के भाग की प्राप्ति का निर्देश, सब प्रकार से प्रशंसनीय देने योग्य भिक्षा तथा सूर्य वंश में उत्पन्न अन्य राजाओं को त्याग कर अपने पास तक आने का गौरव इत्यादि बातों को देखकर कहा—आज मेरा जन्म सफल हो गया और आज आपने मेरे सारे कुल का उद्धार कर दिया। हे अनघ, तार्क्ष्य ! आपने तो आज मेरे सारे देश को कृत-कृत्य कर दिया है॥ ३—५ ॥

वक्तुमिच्छामि तु सखे यथा जानासि मां पुरा !
न तथा वित्तवानस्मि क्षीणं वित्तं च मे सखे ॥६॥

हे सखे ! मैं तो यही कहना चाहता हूँ, कि जैसा तुम पूर्व से मुझे जानते हो, वैसा धनवान् अब मैं नहीं रहा हूँ। किसी कारण से मेरा बहुत सा धन क्षीण हो गया ॥ ६ ॥

न च शक्तोऽस्मि ते कर्तुं मोघमागमनं खग ।
न चाऽऽशामस्य विप्रर्षेर्वितथीकर्तुमुत्सहे ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे पक्षिराज ! मैं आपका आना भी निष्फल नहीं करना चाहता और न इस ब्रह्मर्षि की आशा का भङ्ग करना चाहता हूँ ॥ ७ ॥

तत्तु दास्यामि यत्कार्यमिदं सम्पादयिष्यति ।
अभिगम्य हताशो हि निवृत्तो दहते कुलम् ॥८॥

मैं उतना धन अवश्य दूंगा, जिससे इनका यह कार्य सिद्ध हो जावेगा । जो सत्पात्र किसी आशा से आवे और वह दाता के प्रमाद वश हताश हो कर लौट जावे, तो इससे वह कुल को दग्ध कर देता है ॥ ८ ॥

नाऽतः परं वैनतेय किञ्चित्पापिष्ठमुच्यते ।
यथाऽऽशानाशनाल्लोके देहि नाऽस्तीति वा वचः ॥९॥

हे वैनतेय ! इससे अधिक कोई पाप कर्म नहीं है, जो सत्पात्र के याचना करने पर लोक में उसकी आशा भङ्ग करके यह कह दिया जावे, कि हमारे पास नहीं है ॥ ९ ॥

हताशो ह्यकृतार्थः सन्हतः सम्भावितो नरः ।
हिनस्ति तस्य पुत्रांश्च पौत्रांश्चाऽकुर्वतो हितम् ॥१०॥

जो उत्तम गुणों से युक्त, प्रतिष्ठित सत्पात्र, आशा भङ्ग होने पर अकृतार्थ हो जाता है, तो वह प्रमादी यजमान का कुछ हित न करके उसके पुत्र और पौत्रों का नाश कर देता है ॥ १० ॥

तस्माच्चतुर्णां वंशानां स्थापयित्री सुता मम ।
इयं सुरसुतप्रख्या सर्वधर्मोपचायिनी ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सदा देवमनुष्याणामसुराणां च गालव ।
कांक्षिता रूपतो बाला सुता मे प्रतिगृह्यताम् ॥१२॥

हे गालव ! यह मेरी पुत्री चारों वंशों (मातृ, पितृ दोनों के मामा के कुलों) की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाली है। यह देव कन्या के समान सुन्दर और सारे धर्मों में बढ़ी हुई है। देव, मनुष्य और असुर भी इसके ग्रहण करने की अभिलाषा करते हैं, क्योंकि यह रूप में बड़ी अद्भुत है। आप मेरी इस कन्या को ग्रहण करें ॥ ११—१२ ॥

अस्याः शुल्कं प्रदास्यन्ति नृपा राज्यमपि ध्रुवम् ।
किं पुनः श्यामकर्णानां हयानां द्वे चतुःशते ॥१३॥

इस कन्या के मूल्य में कोई भी राजा अपना राज्य तक दे सकता है, फिर आठ सौ श्याम कर्ण अश्वों का देना तो कौन कठिन बात है ॥ १३ ॥

स भवान्प्रतिगृह्णातु ममैतां माधवीं सुताम् ।
अहं दौहित्रवान्स्यां वै वर एष मम प्रभो ॥१४॥

अब आप मेरी इस माधवी नामक कन्या को ग्रहण करो। हे प्रभो ! अब मेरी भी यही इच्छा है, कि मेरी कन्या के पुत्र उत्पन्न हों। जिससे मैं दौहित्रवान् कहाऊँ ॥ १४ ॥

प्रतिगृह्य च तां कन्यां गालवः सह पक्षिणा ।
पुनर्द्रक्ष्याव इत्युक्त्वा प्रतस्थे सह कन्यया ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गालव मुनि ने उस कन्या को ग्रहण कर लिया और वह गरुड़ के साथ राजा से बोला—कि हम आपसे फिर मिलेंगे। इतना कह कर वे दोनों कन्या को साथ लेकर चल दिये ॥ १५ ॥

उपलब्धमिदं द्वारमश्वानामिति चाऽण्डजः ।
उक्त्वा गालवमापृच्छ्य जगाम भवनं स्वकम् ॥१६॥

गरुड़ ने गालव मुनि से कहा कि अब तो तुमको अश्वों की प्राप्ति का साधन मिल गया, अब मैं जाता हूँ और इतना कह कर गालवमुनि की इच्छा से अपने भवन को गए ॥ १६ ॥

गते पतगराजे तु गालवः सह कन्यया ।
चिन्तयानः क्षमं दाने राज्ञां वै शुल्कतोऽगमत् ॥१७॥

जब पक्षिराज गरुड़ चला गया, तो गालव मुनि भी कन्या के साथ यह सोचने लगा, कि कौनसा ऐसा राजा है, जो इतना मूल्य इस कन्या का प्रदान करेगा ॥ १७ ॥

सोऽगच्छन्मनसेक्ष्वाकुं हर्यश्वं राजसत्तमम् ।
अयोध्यायां महावीर्यं चतुरङ्गबलान्वितम् ॥१८॥
कोशधान्यबलोपेतं प्रियपौरं द्विजप्रियम् ।
प्रजाभिकामं शाम्यन्तं कुर्वाणं तप उत्तमम् ॥१९॥

इसने अपने मन में राजाओं में श्रेष्ठ, इक्ष्वाकुवंशी राजा हर्यश्व की ओर ध्यान दिया। यह राजा हर्यश्व महाबली, चतुरङ्गिणी सेना से युक्त, कोश, धान्य और बल से समन्वित, प्रजा और ब्राह्मणों का प्रिय था। इसकी राजधानी अयोध्या थी। यह पुत्र की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्ति के लिए बड़ा उत्तम तप कर रहा था। इस समय यह बड़ा ही शान्त प्रतीत होता था॥ १८—१९॥

तमुपागम्य विप्रः स हर्यश्वं गालवोऽब्रवीत्।
कन्येयं मम राजेन्द्र प्रसवैः कुलवर्धिनी ॥२०॥

यह गालव मुनि इस राजा हर्यश्व के पास पहुँचा और कहने लगा। हे राजेन्द्र! मेरे पास यह कन्या है, जो अपने उत्तम प्रसव से कुल को बढ़ाने वाली है॥ २०॥

इयं शुल्केन भार्यार्थं हर्यश्व प्रतिगृह्यताम्।
शुल्कं ते कीर्तयिष्यामि तच्छ्रुत्वा सम्प्रधार्यताम् ।२१।

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालव-
चरिते पंचदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

हे हर्यश्व! आप इसका मूल्य देकर इस कन्या को ग्रहण करो। मैं तुमको इसका मूल्य बता देता हूँ, तुम उसको सुन कर उस पर विचार कर लो॥ २१॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव मुनि के चरित्र का एक सौ पन्द्रहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ सोलहवां अध्याय

नारद उवाच—

हर्यश्वस्त्वब्रवीद्राजा विचिन्त्य बहुधा ततः ।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य प्रजाहेतोर्नृपोत्तमः ॥१॥

नारद जी कहने लगे—हे महाभाग ! राजाओं में श्रेष्ठ राजा हर्यश्व ने इस बात पर अनेक भांति से विचार करके और प्रजा के कारण से दीर्घ श्वास लेकर कहा ॥ १ ॥

उन्नतेषून्नता षट्सु सूक्ष्मा सूक्ष्मेषु सप्तसु ।
गम्भीरा त्रिषु गम्भीरेष्वियं रक्ता च पञ्चसु ॥२॥

आपकी यह कन्या षट् उन्नत स्थानों (हाथ, पांव, कुचा, नितम्ब, चक्षु और स्कन्ध) में उन्नत हैं और सात (केश, दांत, हाथ पाँव की अंगुली, त्वचा तथा उनके पौरवे) सूक्ष्म स्थानों में सूक्ष्म हैं। तीन गम्भीर स्थानों (नाभि, स्वर और मन) में गम्भीर हैं एवं पांच रक्त स्थानों (करतल. नेत्रप्रान्त , तालु, जिह्वा और अधरोष्ठ) में रक्त हैं ॥२॥

बहुदेवासुरालोका बहुगन्धर्वदर्शना ।
बहुलक्षणसम्पन्ना बहुप्रसवधारिणी ॥३॥

यह अनेक देव और असुरों के देखने योग्य है तथा अनेक प्रकार से गन्धर्वों की गान विद्या में कुशल है। यह कन्या उत्तम लक्षणों से सम्पन्न और अनेक सन्तान उत्पन्न करने वाली है ॥३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समर्थेयं जनयितुं चक्रवर्तिनमात्मजम् ।
ब्रूहि शुल्कं द्विजश्रेष्ठ समीक्ष्य विभवं मम ॥४॥

यह कन्या चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ है । हे द्विज-श्रेष्ठ ! आप मेरे वैभव को देखकर इस कन्या का मूल्य बता दो ॥४॥

गालव उवाच—

एकतः श्यामकर्णानां शतान्यष्टौ प्रयच्छ मे ।
हयानां चन्द्रशुभ्राणां देशजानां वपुष्मताम् ॥५॥
ततस्तव भवित्रीयं पुत्राणां जननी शुभा ।
अरणीव हुताशानां योनिरायतलोचना ॥६॥

गालव ने कहा--एक ओर से जिनके श्यामकर्ण हों-ऐसे पुष्ट शरीर धारी, चन्द्र के समान उज्ज्वल श्वेत आठ सौ अश्व मुझे प्रदान करो । इसके अनन्तर यह विशालनेत्रों वाली शुभ कन्या अग्नियों को उत्पन्न करने वाली अरणि की तरह तुम्हारी सन्तान उत्पन्न करने वाली बन सकेगी ५-६॥

नारद उवाच—

एतच्छ्रुत्वा वचो राजा हर्यश्वः काममोहितः ।
उवाच गालवं दीनो राजर्षिर्ऋषिसत्तमम् ॥७॥

नारदजी बोले—कन्या के ग्रहण करने की कामना वाला राजर्षि हर्यश्व, ये वचन सुनकर ऋषिसत्तम गालव मुनि से बड़ी दीनता के साथ बोला ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वे मे शते संनिहिते हयानां यद्विधास्तव ।
एष्टव्याः शतशस्त्वन्ये चरन्ति मम वाजिनः ॥८॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार के श्याम-कर्ण अश्व तो मेरी अश्व-शाला में केवल दो सौ ही हैं। इनसे अन्य भांति के अश्व तो मेरे पास सैंकड़ों की संख्या में विद्यमान हैं ॥८॥

सोऽहमेकमपत्यं वै जनयिष्यामि गालव ।
अस्यामेतं भवान्कामं सम्पादयतु मे वरम् ॥९॥

हे गालव! यदि तुम उचित समझो-तो मैं इस कन्या में एक पुत्र उत्पन्न कर लूं। आप मेरी इस उत्तम कामना को किसी तरह पूरी कर दें ॥९॥

एतच्छ्रुत्वा तु सा कन्या गालवं वाक्यमब्रवीत् ।
मम दत्तो वरः कश्चित्केनचिद् ब्रह्मवादिना ॥१०॥
प्रसूत्यन्ते प्रसूत्यन्ते कन्येव त्वं भविष्यसि ।

यह सुनकर वह कन्या गालव मुनि से बोली, कि पूर्वकाल में किसी ब्रह्मवादी ने मुझे वर दे रखा है, कि तू प्रत्येक संतान उत्पन्न करने के अनन्तर कन्या ही हो जाया करेगी ॥१०॥

स त्वं ददस्व मां राज्ञे प्रतिगृह्य हयोत्तमान् ॥११॥
नृपेभ्यो हि चतुर्भ्यस्ते पूर्णान्यष्टौ शतानि मे ।
भविष्यन्ति तथा पुत्रा मम चत्वार एव च ॥१२॥

अब तुम इससे दो सौ अश्व लेकर मुझे राजा को प्रदान कर दो। इस प्रकार चार राजाओं से तुम्हारे आठ सौ अश्व पूरे हो जावेंगे और मेरे भी इस तरह चार पुत्र उत्पन्न हो सकेंगे ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रियतामुपसंहारो गुर्वर्थं द्विजसत्तम ।
एषा तावन्मम प्रज्ञा यथा वा मन्यसे द्विज ॥१३॥

हे द्विजसत्तम ! इस तरह तुम अपने गुरु की दक्षिणा को चुका सकोगे । हे द्विज ! मेरी तो यही सम्मति है, आगे जैसी आपकी सम्मति हो-वैसा करो ॥१३॥

एवमुक्तस्तु स मुनिः कन्यया गालवस्तदा ।
हर्यश्वं पृथिवीपालमिदं वचनमब्रवीत् ॥१४॥

जब कन्या ने गालव मुनि से इतना कहा-तो गालव मुनि राजा हर्यश्व से इस प्रकार कहने लगा ॥१४॥

इयं कन्या नरश्रेष्ठ हर्यश्व प्रतिगृह्यताम् ।
चतुर्भागेन शुल्कस्य जनयस्वेकमात्मजम् ॥१५॥

हे नरश्रेष्ठ ! हर्यश्व तुम इस कन्या को ग्रहण करो। तुमने इसके मूल्य का चतुर्थांश प्रदान किया है, इससे तुम इस में एक संतान उत्पन्न कर सकते हो ॥१५॥

प्रतिगृह्य सा तां कन्यां गालवं प्रतिनन्द्य च ।
समये देशकाले च लब्धवान्सुतमीप्सितम् ॥१६॥

राजा हर्यश्व ने गालव मुनि का बड़ा सत्कार करके उस कन्या को ग्रहण कर लिया । समय और देशकाल की अनुकूलता आने पर उसने इससे एक उत्तम पुत्र उत्पन्न कर लिया ॥१६॥

ततो वसुमना नाम वसुभ्यो वसुमत्तरः ।
वसुप्रख्यो नरपतिः स बभूव वसुप्रदः ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस पुत्र का नाम वसुमना रखा गया, जो वसुओं से भी अधिक ऐश्वर्यवान् समझा गया। वसुओं के समान यह राजा वसुमना, ब्राह्मणों को अनेक भांति से धन प्रदान किया करता था ॥१७॥

अथ काले पुनर्धीमान्गालवः प्रत्युपस्थितः।
उपसङ्गम्य चोवाच हर्यश्वं प्रीतमानसम् ॥१८॥

समय पूरा होते ही बुद्धिमान् गालव मुनि वहां आ पहुँचे। ये प्रसन्न चित्त राजा हर्यश्व से मिल कर कहने लगे ॥१८॥

जातो नृप सुतस्तेऽयं बालो भास्करसन्निभः।
कालो गन्तुं नरश्रेष्ठ भिक्षार्थमपरं नृपम् ॥१९॥

हे राजन्! आपके सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हो गया है। हे नृपश्रेष्ठ! अब अन्य राजा के पास जाकर मेरे भिक्षा ग्रहण करने का समय है ॥१९॥

हर्यश्वः सत्यवचने स्थितः स्थित्वा च पौरुषे।
दुर्लभत्वाद्धयानां च प्रददौ माधवीं पुनः ॥२०॥

राजा हर्यश्व अपनी सत्य प्रतिज्ञा पर दृढ़ था। इसने माधवी कन्या को मुनि के लिए दे दिया, क्योंकि वह शेष अश्वों को पुरुषार्थ करके भी प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकता था ॥२०॥

माधवी च पुनर्दीप्तां परित्यज्य नृपश्रियम्।
कुमारी कामतो भूत्वा गालवं पृष्ठतोऽन्वयात् ॥२१॥

माधवी कन्या देदीप्यमान राज्यलक्ष्मी को छोड़ कर अपनी इच्छानुसार कुमारी कन्या बन कर गालव मुनि के पीछे २ चलदी ॥२१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्वय्येव तावत्तिष्ठन्तु हया इत्युक्तवान्द्विजः ।
प्रययौ कन्यया सार्धं दिवोदासं प्रजेश्वरम् ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या-
मुद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते
षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११६॥

गालव मुनि ने कहा—अभी ये दो सौ अश्व आपके ही पास रहने दो। अब गालव मुनि उस कन्या को लेकर राजा दिवोदास के पास पहुँचे ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव चरित का एक सौ सोलहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

एक सौ सत्रहवां अध्याय

गालव उवाच—

महावीर्यो महीपालः काशीनामीश्वरः प्रभुः ।
दिवोदास इति ख्यातो भैमसेनिर्नराधिपः ॥१॥
तत्र गच्छावहे भद्रे शनैरागच्छ मा शुचः ।
धार्मिकः संयमे युक्तः सत्ये चैव जनेश्वरः ॥२॥

गालव बोले—हे भद्रे ! महा शक्ति-शाली काशी का राजा भीमसेन का पुत्र, दिवोदास नाम से प्रसिद्ध है। हम लोग, वहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चल रहे हैं, तुम धीरे २ चली आओ, किसी प्रकार की चिन्ता न करो। यह राजा धार्मिक, संयमी और सत्यवादी हैं ॥ १—२ ॥

नारद उवाच—

तमुपागम्य स मुनिर्न्यायतस्तेन सत्कृतः।
गालवः प्रसवस्याऽर्थे तं नृपं प्रत्यचोदयत् ॥३॥

नारद ने कहा—हे महाभाग! जब गालव मुनि राजा के पास पहुंचे। तो उसने इनका नियमानुसार सत्कार किया। अब गालव मुनि ने राजा से इस कन्या में सन्तान उत्पन्न करने की प्रेरणा की।

दिवोदास उवाच—

श्रुतमेतन्मया पूर्वं किमुक्त्वा विस्तरं द्विज।
कांक्षितो हि मयैषोऽर्थः श्रुत्वैव द्विजसत्तम ॥४॥

दिवोदास बोले—हे द्विज! मैंने यह वृतान्त पहले से ही सुन रखा है, अब इसके विस्तार से कहने की आवश्यकता नहीं है। हे द्विजसत्तम! मैंने तो जब से यह समाचार सुना है, तभी से मेरी भी इसमें सन्तान उत्पन्न करने की अभिलाषा उत्पन्न हो गई है ॥४॥

एतच्च मे बहुमतं यदुत्सृज्य नराधिपान्।
मामेवमुपयातोऽसि भावि चैतदसंशयम् ॥५॥

यह मेरा बहुत बड़ा सन्मान है, जो अन्य राजाओं को छोड़ कर तुम मेरे पास उपस्थित हुए हो। आपकी आज्ञा अवश्य पूरी की जावेगी ॥ ५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स एव विभवोऽस्माकमश्वानामपि गालव ।
अहमप्येकमेवाऽस्यां जनयिष्यामि पार्थिवम् ॥६॥

हे गालव ! मेरे पास भी हर्यश्व के तुल्य ही ऐश्वर्य है अर्थात् दो सौ ही श्याम-कर्ण घोड़े हैं । मैं भी इस कन्या में एक पुत्र उत्पन्न कर लूँगा ॥ ६ ॥

तथेत्युक्त्वा द्विजश्रेष्ठः प्रादात्कन्यां महीपतेः ।
विधिपूर्वं च तां राजा कन्यां प्रतिगृहीतवान् ॥७॥

गालव मुनि ने उसका कथन स्वीकार करके उस कन्या को विवाह विधि के साथ प्रदान कर दिया । राजा ने भी उस कन्या को विधि पूर्वक ग्रहण किया ॥ ७ ॥

रेमे स तस्यां राजर्षिः प्रभावत्यां यथा रविः ।
स्वाहायां च यथा वह्निर्यथा शच्यां च वासवः ॥८॥
यथा चन्द्रश्च रोहिण्यां यथा धूमोर्णया यमः ।
वरुणश्च यथा गौर्यां यथा चर्ष्यां धनेश्वरः ॥९॥
यथा नारायणो लक्ष्म्यां जाह्नव्यां च यथोदधिः ।
यथा रुद्रश्च रुद्राण्यां यथा वेद्यां पितामहः ॥१०॥
अदृश्यन्त्यां च वासिष्ठो वसिष्ठश्चाऽक्षमालया ।
च्यवनश्च सुकन्यायां पुलस्त्यः सन्ध्यया यथा ॥११॥
अगस्त्यश्चाऽपि वैदर्भ्यां सावित्र्यां सत्यवान्यथा ।
यथा भृगुः पुलोमायामदित्यां कश्यपो यथा ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रेणुकायां यथाऽऽर्चीको हैमवत्यां च कौशिकः ।
बृहस्पतिश्च तारायां शुक्रश्च शतपर्वणा ॥१३॥
यथा भूम्यां भूमिपतिरुर्वश्यां च पुरूरवाः ।
ऋचीकः सत्यवत्यां च सरस्वत्यां यथा मनुः ॥१४॥
शकुन्तलायां दुष्यन्तो धृत्यां धर्मश्च शाश्वतः ।
दमयन्त्यां नलश्चैव सत्यवत्यां च नारदः ॥१५॥
जरत्कारुर्जरत्कार्वां पुलस्त्यश्च प्रतीच्यया ।
मेनकायां यथोर्णायुस्तुम्बुरुश्चैव रम्भया ॥१६॥
वासुकिः शतशीर्षायां कुमार्यां च धनञ्जयः ।
वैदेह्यां च यथा रामो रुक्मिण्यां च जनार्दनः ॥१७॥

हे राजन् ! जैसे अपनी भार्या प्रभावती से सूर्य, स्वाहा से अग्नि, शची से इन्द्र, रोहिणी से चन्द्र, धूमोर्णा से यम, गौरी से वरुण, ऋद्धि से कुबेर, लक्ष्मी से नारायण, गङ्गा से समुद्र, रुद्राणी से रुद्र, वेदी से पितामह, अदृश्यन्ती से वशिष्ठ पुत्र शक्ति, अक्षमाला से वशिष्ठ, सुकन्या से च्यवन, सन्ध्या से पुलस्त्य, वैदर्भी से अगस्त्य, सावित्री से सत्यवान्, पुलोमा से भृगु, अदिति से कश्यप, रेणुका से जमदग्नि, हैमवती से कौशिक, (विश्वामित्र) तारा से बृहस्पति, शतपर्वा से शुक्र, भूमि से भूमिपति, उर्वशी से पुरूरवा, सत्यवती से ऋचीक, सरस्वती से मनु, शकुन्तला से दुष्यन्त, धृति से धर्म, दमयन्ती से नल, सत्यवती से नारद, जरत्कारु स्त्री से जरत्कारु पति, प्रतीच्या से पुलस्त्य, मेनका से उर्णायु,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रम्भा से तुम्बरु, शतशीर्षा से वासुकि, कुमारी (सुभद्रा) से अर्जुन, जानकी से राम, रुक्मणि से कृष्ण ने जिस तरह रमण किया, उसी तरह राजा दिवोदास ने इस कन्या के साथ उपभोग किया ॥ ८—१७ ॥

तथा तु रममाणस्य दिवोदासस्य भूपतेः ।
माधवी जनयामास पुत्रमेकं प्रतर्दनम् ॥१८॥

इस प्रकार रमण करते २ माधवी कन्या ने राजा दिवोदास के लिए प्रतर्दन नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १८ ॥

अथाऽऽजगाम भगवान्दिवोदासं स गालवः ।
समये समनुप्राप्ते वचनं चेदमब्रवीत् ॥१९॥

समय आने पर राजा दिवोदास के पास गालव मुनि पहुँचा और यह वचन बोला ॥ १९ ॥

निर्यातयतु मे कन्यां भवांस्तिष्ठन्तु वाजिनः ।
यावदन्यत्र गच्छामि शुल्कार्थं पृथिवीपते ॥२०॥

हे पृथिवीपते ! आप मुझे राजकन्या को समर्पण करें और अश्वों को अभी अपने पास रखें। अभी मैं अन्य अश्वों के लिए अन्यत्र जा रहा हूँ ॥ २० ॥

दिवोदासोऽथ धर्मात्मा समये गालवस्य ताम् ।
कन्यां निर्यातयामास स्थितः सत्ये महीपतिः ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा दिवोदास भी धर्मात्मा था, इसने भी गालव मुनि को समय पर उस कन्या को लौटा दिया, क्योंकि राजा सत्यपालक था ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव मुनि के चरित का एक सौ सत्रहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

एक सौ अट्ठारहवां अध्याय

नारद उवाच—

तथैव तां श्रियं त्यक्त्वा कन्या भूत्वा यशस्विनी ।
माधवी गालवं विप्रमभ्ययात्सत्यसङ्गरा ॥१॥

नारद ने कहा—हे महाभाग ! अब वह यशस्विनी माधवी, कन्या होकर फिर गालव मुनि के पीछे २ चल दी। यह सत्य-प्रतिज्ञा से बद्ध थी, इससे इसको राज्यलक्ष्मी के छोड़ने में कुछ भी क्लेश नहीं हुआ ॥१॥

गालवो विमृशन्नेव स्वकार्यगतमानसः ।
जगाम भोजनगरं द्रष्टुमौशीनरं नृपम् ॥२॥

गालव मुनि को अपने कार्य के सिद्ध करने की बहुत ही उत्कण्ठा हो रही थी। उसने विचार करके राजा औशीनर से मिलने के लिए भोज नगर की ओर गमन किया ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तमुवाचाऽथ गत्वा स नृपतिं सत्यविक्रमम् ।
इयं कन्या सुतौ द्वौ ते जनयिष्यति पार्थिवौ ॥३॥
अस्यां भवानवाप्तार्थो भविता प्रेत्य चेह च ।
सोमार्कप्रतिसङ्काशौ जनयित्वा सुतौ नृप ॥४॥

गालव मुनि सत्य पराक्रमी राजा औशीनर के पास पहुंचकर बोला, कि यह कन्या आपके लिए दो पुत्र उत्पन्न कर देगी। हे राजन्! चन्द्र और सूर्य के तुल्य दो पुत्र इस कन्या से उत्पन्न करके आप इस लोक और परलोक में कृतार्थ हो जावोगे ॥३-४॥

शुल्कं तु सर्वधर्मज्ञ हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।
एकतः श्यामकर्णानां देयं मह्यं चतुःशतम् ॥५॥
गुर्वर्थोऽयं समारम्भो न हयैः कृत्यमस्ति मे ।
यदि शक्यं महाराज क्रियतामविचारितम् ॥६॥

हे सब धर्मों के जानने वाले! राजन्! इसके मूल्य में आपको मुझे चन्द्र के समान उज्ज्वल चार सौ अश्व देने पड़ेंगे। मैंने यह सारा झगड़ा गुरु दक्षिणा के लिए कर रखा है-मुझे तो अश्वों से कोई प्रयोजन नहीं है। हे महाराज! यदि आप इस कार्य को पूरा कर सकते हैं, तो शीघ्र कीजिए-अधिक विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥५-६॥

अनपत्योऽसि राजर्षे पुत्रौ जनय पार्थिव ।
पितॄन्पुत्रप्लवेन त्वमात्मानं चैव तारय ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजर्षे ! आपके भी कोई सन्तान नहीं है। आप इसमें दो सन्तान उत्पन्न कर लो। इस प्रकार पुत्र रूपी नौका में अपने पितर और अपने आपको इस संसार समुद्र से पार कर लो ॥७॥

न पुत्रफलभोक्ता हि राजर्षे पात्यते दिवः ।
न याति नरकं घोरं यथा गच्छन्त्यनात्मजाः ॥८॥

हे राजर्षे ! जिनके कुल में पुण्य से पुत्र उत्पन्न हो जाता है, वे स्वर्ग से नहीं गिरते हैं और न वे इस प्रकार घोर नरक में गिरते हैं, जैसे पुत्र-हीनों का पतन होता है ॥८॥

एतच्चाऽन्यच्च विविधं श्रुत्वा गालवभाषितम् ।
उशीनरः प्रतिवचो ददौ तस्य नराधिपः ॥९॥

इस तरह गालव मुनि से कही हुई अनेक प्रकार की बातें सुन कर राजा उशीनर ने मुनि से कहा ॥९॥

श्रुतवानस्मि ते वाक्यं यथा वदसि गालव ।
विधिस्तु बलवान्ब्रह्मन्प्रवणं हि मनो मम ॥१०॥
शते द्वे तु ममाऽश्वानामीदृशानां द्विजोत्तम ।
इतरेषां सहस्राणि सुबहूनि चरन्ति मे ॥११॥
अहमप्येकमेवाऽस्यां जनयिष्यामि गालव ।
पुत्रं द्विज गतं मार्गं गमिष्यामि परैरहम् ॥१२॥

हे गालव ! जो वचन आपने कहे, वे मैंने सुन लिए हैं, हे ब्रह्मन् ! मेरा भी मन इसमें संतान उत्पन्न करने को चाहता है, परन्तु विधाता बलवान् है। हे द्विजोत्तम ! मेरे पास भी तो इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार के श्यामकर्ण अश्व दो सौ ही हैं। अन्य भांति के अश्व तो मेरे पास सहस्रों की संख्या में है। हे गालव! मैं भी इस कन्या में एक ही पुत्र उत्पन्न कर सकता हूँ। जिस प्रकार अन्य राजाओं ने किया—मैं भी उसी मार्ग का अवलम्बन कर सकता हूँ ॥१०-१२॥

मूल्येनाऽपि समं कुर्यां तवाऽहं द्विजसत्तम ।
पौरजानपदार्थं तु ममाऽर्थो नाऽऽत्मभोगतः ॥१३॥

हे द्विजसत्तम! मैं भी तुमको उनके समान ही मूल्य देने में समर्थ हूं। मेरा धन मेरे पुर और देशवासी प्रजा की उन्नति के लिए ही है। मैं इस धन में से अपने भोगों में खर्च नहीं करता हूँ ॥१३॥

कामतो हि धनं राजा पारक्यं यः प्रयच्छति ।
न स धर्मेण धर्मात्मन्युज्यते यशसा न च ॥१४॥

हे धर्मात्मन्! जो राजा, अपनी प्रजा के धन को अपने उपभोगों में व्यय करता है, वह राजा धर्म और यश से कभी युक्त नहीं हो सकता है ॥१४॥

सोऽहं प्रतिग्रहीष्यामि ददात्वेतां भवान्मम ।
कुमारीं देवगर्भाभामेकपुत्र भवाय मे ॥१५॥

अब मैं भी उस देवकन्या के समान सुन्दर इस कन्या को एक पुत्र उत्पन्न करने के लिए उसी मूल्य में ग्रहण कर सकता हूँ ॥ १५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा तु बहुधा कन्यामुक्तवन्तं नराधिपम् ।
उशीनरं द्विजश्रेष्ठो गालवः प्रत्यपूजयत् ॥१६॥
उशीनरं प्रतिग्राह्य गालवः प्रययौ वनम् ।

कन्या के विषय में अनेक भांति से बातचीत करते हुए, उशीनर राजा की गालव मुनि ने बड़ी प्रशंसा की और उस कन्या को राजा उशीनर को सौंपकर आप वन में चले गये ॥ १६ ॥

रेमे स तां समासाद्य कृतपुण्य इव श्रियम् ॥१७॥
कन्दरेषु च शैलानां नदीनां निर्झरेषु च ।
उद्यानेषु विचित्रेषु वनेषूपवनेषु च ॥१८॥
हर्म्येषु रमणीयेषु प्रासादशिखरेषु च ।
वातायनविमानेषु तथा गर्भगृहेषु च ॥१९॥

राजा उशीनर जैसे पुण्यात्मा लक्ष्मी का उपभोग करते हैं, वैसे ही उस कन्या के साथ पर्वतों की गुफा, नदियों के झरने, विचित्र २ बाग, बगीचे, उपवन, सुन्दर २ भवन, महलों के शिखर, झरोखों से युक्त सात मंजिल वाले भवन, गर्भगृह (तहखाने) आदि स्थानों में रमण करने लगा ॥ १७—१९ ॥

ततोस्य समये जज्ञे पुत्रो बालरविप्रभः ।
शिबिर्नाम्नाऽभिविख्यातो यः स पार्थिवसत्तमः ॥२०॥

समय के ऊपर इस राजा के सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ । इस पुत्र का नाम शिबि रखा गया । जो राजा बड़ा ही प्रसिद्ध हुआ है ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपस्थाय स तं विप्रो गालवः प्रतिगृह्य च।
कन्यां प्रयातस्तां राजन्दृष्ट्वान्विनतात्मजम् ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१८॥

हे राजन्! अब गालव मुनि इस राजा उशीनर के पास भी पहुंचा और वहां से उस राजकन्या को लेकर वह विनतात्मज गरुड़ से मिलने के लिए चल दिया ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव चरित का एक सौ अट्ठारहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

एक सौ उन्नीसवां अध्याय

नारद उवाच—

गालवं वैनतेयोऽथ प्रहसन्निदमब्रवीत्।
दिष्ट्या कृतार्थं पश्यामि भवन्तमिह वै द्विज ॥१॥

नारदजी बोले—हे द्विज! विनता-पुत्र गरुड़ ने हंसते २ गालव मुनि से कहा, कि बड़े आनन्द की बात है, जो मैं तुमको अपने कार्य में सफल देख रहा हूँ ॥१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गालवस्तु वचः श्रुत्वा वैनतेयेन भाषितम् ।
चतुर्भागावशिष्टं तदाचख्यौ कार्यमस्य हि ॥२॥

गालव मुनि ने गरुड़ के वचन सुनकर अपने कार्य में दो सौ अश्वों का अभी तक मिलना रूप चतुर्थ भाग की सफलता का उसको बोध कराया ॥ २ ॥

सुपर्णस्त्वब्रवीदेनं गालवं वदतां वरः ।
प्रयत्नस्ते न कर्तव्यो नैष सम्पत्स्यते तव ॥३॥

बोलने वालों में कुशल गरुड़ अब गालव मुनि से बोला—हे गालव ! अब तुम प्रयत्न न करो, यह शेष भाग अब पूरा नहीं हो सकता है ॥ ३ ॥

पुरा हि कान्यकुब्जे वै गाधेः सत्यवतीं सुताम् ।
भार्यार्थेऽवरयत्कन्यामृचीकस्तेन भाषितः ॥४॥
एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।
भगवन्दीयतां मह्यं सहस्रमिति गालव ॥५॥

पूर्वकाल में कान्यकुब्ज देश के अधिपति राजा गाधि से ऋचीक मुनि ने उसकी पुत्री सत्यवती को अपनी भार्या बनाने के लिए मांगा था। हे गालव ! तब गाधि ने कहा—हे भगवन् ! मुझे चन्द्रमा के समान उज्ज्वल एक ओर से श्याम कर्ण एक हजार अश्व प्रदान करो ॥ ४—५ ॥

ऋचीकस्तु तथेत्युक्त्वा वरुणस्याऽऽलयं गतः ।
अश्वतीर्थे हयाँल्लब्ध्वा दत्तवान्पार्थवाय वै ॥६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऋचीक ने कहा—अच्छी बात है और वह इतना कह कर वरुण लोक को चला गया। वहां अश्वतीर्थ पर अश्वों को प्राप्त करके राजा गाधि को अर्पण कर दिये ।॥ ६ ॥

इष्ट्वा ते पुण्डरीकेण दत्ता राज्ञा द्विजातिषु ।
तेभ्यो द्वे द्वे शते क्रीत्वा प्राप्ते तैः पार्थिवैस्तदा ॥७॥

राजा गाधि ने पुण्डरीक यज्ञ किया, उसमें राजा ने ब्राह्मणों को छः सौ घोड़े दक्षिणा में दे दिए। उन ब्राह्मणों से इन तीन राजाओं ने दो २ सौ अश्व मोल ले लिए। इन ब्राह्मणों से ही इन राजाओं को ये अश्व मिले थे ॥ ७ ॥

अपराण्यपि चत्वारि शतानि द्विजसत्तम ।
नीयमानानि सन्तारे हृतान्यासन्वितस्तया ॥८॥

हे द्विजसत्तम ! इनसे बचे हुए अन्य चार सौ अश्व थे, उनको मार्ग में ले जाते हुए किसी झुण्ड ने छीन लिया ॥८॥

एवं न शक्यमप्राप्यं प्राप्तुं गालव कर्हिचित् ।
इमामश्वशताभ्यां वै द्वाभ्यां तस्मै निवेदय ॥९॥
विश्वामित्राय धर्मात्मन्षड्भिरश्वशतैः सह ।
ततोऽसि गतसम्मोहः कृतकृत्यो द्विजोत्तम ॥१०॥

हे गालव ! इस तरह अब कभी भी अप्राप्य वस्तु नहीं मिल सकती है। हे धर्मात्मन् ! अब तुम छः सौ अश्वों के साथ इसको ही विश्वामित्र को सौंप दो। दो सौ अश्व इसके मूल्य में मान लिए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जावेगे। हे द्विजसत्तम ! इस तरह तुम इस चिन्ता से छुटकारा पाकर कृतकृत्य हो जावोगे ॥ ९—१० ॥

गालवस्तं तथेत्युक्त्वा सुपर्णसहितस्ततः ।
आदायाऽश्वांश्च कन्यां च विश्वामित्रमुपागमत् ॥११

गालव ने इस बात को मान लिया और वह सुपर्ण (गरुड़) को साथ लेकर विश्वामित्र के पास पहुँचा। इस समय इसके साथ अश्व और कन्या भी थी ॥ ११ ॥

अश्वानां कांक्षितार्थानां षडिमानि शतानि वै ।
शतद्वयेन कन्येयं भवता प्रतिगृह्यताम् ॥१२॥

हे महाभाग ! तुम जितने अश्व चाहते थे, उनमें ये छः सौ मिल चुके हैं। अब दो सौ रुपये में आप इस कन्या को ग्रहण कर लो ॥ १२ ॥

अस्यां राजर्षिभिः पुत्रा जाता वै धार्मिकास्त्रयः ।
चतुर्थं जनयत्वेकं भवानपि नरोत्तमम् ॥१३॥

इस कन्या से तीन राजर्षियों ने तीन धार्मिक पुत्र उत्पन्न कर लिए हैं। अब आप भी इसमें एक उत्तम चौथा पुत्र उत्पन्न कर लीजिए ॥ १३ ॥

पूर्णान्येवं शतान्यष्टौ तुरगाणां भवन्तु ते ।
भवतो ह्यनृणो भूत्वा तपः कुर्यां यथा सुखम् ।११४।

इस प्रकार तुम्हारे आठ सौ अश्व पूरे हो जावेंगे। मैं तुमसे उऋण होकर फिर अपनी रुचि के अनुसार तप करूंगा ॥ १४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विश्वामित्रस्तु तं दृष्ट्वा गालवं सह पक्षिणा ।
कन्यां च तां वरारोहामिदमित्यब्रवीद्वचः ॥१५॥

विश्वामित्र ने गरुड़ के साथ गालव मुनि और उस सुन्दर कन्या को देखकर उससे यह वचन कहा ॥१५॥

किमियं पूर्वमेवेह न दत्ता मम गालव ।
पुत्रा ममैव चत्वारो भवेयुः कुलभावनाः ॥१६॥

हे गालव ! तुमने प्रथम ही इस कन्या को मुझे क्यों नहीं प्रदान कर दिया । मैं ही इसमें कुल की उन्नति करने वाले चार पुत्र उत्पन्न कर लेता ॥१६॥

प्रतिगृह्णामि ते कन्यामेकपुत्रफलाय वै ।
अश्वाश्चाऽऽश्रममासाद्य चरन्तु मम सर्वशः ॥१७॥

अच्छी बात है—मैं इस कन्या को दो सौ अश्वों के बदले में एक पुत्र के लिए ग्रहण कर लूंगा। ये सारे अश्व भी मेरे आश्रम में छोड़ दो—चरते फिरेंगे ॥१७॥

स तया रममाणोऽथ विश्वामित्रो महाद्युतिः ।
आत्मजं जनयामास माधवीपुत्रमष्टकम् ॥१८॥

महाकान्तिमान् विश्वामित्र ने भी उस माधवी कन्या के साथ रमण करके अष्टक नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥१८॥

जातमात्रं सुतं तं च विश्वामित्रो महामुनिः ।
संयोज्याऽर्थैस्तथा धर्मैरश्वैस्तैः समयोजयत् ॥१९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब पुत्र उत्पन्न हुआ-तो विश्वामित्र ने धर्म और अर्थ से उस पुत्र को युक्त करके ये सारे अश्व भी उसको ही सौंप दिए ॥१६॥

अथाऽष्टकः पुरं प्रायात्तदा सोमपुरप्रभम् ।
निर्यात्य कन्यां शिष्याय कौशिकोऽपि वनं ययौ ।२०।

अष्टक ने भी चन्द्रलोक के समान किसी उज्ज्वल पुर में प्रवेश किया तथा कुशिकपुत्र विश्वामित्र भी अपने शिष्य के लिए उस कन्या को सौंप कर वन को चला गया ॥२०॥

गालवोऽपि सुपर्णेन सह निर्यात्य दक्षिणाम् ।
मनसाऽतिप्रतीतेन कन्यामिदमुवाच ह ॥२१॥

गालव मुनि ने भी गरुड़ के अनुग्रह से अपनी गुरु दक्षिणा चुकाकर अत्यन्त प्रसन्न मन से कन्या से यह वचन कहा ॥२१॥

जातो दानपतिः पुत्रस्त्वया शूरस्तथाऽपरः ।
सत्यधर्मरतश्चाऽन्यो यज्वा चापि तथाऽपरः ॥२२॥

हे कन्ये ! तू ने एक पुत्र दानी, दूसरा शूरवीर, तीसरा सत्यवादी और चौथा यज्ञकर्ता उत्पन्न किया है ॥२१॥

तदागच्छ वरारोहे तारितस्ते पिता सुतैः ।
चत्वारश्चैव राजानस्तथा चाऽहं सुमध्यमे ॥२३॥

हे वरारोहे ! तुमने इस तरह धर्म का आचरण करके अपने पिता का उद्धार कर दिया । हे सुमध्यमे ! इस तरह अन्य चार राजर्षि और मुझे भी तिरा दिया ॥२३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गालवस्त्वभ्यनुज्ञाय सुपर्णं पन्नगाशनम् ।
पितुर्निर्यात्य तां कन्यां प्रययौ वनमेव ह ॥२४॥
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या-
मुद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते
एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥११९॥

गालव मुनि पन्नगों के भोजी गरुड़ से आज्ञा लेकर और उस कन्या को उसके पिता को सौंप कर आप वन में चला गया ॥२४॥ इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव चरित का एक सौ उन्नीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

एक सौ बीसवां अध्याय

नारद उवाच—

स तु राजा पुनस्तस्याः कर्तुकामः स्वयंवरम् ।
उपगम्याऽऽश्रमपदं गङ्गायमुनसङ्गमे ॥१॥
गृहीतमाल्यदामां तां रथमारोप्य माधवीम् ।
पूरुर्यदुश्च भगिनीमाश्रमे पर्यधावताम् ॥२॥

नारद ने कहा—हे ब्रह्मन् ! राजा ययाति, फिर अपनी इस कन्या के स्वयम्वर करने की चिन्ता करने लगा । इस कन्या के पूरु और यदु दो भाई थे । वे गङ्गा यमुना के सङ्गम प्रयाग के आश्रमों में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुष्पों की माला पहिने हुए अपनी बहन माधवी को लेकर आश्रमों में घूमने लगे ॥१-२॥

नागयक्षमनुष्याणां गन्धर्वमृगपक्षिणाम् ।
शैलद्रुमवनौकानामासीत्तत्र समागमः ॥३॥

इस स्थान पर नाग, यक्ष, मनुष्य, गन्धर्व, मृग, पक्षी, पर्वत, वृक्ष और वनवासी अन्य प्राणियों का समूह था ॥३॥

नानापुरुषदेश्यानामीश्वरैश्च समाकुलम् ।
ऋषिभिर्ब्रह्मकल्पैश्च समन्तादावृतं वनम् ॥४॥

यह स्थान अनेक देश के आये हुए धनाढ्य पुरुषों से भरा पड़ा था तथा इसके तपोवन ब्रह्मा के तुल्य ऋषियों से भरे थे ॥४॥

निर्दिश्यमानेषु तु सा वरेषु वरवर्णिनी ।
वरानुत्क्रम्य सर्वांस्तान्वरं वृतवती वनम् ॥५॥

जब उसको अनेक वरों का परिचय कराया, तो उस सुन्दरी ने सारे वरों को छोड़कर वन का ही वरण किया ॥५॥

अवतीर्य रथात्कन्या नमस्कृत्य च बन्धुषु ।
उपगम्य वनं पुण्यं तपस्तेपे ययातिजा ॥६॥

ययाति की कन्या रथ से उतर पड़ी और अपने बन्धुओं को प्रणाम करके पवित्र वन में पहुंची और वहां तप करने लगी ॥६॥

उपवासैश्च विविधैर्दीक्षाभिर्नियमैस्तथा ।
आत्मनो लघुतां कृत्वा बभूव मृगचारिणी ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसने अनेक भाँति के उपवास, दीक्षा, नियम धारण किए और अपने अहङ्कार को इतना गिराया, कि वह वनैले जन्तुओं की भांति रहने लगी ॥७॥

वैदूर्याङ्कुरकल्पानि मृदूनि हरितानि च ।
चरन्ती श्लक्ष्णशष्पाणि तिक्तानि मधुराणि च ॥८॥

यह हरित मणि के किरण जाल के समान कोमल और हरित स्वच्छ दूर्वादि घास को खा लेती थी, जिनमें कोई कडुआ और कोई मीठा था ॥८॥

स्रवन्तीनां च पुण्यानां सुरसानि शुचीनि च ।
पिबन्ती वारिमुख्यानि शीतानि विमलानि च ॥९॥

इसी तरह यह पवित्र नदियों के मीठे, पवित्र, शीतल और स्वच्छ उत्तम २ जल का पान करती थी ॥९॥

वनेषु मृगराजेषु व्याघ्रविप्रोषितेषु च ।
दावाग्निविप्रयुक्तेषु शून्येषु गहनेषु च ॥१०॥
चरन्ती हरिणैः सार्धं मृगीव वनचारिणी ।
चचार विपुलं धर्मं ब्रह्मचर्येण संवृतम् ॥११॥

सिंह, व्याघ्र आदि भयानक जन्तुओं से रहित, दावाग्नि विहीन, शून्य गहन वन में हरिणों के साथ हरिणी की तरह भ्रमण करती थी। इस तरह वह ब्रह्मचर्य से युक्त होकर महान् धर्म का आचरण करती थी ॥१०-११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ययातिरपि पूर्वेषां राज्ञां वृत्तमनुष्ठितः ।
बहुवर्षसहस्रायुर्युयुजे कालधर्मणा ॥१२॥

राजा ययाति भी अपने पूर्वजों के धर्म का अनुष्ठान करके कई सहस्र वर्ष की आयु में मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥१२॥

पूरुर्यदुश्च द्वौ वंशे वर्धमानौ नरोत्तमौ ।
ताभ्यां प्रतिष्ठितो लोके परलोके च नाहुषः ॥१३॥

इसके वंश में पूरु और यदु के वंश बढ़ने लगे। इन दोनों पुत्रों ने इस लोक और परलोक में राजा ययाति की प्रतिष्ठा बढ़ा दी ॥१३॥

महीपते नरपतिर्ययातिः स्वर्गमास्थितः ।
महर्षिकल्पो नृपतिः स्वर्गाग्र्यफलभुग्विभुः ॥१४॥

हे महीपते ! राजा ययाति स्वर्ग में पहुँच गया। महर्षियों के तुल्य शक्तिमान् यह राजर्षि, स्वर्ग के उत्तम २ फलों को भोगने लगा ॥१४॥

बहुवर्षसहस्राख्ये काले बहुगुणे गते ।
राजर्षिषु निषण्णेषु महीयःसु महर्धिषु ॥१५॥
अवमेने नरान्सर्वान्देवानृषिगणांस्तथा ।
ययातिर्मूढविज्ञानो विस्मयाविष्टचेतनः ॥१६॥

इस तरह स्वर्ग में राजा ययाति को कई सहस्र वर्ष व्यतीत हो गए। एक बार बड़े २ ऐश्वर्यशाली राजर्षि बैठे थे, कि इसने सारे नर, देव और ऋषियों का अपमान किया, क्योंकि इसका ज्ञान नष्ट होकर अभिमान छा गया था ॥१५-१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततस्तं बुबुधे देवः शक्रो बलनिषूदनः ।
ते च राजर्षयः सर्वे धिग्धिगित्येवमब्रुवन् ॥१७॥

बल दैत्य के घातक इन्द्र ने उसके इस अभिमान को जान लिया। अन्य राजर्षि भी इस बात को समझकर ययाति को धिक्कारने लगे ॥१७॥

विचारश्च समुत्पन्नो निरीक्ष्य नहुषात्मजम् ।
को न्वयं कस्य वा राज्ञः कथं वा स्वर्गमागतः ॥१८॥
कर्मणा केन सिद्धोऽयं क्व वाऽनेन तपश्चितम् ।
कथं वा ज्ञायते स्वर्गे केन वा ज्ञायतेऽऽयुत ॥१९॥

नहुष के पुत्र ययाति को अभिमान में मग्न देखकर चर्चा चली, कि यह कौन है और किस राजा का पुत्र है तथा किस कर्म से स्वर्ग में आया है। यह किस कर्म से इस सिद्धि को पहुंचा। कहां इसने तप इकट्ठा किया। इसकी स्वर्ग में क्या स्थिति है और इसे कौन २ जानते हैं ? ॥१८-१९॥

एवं विचारयन्तस्ते राजानं स्वर्गवासिनः ।
दृष्ट्वा पप्रच्छुरन्योन्यं ययातिं नृपतिं प्रति ॥२०॥

इस प्रकार विचार करते हुए अन्य स्वर्गवासी राजर्षि, एक दूसरे से ययाति के विषय में पूछने लगे ॥२०॥

विमानपालाः शतशः स्वर्गद्वाराभिरक्षिणः ।
पृष्टा आसनपालाश्च न जानीमेत्यथाऽब्रुवन् ॥२१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोगों ने अनेक भवन-रक्षक, स्वर्ग के द्वाररक्षक तथा आसनों के रक्षकों से पूछा-परन्तु सबने कहा—हम नहीं जानते ॥२१॥

सर्वे ते ह्यावृतज्ञाना नाऽभ्यजानन्त तं नृपम् ।
स मुहूर्तादथ नृपो हतौजाश्चाऽभवत्तदा ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते ययातिमोहे विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

इस समय इन सब मनुष्यों की स्मृति नष्ट सी हो गई । कोई भी ययाति को नहीं पहिचान सका । इस तरह क्षण भर में ययाति तेजहीन हो गया ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव-चरित में ययाति के मोह का एक सौ बीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

एक सौ इक्कीसवां अध्याय

नारद उवाच—

अथ प्रचलितः स्थानादासनाच्च परिच्युतः ।
कम्पितेनेव मनसा धर्षितः शोकवह्निना ॥१॥

नारदजी कहने लगे—हे महाभाग ! इसके अनन्तर राजा ययाति अपने स्थान से चल दिया और अपने आसन से भ्रष्ट हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गया। उसका मन कांपने लगा और उसको शोक की आग ने आ दबाया ॥ १ ॥

म्लानस्रग्भ्रष्टविज्ञानः भ्रभ्रष्टमुकुटाङ्गदः ।
विघूर्णन्स्रस्तसर्वाङ्गः प्रभ्रष्टाभरणाम्बरः ॥२॥

अदृश्यमानस्तान्पश्यन्नपश्यंश्च पुनः पुनः ।
शून्यः शून्येन मनसा प्रपतिष्यन्महीतलम् ॥३॥

इसकी स्वर्ग के पुष्पों की माला मलिन हो गई और यह ज्ञान भ्रष्ट हो गया। इसके मुकुट और अङ्गद (बाजूबन्द) गिर पड़े। वस्त्र और आभूषणों से हीन राजा ययाति का सारा अङ्ग शिथिल पड़ गया तथा उसका शिर चक्कर सा खाने लगा। यह स्वयं किसी को दिखाई नहीं देता था, परन्तु कभी उन स्वर्गवासी देवता और ऋषियों को देख लेता और कभी उसको वे भी दिखाई नहीं देते थे। इस प्रकार यह राजा अपने शून्य मन से शून्य सा हुआ पृथिवी पर गिरने लगा ॥ २—३ ॥

किं मया मनसा ध्यातमशुभं धर्मदूषणम् ।
येनाऽहं चलितः स्थानादिति राजा व्यचिन्तयत् ॥४॥

राजा ने विचारा, कि मैंने धर्म को दूषित कर देने वाला क्या अशुभ कर्म मन से भी सोच लिया, जिससे मैं स्थान से च्युत हो गया हूँ ॥ ४ ॥

ते तु तत्रैव राजानः सिद्धाश्चाऽप्सरसस्तथा ।
अपश्यन्त निरालम्बं तं ययातिं परिच्युतम् ॥५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर्गवासी राजर्षि, सिद्ध और अप्सराओं ने निरालम्ब हो कर स्वर्ग से गिरते हुए राजा ययाति को देखा ॥ ५ ॥

अथैत्य पुरुषः कश्चित्क्षीणपुण्यनिपातकः ।
ययातिमब्रवीद्राजन्देवराजस्य शासनात् ॥६॥

हे राजेन्द्र ! देवराज इन्द्र के शासन से एक पुरुष राजा ययाति के पास आया, जो क्षीण पुण्य वालों को स्वर्ग से गिराने वाला था। वह आकर राजा ययाति से कहने लगा ॥ ६ ॥

अतीव मदमत्तस्त्वं न कश्चिन्नाऽवमन्यसे ।
मानेन भ्रष्टः स्वर्गस्ते नाऽर्हस्त्वं पार्थिवात्मज ॥७॥
न च प्रज्ञायसे गच्छ पतस्वेति तमब्रवीत् ।

हे राजन् ! तुम बड़े मदोन्मत्त हो गए हो । कोई भी ऐसा नहीं है, जिसका आपने अपमान न किया हो । तुम अपने अभिमान से स्वर्ग से भृष्ट हो गए हो । अब तुम स्वर्ग में रहने के योग्य नहीं हो । तुमको इस बात का पता भी नहीं है, कि मैंने कब किसका अपमान किया, अब तुम जाओ और स्वर्ग से नीचे गिरो ॥ ७ ॥

पतेयं सत्स्विति वचस्त्विरुक्त्वा नहुषात्मजः ॥८॥
पतिष्यंश्चिन्तयामास गतिं गतिमतां वरः ।

नहुष पुत्र ययाति ने कहा—यदि मेरा पतन हो गया हो, तो मैं सत्पुरुषों के मध्य में गिरूँ । ऐसा उत्तम गति प्राप्त करने के अभिलाषी, गिरते हुए राजा ययाति ने विचारा ॥ ८ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु नैमिषे पार्थिवर्षभान् ॥९॥
चतुरोऽपश्यत नृपस्तेषां मध्ये पपात ह ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी समय नैमिषारण्य में इस राजा ने चार राजर्षियों को देखा, तो वह उनके ही बीच में आ गिरा ॥ ९ ॥

प्रतर्दनो वसुमनाः शिबिरौशीनरोऽष्टकः ॥१०॥
वाजपेयेन यज्ञेन तर्पयन्ति सुरेश्वरम् ।

इन राजाओं के नाम प्रतर्दन, वसुमना, उशीनर-पुत्र शिबि, और अष्टक थे। ये राजा वाजपेय यज्ञ करके सुरेश्वर इन्द्र को सन्तुष्ट कर रहे थे ॥ १० ॥

तेषामध्वरजं धूमं स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥११॥
ययातिरुपजिघ्रन्वै निपपात महीं प्रति ।

इनके यज्ञ के हवन का धूम स्वर्ग के द्वार तक पहुँच रहा था। राजा ययति उस धूम गन्ध को सूँघता हुआ, पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ ११ ॥

भूमौ स्वर्गे च सम्बद्धां नदीं धूममयीमिव ।
गङ्गां गामिव गच्छन्तीमालम्ब्य जगतीपतिः ॥१२॥
श्रीमत्स्ववभृताग्र्येषु चतुर्षु प्रतिबन्धुषु ।
मध्ये निपतितो राजा लोकपालोपमेषु सः ॥१३॥

इस यज्ञ के धूम की स्वर्ग और भूमि के मध्य में नदी की धारा सी बन रही थी। राजा ययाति स्वर्ग से भूमि पर आती हुई गंगा की धारा के समान उस धूम को पकड़ कर कान्तिमान, यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ, लोकपालों के सदृश इन चारों बन्धुओं के मध्य में गिर पड़ा ॥१२-१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्षु हुतकल्पेषु राजसिंहमहाग्निषु ।
पपात मध्ये राजर्षिर्ययातिः पुण्यसंक्षये ॥१४॥

राजा ययाति, अपने पुण्य के क्षीण होने पर हवन करने से प्रज्वलित अग्नि के समान देदीप्यमान इन राजसिंहों में आकर उपस्थित हुआ ॥१४॥

तमाहुः पार्थिवाः सर्वे दीप्यमानमिव श्रिया ।
को भवान्कस्य वा बन्धुर्देशस्य नगरस्य वा ॥१५॥
यक्षो वाऽप्यथवा देवो गन्धर्वो राक्षसोऽपि वा ।
नहि मानुषरूपोऽसि को वाऽर्थः कांक्ष्यते त्वया ।१६।

अत्यन्त तेज से प्रदीप्त राजा ययाति से ये सारे राजा कहने लगे—आप कौन हैं ? किस देश या नगर के रहने वाले किसके सम्बन्धी हैं । तुम यक्ष, देव. गन्धर्व या राक्षस प्रतीत होते हो। तुम्हारा मनुष्य के समान रूप नहीं है। अब तुम क्या करने की इच्छा कर रहे हो ? ॥१५-१६॥

ययातिरुवाच—

ययातिरस्मि राजर्षिः क्षीणपुण्यश्च्युतो दिवः ।
पतेयं सत्स्विति ध्यायन्भवत्सु पतितस्ततः ॥१७॥

ययाति ने कहा—मैं राजर्षि ययाति हूँ । मेरा पुण्य क्षीण हो चुका, इससे स्वर्ग से गिर गया हूँ । मेरी इच्छा थी, कि मेरा पतन सज्जनों के मध्य में होवे, इसी से मेरा पतन आप महात्माओं के मध्य में हुआ है ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजान ऊचुः—

सत्यमेतद्भवतु ते कांक्षितं पुरुषर्षभ ।
सर्वेषां नः क्रतुफलं धर्मश्च प्रतिगृह्यताम् ॥१८॥

अन्य राजा कहने लगे—हे पुरुषर्षभ ! आपका कथन सत्य हो और आपकी अभिलाषा पूर्ण हो । आप हमारे सारे यज्ञों के फल और धर्म का ग्रहण करो और स्वर्ग को चले जावो ॥१८॥

ययातिरुवाच—

नाऽहं प्रतिग्रहधनो ब्राह्मणः क्षत्रियो ह्यहम् ।
न च मे प्रवणा बुद्धिः परपुण्यविनाशने ॥१९॥

राजा ययाति ने कहा—मैं दान लेने वाला ब्राह्मण नहीं हूँ। मैं तो क्षत्रिय हूँ । अन्य के पुण्यों को क्षीण करने में मेरी बुद्धि ही प्रवृत्त नहीं हो सकती ॥१९॥

नारद उवाच—

एतस्मिन्नेव काले तु मृगचर्याक्रमागताम् ।
माधवीं प्रेक्ष्य राजानस्तेऽभिवाद्येदमब्रुवन् ॥२०॥

नारदजी बोले—हे महाभाग ! इसी समय मृगी का सा आचरण करती हुई ययाति कन्या माधवी वहां आ पहुँची । इस राजकन्या माधवी को देखकर ये सारे राजा प्रणाम करके कहने लगे ॥ २० ॥

किमागमनकृत्यं ते किं कुर्मः शासनं तव ।
आज्ञाप्या हि वयं सर्वे तव पुत्रास्तपोधने ॥२१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे तपोधने ! आपके आगमन का प्रयोजन बताइए। कहिए-हम आपकी क्या आज्ञा पूरी करें। हम सब आपके पुत्र हैं, इससे आपको हमें आज्ञा अवश्य देनी चाहिए ॥ २१ ॥

तेषां तद्भाषितं श्रुत्वा माधवी परया मुदा।
पितरं समुपागच्छद्ययातिं सा ववन्द च ॥२२॥

इनके इस कथन को सुनकर माधवी बड़ी प्रसन्न हुई, फिर इसने अपने पिता राजा ययाति के पास पहुँच कर प्रणाम किया ॥ २२ ॥

स्पृष्ट्वा मूर्धनि तान्पुत्रांस्तापसी वाक्यमब्रवीत्।
दौहित्रास्तव राजेन्द्र मम पुत्रा न ते पराः ॥२३॥

उस तपस्विनी माधवी ने अपने पुत्रों का शिर सूँघा और वह राजा ययाति से कहने लगी। हे राजेन्द्र ! ये आपके दौहित्र, मेरे पुत्र हैं। ये कोई पराये नहीं हैं ॥ २३ ॥

इमे त्वां तारयिष्यन्ति दृष्टमेतत्पुरातने।
अहं ते दुहिता राजन्माधवी मृगचारिणी ॥२४॥

हे राजन् ! ये दौहित्र तुम्हारा उद्धार करेंगे, ऐसा पूर्वकाल में भी होता आया है, कि दौहित्रों ने अपने मातामह का उद्धार किया है। हे राजन् ! मैं आपकी पुत्री माधवी हूँ, जो मृगी का सा आचारण करती हुई वन में घूमती हूँ ॥ २४ ॥

मयाऽप्युपचितो धर्मस्ततोऽर्धं प्रतिगृह्यताम्।
यस्माद्राजन्नराः सर्वे अपत्यफलभागिनः ॥२५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्मादिच्छन्ति दौहित्रान्यथा त्वं वसुधाधिप ।

हे राजन् ! मैंने भी बहुत कुछ तप का अर्जन कर रखा है, तुम उसमें से आधा ग्रहण करो, क्योंकि माता पिता अपनी सन्तान के कर्मों के फल के भागी हो सकते हैं। हे राजन् ! इसी लिए लोग दौहित्र चाहते हैं और आपकी भी ऐसी ही इच्छा थी॥२५॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे शिरसा जननीं तदा ॥२६॥
अभिवाद्य नमस्कृत्य मातामहमथाऽब्रुवन् ।
उच्चैरनुपमैः स्निग्धैः स्वरैरापूर्य मेदिनीम् ॥२७॥
मातामहं नृपतयस्तारयन्तो दिवश्च्युतम् ।

अब इन प्रतर्दन आदि सारे राजाओं ने अपनी माता और मातामह राजा ययाति को हाथ जोड़ प्रणाम करके कहा-इनके अनुपम, सुन्दर, उच्च-स्वर से पृथिवी भर गई। ये अपने मातामह स्वर्ग से च्युत राजा ययाति के उद्धार करने की चेष्टा कर रहे थे ॥ २६—२७ ॥

अथ तस्मादुपगतो गालवोऽप्याह पार्थिवम् ॥
तपसो मेऽष्टभागेन स्वर्गमारोहतां भवान् ॥२८॥

इति श्रीमहाभारते० भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते ययाति-स्वर्गभ्रंशे एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी समय अचानक गालव मुनि भी आपहुँचे और राजा से बोले—कि तुम मेरे भी तप के अष्टमांश को ग्रहण करो और इससे आप स्वर्ग में पधारो ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव चरित में ययातिं के स्वर्ग से भ्रष्ट होने का वृतान्त समाप्त हुआ।

एक सौ बाईसवां अध्याय

नारद उवाच—

प्रत्यभिज्ञातमात्रोऽथ सद्भिस्तैर्नरपुङ्गवः।
समारुरोह नृपतिरस्पृशन्वसुधातलम् ॥
ययातिर्दिव्यसंस्थानो बभूव विगतज्वरः ॥१॥
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः।
दिव्यगन्धगुणोपेतो न पृथ्वीमस्पृशत्पदा ॥२॥

नारदजी कहने लगे—हे महाभाग ! इस प्रकार इन नरश्रेष्ठों के प्रतिज्ञा करते ही राजा विना पृथिवीके छुए ही स्वर्ग को चले गये। इस समय राजा ययाति के फिर दिव्य चिन्ह उपस्थित हो गए। इसकी सारी चिन्ता नष्ट हो गई। यह दिव्य माला, वस्त्र, आभूषणों से भूषित हो गया। इसके शरीर से दिव्य सुगन्ध निकल रही थी। इसने अपने चरण से पृथिवी को छुआ तक नहीं ॥१-२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततो वसुमनाः पूर्वमुच्चैरुच्चारयन्वचः ।
ख्यातो दानपतिर्लोके व्याजहार नृपं तदा ॥३॥
प्राप्तवानस्मि यल्लोके सर्ववर्णेष्वगर्हया ।
तदप्यथ च दास्यामि तेन संयुज्यतां भवान् ॥४॥

अब संसार में दानपति के नाम से प्रसिद्ध राजा वसुमना ने उच्च-स्वर के साथ राजा ययाति से कहा--मैंने किसी भी वर्ण के किसी भी मनुष्य की निन्दा नहीं की है, इससे लोक में जो धर्म मुझे प्राप्त हुआ, उसका फल आपको प्रदान करता हूँ । आप ग्रहण करो ॥ ३—४ ॥

यत्फलं दानशीलस्य क्षमाशीलस्य यत्फलम् ।
यच्च मे फलमाधाने तेन संयुज्यतां भवान् ॥५॥

जो फल दानी और क्षमा-शील को मिलता है और यज्ञ करने में जिस फल की प्राप्ति होती है, आप मेरे उस फल को प्राप्त करें ॥ ५ ॥

ततः प्रतर्दनोऽप्याह वाक्यं क्षत्रियपुङ्गवः ।
यथा धर्मरतिर्नित्यं नित्यं युद्धपरायणः ॥६॥
प्राप्तवानस्मि यल्लोके क्षत्रवंशोद्भवं यशः ।
वीरशब्दफलं चैव तेन संयुज्यतां भवान् ॥७॥

इसके बाद क्षत्रिय श्रेष्ठ राजा प्रतर्दन यह वाक्य बोला—मैंने जिस तरह धर्म से प्रेम किया तथा धर्मानुसार युद्ध किया, इससे क्षत्रिय वंश के अनुसार जो यश या वीर शब्द का फल प्राप्त हुआ है, आप उसको ग्रहण कर सकते हो ॥ ६-७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिबिरौशीनरो धीमानुवाच मधुरां गिरम् ।
यथा बालेषु नारीषु वैहार्येषु तथैव च ॥८॥
सङ्गरेषु निपातेषु तथापद्व्यसनेषु च ।
अनृतं नोक्तपूर्वं मे तेन सत्येन खं व्रज ॥९॥

इसके अनन्तर उशीनर का पुत्र बुद्धिमान् शिबि मधुर वाणी से बोला—हे राजन् ! मैंने बच्चे, स्त्री तथा परिहास के योग्य सम्बन्धियों से भी कभी हंसी में भी झूंठ नहीं बोला हैं और न कभी युद्ध, पतन, आपत्ति और द्यूत आदि में झूंठ कहा है। इस सत्य के प्रताप से आप स्वर्ग में गमन करो ॥ ८—९ ॥

यथा प्राणांश्च राज्यं च राजन्कामसुखानि च ।
त्यजेयं न पुनः सत्यं तेन सत्येन खं व्रज ॥१०॥

हे राजन् ! मैं प्राण, राज्य, काम, सुख आदि सारे सुखों को छोड़ सकता हूँ, परन्तु सत्य नहीं छोड़ सकता, आप इस सत्य धर्म के बल से पुनः स्वर्ग को चले जाइए ॥ १० ॥

यथा सत्येन मे धर्मो यथा सत्येन पावकः ।
प्रीतः शतक्रतुश्चैव तेन सत्येन खं व्रज ॥११॥

जिस सत्य से धर्म, अग्नि और शतक्रतु इन्द्र मुझसे प्रसन्न हैं, आप उस सत्य के धर्म के फल से स्वर्ग को वापिस जाइये ॥११॥

अष्टकस्त्वथ राजर्षिः कौशिको माधवीसुतः ।
अनेकशतयज्वानं नाहुषं प्राप्य धर्मवित् ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शतशः पुण्डरीका मे गोसवाश्चरिताः प्रभो ।
क्रतवो वाजपेयाश्च तेषां फलमवाप्नुहि ॥१३॥

अब कुशिकवंशोत्पन्न, माधवी—पुत्र, राजर्षि धर्मात्मा अष्टक ने कई सहस्र यज्ञ करने वाले नहुष पुत्र राजा ययाति से कहा—हे प्रभो ! मैंने पुण्डरीक, गोमेध और सैंकड़ों वाजपेय यज्ञ किए हैं, आप इनके फल से स्वर्ग प्राप्त करो ॥ १२—१३ ॥

न मे रत्नानि न धनं न तथाऽन्ये परिच्छदाः ।
क्रतुष्वनुपयुक्तानि तेन सत्येन खं व्रज ॥१४॥

कोई ऐसे रत्न, धन या वस्त्र नहीं थे, जिनका मैंने यज्ञ में दान न किया हो। तुम इस सचाई से फिर स्वर्ग को चले जाओ ॥ १४ ॥

यथा यथा हि जल्पन्ति दौहित्रास्तं नराधिपम् ।
तथा तथा वसुमतीं त्यक्त्वा राजा दिवं ययौ ॥१५॥

ये दुहिता-पुत्र ज्यों २ राजा ययाति से इस प्रकार कहते थे, त्यों २ वह पृथिवी को छोड़ कर स्वर्ग की ओर बढ़ता जाता था ।१५।

एवं सर्वे समस्तैस्ते राजानः सुकृतैस्तदा ।
ययातिं स्वर्गतो भ्रष्टं तारयामासुरञ्जसा ॥१६॥

इस प्रकार सारे स्वर्गवासी राजा इकट्ठे हुए और उन पुण्यों के कारण स्वर्ग से भ्रष्ट ययाति को शीघ्र ही वे स्वर्ग में ले गए ॥१६॥

दौहित्राः स्वेन धर्मेण यज्ञदानकृतेन वै ।
चतुर्षु राजवंशेषु सम्भूताः कुलवर्धनाः ।
मातामहं महाप्राज्ञं दिवमारोपयन्त ते ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये राजा ययाति के दौहित्र वसुमना आदि भी अपने २ धर्म, यज्ञ, दान आदि से चारों राजवंशो के बढ़ाने वाले हुए। इन्होंने महा बुद्धिमान् अपने मातामह को पुनः स्वर्ग में स्थापित कर दिया ॥ १७ ॥

राजान ऊचुः—

राजधर्मगुणोपेताः सर्वधर्मगुणान्विताः ।
दौहित्रास्ते वयं राजन्दिवमारोह पार्थिव ॥१८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते ययातिस्वर्गारोहणे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२२॥

राजा कहने लगे— हे राजन् ! हम सब राजधर्म तथा अन्य सत्य दानादि के धर्मो से युक्त आपके दौहित्र हैं। हे महिपते ! अब आप स्वर्ग को पधारो ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव चरितान्तर्गत राजा ययाति के स्वर्गारोहण का एक सौ बाईसवां अध्याय समाप्त हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ तेईसवां अध्याय

नारद उवाच—

सद्भिरारोपितः स्वर्गं पार्थिवैर्भूरिदक्षिणैः ।
अभ्यनुज्ञाय दौहित्रान्ययातिर्दिवमास्थितः ॥१॥

नारदजी बोले— हे महाभाग ! यज्ञ में बड़ी २ दक्षिणा देने वाले इन सज्जन वसुमना आदि पांच राजाओं ने ययाति को फिर स्वर्ग में स्थापित कर दिया । ययाति भी अपने इन दुहिता पुत्रों से विदा लेकर स्वर्ग को चला गया ॥ १ ॥

अभिवृष्टश्च वर्षेण नानापुष्पसुगन्धिना ।
परिष्वक्तश्च पुण्येन वायुना पुण्यगन्धिना ॥२॥

राजा ययाति स्वर्ग में अनेक पुष्पों को सुगन्धि से युक्त वर्षा से सींचा जाता था और पवित्र गंध वाले उत्तम पुष्पों की वायु से सेवित था ॥ २ ॥

अचलं स्थानमासाद्य दौहित्रफलनिर्जितम् ।
कर्मभिः स्वैरुपचितो जज्वाल परया श्रिया ॥३॥

अपने दुहिता पुत्रों के पुण्य के फल से अचल स्वर्ग स्थान को पाकर तथा अपने भी उत्तम २ कर्मों के कारण राजा ययाति, दिव्यकान्ति से प्रदीप्त हो रहा था ॥ ३ ॥

उपगीतोपनृत्तश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।
प्रीत्या प्रतिगृहीतश्च स्वर्गे दुन्दुभिनिःस्वनैः ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब इसके आगे गन्धर्व गान और अप्सरायें नृत्य करती थीं। स्वर्गवासी दुन्दुभि बजा २ कर बड़े प्रेम से इसका स्वागत कर रहे थे ॥ ४ ॥

अभिष्टुतश्च विविधैर्देवराजर्षिचारणैः ।
अर्चितश्चोत्तमार्घेण दैवतैरभिनन्दितः ॥५॥

इस समय राजा ययाति की अनेक देवर्षि, राजर्षि और चारण स्तुति करते थे। अनेक देवता भी इसका उत्तम अर्घ से पूजन और अभिनन्दन कर रहे थे ॥५॥

प्राप्तः स्वर्गफलं चैव तमुवाच पितामहः ।
निर्वृतं शान्तमनसं वचोभिस्तर्पयन्निव ॥६॥

इस प्रकार जब राजा ययाति को स्वर्ग का फल प्राप्त हुआ, तो पितामह, ब्रह्मा, शान्त और निश्चिन्त मन वाले राजा ययाति को अपने वचनों से सन्तुष्ट करके कहने लगे ॥ ६ ॥

चतुष्पादस्त्वया धर्मश्चितो लोक्येन कर्मणा ।
अक्षयस्तव लोकोऽयं कीर्तिश्चैवाऽक्षया दिवि ॥७॥

हे राजन ! तुमने लोक हितकारी कर्म करके चार पाद वाले धर्म का पूरा निर्वाह किया है, इसी से तुमको इस अक्षय स्वर्गलोक की प्राप्ति हुई और इसीसे स्वर्ग लोक में तुम्हारी अक्षय कीर्ति हो रही थी ॥ ७ ॥

पुनस्त्वयैव राजर्षे सुकृतेन विघातितम् ।
आवृतं तमसा चेतः सर्वेषां स्वर्गवासिनाम् ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

येन त्वां नाऽभिजानन्ति ततोऽज्ञातोऽसि पातितः ।
प्रीत्यैव चाऽसि दौहित्रैस्तारितस्त्वमिहाऽऽगतः ॥९॥

हे राजर्षे ! फिर तुमने ही अपने कर्मों से सारा नष्ट कर लिया। उस समय सारे स्वर्गवासियों का चित्त अन्धकार ने घेर लिया, इसी से उन्होंने तुमको पहिचाना तक नहीं। जब तुम अज्ञात हो गये–तो स्वर्ग से निकाल दिये गये। अब अपने दौहित्रों की प्रीति से उद्धार पाकर फिर स्वर्ग में आ रहो ॥ ८—९ ॥

स्थानं च प्रतिपन्नोऽसि कर्मणा स्वेन निर्जितम् ।
अचलं शाश्वतं पुण्यमुत्तमं ध्रुवमव्ययम् ॥१०॥

जो स्थान तुमने अपने कर्म से जीत रखा था, उसको फिर प्राप्त हो गए हो, जो अचल, शाश्वत, पवित्र उत्तम, दृढ़ और अक्षय है ॥ १० ॥

ययातिरुवाच—

भगवन्संशयो मेऽस्ति कश्चित्तं छेत्तुमर्हसि ।
न ह्यन्यमहमर्हामि प्रष्टुं लोकपितामह ॥११॥
बहुवर्षसहस्रान्तं प्रजापालनवर्धितम् ।
अनेकक्रतुदानौघैरर्जितं मे महत्फलम् ॥१२॥
कथं तदल्पकालेन क्षीणं येनाऽस्मि पातितः ।
भगवन्वेत्थ लोकांश्च शाश्वतान्मम निर्मितान् ।
कथं नु मम तत्सर्वं विप्रनष्टं महाद्युते ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा ययाति बोले—हे भगवन्! मुझे एक संशय है, प्रथम आप उसका निवारण करें। हे पितामह! मैं इस प्रश्न को अन्य किसी से पूछना नहीं चाहता हूँ। मैंने कई सहस्र वर्षों तक प्रजा पालन आदि उत्तम २ कर्म तथा अनेक यज्ञ और दानों से जो महान् पुण्य फल प्राप्त किया था, उसका थोड़े ही काल में कैसे विनाश हो गया, जिससे मैं नीचे डाल दिया गया। हे भगवन्! पितामह! आप जानते हैं, कि मैंने किन २ शाश्वत लोकों को प्राप्त किया था। हे महाद्युते! क्या? कारण हुआ, जो वे सहसा नष्ट हो गये ॥ ११—१३ ॥

पितामह उवाच—

बहुवर्षसहस्रान्तं प्रजापालनवर्धितम् ।
अनेकक्रतुदानौघैर्यत्त्वयोपार्जितं फलम् ॥१४॥

तदनेनैव दोषेण क्षीणं येनाऽसि पातितः ।
अभिमानेन राजेन्द्र धिक्कृतः स्वर्गवासिभिः ॥१५॥

ब्रह्माजी बोले—हे राजन्! कई सहस्र वर्षों तक जो तुमने प्रजा पालन और यज्ञ तथा दान से पुण्य सञ्चय किया, उसका विनाश इसी एक मात्र दोष से हो गया, जो तुमने अभिमान किया। इसी अभिमान के कारण स्वर्गवासियों ने तुम्हारा तिरस्कार किया और तुमको स्वर्ग से बाहर कर दिया ॥ १४—१५ ॥

नाऽयं मानेन राजर्षे न बलेन न हिंसया ।
न शाठ्येन न मायाभिर्लोको भवति शाश्वतः ॥१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजर्षे ! अभिमान, बल, हिंसा, छल, कपट, मोह आदि से इन सनातन लोकों की प्राप्ति नहीं हो सकती है ॥१६॥

नाऽवमान्यास्त्वया राजन्नधमोत्कृष्टमध्यमाः ।
नहि मानप्रदग्धानां कश्चिदस्ति शमः क्वचित् ॥१७॥

हे राजन् ! छोटे मोटे या उत्तम जन किसी का भी अपमान नहीं करना चाहिये । जो अभिमान से दग्ध हैं, उनको कोई शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती है ॥ १७ ॥

पतनारोहणमिदं कथयिष्यन्ति ये नराः ।
विषमाण्यपि ते प्राप्तास्तरिष्यन्ति न संशयः ॥१८॥

जो तुम्हारे इस स्वर्ग के पतन और पुनरारोहण का पठन पाठन करेंगे, वे कठिन उलझन में उलझे हुए होने पर भी मुक्त हो जावेंगे ॥१८॥

नारद उवाच –

एष दोषोऽभिमानेन पुरा प्राप्तो ययातिना ।
निर्बध्नताऽतिमात्रं च गालवेन महीपते ॥१९॥

नारद ने कहा—हे महीपते ! इस प्रकार अभिमान के वश में होकर राजा ययाति ने और गुरु से अत्यन्त हठ करके गालव मुनि ने कष्ट उठाया ॥१९॥

श्रोतव्यं हितकामानां सुहृदां हितमिच्छताम् ।
न कर्तव्यो हि निर्बन्धो निर्बन्धो हि क्षयोदयः ।२०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हित चाहने वाले हितकारी मित्रों के वचन सुनने चाहिए, कभी उनसे हठ करना अच्छा नहीं है, क्योंकि दुराग्रह से पतन ही होता है ॥२०॥

तस्मात्त्वमपि गान्धारे मानं क्रोधं च वर्जय ।
सन्धत्स्व पाण्डवैर्वीर संरम्भं त्यज पार्थिव ॥२१॥

हे गान्धारी-पुत्र ! राजन् ! दुर्योधन ! तुम भी अभिमान और क्रोध का परित्याग करो और पाण्डवों से सन्धि करके इस आवेश को छोड़ दो ॥२१॥

ददाति यत्पार्थिव यत्करोति यद्वा तपस्तप्यति यज्जुहोति ।
न तस्य नाशोऽस्ति न चाऽपकर्षो नाऽन्यस्तदश्नाति स एव कर्ता

हे राजन् ! मनुष्य, जो दान देता है या कर्म करता है तथा तप एवं यज्ञ करता है, उन कर्मों का न तो सहसा नाश होता है और न उनमें कमी आती है तथा न कोई उसको भोग सकता है, क्योंकि उसके भोगने का अधिकार तो कर्ता को ही है ॥२२॥

इदं महाख्यानमनुत्तमं हितं बहुश्रुतानां गतरोषरागिणाम् ।
समीक्ष्य लोके बहुधा प्रधारितं त्रिवर्गदृष्टिः पृथिवीमुपाश्नुते
इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालव-
चरिते त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२३॥

अनेक शास्त्रों के जानने वाले, राग द्वेष से रहित, महात्माओं का यह उपाख्यान है। लोक में इनका अनेक ढंग से वर्णन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया गया है। जो राजा इनको पढ़ता है, वह धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि प्राप्त करके पृथिवी का राज्य भोगता है ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गालव चरित का एक सौ तेईसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ चौबीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

भगवन्नेवमेवैतद्यथा वदसि नारद।
इच्छामि चाऽहमप्येवं न त्वीशो भगवन्नहम् ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे भगवन्! नारद से जो आपने कहा—वह सर्वथा ठीक है। मैं भी यही चाहता हूँ, परन्तु कुछ कर नहीं सकता हूँ ॥१॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा ततः कृष्णमभ्यभाषत कौरवः।
स्वर्ग्यं लोक्यं च मामात्थ धर्म्यं न्याय्यं च केशव॥२॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इतना कह कर राजा धृतराष्ट्र श्रीकृष्ण से बोला-हे केशव! तुमने जो कुछ मुझे कहा है, वह इस लोक और परलोक में हितकारी, धर्म और न्याय के अनुसार है ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न त्वहं स्ववशस्तात क्रियमाणं न मे प्रियम् ।
अङ्ग दुर्योधनं कृष्ण मन्दं शास्त्रातिगं मम ॥३॥
अनुनेतुं महाबाहो यतस्व पुरुषोत्तम ।
न शृणोति महाबाहो वचनं साधुभाषितम् ॥४॥
गान्धार्याश्च हृषीकेश विदुरस्य च धीमतः ।
अन्येषां चैव सुहृदां भीष्मादीनां हितैषिणाम् ॥५॥

हे तात ! मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, जो कुछ यह किया जा रहा है, वह मुझे प्रिय नहीं है । हे महाबाहो ! कृष्ण ! तुम शास्त्र के नहीं मानने वाले, इस दुर्बुद्धि दुर्योधन को समझाने का प्रयत्न करो । यह मूर्ख, सत्पुरुषों के कथन को सुनता ही नहीं है । हे हृषीकेश ! न यह गान्धारी, बुद्धिमान् विदुर तथा हित चाहने वाले भीष्म आदि अन्य सुहृदों के वचन सुनता है ॥३-५॥

स त्वं पापमतिं क्रूरं पापचित्तमचेतनम् ।
अनुशाधि दुरात्मानं स्वयं दुर्योधनं नृपम् ॥६॥
सुहृत्कार्यं तु सुमहत्कृतं ते स्याज्जनार्दन ।

अब तुम इस पाप चित्त वाले, क्रूर, अज्ञानी, दुर्बुद्धि दुरात्मा राजा दुर्योधन को समझाओ । हे जनार्दन ! यदि तुम इसमें कुछ भी कृतार्थ हो गए—तो तुमने बड़ा ही सुहृद् कार्य कर दिखाया समझा जावेगा ॥६॥

ततोऽभ्यावृत्य वार्ष्णेयो दुर्योधनममर्षणम् ॥७॥
अब्रवीन्मधुरां वाचं सर्वधर्मार्थतत्त्ववित् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधन निबोधेदं मद्वाक्यं कुरुसत्तम ॥८॥
शमार्थं ते विशेषेण सानुबन्धस्य भारत ।

सब धर्मों के तत्त्व को जानने वाले, वृष्णिवंशोद्भव, श्रीकृष्ण, अब असहिष्णु राजा दुर्योधन की ओर प्रवृत्त होकर मधुर वाणी से कहने लगे–हे कुरु-वंश-श्रेष्ठ ! राजन् ! सुयोधन ! तुम मेरे वचनों को अच्छी तरह समझ लो। हे भारत ! तुम जानते हो, कि मुझे तुम लोगों की सन्धि कराने का बड़ा आग्रह है ॥७-८॥

महाप्रज्ञकुले जातः साध्वेतत्कर्तुमर्हसि ॥९॥
श्रुतवृत्तोपसम्पन्नाः सर्वैः समुदितो गुणैः ।

हे राजन् ! तुम महा बुद्धिमान् कुल में उत्पन्न हुए हो–तुमको नियमानुसार सन्धि कर लेनी चाहिए। तुम शास्त्र और आचार से सम्पन्न और राजाओं के अनुकूल गुणों से सुशोभित हो ॥९॥

दौष्कुलेया दुरात्मानो नृशंसा निरपत्रपाः ॥१०॥
त एतदीदृशं कुर्युर्यथा त्वं तात मन्यसे ।

हे तात ! जिन बातों को तुम ठीक समझते हो, उनको तो दुष्कुल में उत्पन्न, दुरात्मा, नीच, निर्लज्ज भी नहीं कर सकते हैं ॥ १० ॥

धर्मार्थयुक्ता लोकेऽस्मिन्प्रवृत्तिर्लक्ष्यते सताम् ॥११॥
असतां विपरीता तु लक्ष्यते भररतर्षभ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विपरीता त्वियं वृत्तिरसकृल्लक्ष्यते त्वयि ॥१२॥
अधर्मश्चाऽनुबन्धोऽत्र घोरः प्राणहरो महान् ।

हे भरतर्षभ ! सज्जनों की प्रवृत्ति धर्म और नीति के अनुसार होती है और दुष्ट जनों की इसके विपरीत मानी गई है। वही विपरीत वृत्ति तुममें भी बार बार देखी गई है। यह अधर्म और दुराग्रह महाघोर प्राण-घातक है ॥ ११—१२ ॥

अनिष्टश्चाऽनिमित्तश्च न च शक्यश्च भारत ॥१३॥
तमनर्थं परिहरन्नात्मश्रेयः करिष्यसि ।

हे भारत ! तुम्हारा यह दुराग्रह अनिष्ट कारी, विना कारण और पूरा पड़ने वाला नहीं है। यहि तुमने इस अनर्थ को छोड़ दिया, तो अपना कल्याण कर सकोगे ॥ १३ ॥

भ्रातॄणामथ भृत्यानां मित्राणां च परन्तप ॥१४॥
अधर्म्यादयशस्याच्च कर्मणस्त्वं प्रमोक्ष्यसे ।

हे परन्तप ! इस तरह तुम अपने भाई, सेवक और मित्रों को अधर्म और अयशकारी कर्मों से बचा सकोगे ॥१४॥

प्राज्ञैः शूरैर्महोत्साहैरात्मवद्भिर्बहुश्रुतैः ॥१५॥
सन्धत्स्व पुरुषव्याघ्र पाण्डवैर्भरतर्षभ ।

हे भरतर्षभ ! पुरुषश्रेष्ठ, दुर्योधन ! पाण्डव, बुद्धिमान्, शूर, महोत्साही, आत्मबल-सम्पन्न, शास्त्र के ज्ञाता हैं, उनसे सन्धि करना सब भांति से हितकारी है ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तद्धितं च प्रियं चैव धृतराष्ट्रस्य धीमतः ॥१६॥
पितामहस्य द्रोणस्य विदुरस्य महामतेः ।
कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः ॥१७॥
अश्वत्थाम्नो विकर्णस्य सञ्जयस्य विविंशतेः ।
ज्ञातीनां चैव भूयिष्ठं मित्राणां च परन्तप ॥१८॥
शमे शर्म भवेत्तात सर्वस्य जगतस्तथा ।

हे परन्तप ! बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, महामति विदुर, कृप, सोमदत्त, बुद्धिमान् बाल्हीक, अश्वत्थामा, विकर्ण, सञ्जय, विविंशति तथा बन्धु बान्धव, मित्रगण एवं सारे संसार का सन्धि करने में ही कल्याण है। इसी कार्य को ये सब हितकारी और प्रिय मानते हैं ॥१६-१८॥

ह्रीमानसि कुले जातः श्रुतवाननृशंसवान् ॥
तिष्ठ तात पितुः शास्त्रे मातुश्च भरतर्षभ ॥१९॥

हे भरतर्षभ ! तुम निर्लज्ज नहीं हो। कुल में उत्पन्न, शास्त्र के ज्ञाता और नीच विचारों से रहित हो। हे तात ! तुम अपने माता और पिता की आज्ञा का पालन करो ॥१९॥

एतच्छ्रेयो हि मन्यन्ते पिता यच्छास्ति भारत ।
उत्तमापद्गतः सर्वः पितुः स्मरति शासनम् ॥२०॥

हे भारत ! सत्पुत्र उसी को उत्तम समझते हैं, जिसको पिता आज्ञा देता है। धर्मात्मा पुत्र, महा विपत्ति में फँसा हुआ भी पिता की आज्ञा मानने में प्रवृत्त होता है ॥२०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रोचते ते पितुस्तात पाण्डवैः सह सङ्गमः ।
सामात्यस्य कुरुश्रेष्ठ तत्तुभ्यं तात रोचताम् ॥२१॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! आपके पिता राजा धृतराष्ट्र को पाण्डवों से सन्धि करना ही उचित प्रतीत होता है और यही उनके मन्त्रियों की अनुमति है। हे तात! तुमको भी ये बातें पसन्द आनी चाहिए ॥२१॥

श्रुत्वा यः सुहृदां शास्त्रं मर्त्यो न प्रतिपद्यते ।
विपाकान्ते दहत्येनं किम्पाकमिव भक्षितम् ॥२२॥

जो मनुष्य, अपने हितकारी मित्रों के कथन को सुनकर नहीं मानता है, उसको परिणाम के समय वह कार्य इस प्रकार जलाता है, जैसे दुष्पच पदार्थ उदर को जलाता है ॥२२॥

यस्तु निःश्रेयसं वाक्यं मोहान्न प्रतिपद्यते ।
स दीर्घसूत्रो हीनार्थः पश्चात्तापेन युज्यते ॥२३॥

जो दीर्घसूत्री अपने अज्ञान से हितकारी वाक्य को भी नहीं सुनता है—वह अपने प्रयोजन से वञ्चित होकर पश्चाताप से युक्त होता है ॥२३॥

यस्तु निःश्रेयसं श्रुत्वा प्राक्तदेवाऽभिपद्यते ।
आत्मनो मतमुत्सृज्य स लोके सुखमेधते ॥२४॥

जो मनुष्य कल्याणकारी वचन को सुनकर अपने आग्रह को छोड़कर उसको प्रथम ही मान लेता है—वही संसार में सुख पाता है ॥२४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योऽर्थकामस्य वचनं प्रातिकूल्यान्न मृष्यते ।
शृणोति प्रतिकूलानि द्विषतां वशमेति सः ॥२५॥
सतां मतमतिक्रम्य योऽसतां वर्तते मते ।
शोचन्ते व्यसने तस्य सुहृदो न चिरादिव ॥२६॥

जो स्वार्थी मनुष्यों के वचनों को विरुद्ध युक्तिवाद से नहीं सोचते और अपने हित के प्रतिकूल वचनों को सुनकर द्वेष करने वालों के वश में हो जाते हैं। जो सज्जनों के मत का तिरस्कार करके असत्पुरुषों के मत के पीछे चल पड़ते हैं, उनके मित्र शीघ्र विपत्ति आने पर शोक करते हैं ॥२५-२६॥

मुख्यानमात्यानुत्सृज्य यो निहीनान्निषेवते ।
स घोरामापदं प्राप्य नोत्तारमधिगच्छति ॥२७॥

जो राजा अपने मुख्य २ मन्त्रियों की सम्मति को छोड़ कर अनुभव हीन नवीन मन्त्रियों की सलाह मानता है, वह घोर आपत्ति में फँस जाता है, जिससे कभी उद्धार नहीं होता ॥२७॥

योऽसत्सेवी वृथाचारो न श्रोता सुहृदां सताम् ।
परान्वृणीते स्वान्द्वेष्टि तं गौस्त्यजति भारत ॥२८॥

हे भारत ! जो असत्पुरुषों की संगति करता है और वृथाचार में फँसा है तथा सुहृदों के वचन को नहीं सुनता एवं जो अपनों से द्वेष और परायों से प्रेम करता है, उसको पृथिवी छोड़ देती है अर्थात् वह राज्य से च्युत हो जाता है ॥२८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स त्वं विरुद्ध्य तैर्वीरैरन्येभ्यस्त्राणमिच्छसि ।
अशिष्टेभ्योऽसमर्थेभ्यो मूढेभ्यो भरतर्षभ ॥२९॥

हे भरतर्षभ ! तुम वीर पाण्डवों से विरोध करके अन्यों से रक्षा चाहते हो, जो अशिष्ट, असमर्थ और मूर्ख हैं ॥२९॥

को हि शक्रसमाञ्ज्ञातीनतिक्रम्य महारथान् ।
अन्येभ्यस्त्राणमाशंसेत्त्वदन्यो भुवि मानवः ॥३०॥

हे राजन् ! तुमको छोड़ कर कौन ऐसा पुरुष होगा—जो इन्द्र के तुल्य, महारथी अपने भाइयों को छोड़ कर अन्य से अपनी रक्षा की आशा करेगा ॥३०॥

जन्मप्रभृति कौन्तेया नित्यं विनिकृतास्त्वया ।
न च ते जातु कुप्यन्ति धर्मात्मानो हि पाण्डवाः३१॥

हे दुर्योधन ! तुमने जन्म से लेकर आज तक पाण्डवों के साथ बुराई की है, परन्तु उन्होंने कभी कोप नहीं किया, क्योंकि पाण्डव बड़े ही धर्मशील हैं ॥३१॥

मिथ्योपचरितास्तात जन्मप्रभृति बान्धवाः ।
त्वयि सम्यङ्महाबाहो प्रतिपन्ना यशस्विनः ॥३२॥
त्वयाऽपि प्रतिपत्तव्यं तथैव भरतर्षभ ।
स्वेषु बन्धुषु मुख्येषु मा मन्युवशमन्वगाः ॥३३॥

हे महाबाहो ! तात ! तुमने सदा अपने बान्धव, पाण्डवों के साथ छल पूर्ण व्यवहार किया है, परन्तु उन यशस्वियों ने सदा तुम्हारे साथ धर्मानुसार ही व्यवहार किया । हे भरतर्षभ ! तुमको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी चाहिए, कि तुम भी उनके साथ ऐसा ही धार्मिक व्यवहार करो। वे तुम्हारे प्रधान बन्धु हैं। तुमको द्वेष के वश में नहीं होना चाहिए ॥३२-३३॥

त्रिवर्गयुक्तः प्राज्ञानामारम्भो भरतर्षभ ।
धर्मार्थावनुरुद्ध्यन्ते त्रिवर्गासम्भवे नराः ॥३४॥

हे भरतर्षभ ! विद्वान् मनुष्य, अर्थ, धर्म और काम की सिद्धि करने वाले कार्यों का आरम्भ करते हैं। जब इन तीनों की सिद्धि असम्भव हो, तो मनुष्य धर्म और अर्थ के सम्पादन करने वाले कर्म का आरम्भ करते हैं ॥ ३४ ॥

पृथक्च विनिविष्टानां धर्मं धीरोऽनुरुद्ध्यते ।
मध्यमोऽर्थं कलिं बालः काममेवाऽनुरुद्ध्यते ॥३५॥

यदि तीनों में एक की प्राप्ति का ही समय हो, तो पण्डित जन, धर्म का अनुसरण करते हैं। मध्यम जन, अर्थ और क्षुद्र प्रकृति के मनुष्य; कलह-कारी काम के सेवन में प्रवृत्त होते हैं ॥ ३५ ॥

इन्द्रियैः प्राकृतो लोभाद्धर्मं विप्रजहाति यः ।
कामार्थावनुपायेन लिप्समानो विनश्यति ॥३६॥

जो साधारण मूर्ख मनुष्य, विषयों के लोभ में फँस कर इन्द्रियों के वश में पड़ा हुआ धर्म को छोड़ देता है तथा दुरुपायों से धर्म और धन प्राप्त करना चाहता है, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ ३६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कामार्थौ लिप्समानस्तु धर्ममेवाऽऽदितश्चरेत् ।
नहि धर्मादपैत्यर्थः कामो वाऽपि कदाचन ॥३७॥

जो मनुष्य यह चाहता है, कि मैं काम और अर्थ का उपार्जन करूं, उसको चाहिए, कि वह प्रारम्भ से ही धर्म का सेवन करें, क्योंकि धर्म से अर्थ और काम कभी पृथक् नहीं हो सकते हैं ॥ ३७ ॥

उपायं धर्ममेवाऽऽहुस्त्रिवर्गस्य विशाम्पते ।
लिप्यमानो हि तेनाऽऽशु कक्षेऽग्निरिव वर्धते ॥३८॥

हे विशाम्पते ! धर्म, अर्थ और काम, इस त्रिवर्ग की सिद्धि का प्रधान कारण धर्म ही माना गया है । जो धर्म की अभिलाषा करता है, उसके ये तीनों घास की ढेरी में लगी हुई आग की तरह बढ़ते हैं ॥ ३८ ॥

स त्वं ताताऽनुपायेन लिप्ससे भरतर्षभ ।
आधिराज्यं महद्दीप्तं प्रथितं सर्वराजसु ॥३९॥

हे भरतर्षभ ! तात ! दुर्योधन ! इसी तरह तुम भी अनुचित उपायों से इस विशाल साम्राज्य को प्राप्त करना चाहते हो, जो सब राजसमूह में मान्य हैं ॥ ३९ ॥

आत्मानं तक्षति ह्येष वनं परशुना यथा ।
यः सम्यग्वर्तमानेषु मिथ्या राजन्प्रवर्तते ।
न तस्य हि मतिं छिन्द्याद्यस्य नेच्छेत्पराभवम् ॥४०॥
अविच्छिन्नमतेरस्य कल्याणे धीयते मतिः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन् ! जैसे परशु से वन काट दिया जाता है, वैसे ही वह मनुष्य अपनी आत्मा को काटता है, जो उचित और सीधा व्यवहार करने वाले मनुष्यों के साथ दुर्व्यवहार करता है। जिस का पराजय नहीं कराना हो—उसकी बुद्धि का कभी छेदन न करे। जो इस तरह की अविच्छिन्न (साबित) बुद्धि रखता है, उसकी बुद्धि कल्याण में लगी रहती है ॥४०॥

आत्मवान्नाऽवमन्येत त्रिषु लोकेषु भारत ॥४१॥
अप्यन्यं प्राकृतं किञ्चित्किमु तान्पाण्डवर्षभान् ।

हे भारत ! जो आत्मज्ञानी पुरुष है, वह तीनों लोकों के किसी भी साधारण पुरुष का अनादर नहीं करते हैं, फिर तुमको उन सर्व-गुण-सम्पन्न पाण्डवों का कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिए ॥४१॥

अमर्षवशमापन्नो न किञ्चिद् बुद्ध्यते जनः ॥४२॥
छिद्यते ह्याततं सर्वं प्रमाणं पश्य भारत ।

हे भारत ! जो क्रोध के वश में हो जाता है, उसको भले बुरे का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है। मर्यादा छोड़ कर फैले हुए सारे प्रमाण, प्रमाण कोटि से बाहर हो जाते हैं—यह तुमको ज्ञात होना चाहिए ॥४२॥

श्रेयस्ते दुर्जनात्तात पाण्डवैः सह सङ्गतम् ॥४३॥
तैर्हि सम्प्रीयमाणस्त्वं सर्वान्कामानवाप्स्यसि ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे तात ! दुर्जनों की सङ्गति की अपेक्षा पाण्डवों के साथ सङ्गति करना ही अच्छा है । जो तुम उनको प्रसन्न कर लोगे, तो सारी कामनाओं को प्राप्त कर सकोगे ॥४३॥

पाण्डवैर्निर्मितां भूमिं भुञ्जानो राजसत्तम ॥४४॥
पाण्डवान्पृष्ठतः कृत्वा त्राणमाशंससेऽन्यतः ।

हे राजसत्तम ! तुम पाण्डवों की जीती हुई पृथिवी का ही उपभोग कर रहे हो । अब तुम पाण्डवों की अवहेलना करके अन्य से अपनी रक्षा चाह रहे हो ॥४४॥

दुःशासने दुर्विषहे कर्णे चापि ससौबले ॥४५॥
एतेष्वैश्वर्यमाधाय भूतिमिच्छसि भारत ।

हे भारत ! तुम दुशाःसन, दुर्विषह, शकुनि, कर्ण आदि दुर्जनों में ऐश्वर्य रख कर कल्याण की कामना कर रहे हो ॥४५॥

न चैते तव पर्याप्ता ज्ञाने धर्मार्थयोस्तथा ॥४६॥
विक्रमे चाऽप्यपर्याप्ताः पाण्डवान्प्रति भारत ।

हे भारत ! ये सब धर्म अर्थ की प्राप्ति के ज्ञान में पूर्ण नहीं है तथा पाण्डवों के साथ पराक्रम में भी पर्याप्त नहीं है ॥ ४६ ॥

न हीमे सर्वराजानः पर्याप्ताः सहितास्त्वया ॥४७॥
क्रुद्धस्य भीमसेनस्य प्रेक्षितुं मुखमाहवे ।

इनके अतिरिक्त तुम्हारे सहित ये सारे राजा भी युद्ध में क्रुद्ध हुए भीमसेन के मुख के देखने में भी समर्थ नहीं हो सकेंगे ॥४७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदं सन्निहितं तात समग्रं पार्थिवं बलम् ॥४८॥
अयं भीष्मस्तथा द्रोणः कर्णश्चाऽयं तथा कृपः ।
भूरिश्रवाः सौमदत्तिरश्वत्थामा जयद्रथः ॥४९॥
अशक्ताः सर्व एवैते प्रतियोद्धुं धनञ्जयम् ।

हे तात ! यह इकट्ठी हुई सारी राजाओं की सेना, भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, भूरिश्रवा, सौमदत्त, अश्वत्थामा, जयद्रथ आदि इकट्ठे हुए सारे वीर भी अर्जुन से लड़ने में समर्थ नहीं हैं ।४८-४९।

अजेयो ह्यर्जुनः संख्ये सर्वैरपि सुरासुरैः ॥
मानुषैरपि गन्धर्वैर्मा युद्धे चेत आधिथाः ॥५०॥

अर्जुन युद्ध में सुर और असुर सबसे अजेय है। इसको मनुष्य और गन्धर्व कोई भी नहीं जीत सकता है। तुम इससे युद्ध करने की अपने चित्त में न ठानो ॥ ५० ॥

दृश्यतां वा पुमान्कश्चित्समग्रे पार्थिवे बले ।
योऽर्जुनं समरे प्राप्य स्वस्तिमानाव्रजेद्गृहान् ॥५१॥

क्या तुमने इन सारे राजाओं की सेना में कोई ऐसा वीर देखा है, जो युद्ध में अर्जुन से उलझा हो और विना चोट खाये गृह लौट आया हो ॥ ५१ ॥

किं ते जनक्षयेणेह कृतेन भरतर्षभ ।
यस्मिञ्जितं जितं यत्स्यात्पुमानेकः स दृश्यताम् ॥५२॥

हे भरतर्षभ ! सारे मनुष्यों के क्षय करने में क्या रखा है। तुम कोई ऐसा एक पुरुष खोज लो, जो अर्जुन से जीत जावे । उसके जीतने पर ही तुम्हारी विजय मान ली जावेगी ॥ ५२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यः सदेवान्सगन्धर्वान्सयक्षासुरपन्नगान् ।
अजयत्खाण्डवप्रस्थे कस्तं युद्ध्येत मानवः ॥५३॥

जिस अर्जुन ने देव, गन्धर्व, यक्ष, असुर, पन्नग आदि जाति के वीरों को खाण्डवप्रस्थ में जीत लिया था, उस अर्जुन से युद्ध करने को कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है ॥ ५३ ॥

तथा विराटनगरे श्रूयते महदद्भुतम् ।
एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥५४॥

विराट नगर में यह अद्भुत घटना प्रत्यक्ष देखी गई थी, जो अकेले अर्जुन ने अनेक वीरों के साथ युद्ध किया था। तुम्हारे लिए यही उदाहरण पर्याप्त होना चाहिए ॥५४॥

युद्धे येन महादेवः साक्षात्सन्तोषितः शिवः ।
तमजेयमनाधृष्यं विजेतुं जिष्णुमच्युतम् ॥
आशंससीह समरे वीरमर्जुनमूर्जितम् ॥५५॥
मद्द्वितीयं पुनः पार्थं कः प्रार्थयितुमर्हति ।
युद्धे प्रतीपमायान्तमपि साक्षात्पुरन्दरः ॥५६॥

इस अर्जुन ने युद्ध में साक्षात् महादेव शंकर को भी सन्तुष्ट किया है। इस अजेय, दुराधर्ष, युद्ध से नहीं हटने वाले, जयशील यशस्वी अर्जुन से तुम युद्ध में विजयी होना चाहते हो। यदि साक्षात् इन्द्र भी हो—तो भी तुम्हारे साथ युद्ध में विरुद्ध पक्ष में आते हुए अर्जुन का सामना नहीं कर सकते हैं ॥५५-५६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाहुभ्यामुद्वहेद्भूमिं दहेत्क्रुद्ध इमाः प्रजाः ।
पातयेत्त्रिदिवाद्देवान्योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥५७॥

जो मनुष्य युद्ध में अर्जुन को जीत लेगा—वह बाहुओं से भूमि को धारण कर सकेगा और क्रुद्ध होकर इस सारी प्रजा को जला डालेगा एवं स्वर्ग से भी देवों को निकाल डालेगा ॥५७॥

पश्य पुत्रांस्तथा भ्रातॄञ्ज्ञातींस्सम्बन्धिनस्तथा ।
त्वत्कृते न विनश्येयुरिमे भरतसत्तमाः ॥५८॥

हे राजन् ! तुम इन पुत्र, भाई, बान्धव, सम्बन्धी तथा भरत-वंश के अन्य राजाओं को देखो—ये तुम्हारे कारण से कहीं नष्ट न हो जावें ॥५८॥

अस्तु शेषं कौरवाणां मा पराभूदिदं कुलम् ।
कुलघ्न इति नोच्येथा नष्टकीर्तिर्नराधिप ॥५९॥

ये कौरव-वंश बचा रहे और इस कुल का पराभव न हो। हे नराधिप ! तुम कुल नाशक कहला कर अपनी कीर्ति के नाशक न बनो ॥५९॥

त्वामेव स्थापयिष्यन्ति यौवराज्ये महारथाः ।
महाराज्येऽपि पितरं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥६०॥
मा तात श्रियमायान्तीमवमंस्थाः समुद्यताम् ।
अर्धं प्रदाय पार्थेभ्यो महतीं श्रियमाप्नुहि ॥६१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये महारथी पाण्डव, तुमको युवराज पदवी पर आरूढ़ कर लेंगे और धृतराष्ट्र ही महाराज पद पर बनें रहेंगे। हे तात! तुम आती हुई इस राज्य-लक्ष्मी का तिरस्कार न करो। तुम आधा राज्य पाण्डवों को देकर महान् यशश्री के भागी बनो ॥६०-६१॥

पाण्डवैः संशमं कृत्वा कृत्वा च सुहृदां वचः।
सम्प्रीयमाणो मित्रैश्च चिरं भद्राण्यवाप्स्यसि ॥६२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भगवद्वाक्ये चतुर्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२४॥

पाण्डवों के साथ सन्धि और मित्रों के वचनों को पूरा करके तुम मित्रों के साथ सुखों का उपभोग करते हुए चिरकाल के लिए कल्याण प्राप्त करो ॥६२॥

इति श्री महाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में भगवान् कृष्ण के वाक्य का एक सौ चौबीसवां अध्याय पूरा हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ पच्चीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततः शान्तनवो भीष्मो दुर्योधनममर्षणम् ।
केशवस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच भरतर्षभ ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे भरतर्षभ, श्रीकृष्ण के वचन सुनकर शान्तनु-पुत्र भीष्म, असहनशील दुर्योधन से कहने लगा ॥१॥

कृष्णेन वाक्यमुक्तोऽसि सुहृदां शममिच्छता ।
अन्वपद्यस्व तत्तात मा मन्युवशमन्वगाः ॥२॥

हे तात ! दुर्योधन ! अपने मित्रों के कल्याण चाहने वाले भगवान् कृष्ण ने जो वाक्य कहा है—तुम उसको मान लो और क्रोध के वश में मत पड़ो ॥२॥

अकृत्वा वचनं तात केशवस्य महात्मनः ।
श्रेयो न जातु न सुखं न कल्याणमवाप्स्यसि ॥३॥

हे तात ! जो तुम ने महात्मा श्रीकृष्ण के वचन नहीं माने—तो तुमको कभी कल्याण की प्राप्ति न हो सकेगी और न तुम को कोई ऐश्वर्य और सुख मिलेगा ॥३॥

धर्म्यमर्थ्यं महाबाहुराह त्वां तात केशवः ।
तदर्थमभिपद्यस्व मा राजन्नीनशः प्रजाः ॥४॥

हे राजन् ! महाबाहु श्रीकृष्ण ने धर्म और अर्थ के सम्पादन करने वाले वचन कहे हैं । तुम इनके तत्व को पहिचानो एवं इनके विरुद्ध चलकर प्रजा का नाश न करो ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्वलितां त्वमिमां लक्ष्मीं भारतीं सर्वराजसु ।
जीवतो धृतराष्ट्रस्य दौरात्म्याद्भ्रंशयिष्यसि ॥५॥

हे तात ! तुम सारे राजाओं में देदीप्यमान भरतवंश की राज्य-लक्ष्मी को राजा धृतराष्ट्र के जीवन में ही अपनी कुटिलता से नष्ट कर डालोगे ॥५॥

आत्मानं च सहामात्यं सपुत्रभ्रातृबान्धवम् ।
अहमित्यनया बुद्ध्या जीविताद्भ्रंशयिष्यसि ॥६॥

हे दुर्योधन ! तुम, मन्त्री-पुत्र, भाई, बन्धु एवं अपने आपके भी 'मैं ही सब कुछ हूं, इस बुद्धि से जीवनको नष्ट कर लोगे ।

अतिक्रामन्केशवस्य तथ्यं वचनमर्थवत् ।
पितुश्च भरतश्रेष्ठ विदुरस्य च धीमतः ॥७॥
मा कुलघ्नः कुपुरुषो दुर्मतिः कापथं गमः ।
मातरं पितरं चैव मा मज्जीः शोकसागरे ॥८॥

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! भगवान् केशव, अपने पिता धृतराष्ट्र और बुद्धिमान् विदुर के सत्य और अर्थ पूर्ण वचनों का अनादर करके कुल के घातक न बनो और न दुष्ट पुरुष या दुर्मति कहला कर बुरे मार्ग पर चलो । हे तात ! इस तरह तुम अपने माता पिता को शोक सागर में मत डालो ॥७-८॥

अथ द्रोणोऽब्रवीत्तत्र दुर्योधनमिदं वचः ।
अमर्षवशमापन्नं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ॥९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्मार्थयुक्तं वचनमाह त्वां तात केशवः ।
तथा भीष्मः शान्तनवस्तज्जुषस्व नराधिप ॥१०॥

इसके अनन्तर द्रोणाचार्य ने क्रोध में भरे हुए और बार २ श्वास लेते हुए दुर्योधन से कहा—हे तात ! श्रीकृष्ण ने जो वचन कहे हैं, वे धर्म और नीति के अनुसार हैं। इसी तरह शान्तनु-पुत्र भीष्म के वचन भी धर्म और नीति-पूर्ण हैं, आप उनको स्वीकार करें ॥९-१०॥

प्राज्ञौ मेधाविनौ दान्तावर्थकामौ बहुश्रुतौ ।
आहतुस्त्वां हितं वाक्यं तज्जुषस्व नराधिप ॥११॥

ये दोनों महाभाग, श्रीकृष्ण और भीष्म, विद्वान्, बुद्धिमान्, उदार, हितेच्छु और अनुभवी हैं। हे नराधिप ! इन्होंने तुमको बहुत ही हितकारी वचन कहे हैं—तुम इनको ग्रहण करो ॥११॥

अनुतिष्ठ महाप्राज्ञ कृष्णभीष्मौ यदूचतुः ।
माधवं बुद्धिमोहेन माऽवमंस्थाः परन्तप ॥१२॥

हे महाप्राज्ञ ! श्रीकृष्ण और भीष्म ने जो कुछ कहा है, तुम उसका अक्षरशः पालन करो। हे परन्तप ! तुम अपनी बुद्धि के मोह से श्रीकृष्ण के वचन की उपेक्षा न करो ॥ १२ ॥

ये त्वां प्रोत्साहयन्त्येते नैते कृत्याय कर्हिचित् ।
वैरं परेषां ग्रीवायां प्रतिमोक्ष्यन्ति संयुगे ॥१३॥

ये जो शकुनि आदि तुमको वैर के लिए प्रोत्साहित करते हैं, इनसे तुम्हारा काम नहीं चलेगा। ये सब अन्य से वैर करा कर युद्ध के समय तुम्हारी ग्रीवा (गर्दन) पर उसको छोड़ देंगे ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मा जीघनः प्रजाः सर्वाः पुत्रान्भ्रातॄंस्तथैव च ।
वासुदेवार्जुनौ यत्र विद्ध्यजेयानलं हि तान् ॥१४॥

अब तुम सारी प्रजा, पुत्र, भ्राताओं का नाश न करो। जिस पक्ष में श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं, उन वीरों को तुम अजेय समझो ॥ १४ ॥

एतच्चैव मतं सत्यं सुहृदोः कृष्णभीष्मयोः ।
यदि नाऽऽदास्यसे तात पश्चात्तप्स्यसि भारत ॥१५॥

हे भारत ! ये भीष्म और श्रीकृष्ण, तुम्हारे सुहृद हैं और इनका मत सत्य है। हे तात ! यदि तुम इनके वचनों को स्वीकार न करोगे, तो तुमको पीछे पछिताना होगा ॥ १५ ॥

यथोक्तं जामदग्न्येन भूयानेष ततोऽर्जुनः ।
कृष्णो हि देवकीपुत्रो देवैरपि सुदुःसहः ।
किं ते सुखप्रियेणेह प्रोक्तेन भरतर्षभ ॥१६॥

अर्जुन के विषय में जो कुछ जमदग्नि पुत्र परशुराम ने कहा है, वह उससे भी अधिक है। देवकीपुत्र कृष्ण तो देवों से भी दुर्जय है। हे भरतर्षभ ! तुम्हें प्रिय लगने वाली मिथ्या बातें कहने से क्या लाभ है ॥ १६ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यथेच्छसि तथा कुरु ।
नहि त्वामुत्सहे वक्तुं भूयो भरतसत्तम ॥१७॥

हमें तो जो कुछ कहना था, वह कह दिया, अब आपकी इच्छा में आवे--वह करो। हे भरतसत्तम ! हम लोगों को अब बार २ आपसे कुछ कहना उचित नहीं है ॥ १७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

तस्मिन्वाक्यान्तरे वाक्यं क्षत्ताऽपि विदुरोऽब्रवीत् ।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य धार्तराष्ट्रममर्षणम् ॥१८॥

दुर्योधन न शोचामि त्वामहं भरतर्षभ ।
इमौ तु वृद्धौ शोचामि गान्धारीं पितरं च ते ॥१९॥
यावनाथौ चरिष्येते त्वया नाथेन दुर्हृदा ।
हतमित्रौ हतामात्यौ लूनपक्षाविवाऽण्डजौ ॥२०॥
भिक्षुकौ विचरिष्येते शोचन्तौ पृथिवीमिमाम् ।
कुलघ्नमीदृशं पापं जनयित्वा कुपूरुषम् ॥२१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इसी वाक्य के बीच में बात काट कर बुद्धिमान् विदुर ने असहन शील, धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन की ओर देखकर कहा—हे भरतर्षभ ! दुर्योधन ! मुझे तुम्हारी तो कुछ चिन्ता नहीं है, किन्तु इन वृद्ध तेरे माता पिता गान्धारी और धृतराष्ट्र की अवश्य चिन्ता है। ये दोनों तुझ बुरे विचार वाले को सहायक पाकर अन्त में असहाय हो जावेंगे। इनके सारे मित्र और मंत्री मारे जावेंगे और पर कटे हुए पक्षी की भांति भिक्षक बने हुए चिन्तातुर इस पृथिवी पर घूमेंगे। यह सब कुछ कुलनाशक, पापी, दुष्ट पुरुष, तुम्हारे उत्पन्न होने का ही कारण है ॥ १८—२१ ॥

अथ दुर्योधनं राजा धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ।
आसीनं भ्रातृभिः सार्धं राजभिः परिवारितम् ॥२२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसके अनन्तर राजा धृतराष्ट्र, राजाओं से घिरे हुए और भाइयों के साथ बैठे हुए दुर्योधन से कहने लगे ॥ २२ ॥

दुर्योधन निबोधेदं शौरिणोक्तं महात्मना ।
आदत्स्व शिवमत्यन्तं योगक्षेमवदव्ययम् ॥२३॥

हे दुर्योधन ! महात्मा श्रीकृष्ण द्वारा कही हुई बात पर विचार करो। इनके वचन अविनाशी, बड़े कल्याण और हितकारी हैं। तुम इनको अवश्य ग्रहण करो ॥ २३ ॥

अनेन हि सहायेन कृष्णेनाऽक्लिष्टकर्मणा ।
इष्टान्सर्वानभिप्रायान्प्राप्स्यामः सर्वराजसु ॥२४॥

यदि उत्तम कार्य करने वाले श्रीकृष्ण, हमारे सहायक रहेंगे, तो हम सारे राजाओंमें अपने प्रिय मनोरथों को प्राप्त कर सकेंगे।

सुसंहतः केशवेन तात गच्छ युधिष्ठिरम् ।
चर स्वस्त्ययनं कृत्स्नं भरतानामनामयम् ॥०५॥

हे तात ! श्रीकृष्ण को साथ लेकर तुम युधिष्ठिर के पास जावो और इस प्रकार अपना और भरत वंश का कल्याण सम्पादन करो

वासुदेवेन तीर्थेन तात गच्छस्व संशमम् ।
कालप्राप्तमिदं मन्ये मा त्वं दुर्योधनाऽतिगाः ॥२६॥

हे दुर्योधन ! तुम संकट से उद्धार कर्ता श्रीकृष्ण के साथ जाकर सन्धि करो। यह समय दैव से प्राप्त हुआ है। तुम इसको खो न देना ॥ २६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शमं चेद्याचमानं त्वं प्रत्याख्यास्यसि केशवम् ।
त्वदर्थमभिजल्पन्तं न तवाऽस्त्यपराभवः ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीष्मादिवाक्ये पचविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२५॥

जो तुमने तुम्हारे ही कल्याण के लिए सन्धि के लिए याचना करने वाले श्रीकृष्ण की अवहेलना की, तो फिर तुम्हारा जो पराभव होगा, उसका रोकने वाला कोई नहीं है ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में भीष्म आदि के वाक्य का एक सौ पच्चीसवां अध्याय पूरा हुआ ।

एक सौ छब्बीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

धृतराष्ट्रवचः श्रुत्वा भीष्मद्रोणौ समव्यथौ ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमूचतुः शासनातिगम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! धृतराष्ट्र के वचन सुन कर भीष्म और द्रोण, इन दोनों को समान व्यथा हुई । वे दोनों शिक्षा के नहीं मानने वाले राजा दुर्योधन से यह वाक्य बोले-॥ १ ॥

यावत्कृष्णावसन्नद्धौ यावत्तिष्ठति गाण्डिवम् ।
यावद्धौम्यो न मेधाग्नौ जुहोतीह द्विषद्बलम् ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यावन्न प्रेक्षते क्रुद्धः सेनां तव युधिष्ठिरः ।
ह्रीनिषेवो महेष्वासस्तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥३॥

हे दुर्योधन ! जब तक श्रीकृष्ण और अर्जुन युद्ध के लिए तय्यार नहीं होते हैं, जब तक गाण्डीव धनुष को डोरी पर नहीं चढ़ाया गया है, जब तक धौम्य पुरोहित शत्रु के बल को अपनी हवन की अग्नि में स्वाहा नहीं करता है एवं जब तक क्रुद्ध होकर लज्जाशील, महाधनुर्धर राजा युधिष्ठिर तुम्हारी सेना को नहीं देखता है, तभी तक यह सारी मार-काट बन्द है ॥२-३॥

यावन्न दृश्यते पार्थः स्वेऽप्यनीके व्यवस्थितः ।
भीमसेनो महेष्वासस्तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥४॥

अपनी सेना में स्थित होकर सम्मुख खड़ा हुआ कुन्ती-पुत्र, महाधनुर्धर भीमसेन जब तक दिखाई नहीं देता है, तभी तक यह मार-काट शान्त है ॥४॥

यावन्न चरते मार्गान्पृतनामभिधर्षयन् ।
भीमसेनो गदापाणिस्तावत्संशाम्य पाण्डवैः ॥५॥

शत्रु सेना को छिन्न-भिन्न करता हुआ, गदाधारी भीमसेन जब तक गदा के दायें बायें मार्ग से हाथ नहीं दिखाता है, उससे प्रथम ही तुम पाण्डवों से सन्धि कर लो ॥५॥

यावन्न शातयत्याजौ शिरांसि गजयोधिनाम् ।
गदया वीरघातिन्या फलानीव वनस्पतेः ॥६॥
कालेन परिपक्वानि तावच्छाम्यतु वैशसम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन् ! जब तक भीमसेन, वीरों के नाश करने वाली अपनी गदा से वृक्षों के फलों की तरह गजारोहियों के शिरों को युद्ध में नहीं गिराते हैं, तभी तक युद्ध में होने वाली मार-काट की शान्ति कर लेनी चाहिए ॥६॥

नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥७॥
विराटश्च शिखण्डी च शैशुपालिश्च दंशिताः ।
यावन्न प्रविशन्त्येते नक्रा इव महार्णवम् ॥८॥
कृतास्त्राः क्षिप्रमस्यन्तस्तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥

हे महाभाग ! नकुल, सहदेव, पर्षतवंशोत्पन्न धृष्टद्युम्न, विराट, शिखण्डी और शैशुपालि (शिशुपाल पुत्र) आदि वीर तय्यार होकर समुद्र में नौका की भांति, शस्त्र लेकर शीघ्रता से बाण फैंकते हुए प्रविष्ट नहीं होते हैं, उससे पहिले ही सन्धि कर लेनी चाहिए ॥७-८॥

यावन्न सुकुमारेषु शरीरेषु महीक्षिताम् ।
गार्ध्रपत्राः पतन्त्युग्रास्तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥९॥

इन राजाओं के कोमल शरीरों में जब तक गृध्र-पक्षी के पक्षों से युक्त, उग्र बाण नहीं पड़ते हैं, उससे प्रथम ही होने वाली हिंसा का प्रतिकार कर लो ॥९॥

चन्दनागुरुदिग्धेषु हारनिष्कधरेषु च ।
नोरःसु यावद्योधानां महेष्वासैर्महेषवः ॥१०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृतास्त्रैः क्षिप्रमस्यद्भिर्दूरपातिभिरायसाः ।
अभिलक्ष्यैर्निपात्यन्ते तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥११॥

चन्दन, अगर आदि के लेपों से युक्त, हार कण्ठा आदि आभूषणों से सुशोभित, तुम्हारे योद्धाओं के वक्षःस्थल पर महा धनुषधारी, शस्त्रविद्या में कुशल, दूर तक बाण फैंकने वाले, लक्ष्यभेदी शत्रुवीर, जब तक लोहे के कठिन बाणों का छोड़ना आरम्भ नहीं करते हैं, उससे प्रथम ही इस विग्रह की शान्ति कर लो ॥१०-११॥

अभिवादयमानं त्वं शिरसा राजकुञ्जरः ।
पाणिभ्यां प्रतिगृह्णातु धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥१२॥
ध्वजाङ्कुशपताकाङ्कं दक्षिणं ते सुदक्षिणः ।
स्कन्धे निक्षिपतां बाहुं शान्तये भरतर्षभ ॥१३॥

हे भरतर्षभ ! हम तो यही चाहते हैं, कि तुम राजश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर को हाथ जोड़ कर शिष्टाचारानुसार प्रणाम करो और वह प्रेम-पूर्वक अपने हाथों से ध्वजा, अङ्कश, पताका आदि से चिन्हित, तुम्हारे दक्षिण बाहु को ग्रहण करके सन्धि के लिए अपने गले में डाल ले ॥१२-१३॥

रत्नौषधिसमेतेन रत्नाङ्गुलितलेन च ।
उपविष्टस्य पृष्ठं ते पाणिना परिमार्जतु ॥१४॥
शालस्कन्धो महाबाहुस्त्वां स्वजानो वृकोदरः ।
साम्नाऽभिवदतां चापि शान्तये भरतर्षभ ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे भरतर्षभ ! राजा युधिष्ठिर, रत्न और औषधि एवं रत्न-जटित अङ्गुलितल (अँगूठी) से युक्त, हाथ को शान्ति से बैठे हुए तुम्हारी पीठ पर फेरता रहे और शालवृक्ष के समान कंधों वाला, महाबाहु, वृकोदर (भीम) भी सन्धि के निमित्त तुम से मीठी २ बातें करे—हम तो यही चाहते हैं ॥१४-१५॥

अर्जुनेन यमाभ्यां च त्रिभिस्तैरभिवादितः ।
मूर्ध्नि तान्समुपाघ्राय प्रेम्णाऽभिवद पार्थिव ॥१६॥

हे राजन् ! अर्जुन, नकुल, सहदेव—ये तीनों तुमको प्रणाम करें और तुम भी उनका मस्तक सूँघ कर उनसे प्रेम-पूर्वक बातचीत करो ॥१६॥

दृष्ट्वा त्वां पाण्डवैर्वीरैर्भ्रातृभिः सह सङ्गतम् ।
यावदानन्दजाश्रूणि प्रमुञ्चन्तु नराधिपाः ॥१७॥

हे राजन् ! तुमको अपने भाई पाण्डव वीरों के साथ मेल-मिलाप से देख कर ये सारे राजा अपने आनन्द के अश्रु छोड़ें, हमें तो यही देखने की अभिलाषा है ॥१७॥

घुष्यतां राजधानीषु सर्वसम्पन्महीक्षिताम् ।
पृथिवी भ्रातृभावेन भुज्यतां विज्वरो भव ॥१८॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि
भीष्मद्रोणवाक्ये षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारे राजाओं की राजधानी में इस परस्पर सम्मेलन की घोषणा करवा दो। इस प्रकार भ्रातृप्रेम के साथ पृथिवी का भोग करो और सारी चिन्ताओं से मुक्त हो जावो ॥१८॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में भीष्म और द्रोण के वाक्य का एक सौ छब्बीसवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ सत्ताईसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

श्रुत्वा दुर्योधनो वाक्यमप्रियं कुरुसंसदि ।
प्रत्युवाच महाबाहुं वासुदेवं यशस्विनम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! कुरुओं की इस राजसभा में इस प्रकार अप्रिय वचन सुन कर राजा दुर्योधन यशस्वी, महाबाहु श्रीकृष्ण से कहने लगे ॥१॥

प्रसमीक्ष्य भवानोतद्वक्तुमर्हति केशव ।
मामेव हि विशेषेण विभाष्य परिगर्हसे ॥२॥

हे केशव! आपको अपने वचन विचार कर कहने चाहिए थे। आप तो विशेष-रीति से केवल मेरी ही निन्दा करने पर तुले हुए हो ॥२॥

भक्तिवादेन पार्थानामकस्मान्मधुसूदन ।
भवान्गर्हयते नित्यं किं समीक्ष्य बलाबलम् ॥३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे मधुसूदन ! आप पाण्डवों के भक्ति-भाव में फंस कर एक दम मेरे ऊपर निन्दा की झड़ी लगा देते हो, परन्तु मेरी समझ में नहीं आता, कि आप किस बलाबल को देख कर ऐसा कहते हो ॥३॥

भवान्क्षत्ता च राजा वाऽप्याचार्यो वा पितामहः ।
मामेव परिगर्हन्ते नाऽयं कश्चन पार्थिवम् ॥४॥

आप, विदुर, धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह केवल मेरी ही निन्दा करते हैं ये कभी अन्य राजा के तो किसी दोष का वर्णन करते ही नहीं देखे गए ॥४॥

न चाऽहं लक्षये कश्चिद्व्यभिचारमिहाऽऽत्मनः ।
अथ सर्वे भवन्तो मां विद्विषन्ति सराजकाः ॥५॥

मैं बहुत विचार कर देखता हूं—मैंने तो तुम लोगों के साथ कोई अनुचित व्यवहार भी नहीं किया है, परन्तु आप सब लोग कुछ राजाओं को साथ रख कर मुझ से ही द्वेष करते हो ॥५॥

न चाऽहं कश्चिदत्यर्थमपराधमरिन्दम ।
विचिन्तयन्प्रपश्यामि सुसूक्ष्ममपि केशव ॥६॥

हे अरिमर्दन ! केशव ! मैंने बहुत सोचा, परन्तु तुम लोगों का मैंने कोई सूक्ष्म सा भी अपराध किया हो—ऐसा मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दिया ॥६॥

प्रियाभ्युपगते द्यूते पाण्डवा मधुसूदन ।
जितः शकुनिना राज्यं तत्र किं मम दुष्कृतम् ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे मधुसूदन ! द्यूत पाण्डवों को ही अधिक प्रिय है। उसमें यदि शकुनि ने पाण्डवों का राज्य जीत लिया--तो इसमें मेरा क्या दूषण है ॥७॥

यत्पुनर्द्रविणं किञ्चित्तत्राऽजीयन्त पाण्डवाः ।
तेभ्य एवाऽभ्यनुज्ञातं तत्तदा मधुसूदन ॥८॥

हे मधुसूदन ! उस समय पाण्डवों ने भी जो कुछ द्रव्य जीता था, वह उसी समय उनको दे दिया गया ॥८॥

अपराधो न चाऽस्माकं यत्ते द्यूतैः पराजिताः ।
अजेया जयतां श्रेष्ठ पार्थाः प्रव्राजिता वनम् ॥९॥

हे जयशील ! केशव ! महाबली पाण्डव, पाँसे फैंकने में जो पराजित हो गए—तो इसमें मेरा क्या अपराध है और इस प्रकार बन में भेजे जाने में भी मेरा क्या दोष है ॥९॥

केन वाऽप्यपवादेन विरुद्ध्यन्त्यरिभिः सह ।
अशक्ताः पाण्डवाः कृष्ण प्रहृष्टाः प्रत्यमित्रवत् ॥१०॥

हे कृष्ण ! उन पाण्डवों के बोलने के लिए कौनसा स्थान शेष है, जो वे हमको शत्रु मान कर हम से विरोध करते हैं। उनकी धृष्टता देखो, कि वे अशक्त होकर भी शत्रु की भांति लड़ने को तय्यार हो रहे हैं ॥१०॥

किमस्माभिः कृतं तेषां कस्मिंवा पुनरागसि ।
धार्तराष्ट्राञ्जिघांसन्ति पाण्डवाः सृञ्जयैः सह ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमने उन लोगों का क्या बिगाड़ा है और क्या हमारा अपराध है, जिसके कारण हम धृतराष्ट्र-पुत्रों को वे सृञ्जयों (द्रुपद-पक्ष) के साथ मिलकर मारने की इच्छा कर रहे हैं ॥११॥

न चाऽपि वयमुग्रेण कर्मणा वचनेन वा ।
प्रभ्रष्टाः प्रणमामेह भयादपि शतक्रतुम् ॥१२॥

हम लोग अकड़ कर किए हुए काम और बोले हुए वचन से कभी अपने विचार से भ्रष्ट नहीं होंगे और न किसी भय से इन्द्र तक के सामने झुकेंगे ॥१२॥

न च तं कृष्ण पश्यामि क्षत्रधर्ममनुष्ठितम् ।
उत्सहेत युधा जेतुं यो नः शत्रुनिबर्हण ॥१३॥

हे शत्रु-नाशक ! कृष्ण ! मुझे तो क्षत्रिय धर्म का अनुष्ठान करने वाला कोई ऐसा वीर दिखाई नहीं देता, जो हमको युद्ध में जीतने का उत्साह दिखा सके ॥१३॥

नहि भीष्मकृपद्रोणाः सकर्णा मधुसूदन ।
देवैरपि युधा जेतुं शक्याः किमुत पाण्डवैः ॥१४॥

हे मधुसूदन ! भीष्म, कृप, द्रोण, कर्ण आदि वीरों को युद्ध में देवता भी नहीं जीत सकते, फिर बिचारे पाण्डवों की तो किसने चलाई है ॥१४॥

स्वधर्ममनुपश्यन्तो यदि माधव संयुगे ।
अस्त्रेण निधनं काले प्राप्स्यामः स्वर्ग्यमेव तत् ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे माधव ! यदि हम अपना धर्म सोचते हुए युद्धकाल में अस्त्र से मारे जावेंगे—तो क्या डर है। यह तो कर्म, स्वर्ग का देने वाला ही है ॥१५॥

मुख्यश्चैवैष नो धर्मः क्षत्रियाणां जनार्दन ।
यच्छयीमहि संग्रामे शरतल्पगता वयम् ॥१६॥

हे जनार्दन ! हम क्षत्रियों का तो यह मुख्य धर्म है, जो युद्ध में बाणों की शय्या पर सुख से शयन करें ॥१६॥

ते वयं वीरशयनं प्राप्स्यामो यदि संयुगे ।
अप्रणम्यैव शत्रूणां न नस्तप्स्यन्ति माधव ॥१७॥

हे माधव ! यदि हम वीर क्षत्रिय युद्ध में शत्रुओं के सामने विना झुके वीर गति प्राप्त करें—तो इसका हमको कुछ भी दुःख नहीं है ॥१७॥

कश्च जातु कुले जातः क्षत्रधर्मेण वर्तयन् ।
भयाद्वृत्तिं समीक्ष्यैवं प्रणमेदिह कर्हिचित् ॥१८॥

कौन ऐसा वीर होगा—जो कुल में उत्पन्न होकर, क्षत्र धर्मानुसार चलता हुआ, अपने राज्य की रक्षा देख कर भय से किसी भी तरह झुक जावे ॥१८॥

उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम् ।
अप्यपर्वणि भज्येत न नमेदिह कर्हिचित् ॥१९॥

मनुष्य को चाहिए, कि उद्योग करता रहे, क्योंकि उद्योग ही पुरुष का कर्तव्य है। चाहे असमय में ही नष्ट हो जावे, परन्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्तम मनुष्य को किसी के सन्मुख अनुचित रीति से झुकना नहीं चाहिए ॥ १९ ॥

इति मातङ्गवचनं परीप्स्यन्ति हितेप्सवः ।
धर्माय चैव प्रणमेद् ब्राह्मणेभ्यश्च मद्विधः ॥२०॥
अचिन्तयन्कञ्चिदन्यं यावज्जीवं तथाऽऽचरेत् ।
एष धर्मः क्षत्रियाणां मतमेतच्च मे सदा ॥२१॥

मेरे हितचिन्तक तो मातङ्ग मुनि के इस वचन को ही चाहते हैं, कि मुझ जैसा पुरुष केवल धर्म के लिए ब्राह्मणों के सामने ही प्रणाम करे। इसके सिवा किसी भी बलवान् शक्ति का भय मन में न आने दे। यही सारे वीर क्षत्रियों का मत है और यही मुझे भी सम्मत है ॥ २०—२१ ॥

राज्यांशश्चाऽभ्यनुज्ञातो यो मे पित्रा पुराऽभवत् ।
न स लभ्यः पुनर्जातु मयि जीवति केशव ॥२२॥

हे केशव ! मेरे पिता ने जो अनुचित रीति से पाण्डवों को पहिले राज्य का अंश दे दिया था, अब वह मेरे जीवित रहने तक पाण्डव किसी प्रकार नहीं पा सकते हैं ॥ २२ ॥

यावच्च राजा ध्रियते धृतराष्ट्रो जनार्दन ।
न्यस्तशस्त्रा वयं ते वाऽप्युपजीवाम माधव ।
अप्रदेयं पुरा दत्तं राज्यं परवतो मम ॥२३॥
अज्ञानाद्वा भयाद्वापि मयि बाले जनार्दन ।
न तदद्य पुनर्लभ्यं पाण्डवैर्वृष्णिनन्दन ॥२४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे जनार्दन ! माधव ! जब तक राजा धृतराष्ट्र जीवित हैं, तब तक तो हम और पाण्डवों को शस्त्र की चर्चा छोड़ कर व्यवहार करना चाहिए। मैं पिता के अधीन था, इससे पहिले राज्य दे दिया गया था। हे जनार्दन ! मेरे बच्चे रहने तक अज्ञान या भय से जो राज्य दिया गया था, वह अब नहीं दिया जा सकता। हे वृष्णिनंदन आप कितना ही प्रयत्न करें, वह राज्य अब नहीं मिल सकता है ॥ २३—२४॥

ध्रियमाणे महाबाहौ मयि सम्प्रति केशव।
यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विद्ध्येदग्रेण केशव ॥
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान्प्रति ॥२५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या
मुद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि दुर्योधनवाक्ये
सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७॥

हे केशव ! मुझ महाबाहु के जीवित रहने पर पैनी सुई की नोक के अग्र भाग के समान भूमि भी पाण्डवों को नहीं दी जा सकती ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में राजा दुर्योधन के वाक्य का एक सौ सत्ताईसवां अध्याय पूरा हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ अट्ठाईसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततः प्रशम्य दाशार्हः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! दुर्योधन के ये वाक्य सुनकर दशार्ह देशोत्पन्न श्रीकृष्ण की आंखें क्रोध से लाल हो गई और वे उस कुरुसभा में दुर्योधन से इस प्रकार कहने लगे ॥ १ ॥

लप्स्यसे वीरशयनं काममेतदवाप्स्यसि ।
स्थिरो भव सहामात्यो विमर्दो भविता महान् ॥२॥

हे दुर्योधन ! घबराओ मत, तुमको यह वीर-शयन प्राप्त होगा और अच्छी तरह होगा। तुम इसके लिए अपने मन्त्रियों के साथ उद्यत रहो, थोड़े ही दिनों में घमसान युद्ध होने वाला है ॥ २ ॥

यच्चैवं मन्यसे मूढ न मे कश्चिद्व्यतिक्रमः ।
पाण्डवेष्विति तत्सर्वं निबोधत नराधिपाः ॥३॥

हे मूढ़ ! तू यह मानता है, कि मैंने पाण्डवों के साथ कोई अन्याय नहीं किया, तो हे राजाओ ! तुम उस सारी बातको सुनलो।

श्रिया सन्तप्ययमानेन पाण्डवानां महात्मनाम् ।
त्वया दुर्मन्त्रितं द्यूतं सौबलेन च भारत ॥४॥

कथं च ज्ञातयस्तात श्रेयांसः साधुसम्मताः ।
अथाऽन्याय्यमुपस्थातुं जिह्मेनाऽजिह्मचारिणः ॥५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे भारत ! दुर्योधन ! महावीर पाण्डवों के ऐश्वर्य से सन्तापित होकर शकुनि के साथ सम्मति करके छल-पूर्ण द्यूत तू ने ही तो रचाया था। हे तात ! श्रेष्ठ पुरुषों में मान्य, अपने ही सज्जन छल-हीन बान्धवों के साथ तू ने कपट का व्यवहार अन्याय करने के लिए किया था ॥ ४—५ ॥

अक्षद्यूतं महाप्राज्ञ सतां मतिविनाशनम् ।
असतां तत्र जायन्ते भेदाश्च व्यसनानि च ॥६॥

हे महाप्राज्ञ ! यह पांसों से खेला जाने वाला द्यूत, सज्जनों की बुद्धि का घातक है और असज्जनों में तो इससे बड़ी फूट और विपत्ति खड़ी हो जाती है ॥ ६ ॥

तदिदं व्यसनं घोरं त्वया द्यूतमुखं कृतम् ।
असमीक्ष्य सदाचारैः सार्धं पापानुबन्धनैः ॥७॥

हे राजन् ! तुमने द्यूत के रूप में यह महाघोर विपत्ति सदाचारी पुरुषों की उपेक्षा और पापाचारी पुरुषों की सम्मति से बुला ली है।

कश्चाऽन्यो भ्रातृभार्यां वै विप्रकर्तुं तथाऽर्हति ।
आनीय च सभां व्यक्तं यथोक्ता द्रौपदी त्वया ॥८॥

कौन ऐसा पुरुष होगा, जो अपनी भाई की स्त्री को इस तरह अपमानित कर सकता है, जैसे सभा में लाकर सबके सम्मुख तू ने द्रौपदी से कहा था ॥ ८ ॥

कुलीना शीलसम्पन्ना प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।
महिषी पाण्डुपुत्राणां तथा विनिकृता त्वया ॥९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह कुल में उत्पन्न, सदाचार से युक्त, पाण्डवों की महिषी द्रौपदी, जो उनको प्राणों से भी अधिक प्रिय थी, उसको तू ने इस तरह से अपमानित किया ॥ ९ ॥

जानन्ति कुरवः सर्वे यथोक्ताः कुरुसंसदि ।
दुःशासनेन कौन्तेयाः प्रव्रजन्तः परन्तपाः ॥१०॥

ये सारे कौरव जानते हैं, कि वन में जाते हुए शत्रु-विजयी पाण्डवों से कौरव-सभा में दुःशासन ने क्या वचन कहे थे ॥१०॥

सम्यग्वृत्तेष्वलुब्धेषु सततं धर्मचारिषु ।
स्वेषु बन्धुषु कः साधुश्चरेदेवमसाम्प्रतम् ॥११॥

जो धर्मानुसार वर्ताव करने वाले, लालचहीन, धर्मात्मा, अपने ही बान्धव हैं, उनके साथ कौन ऐसा सज्जन होगा, जो ऐसा अनुचित व्यवहार करेगा ॥ ११ ॥

नृशंसानामनार्याणां पुरुषाणां च भाषणम् ।
कर्णदुःशासनाभ्यां च त्वया च बहुशः कृतम् ॥१२॥

जो नीच अनार्य पुरुषों की भाषण शैली है, उसी का कर्ण, दुःशासन और तुमने बार २ ग्रहण किया है ॥ १२ ॥

सह मात्रा प्रदग्धुं तान्बालकान्वारणावते ।
आस्थितः परमं यत्नं न समृद्धं च तत्तव ॥१३॥

हे दुर्योधन ! तुमने वारणावत नगर में अपनी माता के साथ उन बालकों को ही दग्ध कर देना चाहा। इसके लिए तुमने बड़ा गाढ़ा प्रयत्न भी किया, परन्तु तुम उसमें सफल नहीं हुए ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऊषुश्च सुचिरं कालं प्रच्छन्नाः पाण्डवास्तदा ।
मात्रा सहैकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने ॥१४॥

उस समय पाण्डव, बहुत काल तक छुपे २ एकचक्रा नगरी में ब्राह्मणों के घर पर निवास करते रहे ॥१४॥

विषेण सर्पबन्धैश्च यतिताः पाण्डवास्त्वया ।
सर्वोपायैर्विनाशाय न समृद्धं च तत्तव ॥१५॥

हे दुर्योधन ! विष, सर्पबन्धन आदि दुरुपायों से तुमने पाण्डवों के नाश का प्रयत्न किया, परन्तु तुम्हारे वे उपाय सिद्धि को प्राप्त नहीं हुए ॥१५॥

एवं बुद्धिः पाण्डवेषु मिथ्यावृत्तिः सदा भवान् ।
कथं ते नाऽपराधोऽस्ति पाण्डवेषु महात्मसु ॥१६॥

जब तुम्हारी पाण्डवों के प्रति इस तरह की बुद्धि और ऐसा अनुचित व्यवहार है–तो फिर महात्मा पाण्डवों का तुमने कैसे अपराध नहीं किया है ॥१६॥

यच्चैभ्यो याचमानेभ्यः पित्र्यमंशं न दित्ससि ।
तत्र पाप प्रदाताऽसि भ्रष्टैश्वर्यो निपातितः ॥१७॥

हे पापी ! दुर्योधन ! जो तुम इस समय मांगने पर भी उनके राज्य को नहीं देते हो–तो फिर ऐश्वर्य से भ्रष्ट होकर युद्ध में वध को प्राप्त होकर प्रदान करोगे ॥१७॥

कृत्वा बहून्यकार्याणि पाण्डवेषु नृशंसवत् ।
मिथ्यावृत्तिरनार्यः सन्नद्य विप्रतिपद्यसे ॥१८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम, पाण्डवों के साथ नीचों की तरह अनेक अन्याय के कर्म करके उनके साथ असत्य आचरण कर रहे हो। इस तरह अनार्य वृत्ति को धारण करके भी तुम आज उसकी लीपा पोती करना चाहते हो ॥१८॥

मातापितृभ्यां भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च ।
शाम्येति मुहुरुक्तोऽसि न च शाम्यसि पार्थिव ॥१९॥

हे राजन्! माता पिता, भीष्म, द्रोण और विदुर ने तुमसे अनेक बार सन्धि करने को कहा, परन्तु तुम उसके लिए तय्यार नहीं होते हो ॥१९॥

शमे हि सुमहाँल्लाभस्तव पार्थस्य चोभयोः ।
न च रोचयसे राजन्किमन्यद् बुद्धिलाघवात् ॥२०॥

इस सन्धि में तुमको और पाण्डव, दोनों को ही महान् लाभ है, परन्तु तुमको यह अच्छा नहीं लगता है। इसमें बुद्धि की न्यूनता के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ॥२०॥

न शर्म प्राप्स्यसे राजन्नुत्क्रम्य सुहृदां वचः ।
अधर्म्यमयशस्यं च क्रियते पार्थिव त्वया ॥२१॥

हे राजन्! अपने हितकारी मित्रों के वचनों को न मानकर तुमको कल्याण प्राप्त नहीं हो सकता है। हे महीपाल! तुम यह बड़ा अधर्म और अयशस्कर कर्म कर रहे हो ॥२१॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं ब्रुवति दाशार्हे दुर्योधनममर्षणम् ।
दुःशासन इदं वाक्यमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥२२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न चेत्सन्धास्यसे राजन्स्वेन कामेन पाण्डवैः ।
बध्वा किल त्वां दास्यन्ति कुन्तीपुत्राय कौरवाः ॥२३॥
वैकर्तनं त्वां च मां च त्रीनेतान्मनुजर्षभ ।
पाण्डवेभ्यः प्रदास्यन्ति भीष्मो द्रोणः पिता च ते ।२४।

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इस प्रकार दशार्ह-देश-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण के कहने पर कौरव सभा में दुःशासन असहिष्णु दुर्योधन से बोला—हे राजन् ! जो तुम अपनी इच्छा से पाण्डवों के साथ सन्धि न करोगे, तो ये सारे कौरव तुमको बांधकर पाण्डवों को सौंप देंगे । ये कौरव ही क्या ? तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र, भीष्म और द्रोण, सूर्य-पुत्र कर्ण तुम्हें और मुझे पाण्डवों को सौंपे बिना न रहेंगे ॥२२-२४॥

भ्रातुरेतद्वचः श्रुत्वा धार्त्तराष्ट्रः सुयोधनः ।
क्रुद्धः प्रातिष्ठतोत्थाय महानाग इव श्वसन् ॥२५॥
विदुरं धृतराष्ट्रं च महाराजं च बाह्लिकम् ।
कृपं च सोमदत्तं च भीष्मं द्रोणं जनार्दनम् ॥२६॥
सर्वानेताननादृत्य दुर्मतिर्निरपत्रपः ।
अशिष्टवदमर्यादो मानी मान्यावमानिता ॥२७॥

अपने भाई दुःशासन के ये वचन सुनकर विदुर, धृतराष्ट्र, महाराज बाल्हिक, कृप, सोमदत्त, भीष्म, द्रोण, जनार्दन कृष्ण आदि वीरों का अनादर करके दुर्मति निर्लज्ज, अनार्यों की भांति,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मर्यादा हीन, अभिमानी, मान्य पुरुषों का अपमान करने वाला, धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन क्रुद्ध होकर सर्प की तरह श्वास लेता हुआ वहां से खड़ा होकर चल दिया ॥२५-२७॥

तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य भ्रातरो मनुजर्षभ ।
अनुजग्मुः सहामात्या राजानश्चापि सर्वशः ॥२८॥

हे मनुजर्षभ ! उसको चलता हुआ देखकर सारे भाई और अनेक राजा अपने मन्त्रियों के साथ उसके पीछे २ चल दिए ॥२८॥

सभायामुत्थितं क्रुद्धं प्रस्थितं भ्रातृभिः सह ।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥२९॥

सभा में खड़े होकर क्रोध पूर्ण दुर्योधन को अपने भाइयों के साथ जाता हुआ देख कर शान्तनु-पुत्र भीष्म ने कहा-॥२९॥

धर्मार्थावभिसन्त्यज्य संरम्भं योऽनुमन्यते ।
हसन्ति व्यसने तस्य दुर्हृदो न चिरादिव ॥३०॥

जो मनुष्य, धर्म और नीति को छोड़ कर क्रोध के वशीभूत हो जाता है—उसके शत्रु थोड़े ही दिन में उसकी विपत्ति को देख कर हँसते हैं ॥३०॥

दुरात्मा राजपुत्रोऽयं धार्त्तराष्ट्रोऽनुपायकृत् ।
मिथ्याभिमानी राज्यस्य क्रोधलोभवशानुगः ॥३१॥

यह धृतराष्ट्र-पुत्र, दुर्योधन, दुरात्मा राजकुमार है । यह अपने कार्य के उलटे उपाय करना जानता है । इसको बड़ा मिथ्या अभिमान है और राज्य के लालच से क्रोध और लोभ के वश में हो रहा है ॥३१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालपक्वमिदं मन्ये सर्वं क्षत्रं जनार्दन ।
सर्वे ह्यनुसृता मोहात्पार्थिवाः सह मन्त्रिभिः ॥३२॥

हे जनार्दन ! मैं इस सारे क्षत्रिय-समाज को काल से परिपक्व हुआ समझता हूँ, जो ये सारे राजा, मन्त्रियों के साथ अज्ञान-पूर्वक इसके साथ उठ गए हैं ॥३२॥

भीष्मस्याऽथ वचः श्रुत्वा दाशार्हः पुष्करेक्षणः ।
भीष्मद्रोणमुखान्सर्वानभ्यभाषत वीर्यवान् ॥३३॥

भीष्म के वचन सुनकर कमल के समान नेत्रधारी दशार्ह-देशोत्पन्न वीर्यवान् श्रीकृष्ण, भीष्म, द्रोण आदि कौरवोंसे कहने लगे

सर्वेषां कुरुवृद्धानां महानयमतिक्रमः ।
प्रसह्य मन्दमैश्वर्ये न नियच्छत यन्नृपम् ॥३४॥

यह आज सारे कुरुवंश के वृद्धों का महान् मर्यादा का त्याग है, जो इस निर्बुद्धि दुर्योधन को बलपूर्वक ऐश्वर्यजनक धर्म कार्य में नियुक्त नहीं किया जाता है ॥३४॥

तत्र कार्यमहं मन्ये कालप्राप्तमरिन्दमाः ।
क्रियमाणे भवेच्छ्रेयस्तत्सर्वं शृणुताऽनघाः ॥३५॥

हे अरिमर्दन ! इस समय के अनुसार मुझे तो एक यही कार्य उचित प्रतीत दीखता है, जिसके करने से अब भी कल्याण हो सकता है ॥३५॥

प्रत्यक्षमेतद्भवतां यद्वक्ष्यामि हितं वचः ।
भवतामानुकूल्येन यदि रोचेत भारताः ॥३६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भोजराजस्य वृद्धस्य दुराचारो ह्यनात्मवान् ।
जीवतः पितुरैश्वर्यं हृत्वा मृत्युवशं गतः ॥३७॥

हे भरत-वंश-श्रेष्ठ ! महाभागे ! जो हितकारी वचन मैं कहना चाहता हूँ, यदि तुम उसको पसन्द कर लोगे, तो वह तुम्हारी अनुकूलता से सिद्ध हो जावेगा। तुमको यह प्रत्यक्ष है; कि वृद्ध भोजराज (उग्रसेन) का दुराचारी, आत्मबल से हीन, पुत्र कंस जीवित ही अपने पिता का राज्य छीन कर मृत्यु को प्राप्त हुआ था ॥३६-३७॥

उग्रसेनसुतः कंसः परित्यक्तः स बान्धवैः ।
ज्ञातीनां हितकामेन मया शस्तो महामृधे ॥३८॥

इस उग्रसेन के पुत्र कंस को इसके बान्धवों ने छोड़ दिया। उन बन्धु-बान्धवों के हित के लिए ही मैंने उसको महा-युद्ध में मार दिया ॥३८॥

आहुकः पुनरस्माभिर्ज्ञातिभिश्चापि सत्कृतः ।
उग्रसेनः कृतो राजा भोजराजन्यवर्धनः ॥३९॥

अपने बान्धवों के साथ हमने आहुक राजा बनाया और उग्रसेन को भोजवंश पर अभिषिक्त किया ॥३९॥

कंसमेकं परित्यज्य कुलार्थे सर्वयादवाः ।
सम्भूय सुखमेधन्ते भारताऽन्धकवृष्णयः ॥४०॥

हे भारत ! सारे यादवों ने अपने कुल की रक्षा के लिए अकेले कंस को छोड़ दिया, इससे सारे अन्धक और वृष्णि इकट्ठे ही सुख भोग रहे हैं ॥४०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपि चाप्यवदद्राजन्परमेष्ठी प्रजापतिः ।
व्यूढे देवासुरे युद्धेऽभ्युद्यतेष्वायुधेषु च ॥४१॥
द्वैधीभूतेषु लोकेषु विनश्यत्सु च भारत ।
अब्रवीत्सृष्टिमान्देवो भगवाँल्लोकभावनः ॥४२॥
पराभविष्यन्त्यसुरा दैतेया दानवैः सह ।
आदित्या वसवो रुद्रा भविष्यन्ति दिवौकसः ॥४३॥

हे राजन् ! जब देवासुर संग्राम हो रहा था । दोनों ओर से शस्त्र खड़क रहे थे—दो भागों में संसार होकर नष्ट होने लगा था, उस समय परमेष्ठी, सृष्टिकर्ता, लोक-पूज्य भगवान् ब्रह्मा ने बार २ कहा था, कि दानवों के साथ दैत्य और असुर पराजित होंगे और आदित्य, वसु और रुद्र आदि देवता विजयी होंगे ॥४३॥

देवासुरमनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः ।
अस्मिन्युद्धे सुसंक्रुद्धा हनिष्यन्ति परस्परम् ॥४४॥

देव, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, उरग, राक्षस, इस युद्ध में परस्पर क्रुद्ध होकर एक दूसरे का विनाश करेंगे ॥४४॥

इति मत्वाऽब्रवीद्धर्मं परमेष्ठी प्रजापतिः ।
वरुणाय प्रयच्छैतान्बध्वा दैतेयदानवान् ॥४५॥

यह जानकर परमेष्ठी प्रजापति ने धर्म से कहा, कि तुम इन दैत्य और दानवों को बांध कर वरुण को सौंप दो ॥४५॥

एवमुक्तस्ततो धर्मो नियोगात्परमेष्ठिनः ।
वरुणाय ददौ सर्वान्बध्वा दैतेयदानवान् ॥४६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मा के इतना कहने पर परमेष्ठी ब्रह्मा की आज्ञा से धर्म ने सारे दैत्य और दानवों को बांध कर वरुण को सौंप दिया ॥४६॥

तान्बध्वा धर्मपाशैश्च स्वैश्च पाशैर्जलेश्वरः ।
वरुणः सागरे यत्तो नित्यं रक्षति दानवान् ॥४७॥

वरुण भी, धर्म की पाशों से बांधे हुए, इन दैत्य दानवों को अपनी पाशों से दृढ़ बांध कर सदा समुद्र में सुरक्षित रखता है ॥४७॥

तथा दुर्योधनं कर्णं शकुनिं चाऽपि सौबलम् ।
बध्वा दुःशासनं चापि पाण्डवेभ्यः प्रयच्छत ॥४८॥

इसी तरह दुर्योधन, कर्ण, सुबल-पुत्र शकुनि और दुःशासन को बांध कर सचमुच पाण्डवों को सौंप दो ॥४८॥

त्यजेत्कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्याऽर्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्याऽर्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥४९॥

राजन्दुर्योधनं बध्वा तत संशाम्य पाण्डवैः ।
त्वत्कृते न विनश्येयुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥५०॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णवाक्ये अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२८।

कुल की रक्षा के लिए एक पुरुष, ग्राम की रक्षा के लिए एक कुल, देश की रक्षा के लिए ग्राम को छोड़ दे और आत्मबल की रक्षा के लिए पृथिवी तक का परित्याग कर दे। हे राजन् ! धृतराष्ट्र !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम दुर्योधन को बांध कर पाण्डवों के साथ सन्धि कर लो। हे क्षत्रियर्षभ ! तुम्हारे कारण से इन क्षत्रियों का विनाश नहीं होना चाहिए ॥५०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में कृष्ण-वाक्य का एक सौ अट्ठाईसवां अध्याय पूरा हुआ

एक सौ उनतीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

कृष्णस्य तु वचः श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
विदुरं सर्वधर्मज्ञं त्वरमाणोऽभ्यभाषत ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! श्रीकृष्ण के वचन सुन कर राजा धृतराष्ट्र ने बड़ी शीघ्रता से सब धर्मों के जानने वाले विदुर से कहा ॥ १ ॥

गच्छ तात महाप्राज्ञां गान्धारीं दीर्घदर्शिनीम् ।
आनयेह तया सार्धमनुनेष्यामि दुर्मतिम् ॥२॥

हे तात ! तुम परिणाम के समझने वाली, महा-बुद्धिमती गान्धारी के पास जाओ और उनको यहाँ ले आओ। मैं उनके साथ ही इस दुर्मति दुर्योधन को शिक्षा दूंगा ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि साऽपि दुरात्मानं शमयेद्दुष्टचेतसम् ।
अपि कृष्णस्य सुहृदस्तिष्ठेम वचने वयम् ॥३॥

यदि वह भी इस दुष्ट विचार वाले दुर्योधन को समझा कर ही शान्त करना चाहेगी, तो हम लोग अवश्य अपना हित चाहने वाले श्रीकृष्ण के वचन में तत्पर होंगे ॥ ३ ॥

अपि लोभाभिभूतस्य पन्थानमनुदर्शयेत् ।
दुर्बुद्धेर्दुःसहायस्य शमार्थं ब्रुवती वचः ॥४॥

सम्भव है, कि दुर्बुद्धि और दुष्टों की सहायता वाले, लोभ से पराभूत दुर्योधन को शान्त वचन कह कर ही गान्धारी उचित मार्ग दिखला दे ॥ ४ ॥

अपि नो व्यसनं घोरं दुर्योधनकृतं महत् ।
शमयेच्चिररात्राय योगक्षेमवदव्ययम् । ॥५॥

सम्भव है, वह दुर्योधन द्वारा खड़ी की हुई इस घोर विपत्ति को शान्त कर दे । यदि ऐसा करने में वह सफल हो गई, तो बहुत काल के लिए हमारा स्थायी कल्याण होगा ॥ ५ ॥

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा विदुरो दीर्घदर्शिनीम् ।
आनयामास गान्धारीं धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥६॥

राजा धृतराष्ट्र के वचन सुन कर उनकी आज्ञा से महामति विदुर, दीर्घ-दर्शिनी गान्धारी को सभा में ले आया ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—

एष गान्धारि पुत्रस्ते दुरात्मा शासनातिगः ।
ऐश्वर्यलोभादैश्वर्यं जीवितं च प्रहास्यति ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धृतराष्ट्र ने कहा—हे गान्धारी ! यह तुम्हारा पुत्र बड़ा दुरात्मा और हमारी आज्ञा का नहीं मानने वाला है। यह ऐश्वर्य के लोभ से अपने ऐश्वर्य और प्राणों को खोना चाहता है ॥ ७॥

अशिष्टवदमर्यादः पापैः सह दुरात्मवान् ।
सभाया निर्गतो मूढो व्यतिक्रम्य सुहृद्वचः ॥८॥

यह दुरात्मा अपने पापी साथियों के साथ, मर्यादा छोड़ कर अनार्यों की तरह मूर्ख, मित्रों के वचनों का तिरस्कार करके सभा से उठ गया है ॥ ८ ॥

वैशम्पायन उवाच—

सा भर्तृवचनं श्रुत्वा राजपुत्री यशस्विनी ।
अन्विच्छन्ती महच्छ्रेयो गान्धारी वाक्यमब्रवीत् ॥९॥

वैशम्पायन बोले—यशस्विनी, राजकन्या गान्धारी, अपने भर्ता के ये वचन सुनकर कल्याण की कामना करती हुई कहने लगी ॥९॥

गान्धार्युवाच—

आनायय सुतं क्षिप्रं राज्यकामुकमातुरम् ।
न हि राज्यमशिष्टेन शक्यं धर्मार्थलोपिना ॥१०॥
आप्तुमाप्तं तथापीदमविनीतेन सर्वथा ।
त्वं ह्येवाऽत्र भृशं गर्ह्यो धृतराष्ट्र सुतप्रियः ॥११॥

हे राजन् ! तुम राज्य के लोभी और राज्य-प्राप्ति के लिए अतीव व्याकुल पुत्र को यहां शीघ्र बुलवाओ। धर्म और नीति के लोप करने वाले, असभ्य पुरुष को कहीं राज्य की प्राप्ति हो सकती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, परन्तु इस उदण्ड ने भी राज्य को प्राप्त कर लिया है। हे धृतराष्ट्र ! इस विषय में तुम ही अधिक निन्दा के योग्य हो, जो अपने पुत्र के साथ अनुचित प्रेम करते हो ॥ १०—११ ॥

यो जानन्पापतामस्य तत्प्रज्ञामनुवर्तसे ।
स एष काममन्युभ्यां प्रलब्धो लोभमास्थितः ॥१२॥
अशक्योऽद्य त्वया राजन्विनिवर्तयितुं बलात् ।

तुम अपने इस पुत्र के पाप व्यवहार को जानते हुए भी उसी की बुद्धि के अनुसार चल पड़ते हो। वह तो काम और शोक से दबाया हुआ लोभ में फँस रहा है। हे राजन् ! अब तुम उसको बल-पूर्वक भी इस दुराग्रह से नहीं हटा सकते हो ॥ १२ ॥

राष्ट्रप्रदाने मूढस्य बालिशस्य दुरात्मनः ॥१३॥
दुःसहायस्य लुब्धस्य धृतराष्ट्रोऽश्नुते फलम् ।

राज्य के लौटाने के तत्व को नहीं जानने वाले मूर्ख, दुरात्मा, दुष्टों के साथी, लोभी पुत्र के कर्मों के फल अब धृतराष्ट्र अवश्य भोगेगा ॥ १३ ॥

कथं हि स्वजने भेदमुपेक्षेत महीपतिः
भिन्नं हि स्वजनेन त्वां प्रहसिष्यन्ति शत्रवः ॥१४॥

अपने स्वजनों के साथ प्राप्त हुए भेद (फूट) की तुमने राजा होकर भी क्यों उपेक्षा की। अब अपने परिवार के साथ भेद को प्राप्त हुए तुमको देखकर तुम्हारे शत्रु तुम पर हँसेंगे ॥ १४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाभारत चित्र संख्या ६५

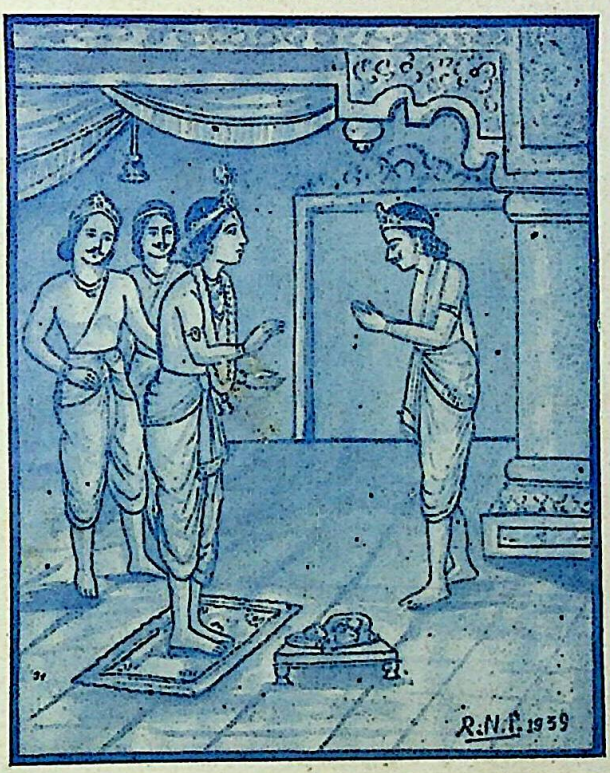

भगवान कृष्ण का महात्मा विदुर के घर जाना

महाभारत उद्योग पर्व अ० ८९ । २३ पृष्ठ १३५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

या हि शक्या महाराज साम्नां भेदेन वा पुनः ।
निस्तर्तुमापदः स्वेषु दण्डं कस्तत्र पातयेत् ॥१५॥

हे महाराज ! जिन विपत्तियों से सन्धि या भेद द्वारा ही उद्धार पाया जा सकता है, उनमें फिर युद्ध की तय्यारी करने की क्या आवश्यकता है ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच—

शासनाद्धृतराष्ट्रस्य दुर्योधनममर्षणम् ।
मातुश्च वचनात्क्षत्ता सभां प्रावेशयत्पुनः ॥१६॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा और माता गान्धारी के वचनों से बुद्धिमान् विदुर, फिर असहिष्णु दुर्योधन को राजसभा में ले आया ॥ १६ ॥

स मातुर्वचनाकांक्षी प्रविवेश पुनः सभाम्
अभिताम्रेक्षणः क्रोधान्निःश्वसन्निव पन्नगः ॥१७॥

यह दुर्योधन अपनी माता के वचन सुनने के लिए फिर सभा में आया । इसकी आंखें लाल हो रही थी और यह सांप की तरह श्वास ले रहा था ॥ १७ ॥

तं प्रविष्टमभिप्रेक्ष्य पुत्रमुत्पथमास्थितम् ।
विगर्हमाणा गान्धारी शमार्थं वाक्यमब्रवीत् ॥१८॥

मार्ग छोड़कर चलने वाले अपने पुत्र को सभा में आया हुआ देखकर उसकी निन्दा करती हुई, गान्धारी उसको शान्त करने के लिए वाक्य बोली ॥ १८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधन निबोधेदं वचनं मम पुत्रक ।
हितं ते सानुबन्धस्य तथाऽऽयत्यां सुखोदयम् ।१९।

हे पुत्र ! दुर्योधन ! तुम मेरे वचनों को अच्छी तरह समझ लो, ये तुम्हारे साथियों के साथ तुम्हारा हित करने वाले हैं और भविष्य में इनसे बड़ा सुख प्राप्त होगा ॥ १९ ॥

दुर्योधन यदाह त्वां पिता भरतसत्तम ।
भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता सुहृदां कुरु तद्वचः ॥२०॥

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! दुर्योधन ! तुम्हारे पिता, भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर जो कुछ कर रहे हैं, तुम इन हित करने वालों के वचनों को अवश्य करो ॥ २० ॥

भीष्मस्य तु पितुश्चैव मम चाऽपचितिः कृता ।
भवेद् द्रोणमुखानां च सुहृदां शाम्यता त्वया ॥२२॥

यदि तुम शान्त होकर इन वचनों को मान लोगे, तो अपने पिता, भीष्म, मेरी और द्रोण आदि तुम्हारे हितकर्ताओं की इससे बड़ी पूजा होगी ॥ २१ ॥

नहि राज्यं महाप्राज्ञ स्वेन कामेन शक्यते ।
अवाप्तुं रक्षितुं वापि भोक्तुं भरतसत्तम ॥२२॥

हे महाप्राज्ञ ! भरत-सत्तम ! यह विशाल राज्य अपनी कामना से प्राप्त नहीं हो सकता और न इसकी इस तरह रक्षा या भोग हो सकता है ॥२२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न ह्यवश्येन्द्रियो राज्यमश्नीयाद्दीर्घमन्तरम् ।
विजितात्मा तु मेधावी स राज्यमभिपालयेत् ॥२३॥

जो इन्द्रियों के वश में हो जाता है, वह दीर्घकाल तक राज्य का सुख नहीं भोग सकता है। जो अपनी आत्मा को जीते हुए हैं, वही बुद्धिमान् राज्य का पालन कर सकता है ॥२३॥

कामक्रोधौ हि पुरुषमर्थेभ्यो व्यपकर्षतः ।
तौ तु शत्रून्विनिर्जित्य राजा विजयते महीम् ॥२४॥

ये काम और क्रोध, मनुष्य को अपने स्वार्थ से भ्रष्ट कर देते हैं। यदि इन शत्रुओं को राजा जीत लेता है, तो वह सारी पृथिवी को जीत लेता है ॥२४॥

लोकेश्वरप्रभुत्वं हि महदेतद्दुरात्मभिः ।
राज्यं मामेप्सितं स्थानं न शक्यमभिरक्षितुम् ॥२५॥

यह संसार भर का शासन और इसकी प्रभुता बहुत विशाल है। राज्य की प्राप्ति करना सब चाहते हैं, परन्तु दुरात्मा इसकी प्राप्ति या रक्षा नहीं कर सकते हैं ॥२५॥

इन्द्रियाणि महत्प्रेप्सुर्नियच्छेदर्थधर्मयोः ।
इन्द्रियैर्नियतैर्बुद्धिर्वर्धतेऽग्निरिवेन्धनैः ॥२६॥

अपने महान् लक्ष्य सिद्धि का चाहने वाला, अर्थ और धर्म के कार्यों में अपनी इन्द्रियों को वश में रखे। जब इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं- तो इन्धन से अग्नि की तरह बुद्धि बढ़ने लगती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अविधेयानि हीमानि व्यापादयितुमप्यलम् ।
अविधेया इवाऽदान्ता हयाः पथि कुसारथिम् ॥२७॥

यदि इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं, तो पुरुष के नष्ट कर देने में ये इस तरह समर्थ नहीं हैं, जैसे विना सिखाए हुए उद्दण्ड अश्व मार्ग में कुसारथि को नष्ट करते हैं ॥२७॥

अविजित्य य आत्मानममात्यान्विजिगीषते ।
अमित्रान्वाऽजितामात्यः सोऽवशः परिहीयते ॥२८॥

जिसने अपनी आत्मा पर अधिकार नहीं किया और वह मन्त्रियों को वश में करना चाहता है या अपने मन्त्रियों को वश में किये विना ही शत्रुओं को जीतने की अभिलाषा करता है, वह पराजित होकर अपने कार्य की सिद्धि से भ्रष्ट हो जाता है ॥२८॥

आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण योजयेत् ।
ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोऽघं विजिगीषते ॥२९॥

उत्तम पुरुष प्रथम अपनी इन्द्रियों को शत्रु समझे और फिर मन्त्री और शत्रुओं को वश में करे। जो इस प्रकार करता है, उसका प्रयत्न निष्फल नहीं होता है ॥२९॥

वश्येन्द्रियं जितामात्यं धृतदण्डं विकारिषु ।
परीक्ष्यकारिणं धीरमत्यर्थं श्रीर्निषेवते ॥३०॥

जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया, मन्त्रियों को जीत लिया एवं जो विरुद्ध होने की चेष्टा करते हैं, इनको दण्ड देकर दबा दिया, ऐसे विचार कर कर्म करने वाले, धीर पुरुष को राज्यलक्ष्मी चिरकाल तक सेवन करती है ॥३०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुभौ ।
कामक्रोधौ शरीरस्थौ प्रज्ञानं तौ विलुम्पतः ॥३१॥

छोटे २ छिद्र वाले जाल में जैसे दो मछली तड़फड़ाती है, वैसे ही मनुष्य के शरीर में काम और क्रोध चेष्टा करते हुए मनुष्य के विज्ञान का लोप करते हैं ॥३१॥

याभ्यां हि देवाः स्वर्यातुः स्वर्गस्य पिदधुर्मुखम् ।
बिभ्यतोऽनुपरागस्य कामक्रोधौ स्म वर्धितौ ॥३२॥

इन काम और क्रोध के कारण ही देवता स्वर्ग में जाने वाले मनुष्य के लिए स्वर्ग का द्वार बन्द रखते हैं। पापों से डरने वाले, अनासक्त पुरुष के भी काम और क्रोध बढ़ जाते है ॥३२॥

कामं क्रोधं च लोभं च दम्भं दर्पं च भूमिपः ।
सम्यग्विजेतुं यो वेद स महीमभिजायते ॥३३॥

जो राजा काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, अभिमान को अच्छी तरह जीतना जानता है, वही सारी पृथिवी को विजय कर सकता है।

सततं निग्रहे युक्तं इन्द्रियाणां भवेन्नृपः ।
ईप्सन्नर्थं च धर्मं च द्विषतां च पराभवम् ॥३४॥

जो राजा, अपनी इन्द्रियों को सदा वश में रखने में समर्थ होता है, वही अपने अर्थ और धर्म की सिद्धि तथा शत्रुओं का पराभव कर सकता है ॥३४॥

कामाभिभूतः क्रोधाद्वा यो मिथ्या प्रतिपद्यते ।
स्वेषु चाऽन्येषु वा तस्य न सहाया भवन्त्युत ॥३५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो काम या क्रोध के वश में होकर मिथ्या आचरण करता है, उसका अपने या परायों में से कोई भी सहायक नहीं होता है।

एकीभूतैर्महाप्राज्ञैः शूरैररिनिबर्हणैः ।
पाण्डवैः पृथिवीं तात भोक्ष्यसे सहितः सुखी ॥३६॥

हे तात ! एकता से रहने वाले, महाबुद्धिमान् शूरवीर; शत्रु के जीतने में समर्थ, पाण्डवों के साथ सन्धि करके तुम सुख के साथ पृथिवी का भोग कर सकोगे ॥३६॥

यथा भीष्मः शान्तनवो द्रोणश्चापि महारथः ।
आहतुस्तात तत्सत्यमजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥३७॥

हे तात ! शान्तनु-पुत्र भीष्म, महारथी द्रोण ने जो कहा है—वह सत्य है। ये कृष्ण और अर्जुन वास्तव में अजेय हैं ॥३७॥

प्रपद्यस्व महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।
प्रसन्नो हि सुखाय स्यादुभयोरेव केशवः ॥३८॥

उत्तम कर्म करने वाले, महाबाहु कृष्ण से मेल करना ही अच्छा है। यदि ये केशव प्रसन्न होंगे—तो इसमें तुम कौरव और पाण्डव दोनों का हित है ॥३८॥

सुहृदामर्थकामानां यो न तिष्ठति शासने ।
प्राज्ञानां कृतविद्यानां स नरः शत्रुनन्दनः ॥३९॥

हित करने वाले बुद्धिमान् और विद्वान् मित्रों की शिक्षा में जो मनुष्य नहीं चलता है, वह अन्त में शत्रुओं का आनन्दित करने वाला होता है ॥३९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न युद्धे तात कल्याणं न धर्मार्थौ कुतः सुखम् ।
न चापि विजयो नित्यं मा युद्धे चेत आधिथाः ॥४०॥

हे तात ! युद्ध में कल्याण नहीं है और न धर्म या अर्थ की सिद्धि है, फिर सुख की तो चर्चा ही क्या है । इस तरह विजय भी नहीं मिल सकती, इसलिए तुम युद्ध में अपने मन को न लगाओ ॥४०॥

भीष्मेण हि महाप्राज्ञ पित्रा ते बाह्लिकेन च ।
दत्तोंऽशः पाण्डुपुत्राणां भेदाद्भीतैररिन्दम ॥४१॥

हे महाप्राज्ञ ! अरिन्दम ! भीष्म, बाह्लिक और तुम्हारे पिता ने सम्मति करके ही उनको आधा राज्य दे दिया था, क्योंकि ये तुम लोगों में फूट पड़ने से डरते थे ॥४१॥

तस्य चैतत्प्रदानस्य फलमद्याऽनुपश्यसि ।
यद्भुंक्षे पृथिवीं कृत्स्नां शूरैर्निहतकण्टकाम् ॥४२॥

उसी धर्मानुसार राज्य के भाग के प्रदान का फल देख रहे हो, जो शूरों से शत्रु-हीन की हुई सारी पृथिवी का आज तुम उपभोग कर रहे हो ॥४२॥

प्रयच्छ पाण्डुपुत्राणां यथोचितमरिन्दम ।
यदीच्छसि सहामात्यो भोक्तुमर्धं प्रदीयताम् ॥४३॥

हे अरिन्दम ! यदि तुम अपने मन्त्रियों के साथ राज्य का उपभोग करना चाहते हो, तो पाण्डवों के लिए यथोचित आधा राज्य प्रदान कर दो ॥४३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अलमर्धं पृथिव्यास्ते सहामात्यस्य जीवितुम् ।
सुहृदां वचने तिष्ठन्यशः प्राप्स्यसि भारत ॥४४॥

तुम को अपने मन्त्रियों के साथ सुख से रहने के लिए आधी पृथिवी पर्याप्त है। हे भारत ! यदि तुम अपने हितकारी वृद्धों के आज्ञा का पालन करोगे—तो यश के भागी बन जाओगे ॥४४॥

श्रीमद्भिरात्मवद्भिस्तैर्बुद्धिमद्भिर्जितेन्द्रियैः ।
पाण्डवैर्विग्रहस्तात भ्रंशयेन्महतः सुखात् ॥४५॥

हे तात ! ऐश्वर्यवान्, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान्, आत्माभिमानी, पाण्डवों के साथ युद्ध करना, तुम्हारे सारे सुख को नष्ट कर देगा।

निगृह्य सुहृदां मन्युं शाधि राज्यं यथोचितम् ।
स्वमंशं पाण्डुपुत्रेभ्यः प्रदाय भरतर्षभ ॥४६॥

हे भरतर्षभ ! अपने सुहृदों पर आये हुए कोप को शान्त करके अब तुम पाण्डवों को उनका भाग दे दो और फिर यथोचित राज्य का सुख से शासन करो ॥४६॥

अलमङ्ग निकारोऽयं त्रयोदश समाः कृतः ।
शमयैनं महाप्राज्ञ कामक्रोधसमेधितम् ॥४७॥

हे महाप्राज्ञ ! जो तेरह वर्ष तक तुमने पाण्डवों का अपमान किया है, काम और क्रोध से बढ़े हुए उस अपमान का अब मार्जन करो ॥४७॥

न चैष शक्तः पार्थानां यस्त्वमर्थमभीप्ससि ।
सूतपुत्रो दृढक्रोधो भ्राता दुःशासनश्च ते ॥४८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो तुम पाण्डवों का राज्य छीन कर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हो---उसे यह सूर्य-पुत्र या तुम्हारा भाई दुःशासन कभी पूरा नहीं कर सकता है ॥४८॥

भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे भीमसेने धनञ्जये ।
धृष्टद्युम्ने च संक्रुद्धे न स्युः सर्वाः प्रजा ध्रुवम् ।४९।

भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, भीमसेन, अर्जुन धृष्टद्युम्न आदि वीरों के एक होकर कोप करने पर सारे मनुष्यों का विध्वंस किया जा सकता है, फिर शत्रुओं की तो क्या चलाई है ॥४९॥

अमर्षवशमापन्नो मा कुरूंस्तात जीघनः ।
एषा हि पृथिवी कृत्स्ना मा गमत्त्वत्कृते वधम् ॥५०॥

हे तात ! तुम क्रोध के आवेश में आकर कौरवों का नाश मत करो । इस सारी पृथिवी का तुम्हारे कारण से कहीं नाश न हो जावे

यच्च त्वं मन्यसे मूढ भीष्मद्रोणकृपादयः ।
योत्स्यन्ते सर्वशक्त्येति नैतदद्योपपद्यते ॥५१॥
समं हि राज्यं प्रीतिश्च स्थानं हि विदितात्मनाम् ।
पाण्डवेष्वथ युष्मासु धर्मस्त्वभ्यधिकस्ततः ॥५२॥

अरे मूढ़ ! जो तुम यह समझते हो—कि भीष्म, द्रोण और कृप आदि अपनी पूरी शक्ति से लड़ेंगे—यह आज नहीं हो सकता हैं, क्योंकि इनकी प्रीति तुम दोनों से समान है। ये यह भी जानते हैं, कि तुम्हारा और उनका राज्य में बराबर भाग है। पाण्डव और तुम्हारा इन सब के मत में समान स्थान है, इससे ये धर्म को ही अधिक मानेंगे ॥५१-५२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजपिण्डभयादेते यदि हास्यन्ति जीवितम् ।
नहि शक्ष्यन्ति राजानं युधिष्ठिरमुदीक्षितुम् ॥५३॥

ये राज्य के अन्न के खाने के भय से तुम्हारे साथ जीवन त्याग देंगे—परन्तु राजा युधिष्ठिर की ओर दृष्टि उठाकर देखना भी नहीं चाहेंगे ॥५३॥

न लोभादर्थसम्पत्तिर्नराणामिह दृश्यते ।
तदलं तात लोभेन प्रशाम्य भरतर्षभ ॥५४॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गान्धारी-
वाक्ये ऊनत्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९॥

हे तात ! लोभ से मनुष्यों को धन सम्पत्ति नहीं मिला करती । हे भरतर्षभ ! अब तुम लोभ को छोड़ कर शान्ति धारण करो ।

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में गान्धारी के वाक्य का एक सौ उनतीसवां अध्याय पूरा हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ तीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

तत्तु वाक्यमनादृत्य सोऽर्थवन्मातृभाषितम् ।
पुनः प्रतस्थे संरम्भात्सकाशमकृतात्मनाम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इस प्रकार अपनी माता के अर्थ गौरव से युक्त वाक्यों का अनादर करके दुर्योधन क्रोध में भरकर फिर दुष्ट साथियों के पास चला गया ॥१॥

ततः सभाया निर्गम्य मन्त्रयामास कौरवः ।
सौबलेन मताक्षेण राज्ञा शकुनिना सह ॥२॥

इसके अनन्तर सभा से बाहर जाकर राजा दुर्योधन, पांसे फैंकने में कुशल, सुबल-पुत्र राजा शकुनि से सम्मति करने लगा ।२।

दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च ।
दुःशासनचतुर्थानामिदमासीद्विचेष्टितम् ॥३॥

इस समय दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि और चौथे दुःशासन का यह विचार दृढ़ हुआ ॥३॥

पुराऽयमस्मान्गृह्णाति क्षिप्रकारी जनार्दनः ।
सहितो धृतराष्ट्रेण राज्ञा शान्तनवेन च ॥४॥

वयमेव हृषीकेशं निगृह्णीम बलादिव ।
प्रसह्य पुरुषव्याघ्रमिन्द्रो वैरोचनिं यथा ॥५॥

जब तक यह शीघ्र कार्य करने में कुशल, जनार्दन श्रीकृष्ण, राजा धृतराष्ट्र और शान्तनु-पुत्र भीष्म को साथ लेकर हमको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पकड़ते हैं, उससे पहिले हम ही पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण को बल-पूर्वक बन्धन में डाल लें, जैसे इन्द्र ने विरोचन-पुत्र बलि को पकड़ लिया था ॥४-५॥

श्रुत्वा गृहीतं वार्ष्णेयं पाण्डवा हतचेतसः ।
निरुत्साहा भविष्यन्ति भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ॥६॥
अयं ह्येषां महाबाहुः सर्वेषां शर्म वर्म च ।

वृष्णिवंशोत्पन्न कृष्ण के पकड़ने का समाचार सुनकर पाण्डव उदास और दांत तोड़े हुए सर्प के समान निरुत्साह हो जावेंगे । महाबाहु कृष्ण ही उनके कल्याण करने वाले एवं कवच के समान रक्षक हैं ॥६॥

अस्मिन्गृहीते वरदे ऋषभे सर्वसात्वताम् ॥७॥
निरुद्यमा भविष्यन्ति पाण्डवाः सोमकैः सह ।

सारे यादवों में श्रेष्ठ, पाण्डवों के कार्य सम्पादन करने वाले कृष्ण के पकड़े जाने पर सारे पाण्डव, सोमक वीरों के साथ उद्योग-हीन हो जावेंगे ॥७॥

तस्माद्वयमिहैवैनं केशवं क्षिप्रकारिणम् ॥८॥
क्रोशतो धृतराष्ट्रस्य बद्ध्वा योत्स्यामहे रिपून् ।

अब हम लोगों का यही कर्तव्य है, कि शीघ्र कार्य करने में समर्थ, इस केशव को राजा धृतराष्ट्र के चिल्लाते रहने पर भी बांध लेना चाहिए और फिर हमको अपने शत्रु पाण्डवों से युद्ध करना उचित है ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेषां पापमभिप्रायं पापानां दुष्टचेतसाम् ॥९॥
इङ्गितज्ञः कविः क्षिप्रमन्वबुद्ध्यत सात्यकिः ।

उन दुष्ट-चित्त वाले पापियों के इस विचार को चेष्टा से ही अनुमान कर लेने वाला बुद्धिमान् सात्यकि बहुत शीघ्र समझ गया।

तदर्थमभिनिष्क्रम्य हार्दिक्येन सहाऽऽस्थितः ॥१०॥
अब्रवीत्कृतवर्माणं क्षिप्रं योजय वाहिनीम् ।

सात्यकि इस कार्य के प्रतिकार करने के लिए बाहर गया और हार्दिक के पुत्र कृतवर्मा से सलाह करने लगा। सात्यकि ने कृतवर्मा से कहा, तुम अपनी सेना को शीघ्र तय्यार करो।१०॥

व्यूढानीकः सभाद्वारमुपतिष्ठस्व दंशितः ॥११॥
यावदाख्याम्यहं चैतत्कृष्णायाऽक्लिष्टकारिणे ।

तुम अपनी सेना को व्यूह बनाकर खड़ी करो और स्वयं सावधान होकर खड़े हो जाओ। मैं यह सब कुछ कार्य-कुशल श्रीकृष्ण को सूचित किए देता हूँ ॥११॥

स प्रविश्य सभां वीरः सिंहो गिरिगुहामिव ॥१२॥
आचष्ट तमभिप्रायं केशवाय महात्मने।
धृतराष्ट्रं ततश्चैव विदुरं चाऽन्वभाषत ॥१३॥
तेषामेतमभिप्रायमाचचक्षे स्मयन्निव ।

वह वीर, कन्दरा में सिंह के समान उस राजसभा में घुस गया और यह सारा अभिप्राय महात्मा श्रीकृष्ण को जा सुनाया। इसके अनन्तर राजा धृतराष्ट्र और फिर विदुर को मुस्कुराते २ यह सब कुछ वृतान्त सुना दिया ॥१२-१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्मादर्थाच्च कामाच्च कर्म साधुविगर्हितम् ॥१४॥
मन्दाः कर्तुमिहेच्छन्ति न चाऽवाप्यं कथञ्चन ।

हे महाभाग ! ये मूर्ख, धर्म, अर्थ और काम से रहित, साधु पुरुषों में निन्दित कर्म को करना चाहते हैं, परन्तु ये इसको पूरा नहीं कर सकते हैं ॥ १४ ॥

पुरा विकुर्वते मूढाः पापात्मानः समागताः ॥१५॥
धर्षिताः काममन्युभ्यां क्रोधलोभवशानुगाः ।

ये मूर्ख, कामना, शोक, क्रोध और लोभ के वश में हो रहे हैं। ये सारे पापी प्रथम से ही बिगड़े बैठे हैं ॥ १५ ॥

इमं हि पुण्डरीकाक्षं जिघृक्षन्त्यल्पचेतसः ॥१६॥
पटेनाऽग्निं प्रज्वलितं यथा बाला यथा जडाः ।

ये निर्बुद्धि, बच्चे या पागलों की भांति कमल के तुल्य नेत्र-धारी श्रीकृष्ण को कपड़े से प्रज्वलित अग्नि के समान पकड़ लेना चाहते हैं ॥ १६ ॥

सात्यकेस्तद्वचः श्रुत्वा विदुरो दीर्घदर्शिवान् ॥१७॥
धृतराष्ट्रं महाबाहुमब्रवीत्कुरुसंसदि ।

सात्यकि के ये वचन सुनकर दीर्घ-दर्शी विदुर, कौरवों की सभा में महाबाहु राजा धृतराष्ट्र से कहने लगा ॥ १७ ॥

राजन्परीतकालास्ते पुत्राः सर्वे परन्तप ॥१८॥
अशक्यमयशस्यं च कर्तुं कर्म समुद्यताः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन् ! परन्तप ! आपके सारे पुत्रों का अब समय समाप्त होने वाला दिखाई देता है, जो ये अशक्य और अयशकारी कार्य करने का प्रयत्न कर रहे हैं ॥ १८ ॥

इमं हि पुण्डरीकाक्षमभिभूय प्रसह्य च ॥१९॥
निग्रहीतुं किलेच्छन्ति सहिता वासवानुजम् ।

ये लोग इकट्ठे होकर कमल के समान नेत्रवाले, विष्णु तुल्य पराक्रमी, श्रीकृष्ण को अपमानित करके बल-पूर्वक पकड़ लेना चाहते हैं ॥ १९ ॥

इमं पुरुषशार्दूलमप्रधृष्यं दुरासदम् ॥२०॥
आसाद्य न भविष्यन्ति पतङ्गा इव पावकम् ।

ये इन दुर्धर्ष, आक्रमण के अयोग्य पुरुष-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण को पकड़ कर आग में पतङ्गों की तरह शीघ्र ही नष्ट हो जावेंगे ॥२०॥

अयमिच्छन्हि तान्सर्वान्युद्ध्यमानाञ्जनार्दनः ॥२१॥
सिंहो नागानिव क्रुद्धो गमयेद्यमसादनम् ।
न त्वयं निन्दितं कर्म कुर्यात्पापं कथञ्चन ॥२२॥
न च धर्मादपक्रामेदच्युतः पुरुषोत्तमः ।

यदि जनार्दन श्रीकृष्ण यह इच्छा कर लें, कि मुझे इनको नष्ट करना है, तो ये हाथियों को सिंह की तरह युद्ध करते हुए, इन सारे कुरुवीरों को यमराज के घर भेज सकते हैं, परन्तु पुरुषोत्तम, श्रीकृष्ण, अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने वाले कभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निन्दित और पाप कर्म नहीं करेंगे और न धर्म मार्ग का अतिक्रमण ही करेंगे ॥ २१—२२ ॥

विदुरेणैवमुक्ते तु केशवो वाक्यमब्रवीत् ॥२३॥
धृतराष्ट्रमभिप्रेक्ष्य सुहृदां शृण्वतां मिथः ।

जब विदुर इतना कह चुके, तो श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र की ओर देखकर सारे सुहृदों के सुनते २ ये वाक्य बोले ॥ २३ ॥

राजन्नेते यदि क्रुद्धा मां निगृह्णीयुरोजसा ॥२४॥
एते वा मामहं वैनाननुजानीहि पार्थिव ।

हे राजन् ! जो ये क्रुद्ध होकर अपने पराक्रम से मुझे पकड़ना चाहते हैं, तो आप मुझे भी अनुज्ञा दे दें-या तो ये मुझे पकड़ लेंगे या मैं ही इनको पकड़ लूँगा ॥ २४ ॥

एतान्हि सर्वान्संरब्धान्नियन्तुमहमुत्सहे ॥२५॥
न त्वहं निन्दितं कर्म कुर्यां पापं कथञ्चन ।

मैं यह अभिमान रखता हूँ, कि मैं इन सबको पकड़ सकता हूँ, परन्तु मैं इस निन्दित कर्म को किसी प्रकार भी करना नहीं चाहता हूँ ॥ २५ ॥

पाण्डवार्थे हि लुभ्यन्तः स्वार्थान्हास्यन्ति ते सुताः२६॥
एते चेदेवमिच्छन्ति कृतकार्यो युधिष्ठिरः ।

हे राजन् ! तुम्हारे ये पुत्र पाण्डवों के धन के अपहरण के लालच में अपके धन को भी खो बैठेंगे । यदि ये ऐसा करना चाहते हैं, तो इससे राजा युधिष्ठिर को अपने कार्य में सफल ही हुआ समझना चाहिए ॥ २६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अद्यैव ह्यहमेनांश्च ये चैनाननु भारत ॥२७॥
निगृह्य राजन्पार्थेभ्यो दद्यां किं दुष्कृतं भवेत् ।

हे भारत ! मैं आज ही इनको और इनके साथियों को पकड़ कर पाण्डवों को दे दूंगा, ऐसा करना क्या मेरे लिए कठिन कार्य है।

इदं तु न प्रवर्तेयं निन्दितं कर्म भारत ॥२८॥
सन्निधौ ते महाराज क्रोधजं पापबुद्धिजम् ।

हे भरतवंशोत्पन्न ! महाराज ! परन्तु यह कर्म क्रोध का कार्य और पाप बुद्धि से उत्पन्न माना जावेगा। मैं इसे आपके सन्मुख कभी नहीं कर सकता हूँ ॥ २८ ॥

एष दुर्योधनो राजन्यथेच्छति तथाऽस्तु तत् ॥२९॥
अहं तु सर्वांस्तनयाननुजानामि ते नृप ।

हे राजन् ! यह दुर्योधन जो करना चाहता है, इसे करने दो। हे नृप ! मैं तो तुम्हारे सारे पुत्रों को अनुज्ञा (इजाजत) देता हूँ, कि वे मुझे बन्धन में डाल लें ॥२९॥

एतच्छ्रुत्वा तु विदुरं धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ॥
क्षिप्रमानय तं पापं राज्यलुब्धं सुयोधनम् ॥३०॥
सहमित्रं सहामात्यं ससोदर्यं सहानुगम् ।
शक्नुयां यदि पन्थानमवतारयितुं पुनः ॥३१॥

यह सुनकर राजा धृतराष्ट्र विदुर से बोले—हे विदुर ! तुम शीघ्र ही राज्य के लुब्धक पापी दुर्योधन को उसके मित्र, मन्त्री, भाई और अनुचरों के साथ यहाँ लाओ—सम्भव है, मैं फिर किसी प्रकार उसको मार्ग पर ले आऊँ ॥३०-३१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततो दुर्योधनं क्षत्ता पुनः प्रावेशयत्सभाम् ।
अकामं भ्रातृभिः सार्धं राजभिः परिवारितम् ॥३२॥

विदुर, सभा में आना नहीं चाहते हुए, अन्य राजाओं से घिरे हुए, अपने भाइयों के साथ राजा दुर्योधन को फिर सभा में ले आया ॥३२॥

अथ दुर्योधनं राजा धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ।
कर्णदुःशासनाभ्यां च राजभिश्चापि संवृतम् ॥३३॥

अब राजा धृतराष्ट्र ने कर्ण, दुःशासन तथा अन्य राजाओं से समन्वित, राजा दुर्योधन से कहा ॥३३॥

नृशंस पापभूयिष्ठ क्षुद्रकर्मसहायवान् ।
पापैः सहायैः संहत्य पापं कर्म चिकीर्षसि ॥३४॥

अरे नीच ! पापाचारी ! तू क्षुद्र कर्म करने वालों का साथी है और इन्हीं पापी सहायकों का गुट्ट बनाकर पाप कर्म को करना चाहता है ॥३४॥

अशक्यमयशस्यं च सद्भिश्चापि विगर्हितम् ।
यथा त्वादृशको मूढो व्यवस्येत्कुलपांसनः ॥३५॥

तू नहीं होने वाले अयशकारी कर्म को करना चाहता है । कौन ऐसा कुल नाशक मूर्ख होगा—जो तेरे समान ऐसे कुकर्म को करना चाहता होगा ॥३५॥

त्वमिमं पुण्डरीकाक्षमप्रधृष्यं दुरासदम् ।
पापैः सहायैः संहत्य निग्रहीतुं किलेच्छसि ॥३६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तू कमल के समान नेत्र धारी दुर्धर्ष, दुर्लभ, श्रीकृष्ण को पापी सहायकों के साथ मिलकर पकड़ना चाहता है ॥३६॥

यो न शक्यो बलात्कर्तुं देवैरपि सवासवैः ।
तं त्वं प्रार्थयसे मन्द बालश्चन्द्रमसं यथा ॥३७॥

अरे मूर्ख ! जिस काम को बल-पूर्वक इन्द्र सहित देवता भी नहीं कर सकते हैं, तू उसी काम को इस तरह करना चाहता है- जैसे बालक, चन्द्रमा को पकड़ने की चेष्टा करता है ॥३७॥

देवैर्मनुष्यैर्गन्धर्वैरसुरैरुरगैश्च यः ।
न सोढुं समरे शक्यस्तं न बुद्ध्यसि केशवम् ॥३८॥

देव, मनुष्य, गन्धर्व, असुर, नाग आदि भी जिसको युद्ध में नहीं सह सकते हैं, तू उन श्रीकृष्ण के पराक्रम को नहीं जानता है ॥३८॥

दुर्ग्राह्यः पाणिना वायुर्दुस्पर्शः पाणिना शशी ।
दुर्धरा पृथिवी मूर्ध्ना दुर्ग्राह्यः केशवो बलात् ॥३९॥

हाथ से वायु का पकड़ना कठिन है और हाथ से चन्द्रमा का स्पर्श करना भी दुर्लभ है, मस्तक पर पृथिवी धारण करना जिस तरह कठिन है, इसी तरह बल-पूर्वक श्रीकृष्ण का पकड़ना दुःसाध्य है ॥३९॥

इत्युक्ते धृतराष्ट्रेण क्षत्ताऽपि विदुरोऽब्रवीत् ।
दुर्योधनमभिप्रेत्य धार्तराष्ट्रममर्षणम् ॥४०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विदुर उवाच—

दुर्योधन निबोधेदं वचनं मम साम्प्रतम् ।
सौभद्वारे वानरेन्द्रो द्विविदो नाम नामतः ।
शिलावर्षेण महता छादयामास केशवम् ॥४१॥
ग्रहीतुकामो विक्रम्य सर्वयत्नेन माधवम् ।
ग्रहीतुं नाऽशकच्चैनं तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥४२॥

जब इतना धृतराष्ट्र ने कहा—तो राजपुत्र विदुर भी असहिष्णु धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन की ओर देख कर कहने लगे। हे दुर्योधन ! अब तुम मेरे इन वचनों को जरा ध्यान देकर सुनो, कि सौभनगर के द्वार पर द्विविद नामक प्रसिद्ध वानर ने भी एक बार बड़ी भारी शिला वर्षा करके श्रीकृष्ण को ढक दिया था। उसने भी सब यत्नों से महापराक्रम करके श्रीकृष्ण को पकड़ना चाहा, परन्तु वह भी इनको नहीं पकड़ सका; उन्हीं श्रीकृष्ण को तू अपने बल से पकड़ना चाहता है ॥४१-४२॥

प्राग्ज्योतिषगतं शौरिं नरकः सह दानवैः ।
ग्रहीतुं नाऽशकत्तत्र तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥४३॥

प्राग् ज्योतिषपुर में भी श्रीकृष्ण को सारे दानवों के साथ नरकासुर ने पकड़ना चाहा, परन्तु वह भी नहीं पकड़ सका—उन्हीं श्रीकृष्ण को तू बलपूर्वक पकड़ने की चेष्टा करता है ॥४३॥

अनेकयुगवर्षायुर्निहत्य नरकं मृधे ।
नीत्वा कन्यासहस्राणि उपयेमे यथाविधि ॥४४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्मोचने षट्सहस्राः पाशैर्बद्धा महासुराः ।
ग्रहीतुं नाऽशकंश्चैनं तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥४५॥

अनेक युग के वर्षों की आयु धारी नरकासुर को युद्ध में मार कर श्रीकृष्ण ने सहस्रों कन्याओं के साथ विधि-पूर्वक विवाह किया था। इन्होंने निर्मोचन नगर में छः सहस्र महासुरों को बांध लिया। ये लोग भी जिसको नहीं पकड़ सके—उसको तू बलपूर्वक पकड़ना चाहता है ॥४५॥

अनेन हि हता बाल्ये पूतना शकुनी तथा ।
गोवर्धनो धारितश्च गवार्थे भरतर्षभ ॥४६॥

अरिष्टो धेनुकश्चैव चाणूरश्च महाबलः ।
अश्वराजश्च निहतः कंसश्चाऽरिष्टमाचरन् ॥४७॥

हे भरतर्षभ ! इसी ने बचपन में पूतना और पक्षी रूप धारिणी राक्षसी का वध किया एवं गौओं की रक्षा के लिए गोवर्द्धन पर्वत को धारण किया। अरिष्ट, धेनुक, महाबली चाणूर, अश्वराज एवं अनिष्ट करने पर तत्पर कंस का नाश किया।४६-४७।

जरासन्धश्च वक्रश्च शिशुपालश्च वीर्यवान् ।
बाणश्च निहतः संख्ये राजानश्च निषूदिताः ॥४८॥

इसी ने जरासन्ध, वक्र, वीर्यवान् शिशुपाल, बाण तथा अन्य अनेक राजाओं का युद्ध में विनाश किया ॥४८॥

वरुणो निर्जितो राजा पावकश्चाऽमितौजसा ।
पारिजातं च हरता जितः साक्षाच्छचीपतिः ॥४९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी अमित ओजस्वी श्रीकृष्ण ने राजा वरुण और अग्नि को विजय किया एवं पारिजात नामक कल्प वृक्ष के हरण के समय साक्षात इन्द्र को भी इसी ने जीता है ॥४९॥

एकार्णवे च स्वपता निहतौ मधुकैटभौ ।
जन्मान्तरमुपागम्य हयग्रीवस्तथा हतः ॥५०॥

शेष शय्या पर समुद्र में सोते हुए, इसने मधुकैटभ का नाश किया और फिर जन्मान्तर में हयग्रीव का वध किया ॥५०॥

अयं कर्ता न क्रियते कारणं चापि पौरुषे ।
यद्यदिच्छेदयं शौरिस्तत्तत्कुर्यादयत्नतः ॥५१॥

ये सबके कर्ता हैं, परन्तु इनका करने वाला कोई नहीं हैं। यह सारे पुरुषार्थों का कारण है। यह शूरसेन वंश-श्रेष्ठ-श्रीकृष्ण, जो २ करना चाहते हैं, उसको बिना प्रयत्न के ही कर सकते है।

तं न बुद्ध्यसि गोविन्दं घोरविक्रममच्युतम् ।
आशीविषमिव क्रुद्धं तेजोराशिमनिन्दितम् ॥५१॥

हे दुर्योधन! तुम महापराक्रमी, दृढ़-प्रतिज्ञा-वाले, तेजोराशि सर्व-गुण-सम्पन्न, सर्प की भांति क्रोध करने वाले, इन श्रीकृष्ण को अभी तक नहीं जान सके हो ॥५२॥

प्रधर्षयन्महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।
पतङ्गोऽग्निमिवाऽऽसाद्य सामात्यो न भविष्यसि ॥५३॥

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्यान-पर्वणि विदुरवाक्ये त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो तुमने पराक्रम के उत्तम २ कर्म करने वाले इन महाबाहु श्रीकृष्ण का अपमान किया—तो अग्नि में पड़े हुए पतङ्ग की भांति तुम अपने मन्त्रियों सहित नष्ट हो जाओगे–इसमें सन्देह नहीं है।

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में विदुर वाक्य का एक सौ तीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ इकतीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

विदुरेणैवमुक्तस्तु केशवः शत्रुपूगहा।
दुर्योधनं धार्तराष्ट्रमभ्यभाषत वीर्यवान् ॥१॥

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन्! विदुर के इतना कहने के अनन्तर शत्रु समूह नाशक, वीर्यवान श्रीकृष्ण, धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन से कहने लगे ॥१॥

एकोऽहमिति यन्मोहान्मन्यसे मां सुयोधन।
परिभूय सुदुर्बुद्धे ग्रहीतुं मां चिकीर्षसि ॥१॥

हे सुयोधन! तुम अपने अज्ञान से यह समझ रहे हो, कि मैं अकेला हूं। हे दुर्बुद्धे! तू इसीलिए मेरा अपमान करके मुझे पकड़ना चाहता है॥ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इहैव पाण्डवाः सर्वे तथैवाऽन्धकवृष्णयः ।
इहाऽऽदित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च महर्षिभिः ॥३॥

तुम यह समझ लो, कि यहीं पर तो सारे पाण्डव हैं और यहीं सारे अन्धक वृष्णियों के वीर हैं। यहां आदित्य, रुद्र, वसु सारे महर्षियों के साथ उपस्थित हैं ॥३॥

एवमुक्त्वा जहासोच्चैः केशवः परवीरहा ।
तस्य संस्मयतः शौरेर्विद्युद्रूपा महात्मनः ॥४॥
अंगुष्ठमात्रास्त्रिदशा मुमुचुः पावकार्चिषः ।
अस्य ब्रह्मा ललाटस्थो रुद्रो वक्षसि चाऽभवत् ॥५॥
लोकपाला भुजेष्वासन्नग्निरास्यादजायत ।
आदित्याश्चैव साध्याश्च वसवोऽथाऽश्विनावपि ॥६॥
मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वे देवास्तथैव च ।
बभूवुश्चैकरूपाणि यक्षगन्धर्वरक्षसाम् ॥७॥
प्रादुरास्तां तथा दोर्भ्यां सङ्कर्षणधनञ्जयौ ।
दक्षिणेऽथाऽर्जुनो धन्वी हली रामश्च सव्यतः ॥८॥
भीमो युधिष्ठिरश्चैव माद्रीपुत्रौ च पृष्ठतः ।
अन्धका वृष्णयश्चैव प्रद्युम्नप्रमुखास्ततः ॥९॥
अग्रे बभूवुः कृष्णस्य समुद्यतमहायुधाः ।
शङ्खचक्रगदाशक्तिशार्ङ्गलाङ्गलनन्दकाः ॥१०॥
अदृश्यन्तोद्यतान्येव सर्वप्रहरणानि च ।
नानाबाहुषु कृष्णस्य दीप्यमानानि सर्वशः ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शत्रु विजयी भगवान् कृष्ण इतना कहकर हँसने लगे—उन महात्मा कृष्ण के हंसते ही अंगुष्ठ मात्र प्रमाणधारी बिजली की भांति चमकते हुए देवता निकल पड़े, जो अग्नि की लपटें छोड़ रहे थे। इनके ललाट से ब्रह्मा, वक्षस्थल से रुद्र, भुजाओं से लोकपाल, मुख से अग्नि उत्पन्न हुए। आदित्य, साध्य, वसु, आश्विन, मरुत, इन्द्र, विश्वेदेवा तथा यक्ष, गन्धर्व और राक्षस सारे ही वहां इकट्ठे हो गए। उनकी दोनों बाहुओं से बलराम और अर्जुन प्रकट हुए। इनमें दांयी भुजा से धनुर्धर अर्जुन और बायीं भुजा से हलधर बलराम हुए। भीम, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव पीछे के भाग से और प्रद्युम्न आदि अन्धक और वृष्णि, श्रीकृष्ण के अङ्ग के अग्रभाग से उत्पन्न हुए, जिन्होंने शस्त्र धारण कर रखे थे। उस समय शङ्ख, चक्र, गदा, शक्ति, शार्ङ्ग, धनुष, लाङ्गल, (हल) नन्दक, (खड्ग) आदि सारे शस्त्र, श्रीकृष्ण की अनेक भुजाओं में चमकते दिखाई दिए ॥४-११॥

नेत्राभ्यां नस्ततश्चैव श्रोत्राभ्यां च समन्ततः।
प्रादुरासन्महारौद्रा सधूमाः पावकार्चिषः ॥१२॥
रोमकूपेषु च तथा सूर्यस्येव मरीचयः।

इस समय श्रीकृष्ण के नेत्र, नासिका और कर्णों से महाभयङ्कर, धूम सहित, अग्नि की लपटें और रोम-कूपों से सूर्य की किरणें निकल रही थीं ॥१२॥

तं दृष्ट्वा घोरमात्मानं केशवस्य महात्मनः ॥१३॥
न्यमीलयन्त नेत्राणि राजानस्त्रस्तचेतसः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऋते द्रोणं च भीष्मं च विदुरं च महामतिम् ॥१४॥
सञ्जयं च महाभागमृषींश्चैव तपोधनान् ।
प्रादात्तेषां स भगवान्दिव्यं चक्षुर्जनार्दनः ॥१५॥

महात्मा श्रीकृष्ण के इस भयानक रूप को देखकर सारे राजाओं ने भयभीत होकर आंखें बन्द कर ली। द्रोण, भीष्म, महामति विदुर, महाभाग सञ्जय, तपोधन ऋषियों को कोई भय नहीं हुआ और न उन्होंने आंखें मींची, क्योंकि भगवान् कृष्ण ने उनको दिव्य-चक्षु प्रदान कर दिए थे ॥१३-१५॥

तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं माधवस्य सभातले ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षं पपात च ॥१६॥

उस राजसभा में श्रीकृष्ण के इस महान् आश्चर्य को देखकर सारे देवता दुन्दुभि बजाकर पुष्प वर्षा करने लगे।

धृतराष्ट्र उवाच—

त्वमेव पुण्डरीकाक्ष सर्वस्य जगतो हितः ।
तस्मात्त्वं यादवश्रेष्ठ प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥१७॥

हे कमलनयन ! यादवश्रेष्ठ ! कृष्ण ! तुम सारे जगत् के हितकर्ता हो—तुमको हम लोगों पर अनुग्रह ही करना चाहिए ॥१७॥

भगवन्मम नेत्राणामन्तर्धानं वृणे पुनः ।
भवन्तं द्रष्टुमिच्छामि नाऽन्यं द्रष्टुमिहोत्सहे ॥१८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे भगवन् ! मैं अपने नेत्र की अन्तर्दृष्टि मांगता हूं, जिससे मैं आपके दर्शन कर सकूं । मैं अन्य कुछ देखने की अभिलाषा नहीं करता हूं ॥१८॥

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्धृतराष्ट्रं जनार्दनः ।
अदृश्यमाने नेत्रे द्वे भवेतां कुरुनन्दन ॥१९॥

अब महाबाहु श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र से कहा—हे कुरुनन्दन ! तुम्हारे दो दिव्य आंखें उत्पन्न हो जावें ॥१९॥

तत्राऽद्भुतं महाराज धृतराष्ट्रश्च चक्षुषी ।
लब्धवान्वासुदेवाच्च विश्वरूपदिदृक्षया ॥२०॥

हे महाराज ! वहां यह अचम्भे की बात हुई, कि श्रीकृष्ण से धृतराष्ट्र को दो आंखें मिल गई, जिनसे वह श्रीकृष्ण के विश्वरूप के देखने की अभिलाषा कर रहा था ॥२०॥

लब्धचक्षुषमासीनं धृतराष्ट्रं नराधिपाः ।
विस्मिता ऋषिभिः सार्धं तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥२१॥

जब राजाओं ने दिव्य-चक्षु प्राप्त करके बैठे हुए राजा धृतराष्ट्र को देखा, तो वे सारे अचम्भित हो गए और मधुसूदन श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे ॥२१॥

चचाल च मही कृत्स्ना सागरश्चापि चुक्षुभे ।
विस्मयं परमं जग्मुः पार्थिवा भरतर्षभ ॥२२॥

हे भरतर्षभ ! इस समय सारी पृथिवी डोलने लगी और समुद्र उछलने लगा, इससे सारे राजा बड़े अचम्भे में निमग्न हो गए ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततः स पुरुषव्याघ्रः सञ्जहार वपुः स्वकम् ।
तां दिव्यामद्भुतां चित्रामृद्धिमत्तामरिन्दमः ॥२३॥

इसके अनन्तर अरिनाशक, पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने अपना यह दिव्य, अद्भुत, विचित्र, ऐश्वर्यसम्पन्न रूप का संवरण कर लिया ।

ततः सात्यकिमादाय पाणौ हार्दिक्यमेव च ।
ऋषिभिस्तैरनुज्ञातो निर्ययौ मधुसूदनः ॥२४॥

श्रीकृष्ण, सात्यकि और कृतवर्मा का हाथ पकड़कर ऋषियों की आज्ञा से उस सभा से चल पड़े ॥२४॥

ऋषयोऽन्तर्हिता जग्मुस्ततस्ते नारदादयः ।
तस्मिन्कोलाहले वृत्ते तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥२५॥

इतने में ही सारे नारद आदि ऋषि भी अन्तर्ध्यान हो गए । इस कोलाहल के समय ऋषियों का अलक्षित हो जाना भी एक बड़े चमत्कार की बात थी ॥२५॥

तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य कौरवाः सह राजभिः ।
अनुजग्मुर्नरव्याघ्रं देवा इव शतक्रतुम् ॥२६॥

श्रीकृष्ण को जाते देखकर राजाओं के साथ अनेक कौरव, इन्द्र के साथ देवों की भांति नरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण के पीछे २ चल पड़े ।२६।

अचिन्तयन्नमेयात्मा सर्वं तद्राजमण्डलम् ।
निश्चक्राम ततः शौरिः सधूम इव पावकः ॥२७॥

महाबली श्रीकृष्ण ने इन राजाओं के समूह की कुछ भी परवाह नहीं की । ये धूम के साथ प्रज्वलित अग्नि की तरह उस सभा भवन से बाहर निकल पड़े ॥२७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना ।
हेमजालविचित्रेण लघुना मेघनादिना ॥२८॥
सूपस्करेण शुभ्रेण वैयाघ्रेण वरूथिना ।
शैब्यसुग्रीवयुक्तेन प्रत्यदृश्यत दारुकः ॥२९॥

इस समय किङ्किणियों से युक्त, महान्, शुभ्र, सुवर्ण के जाल से विचित्र, बहुत हल्का, मेघ के समान ध्वनि करने वाला, सुन्दर सामग्रियों से सम्पन्न व्याघ चर्म के आसन से युक्त, शैव्य और सुग्रीव अश्व और रथ के रक्षोपयोगी, साधनों से समन्वित रथ को लेकर श्रीकृष्ण का दारुक सारथि उपस्थित हुआ ॥२८-२९॥

तथैव रथमास्थाय कृतवर्मा महारथः ।
वृष्णीनां सम्मतो वीरो हार्दिक्यः समदृश्यत ॥३०॥

महारथी हृदिक के पुत्र कृतवर्मा भी रथ में बैठ कर आ गए, जो वृष्णियों में माने हुए वीर थे ॥३०॥

उपस्थितरथं शौरिं प्रयास्यन्तमरिन्दमम् ।
धृतराष्ट्रो महाराजः पुनरेवाऽभ्यभाषत ॥३१॥

इस प्रकार रथ के आ जाने पर, जाने के लिए उद्यत अरिन्दम श्रीकृष्ण को देखकर महाराज धृतराष्ट्र फिर बोले ॥३१॥

यावद्बलं मे पुत्रेषु पश्यतस्ते जनार्दन ।
प्रत्यक्षं ते न ते किञ्चित्परोक्षं शत्रुकर्शन ॥३२॥
कुरूणां शममिच्छन्तं यतमानं च केशव ।
विदित्वैतामवस्थां मे नाऽभिशङ्कितुमर्हसि ॥३३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे शत्रुकर्षण ! जनार्दन ! मेरा जितना बल पुत्रों पर चलता था, वह तुम्हारे देखते २ सब चलाया। यह सब कुछ आपके सामने हुआ—पीछे की बात नहीं है। मैंने कौरव पाण्डव में सन्धि कराने का कितना प्रयत्न किया, यह भी आपको विदित हो गया। अब तुम इस सारी परिस्थिति को देखकर समझ लेना, कि मेरा इसमें कुछ दोष नहीं है ॥३२-३३॥

न मे पापोऽस्त्त्यभिप्रायः पाण्डवान्प्रति केशव ।
ज्ञातमेव हितं वाक्यं यन्मयोक्तः सुयोधनः ॥३४॥

हे केशव ! मेरा पाण्डवों के प्रति कोई दूषित भाव नहीं है। मैंने जो सुयोधन से हितकारी वचन कहे—वे तुमको ज्ञात ही हैं।

जानन्ति कुरवः सर्वे राजानश्चैव पार्थिवाः ।
शमे प्रयतमानं मां सर्वयत्नेन माधव ॥३५॥

हे माधव ! अब सारे कौरव और राजाओं ने देख लिया--कि मैंने सन्धि के लिए कितना प्रयत्न किया है ॥३५॥

वैशम्पायन उवाच—

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्धृतराष्ट्रं जनार्दनः ।
द्रोणं पितामहं भीष्मं क्षत्तारं बाह्लिकं कृपम् ॥३६॥
प्रत्यक्षमेतद्भवतां यद्वृत्तं कुरुसंसदि ।
यथा चाऽशिष्टवन्मन्दो रोषादद्य समुत्थितः ॥३७॥
वदत्यनीशमात्मानं धृतराष्ट्रो महीपतिः ।
आपृच्छे भवतः सर्वान्गमिष्यामि युधिष्ठिरम् ॥३८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब महाबाहु श्रीकृष्ण, राजा धृतराष्ट्र, द्रोण, भीष्म पितामह, विदुर, बाल्हिक, कृप आदि वीरों से बोले, कि तुम लोगों ने देख लिया, कि आपके सामने ही कौरवों की सभा में यह क्या अनुचित घटना हुई है। जिसमें अशिक्षित की भांति दुर्बुद्धि दुर्योधन, क्रोध में भर कर सभा से उठ खड़ा हुआ। राजा धृतराष्ट्र अपने को असमर्थ कह रहा है। अब मैं तुम सब लोगों से अनुज्ञा लेकर राजा युधिष्ठिर के पास जाता हूं ॥३६-३८॥

आमन्त्र्य प्रस्थितं शौरिं रथस्थं पुरुषर्षभ ।
अनुजग्मुर्महेष्वासाः प्रवीरा भरतर्षभाः ॥३९॥
भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता धृतराष्ट्रोऽथ बाह्लिकः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च युयुत्सुश्च महारथः ॥४०॥

हे पुरुषर्षभ ! इस प्रकार पूछ कर रथ में बैठकर चलते हुए श्रीकृष्ण के पीछे २ महाधनुषधारी भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर, धृतराष्ट्र, बाल्हिक, अश्वत्थामा, विकर्ण, महारथी युयुत्सु आदि अनेक भरतवंश के वीर चल दिए ॥३९-४०॥

ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना ।
कुरूणां पश्यतां द्रष्टुं स्वसारं स पितुर्ययौ ॥४१॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विश्वरूप-दर्शने एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३१॥

अब श्रीकृष्ण, किङ्किणी जाल (घंटी) से सुशोभित विशाल रथ के द्वारा कौरवों के देखते २ अपने पिता की बहिन कुन्ती से मिलने के लिए चल दिए ॥४१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में श्रीकृष्ण के विश्वरूप दिखाने का एक सौ इकतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ बत्तीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

प्रविश्याऽथ गृहं तस्याश्चरणावभिवाद्य च।
आचख्यौ तत्समासेन यद्वृत्तं कुरुसंसदि ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! श्रीकृष्ण ने कुन्ती के महल में पहुंचकर उसके चरणों में प्रणाम किया और कौरवों की सभा में जो कुछ हुआ—वह संक्षेप में कह सुनाया ॥१॥

वासुदेव उवाच—

उक्तं बहुविधं वाक्यं ग्रहणीयं सहेतुकम्।
ऋषिभिश्चैव च मया न चाऽसौ तद्गृहीतवान् ॥२॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे भद्रे! मैंने अनेक भांति से हेतु पूर्वक ग्रहण करने योग्य वचन सभा में सुनाए और उसी तरह अनेक ऋषियों ने कहा—परन्तु दुर्योधन ने एक भी नहीं माना ॥२॥

कालपक्वमिदं सर्वं सुयोधनवशानुगम्।
आपृच्छे भवतीं शीघ्रं प्रयास्ये पाण्डवान्प्रति ॥३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधन के वश में रहने वाला राज-समूह अब काल ने पका दिया है। यह शीघ्र ही नष्ट हो जावेगा। अब तुम मुझे आज्ञा दो—मैं शीघ्र ही पाण्डवों के पास जाना चाहता हूं ॥३॥

किं वाच्याः पाण्डवेयास्ते भवत्या वचनान्मया ।
तद् ब्रूहि त्वं महाप्राज्ञे शुश्रूषे वचनं तव ॥४॥

हे महाप्राज्ञे! अब तुम यह बता दो—कि मैं पाण्डवों से तुम्हारी ओर से क्या कह दूं। यह तुम शीघ्र सुनाओ—मैं सुनना चाहता हूं ॥४॥

कुन्त्युवाच—

ब्रूयाः केशव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
भूयांस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक वृथा कृथाः ॥५॥

कुन्ती बोली—हे केशव! धर्म के ढोंग रखने वाले राजा युधिष्ठिर से कहना—कि हे पुत्र! तेरा धर्म बढ़ता नहीं है, घट रहा है। तू इस तरह वृथा कर्म में न फँस ॥५॥

श्रोत्रियस्येव ते राजन्मन्दकस्याऽविपश्चितः ।
अनुवाकहता बुद्धिर्धर्ममेवैकमीक्षते ॥६॥

हे राजन्! बार २ वेद के रटने से मारी गई वेदपाठी की बुद्धि की तरह तुझ मूर्ख और अविद्वान् की बुद्धि भी धर्म की ओर ही देख रही है ॥६॥

अङ्गाऽवेक्षस्व धर्मं त्वं यथा सृष्टः स्वयम्भुवा ।
बाहुभ्यां क्षत्रियाः सृष्टा बाहुवीर्योपजीविनः ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे पुत्र ! तुम धर्म के वास्तविक स्वरूप को देखो, जिस स्वरूप को स्वयं परमात्मा ने रचा है। क्षत्रियों को तो उसने अपनी भुजाओं से रचा है—इससे ये तो बाहु के पराक्रम से ही अपनी जीविका करने वाले माने गए हैं ॥७॥

क्रूराय कर्मणे नित्यं प्रजानां परिपालने ।
शृणु चाऽत्रोपमामेकां या वृद्धेभ्यः श्रुता मया ॥८॥

ये तो हिंसामय युद्ध जैसे क्रूर कर्म के करने वाले और प्रजा के पालन में नियुक्त हैं। तुम यहां एक दृष्टान्त सुनों—जो मैंने वृद्धों से सुन रखा है ॥८॥

मुचुकुन्दस्य राजर्षेरददत्पृथिवीमिमाम् ।
पुरा वैश्रवणः प्रीतो न चाऽसौ तद्गृहीतवान् ॥९॥
बाहुवीर्यार्जितं राज्यमश्नीयामिति कामये ।
ततो वैश्रवणः प्रीतो विस्मितः समपद्यत ॥१०॥

एक बार धन के स्वामी कुबेर, राजर्षि मुचुकुन्द पर प्रसन्न हो गए। उसने राजा मुचुकुन्द को सारी पृथिवी देनी चाही, परन्तु उसने ग्रहण नहीं की। उसने कहा—मैं तो अपने बाहुओं के पराक्रम से जीती हुई पृथिवी का ही उपभोग कर सकता हूँ, इससे कुबेर बड़ा प्रसन्न और अचम्भित हुआ ॥९-१०॥

मुचुकुन्दस्ततो राजा सोऽन्वशासद्वसुन्धराम् ।
बाहुवीर्यार्जितां सम्यक्क्षत्रधर्ममनुव्रतः ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा मुचुकुन्द ने अपने पराक्रम से सारी पृथिवी को जीता। इसने फिर क्षत्रधर्म का पालन करते हुए उस सारी पृथिवी का पालन किया ॥११॥

यं हि धर्मं चरन्तीह प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः।
चतुर्थं तस्य धर्मस्य राजा विन्देत भारत ॥१२॥

हे भारत! राजा से सुरक्षित प्रजा जिस धर्म का पालन करती है, उस धर्म के पुण्यफल का चतुर्थांश राजा को प्राप्त होता है।१२।

राजा चरति चेद्धर्मं देवत्वायैव कल्पते।
स चेदधर्मं चरति नरकायैव गच्छति ॥१३॥
दण्डनीतिश्च धर्मेभ्यश्चातुर्वर्ण्यं नियच्छति।
प्रयुक्ता स्वामिना सम्यगधर्मेभ्यश्च यच्छति ॥१४॥

यदि राजा धर्म का आचरण करता है, तो वह देवता बनता है और जो वह अधर्म का आचरण करता है, तो नरक को जाता है। राजा, विधि-पूर्वक दण्डनीति का प्रयोग करे, तो उससे वह चारों वर्णों को धर्म में लगाता है, इसी तरह इसका ठीक २ प्रयोग होने से प्रजा अधर्म से बचती है ॥१३-१४॥

दण्डनीत्यां यदा राजा सम्यक्कार्त्स्न्येन वर्तते।
तदा कृतयुगं नाम कालः श्रेष्ठः प्रवर्तते ॥१५॥

जब राजा दण्डनीति का धर्मानुसार प्रयोग करता है, तो जिस काल का नाम सत्युग है,वह उस श्रेष्ठ कालमें प्रवृत्त होता है।

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्।
इति ते संशयो मा भूद्राजा कालस्य कारणम् ॥१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा के बनाने का काल कारण हैं या काल के बनाने का राजा कारण है, उस विषय में तुमको सन्देह नहीं करना चाहिए। यह प्रत्यक्ष है, कि राजा ही काल का कारण होता है ॥ १६ ॥

राजा कृतयुगस्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च ।
युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम् ॥१७॥

राजा ही सत्ययुग, त्रेता और द्वापर के बनाने का कारण है और तो क्या इस कलियुग के प्रवृत्त करने का कारण भी राजा ही माना गया है ॥ १७ ॥

कृतस्य करणाद्राजा स्वर्गमत्यन्तमश्नुते ।
त्रेतायाः करणाद्राजा स्वर्गं नाऽत्यन्तमश्नुते ॥१८॥
प्रवर्तनाद् द्वापरस्य यथाभागमुपाश्नुते ।
कलेः प्रवर्तनाद्राजा पापमत्यन्तमश्नुते ॥१९॥
ततो वसति दुष्कर्मा नरके शाश्वतीः समाः ।

सत्ययुग के प्रवृत्त करने वाले राजा, स्वर्ग का अत्यन्त फल भोगते हैं। त्रेता के बनाने वाले राजा, अधिकता से स्वर्ग फल नहीं भोगते। द्वापर के रचयिता, स्वर्ग के फल का बहुत थोड़ा भाग भोगते हैं, परन्तु कलियुग के प्रवृत्त करने से राजा बड़े पाप का भागी होता है, जिससे यह पापी, बहुत काल तक नरक में वास करता है ॥ १८—१९ ॥

राजदोषेण हि जगत्स्पृश्यते जगतः स च ॥२०॥
राजधर्मानवेक्षस्व पितृपैतामहोचितान् ।
नैतद्राजर्षिवृत्तं हि यत्र त्वं स्थातुमिच्छसि ॥२१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा के दोष से जगत् और फिर जगत् के दोष से राजा युक्त होता है। अब तुम भी अपने पिता और पितामह के स्वरूप के योग्य राज-धर्म का पालन करो। जिस धर्म का तुम आचरण करना चाहते हो, यह श्रेष्ठ राजाओं के मानने योग्य नहीं है।२१।

न हि वैक्लव्यसंसृष्ट आनृशंस्यव्यवस्थितः ।
प्रजापालनसम्भूतं फलं किञ्चन लब्धवान् ॥२२॥

जो राजा कायरता से मुक्त होकर नीच कर्मों में स्थित रहता है। वह प्रजा पालन से उत्पन्न किसी भी पुण्य के फल का भागी नहीं होता ॥ २२ ॥

न ह्येतामाशिषं पाण्डुर्न चाऽहं न पितामहः ।
प्रयुक्तवन्तः पूर्वं ते यया चरसि मेधया ॥२३॥

हे पुत्र ! जिस धर्म का तुम आचरण करते हो, इसकी तो कभी तुम्हारे पिता पाण्डु, पितामह आदि पूर्वज या मैंने कभी शिक्षा नहीं दी है ॥ २३ ॥

यज्ञो दान तपः शौर्यं प्रज्ञा सन्तानमेव च ।
माहात्म्यबलमोजश्च नित्यमाशंसितं मया ॥२४॥

हमने तो तुम में यज्ञ, दान, तप, शौर्य, प्रज्ञा, सन्तान, यश, बल और ओज आदि की ही आशा की थी ॥ २४ ॥

नित्यं स्वाहा स्वधा नित्यं दद्युर्मानुषदेवताः ।
दीर्घमायुर्धनं पुत्रान्सम्यगाराधिताः शुभाः ॥२५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नित्य सन्तुष्ट किए हुए मनुष्यों में देवता ब्राह्मण भी, नित्य स्वाहा स्वधा आदि से देव और पितरों को तृप्त करके तुम्हारे लिए दीर्घ आयु, धन और पुत्र आदि का आशीर्वाद देते थे ॥ २५ ॥

पुत्रेष्वाशासते नित्यं पितरो दैवतानि च ।
दानमध्ययनं यज्ञः प्रजानां परिपालनम् ॥२६॥

पितर या देवता अपनी सन्तान में इन्हीं गुणों की अभिलाषा करते है, कि हमारी सन्तान, दान, अध्ययन, यज्ञ और प्रजा का पालन करती रहे ॥ २६ ॥

एतद्धर्ममधर्मं वा जन्मनैवाऽभ्यजायथाः ।
ते तु वैद्याः कुले जाता अवृत्त्या तात पीडिताः ॥२७॥

हे तात ! ये सब कुल धर्म हों या तुम्हारे मत के अनुसार अधर्म हों, ये सब तुम्हारे जन्म के साथ उत्पन्न हुए हैं। परन्तु तुम तो स्वयं बुद्धिमान् होकर भी अपनी जीविका के लिए क्लेशित हो ॥ २७ ॥

यत्र दानपतिं शूरं क्षुधिताः पृथिवीचराः ।
प्राप्य तुष्टाः प्रतिष्ठन्ते धर्मः कोऽभ्यधिकस्ततः ॥२८॥

भूखे लोग पृथिवी पर घूमते हुए, जब किसी दानवीर के पास पहुंचते हैं और उससे अपना मनोरथ सिद्ध कर लेते हैं, तो इससे जो पुण्य होता है, उससे अधिक और क्या पुण्य हो सकता है ॥ २८ ॥

दानेनाऽन्यं बलेनाऽन्यं तथा सूनृतया परम् ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्राज्यं प्राप्येह धार्मिकः ॥२९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राज्य को प्राप्त करके धार्मिक राजा किसी को दान, किसी को बल और किसी को मीठी वाणी से वश में कर ले, परन्तु किसी को अपने से विरुद्ध न होने दें॥ २९ ॥

ब्राह्मणः प्रचरेद्भैक्षं क्षत्रियः परिपालयेत् ।
वैश्यो धनार्जनं कुर्याच्छूद्रः परिचरेच्च तान् ॥३०॥

ब्राह्मण, भिक्षा, राजा, प्रजापालन, वैश्य, व्यवसाय द्वारा धनार्जन और शूद्र इनकी शिल्प द्वारा सेवा करके अपना निर्वाह करें॥ ३० ॥

भैक्षं विप्रतिषिद्धं ते कृषिर्नैवोपपद्यते ।
क्षत्रियोऽसि क्षतात्त्राता बाहुवीर्योपजीविता ॥३१॥

तुम्हारे लिए भिक्षा वृत्ति का निषेध है। न तुम लोग कृषि कर सकते हो। तुम क्षत्रिय हो, इससे प्रजा की दुःखों से रक्षा करो और अपनी बाहुओं के पराक्रम से जीविका चलाओ ॥३१॥

पित्र्यमंशं महाबाहो निमग्न पुनरुद्धर ।
साम्ना भेदेन दानेन दण्डेनाऽथ नयेन वा ॥३२॥

हे महाबाहो ! तुम्हारे पिता का अंश अन्य प्रतिद्वन्दियों ने छीन लिया है, तुम उस डूबे हुए अंश का साम, दान, दण्ड, भेद या नीति आदि किसी भी उपाय से उद्धार करो॥ ३२ ॥

इतो दुःखतरं किं नु यदहं दीनबान्धवा ।
परपिण्डमुदीक्षे वै त्वां सूत्वा मित्रनन्दन ॥३३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे मित्रनन्दन ! मैं तुम्हारे समान पुत्र उत्पन्न करके भी अन्य के दिए हुए भोजन को खा रही हूँ और मेरे बान्धव दीन हुए दुःखी फिरते हैं, इससे अधिक दुःख क्या होगा ॥ ३३ ॥

युद्ध्यस्व राजधर्मेण मा निमज्जीः पितामहान् ।
मा गमः क्षीणपुण्यस्त्वं सानुजः पापिकां गतिम् ॥३४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीवाक्ये द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३२॥

तुम राज-धर्म के अनुसार युद्ध करो और अपने पूर्वजों को निन्दा के स्रोत में न डुबाओ। तुम अपने भाईयों के साथ पुण्य को क्षीण करके नरक-गति के प्राप्त करने का मार्ग शुद्ध न करो ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में कुन्ती के वाक्य का एक सौ बत्तीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ तेतीसवां अध्याय

कुन्त्युवाच—

अत्राऽप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
विदुलायाश्च संवादं पुत्रस्य च परन्तप ॥१॥
ततः श्रेयश्च भूयश्च यथावद्वक्तुमर्हसि ।

कुन्ती ने कहा—हे परन्तप ! इस स्थान के उपयोगी दृष्टान्त रूप में एक पुराना विदुला और उसके पुत्र का इतिहास है, तुम उसको सुनो और ठीक २ युधिष्ठिर को सुना दो, जिससे अत्यन्त कल्याण की प्राप्ति होवे ॥१॥

यशस्विनी मन्युमती कुले जाता विभावरी ॥२॥
क्षत्रधर्मरता दान्ता विदुला दीर्घदर्शिनी ।

एक बड़ी यशस्विनी, तेजस्विनी, कुलोत्पन्न, बड़ी बांकी रहने वाली, क्षत्र-धर्म-परायण, उदार, दीर्घदर्शिनी, विदुला नाम की महिला थी ॥२॥

विश्रुता राजसंसत्सु श्रुतवाक्या बहुश्रुता ॥३॥
विदुला नाम राजन्या जगर्हे पुत्रमौरसम् ।
निर्जितं सिन्धुराजेन शयानं दीनचेतसम् ॥४॥

राजसभाओं में इस विदुला की बड़ी प्रसिद्धि थी। इसने अनेक व्याख्यान और शास्त्र सुन रखे थे। इस क्षत्राणी विदुला ने अपने औरस पुत्र को बड़ा फटकारा था, जिसको सिन्धुराज ने जीत लिया था और जो कायर बनकर महलों में पड़ा था ॥३-४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विदुलोवाच—

अनन्दन मया जात द्विषतां हर्षवर्धन ।
न मया त्वं न पित्रा च जातः क्वाऽभ्यागतो ह्यसि ।५।

विदुला बोली—मेरे शोक और शत्रुओं के हर्ष के बढ़ाने वाले ! पुत्र ! तू तो मुझ से या अपने पिता से उत्पन्न हुआ ही मालूम नहीं होता है । पता नहीं तू कहां से चला आया है ॥५॥

निर्मन्युश्चाऽप्यसंख्येयः पुरुषः क्लीबसाधनः ।
यावज्जीवं निराशोऽसि कल्याणाय धुरं वह ॥६॥

तुम तेजोहीन उत्तम पुरुषों की गणना में नहीं आने वाले, नपुंसकों के से कर्म कर्ता पुरुष हो । इस तरह तो तुम जीवन पर्यन्त निराश रहोगे—अब तुम कल्याण के लिए वीरता की धुर को धारण करो ॥६॥

माऽऽत्मानमवमन्यस्व मैनमल्पेन बीभरः ।
मनः कृत्वा सुकल्याणं मा भैस्त्वं प्रतिसंहर ॥७॥

हे पुत्र ! तू अपनी आत्मा का अपमान न कर और न इसका स्वल्प सी सम्पत्ति से निर्वाह कर । अब तू अपने मन को कल्याण मार्ग में लगा—डर नहीं, शत्रुओं का संहार कर ॥७॥

उत्तिष्ठ हे का पुरुष मा शेष्वैवं पराजितः ।
अमित्रानन्दयन्सर्वान्निर्मानो बन्धुशोकदः ॥८॥

अरे कायर ! उठ; इस प्रकार पराजित होकर मत पड़ा रहे । तुम अपनी इस चेष्टा से शत्रुओं को आनन्दित और मित्रों को शोक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने वाले हो रहे हो। तुमने तो अपना बिल्कुल ही अभिमान छोड़ दिया ॥८॥

सुपूरा वै कुनदिका सुपूरो मुषिकाञ्जलिः ।
सुसन्तोषः कापुरुषः स्वल्पकेनैव तुष्यति ॥९॥

छोटी २ नदियां जल्दी भर जाती हैं और मूषक अञ्जलि भी शीघ्र भरती है, इसी तरह कायर पुरुष हैं, जो थोड़े से लाभ से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥९॥

अप्यहेरारुजन्दंष्ट्रामाश्वेव निधनं व्रज ।
अपि वा संशयं प्राप्य जीवितेऽपि पराक्रमेः ॥१०॥

या तो तू सांप की दाढ़ों को उखाड़ने को उसके मुंह में हाथ डाल कर शीघ्र मृत्यु प्राप्त कर या अपने आपको विपत्ति में डालकर प्राणों की बाजी लगाकर पराक्रम कर ॥१०॥

अप्यरेः श्येनवच्छिद्रं पश्येस्त्वं विपरिक्रमन् ।
विवदन्वाऽथवा तूष्णीं व्योम्नीवाऽपरिशङ्कितः ॥११॥

अरे पुत्र ! तू आकाश में निःशङ्क घूमने वाले श्येन पक्षी की भांति चुपचाप या ध्वनि करता हुआ शत्रु के ऊपर आक्रमण करने के समय की ओर देख ॥११॥

त्वमेवं प्रेतवच्छेषे कस्माद्वज्रहतो यथा ।
उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा स्वप्सीः शत्रुनिर्जितः ॥१२॥

इस समय तू वज्र से मारे हुए प्रेत (मुर्दे) की भांति कैसे सो रहा है। हे कापुरुष ! उठ और शत्रु से पराजित होकर पड़ा मत रह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माऽस्तं गमस्त्वं कृपणो विश्रूयस्व स्वकर्मणा ।
मा मध्ये मा जघन्ये त्वं माऽधो भूस्तिष्ठ गर्जितः ।१३।

अब तू दीन होकर सदा के लिए अस्त मत हो। अपने कर्म से प्रसिद्ध होने का प्रयत्न कर। मध्यम उपाय, भेद, जघन्य, साम और अधम दान—इन उपायों को छोड़ और गर्जना करता हुआ शत्रु को दण्ड देने के लिए उद्यत होजा ॥१३॥

अलातं तिन्दुकस्येव मुहूर्तमपि हि ज्वल ।
मा तुषाग्निरिवाऽनर्चिर्धूमायस्व जिजीविषुः ॥१४॥

हे पुत्र! तू तिन्दुक लकड़ी के अलातचक्र (टमीटे) की भांति थोड़ी देर तो जलकर चक्कर लगा, परन्तु तुषकी अग्नि की तरह बहुत देर तक धूम देते रह कर जीने की इच्छा करना अच्छा नहीं है ॥ १४ ॥

मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम् ।
मा ह स्म कस्यचिद्गेहे जनि राज्ञः खरो मृदुः ॥१५॥

जलना तो थोड़ी देर का भी अच्छा है, परन्तु चिरकाल तक धुंआ देना अच्छा नहीं है। मेरी सम्मति में तो किसी राजा के घर में अत्यन्त कठोर या अत्यन्त कोमल स्वभाव का पुत्र उत्पन्न ही नहीं होना चाहिए ॥ १५ ॥

कृत्वा मानुष्यकं कर्म सृत्वाऽऽजिं यावदुत्तमम् ।
धर्मस्याऽऽनृण्यमाप्नोति न चाऽऽत्मानं विगर्हते ॥१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब तुम घोर युद्ध की रचना करके मनुष्योचित कर्म करो, इससे तुम धर्म से उऋण हो जावोगे। उत्तम पुरुष अपने आप को कभी निन्दित नहीं होने देता है ॥ १६ ॥

अलब्ध्वा यदि वा लब्ध्वा नाऽनुशोचति पण्डितः।
आनन्तर्यं चाऽऽरभते न प्राणानां धनायते ॥१७॥

अपना उद्देश्य प्राप्त हो गया या नहीं, इसका महात्मा ध्यान नहीं करते हैं। जो कुछ उनके सन्मुख कर्तव्य कर्म उपस्थित होता है, उसे करते हैं। उसमें वे प्राण और धन की भी परवाह नहीं करते हैं ॥ १७ ॥

उद्भावयस्व वीर्यं वा तां वा गच्छ ध्रुवां गतिम्।
धर्मं पुत्राऽग्रतः कृत्वा किंनिमित्तं हि जीवसि ॥१८॥

अब तुम या तो अपना पराक्रम दिखाओ या ध्रुवगति (मृत्यु) को प्राप्त करो। हे पुत्र! धर्म को दूर भगाकर जीने से ही क्या लाभ है ॥ १८ ॥

इष्टापूर्तं हि ते क्लीब कीर्तिश्च सकला हता।
विच्छिन्नं भोगमूलं ते किंनिमित्तं हि जीवसि ॥१९॥

हे क्लीब! तेरे यज्ञ याग या दान पुण्य सब निरर्थक हैं। तेरे भोगों से साधनों की मूल का उच्छेद हो चुका है। अब तुम किस कारण से जीवन धारण किए हुए हो ॥ १९ ॥

शत्रुर्निमज्जता ग्राह्यो जङ्घायां प्रपतिष्यता।
विपरिच्छिन्नमूलोऽपि न विषीदेत्कथञ्चन ॥२०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो मनुष्य डूबने लगे या गिरने लगे, तो शत्रु की भी उसे जाँघ पकड़ लेनी चाहिए। कितनी अपनी जड़ का उच्छेद हो गया हो, परन्तु मनुष्य को कभी चिन्तित होकर बैठना नहीं चाहिए।२०।

उद्यम्य धुरमुत्कर्षेदाजानेयकृतं स्मरन् ।
कुरु सत्त्वं च मानं च विद्धि पौरुषमात्मनः ॥२१॥

हे पुत्र ! तुम अपने कुल की धुर का उद्धार करके उसको खैंचो। तुम्हें इस समय कीचड़ में फँसे हुए धुर के उद्धार करने वाले उत्तम अश्वों के उदाहरण को याद करना चाहिए। अब कुछ पराक्रम और अभिमान का अवलम्बन करो और अपने पुरुषार्थ को पहिचानो ॥ २१ ॥

उद्भावय कुलं मग्नं त्वत्कृते स्वयमेव हि ।
यस्य वृत्तं न जल्पन्ति मानवा महदद्भुतम् ॥२२॥
राशिवर्धनमात्रं स नैव स्त्री न पुनः पुमान्

हे बेटे ! तुम अपने डूबते हुए कुल का उद्धार करो। तुम्हारे इस कायरता पूर्ण कर्म से मनुष्य तुम्हारे कुल में हुए अद्भुत २ कर्मों का भी कथन नहीं करते हैं। तुम जैसा कायर पुरुष केवल मनुष्य संख्या की गिनती ही बढ़ाने वाला है, परन्तु वास्तव में तो वह न स्त्री है और न पुरुष है ॥ २२ ॥

दाने तपसि सत्ये च यस्य नोच्चरितं यशः ॥२३॥
विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिसका दान, तप, सत्य, विद्या और धन आदि के विषय में यश न फैला, वह पुरुष केवल माता की विष्ठा ही समझनी चाहिए।। २३ ॥

श्रुतेन तपसा वाऽपि श्रिया वा विक्रमेण वा ॥२४॥
जनान्योऽभिभवत्यन्यान्कर्मणा हि स वै पुमान् ।

जो पुरुष, शास्त्र, तप, ऐश्वर्य, पराक्रम आदि से अन्य पुरुषों को जीत लेता है, वही अपने कर्म से सत्य अर्थ में पुरुष कहाने का अधिकारी है ॥ २४ ॥

न त्वेव जाल्मीं कापालीं वृत्तिमेषितुमर्हसि ॥२५॥
नृशंस्यामयशस्यां च दुःखां कापुरुषोचिताम् ।

अरे कुपुत्र ! तुमको इस प्रकार की गर्हित, कपाल में भिक्षा मांगने के सदृश नीच और अयशस्कारिणी दुःखदायी, कायर पुरुषों के योग्य वृत्ति का अवलम्बन नहीं करना चाहिए ॥२५॥

यमेनमभिनन्देयुरमित्राः पुरुषं कृशम् ॥२६॥
लोकस्य समवज्ञातं निहीनासनवाससम् ।
अहो लाभकरं हीनमल्पजीवनमल्पकम् ॥२७॥
नेदृशं बन्धुमासाद्य बान्धवः सुखमेधते ।

शत्रु लोग, जिस दीन, लोक में तिरस्कृत, भोजन वस्त्र से हीन, पुरुष को देखकर प्रसन्न होते हैं, जो थोड़े लाभ को पाकर बड़ा सन्तुष्ट होता है, उस क्षुद्र जीवन वाले, अल्पायु बन्धु को पाकर उसके परिवार वाले सुख नहीं पा सकते हैं ॥२६-२७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवृत्त्यैव विपत्स्यामो वयं राष्ट्रात्प्रवासिताः ॥२८॥
सर्वकामरसैर्हीनाः स्थानभ्रष्टा अकिञ्चनाः ।

हम अपने राष्ट्र से बाहर जाकर सब कामनाओं से रहित, स्थान-भ्रष्ट, कुछ नहीं कर सकने वाले होकर वृत्ति-हीनता के साथ मर जाना अच्छा समझते हैं, परन्तु इस तरह जीना ठीक नहीं समझते ॥२८॥

अवल्गुकारिणं सत्सु कुलवंशस्य नाशनम् ॥२९॥
कलिं पुत्रप्रवादेन सञ्जय त्वामजीजनम् ।

हे सञ्जय! सज्जनों के मध्य में नीच कर्म कहलाने वाले कर्मों के कर्ता, कुल और वंश के नाशक, तुझ पुत्र के रूप में मैंने कलियुग को उत्पन्न किया है ॥२९॥

निरमर्षं निरुत्साहं निर्वीर्यमरिनन्दनम् ॥३०॥
मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत्पुत्रमीदृशम् ।

क्रोध, उत्साह और पराक्रम से हीन, शत्रु को प्रसन्न करने वाले, मेरे से पुत्र आगे कोई क्षत्राणी उत्पन्न न करे ॥३०॥

मा धूमाय ज्वलाऽत्यन्तमाक्रम्य जहि शात्रवान्३१॥
ज्वल मूर्धन्यमित्राणां मुहूर्तमपि वा क्षणम् ।

हे पुत्र! अब तू धूम न छोड़—अत्यन्त तेजी के साथ प्रज्वलित हो उठ एवं आक्रमण करके शत्रुओं का नाश कर। अब तो तुम्हें शत्रुओं के मस्तक पर थोड़ी देर के लिए जल उठना चाहिए ॥३१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एतावानेव पुरुषो यदमर्षी यदक्षमी ॥३२॥
क्षमावांन्निरमर्षश्च नैव स्त्री न पुनः पुमान् ।

वास्तव में पुरुष तो वही है, जो अपमान होने पर क्रोध करता है और क्षमा नहीं करता। जिसको अपमान के समय भी क्रोध नहीं आया और जिसने शत्रु को क्षमा कर दिया—वह न तो स्त्री है और न पुरुष है ॥३२॥

सन्तोषो वै श्रियं हन्ति तथाऽनुक्रोश एव च ॥३३॥
अनुत्थानभये चोभे निरीहो नाऽश्नुते महत् ।

सन्तोष या शत्रु पर दया करना ऐश्वर्य का घातक है। इसी तरह शत्रु पर आक्रमण नहीं करना या भयभीत रहना भी राज्यलक्ष्मी के विघ्न हैं, क्योंकि उद्योग-हीन, निश्चेष्ट पुरुष संसार में महत् पद नहीं पा सकता है ॥३३॥

एभ्यो निकृतिपापेभ्यः प्रमुञ्चाऽऽत्मानमात्मना ॥३४॥
आयसं हृदयं कृत्वा मृगयस्व पुनः स्वकम् ।

अब तुम इस पराजय रूप पापों से अपने आपको स्वयं मुक्त करो और लोहे के सदृश अपने हृदय को कठोर करके अपने ऐश्वर्य की खोज करो ॥३४॥

परं विषहते यस्मात्तस्मात्पुरुष उच्यते ॥३५॥
तमाहुर्व्यर्थनामानं स्त्रीवद्य इह जीवति ।

अन्य पुरुष का आक्रमण नहीं सहने वाला ही पुरुष कहाने का अधिकारी है। वह तो व्यर्थ ही पुरुष कहाता है, जो इस जगत में स्त्री की भांति जीता है ॥३५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शूरस्योर्जितसत्त्वस्य सिंहविक्रान्तचारिणः ॥३६॥
दिष्टभावं गतस्याऽपि विषये मोदते प्रजा ।

महाबली, शूरवीर, सिंह के समान पराक्रम करने वाले, राजा के मृत्यु को प्राप्त कर लेने पर भी उसके देश में प्रजा आनन्दित रहती है ॥३६॥

य आत्मनः प्रियसुखे हित्वा मृगयते श्रियम् ॥३७॥
अमात्यानामथो हर्षमादधात्यचिरेण सः ॥३८॥

जो पुरुष अपने प्रिय पुत्र आदि के सहवास के सुख को छोड़ कर ऐश्वर्य की खोज करता है, वह शीघ्र ही अपने मन्त्रियों के हर्ष का बढ़ाने वाला होता है ॥३७-३८॥

पुत्र उवाच—

किं नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वया ।
किमाभरणकृत्यं ते किं भोगैर्जीवितेन वा ॥३९॥

पुत्र ने कहा—हे माता ! तू मेरे मर जाने पर मेरे बिना देखे इस सारी पृथिवी का क्या करेगी एवं आभूषण, भोग और जीवन से भी तुझे फिर क्या लाभ रह जावेगा ॥३९॥

मातोवाच—

किमद्यकानां ये लोका द्विषन्तस्तानवाप्नुयुः ।
ये त्वाद्यतात्मनां लोकाः सुहृदस्तान्व्रजन्तु नः ॥४०॥

हे पुत्र ! मैं तो यह चाहती हूँ, कि एक दिन को भी जिनके पास खाने को न रहा हो—ऐसी दशा को हमारे शत्रु और जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उद्योग शीलों की अवस्था होती है, उस ऐश्वर्य को हमारे सुहृद प्राप्त करें ॥४०॥

भृत्यैर्विहीयमानानां परिपिण्डोपजीविनाम् ।
कृपणानामसत्त्वानां मा वृत्तिमनुवर्तिथाः ॥४१॥

तुम, सेवकों से हीन, अन्य के भोजन से पलने वाले, दीन, पुरुषार्थ हीन, पुरुषों की वृत्ति का अनुवर्तन न करो ॥४१॥

अनु त्वां तात जीवन्तु ब्राह्मणाः सुहृदस्तथा ।
पर्जन्यमिव भूतानि देवा इव शतक्रतुम् ॥४२॥

हे तात ! तेरे साथ तेरे मित्र और ब्राह्मणों की, मेघों से प्राणी और इन्द्र से देवों की भांति जीविका हो ॥४२॥

यमाजीवन्ति पुरुषं सर्वभूतानि सञ्जय ।
पक्वं द्रुममिवाऽऽसाद्य तस्य जीवितमर्थवत् ॥४३॥

हे सञ्जय ! पके २ फलों से परिपूर्ण वृक्ष में जैसे पक्षी जीवन धारण करते हैं, ऐसे ही अनेक प्राणी जिसके आश्रय से जीवन धारण करें, उसी का ही जीवन सफल है ॥४३॥

यस्य शूरस्य विक्रान्तैरेधन्ते बान्धवाः सुखम् ।
त्रिदशा इव शक्रस्य साधु तस्येह जीवितम् ॥४४॥

जिस शूरवीर के पराक्रमों से बान्धव, इन्द्र से देवों की भांति सुख से वृद्धि प्राप्त करते हैं, उसी का जीवन सार्थक है ॥४४॥

स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽभ्युज्जीवति मानवः ।
स लोके लभते कीर्तिं परत्र च शुभां गतिम् ॥४५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति श्रीमहाभारत० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासने त्रयस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१३३॥

जो मनुष्य अपनी भुजाओं का अवलम्ब धारण करके अपनी जीविका चलाता है, वह इस लोक में कीर्ति और परलोक में शुभ गति पाता है ॥४५॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में विदुला के अपने पुत्र को शिक्षा देने का एक सौ तेतीसवां अध्याय पूरा हुआ

एक सौ चौंतीसवां अध्याय

विदुलोवाच—

अथैतस्यामवस्थायां पौरुषं हातुमिच्छसि ।
निहीनसेवितं मार्गं गमिष्यस्यचिरादिव ॥१॥

विदुला बोली—हे पुत्र ! यदि तुम इस संकटमयी अवस्था में भी पुरुषार्थ का परित्याग करोगे—तो बहुत ही शीघ्र नीच जन से सेवित मार्ग को निश्चय प्राप्त हो जाओगे ॥१॥

यो हि तेजो यथाशक्ति न दर्शयति विक्रमात् ।
क्षत्रियो जीविताकांक्षी स्तेन इत्येव तं विदुः ॥२॥

जो क्षत्रिय ऐसी दशा में भी पराक्रम करके अपना तेज नहीं दिखाता है, उस प्राणों के लोभी क्षत्रिय को चोर समझना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थवन्त्युपपन्नानि वाक्यानि गुणवन्ति च ।
नैव सम्प्राप्नुवन्ति त्वां मुमूर्षुमिव भेषजम् ॥३॥

तुम पर अर्थ, गौरव-सम्पन्न, युक्तियुक्त, गुणधारी वाक्य भी मरने वाले को औषधि की तरह कुछ भी प्रभाव उत्पन्न नहीं कर रहे हैं ॥३॥

सन्ति वै सिन्धुराजस्य सन्तुष्टा न तथा जनाः ।
दौर्बल्यादासते मूढा व्यसनौघप्रतीक्षिणः ॥४॥

आजकल सिन्धुराज से अनेक राजा और उसकी प्रजा सन्तुष्ट नहीं है। वे तो अपनी दुर्बलता से चुप बैठे हैं और इसके लिए विपत्ति की प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥४॥

सहायोपचितिं कृत्वा व्यवसाय्य ततस्ततः ।
अनुदुष्येयुरपरे पश्यन्तस्तव पौरुषम् ॥५॥

तुम अपने सहायकों का संग्रह करके इधर उधर से उद्योग करोगे—तो तुम्हारे पुरुषार्थ को देख कर अन्य राजा भी सिन्धुराज के समान दुष्ट हो जावेंगे। वे तो तेरे पुरुषार्थ के देखे बिना ही शत्रुपक्ष का आश्रय लिए हुए हैं ॥५॥

तैः कृत्वा सह सङ्घातं गिरिदुर्गालयं चर ।
काले व्यसनमाकांक्ष नैवाऽयमजरामरः ॥६॥

अब तुम उन राजाओं के साथ अपना संगठन बनाओ, जो सिन्धुराज से द्वेष करते हैं। ऐसा करके पर्वतीय दुर्ग का आश्रय लो और सिन्धुराज के छिद्र देखने की प्रतीक्षा करते रहो। यह तुम्हारा शत्रु अजर अमर तो है ही नहीं ॥६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सञ्जयो नामतश्च त्वं न च पश्यामि तत्त्वयि ।
अन्वर्थनामा भव मे पुत्र मा व्यर्थनामकः ॥७॥

हे पुत्र ! तेरा नाम तो सञ्जय है, परन्तु तुझ में विजय का गुण नहीं देखती हूँ । हे पुत्र ! तुम अपने नाम को सार्थक बनाओ, व्यर्थ के नाम ग्रहण करने से क्या गौरव है ॥७॥

सम्यग्दृष्टिर्महाप्राज्ञो बालं त्वां ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।
अयं प्राप्य महत्कृच्छ्रं पुनर्वृद्धिं गमिष्यति ॥८॥

दिव्य दृष्टि, महाविद्वान् ब्राह्मण ने बचपन में तेरे लक्षण देख कर कहा था, कि यह एक बार विपत्ति में फँस जावेगा और फिर वृद्धि प्राप्त करेगा ॥८॥

तस्य स्मरन्ती वचनमाशंसे विजयं तव ।
तस्मात्तात ब्रवीमि त्वां वक्ष्यामि च पुनः पुनः ॥९॥

मुझे उसके वचन का स्मरण है, मैं नित्य तेरी विजय की अभिलाषा करती रहती हूँ । हे तात ! इसी से तुझ से यह कहती हूँ और बारबार कहती रहूँगी ॥९॥

यस्य ह्यर्थाभिनिर्वृत्तौ भवन्त्याप्यायिताः परे ।
तस्याऽर्थसिद्धिर्नियता नयेष्वर्थानुसारिणः ॥१०॥

जिसके कार्य के सिद्ध होने पर अन्य की भी पुष्टि होती है, उसके प्रयोजन की अवश्य सिद्धि होती है, क्योंकि नीति के अनुसार कार्य का आरम्भ करने पर उससे सम्बन्ध रखने वाले नीति कुशल मनुष्य उसमें अवश्य सहायक हो जाते हैं ॥१०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समृद्धिरसमृद्धिर्वा पूर्वेषां मम सञ्जय ।
एवं विद्वान्युद्धमना भव मा प्रत्युपाहरः ॥११॥

हे सञ्जय ! मेरे पूर्व ऐश्वर्य की वृद्धि हो या विनाश हो—इसकी परवाह नहीं है—ऐसा जानकर तू युद्ध में प्रवृत्त हो और उसको कभी बन्द न होने दे ॥११॥

नाऽतः पापीयसीं काञ्चिदवस्थां शम्बरोऽब्रवीत् ।
यत्र नैवाऽद्य न प्रातर्भोजनं प्रतिदृश्यते ॥१२॥

शम्बर मुनि ने इससे अधिक पापमयी कोई अवस्था नहीं मानी है, जिसमें प्रातःकाल या सायंकाल भोजन ही दिखाई नहीं देता है ॥१२॥

पतिपुत्रवधादेतत्परमं दुःखमब्रवीत् ।
दारिद्र्यमिति यत्प्रोक्तं पर्यायमरणं हि तत् ॥१३॥

यह दरिद्र तो पति और पुत्र की मृत्यु से भी अधिक दुःखदायी माना गया है। इसे तो दूसरी मृत्यु ही समझनी चाहिए ॥१३॥

अहं महाकुले जाता ह्रदाद्ध्रदमिवाऽऽगता ।
ईश्वरी सर्वकल्याणी भर्त्रा परमपूजिता ॥१४॥

मैं एक महत्वशाली राजकुल में उत्पन्न हुई और एक सरोवर-से दूसरे सरोवर की भांति महाकुल में ही चली आई हूँ। मैंने यहां सब तरह स्वामिनी रह कर सारे कल्याणों का उपभोग किया और भर्ता के राज्य में बड़े आदर से समय बिताया है ।१४।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महार्हमाल्याभरणां सुमृष्टाम्बरवाससम् ।
पुरा हृष्टः सुहृद्वर्गो मामपश्यत्सुहृद्गताम् ॥१५॥

जब मैं बड़े २ मूल्य वाले आभूषण और स्वच्छ वस्त्र धारण करती थी, तो मुझे सखियों में देखकर मेरा परिवार बड़ा ही प्रसन्न होता था ॥ १५ ॥

यदा मां चैव भार्यां च द्रष्टाऽसि भृशदुर्बलाम् ।
न तदा जीवितेनाऽर्थो भविता तव संजय ॥१६॥

हे सञ्जय ! जब तू मुझे और अपनी भार्या को अत्यन्त दुर्बल देखेगा, तब तुझे अपने जीवन को धिक्कारना पड़ेगा । ऐसी दशा में भी जीवन को बचाए रखने से क्या प्रयोजन है ॥ १६ ॥

दासकर्मकरान्भृत्यानाचार्यर्त्विक्पुरोहितान् ।
अवृत्याऽस्मान्प्रजहतो दृष्ट्वा किं जीवितेन ते ॥१७॥

काम करने वाले दास, सेवक, आचार्य, ऋत्विक्, पुरोहित आदि को जब हम वृत्ति नहीं दे सकेंगे और वे हमको छोड़ कर जाने लगेंगे, तो उस समय तेरे जीवन का हमको क्या लाभ होगा ॥ १७ ॥

यदि कृत्यं न पश्यामि तवाऽद्याऽहं यथा पुरा ।
श्लाघनीयं यशस्यं च का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥१८॥

जब मैं पूर्व की तरह आज तेरी प्रशंसा और यश के करने वाले कर्मों को नहीं देखूंगी, तो फिर मेरे हृदय को कैसे शान्ति मिल सकेगी ॥ १८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नेति चेद् ब्राह्मणं ब्रूयां दीर्येत हृदयं मम ।
न ह्यहं न च मे भर्ता नेति ब्राह्मणमुक्तवान् ॥१९॥

जब कोई ब्राह्मण हमारे पास किसी आशा में आवेगा और हम उससे, "हमारी दान की शक्ति नहीं है" यह कह कर निषेध करेंगे, तो उस समय मेरा हृदय फटने लगेगा, क्योंकि मैंने या मेरे भर्ता ने कभी किसी ब्राह्मण को निषेध नहीं किया ॥ १९ ॥

वयमाश्रयणीयाः स्म न श्रोतारः परस्य च ।
साऽन्यमासाद्य जीवन्ती परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥२०॥

हम तो अन्य को आश्रय देने वाली रही हैं। हम में अन्य के कटु वचन सुनने की शक्ति नहीं है। ऐसे अभ्यास वालीं मुझे यदि अन्य की सेवा से जीवन धारण करना पड़ेगा, तो मैं ऐसे जीवन को ही नष्ट कर लूँगी ॥ २० ॥

अपारे भव नः पारमप्लवे भव नः प्लवः ।
कुरुष्व स्थानमस्थाने मृतान्सञ्जीवयस्व नः ॥२१॥

इस अपार विपत्ति सागर का तू पार करने वाला न बन या नौका से हीन हम लोगों की तू नौका बन। अब हम स्थान हीन है, उनको स्थान बना और इस तरह मृत प्रायः हम लोगों को तू अच्छी तरह जीवित कर ॥ २१ ॥

सर्वे ते शत्रवः शक्या न चेज्जीवितुमर्हसि ।
अथ चेदीदृशीं वृत्तिं क्लीबामभ्युपपद्यसे ॥२२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि तुम अपने जीवन का मोह छोड़ दोगे, तो तुम्हारे सारे शत्रु जीते जा सकते हैं और यदि ऐसी ही नपुंसकों की सी वृत्ति रही, तो कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकोगे ॥ २२ ॥

निर्विण्णात्मा हतमना मुञ्चैतां पापजीविकाम् ।
एकशत्रुवधेनैव शूरो गच्छति विश्रुतिम् ॥२३॥

तुम्हारी आत्मा विषाद मग्न और मन बुझ रहा है। तुमको अपनी इस पाप पूर्ण जीवन वृत्ति को छोड़ देना चाहिए। शूरवीर तो केवल शत्रु के वध से ही प्रसिद्धि को प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

इन्द्रो वृत्रवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत ।
माहेन्द्रं च गृहं लेभे लोकानां चेश्वरोऽभवत् ॥२४॥

इन्द्र, वृत्रासुर को मार कर महेन्द्र बन गया, क्योंकि उसको महेन्द्र के योग्य स्थान की प्राप्ति हुई, जिससे वह सारे लोकों का ईश्वर हो गया ॥ २४ ॥

नाम विश्राव्य वै संख्ये शत्रूनाहूय दंशितान् ।
सेनाग्रं चापि विद्राव्य हत्वा वा पुरुषं वरम् ॥२५॥
यदैव लभते वीरः सुयुद्धेन महद्यशः ।
तदैव प्रव्यथन्तेऽस्य शत्रवो विनमन्ति च ॥२६॥

जब महावीर पुरुष अपने नाम की युद्ध में घोषणा करके सन्नद्ध हुए शत्रुओं को ललकारता है, तो वह सेना के अग्रभाग को विचलित कर देता है और किसी सेनापति जैसे प्रसिद्ध वीर को मार बैठता है, तभी उसको इस घोर, युद्ध से यश की प्राप्ति होती है। उस समय उसके शत्रु दुःखी होकर झुक जाते हैं ।२५-२६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्यक्त्वाऽऽत्मानं रणे दक्षं शूरं कापुरुषा जनाः।
अवशास्तर्पयन्ति स्म सर्वकामसमृद्धिभिः ॥२७॥

जो मनुष्य युद्ध में अपने प्राणों की परवाह न करके युद्ध करता है, उस रण-कुशल वीर के अधीन हुए कायर मनुष्य, उसकी सारी कामनाओं को पूर्ण करके उसको सन्तुष्ट करते हैं ।७२।

राज्यं चाप्युग्रविभ्रंशं संशयो जीवितस्य वा ।
न लब्धस्य हि शत्रोर्वै शेषं कुर्वन्ति साधवः ॥२८॥

चाहे राज्य मिट्टी में मिल जावे या प्राणों का ही संशय उपस्थित होवे, परन्तु मनस्वी वीर, शत्रु को नाश किए बिना चैन नहीं लेते हैं ॥ २८ ॥

स्वर्गद्वारोपमं राज्यमथवाऽप्यमृतोपमम् ।
रुद्धमेकायनं मत्वा पतोल्मुक इवाऽरिषु ॥२९॥

संसार में राज्य का उपभोग स्वर्ग द्वार के समान है और अमृत के तुल्य स्वर्ग की सत्ता है। इन दोनों में जब एक की प्राप्ति सम्भव है, तो उनमें से तुमको एक को चुन लेना चाहिए। ऐसा समझ कर तुम आग की भांति अरियों के बीच में कूद पड़ो

जहि शत्रूञ्रणे राजन्स्वधर्ममनुपालय।
मा त्वादृशं सुकृपणं शत्रूणां भयवर्धनम् ॥३०॥
अस्मदीयैश्च शोचद्भिर्नदद्भिश्च परैर्वृतम् ।
अपि त्वां नाऽनुपश्येयं दीनाद्दीनमिवाऽऽस्थितम् ॥३१।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन्! अब तुम शत्रुओं का वध करके अपने क्षात्र-धर्म का पालन करो। मैं, तुझ जैसे शत्रुओं के भयवर्द्धक वीर को दीन एवं चिन्ता करते हुए, भी अपने मित्र और गर्जते हुए शत्रुओं से घिरे हुए देखना नहीं चाहती हूँ। मुझसे दीनों से भी अधिक तुम्हारी यह दीन दशा नहीं देखी जाती हैं ॥ ३०—३१ ॥

हृष्य सौवीरकन्याभिः श्लाघ स्वार्थैर्यथा पुरा।
मा च सैन्धवकन्यानामवसन्नो वशं गमः ॥३२॥

तुम प्रसन्न हो जाओ और पूर्वकाल की भाँति सौवीर देश की कन्याओं के प्रशंसा-परक वचनों से स्वागत प्राप्त करो। तुम सैन्धव देश की कन्याओं से निन्दित होकर सिन्धुराज की अधीनता स्वीकार न करो ॥३२॥

युवा रूपेण सम्पन्नो विद्ययाऽभिजनेन च।
यत्त्वादृशो विकुर्वीत यशस्वी लोकविश्रुतः ॥३३॥
अधुर्यवच्च वोढव्ये मन्ये मरणमेव तत्।

तुम युवा, रूप, विद्या और कुल के गौरव से सम्पन्न हो तथा यशस्वी और लोक प्रसिद्ध वीर होकर भी इस प्रकार तुम्हारा भाग निकलना बड़ा ही अनुचित है। तुम बैल नहीं हो, फिर भी तुम पर यदि बोझा लादा गया-तो मैं तो इसको मरण ही मानती हूँ ॥३३॥

यदि त्वामनुपश्यामि परस्य प्रियवादिनम् ॥३४॥
पृष्ठतोऽनुव्रजन्तं वा का शान्तिर्हृदयस्य मे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि मैंने तुमको शत्रु की चाटुकारिता (खुशामद) करते देखा या उसके पीछे भृत्य (चपरासी) की भांति जाते देखा-तो उस समय मेरे हृदय को कैसे शान्ति मिलेगी ॥३४॥

नाऽस्मिञ्जातु कुले जातो गच्छेद्योऽन्यस्य पृष्ठतः ॥३५॥
न त्वं परस्याऽनुचरस्तात जीवितुमर्हसि ।

हे तात ! इस उच्च कुल में उत्पन्न हुआ कोई भी किसी के पीछे नहीं चला । हे पुत्र ! तुमको तो सिन्धुराज का अनुचर होकर जीवित ही नहीं रहना चाहिए । ॥३५॥

अहं हि क्षत्रहृदयं वेद यत्परिशाश्वतम् ॥३६॥
पूर्वैः पूर्वतरैः प्रोक्तं परैः परतरैरपि ।
शाश्वतं चाऽव्ययं चैव प्रजापतिविनिर्मितम् ॥३७॥

मैं तो क्षत्रियों का हृदय जानती हूँ, जो बड़ा विशाल और अक्षीण होता है । हमारे पूर्वज, वृद्ध वा अन्य राजनीति के जानने वाले वृद्धों ने भी क्षत्रिय हृदय को ऐसा ही गौरवशाली होने वाला कहा है ॥३६-३७॥

यो वै कश्चिदिहाऽऽजातः क्षत्रियः क्षत्रकर्मवित् ।
भयाद्वृत्तिसमीक्षो वा न नमेदिह कस्यचित् ॥३८॥
उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम् ।
अप्यपर्वणि भज्येत न नमेतेह कस्यचित् ॥३९॥

जो क्षत्रिय उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ है, वह वीर क्षत्रियों के कर्मों का जानने वाला अपनी वृत्ति के लोभ या भय से किसी के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सामने न झुके । उस वीर को सदा उद्यम करना चाहिए, क्योंकि उद्यम ही पौरुष है । चाहे विना प्रयोजन के टुकड़े २ हो जावे, परन्तु क्षत्रिय को किसी के सामने झुकना योग्य नहीं है ।

मातङ्गो मत्त इव च परीयात्स महामनाः ।
ब्राह्मणेभ्यो नमेन्नित्यं धर्मायैव च सञ्जय ॥४०॥

हे सञ्जय ! मनस्वी-पुरुष, मदोन्मत्त, हाथी की भांति इधर उधर वृथा घूम सकता है, परन्तु किसी के सामने उसको झुकना नहीं चाहिए । धर्म की रक्षा के लिए केवल ब्राह्मणों के सन्मुख ही क्षत्रिय को झुकने में शोभा है ॥४०॥

नियच्छन्नितरान्वर्णान्विनिघ्नन्सर्वदुष्कृतः ।
ससहायोऽसहायो वा यावज्जीवं तथा भवेत् । ४१॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासने चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३४॥

अन्य वर्णों पर धर्मपूर्वक शासन और सारे दुष्टों का विनाश करने वाला क्षत्रिय को बनना चाहिए । क्षत्रिय वीर, असहाय हो या सहायता से सम्पन्न हो, उसको जीवन पर्यन्त ऐसा ही प्रयत्न करना चाहिए ॥४१॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में विदुला का पुत्र को शिक्षा देने का एक सौ चौंतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ पैंतीसवां अध्याय

पुत्र उवाच –

कृष्णायसस्येव च ते संहत्य हृदहं कृतम् ।
मम मातस्त्वकरुणे वीरप्रज्ञे ह्यमर्षणे ॥१॥

सञ्जय बोला—हे वीरता से पूर्ण बुद्धिवाली, करुणा हीन, असहिष्णु, माता ! तू ने अपने हृदय को ठोक बजाकर काले लोहे के समान कठोर कर लिया है ॥ १ ॥

अहो क्षत्रसमाचारो यत्र मामितरं यथा ।
नियोजयसि युद्धाय परमातेव मां तथा ॥२॥

यह क्षत्रिय धर्म भी बड़ा कठोर है, जिसके कारण तुम शत्रु माता की तरह युद्ध में पराये के समान मान कर झोंक रही हो ॥२॥

ईदृशं वचनं ब्रूयाद्भवती पुत्रमेकजम् ।
किं नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वया ॥३॥

हे माता ! तुम मुझ इकलौते पुत्र से भी ऐसे वचन कह रहीं हो । जब तुम मुझको संसार में नहीं देखोगी, तो फिर सारी पृथिवी को लेकर क्या करोगी ॥ ३ ॥

किमाभरणकृत्येन किं भोगैर्जीवितेन वा ।
मयि वा सङ्गरहते प्रियपुत्रे विशेषतः ॥४॥

जब मैं तुम्हारा प्रिय पुत्र युद्ध में मारा जाऊंगा, तो इन आभूषण, भोग या जीवन से ही तुमको क्या सुख होगा ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मातोवाच—

सर्वावस्था हि विदुषां तात धर्मार्थकारणात् ।
तावेवाऽभिसमीक्ष्याऽहं सञ्जय त्वामचूचुदम् ॥५॥

माता ने कहा—हे तात ! सञ्जय ! विद्वान् पुरुषों के सारे कृत्य धर्म और अर्थ के कारण से होते हैं। मैंने भी उनको देख कर ही तुमको युद्ध के लिए उत्तेजित किया है ॥ ५ ॥

स समीक्ष्य क्रमोपेतो मुख्यः कालोऽयमागतः ।
अस्मिंश्चेदागते काले कार्यं न प्रतिपद्यसे ॥६॥
असम्भावितरूपस्त्वमानृशंस्यं करिष्यसि ।

योग्य पराक्रम देखने के योग्य यह मुख्य समय आ गया है। यदि इस उचित समय के ऊपर भी तुम कार्य न करोगे, तो संसार में तिरस्कार के योग्य होकर यह बहुत ही बुरा करोगे ॥ ६ ॥

तं त्वामयशसा स्पृष्टं न ब्रूयां यदि सञ्जय ॥७॥
खरीवात्सल्यमाहुस्तन्निःसामर्थ्यमहेतुकम् ।

हे सञ्जय ! जब तुम अपयश से युक्त हो जावोगे और मैं फिर भी तुमसे कुछ न कहूँगी, तो मेरा यह प्रेम गर्दभी के समान माना जावेगा। ऐसे सामर्थ्य हीन प्रेम से प्रयोजन ही क्या है ॥७॥

सद्भिर्विगर्हितं मार्गं त्यज मूर्खनिषेवितम् ॥८॥
अविद्या वै महत्यस्ति यामिमां संश्रिताः प्रजाः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सज्जनों से निन्दित और मूर्खों से प्रशंसित इस मार्ग का तुम परित्याग करो। जिस ढंग का संसार ने अवलम्बन कर रखा है, वह तो बहुत बड़ी अविद्या है ॥ ८ ॥

तव स्याद्यदि सद्वृत्तं तेन मे त्वं प्रियो भवेः ॥९॥
धर्मार्थगुणयुक्तेन नेतरेण कथञ्चन ।
दैवमानुषयुक्तेन सद्भिराचरितेन च ॥१०॥

यदि तुममें धर्म और नीति के गुणों से युक्त सदाचार होगा, तो तुम मेरे प्रिय हो सकते हो अन्यथा मेरे प्रिय होने का कोई भी मार्ग नहीं है। मैं तो देवता और मनुष्यों के योग्य सज्जनों द्वारा आचरित कर्मों से ही प्रसन्न हो सकती हूँ ॥ ९—१० ॥

यो ह्येवमविनीतेन रमते पुत्रनप्तृणा ।
अनुत्थानवता चापि दुर्विनीतेन दुर्धिया ॥११॥
रमते यस्तु पुत्रेण मोघं तस्य प्रजाफलम् ।

जो अविनयी, अवनति कारक, मूर्ख और उदण्ड पुत्र और और पौत्रों से भी प्रेम करता है, उसके पुत्र उत्पन्न करने का फल ही निरर्थक है ॥ ११ ॥

अकुर्वन्तो हि कर्माणि कुर्वन्तो निन्दितानि च ॥१२॥
सुखं नैवेह नाऽमुत्र लभन्ते पुरुषाधमाः ।

उत्तम कर्मों के नहीं करने वाले और निन्दित कर्म कर्ता नीच पुरुष इस लोक और परलोक में सुख नहीं पाते हैं ॥ १२ ॥

युद्धाय क्षत्रियः सृष्टः सञ्जयेह जयाय च ॥१३॥
जयन्वा वध्यमानो वा प्राप्नोतीन्द्रसलोकताम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे सञ्जय ! क्षत्रिय का तो जन्म ही युद्ध या विजय के लिए माना गया है। यदि वीर विजयी हो गया या युद्ध में वीर गति पा गया, तो वह दोनों ही तरह अन्त में इन्द्रलोक को प्राप्त करता है ॥ १३ ॥

न शक्रभवने पुण्ये दिवि तद्विद्यते सुखम् ॥
यदमित्रान्वशे कृत्वा क्षत्रियः सुखमेधते ॥१४॥

इतना सुख पवित्र स्वर्ग लोक के इन्द्र भवन में भी नहीं है, जितना शत्रुओं को वश में कर लेने पर क्षत्रिय को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

मन्युना दह्यमानेन पुरुषेण मनस्विना।
निकृतेनेह बहुशः शत्रून्प्रतिजिगीषया ॥१५॥
आत्मानं वा परित्यज्य शत्रुं वा विनिपात्य च ।
अतोऽन्येन प्रकारेण शान्तिरस्य कुतो भवेत् ॥१६।

मनस्वी-पुरुष, शत्रु से तिरस्कार प्राप्त करने पर क्रोध की अग्नि से जलता रहता है और बार २ उसके जीतने को उस पर चढ़ाई करता है। इस समय यह या तो अपने आपको युद्ध क्षेत्र में बलिदान कर देता है या शत्रु का वध कर लेता है। इन दोनों के सिवाय अन्य किस मार्ग से मनस्वी पुरुष को शान्ति नहीं हो सकती है ॥ १५—१६ ॥

इह प्राज्ञो हि पुरुषः स्वल्पमप्रियमिच्छति ।
यस्य स्वल्पं प्रियं लोके ध्रुवं तस्याऽल्पमप्रियम् ।१७।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो बुद्धिमान् पुरुष होता है, उसको स्वल्प ऐश्वर्य की प्राप्ति में सन्तोष नहीं होता है। जिसको स्वल्प ऐश्वर्य प्रिय होता है, उसको वह किसी दिन अनर्थ कारी प्रमाणित होता है ॥ १७ ॥

प्रियाभावाच्च पुरुषो नैव प्राप्नोति शोभनम् ।
ध्रुवं चाऽभावमभ्येति गत्वा गङ्गेव सागरम् ॥१८॥

इस स्वल्प ऐश्वर्य के अनर्थकारी होने से फिर पुरुष को कभी कल्याण प्राप्त नहीं होता और इस तरह यह निश्चय विनाश को ही प्राप्त होता है, जैसे समुद्र में जाकर गंगा का विनाश हो जाता है ॥ १८ ॥

पुत्र उवाच—

नेयं मतिस्त्वया वाच्या मातः पुत्रे विशेषतः ।
कारुण्यमेवाऽत्र पश्य भूत्वेह जडमूकवत् ॥१९॥

पुत्र ने कहा—हे माता ! तुमको मुझे ऐसी बुद्धि नहीं देनी चाहिए। मैं तो तेरा प्रिय पुत्र हूँ, मुझे तो अवश्य ऐसा नहीं कहना चाहिए। इस समय तो जड़ और मूक की भांति चुप रह कर तुमको मुझ पर दया ही दिखानी चाहिए ॥ १९ ॥

मातोवाच—अतो मे भूयसी नन्दिर्यदेवमनुपश्यसि ।
चोद्यं मां चोदयस्येतद्भृशं वै चोदयामि ते ॥२०॥

माता बोली—हे पुत्र ! मैं इससे बहुत प्रसन्न हूँ, जो तू मुझे इस प्रकार देख रहा है। तू मुझे अपने कर्तव्य को बताता है और मैं तुझे तेरे योग्य कर्तव्य की प्रेरणा कर रही हूँ ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मातोवाच—

अथ त्वां पूजयिष्यामि हत्वा वै सर्वसैन्धवान् ।
अहं पश्यामि विजयं कृच्छ्रभावितमेव ते ॥२१॥

हे पुत्र ! जब तुम सारे सैन्धवों को मार कर आवोगे, मैं तभी तुम्हारी पूजा करूंगी । मैं तो कठिनता से प्राप्त करने योग्य इस विजय के देखने के लिए उत्सुक हूँ ॥ २१ ॥

पुत्र उवाच—

अकोशस्याऽसहायस्य कुतः सिद्धिर्जयो मम ।
इत्यवस्थां विदित्वैतामात्मनाऽऽत्मनि दारुणाम् ॥२२॥
राज्याद्भावो निवृत्तो मे त्रिदिवादिवः दुष्कृतः ।

पुत्र ने कहा–हे माता ! न तो मेरे पास कोष है और न कोई सहायता है, फिर सिद्धि या जय कैसे हो सकती हैं । मैं इस प्रकार अपने विषय में अपनी बुद्धि से इस दारुण दशा को देखकर राज्य के लौटाने की चेष्टा से निवृत्त हो गया हूँ । मुझे राज्य की प्राप्ति तो स्वर्ग प्राप्ति के समान दुर्लभ है । ॥२२॥

ईदृशं भवती कञ्चिदुपायमनुपश्यति ॥२३॥
तन्मे परिणतप्रज्ञे सम्यक्प्रब्रूहि पृच्छते ।
करिष्यामि हि तत्सर्वं यथावदनुशासनम् ॥२४॥

हे बुद्धिमती ! तुम यदि इस दशा में भी कोई उपाय बता सकती हो-तो मुझे बताओ-मैं तुम से पूछ रहा हूँ । मुझे जो तुम सिखाओगी-मैं-उसे अवश्य करुंगा ॥२३-२४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मातोवाच—

पुत्र नाऽऽत्माऽवमन्तव्यः पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
अभूत्वा हि भवन्त्यर्था भूत्वा नश्यन्ति चाऽपरे ॥
अमर्षेणैव चाप्यर्था नाऽऽरब्धव्याः सुबालिशैः ॥२५॥
सर्वेषां कर्मणां तात फले नित्यमनित्यता ।

माता बोली–हे पुत्र ! अपनी पूर्व की असमृद्धि से अपने को क्षुद्र नहीं समझ लेना चाहिए । ऐश्वर्य की दशा तो विचित्र है । यह तो नहीं होकर हो जाता और होकर नष्ट हो जाता है । मूर्ख लोगों को अपने कार्यों का आवेश में आकर आरम्भ नहीं करना चाहिए । हे तात ! सारे कामों की सिद्धि में नित्य और अनित्यता घुसी पड़ी है । किसी कार्य का सिद्ध हो जाना अवश्यम्भावी नहीं है ।॥२५॥

अनित्यमिति जानन्तो न भवन्ति भवन्ति च ॥२६॥
अथ ये नैव कुर्वन्ति नैव जातु भवन्ति ते ।

जिन कर्मों को पण्डित अनित्य समझ लेते हैं, वे कभी सिद्ध नहीं भी होते और कभी सिद्ध हो भी जाते हैं, परन्तु जिन कार्यों का आरम्भ ही नहीं किया जाता, वे तो कभी भी सिद्ध हो नहीं सकते हैं ॥२६॥

ऐकगुण्यमनीहायामभावः कर्मणां फलम् ॥२७॥
अथ द्वैगुण्यमीहायां फलं भवति वा न वा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब कर्म करने की इच्छा ही नहीं है, तो कामों का असिद्ध होना आवश्यक है। हां ? यदि कार्य के आरम्भ करने की चेष्टा की जाती है, तो उसमें दोनों बात होती है, कि काम सिद्ध न भी हो और हो भी जावे ॥२७॥

यस्य प्रागेव विदिता सर्वार्थानामनित्यता ॥२८॥
नुदेद्वृद्धिसमृद्धी स प्रतिकूले नृपात्मज ।

हे नृपात्मज, जिसको प्रथम से ही सारे कार्यों की अनित्यता का ज्ञान है, वह अनित्यता के प्रतिकूल कार्य की सफलता हो जाने पर अपनी वृद्धि और समृद्धि कर लता है ॥२८॥

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु ॥२९॥
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ।

उठो ? जागो और कल्याण मार्ग में अपने को लगाओ। इस तरह मन को सदा चिन्ता से रहित करके कार्य करोगे-तो अवश्य कृतकार्य हो जाओगे ॥२९॥

मङ्गलानि पुरस्कृत्य ब्राह्मणांश्चेश्वरैः सह ॥३०॥
प्राज्ञस्य नृपतेराशु वृद्धिर्भवति पुत्रक ।

हे पुत्रक ! तुम अन्य राजा या देव तथा ब्राह्मणों के साथ मङ्गलजनक कार्यों का आरम्भ करो, इस तरह बुद्धिमान् राजा की अवश्य शीघ्र वृद्धि होती है ॥३०॥

अभिवर्तति लक्ष्मीस्तं प्राचीमिव दिवाकरः ॥३१॥
निदर्शनान्युपायांश्च बहून्युद्धर्षणानि च ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्य जैसे प्राची दिशा को प्राप्त होता है, उसी तरह ऐसे मनस्वी पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त होती है। मैंने तुमको इसीलिए बहुत उपाय और उत्साहदर्शक वचन कहे हैं। ॥३१॥

अनुदर्शितरूपोऽसि पश्यामि कुरु पौरुषम् ॥३२॥
पुरुषार्थमभिप्रेतं समाहर्तुमिहाऽर्हसि ।

तुमको सारे कर्तव्य कर्म बता दिए, अब तो मैं तुम्हारा पौरुष देखना चाहती हूँ। अब तो तुझे अभिप्रेत पुरुषार्थ का ही ग्रहण करना उचित है ॥३२॥

क्रुद्धान्लुब्धान्परिक्षीणानबलिप्तान्विमानितान् ॥३३॥
स्पर्धिनश्चैव ये केचित्तान्युक्त उपधारय ।

अब तुम, शत्रु से क्रुद्ध, लोभी, दुर्बल, घमण्डी, अपमानित और स्पर्धा रखने वाले हैं, उनसे युक्ति के साथ मेल करो ॥३३॥

एतेन त्वं प्रकारेण महतो भेत्स्यसे गणान् ॥३४॥
महावेग इवोद्धूतो मातरिश्वा बलाहकान् ।

हे पुत्र ! जो तुम इस प्रकार से करोगे, तो एक विरोधियों के बहुत से समूह को छिन्न भिन्न कर सकोगे, जैसे महावेग से युक्त वायु बादलों को इधर उधर फैंक देता है ॥ ३४ ॥

तेषामग्रप्रदायी स्याः कल्पोत्थायी प्रियंवदः ॥
ते त्वां प्रियं करिष्यन्ति पुरो धास्यन्ति च ध्रुवम्॥३५॥

इनके साथ में मिले हुए राजाओं की वृत्ति को सबसे प्रथम प्रदान और शक्ति के साथ उठ कर प्रिय भाषण करते रहना चाहिये। वे फिर तेरा अवश्य प्रिय करेंगे और तुझे अपने आगे रखेंगे॥ ३५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदैव शत्रुर्जानीयात्सपत्नं त्यक्तजीवितम् ।
तदैवाऽस्मादुद्विजते सर्पाद्वेश्मगतादिव ॥३६॥

जब शत्रु यह देख लेता है, कि मेरा शत्रु प्राणों पर खेल कर मुझ से युद्ध करना चाहता है, तो वह घर में आये हुए सर्प से डरने की भांति अपने शत्रु से घबड़ा जाता है ॥ ३६ ॥

तं विदित्वा पराक्रान्तं वशे न कुरुते यदि ।
निर्वादैर्निर्वदेदेनमन्ततस्तद्भविष्यति ॥३७॥

यदि शत्रु को पराक्रम करता देखे और उसको वश में न कर सके, तो दूत आदि के मुख से उससे सन्धि की चर्चा चलावे । ऐसे समय में वह अन्त में वश में हो ही जाता है ॥ ३७ ॥

निर्वादादास्पदं लब्ध्वा धनवृद्धिर्भविष्यति ।
धनवन्तं हि मित्राणि भजन्ते चाऽऽश्रयन्ति च ॥३८॥

जब वह सन्धि की वार्तालाप से वश में हो जावे, तो इससे धन की वृद्धि अवश्य होगी । धनवान् की मित्र, सेवा करते और उसका आश्रय लेते हैं ॥ ३८ ॥

स्खलितार्थं पुनस्तानि सन्त्यजन्ति च बान्धवाः ।
अप्यस्मिन्नाश्वसन्ते च जुगुप्सन्ते च तादृशम् ॥३९॥

यदि राजा के पास सम्पत्ति नष्ट हो जावे, तो फिर बान्धव उस को छोड़ देते हैं । इससे उनको अपनी उन्नति की आशा नहीं रहती—तब वे उसकी निन्दा करने लगते हैं ॥ ३९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शत्रुं कृत्वा यः सहायं विश्वासमुपगच्छति ।
अतः सम्भाव्यमेवैतद्यद्राज्यं प्राप्नुयादिति ॥४०॥

इति श्रीमहाभारत० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुला-पुत्रानुशासने पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३५॥

जो राजा अपने शत्रु को सहायक बनाकर उसका विश्वास करता है, वह कभी राज्य प्राप्त कर सकेगा-यह सम्भावना मात्र ही है

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में विदुला के पुत्र को शिक्षा देने का एक सौ पैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

एक सौ छत्तीसवां अध्याय

मातोवाच—

नैव राज्ञा दरः कार्यो जातु कस्याश्चिदापदि ।
अथ चेदपि दीर्णः स्यान्नैव वर्तेत दीर्णवत् ॥१॥

माता ने फिर कहा—हे पुत्र ! राजा को कैसी भी विपत्ति उपस्थित हो-कभी भय नहीं करना चाहिए । यदि कुछ भय का मन में सञ्चार भी हो जावे, तो भी भयभीत सा दिखाई न देवे ॥१॥

दीर्णं हि दृष्ट्वा राजानं सर्वमेवाऽनुदीर्यते ।
राष्ट्रं बलममात्याश्च पृथक्कुर्वन्ति ते मतीः ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा को घबराया हुआ देख कर राजा का सारा समाज, भयभीत हो जाता है। राष्ट्र, सेना, मन्त्री आदि सारे सेवक, ऐसे राजा से अपनी बुद्धि को पृथक् कर लेते हैं ॥ २ ॥

शत्रूनेके प्रपद्यन्ते प्रजहत्यपरे पुनः ।
अन्ये तु प्रजिहीर्षन्ति ये पुरस्ताद्विमानिताः ॥३॥

इनमें से कुछ तो शत्रु का आश्रय ले लेते हैं और कुछ छोड़ कर चले जाते हैं। इसी प्रकार जिनका पूर्व में अपमान हो गया है, वे प्रहार करने की चेष्टा करते हैं ॥ ३ ॥

य एवाऽत्यन्तसुहृदस्त एनं पर्युपासते ।
अशक्तयः स्वस्तिकामा बद्धवत्सा इला इव ॥४॥
शोचन्तमनुशोचन्ति पतितानिव बान्धवान् ।

इस समय तो जो राजा के बहुत ही सुहृद् होते हैं, वे ही उस के साथ रहते हैं। वे तो जिसका बछड़ा बांध दिया गया, ऐसी गाय की तरह कल्याण की कामना करते हुए कहीं भी जाने में असमर्थ होते हैं। ये पतन को प्राप्त हुए बान्धवों की चिन्ता करने की तरह उन राजाओं की चिन्ता करते हैं ॥४॥

अपि ते पूजिताः पूर्वमपि ते सुहृदो मताः ॥५॥
ये राष्ट्रमभिमन्यन्ते राज्ञो व्यसनमीयुषः ।
मा दीदरस्त्वं सुहृदो मा त्वां दीर्णं प्रहासिषुः ॥६॥

जिनकी ऐश्वर्य की दशा में पूजा की गई है, वे ही मित्र होते हैं। वे ही राजा के विपत्ति में फँस जाने पर उसके राष्ट्र से अपने होने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का ममत्व रखते हैं। तू इन मित्रों से मत बिगाड़, क्योंकि ये तुझ भयातुर की हँसी नहीं करेंगे ॥५-६॥

प्रभावं पौरुषं बुद्धिं जिज्ञासन्त्या मया तव ।
विदधत्या समाश्वासमुक्तं तेजोविवृद्धये ॥७॥

मैंने तेरे प्रभाव, पौरुष, बुद्धि को जानने की इच्छा से आश्वासन और तेजो-वृद्धि के लिए ऐसा कहा है ॥७॥

यदेतत्संविजानासि यदि सम्यग्ब्रवीम्यहम् ।
कृत्वाऽसौम्यमिवाऽऽत्मानं जयायोत्तिष्ठ सञ्जय ॥८॥

हे सञ्जय ! यदि तुम इसको समझ गए और मैंने यह ठीक कहा है, तो अपने आपको वीर बनाकर विजय के लिए खड़ा हो जा।

अस्ति नः कोशनिचयो महान्हि विदितस्तव ।
तमहं वेद नाऽन्यस्तमुपसम्पादयामि ते ॥९॥

तुमको यह विदित है, कि हमारे पास एक बहुत बड़ा कोष है, उस कोष (ख़जाने) को मैं ही जानती हूँ और कोई नहीं जानता है, मैं उसको तुझे बता देती हूँ ॥९॥

सन्ति नैकतमा भूयः सुहृदस्तव सञ्जय ।
सुखदुःखसहा वीर संग्रामादनिवर्त्तिनः ॥१०॥

हे वीर सञ्जय ! तुम्हारे अनेक मित्र भी हैं, जो तुम्हारे साथ सुख दुःख भोगने को तय्यार और युद्ध से पीछे हटने वाले नहीं हैं

तादृशा हि सहाया वै पुरुषस्य बुभूषतः ।
इष्टं जिहीर्षतः किञ्चित्सचिवाः शत्रुकर्शन ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे शत्रुकर्शन ! जो पुरुष अपनी उन्नति के लिए बढ़ता है, उसकी अभिलाषा के सिद्ध करने वाले, ऐसे ही सुहृद् सहायक और सचिव होते हैं ॥११॥

तस्यास्त्वीदृशकं वाक्यं श्रुत्वाऽपि स्वल्पचेतसः ।
तमस्त्वपागमत्तस्य सुचित्रार्थपदाक्षरम् ॥१२॥

अपनी माता के अद्भुत पद और अक्षरों से युक्त, वाक्य सुनकर सञ्जय के छोटे चित्त से भी अन्धकार नष्ट हो गया ।

पुत्र उवाच—

उदके भूरियं धार्या मर्तव्यं प्रवणे मया ।
यस्य मे भवती नेत्री भविष्यद्भूतिदर्शिनी ॥१३॥

पुत्र ने कहा—हे माता ! जल में डूबती हुई भूमि के समान मैं अपने पिता के राज्य का उद्धार करूँगा । मैं युद्ध में मरने को सन्नद्ध हूँ, क्योंकि भविष्य में होने वाले कल्याण के देखने वाली तुम जैसी मुझे शिक्षा देने वाली हो ॥१३॥

अहं हि वचनं त्वत्तः शुश्रूषुरपरापरम् ।
किञ्चित्किञ्चित्प्रतिवदंस्तूष्णीमासं मुहुर्मुहुः ॥१४॥

मैं तो तुम्हारे उत्तरोत्तर वचनों के सुनने की बड़ी इच्छा करता हूँ, इसीलिए तो मैं कुछ २ उत्तर दे देता और फिर चुप हो जाता था ॥१४॥

अतृप्यन्नमृतस्येव कृच्छ्राल्लब्धस्य बान्धवात् ।
उद्यच्छाम्येष शत्रूणां नियमार्थं जयाय च ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्यहित-करने वाली, बन्धुभूत तुम माता से बड़ी कठिनता से प्राप्त किए हुए, अमृत-मयी वाणी से मेरी तृप्ति नहीं होती है। अब मैं शत्रुओं के निग्रह और अपनी विजय के लिए उद्योग करूँगा ।१५।

कुन्त्युवाच—

सदश्व इव स क्षिप्तः प्रणुन्नो वाक्यसायकैः ।
तच्चकार तथा सर्वं यथावदनुशासनम् ॥१६॥

कुन्ती बोली—उत्तम अश्व की तरह प्रेरित किया हुआ और माता के वाक्य बाणों से विद्ध सञ्जय ने ठीक २ वही किया, जो माता ने सिखाया था ॥१६॥

इदमुद्धर्षणं भीमं तेजोवर्धनमुत्तमम् ।
राजानं श्रावयेन्मन्त्री सीदन्तं शत्रुपीडितम् ॥१७।

यह उपाख्यान बड़ा उत्तेजित करने वाला, तेजोवर्द्धक और महा भयङ्कर है। जब कोई राजा शत्रु से पीड़ित हो कर क्लेश उठा रहा हो, तो उस समय उसको मंत्री लोग इस उपाख्यान को सुनावे ॥१७॥

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा ।
महीं विजयते क्षिप्रं श्रुत्वा शत्रूंश्च मर्दति ॥१८॥

इस इतिहास का नाम भी जय है। विजय के अभिलाषी को इसे अवश्य सुनना चाहिए। इसको सुन कर राजा शत्रुओं का मर्दन कर डालता है और शीघ्र पृथिवी को जीत लेता है ॥ १८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदं पुंसवनं चैव वीराजननमेव च ।
अभीक्ष्णं गर्भिणी श्रुत्वा ध्रुवं वीरं प्रजायते ॥१९॥

यह पुत्र की उत्पत्ति क्या ? वीर पुत्र की उत्पत्ति करने वाला है। जो लगातार गर्भिणी इस उपख्यान को सुने, तो निश्चय वह वीर-पुत्र को जन्म देती है ॥ १९ ॥

विद्याशूरं तपःशूरं दानशूरं तपस्विनम् ।
ब्राह्मया श्रिया दीप्यमानं साधुवादे च सम्मतम्॥२०॥
अर्चिष्मन्तं बलोपेतं महाभागं महारथम् ।
धृतिमन्तमनाधृष्यं जेतारमपराजितम् ॥२१॥
नियन्तारमसाधूनां गोप्तारं धर्मचारिणाम् ।
ईदृशं क्षत्रिया सूते वीरं सत्यपराक्रमम् ॥२२॥

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासनसमाप्तौ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३६॥

क्षत्राणी, विद्या, तप और दानमें शूर, तपस्वी, ब्राह्म कान्ति से देदीप्यमान, साधु पुरुषों की गणना में मान्य, कान्तिमान्, बलसे युक्त, महाभाग, महारथी, धैर्यशील, आक्रमण के अयोग्य, विजयी, पराजित नहीं होने वाले, दुष्टों के शिक्षक धर्मात्माओं के रक्षक और सत्य पराक्रमी पुत्र को इस उपाख्यान के सुनने से अवश्य उत्पन्न करने में समर्थ होगी ॥ २०—२२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तरगत भगवद्यानपर्व में विदुला के पुत्र को उत्तेजित करने का एक सौ छत्तीसवां अध्याय पूरा हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ सैंतीसवां अध्याय

कुन्त्युवाच—

अर्जुनं केशव ब्रूयास्त्वयि जाते स्म सूतके ।
उपोपविष्टा नारीभिराश्रमे परिवारिता ॥१॥

कुन्ती ने कहा—हे केशव ! तुम अर्जुन से कहना, कि मैं तेरे उत्पन्न होने के समय आश्रम के सूतकागार में नारियों से घिरी बैठी थी ॥ १ ॥

अथाऽन्तरिक्षे वागासीद्दिव्यरूपा मनोरमा ।
सहस्राक्षसमः कुन्ति भविष्यत्येष ते सुतः ॥२॥

उस समय आकाश में दिव्य रूप मनोहर वाणी हुई, कि हे कुन्ती ! तेरा यह पुत्र इन्द्र-सदृश पराक्रमी होगा ॥ २ ॥

एष जेष्यति संग्रामे कुरून्सर्वान्समागतान् ।
भीमसेनद्वितीयश्च लोकमुद्वर्तयिष्यति ॥३॥

यह संग्राम में सन्मुख आये हुए सारे कौरवों को भीमसेन को साथ लेकर जीत लेगा। इस प्रकार यह लोक को उलट-पलट कर देगा ॥ ३ ॥

पुत्रस्ते पृथिवीं जेता यशश्चाऽस्य दिवं स्पृशेत् ।
हत्वा कुरूंश्च संग्रामे वासुदेवसहायवान् ॥४॥

हे कुन्ती ! यही तेरा पुत्र श्रीकृष्ण को सारथि बनाकर सारे कौरवों को युद्ध में मार देगा और यह सारी पृथिवी का विजेता होगा। इसकी कीर्ति स्वर्ग तक फैल जावेगी ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पित्र्यमंशं प्रनष्टं च पुनरप्युद्धरिष्यति ।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमांस्त्रीन्मेधानाहरिष्यति ॥५॥

यही छीने हुए अपने पिता के अंश का पुनरुद्धार और अपने भाइयों के साथ तीन बड़े २ अश्वमेध यज्ञों का सम्पादन करेगा ।५।

स सत्यसन्धो बीभत्सुः सव्यसाची यथाऽच्युत ।
तथा त्वमेव जानासि बलवन्तं दुरासदम् ॥६॥

हे अच्युत ! तुम यह जानते हो, कि अर्जुन, कितना लक्ष्य भेदी और सत्य प्रतिज्ञ है एवं कितना दुर्धर्ष और बलवान् है, यह भी तुम्हें पता है ॥ ६ ॥

तथा तदस्तु दाशार्ह यथा वागभ्यभाषत ।
धर्मश्चेदस्ति वार्ष्णेय तथा सत्यं भविष्यति ॥७॥

हे दशार्ण देश और वृष्णिवंशोत्पन्न ! श्रीकृष्ण ! अब तो उस आकाश वाणी के सदृश कार्य पूरा होना चाहिए। यदि संसार में धर्म है, तो यह सत्य होकर अवश्य रहेगा ॥ ७ ॥

त्वं चापि तत्तथा कृष्ण सर्वं सम्पादयिष्यसि ।
नाऽहं तदभ्यसूयामि यथा वागभ्यभाषत ॥८॥
नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजाः ।

हे कृष्ण ! तुम आकाश वाणी के अनुसार सब करवा लोगे। जो आकाश वाणी हुई है, मैं उसे झूंठी मानकर उसकी निन्दा नहीं करना चाहती हूँ। धर्म बहुत बड़ी वस्तु है। मैं तो धर्म के सामने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाभारत चित्र संख्या ६६

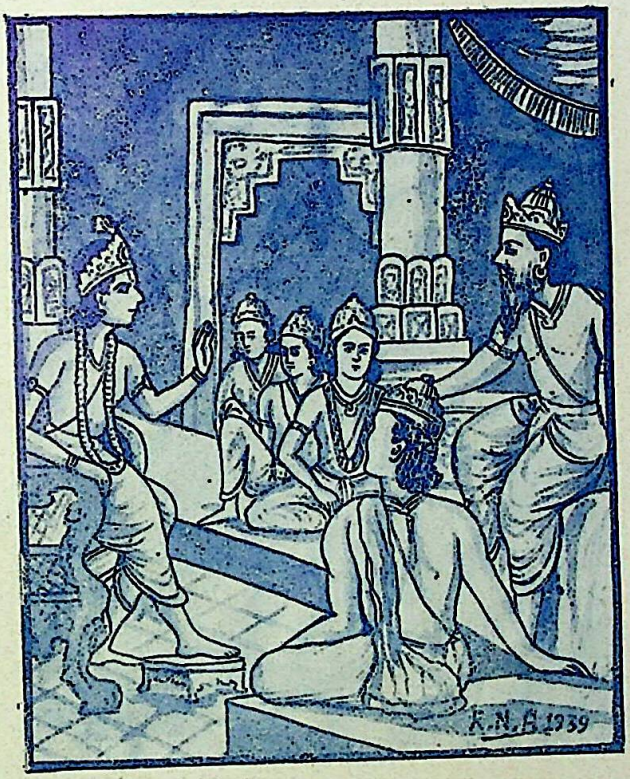

दुर्योधन और श्री कृष्ण का वार्तालाप

महाभारत उद्योगपर्व अ० ९१।७

पृष्ठ १६४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

झुकती हूं, क्योंकि धर्म ने ही सारी प्रजा को धारण कर रखा है ॥ ८ ॥

एतद्धनञ्जयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः ॥९॥
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ।
नहि वैरं समासाद्य सीदन्ति पुरुषर्षभाः ॥१०॥

हे वासुदेव! अब तुम, अर्जुन और नित्य युद्ध के लिए सन्नद्ध भीमसन से कहना, कि जिसलिए क्षत्राणी पुत्र उत्पन्न करती है, उस प्रयोजन के सफल करने का काल आ गया है। जो वीर पुरुष होते हैं, वे बैर करके विषाद नहीं करते हैं ॥ ९-१० ॥

विदिता ते सदा बुद्धिर्भीमस्य न स शाम्यति ।
यावदन्तं न कुरुते शत्रूणां शत्रुकर्शन ॥११॥

हे शत्रुकर्शन ! भीमसेन के विषय में यह तुमको विदित ही है, कि जब तक वह शत्रुओं का अन्त नहीं कर लेता, तब तक चुप नहीं होता है ॥ ११ ॥

सर्वधर्मविशेषज्ञां स्नुषां पाण्डोर्महात्मनः ।
ब्रूया माधव कल्याणीं कृष्ण कृष्णां यशस्विनीम् ॥
युक्तमेतन्महाभागे कुले जाते यशस्विनि ।
यन्मे पुत्रेषु सर्वेषु यथावत्त्वमवर्तिथाः ॥१३॥

हे माधव! कृष्ण! तुम सब धर्मों के जानने वाली महात्मा पाण्डु की पुत्र वधू, कल्याणों से सम्पन्न, यशस्विनी द्रौपदी से कहना—हे महाभागे ! यशस्विनी ! तुम उत्तम कुल में उत्पन्न हुई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो। तुमने मेरे पुत्रों के साथ जो यथायोग्य व्यवहार किया है, वह तुम्हारे कुल के अनुरूप ही है ॥ १२—१३ ॥

माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतावुभौ ।
विक्रमेणाऽर्जितान्भोगान्वृणीतं जीवितादपि ॥१४॥

इसके अनन्तर माद्री—पुत्र नकुल और सहदेव से भी कहना, कि तुम दोनों भी सदा क्षात्र-धर्म में तत्पर रहते हो। अब तुम भी पराक्रम से अपने भोगों के प्राप्त करने का प्रयत्न करो ॥ १४ ॥

विक्रमाधिगता ह्यर्थाः क्षत्रधर्मेण जीवतः ।
मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम ॥१५॥

हे पुरुषोत्तम ! जो मनुष्य क्षात्र-धर्म से अपना जीवन बिताना चाहता है, उस पुरुष को पराक्रम से प्राप्त हुआ ऐश्वर्य ही सन्तुष्ट कर सकता है ॥ १५ ॥

यच्च वः प्रेक्षमाणानां सर्वधर्मोपचायिनाम् ।
पाञ्चाली परुषाण्युक्ता को नु तत्क्षन्तुमर्हति ॥१६॥

तुम सब धर्मों के जानने वाले हो । तुम्हारे देखते देखते कौरवों ने द्रौपदी से जो कटुवचन कहे थे—वे क्षमा नहीं किये जा सकते हैं । ॥ १६ ॥

न राज्यहरणं दुःखं द्यूते चाऽपि पराजयः ।
प्रव्राजनं सुतानां वा न मे तद् दुःखकारणम् ॥१७॥
यत्र सा बृहती श्यामा सभायां रुदती तदा ।
अश्रौषीत्परुषा वाचस्तन्मे दुःखतरं महत् ॥१८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझे न तो राज्य के अपहरण, न द्यूत में पराजय और न पुत्रों के वन में जाने का क्लेश है, परन्तु मान के योग्य, सुन्दरी द्रौपदी जब सभा में रो रही थी, तब उसको जो कठोर वचन कहे गए-मुझे उनका बड़ा ही दुःख है ॥ १७-१८ ॥

स्त्रीधर्मिणी वरारोहा क्षत्रधर्मरता सदा ।
नाऽध्यगच्छत्तदा नाथं कृष्णा नाथवती सती ॥१९॥

क्षात्र-धर्म में रत रहने वाली द्रौपदी, उस समय स्त्री धर्म से युक्त थी । यद्यपि द्रौपदी के स्वामी विद्यमान थे, परन्तु उस समय तो वह अनाथ हो गई और उसे कोई अपना रक्षक दिखाई नहीं दिया ॥ १९ ॥

तं वै ब्रूहि महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
अर्जुनं पुरुषव्याघ्रं द्रौपद्याः पदवीं चर ॥२०॥

हे महाबाहो ! सब शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ, पुरुष-रत्न, अर्जुन से कहना, कि अब तुम द्रौपदी के मान की रक्षा के लिये तय्यार हो जाओ ॥ २० ॥

विदितं हि तवाऽत्यन्तं क्रुद्धाविव यमान्तकौ ।
भीमार्जुनौ नयेतां हि देवानपि परां गतिम् ॥२१॥

हे कृष्ण ! तुमको यह विदित है, कि जब यम और काल के समान भीम और अर्जुन क्रुद्ध होगें, तो उस समय वे देवों को भी मृत्यु के घाट उतार सकते हैं ॥ २१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तयोश्चैतदवज्ञानं यत्सा कृष्णा सभागता ।
दुःशासनश्च यद्भीमं कटुकान्यभ्यभाषत ॥२२॥
पश्यतां कुरुवीराणां तच्च संस्मारयेः पुनः ।

उन दोनों को भी यह ज्ञात ही है, जो द्रौपदी को राजसभा में लाया गया था और दुःशासन ने तो सारे कौरवों के देखते देखते स्वयं भीम को ही कटु वचन कहे थे, जिनका मैं अब फिर स्मरण दिला रही हूँ ॥ २२ ॥

पाण्डवान्कुशलं पृच्छेः सपुत्रान्कृष्णया सह ॥२३॥
मां च कुशलिनीं ब्रूयास्तेषु भूयो जनार्दन ।
अरिष्टं गच्छ पन्थानं पुत्रान्मे प्रतिपालय ॥२४॥

हे अच्युत ! उनके पुत्रों और द्रौपदी के साथ पाण्डवों से कुशल पूछना और उनसे मेरी भी कुशलता कह देना । हे जनार्दन ! अब तुम्हारे मार्ग कल्याणकारी हों-तुम मेरे पुत्रों की अवश्य पालना करना ॥ २३-२४ ॥

वैशम्पायन उवाच—

अभिवाद्याऽथ तां कृष्णः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
निश्चक्राम महाबाहुः सिंहखेलगतिस्ततः ॥२५॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर लीला के साथ चलने वाले सिंह की गति के समान गति वाले महाबाहु श्रीकृष्ण, कुन्ती को प्रणाम और उसकी प्रदक्षिणा करके चल दिए ॥ २५ ॥

ततो विसर्जयामास भीष्मादीन्कुरुपुङ्गवान् ।
आरोप्याऽथ रथे कर्णं प्रायात्सात्यकिना सह ॥२६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण ने भीष्म आदि कुरुवीरों को विदा कर दिया और आप कर्ण को अपने रथ पर बैठाकर सात्यकि के साथ चल दिये ॥ २६ ॥

ततः प्रयाते दाशार्हे कुरवः सङ्गता मिथः ।
जजल्पुर्महदाश्चर्यं केशवे परमाद्भुतम् ॥२७॥

जब दशार्हदेशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण चल दिए तो अनेक कौरव इकट्ठे खड़े हो गए और श्रीकृष्ण के विषय में बड़ा आश्चर्य करने लगे। इनको श्रीकृष्ण का यह व्यवहार बड़ा ही अद्भुत प्रतीत हुआ ॥ २७ ॥

प्रमूढा पृथिवी सर्वा मृत्युपाशवशीकृता ।
दुर्योधनस्य बालिश्यान्नैतदस्तीति चाऽब्रुवन् ॥२८॥

वे कह रहे थे, कि आज सारे पृथिवी के राजाओं की बुद्धि मारी गई और सारे मृत्यु के वश में बँध गए हैं। राजा दुर्योधन की मूर्खता से यह सारा राजसमूह रह ही नहीं सकेगा-नष्ट हो जावेगा ॥ २८ ॥

ततो निर्याय नगरात्प्रययौ पुरुषोत्तमः ।
मन्त्रयामास च तदा कर्णेन सुचिरं सह ॥२९॥

अब पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण नगर से बाहर हो गये और बहुत देर तक कर्ण से बातचीत करते रहे ॥२९॥

विसर्जयित्वा राधेयं सर्वयादवनन्दनः ।
ततो जवेन महता तूर्णमश्वानचोदयत् ॥३०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारे यादवों के प्रसन्न रखने वाले, श्रीकृष्ण ने राधापुत्र कर्ण को भी विदा किया और फिर बड़े वेग से शीघ्र ही अपने अश्वों का चलाना आरम्भ कर दिया ॥३०॥

ते पिबन्त इवाऽऽकाशं दारुकेण प्रचोदिताः ।
हया जग्मुर्महावेगा मनोमारुतरंहसः ॥३१॥

मन और वायु के समान वेगशील, शक्तिशाली अश्व, दारुक सारथि से प्रेरित हुए इस प्रकार तीव्रता से चले, कि मानो आकाश को भी (उलांघ) जावेंगे ॥३१॥

ते व्यतीत्य महाध्वानं क्षिप्रं श्येना इवाऽऽशुगाः ।
उच्चैर्जग्मुरुपप्लव्यं शार्ङ्गधन्वानमावहन् ॥३२॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्ती-वाक्ये सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३७॥

ये अश्व, तीव्रगामी श्येन (बाज) पक्षी की तरह बड़े भारी मार्ग को व्यतीत करके श्रीकृष्ण को लिए हुए बड़ी शीघ्रता से पाण्डवों के लिए बनाए गये उपप्लव्य नगर में पहुँचे ॥३२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में कुन्ती-वाक्य का एक सौ सैंतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ अड़तीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

कुन्त्यास्तु वचनं श्रुत्वा भीष्मद्रोणौ महारथौ ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमूचतुः शासनातिगम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! कुन्ती के वचन सुनकर महारथी द्रोण और भीष्म शिक्षा के नहीं मानने वाले राजा दुर्योधन से ये वाक्य बोले ॥१॥

श्रुतं ते पुरुषव्याघ्र कुन्त्याः कृष्णस्य सन्निधौ ।
वाक्यमर्थवदत्युग्रमुक्तं धर्म्यमनुत्तमम् ॥२॥

हे पुरुषव्याघ्र ! श्रीकृष्ण के पास जो कुन्ती ने वचन कहे हैं, वे तुमने सुन लिए । ये वाक्य अर्थ गौरव से युक्त और धर्मानुसार बड़े तीखे थे ॥२॥

तत्करिष्यन्ति कौन्तेया वासुदेवस्य सम्मतम् ।
नहि ते जातु शाम्येरन्नृते राज्येन कौरव ॥३॥

हे कौरव ! कुन्ती-पुत्र पाण्डव, इन वाक्यों को अवश्य पूरा करेंगे, क्योंकि ये श्रीकृष्ण को भी अभिमत हैं । पाण्डव बिना राज्य ग्रहण किए अब कभी शान्त नहीं होने वाले हैं ॥३॥

क्लेशिता हि त्वया पार्था धर्मपाशसितास्तदा ।
सभायां द्रौपदी चैव तैश्च तन्मर्षितं तव ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुमने पाण्डवों को बहुत क्लेशित किया है। वे धर्म की डोरी से बँधे हुए हैं। उन्होंने इसी कारण से राजसभा में द्रौपदी के लाने को भी सह लिया ॥४॥

कृतास्त्रं ह्यर्जुनं प्राप्य भीमं च कृतनिश्चयम् ।
गाण्डीवं चेषुधी चैव रथं च ध्वजमेव च ॥५॥
नकुलं सहदेवं च बलवीर्यसमन्वितौ ।
सहायं वासुदेवं च न क्षंस्यति युधिष्ठिरः ॥६॥

राजा युधिष्ठिर, अस्त्र विद्या में कुशल अर्जुन, दृढ़ निश्चयी भीम, गाण्डीव धनुष, अक्षय तूणीर, रथ, ध्वजा, बलवीर्य सम्पन्न नकुल और सहदेव एवं श्रीकृष्ण को सहायक पाकर कभी क्षमा नहीं करेगा ॥५-६॥

प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथा पार्थेन धीमता ।
विराटनगरे पूर्वं सर्वे स्म युधि निर्जिताः ॥७॥

हे महाबाहो ! यह तो तुम्हारे प्रत्यक्ष ही हुआ था, कि बुद्धिमान् अर्जुन ने विराट-नगर में सारे कौरवों को जीत लिया था ।७।

दानवा घोरकर्माणो निवातकवचा युधि ।
रौद्रमस्त्रं समादाय दग्धा वानरकेतुना ॥८॥

इसी कपिध्वज अर्जुन ने घोर कर्म करने वाले निवात-कवच संज्ञक दानवों को रुद्र का अस्त्र लेकर युद्ध में दग्ध किया था ॥८॥

कर्णप्रभृतयश्चेमे त्वं चाऽपि कवची रथी ।
मोक्षितो घोषयात्रायां पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ भ्रातृभिः सह पाण्डवैः ॥९॥
रक्षेमां पृथिवीं सर्वां मृत्योर्दंष्ट्रान्तरङ्गताम् ।

तुम्हारे साथ कर्ण आदि सारे योद्धा, कवच और रथ से सम्पन्न थे, परन्तु घोष-यात्रा के समय गन्धर्वों से तुमको पाण्डवोंने ही छुड़ाया था, यह उनकी शक्तिका पर्याप्त प्रमाण था। हे भारत ! अब तुम्हें अपने भाई पाण्डवों के साथ सन्धि ही कर लेनी चाहिए इस तरह मृत्यु की दाढ़ में गई हुई, पृथिवी का तुम शासन कर सकोगे ॥९॥

ज्येष्ठो भ्राता धर्मशीलो वत्सलः श्लक्ष्णवाक्कविः ॥१०॥
तं गच्छ पुरुषव्याघ्रं व्यपनीयेह किल्बिषम् ।

तुम्हारा बड़ा भाई राजा युधिष्ठिर, धर्मशील, प्रेमी, स्पष्ट वक्ता और परिणाम दर्शी है। अब तुम उन पुरुष श्रेष्ठ युधिष्ठिर से अपने मैल को धोकर जा मिलो ॥१०॥

दृष्टश्च त्वं पाण्डवेन व्यपनीतशरासनः ॥११॥
प्रशान्तभ्रुकुटिः श्रीमान्कृता शान्तिः कुलस्य नः ।

यदि धनुष उतार कर श्रीमान् राजा युधिष्ठिर तुमको प्रेम भरी शान्त-दृष्टि से देख लेगा—तो कौरव कुल में शान्ति हो जावेगी ॥११॥

तमभ्येत्य सहामात्यः परिष्वज्य नृपात्मजम् ॥१२॥
अभिवादय राजानं यथापूर्वमरिन्दम ।

हे अरिन्दम ! अब तुम अपने मन्त्रियों के साथ उनके पास चलो और राजकुमार युधिष्ठिर का आलिङ्गन करो। जैसे तुम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्वकाल में उनको प्रणाम करते थे,ऐसे ही अब भी चलकर करना चाहिए ॥१२॥

अभिवादयमानं त्वां पाणिभ्यां भीमपूर्वजः ॥१३॥
प्रतिगृह्णातु सौहार्दात्कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।

जब तुम प्रणाम करोगे, तो भीमसेन का बड़ा भ्राता, कुन्ती-पुत्र, युधिष्ठिर, प्रेम से गद्गद होकर तुमको अपने हाथों से में उठा लेगा ॥१३॥

सिंहस्कन्धोरुबाहुस्त्वां वृत्तायतमहाभुजः ॥१४॥
परिष्वजतु बाहुभ्यां भीमः प्रहरतां वरः ।

इस तरह सिंह के समान कंधे, उरु, बाहु वाला, लम्बी और गोल भुजाधारी, प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ, भीमसेन भी अपनी भुजा पसार कर तुमसे मिलेगा ॥१४॥

कम्बुग्रीवो गुडाकेशस्ततस्त्वां पुष्करेक्षणः ॥१५॥
अभिवादयतां पार्थः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥१६॥

जिसकी शंख के समान ग्रीवा, कमल के तुल्य नेत्र हैं, ऐसा जितेन्द्रिय, कुन्तीपुत्र अर्जुन भी तुमसे आकर उस समय प्रणाम करेगा ॥१५॥

आश्विनेयौ नरव्याघ्रौ रूपेणाऽप्रतिमौ भुवि ।
तौ च त्वां गुरुवत्प्रेम्णा पूजया प्रत्युदीयताम् ॥१७॥

अश्विनी-कुमारों से उत्पन्न, नर-श्रेष्ठ, अद्वितीय सुन्दर, नकुल सहदेव भी तुमको प्राप्त होकर पूज्य की तरह प्रेम से तुम्हारी पूजा करेंगे ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुञ्चन्त्वानन्दजाश्रूणि दाशार्हप्रमुखा नृपाः ।
सङ्गच्छ भ्रातृभिः सार्धं मानं सन्त्यज्य पार्थिव ॥१८॥

इस समय दशार्ह-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण आदि राजा आनन्द के अश्रु छोड़ेंगे। हे राजन् ! अब तुम अभिमान छोड़कर अपने भाइयों से मिल जावो ॥ १८ ॥

प्रशाधि पृथिवीं कृत्स्नां ततस्त्वं भ्रातृभिः सह ।
समालिङ्ग्य च हर्षेण नृपा यान्तु परस्परम् ॥१९॥

इसके अनन्तर तुम अपने भाइयों के साथ सारी पृथिवी का शासन करो और युद्ध के लिए इकट्ठे हुए, ये राजा भी परस्पर मिलकर अपने २ देश को प्रसन्नता पूर्वक गमन करें ॥ १९ ॥

अलं युद्धेन राजेन्द्र सुहृदां शृणु वारणम् ।
ध्रुवं विनाशो युद्धे हि क्षत्रियाणां प्रदृश्यते ॥२०॥

हे राजेन्द्र ! तुम अपने हितकारियों के निषेध पर ध्यान दो और युद्ध को रहने दो। यदि यह युद्ध हो गया, तो व्यर्थ ही क्षत्रियों का विध्वंस हो जावेगा ॥ २० ॥

ज्योतींषि प्रतिकूलानि दारुणा मृगपक्षिणः ।
उत्पाता विविधा वीर दृश्यन्ते क्षत्रनाशनाः ॥२१॥

हे वीर ! प्रतिकूल फल के उत्पादन करने वाले नक्षत्रों का उदय हो रहा है और मृग तथा पक्षी भी दारुण बोल रहे हैं। इस तरह क्षत्रियों के नाशक अनेक उत्पात हो रहे हैं ॥ २१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेषत इहाऽस्माकं निमित्तानि निवेशने ।
उल्काभिर्हि प्रदीप्ताभिर्बाध्यते पृतना तव ॥२२॥

ये सारे अशकुन विशेषता से हमारे नगर में हो रहे हैं, तुम देख रहे हो, कि प्रदीप्त उल्का (तारे टूटना) गिर २ कर तुम्हारी सेना को पीड़ा पहुँचा रहे हैं ॥ २२ ॥

वाहनान्यप्रहृष्टानि रुदन्तीव विशाम्पते ।
गृध्रास्ते पर्युपासन्ते सैन्यानि च समन्ततः ॥२३॥

हे विशाम्पते ! ये सारे अश्व आदि वाहन उदास होकर रोदन सा कर रहे हैं और चारों ओर से हमारी सेना को गीधों ने घेर रखा है ॥ २३ ॥

नगरं न यथापूर्वं तथा राजनिवेशनम् ।
शिवाश्चाऽशिवनिर्घोषा दीप्तां सेवन्ति वै दिशम् ॥२४॥

अब नगर और राजभवन की दशा पूर्व की तरह नहीं रही है । अकल्याण कारी लोमड़ी अपने मुख से आग निकाल कर प्रकाशित दिशा को भाग रही हैं ॥ २४ ॥

कुरु वाक्यं पितुर्मातुरस्माकं च हितैषिणाम् ।
त्वय्यायत्तो महाबाहो शमो व्यायाम एव च ॥२५॥

हे महाबाहो ! तुम अपने माता-पिता और हित चाहने वालों हमारे वचन को मान लो । अब तो शान्ति या युद्ध तुम्हारे ही हाथ में है ॥ २५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न चेत्करिष्यसि वचः सुहृदामरिकर्शन ।
तप्स्यसे वाहिनीं दृष्ट्वा पार्थबाणप्रपीडिताम् ॥२६॥

हे अरिकर्शन ! यदि तुम अपने सुहृदों के वचनों को नहीं मानोगे, तो अर्जुन के बाणों से छिन्न भिन्न हुई अपनी सेना को देख कर अवश्य पश्चात्ताप करोगे ॥ २६ ॥

भीमस्य च महानादं नदतः शुष्मिणो रणे ।
श्रुत्वा स्मर्तासि मे वाक्यं गाण्डीवस्य च निःस्वनम्
यद्येतदपसव्यं ते वचो मम भविष्यति ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीष्म-द्रोणवाक्ये अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३८॥

जो इस समय मेरे वचनों को अपने प्रतिकूल समझोगे, तो महाबल शाली भीम की गर्जना या गाण्डीव धनुष की ध्वनि सुनकर तुम मेरे वाक्यों का अवश्य स्मरण करोगे ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में भीष्म और द्रोण के समझाने का एक सौ अड़तीसवां अध्याय पूरा हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ उन्तालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तस्तु विमनास्तिर्यग्दृष्टिरधोमुखः ।
संहत्य च भ्रुवोर्मध्यं न किञ्चिद्व्याजहार ह ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! जब भीम और द्रोण ने इतना कहा, तो दुर्योधन बड़ा असन्तुष्ट हुआ। उसने नीचा मुख करके टेढ़ी निगाह कर ली और मस्तक में त्यौरी डाल कर कुछ न कहा ॥ १ ॥

तं वै विमनसं दृष्ट्वा सम्प्रेक्ष्याऽन्योन्यमन्तिकात् ।
पुनरेवोत्तरं वाक्यमुक्तवन्तौ नरर्षभौ ॥२॥

इसको इस प्रकार रुष्ट देख कर भीष्म और द्रोण ने परस्पर एक दूसरे की ओर देखा। अब ये दोनों नर श्रेष्ठ, फिर दुर्योधन से उत्तर रूप में इस प्रकार कहने लगे ॥ २ ॥

भीष्म उवाच—

शुश्रूषुमनसूयं च ब्रह्मण्यं सत्यवादिनम् ।
प्रतियोत्स्यामहे पार्थमतो दुःखतरं नु किम् ॥३॥

भीष्म बोले—सेवा के लिए तत्पर, अनिन्दक, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी, राजा युधिष्ठिर से भी हमको युद्ध करना पड़ेगा, इससे अधिक दुःख क्या होगा ।॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रोण उवाच—

अश्वत्थाम्नि यथा पुत्रे भूयो मम धनञ्जये ।
बहुमानः परो राजन्सन्नतिश्च कपिध्वजे ॥४॥
तं च पुत्रात्प्रियतमं प्रतियोत्स्ये धनञ्जयम् ।
क्षात्रं धर्ममनुष्ठाय धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ॥५॥

द्रोण ने कहा—हे राजन् ! जितना मेरा प्रेम अश्वत्थामा अपने पुत्र से है, उतना ही मेरे हृदय में अर्जुन का मान है । अर्जुन भी मेरे सन्मुख बड़ा नम्र रहता है। अपने पुत्र से भी अधिक प्रिय अर्जुन से क्षात्र धर्म का अनुष्ठान करने से मुझे लड़ना पड़ेगा, इससे तो यही कहना ठीक है, कि क्षात्र धर्म से जीविका करना बड़ा ही निन्दित कर्म है ॥ ४—५ ॥

यस्य लोके समो नाऽस्ति कश्चिदन्यो धनुर्धरः ।
मत्प्रसादात्स बीभत्सुः श्रेयानन्यैर्धनुर्धरैः ॥६॥

जिस अर्जुन के समान संसार में कोई धनुर्धर नहीं है और मेरे ही अनुग्रह से अर्जुन अन्य धनुषधारियों से श्रेष्ठ हुआ है ।६।

मित्रध्रुग्दुष्टभावश्च नास्तिकोऽथाऽनृजुः शठः ।
न सत्सु लभते पूजां यज्ञे मूर्ख इवाऽऽगतः ॥७॥

यदि मनुष्य मित्र द्रोही, दुष्ट, नास्तिक, बक्र प्रकृति और शठ हो, तो यज्ञ में आए हुए मूर्ख की तरह उसकी कभी पूजा नहीं हो सकती है ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वार्यमाणोऽपि पापेभ्यः पापात्मा पापमिच्छति ।
चोद्यमानोऽपि पापेन शुभात्मा शुभमिच्छति ॥८॥

यदि मनुष्य पापात्मा है, तो उसे पाप से कितना ही रोको, वह अवश्य पाप करेगा और जो सदाचारी है, उसको पाप की कितनी ही प्रेरणा करो, वह कभी पापाचरण नहीं करता है ॥ ८ ॥

मिथ्योपचरिता ह्येते वर्तमाना ह्यनुप्रिये ।
अहितत्वाय कल्पन्ते दोषा भरतसत्तम ॥९॥

हे भरतसत्तम ! तुमने पाण्डवों के साथ मिथ्या और छल का आचरण किया, परन्तु उन्होंने फिर भी तुम्हारा प्रेम नहीं छोड़ा। जब मनुष्य में दोष आ जाते हैं, तो वे उसके अहित के लिए हो जाते हैं ॥ ९ ॥

त्वमुक्तः कुरुवृद्धेन मया च विदुरेण च ।
वासुदेवेन च तथा श्रेयो नैवाऽभिमन्यसे ॥१०॥

कुरुवृद्ध राजा धृतराष्ट्र, विदुर, श्रीकृष्ण और मैंने तुम से बार २ कहा-परन्तु तुमने हमारे कल्याणकारी वचनों को नहीं माना ॥१०॥

अस्ति मे बलमित्येव सहसा त्वं तितीर्षसि ।
सग्राहनक्रमकरं गङ्गावेगमिवोष्णगे ॥११॥

तुम यह समझ कर, कि मैं बलवान् हूँ, ग्राह नक्र और मगरों से भरे हुए वर्षाकाल में गङ्गा के वेग को तर-जाने की भांति पाण्डवों की सेना का अतिक्रमण कर लेना चाहते हो ॥ ११ ॥

वाससैव यथा हि त्वं प्रावृण्वानोऽभिमन्यसे ।
स्रजं त्यक्तामिव प्राप्य लोभाद्यौधिष्ठिरीं श्रियम् ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम अन्य के द्वारा परित्यक्त वस्त्र या फैंकी हुई माला को धारण करके अभिमान करने वाले की भांति राजा युधिष्ठिर की राज्यलक्ष्मी का लोभ से धारण करके अभिमान करते हो ॥ १२ ॥

द्रौपदीसहितं पार्थं सायुधैर्भ्रातृभिर्वृतम् ।
वनस्थमपि राज्यस्थं पाण्डवं को विजेष्यति ॥१३॥

शस्त्र धारण करके सहायता करने वाले अपने भाई और द्रौपदी के साथ, वन में हो या राज्य सिंहासन पर हो, कोई भी राजा युधिष्ठिर को नहीं जीत सकता है ॥ १३ ॥

निदेशे यस्य राजानः सर्वे तिष्ठन्ति किङ्कराः ।
तमैलविलमासाद्य धर्मराजो व्यराजत ॥१४॥

जिस कुबेर के अनेक राजा आज्ञाकारी हैं, उस कुबेर की सहायता से धर्मराज देदीप्यमान हो रहा है ॥ १४ ॥

कुबेरसदनं प्राप्त ततो रत्नान्यवाप्य च ।
स्फीतमाक्रम्य ते राष्ट्रं राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः॥१५॥

ये पाण्डव, कुबेर के भवन पर जाकर और वहां से उत्तम २ रत्न ग्रहण करके तेरे विशाल राष्ट्र पर आक्रमण करना चाहते हैं। वे इसी ढंग से अपने राज्य की प्राप्ति की चिन्ता में है ॥ १५ ॥

दत्तं हुतमधीतं च ब्राह्मणास्तर्पिता धनैः ।
आवयोर्गतमायुश्च कृतकृत्यौ च विद्धि नौ ॥१६॥

त्वं तु हित्वा सुखं राज्यं मित्राणि च धनानि च ।
विग्रहं पाण्डवैः कृत्वा महद्व्यसनमाप्स्यसि ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम लोगों ने तो दान, हवन, अध्ययन जो कुछ करना था, वह कर लिया। ब्राह्मणों को धन दान से प्रसन्न कर चुके। हम दोनों (भीष्म और द्रोण) की आयु भी समाप्त हो चली है और अपने कार्यों को पूरा कर चुके हैं, परन्तु तुम राज्य, मित्र, धन, सुख आदि का परित्याग करके पाण्डवों के साथ विग्रह करना चाहते हो इससे तुम्हें बड़ी विपत्ति खड़ी होगी ॥ १७ ॥

द्रौपदी यस्य चाऽऽशास्ते विजयं सत्यवादिनी ।
तपोघोरव्रता देवी कथं जेष्यसि पाण्डवम् ॥१८॥

जिन पाण्डवों की विजय की अभिलाषा, सत्यवादिनी, घोर तप परायण, द्रौपदी कर रही है, क्या तुम उस युधिष्ठिर को जीत सकते हो ? ॥१८॥

मन्त्री जनार्दनो यस्य भ्राता यस्य धनञ्जयः ।
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठः कथं जेष्यसि पाण्डवम् ॥१९॥

जिसका मन्त्री श्रीकृष्ण और सब धनुर्धरों में श्रेष्ठ अर्जुन भाई है। उस राजा युधिष्ठिर को तुम कैसे जीत सकते हो ॥ १९ ॥

सहाया ब्राह्मणा यस्य धृतिमन्तो जितेन्द्रियाः ।
तमुग्रतपसं वीरं कथं जेष्यसि पाण्डवम् ॥२०॥

जिस राजा युधिष्ठिरके धैर्यशील, जितेन्द्रिय ब्राह्मण सहायक हैं, उस वीर पाण्डुपुत्र धर्मराज को तुम कैसे जीत सकते हो ।

पुनरुक्तं च वक्ष्यामि यत्कार्यं भूतिमिच्छता ।
सुहृदा मज्जमानेषु सुहृत्सु व्यसनार्णवे ॥२१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अलं युद्धेन तैर्वीयैः शाम्य त्वं कुरुवृद्धये ।
मा गमः ससुतामात्यः सबलश्च पराभवम् ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या-
मुद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीष्मद्रोणवाक्ये एकोन-
चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३९॥

विपत्ति के समुद्र में डूबते हुए मित्र के साथ जो मित्र का कर्त्तव्य है, उससे प्रेरित होकर मैं फिर तुमसे कहता हूँ, कि तुम युद्ध को रहने दो और शांति धारण करो, इसीसे कुरुवंश की वृद्धि होगी। कहीं तुम अपने पुत्र, मन्त्री और सेना के साथ पराजय को प्राप्त न हो जाना ॥ २१-२२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में भीष्म और द्रोण के वाक्य का एक सौ उनतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ चालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

राजपुत्रैः परिवृतस्तथा भृत्यैश्च सञ्जय ।
उपारोप्य रथे कर्णं निर्यातो मधुसूदनः ॥१॥
किमब्रवीदमेयात्मा राधेयं परवीरहा ।
कानि सान्त्वानि गोविन्दः सूतपुत्रे प्रयुक्तवान् ॥२॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! राजपुत्र और सेवकों से घिरे हुए मधुसूदन श्रीकृष्ण, रथ में कर्ण को बैठा कर नगर से बाहर गए थे। उस समय शत्रु विजयी, महात्मा कृष्ण ने राध-पुत्र कर्ण से क्या कहा और उसको किस प्रकार समझाया ॥१-२॥

उद्यन्मेघस्वनः काले कृष्णः कर्णमथाऽब्रवीत् ।
मृदु वा यदि वा तीक्ष्णं तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥३॥

हे सञ्जय ! उठते हुए मेघ के समान गम्भीर ध्वनि धारी कृष्ण ने कर्ण से बड़े ही उत्तम समय पर बातचीत की है । वह वार्तालाप कोमल था या तीक्ष्ण, उसे मुझे सुनाओ ॥३॥

सञ्जय उवाच—

आनुपूर्व्येण वाक्यानि तीक्ष्णानि च मृदूनि च ।
प्रियाणि धर्मयुक्तानि सत्यानि च हितानि च ॥४॥
हृदयग्रहणीयानि राधेयं मधुसूदनः ।
यान्यब्रवीदमेयात्मा तानि मे शृणु भारत ॥५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सञ्जय ने कहा—हे भारत ! श्रीकृष्ण के वाक्य कथन रीति के अनुसार कभी तीक्ष्ण और कभी मृदु होते थे, जो बड़े प्रिय, धर्म-युक्त, सत्य, हितकारी, हृदयग्राही थे। महान् आत्मा के धारण करने वाले मधुसूदन ने जो २ वाक्य कर्ण से कहे-वे मैं तुमको क्रमबद्ध सुनाता हूँ, तुम ध्यान से सुनो ॥४-५॥

वासुदेव उवाच—

उपासितास्ते राधेय ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
तत्त्वार्थं परिपृष्टाश्च नियतेनाऽनसूयया ॥६॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे राधेय ! तुमने वेद के पारगामी ब्राह्मणों की सङ्गति कर रक्खी है और नियम बद्ध होकर बड़ी श्रद्धा के साथ उनसे तत्व अर्थ पूछ रखे हैं ॥६॥

त्वमेव कर्ण जानासि वेदवादान्सनातनान् ।
त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषु परिनिष्ठितः ॥७॥

हे कर्ण ! तुम सनातन काल से चले आते हुए वेद के सिद्धांतों को भी जानते हो और जो धर्म शास्त्र के सूक्ष्म तत्व हैं, तुम उनके भी अच्छी तरह जानने वाले हो ॥७॥

कानीनश्च सहोढश्च कन्यायां यश्च जायते ।
वोढारं पितरं तस्य प्राहुः शास्त्रविदो जनाः ॥८॥

जो पुत्र कानीन और सहोढ़ होते है, उसका पिता वही कहाता है, जो उसके साथ पीछे विवाह करता है ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोऽसि कर्ण तथा जातः पाण्डोः पुत्रोऽसि धर्मतः ।
निग्रहाद्धर्मशास्त्राणामेहि राजा भविष्यसि ॥९॥

हे कर्ण ! तुम्हारी उत्पत्ति भी इसी तरह है, इससे तुम्हारी माता के ग्रहण करने वाले पाण्डु के ही तुम धर्मानुसार पुत्र हो। धर्मशास्त्र की व्यवस्था के अनुसार तो आओ, तुम ही राजा बनो ॥९॥

पितृपक्षे च ते पार्था मातृपक्षे च वृष्णयः ।
द्वौ पक्षावभिजानीहि त्वमेतौ पुरुषर्षभ ॥१०॥

तुम्हारे पिता के पक्ष के पाण्डव और माता के पक्ष के वृष्णि-वंशज वीर हैं। हे पुरुषर्षभ ! तुम इन दोनों पक्षों को अपने ही समझो ॥१०॥

मया सार्द्धमितो यातमद्य त्वां तात पाण्डवाः ।
अभिजानन्तु कौन्तेयं पूर्वजातं युधिष्ठिरात् ॥११॥

हे तात ! जब आज तुम मेरे साथ चले चलोगे-तो सब लोग तुमको राजा युधिष्ठिर का ज्येष्ठ, भाई मान कर आदर करेंगे ॥११॥

पादौ तव ग्रहीष्यन्ति भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः ।
द्रौपदेयास्तथा पञ्च सौभद्रश्चाऽपराजितः ॥१२॥

तेरे लघु भ्राता पांचों पाण्डव तेरे चरणों को ग्रहण करेंगे और द्रौपदी के पांचों पुत्र और सुभद्रानन्दन अभिमन्यु भी तुम्हारे चरणों को छूयेंगे ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजानो राजपुत्राश्च पाण्डवार्थे समागताः ।
पादौ तव ग्रहीष्यन्ति सर्वे चाऽन्धकवृष्णयः ॥१३॥

इसके अतिरिक्त जितने राजा या राजपुत्र, पाण्डवों की सहायता के लिये आये हैं और जितने अन्धक तथा वृष्णि वंश के वीर हैं, वे भी सब तुम्हारे चरणों में प्रणाम करेंगे ॥१३॥

हिरण्मयांश्च ते कुम्भान्राजतान्पार्थिवांस्तथा ।
ओषध्यः सर्वबीजानि सर्वरत्नानि वीरुधः ॥१४॥
राजन्या राजकन्याश्चाऽप्यानयन्त्वाभिषेचनम् ।
षष्ठे त्वां च तथा काले द्रौपद्युपगमिष्यति ॥१५॥

तुम्हारे अभिषेक के लिए सुवर्ण, चांदी, मिट्टी के उत्तम २ कलश, लेकर ओषधि, सारे बीज, सारे रत्न, लताएँ आदि से राजकुमार और राजकन्या तुम्हारा अभिषेक करें । इस प्रकार दिन के छटे भाग में द्रौपदी भी आदर के लिए तुम्हारे सन्मुख उपस्थित होगी ॥ १५ ॥

अग्निं जुहोतु वै धौम्यः संशितात्मा द्विजोत्तमः ।
अद्य त्वामभिषिञ्चन्तु चातुर्वेद्या द्विजातयः ॥१६॥

प्रशंसनीय आत्मा वाले धौम्य ऋषि, उस समय अग्नि होत्र करेंगे और चारों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण आज ही तुम पर राज्याभिषेक कर देंगे ॥ १६ ॥

पुरोहितः पाण्डवानां ब्रह्मकर्मण्यवस्थितः ।
तथैव भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः पुरुषर्षभाः ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रौपदेयास्तथा पञ्च पञ्चालाश्चेदयस्तथा ।
अहं च त्वाऽभिषेक्ष्यामि राजानं पृथिवीपतिम् ॥१८॥
युवराजोऽस्तु ते राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।

ब्रह्मकर्म में अवस्थित पाण्डवों का पुरोहित, पुरुष श्रेष्ठ पांचों भाई पाण्डव, द्रौपदी के पांचों पुत्र, पञ्चाल, चेदिराज के वीर और मैं सब मिल कर पृथिवी के सिंहासन पर तुम्हारा अभिषेक-कर देंगे और धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर तुम्हारा युवराज होगा ।

गृहीत्वा व्यजनं श्वेतं धर्मात्मा संशितव्रतः ॥१९॥
उपान्वारोहतु रथं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।

प्रशंसनीय आत्मा वाला, धर्मात्मा कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर श्वेत चमर या पंखा लेकर तुम्हारे साथ रथ में बैठा करेंगे ॥ १९॥

छत्रं च ते महाश्वेतं भीमसेनो महाबलः ॥२०॥
अभिषिक्तस्य कौन्तेयो धारयिष्यति मूर्धनि ।

हे कर्ण ! तुम्हारे महाश्वेत छत्र को महाबली कुन्ती-पुत्र भीम-सेन उठावेगा और अभिषेक होने पर सदा तुम्हारे शिर पर धारण किये रहेगा ॥ २० ॥

किङ्किणीशतनिर्घोषं वैयाघ्रपरिवारणम् ॥२१॥
रथं श्वेतहयैर्युक्तमर्जुनो वाहयिष्यति ।
अभिमन्युश्च ते नित्यं प्रत्यासन्नो भविष्यति ॥२२॥

सैंकड़ों छोटी २ घाटियों से युक्त, व्याघ्रचर्म के आसन से प्रदीप्त, श्वेत अश्वों से युक्त, तुम्हारे रथ को अर्जुन चलावेगा । इस तरह अभिमन्यु भी सदा तुम्हारी सेवा में खड़ा रहेगा ।२१-२२।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च पञ्च ये ।
पञ्चालाश्चाऽनुयास्यन्ति शिखण्डी च महारथः ॥२३॥
अहं च त्वाऽनुयास्यामि सर्वे चाऽन्धकवृष्णयः ।

नकुल, सहदेव, द्रौपदी के पांचों पुत्र, पञ्चाल, महारथी शिखण्डी, अन्धक और वृष्णि वंशज तथा मैं भी तुम्हारे ही पीछे २ चलेंगे ॥ २३ ॥

दाशार्हाः परिवारास्ते दाशार्णाश्च विशाम्पते ॥२४॥
भुङ्क्ष्व राज्यं महाबाहो भ्रातृभिः सह पाण्डवैः ।

हे विशाम्पते ! इस प्रकार दशार्ह और दशार्ह देश के राजा और प्रजा तुम्हारे परिवार बनेंगे । हे महाबाहो ! तुम अपने भाइयों के साथ इस सारी पृथिवी का राज्य भोगो ॥ २४ ॥

जपैर्होमैश्च संयुक्तो मङ्गलैश्च पृथग्विधैः ॥२५॥
पुरोगमाश्च ते सन्तु द्रविडाः सह कुन्तलैः ।
आन्ध्रास्तालचराश्चैव चूचुपा वेणुपास्तथा ॥२६॥
स्तुवन्तु त्वां च बहुभिः स्तुतिभिः सूतमागधाः ।
विजयं वसुषेणस्य घोषयन्तु च पाण्डवाः ॥२७॥

हे कर्ण ! द्रविड़, कुन्तल, आन्ध्र, तालचर, चूचुप, वेणुप देश के राजा, तुम्हारे आगे २ चलेंगे । तुम अनेक प्रकार के जप, होम और मङ्गलों से युक्त होगे एवं सूत और मागध तुम्हारी अनेक स्तुतियों से प्रशंसा तथा । पाण्डव भी तुम वसुषेण (कर्ण) की जय के घोष को करेंगे ॥ २५-२७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स त्वं परिवृतः पार्थैर्नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ।
प्रशाधि राज्यं कौन्तेय कुन्तीं च प्रतिनन्दय ॥२८॥

हे महाबाहो ! तुम नक्षत्रों से चन्द्रमा की भांति पांचों पाण्डवों से घिरे रहोगे । हे कौन्तेय ! इस प्रकार तुम सारे राज्य का शासन करके कुन्ती को आनन्दित करो ॥ २८ ॥

मित्राणि ते प्रहृष्यन्तु व्यथन्तु रिपवस्तथा ।
सौभ्रात्रं चैव तेऽद्याऽस्तु भ्रातृभिः सहपाण्डवैः ॥२९॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्ण वाक्ये चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४०॥

इस तरह तुम्हारे मित्र प्रफुल्लित और शत्रु पीड़ित हो जावेंगे । आज से ही अपने भ्राता पाण्डवों के साथ तुम्हारा भ्रातृप्रेम दृढ़ हो जाना चाहिए ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में श्रीकृष्ण के वाक्य का एक सौ चालीसवां अध्याय पूरा हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ इकतालीसवां अध्याय

कर्ण उवाच—

असंशयं सौहृदान्मे प्रणयाच्चाऽऽत्थ केशव ।
सख्येन चैव वार्ष्णेय श्रेयस्कामतयैव च ॥१॥

कर्ण ने कहा—हे वृष्णि-वंश-श्रेष्ठ ! केशव ! यह निश्चय है, कि आप यह बात मेरी मित्रता, प्रीति, स्नेह और कल्याण कामना से ही कह रहे हो ॥ १ ॥

सर्वं चैवाऽभिजानामि पाण्डोः पुत्रोऽस्मि धर्मतः ।
निग्रहाद्धर्मशास्त्राणां यथा त्वं कृष्ण मन्यसे ॥२॥

हे कृष्ण ! मैं यह भी सब कुछ जानता हूँ, कि मैं धर्मानुसार पाण्डु का ही पुत्र हूं । यही धर्मशास्त्र की व्यवस्था है और ऐसा ही आप मानते हो ॥ २ ॥

कन्यागर्भं समाधत्त भास्करान्मां जनार्दन ।
आदित्यवचनाच्चैव जातं मां सा व्यसर्जयत् ॥३॥

हे जनार्दन ! मेरी माता कुन्ती ने कन्यावस्था में ही सूर्य से मेरा गर्भ धारण किया । उन्हीं सूर्य के वचन से उसने मुझे उत्पन्न होते ही छोड़ दिया ॥ ३ ॥

सोऽस्मि कृष्ण तथा जातः पाण्डोः पुत्रोऽस्मि धर्मतः ।
कुन्त्या त्वहमपाकीर्णो यथा न कुशलं तथा ॥४॥

हे कृष्ण ! यद्यपि मैं धर्म शास्त्र की व्यवस्था से पाण्डु पुत्र हूं, परन्तु मेरी माता कुन्ती ने तो मुझे इस प्रकार फैंक दिया, कि जिससे मेरा कुशलता-पूर्वक रहना ही कठिन था ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूतो हि मामधिरथो दृष्ट्वैवाऽभ्यानयद्गृहान् ।
राधायाश्चैव मां प्रादात्सौहार्दान्मधुसूदन ॥५॥

हे मधुसूदन ! जब मुझे अधिरथ नामक सूत ने देखा, तो वह मुझे उठाकर घर ले गया और बड़े स्नेह के साथ उसने मुझे अपनी भार्या राधा के लिए दे दिया ॥ ५ ॥

मत्स्नेहाच्चैव राधायां सद्यः क्षीरमवातरत् ।
सा मे मूत्रं पुरीषं च प्रतिजग्राह माधव ॥६॥

मुझे देखते ही उसको इतना स्नेह हुआ, कि उसके स्तनों से दूध टपकने लगा। हे माधव ! उसी ने मेरी बाल्यवस्था में मेरे मूत्र और पुरीष को उठाया था ॥ ६ ॥

तस्याः पिण्डव्यपनयं कुर्यादस्मद्विधः कथम् ।
धर्मविद्धर्मशास्त्राणां श्रवणे सततं रतः ॥७॥

मैं अपनी माता राधा के उपकार का कैसे विनाश कर सकता हूं। मैं सर्वदा धर्म-शास्त्र के सुनने में निरत और धर्म-शास्त्र का जानने वाला हूँ ॥ ७ ॥

तथा मामभिजानाति सूतश्चाऽधिरथः सुतम् ।
पितरं चाऽभिजानामि तमहं सौहृदात्सदा ॥८॥

अधिरथ सूत भी मुझे अपना पुत्र मानता है और मैं उनको अपना पिता ही समझ रहा हूं। मेरा भी उनसे बहुत ही स्नेह हो रहा है ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

स हि मे जातकर्मादि कारयामास माधव ।
शास्त्रदृष्टेन विधिना पुत्रप्रीत्या जनार्दन ॥९॥

हे माधव ! अधिरथ सूत ने ही मेरे जातकर्मादि सँस्कार किए हैं। हे जनार्दन ! इन सँस्कारों को उसने शास्त्र की विधि और पुत्र प्रेम के अनुसार बड़े उत्साह से किया है ॥ ९ ॥

नाम वै वसुषेणेति कारयामास वै द्विजैः ।
भार्याश्चोढा मम प्राप्ते यौवने तत्परिग्रहात् ॥१०॥

उस समय ब्राह्मणों ने मेरा नाम वसुषेण रख दिया। जब मैं युवा हुआ, तो उन्होंने अपनी जाति में मेरा विवाह कर दिया ।१०।

तासु पुत्राश्च पौत्राश्च मम जाता जनार्दन ।
तासु मे हृदयं कृष्ण सञ्जातं कामबन्धनम् ॥११॥

हे जनार्दन ! कृष्ण ! उस भार्या से मेरे पुत्र और पौत्र उत्पन्न हो चुके, उनमें मेरा हृदय अपने मनोरथों के साथ बँध रहा है ११

न पृथिव्या सकलया न सुवर्णस्य राशिभिः ।
हर्षाद्भयाद्वा गोविन्द मिथ्या कर्तुं तदुत्सहे ॥१२॥

हे गोविन्द ! अब मैं सारी पृथिवी, सुवर्ण की राशि तथा हर्ष या भय से किसी प्रकार इस सारे गृहस्थ को उलट पलट करने में समर्थ नहीं हूँ ॥ १२ ॥

धृतराष्ट्रकुले कृष्ण दुर्योधनसमाश्रयात् ।
मया त्रयोदश समा भुक्तं राज्यमकण्टकम् ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे कृष्ण ! अब मैंने धृतराष्ट्र के कुल में दुर्योधन का अवलम्बन ले रखा है, जिससे मुझे अकण्टक राज्य भोगते भोगते तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके ॥ १३ ॥

इष्टं च बहुभिर्यज्ञैः सह सूतैर्मयाऽसकृत् ।
आवाहाश्च विवाहाश्च सह सूतैर्मया कृताः ॥१४॥

मैंने अपने जाति के सूतों के साथ अनेक यज्ञ कर लिए और अनेक भांतिके जाति कर्म और विवाह आदि सम्बन्ध किए हैं ।१४

मां च कृष्ण समासाद्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः ।
दुर्योधनेन वार्ष्णेय विग्रहश्चाऽपि पाण्डवैः ॥१५॥

हे वार्ष्णेय ! राजा दुर्योधन ने मेरी सहायता को पाकर ही यह शस्त्र उठाने का उद्योग किया है और पाण्डवों के साथ झगड़ा उठाया है ॥१५॥

तस्माद्रणे द्वैरथे मां प्रत्युद्यातारमच्युत ।
वृतवान्परमं कृष्ण प्रतीपं सव्यसाचिनः ॥१६॥

हे अच्युत ! कृष्ण ! घमसान युद्ध में सव्यसाची अर्जुन के सन्मुख जाने के लिए उसका प्रतिद्वन्दी योद्धा राजा दुर्योधन ने मुझे ही चुन रखा है ॥१६॥

वधाद्बन्धाद्भयाद्वाऽपि लोभाद्वापि जनार्दन ।
अनृतं नोत्सहे कर्त्तुं धार्तराष्ट्रस्य धीमतः ॥१७॥

हे जनार्दन ! मैं मृत्यु, बन्धन, भय और लोभ आदि किसी भी कारण से बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र के साथ छल का व्यवहार करने के लिये समर्थ नहीं हूं ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि ह्यद्य न गच्छेयं द्वैरथे सव्यसाचिना ।
अकीर्तिः स्याद्धृषीकेश मम पार्थस्य चोभयोः ॥१८॥

हे हृषीकेश ! जब घोर युद्ध आरम्भ होगा और मैं अर्जुन के प्रतिद्वन्द्व (मुक़ाबिले) पर न आऊंगा, इससे मेरी और अर्जुन दोनों की बड़ी ही अपकीर्ति होगी ॥१८॥

असंशयं हितार्थाय ब्रूयास्त्वं मधुसूदन ।
सर्वं च पाण्डवाः कुर्युस्त्वद्वशित्वान्न संशयः ॥१९॥

हे मधुसूदन ! तुमने जो कुछ कहा है, वह निश्चय मेरे हित के लिए कहा है । पाण्डव सब कुछ कर सकते हैं, क्योंकि वे तुम्हारी आज्ञा में चलते हैं ॥१९॥

मन्त्रस्य नियमं कुर्यास्त्वमत्र मधुसूदन ।
एतदत्र हितं मन्ये सर्वं यादवनन्दन ॥२०॥

हे यदु-वंश-श्रेष्ठ ! मधुसूदन ! तुम मेरे इस विचार को पाण्डवों पर प्रकट नहीं करना, इसी में मेरा और सबका हित है ।

यदि जानाति मां राजा धर्मात्मा संयतेन्द्रियः ।
कुन्त्याः प्रथमजं पुत्रं न स राज्यं ग्रहीष्यति ॥२१॥

यदि इन्द्रियों का जीतने वाला राजा युधिष्ठिर यह जान लेगा, कि कर्ण, कुन्ती का प्रथम पुत्र है, तो वह कभी राज्य ग्रहण नहीं करेगा ॥२१॥

प्राप्य चाऽपि महद्राज्यं तदहं मधुसूदन ।
स्फीतं दुर्योधनायैव सम्प्रदद्यामरिन्दम ॥२२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे अरिमर्दन ! मधुसूदन ! यदि इस खण्डन मण्डन में मुझे राज्य मिल गया, तो मैं इस विशाल राज्य को राजा दुर्योधन को सौंप दूंगा, क्योंकि मैंने राज्य दिलाने की उससे प्रतिज्ञा कर रखी ॥२२॥

स एव राजा धर्मात्मा शाश्वतोऽस्तु युधिष्ठिरः ।
नेता यस्य हृषीकेशो योद्धा यस्य धनञ्जयः ॥२३॥

मैं चाहता हूं, कि सदा धर्म के अनुसार चलने वाला युधिष्ठिर ही राज्य का अधिकारी हो, क्योंकि जिसके मार्ग प्रदर्शक आप हृषीकेश (जितेन्द्रिय) और भ्राता अर्जुन जैसे वीर हैं ॥२३॥

पृथिवी तस्य राष्ट्रं च यस्य भीमो महारथः ।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च माधव ॥२४॥
धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः सात्यकिश्च महारथः ।
उत्तमौजा युधामन्युः सत्यधर्मा च सौमकिः ॥२५॥
चैद्यश्च चेकितानश्च शिखण्डी चाऽपराजितः ।
इन्द्रगोपकवर्णाश्च केकया भ्रातरस्तथा ॥
इन्द्रायुधसवर्णश्च कुन्तिभोजो महामनाः ॥२६॥
मातुलो भीमसेनस्य श्येनजिच्च महारथः ।
शङ्खः पुत्रो विराटस्य निधिस्त्वं च जनार्दन ॥२७॥

हे माधव ! जनार्दन ! जिसके साथ महारथी भीम है, उसी का सारा राष्ट्र और उसी की सारी पृथिवी है। नकुल, सहदेव, द्रौपदी पुत्र, पञ्चाल देशश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न, महारथी सात्यकि, उत्तम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओजस्वी युधामन्यु, सत्य-धर्म के अनुसार चलने वाला सौमकि, (सौमक पुत्र) चेदिराज, चेकितान, महा-विजयी शिखण्डी, इन्द्र-गोप (बीरबहूटी) के समान लाल वर्ण धारी केकयदेशोत्पन्न सारे भ्राता, महामनस्वी, इन्द्रायुध के समान तेजस्वी, भीमसेन का मामा कुन्तिभोज, महारथी श्येनजित, शङ्ख, विराट पुत्र उत्तर और सब कुछ निधि (कोष) रूप आप (कृष्ण) हैं। ये जिस ओर हैं, उसको ही सारा राज्य प्राप्त हो सकता है ॥२४-२७॥

महानयं कृष्ण कृतः क्षत्रस्य समुदानयः ।
राज्यं प्राप्तमिदं दीप्तं प्रथितं सर्वराजसु ॥२८॥
धार्तराष्ट्रस्य वार्ष्णेय शस्त्रयज्ञो भविष्यति ।
अस्य यज्ञस्य वेत्ता त्वं भविष्यसि जनार्दन ॥२९॥

हे कृष्ण ! यह बहुत बड़ा क्षत्रियों का मेला है । हे वार्ष्णेय ! यद्यपि धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन ने सारे राजाओं के मध्य में इस प्रसिद्ध और विशाल राज्य को प्राप्त किया, परन्तु अब तो आगे चलकर शस्त्रों का यज्ञ होना ही है । हे जनार्दन ! इस सारे यज्ञ के मर्म का जानने वाले एक तुम ही हो॥ २८-२९ ॥

आध्वर्यवं च ते कृष्ण क्रतावस्मिन्भविष्यति ।
होता चैवाऽत्र बीभत्सुः सन्नद्धः सकपिध्वजः ॥३०॥
गाण्डीवं स्रुक्तथा चाऽऽज्यं वीर्यं पुंसां भविष्यति ।
ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं स्थूणाकर्णं च माधव ॥
मन्त्रास्तत्र भविष्यन्ति प्रयुक्ताः सव्यसाचिना ॥३१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे माधव ! कृष्ण ! इस यज्ञ में अध्वर्यु (आचार्य) तुम स्वयं होगे और तुम्हारे साथ होता बड़ा सावधान कपिध्वज अर्जुन होगा। यह गाण्डीव धनुष स्रुवा, वीरों का पराक्रम घृत, ऐन्द्र, पाशुपत, ब्राह्म, स्थूणाकर्ण आदि अस्त्र, मन्त्र होंगे, जिनका उच्चारण (प्रयोग) स्वयं अर्जुन करेगा ॥ ३०-३१ ॥

अनुयातश्च पितरमधिको वा पराक्रमे ।
गीतं स्तोत्रं स सौभद्रः सम्यक्तत्र भविष्यति ॥३२॥

उद्गाताऽत्र पुनर्भीमः प्रस्तोता सुमहाबलः ।
विनदन्स नरव्याघ्रो नागानीकान्तकृद्रणे ॥३३॥

पराक्रम में अपने पिता अर्जुन के समान या उससे भी अधिक सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु वहां गाने योग्य स्तुति का गान करने वाला उद्गाता होगा। महाबली, हाथियों की सेना का अन्तक रण में गर्जना करने वाला, नरश्रेष्ठ, भीम, प्रस्तोता बनेगा ॥ ३३ ॥

स चैव तत्र धर्मात्मा शश्वद्राजा युधिष्ठिरः ।
जपैर्होमैश्च संयुक्तो ब्रह्मत्वं कारयिष्यति ॥३४॥

इस यज्ञ में सदा धर्म के अनुसार चलने वाले राजा युधिष्ठिर जप और होम से संयुक्त होकर ब्रह्मा का कार्य करेंगे ॥ ३४ ॥

शङ्खशब्दाः समुरजा भेर्यश्च मधुसूदन ।
उत्कृष्टसिंहनादश्च सुब्रह्मण्यो भविष्यति ॥३५॥

हे मधुसूदन ! इस यज्ञ में शंख, मुरज, (पखावज) भेरी और वीरों के सिंहनाद सुब्रह्मण्य घोष (आह्वान कर्त्ता) होंगे ॥ ३५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain,.Digitizagtion by eGangotri

नकुलः सहदेवश्च माद्रीपुत्रौ यशस्विनौ ।
शामित्रं तौ महावीर्यौ सम्यक्तत्र भविष्यतः ॥३६॥

यशस्वी माद्रीपुत्र, महाबली नकुल सहदेव, यहां शमिता (पशुच्छेदक) बनेंगे ॥ ३६ ॥

कल्माषदण्डा गोविन्द विमला रथपंक्तयः ।
यूपाः समुपकल्पन्तामस्मिन्यज्ञे जनार्दन ॥३७॥

हे जनार्दन ! गोविन्द ! चित्र विचित्र ध्वजाएं और निर्मल रथ की पंक्तियाँ इस यज्ञ में यूप समझी जावेंगी ॥ ३७ ॥

कर्णिनालीकनाराचा वत्सदन्तोपबृंहणाः ।
तोमराः सोमकलशाः पवित्राणि धनूंषि च ॥३८॥

कर्णि, नालीक, नाराच, आदि बाण, वत्सदन्त वाले उपबृंहण (चमसादि) होंगे, तोमर, सोम कलश और पवित्री, धनुष होंगी ।३८।

असयोऽत्र कपालानि पुरोडाशाः शिरांसि च ।
हविस्तु रुधिरं कृष्ण तस्मिन्यज्ञे भविष्यति ॥३९॥

इस यज्ञ में खड्ग, कपाल और योद्धाओं के शिर पुरोडाश माने जावेंगे । (मृतिका पात्र कपाल और उसमें पकाया हुआ हव्य पुरोडाश कहता है) हे कृष्ण ! योद्धाओं का रुधिर हवि का घृत होगा ॥ ३९ ॥

इध्माः परिधयश्चैव शक्तयो विमला गदाः ।
सदस्या द्रोणशिष्याश्च कृपस्य च शरद्वतः ॥४०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे कृष्ण! परिधि, शक्ति, चमकती गदाएँ इन्धन होंगी एवं द्रोण के सारे शिष्य, शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य आदि सदस्य समझने चाहिए।

इषवोऽत्र परिस्तोमा मुक्ता गाण्डीवधन्वना।
महारथप्रयुक्ताश्च द्रोणद्रौणिप्रचोदिताः ॥४१॥

इस यज्ञ में गाण्डीव धनुष से छोड़े हुए तथा अन्य महारथी और द्रोण, अश्वत्थामा से फैंके हुए बाण, परिस्तोम (सोम चमस आदि) पात्र समझे जावेंगे ॥ ४१ ॥

प्रतिप्रास्थानिकं कर्म सात्यकिस्तु करिष्यति।
दीक्षितो धार्तराष्ट्रोऽत्र पत्नी चाऽस्य महाचमूः ॥४२॥

महारथी सात्यकि प्रतिप्रस्थाता के कर्म को करेगा और इस यज्ञ में धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन इस यज्ञ की दीक्षा ग्रहण करने वाले यजमान और उसकी सेना यजमान पत्नी बनेगी ॥ ४२ ॥

घटोत्कचोऽत्र शामित्रं करिष्यति महाबलः।
अतिरात्रे महाबाहो वितते यज्ञकर्मणि ॥४३॥

हे महाबाहो! महाबली घटोत्कचादि इस विशाल यज्ञ के विस्तार के समय शामित्र (पशुच्छेदक) का ही कर्म करेंगे ॥४३॥

दक्षिणा त्वस्य यज्ञस्य धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्।
वैतानिके कर्ममुखे जातो यत्कृष्ण पावकात् ॥४४॥

हे कृष्ण! प्रतापी धृष्टद्युम्न जो यज्ञ के विस्तृत होने पर अग्नि से उत्पन्न हुआ था, इस यज्ञ की दक्षिणा होगा ॥ ४४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदब्रुवमहं कृष्ण कटुकानि स्म पाण्डवान् ।
प्रियार्थं धार्तराष्ट्रस्य तेन तप्ये ह्यकर्मणा ॥४५॥

हे कृष्ण ! मैंने जो पाण्डवों से राजसभा में कटु वचन कहे थे, वे सब कुरुराज दुर्योधन की प्रसन्नता के लिए ही कहे थे, उस दुष्कर्म का मुझे बड़ा पश्चाताप है ॥ ४५ ॥

यदा द्रक्ष्यसि मां कृष्ण निहतं सव्यसाचिना ।
पुनश्चित्तिस्तदा चाऽस्य यज्ञस्याऽथ भविष्यति ॥४५॥

हे कृष्ण ! जब सव्यसाची अर्जुन द्वारा मुझे मारा हुआ देखोगे, तो उस समय इस यज्ञकी चित्ति (चयनारम्भ) होगा ।४६।

दुःशासनस्य रुधिरं यदा पास्यति पाण्डवः ।
आनर्दं नर्दतः सम्यक्तदा सूयं भविष्यति ॥४७॥

पाण्डु-पुत्र भीमसेन, जब गर्जना करता हुआ दुःशासन का रक्त पीवेगा, वही सोम का अभिषव (अर्क खैंचना) समझना चाहिए ॥ ४७ ॥

यदा द्रोणं च भीष्मं च पाञ्चाल्यौ पातयिष्यतः ।
तदा यज्ञावसानं तद्भविष्यति जनार्दन ॥४८॥

हे जनार्दन ! जब द्रोण और भीष्म को पञ्चालराज के पुत्र धृष्टद्युम्न और शिखण्डी मार गिरावेंगे, तब यज्ञ की समाप्ति की क्रिया का आरम्भ माना जावेगा ॥ ४८ ॥

दुर्योधनं यदा हन्ता भीमसेनो महाबलः ।
तदा समाप्स्यते यज्ञो धार्तराष्ट्रस्य माधव ॥४९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब महाबली भीमसेन, दुर्योधन को मारेगा--हे माधव ! तब यह दुर्योधन का सारा यज्ञ बिल्कुल समाप्त हो जावेगा ॥ ४९ ॥

स्नुषाश्च प्रस्नुषाश्चैव धृतराष्ट्रस्य सङ्गताः ।
हतेश्वरा नष्टपुत्रा हतनाथाश्च केशव ॥५०॥
रुदन्त्यः सह गान्धार्या श्वगृध्रकुरराकुले ।
स यज्ञेऽस्मिन्नवभृथो भविष्यति जनार्दन ॥५१॥

हे केशव ! जब राजा धृतराष्ट्र की वधू, छोटी वधू, इकट्ठी होंगी, जिनके पति और पुत्र एवं स्वामी मारे जावेंगे, वे जब कुत्ते, गीध और चीलों से व्याप्त रणभूमि में गान्धारी के साथ रोवेगी, तब इस यज्ञ में दीक्षांत स्नान का कार्य समाप्त हुआ माना जावेगा ॥५०-५१॥

विद्यावृद्धा वयोवृद्धाः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ।
वृथा मृत्युं न कुर्वीरंस्त्वत्कृते मधुसूदन ॥५२॥

हे क्षत्रियर्षभ ! मधुसूदन ! विद्या और वय में वृद्ध, क्षत्रिय आपके रहते हुए व्यर्थ मृत्यु को प्राप्त न हों, आप ऐसा ही करें ।

शस्त्रेण निधनं गच्छेत्समृद्धं क्षत्रमण्डलम् ।
कुरुक्षेत्रे पुण्यतमे त्रैलोक्यस्याऽपि केशव ॥५३॥

हे केशव ! इस तरह तो इस पवित्र कुरुक्षेत्र में त्रिलोकी भर के समृद्धशाली क्षत्रिय समूह का शस्त्रों से विनाश हो जावेगा ।५३।

तदत्र पुण्डरीकाक्ष विधत्स्व यदभीप्सितम् ।
यथा कार्त्स्न्येन वार्ष्णेय क्षत्रं स्वर्गमवाप्नुयात् ॥५४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे वार्ष्णेय! पुण्डरीकाक्ष ! इस विषय में जो आपकी इच्छा है, वही करो। आपको तो वही कार्य करना चाहिए, जिससे यह सारा क्षत्रिय समाज स्वर्ग या सुख प्राप्त कर सके ॥ ५४ ॥

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च जनार्दन ।
तावत्कीर्तिभवः शब्दः शाश्वतोऽयं भविष्यति ॥५५॥

हे जनार्दन ! इस तरह जब तक ये पर्वत स्थिर रहेंगे या नदियाँ बहती रहेंगी, तब तक आपकी कीर्ति का गान सर्वदा संसार में चलता रहेगा ॥ ५५ ॥

ब्राह्मणाः कथयिष्यन्ति महाभारतमाहवम् ।
समागमेषु वार्ष्णेय क्षत्रियाणां यशोधनम् ॥५६॥

हे यशोधन ! ब्राह्मण लोग, क्षत्रियों के समाज में इस महाभारत युद्ध का कीर्तन किया करेंगे, यह युद्ध क्षत्रियों के यश की वृद्धि करने वाला होगा ॥ ५६ ॥

समुपानय कौन्तेयं युद्धाय मम केशव ।
मन्त्रसंवरणं कुर्वन्नित्यमेव परन्तप ॥५७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कर्णोपनिवादे एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४१॥

हे केशव ! अब तो तुम मुझसे युद्ध के लिए कुन्ती-पुत्र अर्जुन को ले आओ। हे परन्तप ! तुम मेरे इस विचार को गुप्त रखना ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में कर्ण के वार्तालाप का एक सौ इकतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ बयालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

कर्णस्य वचनं श्रुत्वा केशवः परवीरहा ।
उवाच प्रहसन्वाक्यं स्मितपूर्वमिदं यथा ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! कर्ण के वचन सुनकर शत्रु वीरों के घातक श्रीकृष्ण ने मुस्कुराहट के साथ हँसते २ यह वचन कहा ॥१॥

श्रीभगवानुवाच—

अपि त्वां न लभेत्कर्ण राज्यलम्भोपपादनम् ।
मया दत्तां हि पृथिवीं न प्रशासितुमिच्छसि ॥२॥

श्रीकृष्ण बोले—हे कर्ण! क्या तुमको यह राज्य-प्राप्ति का उपाय उत्तम प्रतीत नहीं हुआ। मैंने तो तुमको सारी पृथिवी का राज्य देना चाहा-परन्तु तुम इस पृथिवी का शासन ही करना नहीं चाहते हो ॥२॥

ध्रुवो जयः पाण्डवानामितीदं न संशयः कश्चन विद्यतेऽत्र
जयध्वजो दृश्यते पाण्डवस्य समुच्छ्रितो वानरराज उग्रः ।३।

हे कर्ण! इसमें सन्देह नहीं हैं, कि यदि यह युद्ध हुआ, तो इसमें निश्चय पाण्डवों की विजय होगी। इस युद्ध में अर्जुन की ध्वजा का उच्च वानर राज ही जिधर देखो उधर ही दिखाई देगा।

दिव्या माया विहिता भौमनेन समुच्छ्रिता इन्द्रकेतुप्रकाशा ।
दिव्यानि भूतानि जयावहानि दृश्यन्ति चैवाऽत्र भयानकानि ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस ध्वजा में विश्वकर्मा ने दिव्य माया का प्रवेश कर दिया है। यह इन्द्र ध्वजा के समान सदा ऊंची ही दिखाई देगी। इसी ध्वजा में भयानक, विजय-प्रदायी, दिव्य, भूत आदि दिखाई देते हैं ॥४॥

न सज्जते शैलवनस्पतिभ्य ऊर्ध्वं तिर्यग्योजनमात्ररूपः।
श्रीमान्ध्वजः कर्ण धनञ्जयस्य समुच्छ्रितः पावकतुल्यरूपः।५।

हे कर्ण! यह ध्वजा, पर्वत और वृक्षों में भी नहीं उलझती है, जो ऊपर और तिरछी योजन मात्र फैली रहती है। यह कान्तिमती अर्जुन की ध्वजा, अग्नि की ज्वालाओं के सदृश आकाश में उड़ती रहती है ॥५॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्।
ऐन्द्रमस्त्रं विकुर्वाणमुभे चाऽप्यग्निमारुते ॥६॥
गाण्डीवस्य च निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥७॥

हे कर्ण, जब तुम संग्राम में श्वेत अश्व वाले, कृष्ण को सारथि बनाये हुए अर्जुन और ऐन्द्रास्त्र के विलक्षण करते हुए अग्नि और वायु को देखोगे तथा वज्र घोष के सदृश गाण्डीव धनुष की ध्वनि को सुनोगे, उस समय कृत त्रेता, द्वापर कुछ भी नहीं रहेगा-सबकी प्रलय हो जावेगी ॥६-७॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
जपहोमसमायुक्तं स्वां रक्षन्तं महाचमूम् ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदित्यमिव दुर्धर्षं तपन्तं शत्रुवाहिनीम् ।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥९॥

हे कर्ण ! जब तुम, जप, होम आदि से अपनी सेना की रक्षा करते हुए संग्राम में कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को देखोगे, जो सूर्य के समान दुर्धर्ष होकर शत्रु सेना को उत्ताप पहुंचावेगा-तब सत्युग, त्रेता, द्वापर में से कोई भी शेष नहीं बचेगा ॥८-९॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे भीमसेनं महाबलम् ।
दुःशासनस्य रुधिरं पीत्वा नृत्यन्तमाहवे ॥१०॥
प्रभिन्नमिव मातङ्गं प्रतिद्विरदघातिनम् ।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥११॥

जब तुम महाबली भीमसेन को भीषण संग्राम में दुःशासन का रुधिर पीकर नाचते हुए देखोगे, जो मदस्राव करते हुए मदोन्मत्त प्रतिद्वन्द्वी हाथी के घातक की तरह घूम रहा होगा-उस समय सत्युग, त्रेता, द्वापर इनमें से कुछ भी नहीं बचेगा ॥१०-११॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे द्रोणं शान्तनवं नृपम् ।
सुयोधनं च राजानं सैन्धवं च जयद्रथम् ॥१२॥
युद्धायाऽऽपततस्तूर्णं वारितान्सव्यसाचिना ।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥१३॥

जब तुम युद्ध में द्रोण और शान्तनु पुत्र भीष्म, राजा सुयोधन, सिन्धुराज जयद्रथ आदि को युद्ध करने को अर्जुन के द्वारा रोके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाते हुए देखोगे-तब कृतयुग-त्रेता, द्वापर आदि कुछ शेष नहीं रह सकता हैं ॥१२-१३॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे माद्रीपुत्रौ महाबलौ ।
वाहिनीं धार्तराष्ट्राणां क्षोभयन्तौ गजाविव ॥१४॥
विगाढे शस्त्रसम्पाते परवीररथारुजौ ।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥१५॥

जब तुम राजा दुर्योधन की सेना को आलोडित करते हुए, एवं शस्त्र-सम्पात के घोर रूप से शत्रु सेना को पीड़ित करने वाले माद्री-पुत्र महाबली नकुल सहदेव को देखोगे-तब सत्युग, त्रेता, द्वापर में से कोई भी नहीं बचेगा ॥१४-१५॥

ब्रूयाः कर्ण इतो गत्वा द्रोणं शान्तनवं कृपम् ।
सौम्योऽयं वर्तते मासः सुग्रापयवसेन्धनः ॥१६॥
सर्वौषधिवनस्फीतः फलवानल्पमक्षिकः ।
निष्पङ्को रसवत्तोयो नाऽत्युष्णशिशिरः सुखः ॥७॥

हे कर्ण ! तुम यहां से जाकर द्रोण, शान्तनु-पुत्र भीष्म, कृपाचार्य से कहना, कि यह मास घास, चारे और इन्धन प्राप्ति के लिए अच्छा है । अनेक ओषधियों से वन भरा पड़ा है, फल फूल वृक्षों में लदे हुए हैं और मक्खियों का कम प्रभाव है । कहीं भी कीचड़ नहीं है । जल स्वादिष्ट है । समय न उष्ण है और न ठंडा, किन्तु बड़ा ही सुख कर है ॥ १६-१७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सप्तमाच्चापि दिवसादमावस्या भविष्यति ।
संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम् ॥१८॥

आज से सातवें दिन अमावस्या होगी, उसी दिन से संग्राम का आरम्भ हो जाना चाहिए। इस तिथि का इन्द्र देवता है। ॥१८॥

तथा राज्ञो वदेः सर्वान्ये युद्धायाऽभ्युपागताः ।
यद्वो मनीषितं तद्वै सर्वं सम्पादयाम्यहम् ॥१९॥

इसी तरह युद्ध के लिए उपस्थित सारे राजाओं से कह देना, कि जो तुम लोगों की युद्ध करने की इच्छा है, वह अभी पूरी कर दी जावेगी ॥ १९ ॥

राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधनवशानुगाः ।
प्राप्य शस्त्रेण निधनं प्राप्स्यन्ति गतिमुत्तमाम् ॥२०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कर्णोपनिवादे भगवद्वाक्ये द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४२॥

जितने राजा या राजपुत्र दुर्योधन के वश में होकर आए हैं, उनका युद्ध में शस्त्र से विनाश होकर वे अवश्य स्वर्ग की गति को प्राप्त करेंगे ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में श्रीकृष्ण और कर्ण के सम्वाद का एक सौ बयालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ तेतालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

केशवस्य तु तद्वाक्यं कर्णः श्रुत्वाऽऽहितः शुभम् ।
अब्रवीदभिसम्पूज्य कृष्णं तं मधुसूदनम् ॥१॥
जानन्मां किं महाबाहो सम्मोहयितुमिच्छसि ।
योऽयं पृथिव्याः कार्त्स्न्येन विनाशः समुपस्थितः ।२।
निमित्तं तत्र शकुनिरहं दुःशासनस्तथा ।
दुर्योधनश्च नृपतिर्धृतराष्ट्रसुतोऽभवत् ॥३॥

संजय ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार के श्रीकृष्ण के लुभावने वचन सुनकर कर्ण उन पर मुग्ध हो गया । वह मधुसूदन कृष्ण से बड़े आदर के साथ कहने लगा । हे महाबाहो ! आप सब कुछ जानकर भी मुझे भुला देना चाहते हो । जो यह सारी पृथिवी का विनाश समुपस्थित हो गया है, इसका कारण शकुनि, दुःशासन, धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन और मुझे ही समझना चाहिए ॥ ३ ॥

असंशयमिदं कृष्ण महद्युद्धमुपस्थितम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च घोरं रुधिरकर्दमम् ॥४॥

हे कृष्ण ! इसमें सन्देह नहीं है, कि यह घोर युद्ध खड़ा हो गया है । इसमें पाण्डव पक्ष और कौरव पक्ष के क्षत्रियों के रक्त की महान् कीचड़ हो जावेगी ॥ ४ ॥

राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधनवशानुगाः ।
रणे शस्त्राग्निना दग्धाः प्राप्स्यन्ति यमसादनम् ॥५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो राजा और राजपुत्र, दुर्योधन के वश में होकर युद्ध को आए हैं, वे शस्त्रकी आगसे दग्ध होकर यमलोक को प्राप्त होंगे ॥५॥

स्वप्ना हि बहवो घोरा दृश्यन्ते मधुसूदन ।
निमित्तानि च घोराणि तथोत्पाताः सुदारुणाः ॥६॥

हे मधुसूदन ! हम लोगों को बड़े घोर बहुत से स्वप्न आ रहे हैं । इसी तरह अनेक निमित्त और दारुण उत्पात खड़े हो रहे हैं ।

पराजयं धार्तराष्ट्रे विजयं च युधिष्ठिरे ।
शंसन्त इव वार्ष्णेय विविधा रोमहर्षणाः ॥७॥

हे वार्ष्णेय ! ये सारे शकुन, धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन का पराजय और युधिष्ठिर के विजय की सूचना दे रहे हैं । इनके ध्यान से तो हम सब के रोमांच खड़े हो जाते हैं ॥ ७ ॥

प्राजापत्यं हि नक्षत्रं ग्रहस्तीक्ष्णो महाद्युतिः ।
शनैश्चरः पीडयति पीडयन्प्राणिनोऽधिकम् ॥८॥

प्रजापति जिसका देवता है, उन रोहिणी नक्षत्र को महाद्युति धारी, तीक्ष्ण ग्रह, शनैश्चर पीड़ित कर रहा है, जिससे प्राणियों का महाघोर पीड़ा होने की सम्भावना है ॥ ८ ॥

कृत्वा चाऽङ्गारको वक्रं ज्येष्ठायां मधुसूदन ।
अनुराधां प्रार्थयते मैत्रं सङ्गमयन्निव ॥९॥

हे मधुसूदन ! जेष्ठा नक्षत्र पर जाते २ यदि मङ्गल वक्री हो कर अनुराधा पर लौट आवे, तो इससे राजा के मित्र समूह का विनाश सूचित होता है ॥ ९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नूनं महद्भयं कृष्ण कुरूणां समुपस्थितम् ।
विशेषेण हि वार्ष्णेय चित्रां पीडयते ग्रहः ॥१०॥

हे कृष्ण ! यह निश्चय है, कि कुरुवंश के लिए यह बड़ा भयकारी समय उपस्थित हुआ है। हे वार्ष्णेय ! विशेष कठिन निमित्त तो यह है, कि महापात संज्ञक ज्योतिः चित्रा नक्षत्र को पीड़ित कर रही है ॥ १० ॥

सोमस्य लक्ष्म व्यावृत्तं राहुरर्कमुपैति च ।
दिवश्चोल्काः पतन्त्येताः सनिर्घाताः सकम्पनाः ॥११॥

चन्द्रमा की कालिमा उलटी हो रही हैं और राहु सूर्य को ग्रसना चाहता है। आकाश से कड़क और कम्पन के साथ भयानक उल्कापात हो रहे हैं ॥ ११ ॥

निष्ठनन्ति च मातङ्गा मुञ्चन्त्यश्रूणि वाजिनः ।
पानीयं यवसं चापि नाऽभिनन्दन्ति माधव ॥१२॥

हे माधव ! हाथी बुरी तरह चिंघाड़ रहे हैं। घोड़े आंसू छोड़ते हैं और वे अपने चारे और पानी को देख कर प्रसन्न नहीं होते हैं ॥ १२ ॥

प्रादुर्भूतेषु चैतेषु भयमाहुरुपस्थितम् ।
निमित्तेषु महाबाहो दारुणं प्राणिनाशनम् ॥१३॥

हे महाबाहो ! इन अशकुनों के उत्पन्न होने से प्राणियों के नाश करने वाला, दारुण, भय उपस्थित होने वाला है, ऐसा विद्वान् कह रहे हैं ॥ १३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अल्पे भुक्ते पुरीषं च प्रभूतमिह दृश्यते ।
वाजिनां वारणानां च मनुष्याणां च केशव ॥१४॥

हे केशव ! आजकल दुर्योधन के पक्ष के सैनिक, हाथी, घोड़े बहुत थोड़ा भोजन करते हैं, परन्तु उनके पुरीष (विष्ठा) बहुत अधिक उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु सर्वेषु मधुसूदन ।
पराभवस्य तल्लिङ्गमिति प्राहुर्मनीषिणः ॥१५॥

हे मधूसूदन ! ये सारे अशकुन, राजा दुर्योधन की सेना में हो रहे हैं, इसको मनस्वी जन दुर्योधन के पराजय का चिन्ह समझते है ॥ १५ ॥

प्रहृष्टं वाहनं कृष्ण पाण्डवानां प्रचक्षते ।
प्रदक्षिणा मृगाश्चैव तत्तेषां जयलक्षणम् ॥१६॥

हे कृष्ण ! पाण्डवों के वाहन बड़े प्रसन्न हैं, ऐसा दूत सुनाते हैं । उनके मृग आदि जीव दक्षिण हाथ की ओर से निकल जाते हैं, जो उनके विजय का चिन्ह है ॥ १६ ॥

अपसव्या मृगाः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य केशव ।
वाचश्चाऽप्यशरीरिण्यस्तत्पराभवलक्षणम् ॥१७॥

हे केशव ! धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन के बायीं ओर से मृग जाते देखे गये हैं और हस्तिनापुर में ऐसी २ आकाश वाणी हो रही हैं, जिनसे दुर्योधन का पराजय सूचित होता है ॥ १७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मयूराः पुण्यशकुना हंससारसचातकाः ।
जीवञ्जीवकसङ्घाश्चाऽप्यनुगच्छन्ति पाण्डवान् ॥१८॥

मयूर, हंस, सारस, चातक, जीव जीवक आदि उत्तम २ पक्षियों के समूह पाण्डवों के पीछे २ चलते हैं ॥ १८ ॥

गृध्राः कङ्का बकाः श्येना यातुधानास्तथा वृकाः ।
मक्षिकाणां च सङ्घाता अनुधावन्ति कौरवान् ॥१९॥

गीध, कौए, बगुले, बाज, राक्षस, भेड़िए और मक्खियों का समूह कौरवों का पीछा करते हैं ॥ १९ ॥

धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु भेरीणां नास्ति निःस्वनः ।
अनाहताः पाण्डवानां नदन्ति पटहाः किल ॥२०॥

दुर्योधन की सेना में भेरी का शब्द सुनाई नहीं देता है, परन्तु पाण्डवों की सेना में दमादम नगाड़े बज रहे हैं ॥ २० ॥

उदपानाश्च नर्दन्ति यथा गोवृषभास्तथा ।
धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु तत्पराभवलक्षणम् ॥२१॥

गौ और बैलों के शब्दों की भांति हस्तिनापुर के कूपों से शब्द निकलते हैं, यही दुर्योधन की सेना के पराजय का चिन्ह हैं।

मांसशोणितवर्षं च वृष्टं देवेन माधव ।
तथा गन्धर्वनगरं भानुमत्समुपस्थितम् ॥२२॥
सप्राकारं सपरिखं सवप्रं चारुतोरणम् ।
कृष्णश्च परिघस्तत्र भानुमावृत्य तिष्ठति ॥२३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे माधव ! देव सब ओर मांस और रक्त की वर्षा कर रहे हैं। आकाश में प्राकार (दीवार) परिखा (खाई) पर कोटे और सुन्दर २ द्वारों से युक्त चमकीला गन्धर्व नगर दिखाई देता है। वहीं पर काला मण्डल सूर्य को घेरे हुए है ॥ २२—२३ ॥

उदयास्तमने सन्ध्ये वेदयन्ती महद्भयम् ।
शिवा च वाशते घोरं तत्पराभवलक्षणम् ॥२४॥

सूर्य के उदय और अस्तमन वेला में महाभय का सूचन करती हुई, गीदड़ी घोर शब्द करती है, जो दुर्योधन के पराभव का चिह्न हैं ॥ २४ ॥

एकपक्षाक्षिचरणाः पक्षिणो मधुसूदन ।
उत्सृजन्ति महद्घोरं तत्पराभवलक्षणम् ॥२५॥

हे मधुसूदन ! एक पक्ष, आँख और चरण वाले पक्षी, महाघोर शब्द करते हैं, जिनसे दुर्योधन की पराजय सूचित होती है।

कृष्णग्रीवाश्च शकुना रक्तपादा भयानकाः ।
सन्ध्यामभिमुखा यान्ति तत्पराभवलक्षणम् ॥२६॥

काली ग्रीवा धारी, रक्त पाद वाले, भयानक पक्षी, सायंकाल होने पर सन्मुख आने लगते हैं—यह भी पराभवका ही लक्षण है।

ब्राह्मणान्प्रथमं द्वेष्टि गुरूंश्च मधुसूदन ।
भृत्यान्भक्तिमतश्चाऽपि तत्पराभवलक्षणम् ॥२७॥

हे मधुसूदन ! कौरव लोग, प्रथम ब्राह्मण और पूज्यों का अनादर कर रहे हैं एवं भक्तिमान् सेवकों का भी अपमान करते हैं, यह भी पराजय का ही लक्षण है ॥ २७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्वा दिग्लोहिताकारा शस्त्रवर्णा च दक्षिणा ।
आमपात्रप्रतीकाशा पश्चिमा मधुसूदन ॥
उत्तरा शङ्खवर्णाभा दिशां वर्णा उदाहृताः॥२८॥
प्रदीप्ताश्च दिशः सर्वा धार्तराष्ट्रस्य माधव ।
महद्भयं वेदयन्ति तस्मिन्नुत्पातदर्शने ॥२९॥

हे मधुसूदन ! पूर्व दिशा का वर्ण रक्त के समान लाल, दक्षिण दिशा का शस्त्र के समान चमकीला, पश्चिम दिशा का वर्ण कच्चे पात्र के तुल्य और उत्तर दिशा का वर्ण शंख के समान श्वेत दिखाई देता है। हे माधव ! इस तरह सारी दिशाओं के वर्ण हो रहे हैं एवं राजा दुर्योधन को सब ओर से सारी दिशाएँ जलती सी दिखाई देती हैं, इस उत्पात होनेसे महाभयकी सूचना मिल रही है।

सहस्रपादं प्रासादं स्वप्नान्ते स्म युधिष्ठिरः ।
अधिरोहन्मया दृष्टः सह भ्रातृभिरच्युत ॥३०॥

हे अच्युत ! मैंने स्वप्न में देखा है, कि सहस्रों खम्भों से बने हुए महल में अपने भाइयों के साथ राजा युधिष्ठिर प्रवेश कर रहे हैं

श्वेतोष्णीषाश्च दृश्यन्ते सर्वे वै शुक्लवाससः ।
आसनानि च शुभ्राणि सर्वेषामुपलक्षये ॥३१॥

मैंने उस समय सबको मस्तक पर श्वेत पगड़ी और श्वेत वस्त्र धारण किये हुए देखा है। उन सबके बड़े २ शुभ्र आसन थे।

तव चापि मया कृष्ण स्वप्नान्ते रुधिराविला ।
अन्त्रेण पृथिवी दृष्टा परिक्षिप्ता जनार्दन ॥३२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे जनार्दन ! कृष्ण ! स्वप्न में भी रक्त से भीगी हुई और आंतों से व्याप्त तुम्हारा देह भी मुझे दिखाई पड़ी है ॥ ३२ ॥

अस्थिसञ्चयमारूढश्चाऽमितौजा युधिष्ठिरः ।
सुवर्णपात्र्यां संहृष्टो भुक्तवान्घृतपायसम् ॥३३॥

अत्यन्त ओजस्वी, राजा युधिष्ठिर, हड्डियों के ढ़ेर पर बैठा हुआ सुवर्ण के पात्र में घृत और खीर का भोजन करता हुआ देखा है ॥ ३३ ॥

युधिष्ठिरो मया कृष्ण ग्रसमानो वसुन्धराम् ।
त्वया दत्तामिमां व्यक्तं भोक्ष्यते स वसुन्धराम् ॥३४॥

हे कृष्ण ! तुमसे प्रदान की हुई सारी पृथिवी का भोग करता हुआ राजा युधिष्ठिर दिखाई दिया । वह ऐसा प्रतीत हुआ, मानो सारी पृथिवी को ग्रस रहा है ॥ ३४ ॥

उच्चं पर्वतमारूढो भीमकर्मा वृकोदरः ।
गदापाणिर्नरव्याघ्रो ग्रसन्निव महीमिमाम् ॥३५॥

भयानक कर्म करने वाला भीमसेन भी एक ऊँचे पर्वत पर बैठा था । उस नरश्रेष्ठ भीम ने हाथ में गदा ले रखी थी, जो सारी पृथिवी को निगलसा रहा था ॥ ३५ ॥

क्षपयिष्यति नः सर्वान्स सुव्यक्तं महारणे ।
विदितं मे हृषीकेश यतो धर्मस्ततो जयः ॥३६॥

हे हृषीकेश ! जब महायुद्ध का प्रारम्भ होगा, तब यह स्पष्ट है, कि हमको विध्वंस कर देगा, क्योंकि मैं यह खूब जानता हूँ, कि जिधर धर्म होता है, उधर ही विजय होती है ॥ ३६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाण्डुरं गजमारूढो गाण्डीवी स धनञ्जयः ।
त्वया सार्धं हृषीकेश श्रिया परमया ज्वलन् ॥३७॥

हे हृषीकेश ! श्वेत गज पर गाण्डीव धनुष धारी अर्जुन, तुम्हारे साथ बैठा था। जिसकी कान्ति बड़ी ही देदीप्यमान होरही थी

यूयं सर्वे वधिष्यध्वं तत्र मे नाऽस्ति संशयः ।
पार्थिवान्समरे कृष्ण दुर्योधनपुरोगमान् ॥३८॥

हे कृष्ण ! तुम, दुर्योधन आदि सब राजाओं को युद्ध में नष्ट करोगे-इस में सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥

नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ।
शुक्लकेयूरकण्ठत्राः शुक्लमाल्याम्बरावृताः ॥३९॥
अधिरूढा नरव्याघ्रा नरवाहनमुत्तमम् ।
त्रय एते मया दृष्टाः पाण्डुरच्छत्रवाससः ॥४०॥
श्वेतोष्णीषाश्च दृश्यन्ते त्रय एते जनार्दन ।

हे जनार्दन ! नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकि, मोतियों के शुभ्रबाहु और कण्ठ के आभूषण तथा शुक्ल माला और वस्त्र धारण किए हुए मुझे दिखाई पड़े हैं। ये नरश्रेष्ठ, पालकियों पर बैठे थे। इन तीनों के मस्तक पर श्वेत वस्त्र से युक्त छत्र तना हुआ देखा था और ये श्वेत पगड़ी पहिने हुए थे।

धार्तराष्ट्रेषु सैन्येषु तान्विजानीहि केशव ॥४१॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
रक्तोष्णीषाश्च दृश्यन्ते सर्वे माधव पार्थिवाः ॥४२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे केशव ! राजा दुर्योधन की सेना में जो वीर थे, उनमें अश्वत्थामा, कृपाचार्य, यदु-वंश-श्रेष्ठ कृतवर्मा आदि सारे राजा लाल पगड़ी बांधे दिखाई दे रहे थे ॥४१-४२॥

उष्ट्रप्रयुक्तमारूढौ भीष्मद्रोणौ महारथौ ।
मया सार्धं महाबाहो धार्तराष्ट्रेण वा विभो ॥४३॥
अगस्त्यशास्तां च दिशं प्रयाताः स्म जनार्दन ।
अचिरेणैव कालेन प्राप्स्यामो यमसादनम् ॥४४॥

हे महाबाहो ! कृष्ण ! राजा दुर्योधन और मेरे साथ भीष्म और द्रोण, ऊँट के रथ पर बैठे हुए मुझे स्वप्न में दिखाई दिए हैं। हे जनार्दन ! उस समय हम अगस्त्य से शासित दक्षिण दिशा को जा रहे से प्रतीत होते थे। इस स्वप्न का तो यही फल है, कि हम शीघ्र यमराज के घर के अतिथि बनेंगे ४३-४४॥

अहं चाऽन्ये च राजानो यच्च तत्क्षत्रमण्डलम् ।
गाण्डीवाग्निं प्रवेक्ष्याम इति मे नाऽस्ति संशयः ॥४५॥

मैं तथा अन्य राजा और यह सारा क्षत्रिय-समूह गाण्डीव धनुष द्वारा प्रज्वलित की हुई अग्नि में प्रवेश करेंगे—इसमें संशय नहीं है ॥४५॥

कृष्ण उवाच—

उपस्थितविनाशेयं नूनमद्य वसुन्धरा ।
यथा हि मे वचः कर्णं नोपैति हृदयं तव ॥४६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण ने कहा—हे कर्ण ! यह निश्चय है, कि इस पृथिवी का अब विनाश बहुत ही समीप आ गया है। यही कारण है, कि मेरे वचन तुम्हारे हृदय को नहीं छूते हैं। ॥४६॥

सर्वेषां तात भूतानां विनाशे प्रत्युपस्थिते ।
अनयोदयसङ्काशो हृदयान्नाऽपसर्पति ॥४७॥

हे तात ! अब सारे प्राणियों का विनाश उपस्थित है, तभी तो नीति के सदृश प्रतीत होने वाली, अनीति तुम्हारे हृदय से नहीं हटती है ॥४७॥

कर्ण उवाच—

अपि त्वां कृष्ण पश्याम जीवन्तोऽस्मान्महारणात् ।
समुत्तीर्णा महाबाहो वीरक्षत्रविनाशनात् ॥४८॥
अथवा सङ्गमः कृष्ण स्वर्गे नो भविता ध्रुवम् ।
तत्रेदानीं समेष्यामः पुनः सार्धं त्वयाऽनघ ॥४९॥

कर्ण ने कहा—हे महाबाहो ! कृष्ण ! अब तो यदि वीर क्षत्रियों के विनाश के घर इस महायुद्ध से हम लोग जीवित बच गए, तो फिर आपके इसी तरह दर्शन करेंगे या हमारा कभी आपसे स्वर्ग में मिलाप होगा, क्योंकि हम वहां पहुँचते हैं और आप भी कभी वहां आवेंगे ही, इस तरह आपसे मिलाप होना सम्भव है ॥४८-४९॥

सञ्जय उवाच—

इत्युक्त्वा माधवं कर्णः परिष्वज्य च पीडितम् ।
विसर्जितः केशवेन रथोपस्थादवातरत् ॥५०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! कर्ण इतना श्रीकृष्ण से कहकर और गाढ़ आलिङ्गन करके रथ से उतर पड़ा। श्रीकृष्ण ने भी कर्ण को लौट जाने की अनुमति प्रदान कर दी ॥५०॥

ततः स्वरथमास्थाय जाम्बूनदविभूषितम् ।
सहाऽस्माभिर्निववृते राधेयो दीनमानसः ॥५१॥

अब सुवर्ण से विभूषित अपने रथ में बैठ कर उदास चित्त हुआ कर्ण हमारे साथ २ वापिस चला आया ॥५१॥

ततः शीघ्रतरं प्रायात्केशवः सहसात्यकिः ।
पुनरुच्चारयन्वाणीं याहि याहीति सारथिम् ॥५२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कर्णोपनिवादे कृष्णकर्ण-संवादे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४३॥

अब सात्यकि के साथ श्रीकृष्ण भी अत्यन्त शीघ्रता से चल पड़े। ये अपने सारथि से बार बार "चल-चल" इस तरह कह रहे थे ॥५२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में श्रीकृष्ण और कर्ण के सम्वाद का एक सौ तेतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ चवालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

असिद्धानुनये कृष्णे कुरुभ्यः पाण्डवान्गते ।
अभिगम्य पृथां क्षत्ता शनैः शोचन्निवाऽब्रवीत् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इस प्रकार कर्म से निष्फल प्रार्थना करके जब श्रीकृष्ण कौरवों के समीप से पाण्डवों की ओर चल दिए, तो कुन्ती के पास विदुर पहुंचे और वे चिन्तापूर्वक धीरे २ कुन्ती से कहने लगे ॥ १ ॥

जानासि मे जीवपुत्रि भावं नित्यमविग्रहे ।
क्रोशतो न च गृह्णीते वचनं मे सुयोधनः ॥२॥

हे पुत्री! तुम मेरे विचार को जानती हो, कि मैं इस युद्ध को होने नहीं देना चाहता हूँ, परन्तु राजा सुयोधन मेरे चिल्लाने को बिल्कुल नहीं सुनता है ॥ २ ॥

उपपन्नो ह्यसौ राजा चेदिपाञ्चालकेकयैः ।
भीमार्जुनाभ्यां कृष्णेन युयुधानयमैरपि ॥३॥
उपप्लव्ये निविष्टोऽपि धर्ममेव युधिष्ठिरः ।
कांक्षते ज्ञातिसौहार्दाद्बलवान्दुर्बलो यथा ॥४॥

राजा युधिष्ठिर भी चेदि, पाञ्चाल, केकय देश के राजा, भीम, अर्जुन, श्रीकृष्ण, युयुधान, नकुल और सहदेव आदि वीरों से युक्त होकर उपप्लव्य नगर बसा कर वहां पड़ा है और अब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी धर्म के अनुसार ही काम कर रहा है। यह अपने बान्धवों के प्रेम से बलवान् होकर दुर्बल के समान आचरण कर रहा है।

राजा तु धृतराष्ट्रोऽयं वयोवृद्धो न शाम्यति।
मत्तः पुत्रमदेनैव विधर्मे पथि वर्तते ॥५॥

राजा धृतराष्ट्र भी बहुत वृद्ध हो चुका, वह भी हृदय से सन्धि नहीं चाहता। यह अपने पुत्र प्रेम में उन्मत्त हो रहा है और विधर्म के मार्ग में प्रवृत्त हो रहा है ॥ ५ ॥

जयद्रथस्य कर्णस्य तथा दुःशासनस्य च।
सौबलस्य च दुर्बुद्ध्या मिथो भेदः प्रपत्स्यते ॥६॥

राजा जयद्रथ, कर्ण, दुःशासन और शकुनि की दुर्बुद्धि के कारण उनमें परस्पर कलह बढ़ता ही जा रहा है ॥ ६ ॥

अधर्मेण हि धर्मिष्ठं कृतं वै कार्यमीदृशम्।
येषां तेषामयं धर्मः सानुबन्धो भविष्यति ॥७॥

इन कौरवों ने धर्मात्मा युधिष्ठिर के साथ अधर्म-पूर्वक बनवास आदि का कार्य कर डाला है। उनका यह अधर्म पूर्ण कर्म सफल होकर रहेगा अर्थात् उनका नाश होगा ॥ ७ ॥

क्रियमाणे बलाद्धर्मे कुरुभिः को न सञ्ज्वरेत्।
असाम्ना केशवे याते समुद्योक्ष्यन्ति पाण्डवाः ॥८॥

इस धर्माभास कर्म के कौरवों द्वारा सम्पादित होने पर कौन नहीं सन्तापित हुआ है। अब सन्धि के कार्य में श्रीकृष्ण के असफल होकर चले जाने पर पाण्डव अवश्य युद्धका उद्योग करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततः कुरूणामनयो भविता वीरनाशनः ।
चिन्तयन्न लभे निद्रामहःसु च निशासु च ॥९॥

यह कौरवों की अनीति उनके वीरों की नाशिनी होगी। मुझे इसी चिन्ता में रात और दिन नींद नहीं आती है ॥ ९ ॥

श्रुत्वा तु कुन्ती तद्वाक्यमर्थकामेन भाषितम् ।
सा निःश्वसन्ती दुःखार्ता मनसा विममर्श ह ॥१०॥

हित की कामना से विदुर द्वारा कहा हुआ वचन सुन कर कुन्ती ने जोर से निःश्वास लिया और बड़ी दुःखी होकर मन से विचार करने लगी ॥ १० ॥

धिगस्त्वर्थं यत्कृतेऽयं महाञ्ज्ञातिवधः कृतः ।
वर्त्स्यते सुहृदां चैव युद्धेऽस्मिन्वै पराभवः ॥११॥

संसार में स्वार्थ की लड़ाई को भी धिक्कार है, जिसमें फँस कर इतना बड़ा जाति का विनाश उपस्थित हो गया है। इस युद्ध में तो सारे सुहृदों का ही पराभव होगा ॥ ११ ॥

पाण्डवाश्चेदिपञ्चाला यादवाश्च समागताः ।
भारतैः सह योत्स्यन्ति किं नु दुःखमतः परम् ॥१२॥

इसमें पाण्डव, चेदि, पाञ्चाल और यादव वीर उपस्थित हुए हैं, उनका भरतवंशोत्पन्न कौरवों से युद्ध ठनेगा। इससे अधिक क्लेश की बात क्या होगी ॥ १२ ॥

पश्ये दोषं ध्रुवं युद्धे तथाऽयुद्धे पराभवम् ।
अधनस्य मृतं श्रेयो नहि ज्ञातिक्षयो जयः ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं युद्ध में इस विनाश रूप दोष को स्पष्ट देखती हूँ और युद्ध नहीं होगा, तो स्पष्ट पराभव है। इस सब पर विचार करने से तो यही प्रतीत होता है, कि निर्धनता के साथ मरना अच्छा है, परन्तु जाति का क्षय होना जय नहीं है ॥ १३ ॥

इति मे चिन्तयन्त्या वै हृदि दुःखं प्रवर्तते।
पितामहः शान्तनव आचार्यश्च युधां पतिः ॥१४॥
कर्णश्च धार्तराष्ट्रार्थं वर्धयन्ति भयं मम।

मैं यही सोचती हूँ और मेरे हृदय में इसका बड़ा ही दुःख रहता है। शान्तनु-पुत्र भीष्म, योद्धाओं में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य और कर्ण ये दुर्योधन के लिये प्रयत्न कर रहे हैं, जिससे मेरा और भी भय बढ़ रहा है। ॥ १४ ॥

नाऽऽचार्यः कामवाञ्शिष्यैर्द्रोणो युद्ध्येत जातुचित् १५
पाण्डवेषु कथं हार्दं कुर्यान्न च पितामहः।
अयं त्वेको पृथादृष्टिर्धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ॥१६॥
मोहानुवर्ती सततं पापो द्वेष्टि च पाण्डवान्।
महत्यनर्थे निर्बन्धी बलवांश्च विशेषतः ॥१७॥
कर्णः सदा पाण्डवानां तन्मे दहति सम्प्रति।
आशंसे त्वद्य कर्णस्य मनोऽहं पाण्डवान्प्रति ॥१८॥

यद्यपि द्रोणाचार्य अपने शिष्य अर्जुनादि से उत्साह के साथ लड़ने में समर्थ नहीं हो सकते हैं और न यही हो सकता है, कि भीष्मपितामह पाण्डवों से प्रेम न करें, परन्तु दुर्मति दुर्योधन के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेम में फँसा हुआ, क्रुद्ध-दृष्टि, यह पापी कर्ण, सदा पाण्डवों से द्वेष करता रहता है। यह पाण्डवों के मारने का आग्रह कर रहा है। यह वास्तव में बलवान् भी बहुत है, यही बात मेरे हृदय को जलाती रहती है। अब तो मुझे कर्ण के मन को पाण्डवों के प्रति झुका देने का प्रयत्न करना चाहिए॥ १८॥

प्रसादयितुमासाद्य दर्शयन्ती यथातथम्।
तोषितो भगवान्यत्र दुर्वासा मे वरं ददौ ॥१९॥

मैं कर्ण के प्रसन्न करने लिए पूर्वकाल की सारी सचाई उसके सामने रख दूँगी, कि मैंने किस तरह भगवान् दुर्वासा ऋषि को सन्तुष्ट किया था और किस तरह उसने मुझे वरदान दिया।१६-१८।

आह्वानं मन्त्रसंयुक्तं वसन्त्याः पितृवेश्मनि।
साऽहमन्तःपुरे राज्ञः कुन्तीभोजपुरस्कृता ॥२०॥
चिन्तयन्ती बहुविधं हृदयेन विदूयता।
बलाबलं च मन्त्राणां ब्राह्मणस्य च वाग्बलम् ॥२१॥
स्त्रीभावाद्बालभावाच्च चिन्तयन्ती पुनः पुनः।
धात्र्या विस्रब्धया गुप्ता सखीजनवृता तदा ॥२२॥
दोषं परिहरन्ती च पितुश्चारित्र्यरक्षिणा।
कथं नु सुकृतं मे स्यान्नाऽपराधवती कथम् ॥२३॥
भवेयमिति सचिन्त्य ब्राह्मणं तं नमस्य च।
कौतूहलात्तु तं लब्ध्वा बालिश्यादाचरं ततः।
कन्या सती देवमर्कमासादयमहं तदा ॥२४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योऽसौ कानीनगर्भो मे पुत्रवत्परिरक्षितः ।
कस्मान्न कुर्याद्वचनं पथ्यं भ्रातृहितं तथा ॥२५॥

मैं जब पिता के घर पर थी, तो मुझे मन्त्रोंसे देवों के आह्वान करने की विधि दुर्वासा ने बताई। जिस समय मैं कुन्ती भोज के रनवास में आदर से निवास कर रही थी—तब मेरे हृदय में उथल पुथल मच रही थी और अनेक विचार हृदय में चक्कर लगा रहे थे। मैं मन्त्रों के बलाबल और ब्राह्मण की वाणी का बल देखना चाहती थी। स्त्री जाति और बालभाव के स्वभाव के अनुसार मैं बार २ सोचती रहती थी। मेरी विश्वासपात्र धाय ने सखीजनों में रख कर मुझे छिपाए रखा। मैं अपने चरित्र को रक्षा से पिता को भी कलंक नहीं आने देना चाहती थी। यह मेरा कर्म कैसे सुकर्म होकर प्रसिद्ध होगा और अपराध युक्त न मानी जाऊँगी। इस प्रकार विचार कर और ब्राह्मण को नमस्कार करके मैंने बचपन और कौतूहल से उस मन्त्र क्रिया को कर ही डाला था। यद्यपि मैं कन्या थी, तो भी सूर्यदेव के आह्वान में संलग्न हो गई। जो मेरा कानीन गर्भ हुआ—उसकी मैंने पुत्र की तरह रक्षा की थी। वह कर्ण इस प्रकार मेरा पुत्र है, फिर मेरे हितकारी वचनों को अपने भाइयों के हित के लिए क्यों नहीं स्वीकार करेगा ॥१६-२५॥

इति कुन्ती विनिश्चित्य कार्यनिश्चयमुत्तमम् ।
कार्यार्थमभिनिश्चित्य ययौ भागीरथीं प्रति ॥२६॥

इस प्रकार कुन्ती मन में अपने कार्य की सिद्धि का विचार करके अपने कार्य की सिद्धि के विचार से गङ्गा के तट पर पहुँची

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मजस्य ततस्तस्य घृणिनः सत्यसङ्गिनः ।
गङ्गातीरे पृथाऽश्रौषीद्वेदाध्ययननिःस्वनम् ॥२७॥
प्राङ्मुखस्योर्ध्वबाहोः सा पर्यतिष्ठत पृष्ठतः ।
जप्यावसानं कार्यार्थं प्रतीक्षन्ती तपस्विनी ॥२८॥
अतिष्ठत्सूर्यतापार्ता कर्णस्योत्तरवाससि ।
कौरव्यपत्नी वार्ष्णेयी पद्ममालेव शुष्यती ॥२९॥

वहाँ गङ्गा के तट पर कुन्ती ने दयालु, शौच-परायण, सत्य प्रतिज्ञ, अपने पुत्र कर्ण की वह ध्वनि सुनी। उसने पूर्व की ओर मुख कर भुजाएं उठा रखी थीं। कुन्ती भी उसकी पीठ के पीछे आ कर खड़ी हो गई। यह तपस्विनी (विचारी) कुन्ती, कर्ण के जप समाप्त हो जाने पर अपने कार्य की भूमिका को आरम्भ करना चाहती थी। यह सूर्य के ताप से जल उठी। इसने कर्ण के दुपट्टे में जैसे तैसे अपने को छुपाया। कुरुवंशोत्पन्न पाण्डु की पत्नी, वृष्णिवंशोत्पन्न कुन्ती, पद्ममाला की तरह मुरझायी जा रही थी ॥२७-२९॥

आपृष्ठतापाज्ज्ञप्त्वा स परिवृत्त्य यतव्रतः ।
दृष्ट्वा कुन्तीमुपातिष्ठदभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥३०॥

व्रतशील कर्ण ने जप समाप्त किया। इसको अपनी पृष्ठ पर सूर्य की धूप का ज्योंही ताप लगा—तो इसने पीछे की ओर देखा। वहां कुन्ती को खड़ी हुई देखकर कर्ण ने हाथ जोड़ कर उसका स्वागत किया ॥३०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथान्यायं महातेजा मानी धर्मभृतां वरः ।
उत्स्मयन्प्रणतः प्राह कुन्तीं वैकर्तनो वृषः ॥३१॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीकर्ण-समागमे चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४४॥

महातेजस्वी, अभिमानी, धर्मात्माओं में श्रेष्ठ, सूर्य-पुत्र कर्ण ने प्रणाम पूर्वक मुस्कुराते हुए कुन्ती से कहा ॥३१॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में कुन्ती और कर्ण के सम्वाद का एक सौ चवालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

एक सौ पैंतालीसवां अध्याय

कर्ण उवाच—

राधेयोऽहमाधिरथिः कर्णस्त्वामभिवादये ।
प्राप्ता किमर्थं भवती ब्रूहि किं करवाणि ते ॥१॥

कर्ण बोले—हे कुन्तीदेवी ! मैं राधा और अधिरथ का पुत्र कर्ण, तुमको प्रणाम करता हूँ । हे महाभागे ! तुम कैसे पधारी । मुझे आप जो आज्ञा करो, मैं उसे ही पूरा करूंगा ॥१॥

कुन्त्युवाच—

कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तत्राऽधिरथः पिता ।
नाऽसि सूतकुले जातः कर्ण तद्विद्धि मे वचः ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुन्ती ने कहा—हे कर्ण ! तुम राधा के पुत्र नहीं हो और न अधिरथ तुम्हारा पिता है। तुम तो मुझ कुन्ती के पुत्र हो। हे कर्ण ! तुम सूत-कुल में उत्पन्न नहीं हुए हो, इसके लिए प्रथम मेरा वचन सुनो ॥२॥

कानीनस्त्वं मया जातः पूर्वजः कुक्षिणा धृतः ।
कुन्तिराजस्य भवने पार्थस्त्वमसि पुत्रक ॥३॥

तुम मेरे कानीन पुत्र हो। पूर्वकाल में तुमको मैंने ही अपनी कोंख में धारण किया था। हे पुत्र ! यह सब राजा कुन्तीभोज के भवन पर हुआ, इससे तुम तो पार्थ हो, राधेय नहीं हो ॥३॥

प्रकाशकर्मा तपनो योऽयं देवो विरोचनः ।
अजीजनत्त्वां मय्येष कर्ण शस्त्रभृतां वरम् ॥४॥

हे कर्ण ! जो यह प्रकाश करने वाला सूर्यदेव है, इसी ने तुम शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ पुत्र को मेरी कुक्षि से उत्पन्न किया है।

कुण्डली बद्धकवचो देवगर्भः श्रिया वृतः ।
जातस्त्वमसि दुर्धर्ष मया पुत्र पितुर्गृहे ॥५॥

हे दुर्धर्ष ! पुत्र ! जब तुम पिता के घर पर मेरे उदर से उत्पन्न हुए—तब कुण्डल और कवच तुम्हारे साथ २ उत्पन्न हुए थे। तुम देवों की सी कान्ति से देदीप्यमान थे ॥५॥

स त्वं भ्रातॄनसम्बुद्ध्य मोहाद्यदुपसेवसे ।
धार्तराष्ट्रान्न तद्युक्तं त्वयि पुत्र विशेषतः ॥६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे पुत्र ! तुम अपने भाई पाण्डवों को जानते नहीं हो—इससे उनसे विरोध का व्यवहार करके धृतराष्ट्र-पुत्रों की सेवा कर रहे हो, जो तुमको नहीं चाहिए ॥६॥

एतद्धर्मफलं पुत्र नराणां धर्मनिश्चये ।
यत्तुष्यन्त्यस्य पितरो माता चाऽप्येकदर्शिनी ॥७॥

हे पुत्र ! धर्म के निश्चय करने की व्यवस्था के समय यही धर्म माना है, कि जिससे पितर और एक मात्र माता का सन्तोष हो सके ॥७॥

अर्जुनेनाऽर्जितां पूर्वं हृतां लोभादसाधुभिः ।
आच्छिद्य धार्तराष्ट्रेभ्यो भुंक्ष्व यौधिष्ठिरीं श्रियम् ॥८॥

जिस पृथिवी को प्रथम अर्जुन ने जीता और लोभ से दुष्ट कौरवों ने जिसको छीन लिया, आज उसी भूमि का धृतराष्ट्र पुत्रों से युधिष्ठिर की राज्यलक्ष्मी को छीन कर तुम उपभोग करो ।

अद्य पश्यन्ति कुरवः कर्णार्जुनसमागमम् ।
सौभ्रात्रेण समालक्ष्य सन्नमन्तामसाधवः ॥९॥

आज कौरव, तुम्हारे (कर्ण) और अर्जुन के मिलाप को देखें । इस उत्तम भ्रातृ-प्रेम को देखकर सारे दुष्ट जन अपना शिर नीचा कर लेंगे ॥९॥

कर्णार्जुनौ वै भवेतां यथा रामजनार्दनौ ।
असाध्यं किं नु लोके स्याद्युवयोः संहितात्मनोः ॥१०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब तो बलराम और कृष्ण की तरह कर्ण और अर्जुन का सहयोग रहना चाहिए। जब तुम दोनों एक हो जाओगे—तो तुमको संसार में कुछ भी असाध्य नहीं रह जावेगा ॥१०॥

कर्ण शोभिष्यसे नूनं पञ्चभिर्भ्रातृभिर्वृतः।
देवैः परिवृतो ब्रह्मा वेद्यामिव महाध्वरे ॥११॥

हे कर्ण ! तुम अपने पांच भाइयों से संयुक्त होकर महा-यज्ञ में वेदी पर देवों के साथ ब्रह्मा की तरह सुशोभित होओगे ॥११॥

उपपन्नो गुणैः सर्वैर्ज्येष्ठः श्रेष्ठेषु बन्धुषु।
सूतपुत्रेति मा शब्दः पार्थस्त्वमसि वीर्यवान् ॥१२॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीकर्ण-समागमे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४५॥

तुम अपने श्रेष्ठ भाइयों में सबसे बड़े और गुणों में श्रेष्ठ हो, अब तुम सूत-पुत्र न कहलाओ। तुम तो वीर्यमान् पृथापुत्र हो।१२।

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में कुन्ती और कर्ण के समागम का एक सौ पैंतालीसवां अध्याय पूरा हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ छियालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततः सूर्यान्निश्चरितां कर्ण शुश्राव भारतीम् ।
दुरत्ययां प्रणयिनीं पितृवद्भास्करेरिताम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत ! कुन्ती के इतना कहने पर सूर्य मण्डल से पिता के प्रेम से परिपूर्ण, कल्याणकारिणी, सूर्य द्वारा उच्चारण की हुई एक अशरीरिणी वाणी सुनाई दी ॥ १ ॥

सत्यमाह पृथा वाक्यं कर्ण मातृवचः कुरु ।
श्रेयस्ते स्यान्नरव्याघ्र सर्वमाचरतस्तथा । २॥

हे कर्ण ! कुन्ती-सत्य वाक्य कह रही है, तुम इसके वचनों को पूरा करो । हे नरव्याघ्र ! यदि तुम इसके वचनों को मान लोगे, तो तुम्हारा बड़ा कल्याण होगा ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तस्य मात्रा च स्वयं पित्रा च भानुना ।
चचाल नैव कर्णस्य मतिः सत्यधृतेस्तदा ॥३॥

वैशम्पायन कहने लगे—हे राजन् ! इस प्रकार अपनी माता, सूर्य पिता द्वारा कहने पर भी सत्य के धारण करने वाले कर्ण की बुद्धि धर्म से विचलित नहीं हुई ॥ ३ ॥

कर्ण उवाच—

न चैतच्छ्रद्दधे वाक्यं क्षत्रिये भाषितं त्वया ।
धर्मद्वारं ममैतत्स्यान्नियोगकरणं तव ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे क्षत्रिय देवी ! जो तुम यह कह रही हो, कि मेरी आज्ञा का पालन करना तुम्हारी धर्म वृद्धि का कारण है, परन्तु मुझे तुम्हारे कथन पर श्रद्धा नहीं होती है ॥ ४ ॥

अकरोन्मयि यत्पापं भवती सुमहात्ययम् ।
अपकीर्णोऽस्मि यन्मातस्तद्यशःकीर्तिनाशनम् ॥५॥

हे मातः ! तुमने मेरे साथ बड़ा ही अमङ्गलकारी पापाचरण किया है, जो उत्पन्न होते ही मेरा परित्याग कर दिया। इस कार्य से ही मेरे सारे यश और कीर्ति का नाश हो गया है ॥ ५ ॥

अहं चेत्क्षत्रियो जातो न प्राप्तः क्षत्रसत्क्रियाम् ।
त्वत्कृते किं नु पापीयः शत्रुः कुर्यान्ममाऽहितम् ॥६॥

यद्यपि मैं क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुआ, तो भी मुझे क्षत्रिय जाति की सी क्रिया प्राप्त नहीं हुई। मेरा तुमसे अधिक शत्रु कौन होगा, जो ऐसा पापाचरण करके मेरा इस प्रकार अहित कर डाले ॥ ६ ॥

क्रियाकाले त्वनुक्रोशमकृत्वा त्वमिमं मम ।
हीनसंस्कारसमयमद्य मां समचूचुदः ॥७॥

क्षत्रिय जाति के अनुकूल संस्कार होने के समय तो तुमने दया नहीं की और आज तुम क्षत्रियोचित संस्कारों से हीन मुझे अपने स्वार्थ के लिए प्रेरित कर रही हो ॥ ७ ॥

न वै मम हितं पूर्वं मातृवच्चेष्टितं त्वया ।
सा मां सम्बोधयस्यद्य केवलात्महितैषिणी ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्वकाल में तो तुमने माता के समान मेरा हित सम्पादित नहीं किया, परन्तु आज तुम मुझसे कहने आई हो। यह तो केवल अपने स्वार्थ की सिद्धि का ही प्रयत्न है ॥ ८ ॥

कृष्णेन सहितात्को वै न व्यथेत धनञ्जयात् ।
कोऽद्य भीतं न मां विद्यात्पार्थानां समितिं गतम् ॥९॥

आज कृष्ण के साथ में युद्ध को सन्नद्ध हुए अर्जुन से कौन भयभीत नहीं होगा। यदि मैं तुम्हारे कथन को मान लूं, तो पाण्डवों के साथ युद्ध का सामना आने पर मैं भयभीत हो गया-ऐसा कौन नहीं समझेगा ॥ ९ ॥

अभ्राता विदितः पूर्वं युद्धकाले प्रकाशितः ।
पाण्डवान्यदि गच्छामि किं मां क्षत्रं वदिष्यति ॥१०॥

पहिले से तो यह सब को कुछ भी ज्ञात नहीं है, कि मैं और पाण्डव भाई हैं। यदि यह बात युद्ध-कालमें प्रकाशित की गई और मैं पाण्डवों से मिल गया, तो यह सारा क्षत्रिय-समाज मुझे क्या कहेगा ॥ १० ॥

सर्वकामैः संविभक्तः पूजितश्च यथासुखम् ।
अहं वै धार्तराष्ट्राणां कुर्यां तदफलं कथम् ॥११॥

धृतराष्ट्र के पुत्र राजा दुर्योधन आदि ने जो मेरी सारी कामना पूर्ण कर रखी है और बड़े आदर के साथ मेरा गौरव सम्पादित किया है, फिर अबमें उनकी आशा को कैसे असफल करसकता हूँ।

उपनह्य परैर्वैरं ये मां नित्यमुपासते ।
नमस्कुर्वन्ति च सदा वसवो वासवं यथा ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मम प्राणेन ये शत्रूञ्शक्ताः प्रतिसमासितुम् ।
मन्यन्ते ते कथं तेषामहं छिन्द्यां मनोरथम् ॥१३॥

जो अपने विरोधियों से वैर खड़ा करके नित्य मेरी उपासना करते हैं तथा इन्द्र को वसुओं के समान मुझे नमस्कार करते रहते हैं। जो मेरे बल पर ही शत्रुओं से मुठभेड़ लेने की तय्यारी में तत्पर हैं, उन मित्रों के मनोरथों को अब मैं कैसे भङ्ग कर सकता हूँ ॥१२-१३॥

मया प्लवेन संग्रामं तितीर्षति दुरत्ययम् ।
अपारे पारकामा ये त्यजेयं तानहं कथम् ॥१४॥

ये लोग तो इस दुस्तर संग्राम रूपी समुद्र को मुझे नौका बना कर ही तिर जाना चाहते हैं। यह युद्ध समुद्र बड़ा अपार है और कौरव इसको पार करने के इच्छुक है। मैं इस दशा में इनको कैसे छोड़ सकता हूँ ॥१४॥

अयं हि कालः सम्प्राप्तो धार्तराष्ट्रोपजीविनाम् ।
निर्वेष्टव्यं मया तत्र प्राणानपरिरक्षता ॥१५॥

जो धृतराष्ट्र-पुत्रों से अपनी जीविका चलाते हैं, उनके लिए उस से उऋण होने का यही एक समय आया है। अब मुझे तो प्राणों का मोह न करके इस आग में घुस पड़ना चाहिए ॥ १५ ॥

कृतार्थाः सुभृता ये हि कृत्यकाले ह्युपस्थिते ।
अनवेक्ष्य कृतं पापा विकुर्वन्त्यनवस्थिताः ॥१६॥

राजकिल्बिषिणां तेषां भर्तृपिण्डापहारिणाम् ।
नैवाऽयं न परो लोको विद्यते पापकर्मणाम् ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो सेवक, पूर्वकाल से अपने कार्यों का सम्पादन करते आए हैं और स्वामी का कार्य आकर उपस्थित हुआ, तो उस कार्य की अपेक्षा (परवाह) न करके जो चंचल विरुद्ध हो जाते हैं, वे पापी हैं। अपने स्वामी के अन्न जल के अपहरण करने वाले उन राजाओं के अपराधियों का न तो इसी लोक में यश होता है और न परलोक में ही उन्हें शान्ति मिलती है ॥ १६-१७ ॥

धृतराष्ट्रस्य पुत्राणामर्थे योत्स्यामि ते सुतैः ।
बलं च शक्तिं चाऽऽस्थाय न वै त्वय्यनृतं वदे ॥१८॥

अब तो मैं धृतराष्ट्र—पुत्रों के हित के लिए तुम्हारे पुत्रों से अवश्य युद्ध करूंगा। इसके लिए मैं सारा बल और शक्ति लगा कर यत्न करूंगा। मैं तुमसे मिथ्या नहीं कह रहा हूँ ॥ १८ ॥

आनृशंस्यमथो वृत्तं रक्षन्सत्पुरुषोचितम् ।
अतोऽर्थकरमप्येतन्न करोम्यद्य ते वचः ॥१९॥

मुझे सत्पुरुष के योग्य दया, धर्म और सदाचार की रक्षा करनी पड़ेगी। यही कारण है, कि मेरे स्वार्थ के सिद्धि करने वाले इन तुम्हारे वचनों का मैं आदर नहीं कर सकता हूँ ॥ १९ ॥

न च तेऽयं समारम्भो मयि मोघो भविष्यति ।
वध्यान्विषह्यान्संग्रामे न हनिष्यामि ते सुतान् ॥२०॥
युधिष्ठिरं च भीमं च यमौ चैवाऽर्जुनादृते ।
अर्जुनेन समं युद्धमपि यौधिष्ठिरे बले ॥२१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्जुनं हि निहत्याऽऽजौ सम्प्राप्तं स्यात्फलं मया।
यशसा चापि युज्येयं निहतः सव्यसाचिना ॥२२॥

तुमने जो यह सारा उद्योग किया है, मैं इसको भी निष्फल कर के तुम्हारा अनादर नहीं करना चाहता। मैं तुम से प्रतिज्ञा करता हूँ, कि जिनको मैं युद्ध में मार सकता हूँ और जिनसे लड़ा जा सकता है, मैं उन तुम्हारे चार पुत्र राजा युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव को नहीं मारूंगा। इस प्रतिज्ञा में अर्जुन सम्मिलित नहीं है। राजा युधिष्ठिर की सेना में मेरा युद्ध तो केवल अर्जुन से ही रहेगा। यदि मैंने अर्जुन को युद्ध में मार लिया—तो मेरा सारा प्रयोजन सिद्ध हो जावेगा। यदि सव्यसाची अर्जुन ने मुझे मार लिया-तो मैं यश से सँयुक्त हो जाऊँगा॥ २०-२२॥

न ते जातु न शिष्यन्ति पुत्राः पञ्च यशस्विनि।
निरर्जुनाः सकर्णा वा सार्जुना वा हते मयि ॥२३॥

हे यशस्विनी! तेरे पांच पुत्र तो कभी नहीं मारे जावेंगे। या तो युधिष्ठिर आदि चार पुत्रों में अर्जुन के मारे जाने पर कर्ण मिलकर पांच पुत्र हो जावेंगे या मुझ कर्ण के मारे जाने पर अर्जुन सहित चारों पाण्डव मिलकर तेरे पांच पुत्र रहेंगे॥ २३॥

इति कर्णवचः श्रुत्वा कुन्ती दुःखात्प्रवेपती।
उवाच पुत्रमाश्लिष्य कर्णं धैर्यादकम्पनम् ॥२४॥
एवं वै भाव्यमेतेन क्षयं यास्यन्ति कौरवाः।
यथा त्वं भाषसे कर्ण दैवं तु बलवत्तरम् ॥२५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार कर्ण के वचन सुन कर कुन्ती दुःख से कांपने लगी। वह धैर्य के कारण कभी नहीं कांपने वाले अपने पुत्र कर्ण का आलिङ्गन करके बोली। हे कर्ण! क्या किया जावे, अब तो यही होनहार दिखाई देती है, कि इस युद्ध में कौरवों का नाश हो कर रहेगा, तुम जो कह रहे हो, कि दैव बलवान् है, यह बिल्कुल ठीक है ॥ २४—२५ ॥

त्वया चतुर्णां भ्रातॄणामभयं शत्रुकर्शन ।
दत्तं तत्प्रतिजानीहि सङ्गरप्रतिमोचनम् ॥२६॥

हे शत्रुकर्शन! कर्ण! अब तुमने अपने चारों भाइयों को अभय दे दिया है तथा उन चारों भाइयों के युद्ध में छोड़ने की प्रतिज्ञा कर ली है। ॥ २६ ॥

अनामयं स्वस्ति चेति पृथाऽथो कर्णमब्रवीत् ।
तां कर्णोऽथ तथेत्युक्त्वा ततस्तौ जग्मतुःपृथक् ।२७।

इति श्रीमहाभारते० भगवद्यानपर्वणि कुन्तीकर्णसमागमे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४६॥

अब कुन्ती ने कर्ण को स्वास्थ्य और कल्याण युक्त रहने का आशीर्वाद दिया। कर्ण ने भी उस आशीर्वाद को बड़े आदर के साथ ग्रहण किया। फिर वे दोनों भिन्न भिन्न अपने अपने अभीष्ट स्थान को चले गए ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में कुन्ती और कर्ण के सम्वाद का एक सौ छियालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ सैंतालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

आगम्य हास्तिनपुरादुपप्लव्यमरिन्दमः ।
पाण्डवानां यथावृत्तं केशवः सर्वमुक्तवान् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! अरिमर्दन श्रीकृष्ण, हस्तिनापुर से उपप्लव्य नगर में पहुंचे और वहां उन्होंने पाण्डवों को संक्षेप में कौरवों का सारा वृतान्त सुनाया ॥ १ ॥

सम्भाष्य सुचिरं कालं मन्त्रयित्वा पुनः पुनः ।
स्वमेव भवनं शौरिर्विश्रामार्थं जगाम ह ॥२॥

शूरसेन—वंश-श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण, उन पाण्डवों से बहुत देर तक वार्तालाप और बार बार मन्त्रणा करके विश्राम के लिए अपने भवन में चले गए ॥ २ ॥

विसृज्य सर्वान्नृपतीन्विराटप्रमुखांस्तदा ।
पाण्डवा भ्रातरः पञ्च भानावस्तं गते सति ॥३॥
सन्ध्यामुपास्य ध्यायन्तस्तमेव गतमानसाः ।
आनाय्य कृष्णं दाशार्हं पुनर्मन्त्रममन्त्रयन् ॥४॥

पांचों भाई पाण्डव भी विराट आदि सारे राजाओं को विदा करके सूर्य के अस्त होने पर सन्ध्या करने लगे, परन्तु इनके मन में वही घटना चक्कर लगा रही थी। उन्होंने फिर दशार्ह-देश-श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण को बुलवाया और उनसे मन्त्रणा करना आरम्भ किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युधिष्ठिर उवाच—

त्वया नागपुरं गत्वा सभायां धृतराष्ट्रजः ।
किमुक्तः पुण्डरीकाक्ष तन्नः शंसितुमर्हसि ॥५॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे पुण्डरीकाक्ष ! श्रीकृष्ण ! तुमने हस्तिनापुर में जाकर सभा में राजा धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधनादि से किस प्रकार वार्तालाप की, हमको यह सारा वृतान्त क्रमबद्ध सुनाओ ।

वासुदेव उवाच—

मया नागपुरं गत्वा सभायां धृतराष्ट्रजः ।
तथ्यं पथ्यं हितं चोक्तो न च गृह्णाति दुर्मतिः ॥६॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन् ! मैंने हस्तिनापुर में जाकर सभा में धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन से सत्य, हितकारी वचन कहे, परन्तु उस दुर्मति ने एक भी नहीं माना ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

तस्मिन्नुत्पथमापन्ने कुरुवृद्धः पितामहः ।
किमुक्तवान्हृषीकेश दुर्योधनममर्षणम् ॥७॥

युधिष्ठिर बोले—हे हृषीकेश ! जब दुर्योधन ने अनुचित मार्ग का ग्रहण किया, तो कुरुवृद्ध भीष्म पितामह ने असहिष्णु, दुर्योधन से क्या कहा ॥ ७ ॥

आचार्यो वा महाभाग भारद्वाजः किमब्रवीत् ।
पिता वा धृतराष्ट्रस्तं गान्धारी वा किमब्रवीत् ॥८॥

हे महाभाग ! भरद्वाज पुत्र, आचार्य द्रोण, पिता राजा धृतराष्ट्र और माता गान्धारी ने क्या कहा, तुम सारी बातें सुनाओ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पिता यवीयानस्माकं क्षत्ता धर्मविदां वरः ।
पुत्रशोकाभिसन्तप्तः किमाह धृतराष्ट्रजम् ॥९॥

हमारा छोटा पिता (चाचा) जो सारे धर्मों का ज्ञाता बुद्धिमान् विदुर है और हमारी चिन्ता में बड़े ही क्लेशित रहते हैं, उन्होंने दुर्योधन से क्या कहा ॥ ९ ॥

किं च सर्वे नृपतयः सभायां ये समासते ।
उक्तवन्तो यथातत्त्वं तद् ब्रूहि त्वं जनार्दन ॥१०॥

हे जनार्दन ! उस सभा में भी अनेक राजा बैठे थे, उन्होंने क्या २ कहा-यह भी सारा समाचार तुम हमको सुनाओ ॥ १० ॥

उक्तवान्हि भवान्सर्वं वचनं कुरुमुख्ययोः ।
धार्तराष्ट्रस्य तेषां हि वचनं कुरुसंसदि ॥११॥

कामलोभाभिभूतस्य मन्दस्य प्राज्ञमानिनः ।
अप्रियं हृदये मह्यं तन्न तिष्ठति केशव ॥१२॥
तेषां वाक्यानि गोविन्द श्रोतुमिच्छाम्यहं विभो ।
यथा च नाऽभिपद्येत कालस्तात तथा कुरु ॥
भवान्हि नो गतिः कृष्ण भवान्नाथो भवान्गुरुः ॥१३॥

हे केशव ! आपने जो कुरुओंमें श्रेष्ठ वीर द्रोण तथा भीष्म से कहा और उन्होंने काम और लोभसे आक्रान्त चित्त वाले मूर्ख एवं अपने को बुद्धिमान् समझने वाले राजा दुर्योधन से जो अप्रिय लगने वाले वचन कहे-उनका मुझे ध्यान नहीं रहा। हे गोविन्द ! विभो ! मैं उन वाक्यों को सुनना चाहता हूँ। हे तात ! अब इसमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिलम्ब न हो-उसी तरह तुम हमें उन वचनों को सुनाओ। हे कृष्ण ! आप ही हमारे आश्रय, स्वामी और पूज्य हैं ॥११-१३॥

वासुदेव उवाच—

शृणु राजन्यथा वाक्यमुक्तो राजा सुयोधनः ।
मध्ये कुरूणां राजेन्द्र सभायां तन्निबोध मे ॥१४॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन् ! मैंने कौरवों की सभा के मध्य में राजा सुयोधन से जो वाक्य कहे, तुम उनको सुनो और उनके तत्व को अच्छी तरह जान लो ॥ १४ ॥

मया विश्राविते वाक्ये जहास धृतराष्ट्रजः ।
अथ भीष्मः सुसंक्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥१५॥

जब मैंने अपना वक्तव्य समाप्त किया, तो उसको सुनकर धृतराष्ट्र सुत दुर्योधन हँस पड़ा। यह देखकर भीष्म बड़ा क्रुद्ध हुआ और यह वचन बोला ॥ १५ ॥

दुर्योधन निबोधेदं कुलार्थे यद्ब्रवीमि ते ।
तच्छ्रुत्वा राजशार्दूल स्वकुलस्य हितं कुरु ॥१६॥

हे राज-शार्दूल, दुर्योधन ! तुम मेरे वचन को सुनो-मैं तुमसे कुल के हित के लिए ये वचन कहता हूँ। इन वचनों को सुनकर अपने परिवार का हित सम्पादित करो ॥ १६ ॥

मम तात पिता राजञ्शान्तनुर्लोकविश्रुतः ।
तस्याऽहमेक एवाऽसं पुत्रः पुत्रवतां वरः ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे तात ! राजन् ! सुयोधन ! लोक में प्रसिद्ध मेरा पिता राजा शान्तनु था। उनके मैं एक ही पुत्र था। मुझ से ही वे अपने को पुत्रवानों में उत्तम समझते थे ॥ १७ ॥

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना द्वितीयः स्यात्कथं सुतः ।
एकपुत्रमपुत्रं वै प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१८॥

मेरे पिता राजा शान्तनु को विचार आया, कि मेरे दूसरा पुत्र किस प्रकार से उत्पन्न होवे। विद्वान् एक पुत्र का होना न होना बराबर सा ही मानते हैं ॥ १२ ॥

न चोच्छेदं कुलं यायाद्विस्तीर्येच्च कथं यशः ।
तस्याऽहमीप्सितं बुध्वा कालीं मातरमावहम् ॥१९॥
प्रतिज्ञां दुष्करां कृत्वा पितुरर्थे कुलस्य च ।
अराजा चोर्ध्वरेताश्च यथा सुविदितं तव ॥
प्रतीतो निवसाम्येष प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥२०॥

मैंने उसकी अभिलाषा को समझ लिया और अपनी माता सत्यवती का उनसे विवाह करवाया। उस समय मैंने अपने पिता की भक्ति और कुल की रक्षा के लिए दुष्कर प्रतिज्ञा की थी, कि न तो मैं राजा ही होऊंगा और न विवाह ही करूँगा। सदा उर्ध्व-रेता ब्रह्मचारी रहूँगा। यह सब तुम लोगों को विदित है। मैं उस प्रतिज्ञा का निर्वाह करता हुआ बड़े विश्वाससे जीवन बिता रहा हूँ।

तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रीमान्कुरुकुलोद्वहः ।
विचित्रवीर्यो धर्मात्मा कनीयान्मम पार्थिव ॥२१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन् ! उस सत्यवती नाम्नी कन्या में कुरु-कुल-श्रेष्ठ, महाबाहु, धर्मात्मा, श्रीमान् विचित्रवीर्य, उत्पन्न हुआ, जो मेरा छोटा भाई था ॥ २१ ॥

स्वर्यातेऽहं पितरि तं स्वराज्ये सन्यवेशयम् ।
विचित्रवीर्यं राजानं भृत्यो भूत्वा ह्यधश्वरः ॥२२॥

जब हमारे पिता राजा शान्तनु का स्वर्गवास हो गया, तो मैंने अपने राज्य पर विचित्रवीर्य को राजा बनाया और मैं उसका साधारण सा सेवक बन गया ॥ २२ ॥

तस्याऽहं सदृशान्दारान्राजेन्द्र समुपाहरम् ।
जित्वा पार्थिवसङ्घातमपि ते बहुशः श्रुतम् ॥२३॥

हे राजेन्द्र ! मैंने अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य के लिए राजाओं के समूह को जीत कर उसके सदृश भार्याएँ छीन कर लादीं-यह तुमने भी कई बार सुना होगा ॥ २३ ॥

ततो रामेण समरे द्वन्द्वयुद्धमुपागमम् ।
स हि रामभयादेभिर्नागरैर्विप्रवासितः ॥२४॥

इसके अनन्तर मेरा परशुराम से द्वन्द्व युद्ध हुआ । परशुराम के भय से प्रजा, राजा विचित्रवीर्य को लेकर भाग गई ॥ २४ ॥

दारेष्वप्यतिसक्तश्च यक्ष्माणं समपद्यत ।
यदा त्वराजके राष्ट्रे न ववर्ष सुरेश्वरः ॥
तदाऽभ्यधावन्मामेव प्रजाः क्षुद्भयपीडिताः ॥२५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह अपनी स्त्रियों में इतना आसक्त हुआ, कि उसके राजयक्ष्मा रोग हो गया। जब अराजक राष्ट्र में इन्द्र ने वर्षा नहीं की, तो क्षुधा के भय से पीड़ित प्रजा, फिर मेरे पास भाग कर आई।

प्रजा ऊचुः—

उपक्षीणाः प्रजाः सर्वा राजा भव भवाय नः।
ईतीः प्रणुद भद्रं ते शान्तनोः कुलवर्धन ॥२६॥

प्रजा ने कहा—हे महाभाग ! सारी प्रजा नष्ट सी हो चुकी है, अब आप हमारे राजा बनो। हे शान्तनु के कुल के बढ़ाने वाले, भीष्म ! आपका कल्याण हो। आप हमारे इस वर्षा के अमङ्गल को नष्ट कीजिए॥ २६॥

पीड्यन्ते ते प्रजाः सर्वा व्याधिभिर्भृशदारुणैः।
अल्पावशिष्टा गाङ्गेय ताः परित्रातुमर्हसि ॥२७॥

हे गाङ्गेय ! तुम्हारी यह सारी प्रजा अत्यन्त दारुण व्याधि से पीड़ित है और बहुतही थोड़ी शेष रह गई है, तुम उसकी रक्षा करो।

व्याधीन्प्रणुद वीर त्वं प्रजा धर्मेण पालय।
त्वयि जीवति मा राष्ट्रं विनाशमुपगच्छतु ॥२८॥

हे वीर ! तुम व्याधि का नाश और प्रजा की धर्म से रक्षा करो। जब आप जीवित हैं, तो आपके जीवित रहते २ राष्ट्र का विनाश नहीं होना चाहिए॥ २८॥

भीष्म उवाच—

प्रजानां क्रोशतीनां वै नैवाऽक्षुभ्यत मे मनः।
प्रतिज्ञां रक्षमाणस्य सद्वृत्तं स्मरतस्तथा ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततः पौरा महाराज माता काली च मे शुभा ॥२९॥
भृत्याः पुरोहिताचार्या ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः ।
मामूचुर्भृशसन्तप्ता भव राजेति सन्ततम् ॥३०॥

भीष्म बोले—हे राजन्! इस प्रकार प्रजा के चिल्लाने पर भी मेरा मन क्षुभित नहीं हुआ, क्योंकि मैं तो अपनी प्रतिज्ञा के पालन में तत्पर था और अपने सदाचरण की रक्षा करना चाहता था। हे महाराज! इसके अनन्तर पुरवासी और मेरी माता सत्यवती, सेवक, पुरोहित, आचार्य, विद्वान् ब्राह्मण, अत्यन्त व्याकुल होकर बार २ कहने लगे, कि आपको राजा बनना पड़ेगा।

प्रीतपरिचितं राष्ट्रं त्वां प्राप्य विनशिष्यति ।
स त्वमस्मद्धितार्थं वै राजा भव महामते ॥३१॥

हे महामते! तुम्हारे पितामह राजा प्रतीप से पालित यह तुम्हारा राष्ट्र तुम्हारे रहते २ नष्ट हो रहा है। अब तुम हमारे हित के लिए राजा बनो॥ ३१॥

इत्युक्तः प्राञ्जलिर्भूत्वा दुःखितो भृशमातुरः ।
तेभ्यो न्यवेदयं तत्र प्रतिज्ञां पितृगौरवात् ॥३२॥

जब उन्होंने इतना कहा, तो मैंने उनको हाथ जोड़े, क्योंकि मैं इस घटना से बड़ा ही क्लेशित हुआ। मैंने उनको वह प्रतिज्ञा सुनाई, जो पिता की भक्ति के वश में होकर की थी॥ ३२॥

ऊर्ध्वरेता ह्यराजा च कुलस्याऽर्थे पुनः पुनः ।
विशेषतस्त्वदर्थं च धुरि मा मां नियोजय ॥३३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे माता ! आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत से रहूँगा और राज्यसिंहासन पर नहीं बैठूंगा, यह प्रतिज्ञा कुल की रक्षा के लिए मैंने तेरे प्रयोजन के लिए बार २ की थी। अब तू मुझे इस कार्य में अग्रसर न कर ॥ ३३ ॥

ततोऽहं प्राञ्जलिर्भूत्वा मातरं सम्प्रसादयम् ।
नाऽम्ब शान्तनुना जातः कौरवं वंशमुद्वहन् ॥३४॥
प्रतिज्ञां वितथां कुर्यामिति राजन्पुनः पुनः ।
विशेषतस्त्वदर्थं च प्रतिज्ञां कृतवानहम् ॥३५॥

इस प्रकार हाथ जोड़कर मैंने माता को प्रसन्न किया और कहा हे माता ! कौरववंश की धुर को धारण करने वाला, शान्तनु का पुत्र होकर मैं कैसे अपनी प्रतिज्ञा को मिथ्या कर सकता हूँ । हे राजन् ! इस प्रकार मैंने बार २ कहा । हे माता ! मैंने यह सारी प्रतिज्ञा तेरे सुख के लिए ही की है ॥ ३४—३५ ॥

अहं प्रेष्यश्च दासश्च तवाऽद्य सुतवत्सले ।
एवं तामनुनीयाऽहं मातरं जनमेव च ॥३६॥
अयाचं भ्रातृदारेषु तदा व्यासं महामुनिम् ।
सह मात्रा महाराज प्रसाद्य तमृषिं तदा ॥३७॥
अपत्यार्थं महाराज प्रसादं कृतवांश्च सः ।
त्रीन्स पुत्रानजनयत्तदा भरतसत्तम ॥३८॥
अन्धः करणहीनत्वान्न वै राजा पिता तव ।
राजा तु पाण्डुरभवन्महात्मा लोकविश्रुतः ॥३९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे पुत्रवत्सले ! मैं तो तुम्हारा आज्ञाकारी सेवक हूँ । मुझे अन्य कोई आज्ञा करो-इस प्रकार अपनी माता और प्रजा की प्रार्थना करके फिर मैंने अपने भ्राताकी भार्याओंमें पुत्र उत्पन्न करने के लिए उनसे याचना की । हे महाराज ! माता सत्यवती और मैंने जैसे तैसे व्यास मुनि को सन्तान उत्पन्न करने के लिए सन्तुष्ट किया । उस ऋषि ने यह कृपा करना स्वीकार कर लिया । हे भरतसत्तम ! उसने तब तीन पुत्र उत्पन्न किए । तेरा पिता धृतराष्ट्र अन्धा उत्पन्न हुआ था । ये आँखों से हीन होने के कारण राजा नहीं हो सके, किन्तु संसार प्रसिद्ध महात्मा पाण्डु राजा बना ॥ ३६-३९ ॥

स राजा तस्य ते पुत्राः पितुर्दायाद्यहारिणः ।
मा तात कलहं कार्षी राज्यस्याऽर्धं प्रदीयताम् ॥४०॥

उसी पाण्डु के ये पुत्र हैं, जो पिता के भाग के अधिकारी हैं । हे तात ! तुम कलह न करो और राज्य का आधा भाग उन्हें प्रदान कर दो ॥ ४० ॥

मयि जीवति राज्यं कः सम्प्राशासेत्पुमानिह ।
माऽवमंस्था वचो मह्यं शममिच्छामि वः सदा ॥४१॥

मेरे जीवित रहने पर कौन पुरुष है, जो इस राज्य पर दृष्टि डाल सकता है । तुम मेरा अपमान न करो । मैं तो सदा तुम लोगों का कल्याण चाहता हूँ ॥ ४१ ॥

न विशेषोऽस्ति मे पुत्र त्वयि तेषु च पार्थिव ।
मतमेतत्पितुस्तुभ्यं गान्धार्या विदुरस्य च ॥४२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन् ! मैं, तुम और पाण्डवों में भेद नहीं मानता हूँ। तेरे विषय में मेरा, तेरा पिता धृतराष्ट्र, गान्धारी और विदुर का एक ही मत है ॥ ४२ ॥

श्रोतव्यं खलु वृद्धानां नाऽभिशङ्कीर्वचो मम ।
नाशयिष्यसि मा सर्वमात्मानं पृथिवीं तथा ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भगवद्वाक्ये सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४७॥

तुमको हम वृद्धों के वचन सुनने चाहिए, हमारे वचनों में अश्रद्धा रखना तुमको उचित नहीं है। तुम सारी प्रजा और अपने आप एवं सारी पृथिवी का नाश न करो ॥४३॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में भगवान् कृष्ण के वाक्य का एक सौ सैंतालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

एक सौ अड़तालीसवां अध्याय

वासुदेव उवाच—

भीष्मेणोक्ते ततो द्रोणो दुर्योधनमभाषत ।
मध्ये नृपाणां भद्रं ते वचनं वचनक्षमः ॥१॥

श्रीकृष्ण कहने लगे—हे राजन् ! जब इस प्रकार भीष्म कह चुके, तो राजाओं के मध्य में वचन बोलने में कुशल, द्रोणाचार्य राजा दुर्योधन से बोले ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतीपः शान्तनुस्तात कुलस्याऽर्थे यथा स्थितः ।
यथा देवव्रतो भीष्मः कुलस्याऽर्थे स्थितोऽभवत् ॥२॥
तथा पाण्डुर्नरपतिः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।
राजा कुरूणां धर्मात्मा सुव्रतः सुसमाहितः ॥३॥

हे तात ! राजा प्रतीप के पुत्र शान्तनु ने इस कुल की प्रतिष्ठा का पालन किया। इसी कुल की प्रतिष्ठा के लिए देवव्रत भीष्म ने भीषण प्रतिज्ञा की। इन्हीं के सदृश, जितेन्द्रिय, सत्य प्रतिज्ञ, कौरवों का राजा पाण्डु हुआ, जो व्रतशील, धर्मात्मा और नीति निपुण था ॥ २-३ ॥

ज्येष्ठाय राज्यमददद् धृतराष्ट्राय धीमते ।
यवीयसे तथा क्षत्रे कुरूणां वंशवर्धनः ॥४॥

कुरु वंश की कीर्ति के बढ़ाने वाले इस राजा पाण्डु ने भी अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र और छोटे भाई विदुर को सारा राज्य सौंप दिया ॥ ४ ॥

ततः सिंहासने राजन्स्थापयित्वैनमच्युतम् ।
वनं जगाम कौरव्यो भार्याभ्यां सहितो नृपः ॥५॥

हे राजन् ! कुरु-वंश-श्रेष्ठ, राजा पाण्डु, अपने राज्यसिंहासन पर बलशाली राजा धृतराष्ट्र को बैठाकर आप अपनी दोनों भार्या कुन्ती और माद्री के साथ वन में चला गया ॥ ५ ॥

नीचैः स्थित्वा तु विदुर उपास्ते स्म विनीतवत् ।
प्रेष्यवत्पुरुषव्याघ्रो वालव्यजनमुत्क्षिपन् ॥६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरुष व्याघ्र, बुद्धिमान् विदुर भी, बड़े विनीत भाव से नीचे खड़े होकर राजा धृतराष्ट्र की उपासना (सेवा) करते रहते हैं और कभी २ चमर या छोटा पंखा राजा पर ढुला देते हैं ॥ ६ ॥

ततः सर्वाः प्रजास्तात धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ।
अन्वपद्यन्त विधिवद्यथा पाण्डुं जनाधिपम् ॥७॥

हे तात ! अब सारी प्रजा भी जिस तरह राजा पाण्डु के अनुकूल थी, उसी तरह राजा धृतराष्ट्र के अनुकूल हो गई ॥ ७ ॥

विसृज्य धृतराष्ट्राय राज्यं स विदुराय च ।
चचार पृथिवीं पाण्डुः सर्वां परपुरञ्जयः ॥८॥

शत्रु विजयी राजा पाण्डुने राजा धृतराष्ट्र और विदुर को राज्य समर्पण करके सब से प्रथम सारी पृथिवी का भ्रमण किया ॥ ८॥

कोशसंवनने दाने भृत्यानां चाऽन्ववेक्षणे ।
भरणे चैव सर्वस्य विदुरः सत्यसङ्गरः ॥९॥

सत्य धर्म परायण महात्मा विदुर, कोश के संग्रह, दान, सेवकों की पड़ताल एवं सबके भरण पोषण के कार्य पर नियुक्त हुए ॥९॥

सन्धिविग्रहसंयुक्तो राज्ञां संवाहनक्रियाः ।
अवैक्षत महातेजा भीष्मः परपुरञ्जयः ॥१०॥

शत्रु पुर के विजयी, महा-तेजस्वी भीष्म, अन्य राजाओं के साथ सन्धि विग्रह तथा भूमि (जागीर) आदि के दान आदान के अधिकार पर नियुक्त हुए ॥१०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिंहासनस्थो नृपतिर्धृतराष्ट्रो महाबलः ।
अन्वास्यमानः सततं विदुरेण महात्मना ॥११॥

जब महाबली राजा धृतराष्ट्र राज्य सिंहासन पर बैठते थे, तो सदा उनके बराबर आसन पर महात्मा विदुर बैठते और अपने बड़े भाई की सेवा करते रहे हैं। ॥११॥

कथं तस्य कुले जातः कुलभेदं व्यवस्यसि ।
सम्भूय भ्रातृभिः सार्धं भुंक्ष्व भोगाञ्जनाधिप ॥१२॥

हे राजन्! दुर्योधन! तुम भी उसी कुल में उत्पन्न हुए हो, परन्तु नहीं मालूम—तुम क्यों कुल में फूट डालने का प्रयत्न कर रहे हो। तुमको तो अपने भाइयों से मेल करके इस पृथिवी का उपभोग करना चाहिए ॥१२॥

ब्रवीम्यहं न कार्पण्यान्नाऽर्थहेतोः कथञ्चन ।
भीष्मेण दत्तमिच्छामि न त्वया राजसत्तम ॥१३॥

हे राजसत्तम! मैं किसी युद्ध आदि के भय या स्वार्थ से यह नहीं कह रहा हूं। मैं तो भीष्म की दी हुई वृत्ति से अपना निर्वाह करना चाहता हूँ, तुम्हारी तो मुझे वृत्ति की भी इच्छा नहीं है ।१३।

नाऽहं त्वत्तोऽभिकांक्षिष्ये वृत्युपायं जनाधिप ।
यतो भीष्मस्ततो द्रोणो यद्भीष्मस्त्वाह तत्कुरु ॥१४॥

हे जनाधिप! अभी क्या? मैं तो तुमसे अपनी वृत्ति की कभी भी अभिलाषा नहीं करूँगा। जिधर भीष्म होगा—उधर ही द्रोण रहेगा—तुमको भी भीष्म का ही कथन मानना चाहिए ॥१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दीयतां पाण्डुपुत्रेभ्यो राज्यार्धमरिकर्शन ।
सममाचार्यकं तात तव तेषां च मे सदा ॥१५॥

हे अरिकर्शन ! तुमको पाण्डु-पुत्रों के लिए आधा राज्य प्रदान कर देना चाहिए। हे तात ! मैं तो जैसा तुम्हारा हूँ, वैसा ही उन पाण्डवों का भी आचार्य हूं ॥१५॥

अश्वत्थामा यथा मह्यं तथा श्वेतहयो मम ।
बहुना किं प्रलापेन यतो धर्मस्ततो जयः ॥१६॥

मुझे जितना अश्वत्थामा प्रिय है, उतना ही श्वेत-हय-वाहन, अर्जुन भी प्रिय है। अधिक कहने की क्या आवश्यकता है, जिधर धर्म होगा उधर ही विजय है ॥१६॥

वासुदेव उवाच—

एवमुक्ते महाराज द्रोणेनाऽमिततेजसा ।
व्याजहार ततो वाक्यं विदुरः सत्यसङ्गरः ।
पितुर्वदनमन्वीक्ष्य परिवृत्य च धर्मवित् ॥१७॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे महाराज ! अमित-ओजस्वी, द्रोण के इतना कहने पर सत्यवादी धर्मात्मा विदुर भी अपने पिता के ज्येष्ठ भ्राता भीष्म की ओर झुककर उनके मुख को देखते हुए कहने लगे ॥१७॥

विदुर उवाच—

देवव्रत निबोधेदं वचनं मम भाषतः ।
प्रनष्टः कौरवो वंशस्त्वयाऽयं पुनरुद्धृतः ॥१८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजशार्दूल ! तुम इस मेरे कथन के मानने के लिए उद्यत हो जाओ, क्योंकि मुझे पाण्डव, कौरव और सारे राजाओं का महान् विनाश उपस्थित हुआ दिखाई दे रहा है ॥२६॥

विरराम मैवमुक्त्वा तु विदुरो दीनमानसः ।
प्रध्यायमानः स तदा निःश्वसंश्च पुनः पुनः ॥२७॥

इस प्रकार कह कर विदुर चुप हो गया। उसका मन बड़ा ही दुःखी हो रहा था। वह इसी बात को बार २ सोचता था और बार २ चिन्ता पूर्ण सांसें लेता था ॥२७॥

ततोऽथ राज्ञः सुबलस्य पुत्री धर्मार्थयुक्तं कुलनाशभीता ।
दुर्योधनं पापमतिं नृशंसं राज्ञां समक्षं सुतमाह कोपात् ॥२८॥

इसके अनन्तर राजा सुबल की पुत्री, गान्धारी कुल के नाश से भयभीत हुई, पाप बुद्धि वाले, नीच अपने पुत्र दुर्योधन से कोप के साथ सारे राजाओं के सम्मुख धर्म और नीति पूर्ण यह वचन बोली ॥२८॥

ये पार्थिवा राजसभां प्रविष्टा ब्रह्मर्षयो ये च सभासदोऽन्ये ।
शृण्वन्तु वक्ष्यामि तवाऽपराधं पापस्य सामात्यपरिच्छदस्य २९

इस राजसभा में जो राजा, ब्रह्मर्षि और अन्य सभासद उपस्थित हैं, उनके सन्मुख ही मैं तेरे मन्त्रियों के और तेरे अपराध को बताती हूं, तू ध्यान से सुन ॥ २९ ॥

राज्यं कुरूणामनुपूर्वभोज्यं क्रमागतो नः कुलधर्म एषः ।
त्वं पापबुद्धेऽतिनृशंसकर्मन्राज्यं कुरूणामनयाद्विहंसि ॥३०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कौरवों का राज्य कुल क्रमागत रीति से चला आ रहा है। इस का उपभोग करना हमारा कुल धर्म है। हे दुर्योधन ! तू पापबुद्धि और नीच कर्मों के करने वाला है। तू अब अपनी अनीति से कौरवों का नाश करके छोड़ेगा ॥ ३० ॥

राज्ये स्थितो धृतराष्ट्रो मनीषीत स्याऽनुजो विदुरो दीर्घदर्शी
एतावतिक्रम्य कथं नृपं त्वं दुर्योधन प्रार्थयसेऽद्य मोहात्

अभी तक तो बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र और दीर्घदर्शी इनका छोटा भाई विदुर राज्यसिंहासन पर स्थित है। हे दुर्योधन ! इन दोनों का अतिक्रमण करके तुम कैसे अज्ञान से इस राज्य के हथियाने की चिन्ता में हो ॥ ३१ ॥

राजा च क्षत्ता च महानुभावौ भीष्मे स्थिते परवन्तौ भवेताम्
अयं तु धर्मज्ञतया महात्मा न कामयेद्यो नृवरो नदीजः ॥

राजा धृतराष्ट्र और महात्मा विदुर, ये दोनों महानुभाव भी जब तक भीष्म स्थित है, पराधीन हैं। यह गङ्गा पुत्र भीष्म ही तो नर श्रेष्ठ और महात्मा है, जो अपने राज्य का परित्याग करके उसकी इच्छा नहीं कर रहे हैं ॥ ३२ ॥

राज्यं तु पाण्डोरिदमप्रधृष्यंतस्याऽद्यपुत्राः प्रभवन्तिनाऽन्ये
राज्यं तदेतन्निखिलं पाण्डवानां पैतामहं पुत्रपौत्रानुगामि

यह विशाल राज्य पाण्डु के अधीन था। अब उसी के पुत्र इस राज्य के अधिकारी हैं, अन्य कोई भी इसके अधिकारी नहीं हो सकते। यह सारा राज्य पाण्डवों का है। उन्हीं के पितामह से आया और उन्हीं के पुत्र पौत्र पर जाना चाहिए ॥ ३३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यद्वै ब्रूते कुरुमुख्यो महात्मा देवव्रतः सत्यसन्धो मनीषी ।
सर्वं तदस्माभिरहत्य कार्यं राज्यं स्वधर्मान्परिपालयद्भिः ॥

सत्यप्रतिज्ञ, विद्वान्, कुरु-वंश-श्रेष्ठ महात्मा देवव्रत भीष्म, जो कुछ कह रहे हैं, वही मानना उचित है। हम सबको अपने धर्म के पालन के ध्यान से उनके कथन का विना उल्लंघन किये ही इस राज्य का पालन करना ये ग्य है ॥ ३४ ॥

अनुज्ञया चाऽथ महाव्रतस्य ब्रूयान्नृपोऽयं विदुरस्तथैव ।
कार्यं भवेत्तत्सुहृद्भिर्नियोज्यं धर्मं पुरस्कृत्य सुदीर्घकालम्

इस महाव्रती भीष्म की आज्ञा से ही राजा धृतराष्ट्र और विदुर को बोलना चाहिए। तुम लोग उसके सुहृद् होकर दीर्घ-काल तक धर्मानुसार राज्य आदि का उपभोग कर सकते हो ॥३५॥

न्यायागतं राज्यमिदं कुरूणां युधिष्ठिरः शास्तु वै धर्मपुत्रः
प्रचोदितो धृतराष्ट्रेण राज्ञा पुरस्कृतः शान्तनवेन चैव ॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्ण-वाक्ये अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४८॥

यह कौरवों का राज्य न्यायानुसार राजा युधिष्ठिर का है, वही राजा धृतराष्ट्र और शान्तनु-पुत्र भीष्म की आज्ञानुसार इसका शासन करने का अधिकारी है ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में श्रीकृष्ण के वाक्य का एक सौ अड़तालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ उनंचासवां अध्याय

वासुदेव उवाच—

एवमुक्ते तु गान्धार्या धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
दुर्योधनमुवाचेदं राजमध्ये जनाधिप ॥१॥

श्रीकृष्ण बोले—हे जनाधिप ! गान्धारी के इतना कहने पर धृतराष्ट्र, राजाओं के मध्य में दुर्योधन से यह वचन बोला ॥ १ ॥

दुर्योधन निबोधेदं यत्त्वां वक्ष्यामि पुत्रक ।
तथा तत्कुरु भद्रं ते यद्यस्ति पितृगौरवम् ॥२॥

हे पुत्र ! जो मैं तुमसे कह रहा हूँ, उसको ध्यान से सुनो। तुम्हारा कल्याण हो, तुम वही कार्य करो, जिससे पिता का गौरव हो ॥ २ ॥

सोमः प्रजापतिः पूर्वं कुरूणां वंशवर्धनः ।
सोमाद् बभूव षष्ठोऽयं ययातिर्नहुषात्मजः ॥३॥

इस कुरुवंश का प्रवर्तक सोम संज्ञक प्रजापति हुआ। इसी सोम (चन्द्र) की छठी पीढ़ी में नहुष का पुत्र राजा ययाति हुआ ।३।

तस्य पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च राजर्षिसत्तमाः ।
तेषां यदुर्महातेजा ज्येष्ठः समभवत्प्रभुः ॥४॥

इसके पांच उत्तम २ पुत्र हुए, जो बड़े श्रेष्ठ राजर्षि हुए हैं। उनमें महा तेजस्वी सबसे बड़ा शक्तिशाली राजा यदु हुआ ॥ ४ ॥

पूरुर्यवीयांश्च ततो योऽस्माकं वंशवर्धनः ।
शर्मिष्ठया सम्प्रसूतो दुहित्रा वृषपर्वणः ॥५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनमें सबसे छोटा राजा पुरु था, जो हमारे वंश का प्रवर्तक है। ये पुरु वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ॥ ५ ॥

यदुश्च भरतश्रेष्ठ देवयान्याः सुतोऽभवत् ।
द्रौहित्रस्तात शुक्रस्य काव्यस्याऽमिततेजसः ॥६॥

हे भरत श्रेष्ठ ! राजा यदु, देवयानी के पुत्र थे, जो अत्यन्त तेजस्वी शुक्राचार्य के दौहित्र थे ॥ ६ ॥

यादवानां कुलकरो बलवान्वीर्यसम्मतः ।
अवमेने स तु क्षत्रं दर्पपूर्णः सुमन्दधीः ॥७॥

ये राजा यदु, यादवों के बंश प्रवर्तक हैं। ये बड़े बलवान् और पराक्रमी थे। इस मन्दबुद्धि ने अहङ्कार में लिप्त होकर सारे क्षत्रियों का तिरस्कार कर डाला ॥ ७ ॥

न चाऽतिष्ठत्पितुः शास्त्रे बलदर्पविमोहितः ।
अवमेने च पितरं भ्रातॄंश्चाऽप्यपराजितः ॥८॥

यह महा-पराक्रमी, बल के आवेश में आकर मोहित हो गया और पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने लगा। यह मदोन्मत्त अपने पिता और भाइयों के भी अपमान में प्रवृत्त हो गया ॥ ८ ॥

पृथिव्यां चतुरन्तायां यदुरेवाऽभवद्बली ।
वशे कृत्वा स नृपतीन्न्यवसन्नागसाह्वये ॥९॥

चारों समुद्र से घिरी हुई पृथिवी पर यदु ही महाबली था। यह सारे राजाओं को वश में करके हस्तिनापुर में निवास करने लगा ॥ ९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाभारत चित्र संख्या ६७

राजा दुर्योधन का भीष्म पितामह को सेनापती बनाना

महाभारत उद्योगपर्व अ० १५६।३

पृष्ठ ३७१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तं पिता परमक्रुद्धो ययातिर्नहुषात्मजः ।
शशाप पुत्रं गान्धारे राज्याच्चापि व्यरोपयत् ॥१०॥

नहुष का पुत्र ययाति अपने पुत्र पर बड़ा अप्रसन्न हुआ। हे दुर्योधन ! उसने अपने पुत्र यदु को शाप दिया और उसको अपने राज्य के अधिकार से भी वञ्चित कर दिया ॥ १० ॥

ये चैनमन्ववर्तन्त भ्रातरो बलदर्पिताः ।
शशाप तानभिक्रुद्धो ययातिस्तनयानथ ॥११॥

जिन बल के अभिमान में भरे हुए भाइयों ने राजा यदु का साथ दिया, राजा ययाति ने क्रुध होकर उन पुत्रों को भी शाप दे डाला ॥ ११ ॥

यवीयांसं ततः पूरुं पुत्रं स्ववशवर्तिनम् ।
राज्ये निवेशयामास विधेयं नृपसत्तमः ॥१२॥

नृपसत्तम राजा ययाति ने अपने आज्ञाकारी, विनम्र छोटे पुत्र पुरु को राज्य पर बैठाया ॥ १२ ॥

एवं ज्येष्ठोऽप्यथोत्सिक्तो न राज्यमभिजायते ।
यवीयांसोऽपि जायन्ते राज्यं वृद्धोपसेवया ॥१३॥

हे पुत्र ! जो उद्दण्ड होता है, वह बड़ा पुत्र भी राज्य का अधिकारी नहीं होता और जो वृद्धों की सेवा करने वाले हैं, वे छोटे भी राज्य के अधिकारी बन जाते हैं ॥ १३ ॥

तथैव सर्वधर्मज्ञः पितुर्मम पितामहः ।
प्रतीपः पृथिवीपालस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी प्रकार हमारे पिता के पितामह राजा प्रतीप हुए हैं। जो सब धर्मों के ज्ञाता और तीनों लोकों में प्रसिद्ध थे ॥ १४ ॥

तस्य पार्थिवसिंहस्य राज्यं धर्मेण शासतः ।
त्रयः प्रजज्ञिरे पुत्रा देवकल्पा यशस्विनः ॥१५॥
देवापिरभवच्छ्रेष्ठो बाह्लीकस्तदनन्तरम् ।
तृतीयः शान्तनुस्तात धृतिमान्मे पितामहः ॥१६॥

राजा प्रतीप-धर्म-पूर्वक प्रजा का पालन करते थे। राजाओं में श्रेष्ठ, पृथिवीपति, इन प्रतीप के देवों के सदृश तीन यशस्वी पुत्र उत्पन्न हुए। इन में सबसे बड़ा देवापि, उससे छोटा बाह्लीक तीसरा शान्तनु था। हे तात ! जो बड़ा धैर्यशील और मेरा पितामह था ॥ १५—१६ ॥

देवापिस्तु महातेजास्त्वग्दोषी राजसत्तमः ।
धार्मिकः सत्यवादी च पितुः शुश्रूषणे रतः ॥१७॥
पौरजानपदानां च सम्मतः साधुसत्कृतः ।
सर्वेषां बालवृद्धानां देवापिर्हृदयङ्गमः ॥१८॥
वदान्यः सत्यसन्धश्च सर्वभूतहिते रतः ।
वर्तमानः पितुः शास्त्रे ब्राह्मणानां तथैव च ॥१९॥

राजाओं में श्रेष्ठ, महा तेजस्वी, देवापि त्वचाके रोग (कुष्ठरोग) से ग्रस्त थे। ये बड़े सत्यवादी, धार्मिक और पिता की सेवा में तत्पर थे। इनको पुर और राष्ट्र के लोग बहुत मानते थे। ये सज्जनों में बड़े सम्मानित थे। इस प्रकार राजा देवापि, सारे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाल वृद्ध जनों के बड़े प्रिय थे। ये बड़े उदार, सत्यप्रतिज्ञ एवं सब प्राणियों के हित में निरत थे। राजा देवापि, अपने पिता और ब्राह्मणों की आज्ञा में तत्पर रहता था ॥ १७—१९ ॥

बाह्लीकस्य प्रियो भ्राता शान्तनोश्च महात्मनः।
सौभ्रात्रं च परं तेषां सहितानां महात्मनाम् ॥२०॥

यह अपने छोटे भाई बाह्लीक और महात्मा शान्तनु को बड़ा ही प्रिय था। इन महात्मा भाइयों में परस्पर बड़ा ही भ्रातृ-प्रेम था।

अथ कालस्य पर्याये वृद्धो नृपतिसत्तमः।
सम्भारानभिषेकार्थं कारयामास शास्त्रतः ॥२१॥

जब राज्य शासन करते हुए बहुत समय बीत गया, तो इस वृद्ध उत्तम राजा प्रतीप ने अपने बड़े पुत्र देवापि के अभिषेक के लिए शास्त्रानुसार सामग्री इकट्ठी की ॥ २१ ॥

कारयामास सर्वाणि मङ्गलार्थानि वै विभुः।
तं ब्राह्मणाश्च वृद्धाश्च पौरजानपदैः सह ॥२२॥
सर्वे निवारयामासुर्देवापेरभिषेचनम्।

इस राजा ने जितनी माङ्गलिक वस्तुएँ थी, वे सब मँगवाली, परन्तु इस देवापि के अभिषेक में पुर और देश के लोगों से मिल कर ब्राह्मण और वृद्धों ने विघ्न कर दिया ॥ २२ ॥

स तच्छ्रुत्वा तु नृपतिरभिषेकनिवारणम्।
अश्रुकण्ठोऽभवद्राजा पर्यशोचत चाऽऽत्मजम् ॥२३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब राजा को यह ज्ञात हुआ, कि मेरे पुत्र के अभिषेक में प्रजा ने विघ्न कर दिया, तो वह रोने लगा और अपने पुत्र के विषय में बड़ा चिन्तातुर हुआ ॥ २३ ॥

एवं वदान्यो धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च सोऽभवत् ।
प्रियः प्रजानामपि संस्त्वग्दोषेण प्रदूषितः ॥२४॥

राजा देवापि बड़ा उदार, धर्मज्ञ, सत्य-प्रतिज्ञा-धारी और प्रजा का प्रिय भी था, तो भी त्वचा के रोग के कारण राज्य पर बैठने के अयोग्य समझा गया ॥ २४ ॥

हीनाङ्गं पृथिवीपालं नाऽभिनन्दन्ति देवताः ।
इति कृत्वा नृपश्रेष्ठं प्रत्यषेधन्द्विजर्षभाः ॥२५॥

जो मनुष्य अङ्ग हीन होता है, देवता उससे प्रसन्न नहीं होते। यही कारण था, जो नृप-श्रेष्ठ देवापि का अभिषेक ब्राह्मणों ने रोक दिया ॥ २५ ॥

ततः प्रव्यथिताङ्गोऽसौ पुत्रशोकसमन्वितः ।
निवारितं नृपं दृष्ट्वा देवापिः संश्रितो वनम् ॥२६॥

इस अभिषेक के निषेध की घटना को देख कर राजा के अङ्ग में बड़ी पीड़ा हुई और वह पुत्र के शोक से व्याकुल हो उठा। जब ब्राह्मणों ने राजा प्रतीप को रोक दिया, तो इस प्रकार रोके हुए राजा को देखकर देवापि वन में चला गया ॥ २६ ॥

बाह्लीको मातुलकुलं त्यक्त्वा राज्यं समाश्रितः ।
पितृभ्रातॄन्परित्यज्य प्राप्तवान्परमर्धिमत् ॥२७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाल्हीक भी राज्य को छोड़ कर अपने मामा के राज्य का अधिकारी बन गया। इसने अपने पिता और भाइयों से सम्बन्ध छोड़ दिया और बड़े ऐश्वर्यशाली अपने मातुल का राज्य पाया।

बाह्लीकेन त्वनुज्ञातः शान्तनुर्लोकविश्रुतः।
पितर्युपरते राजन्राजा राज्यमकारयत् ॥२८॥

हे राजन्! जब बाल्हीक ने आज्ञा दे दी, तो राजा शान्तनु, अपने पिता की मृत्यु के अनन्तर राज्यसिंहासन पर बैठा ॥ २८॥

तथैवाऽहं मतिमता परिचिन्त्येह पाण्डुना।
ज्येष्ठः प्रभ्रंशितो राज्याद्धीनाङ्ग इति भारत ॥२९॥

हे भारत! दुर्योधन! इसी तरह मैं भी आंखों से हीन होने से हीनाङ्ग माना गया। इसी कारण बुद्धिमान् पाण्डु ने मुझे राज्य से पृथक् रख कर उस पर अपना अधिकार कर लिया ॥ २९ ॥

पाण्डुस्तु राज्यं संप्राप्तः कनीयानपि सन्नृपः।
विनाशे तस्य पुत्राणामिदं राज्यमरिन्दम ॥३०॥

यद्यपि पाण्डु मुझसे छोटा था, तो भी वह राज्य का अधिकारी बन गया। हे अरिमर्दन! अब जब पाण्डु मर गया, तो यह सारा राज्य उसके ही पुत्रों का होना चाहिए ॥ ३१ ॥

मय्यभागिनि राज्याय कथं त्वं राज्यमिच्छसि।
अराजपुत्रो ह्यस्वामि परस्वं हर्तुमिच्छसि ॥३१॥

तू मुझ अभागे के उत्पन्न हुआ है, फिर कैसे राज्य-प्राप्ति की इच्छा करता है। जब तू राजा का ही पुत्र नहीं, तो राज्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का स्वामी कैसे बन सकता है। अब तो राज्य को लेने की चेष्टा करना अन्य के धन के अपहरण करने के तुल्य है ॥ ३१ ॥

युधिष्ठिरो राजपुत्रो महात्मा न्यायागतं राज्यमिदं च तस्य।
स कौरवस्याऽस्य कुलस्य भर्ता प्रशासिता चैव महानुभावः

युधिष्ठिर राजा पाण्डु का पुत्र और महात्मा है। न्यायानुसार यह उसी का राज्य है। वही महानुभाव इस कुरुवंश का भरण पोषण करने वाला शासक बनने का अधिकारी है ॥ ३२ ॥

स सत्यसन्धः स तथाऽप्रमत्तः शास्त्रे स्थितो बन्धुजनस्य साधुः
प्रियः प्रजानां सुहृदानुकम्पी जितेन्द्रियः साधुजनस्य भर्ता।

वह बड़ा दृढ़-प्रतिज्ञ, सावधान, सज्जन और अपने बन्धु जनों की आज्ञा में चलने वाला है। वही प्रजा का प्रिय, मित्रों पर अनुग्रहकर्त्ता जितेन्द्रिय तथा साधु पुरुषों का रक्षक है ॥ ३३ ॥

क्षमा तितिक्षा दम आर्जवं च सत्यव्रतत्वं श्रुतमप्रमादः।
भूतानुकम्पा ह्यनुशासनं च युधिष्ठिरे राजगुणाः समस्ताः ॥

धर्मात्मा युधिष्ठिर में क्षमा, सहनशीलता, मन और इन्द्रियों का विजय, सरलता, सत्यवादीपन, शास्त्र में सावधानी, प्राणियों पर दया, शासन योग्यता आदि राजाओं के योग्य सारे गुण, विद्यमान है ॥ ३४ ॥

अराजपुत्रस्त्वमनार्यवृत्तो लुब्धः सदा बन्धुषु पापबुद्धिः।
क्रमागतं राज्यमिदं परेषां हर्तुं कथं शक्ष्यसि दुर्विनीत ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे दुर्योधन ! तुम न तो राजपुत्र हो और न तुम्हारा आर्य-पुरुषों का सा चरित्र है। तुम बड़े लालची हो और तुम्हारी बन्धु जनों में सदा पाप बुद्धि रहती है। हे विनयहीन ! यह राज्य तो कुलक्रमागत राजा युधिष्ठिर का है, तू इसका कैसे अपहरण करना चाहता है ॥ ३५ ॥

प्रयच्छ राज्यार्धमपेतमोहः सवाहनं त्वं सपरिच्छदं च।
ततोऽवशेषं तव जीवितस्य सहानुजस्यैव भवेन्नरेन्द्र ॥३६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या-मुद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्यकथने एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४९॥

हे नरेन्द्र ! अब यही उत्तम है, कि तुम वाहन और सारी सामग्री के साथ आधा राज्य धर्मराज युधिष्ठिर को प्रदान कर दो। इससे बचा हुआ आधा राज्य, अपने छोटे भाइयों के साथ तुम्हारे निर्वाह को पर्याप्त होगा ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में राजा धृतराष्ट्र के कथन का एक सौ उनंचासवां अध्याय समाप्त हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ पचासवां अध्याय

वासुदेव उवाच—

एवमुक्ते तु भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च।
गान्धार्या धृतराष्ट्रेण न वै मन्दोऽन्वबुद्ध्यत ॥१॥

श्रीकृष्ण बोले—हे राजन् ! भीष्म, द्रोण, विदुर, गान्धारी और राजा धृतराष्ट्र ने इतना कहा-परन्तु मूर्ख दुर्योधन की समझ में कुछ भी नहीं आया ॥ १ ॥

अवधूयोत्थितो मन्दः क्रोधसंरक्तलोचनः।
अन्वद्रवन्त तं पश्चाद्राजानस्त्यक्तजीविताः ॥२॥

मन्दबुद्धि दुर्योधन, इन सब बातों का अनादर करके खड़ा हो गया और उसकी आँखें क्रोध से लाल हो गई। जिन राजाओं की आयु समाप्त हो गई है, वे भी उसके साथ २ चल दिए ॥ २ ॥

आज्ञापयच्च राज्ञस्तान्पार्थिवान्नष्टचेतसः।
प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योऽद्येति पुनः पुनः ॥३॥

राजा दुर्योधन ने नष्ट बुद्धि वाले, उन सारे राजाओं को बार २ आज्ञा दी, कि तुम लोग युद्धार्थ कुरुक्षेत्र में चलो-आज पुण्य नक्षत्र का योग बहुत अच्छा है ॥ ३ ॥

ततस्ते पृथिवीपालाः प्रययुः सहसैनिकाः।
भीष्मं सेनापतिं कृत्वा संहृष्टाः कालचोदिताः ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे राजा, अपनी सेना के साथ बड़े हर्ष से चलने को तय्यार हो गए। इन्होंने अपना सेनापति भीष्म को बनाया। मेरी सम्मति में इन सारे राजाओंको उनका काल, इस प्रकार प्रेरित कर रहा है।

अक्षौहिण्यो दशैका च कौरवाणां समागताः।
तासां प्रमुखतो भीष्मस्तालकेतुर्व्यरोचत ॥५॥

कौरवों की ओर ग्यारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हो चुकी है। इसका प्रधान सेनापति, तालवृक्ष के चिह्न की ध्वजा को धारण करने वाला, भीष्म माना गया है ॥ ५ ॥

यदत्र युक्तं प्राप्तं च तद्विधत्स्व विशाम्पते।
उक्तं भीष्मेण यद्वाक्यं द्रोणेन विदुरेण च ॥६॥
गान्धार्या धृतराष्ट्रेण समक्षं मम भारत।
एतत्ते कथितं राजन्यद्वृत्तं कुरुसंसदि ॥७॥

हे विशाम्पते! इस समय अब जो तुमको उचित जान पड़े वही करो। मैंने तो जो भीष्म, द्रोण, विदुर, गान्धारी और राजा धृतराष्ट्र ने मेरे सन्मुख वाक्य कहे थे वे तुमको ज्यों के त्यों सुना दिए और कौरवों की सभा का सारा वृत्तान्त भी तुम्हारे कर्णगोचर कर दिया ॥ ६-७ ॥

साम्यमादौ प्रयुक्तं मे राजन्सौभ्रात्रमिच्छता।
अभेदायाऽस्य वंशस्य प्रजानां च विवृद्धये ॥८॥

हे राजन्! भाइयों के स्नेह की रक्षा करने के अभिप्राय से मैंने प्रथम सन्धि का प्रस्ताव किया। मैं चाहता था, कि इस वंश में फूट न फैले और प्रजा की वृद्धि होती रहे ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुनर्भेदश्च मे युक्तो यदा साम न गृह्यते ।
कर्मानुकीर्तनं चैव देवमानुषसंहितम् ॥९॥

जब दुर्योधन ने मेरे सन्धि के प्रस्ताव को ठुकरा दिया, तो फिर मुझे भेद (फटकार) का आश्रय लेना ही हुआ । इस समय मैंने तुम लोगों के देव और मनुष्योंचित कर्मों का कथन करके उनको भयभीत करना चाहा ॥ ९ ॥

यदा नाऽऽद्रियते वाक्यं सामपूर्वं सुयोधनः ।
तदा मया समानीय भेदिताः सर्वपार्थिवाः ॥१०॥

जब सन्धि के वचनों को दुर्योधन ने स्वीकार नहीं किया तो फिर मैंने सारे राजाओं को तोड़ना फोड़ना चाहा ॥ १० ॥

अद्भुतानि च घोराणि दारुणानि च भारत ।
अमानुषाणि कर्माणि दर्शितानि मया विभो ॥११॥

हे भारत ! मैंने जिन कर्मों को मनुष्य नहीं कर सके—ऐसे तुम्हारे अद्भुत घोर और दारुण कर्मों का वर्णन किया ॥ ११ ॥

निर्भर्त्सयित्वा राज्ञस्तांस्तृणीकृत्य सुयोधनम् ।
राधेयं भीषयित्वा च सौबलं च पुनः पुनः ॥१२॥

द्यूतर्तो धार्तराष्ट्राणां निन्दां कृत्वा तथा पुनः ।
भेदयित्वा नृपान्सर्वान्वाग्भिर्मन्त्रेण चाऽसकृत् ॥१३॥

मैंने उन राजाओं को फटकारा और सुयोधन को तिनके के बराबर भी महत्त्व नहीं दिया । राधा-पुत्र कर्ण और सुबलपुत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शकुनि को भी डराया धमकाया। जुआ के वर्णन से धृतराष्ट्र के पुत्रों के दोषों का निदर्शन करके उनकी निन्दा की। इस प्रकार वाग्बल और गुप्त मन्त्रणा से बार २ राजाओं को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया ॥ १२-१३ ॥

पुनः सामाभिसंयुक्तं सम्प्रदानमथाऽब्रुवम् ।
अभेदात्कुरुवंशस्य कार्ययोगात्तथैव च ॥१४॥

इसके अनन्तर फिर शान्ति, युद्ध और सन्धि की बातचीत करके आधा राज्य देने का प्रस्ताव किया। यह सब कुछ कुरुवंश से फूट न पड़े और हमारा कार्य सिद्ध हो जावे—इसी ध्यान से किया था।

ते शूरा धृतराष्ट्रस्य भौष्मस्य विदुरस्य च ।
तिष्ठेयुः पाण्डवाः सर्वे हित्वा मानमधश्चराः ॥१५॥
प्रयच्छन्तु च ते राज्यमनीशास्ते भवन्तु च ।
यथाऽऽह राजा गाङ्गेयो विदुरश्च हितं तव ॥१६॥

मैंने यहां तक कह दिया, कि पाण्डव, शूरवीर हैं, वे राजा धृतराष्ट्र, भीष्म और विदुर के अधीन राज्य को करके आप सेवक की भांति व्यवहार करेंगे। वे इस विषय में अपने अभिमान को बिल्कुल त्याग कर देंगे। वे तो सारा राज्य तुम्हारे ही अर्पण करेंगे; स्वयं कुछ भी शक्ति अपने हाथ में लेकर न रहेंगे। हे दुर्योधन! राजा भीष्म और द्रोण ने जो कुछ कहा है, उसीमें तुम्हारा हित है।

सर्वं भवतु ते राज्यं पञ्चग्रामान्विसर्जय ।
अवश्यं भरणीया हि पितुस्ते राजसत्तम ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजसत्तम ! जो तुम सारा राज्य चाहते हो-तो सारा ले लो, उनको तो केवल पाँच गाँव ही प्रदान कर दो। उन पांचों पाण्डवों के निर्वाह की समस्या भी तो तुम्हारे पिता को ही पूरी (हल) करनी है ॥ १७ ॥

एवमुक्तोऽपि दुष्टात्मा नैव भागं व्यमुञ्चत ।
दण्डं चतुर्थं पश्यामि तेषु पापेषु नाऽन्यथा ॥१८॥
निर्याताश्च विनाशाय कुरुक्षेत्रं नराधिपाः ।

इतना सब कुछ कहने पर भी वह दुष्ट कुछ नहीं झुका और तुम्हारे भाग के देने को तय्यार नहीं हुआ। अब तो मैं उन पापियों में चतुर्थ उपाय दण्ड का ही प्रयोग उचित समझता हूँ। वे अन्य किसी उपाय से नहीं मानेंगे। वे सब राजा अपने विनाश के लिए कुरुक्षेत्र पहुँच भी चुके हैं ॥ १८ ॥

एतत्ते कथितं राजन्यद् वृत्तं कुरुसंसदि ॥१९॥
न ते राज्यं प्रयच्छन्ति विना युद्धेन पाण्डव ।
विनाशहेतवः सर्वे प्रत्युपस्थितमृत्यवः ॥२०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णवाक्ये पंचाशदधिक-शततमोऽध्यायः ॥१५०॥ समाप्तं च भगवद्यानपर्व ॥

हे राजन् ! जो कुछ कौरवों की सभा में हुआ था, वह सब तुमको सुना दिया। हे पाण्डव ! वे लोग विना युद्ध के कुछ भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम्हें प्रदान नहीं करेंगे। इन सब की मृत्यु उपस्थित हो गई और ये अपने विनाश के आप ही कारण बनेंगे ॥१९-२०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत भगवद्यानपर्व में श्रीकृष्ण के वाक्य का एक सौ पचासवां अध्याय समाप्त हो गया और यहीं पर भगवद्यानपर्व भी समाप्त हुआ।

अथ सैन्य-निर्याण-पर्व

एक सौ इक्यावनवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

जनार्दनवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः।
भ्रातॄनुवाच धर्मात्मा समक्षं केशवस्य ह ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! भगवान् कृष्ण के ये वचन सुनकर धर्मात्मा धर्मराज, युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण के सन्मुख ही अपने भाइयों से इस प्रकार कहने लगे ॥१॥

श्रुतं भवद्भिर्यद् वृत्तं सभायां कुरुसंसदि।
केशवस्याऽपि यद्वाक्यं तत्सर्वमवधारितम् ॥२॥

हे महाभागो! तुमने कुरुओं की सभा में जो कुछ हुआ—वह सुन लिया और श्रीकृष्ण ने जो कहा—वह सब कुछ भी तुम लोगों ने ठीक २ समझ लिया होगा ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्मात्सेनाविभागं मे कुरुध्वं नरसत्तमाः ।
अक्षौहिण्यश्च सप्तैताः समेता विजयाय वै ॥३॥

हे नरश्रेष्ठ ! अब तुम भी मेरी सेना का विभाग कर लो । मेरे पास भी विजय के लिए सात अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हो चुकी है ।

तासां ये पतयः सप्त विख्यातास्तान्निबोधत ।
द्रुपदश्च विराटश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥४॥
सात्यकिश्चेकितानश्च भीमसेनश्च वीर्यवान् ।
एते सेनाप्रणेतारो वीराः सर्वे तनुत्यजः ॥५॥

इस सात अक्षौहिणी सेना के सात सेनापति हैं, जिनके नाम तुमको बता देना चाहता हूँ । द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, चेकितान, और वीर्यवान् भीमसेन–ये सात सेनापति हैं । ये सम्पूर्ण वीर अपने प्राणों पर खेल कर युद्ध करने वाले हैं ॥४-५॥

सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ।
ह्रीमन्तो नीतिमन्तश्च सर्वे युद्धविशारदाः ॥६॥
इष्वस्त्रकुशलाः सर्वे तथा सर्वास्त्रयोधिनः ।
सप्तानामपि यो नेता सेनानां प्रविभागवित् ॥७॥
यः सहेत रणे भीष्मं शरार्चिःपावकोपमम् ।
तं तावत्सहदेवाऽत्र प्रब्रूहि कुरुनन्दन ॥
स्वमतं पुरुषव्याघ्र को नः सेनापतिः क्षमः ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये सारे वेद के ज्ञाता, शूरवीर, सदाचारी, लज्जाशील, नीतिमान् और युद्ध में कुशल हैं। ये सब बाण चलाने में निपुण और सारे अस्त्रों के प्रयोगों के ज्ञाता हैं। इन सातों का अधिपति और सेना के विभाग का जानने वाला इनमें कौनसा वीर है, जो रण में शरों की लपटें छोड़ने वाले अग्नि के सदृश भीष्म के साथ युद्ध में ठहर सकता हो। हे कुरुनन्दन ! पुरुषव्याघ्र, सहदेव, प्रथम तुम बताओ, कि इन सबका सेनापति बनने के कौन योग्य है।

सहदेव उवाच—

संयुक्त एकदुःखश्च वीर्यवांश्च महीपतिः ।
यं समाश्रित्य धर्मज्ञं स्वमंशमनुयुञ्ज्महे ॥९॥
मत्स्यो विराटो बलवान्कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
प्रसहिष्यति संग्रामे भीष्मं तांश्च महारथान् ॥१०॥

सहदेव ने कहा—जिसके साथ हमारा सम्बन्ध हो चुका और उसका हमारा एक ही दुःख-सुख है। जो वीर्यशाली, महीपति हैं, जिस धर्मात्मा के आश्रय से ही हम हमारे भाग के लेने की चेष्टा कर रहे हैं, वही मत्स्य देश का अधिपति राजा विराट, बड़ा युद्ध दुर्मद, बलवान् और अस्त्रविद्या में कुशल है, यही वीर संग्राम में भीष्म और उनके महारथियों के साथ टक्कर लेने में समर्थ हैं ॥९-१०॥

वैशम्पायन उवाच—

तथोक्ते सहदेवेन वाक्ये वाक्यविशारदः ।
नकुलोऽनन्तरं तस्मादिदं वचनमाददे ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! जब सहदेव, इतना कह चुका, तो इसके अनन्तर बोलने में निपुण, नकुल यह वचन बोले ॥११॥

वयसा शास्त्रतो धैर्यात्कुलेनाऽभिजनेन च ।
ह्रीमान् बलान्वितः श्रीमान्सर्वशास्त्रविशारदः ॥१२॥
वेद चाऽस्त्रं भरद्वाजाद्दुर्धर्षः सत्यसङ्गरः ।
यो नित्यं स्पर्धते द्रोणं भीष्मं चैव महाबलम् ॥१३॥
श्लाघ्यः पार्थिववंशस्य प्रमुखे वाहिनीपतिः ।
पुत्रपौत्रैः परिवृतः शतशाख इव द्रुमः ॥१४॥
यस्तताप तपो घोरं सदारः पृथिवीपतिः ।
रोषाद् द्रोणविनाशाय वीरः सामितिशोभनः ॥१५॥
पितेवाऽस्मान्समाधत्ते यः सदा पार्थिवर्षभः ।
श्वशुरो द्रुपदोऽस्माकं सेनाग्रं स प्रकर्षतु ॥१६॥

हे महाभाग ! जो आयु, शास्त्र, धैर्य, कुल और स्वजन समूह में श्रेष्ठ है । जो बलवान्, लज्जाशील, कान्तिमान्, सब शास्त्रोंके ज्ञाता, दुर्धर्ष, दृढ़ता के साथ युद्ध करने वाले हैं । जिन्होंने भरद्वाज से अस्त्र विद्या पढ़ी है और जो नित्य महाबली द्रोण और भीष्म से युद्ध करने की स्पर्धा करता रहता है । राजवंशों में प्रमुख, सेनापतियों में जिसकी प्रशंसा है; जो सैकड़ों शाखा में विभक्त वृक्ष के समान पुत्र और पौत्रों से समन्वित है। जिस पृथिवीपति ने अपनी भार्या के साथ घोर तप किया । यह क्रोध से द्रोण के विनाश में सदा से प्रयत्न-शील है । जो वीर, युद्ध में बड़ी ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शोभा पाता है। जो नृपश्रेष्ठ सदा पिता की भांति हमारा पक्ष लेता रहता है, वे ही हमारे श्वसुर राजा द्रुपद इस सेना के सेनापति होने चाहिए ॥१२-१६॥

स द्रोणभीष्मावायातौ सहेदिति मतिर्मम ।
स हि दिव्यास्त्रविद्राजा सखा चाङ्गिरसो नृपः ॥१७॥

यदि इनके सन्मुख द्रोण या भीष्म कोई आ गया, तो ये उनसे लड़ने में किसी भी प्रकार कम नहीं रहेंगे। यह राजा, दिव्य अस्त्रों का ज्ञाता और अङ्गिरावंशज द्रोण के समान ही शक्तिसम्पन्न है।

माद्रीसुताभ्यामुक्ते तु स्वमते कुरुनन्दनः ।
वासविर्वासवसमः सव्यसाच्यब्रवीद्वचः ॥१८॥

जब इस प्रकार माद्री के पुत्र नकुल और सहदेव अपना मत कह चुके—तो कुरुनन्दन, इन्द्र के समान पराक्रमी इन्द्रपुत्र सव्यसाची अर्जुन, कहने लगा ॥१८॥

योऽयं तपःप्रभावेन ऋषिसन्तोषणेन च ।
दिव्यः पुरुष उत्पन्नो ज्वालावर्णो महाभुजाः ॥१९॥
धनुष्मान्कवची खड्गी रथमारुह्य दंशितः ।
दिव्यैर्हयवरैर्युक्तमग्निकुण्डात्समुत्थितः ॥२०॥
गर्जन्निव महामेघो रथघोषेण वीर्यवान् ।
सिंहसंहननो वीरः सिंहतुल्यपराक्रमः ॥२१॥
सिंहोरस्कः सिंहभुजः सिंहवक्त्रो महाबलः ।
सिंहप्रगर्जनो वीरः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः ॥२२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुभ्रूः सुदंष्ट्रः सुहनुः सुबाहुः सुमुखोऽकृशः ।
सुजत्रुः सुविशालाक्षः सुपादः सुप्रतिष्ठितः ॥२३॥
अभेद्यः सर्वशस्त्राणां प्रभिन्न इव वारणः ।
जज्ञे द्रोणविनाशाय सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥२४॥
धृष्टद्युम्नमहं मन्ये सहेद्भीष्मस्य सायकान् ।
वज्राशनिसमस्पर्शान्दीप्तास्यानुरगानिव ॥२५॥
यमदूतसमान्वेगे निपाते पावकोपमान् ।
रामेणाऽऽजौ विषहितान्वज्रनिष्पेषदारुणान् ॥२६॥

जो यह दिव्य पुरुष, तप के प्रभाव, ऋषियों के सन्तोषण से उत्पन्न हुआ है। जिस महाभुजधारी का अग्नि की ज्वाला के समान वर्ण है। जो धनुषधारी, कवच और खड्ग से सुशोभित, दिव्य अश्वों से युक्त और रथ पर चढ़ कर सब प्रकार के साधनों से तय्यार रहता है। जो अग्नि के कुण्ड से उत्पन्न हुआ है। जो वीर्यशाली अपने रथ के घोष से महामेघ के समान गर्जना करता है जिस वीर का शरीर और पराक्रम, सिंह के समान देदीप्यमान है। जिस महाबली और महा कान्तिमान् वीर का वक्षःस्थल, भुजा, हृदय और गर्जना सिंह के समान तीव्र है, जिसकी भौंहें, दांत, ठोड़ी, बाहु, मुख बड़े सुन्दर हैं। यह सब प्रकार से पुष्ट है। इसके जोतें सुन्दर, आंखें विशाल हैं। जो सुन्दर बरणों से युक्त और प्रतिष्ठाशाली है। मद टपकते हुए हाथी की भांति सारे शस्त्रों से अभेद्य है। जो सत्यवादी जितेन्द्रिय है। जिसने द्रोण के विनाश के लिए ही जन्म लिया है। जो वज्राशनि के तुल्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्पर्श वाले, मुख खुले हुए सर्प के सदृश भयानक, यमदूत के समान वेगशील, पतन में अग्नि तुल्य, युद्ध में परशुराम के सहने योग्य, वज्र के चूर्ण से रचित होने से ही मानो दारुण, भीष्म के बाणों को सहन कर सकता है। मैं तो उन्हीं धृष्टद्युम्न को सेनापति बनाना उचित समझता हूँ ॥१६–२६॥

पुरुषं तं न पश्यामि यः सहेत महाव्रतम् ।
धृष्टद्युम्नमृते राजन्निति मे धीयते मतिः ॥२७॥

हे राजन्! मैं तो धृष्टद्युम्न को छोड़ कर किसी वीर पुरुष को नहीं देखता, जो महाव्रती भीष्म के आक्रमण को सह सके और मेरी तो अनुमति भी धृष्टद्युम्न को ही सेनापति बनाने की है॥२७॥

क्षिप्रहस्तश्चित्रयोधी मतः सेनापतिर्मम ।
अभेद्यकवचः श्रीमान्मातङ्ग इव यूथपः ॥२८॥

यह बड़ी शीघ्रता (फुर्ती) से हाथ फैंकने वाला, विचित्र युद्ध-कर्ता है। इनके कवच का भी भेदन नहीं किया जा सकता है। यह यूथपति हाथी की भांति, ऐश्वर्यशाली है। मेरे मत में तो इनको ही सेनापति बनाना चाहिए ॥२८॥

भीमसेन उवाच—

वधार्थं यः समुत्पन्नः शिखण्डी द्रुपदात्मजः ।
वदन्ति सिद्धा राजेन्द्र ऋषयश्च समागताः ॥२९॥
यस्य संग्राममध्ये तु दिव्यमस्त्रं प्रकुर्वतः।
रूपं द्रक्ष्यन्ति पुरुषा रामस्येव महात्मनः ॥३०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुभ्रूः सुदंष्ट्रः सुहनुः सुबाहुः सुमुखोऽकृशः ।
सुजत्रुः सुविशालाक्षः सुपादः सुप्रतिष्ठितः ॥२३॥
अभेद्यः सर्वशस्त्राणां प्रभिन्न इव वारणः ।
जज्ञे द्रोणविनाशाय सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥२४॥
धृष्टद्युम्नमहं मन्ये सहेद्भीष्मस्य सायकान् ।
वज्राशनिसमस्पर्शान्दीप्तास्यानुरगानिव ॥२५॥
यमदूतसमान्वेगे निपाते पावकोपमान् ।
रामेणाऽऽजौ विषहितान्वज्रनिष्पेषदारुणान् ॥२६॥

जो यह दिव्य पुरुष, तप के प्रभाव, ऋषियों के सन्तोषण से उत्पन्न हुआ है। जिस महाभुजधारी का अग्नि की ज्वाला के समान वर्ण है। जो धनुषधारी, कवच और खड्ग से सुशोभित, दिव्य अश्वों से युक्त और रथ पर चढ़ कर सब प्रकार के साधनों से तय्यार रहता है। जो अग्नि के कुण्ड से उत्पन्न हुआ है। जो वीर्यशाली अपने रथ के घोष से महामेघ के समान गर्जना करता है जिस वीर का शरीर और पराक्रम, सिंह के समान देदीप्यमान है। जिस महाबली और महा कान्तिमान् वीर का वक्षःस्थल, भुजा, हृदय और गर्जना सिंह के समान तीव्र है, जिसकी भौंहें, दांत, ठोड़ी, बाहु, मुख बड़े सुन्दर हैं। यह सब प्रकार से पुष्ट है। इसके जोतें सुन्दर, आंखें विशाल हैं। जो सुन्दर बरणों से युक्त और प्रतिष्ठाशाली है। मद टपकते हुए हाथी की भांति सारे शस्त्रों से अभेद्य है। जो सत्यवादी जितेन्द्रिय है। जिसने द्रोण के विनाश के लिए ही जन्म लिया है। जो वज्राशनि के तुल्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्पर्श वाले, मुख खुले हुए सर्प के सदृश भयानक, यमदूत के समान वेगशील, पतन में अग्नि तुल्य, युद्ध में परशुराम के सहने योग्य, वज्र के चूर्ण से रचित होने से ही मानो दारुण, भीष्म के बाणों को सहन कर सकता है। मैं तो उन्हीं धृष्टद्युम्न को सेनापति बनाना उचित समझता हूँ ॥१६–२६॥

पुरुषं तं न पश्यामि यः सहेत महाव्रतम् ।
धृष्टद्युम्नमृते राजन्निति मे धीयते मतिः ॥२७॥

हे राजन्! मैं तो धृष्टद्युम्न को छोड़ कर किसी वीर पुरुष को नहीं देखता, जो महाव्रती भीष्म के आक्रमण को सह सके और मेरी तो अनुमति भी धृष्टद्युम्न को ही सेनापति बनाने की है॥२७॥

क्षिप्रहस्तश्चित्रयोधी मतः सेनापतिर्मम ।
अभेद्यकवचः श्रीमान्मातङ्ग इव यूथपः ॥२८॥

यह बड़ी शीघ्रता (फुर्ती) से हाथ फैंकने वाला, विचित्र युद्ध-कर्ता है। इनके कवच का भी भेदन नहीं किया जा सकता है। यह यूथपति हाथी की भांति, ऐश्वर्यशाली है। मेरे मत में तो इनको ही सेनापति बनाना चाहिए ॥२८॥

भीमसेन उवाच—

वधार्थं यः समुत्पन्नः शिखण्डी द्रुपदात्मजः ।
वदन्ति सिद्धा राजेन्द्र ऋषयश्च समागताः ॥२९॥
यस्य संग्राममध्ये तु दिव्यमस्त्रं प्रकुर्वतः।
रूपं द्रक्ष्यन्ति पुरुषा रामस्येव महात्मनः ॥३०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न तं युद्धे प्रपश्यामि यो भिन्द्यात्तु शिखण्डिनम् ।
शस्त्रेण समरे राजन्सन्नद्धं स्यन्दने स्थितम् ॥३१॥

भीमसेन ने कहा—हे राजेन्द्र ! द्रुपद का पुत्र शिखण्डी जिसके बध के लिए ही उत्पन्न हुआ है । इस बात को यहां आए हुए सिद्ध और ऋषि लोग कहते हैं । युद्ध के मध्य में शस्त्र फैंकते हुए जिसके रूप को महात्मा परशुराम के रूप की तरह अनेक वीर पुरुष देखते हैं । मुझे तो ऐसा कोई भी दिखाई नहीं पड़ता, जो शस्त्र लेकर तय्यारी के साथ रथ में बैठे हुए शिखण्डी का भेदन कर सके ॥२९-३१॥

द्वैरथे समरे नाऽन्यो भीष्मं हन्यान्महाव्रतम् ।
शिखण्डिनमृते वीरं स मे सेनापतिर्मतः ॥३२॥

जब घोर संग्राम उपस्थित होगा—तब शिखण्डी को छोड़ कर कोई ऐसा वीर नहीं है, जो महाव्रती भीष्म को मार सके । इसी कारण से मैं तो शिखण्डी को सेनापति बनाना चाहता हूँ ॥३२॥

युधिष्ठिर उवाच—

सर्वस्य जगतस्तात सारासारं बलाबलम् ।
सर्वं जानाति धर्मात्मा मतमेषां च केशवः ॥३३॥
यमाह कृष्णो दाशार्हः सोऽस्तु सेनापतिर्मम ।
कृतास्त्रोऽप्यकृतास्त्रो वा वृद्धो वा यदि वा युवा ।३४।

राजा युधिष्ठिर बोले—हे तात ! धर्मात्मा भगवान् कृष्ण, सारे जगत् के सार असार और बलाबल को अच्छी तरह से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जानते हैं। इन सबके मत भी भगवान् केशव के सन्मुख उपस्थित है। जिसके लिए दशार्हश्रेष्ठ, श्रीकृष्ण, कहेंगे—मैं उसे ही सेनापति बनाऊँगा, वह चाहे अस्त्र विद्या में कुशल हो या न हो अथवा वृद्ध हो या युवा हो ॥३३-३४॥

एष नो विजये मूलमेष तात विपर्यये।
अत्र प्राणाश्च राज्यं च भावाभावौ सुखासुखे ॥३५॥
एष धाता विधाता च सिद्धिरत्र प्रतिष्ठिता।
यमाह कृष्णो दाशार्हः सोऽस्तु नो वाहिनीपतिः ।३६।

हे तात! ये श्रीकृष्ण ही हमारे विजय और पराजय के मूल हैं। इन्हीं में हमारे प्राण, राज्य, उन्नति-अवनति और सुख-दुःख स्थित हैं। यही धाता और यही विधाता हैं। इन्हीं में हमारी सिद्धि विद्यमान है। दशार्ह-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण, जिसके सेनापति बनाने का अनुमोदन करेंगे। वे ही हमारे सेनापति होंगे ॥३५-३६॥

ब्रवीतु वदतां श्रेष्ठो निशा समभिवर्तते।
ततः सेनापतिं कृत्वा कृष्णस्य वशवर्तिनः ॥३७॥
रात्रेः शेषे व्यतिक्रान्ते प्रयास्यामो रणाजिरम्।
अधिवासितशस्त्राश्च कृतकौतुकमङ्गलाः ॥३८॥

ये बोलने वालों में श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण शीघ्र अपना मत प्रकट करें। अब रात बहुत चली जा रही है। श्रीकृष्ण की आज्ञा में रहने वाला सेनापति बनाकर रात्रि के शेष भाग के व्यतीत होने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर शस्त्रों के धूप आदि देकर और मङ्गलाचार करके हम भी रणाङ्गण में पहुँच जाना चाहते हैं ॥३७-३८॥

वैशम्पायन उवाच—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः ।
अब्रवीत्पुण्डरीकाक्षो धनञ्जयमवेक्ष्य ह ॥३९॥

वैशम्पायन बोले— हे राजन्! बुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर अर्जुन की ओर देखते हुए श्रीकृष्ण ने कहा।

ममाऽप्येते महाराज भवद्भिर्य उदाहृताः ।
नेतारस्तव सेनाया मता विक्रान्तयोधिनः ॥४०॥

हे महाराज! जो आपने अपनी सेना के नेता गिनाए हैं, वे सब बड़े ही विक्रम दिखाने वाले योद्धा हैं। इनमें आपकी ही भांति मेरी भी श्रद्धा है ॥ ४० ॥

सर्व एव समर्था हि तव शत्रुं प्रबाधितुम् ।
इन्द्रस्याऽपि भयं ह्येते जनयेयुर्महाहवे ॥४१॥
किं पुनर्धार्तराष्ट्राणां लुब्धानां पापचेतसाम् ।

तुम्हारे शत्रुओं को बाधा पहुँचाने में ये सारे ही समर्थ हैं। घोर संग्राम के प्रवृत्त होने पर तो ये इन्द्र को भी भय उत्पन्न कर सकते हैं, फिर लुब्धक, पापचेष्टा करने वाले दुर्योधनादि की तो गणना ही क्या है ॥ ४१ ॥

मयाऽपि हि महाबाहो त्वत्प्रियार्थं महाहवे ॥४२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृतो यत्नो महांस्तत्र शमः स्यादिति भारत ।
धर्मस्य गतमानृण्यं न स्म याच्या विवक्षताम् ॥४३॥

हे महाबाहो ! मैंने तो तुम्हारे हित के लिए युद्ध के प्रस्ताव छिड़ने पर बड़ा ही प्रयत्न किया. कि किसी प्रकार सन्धि हो जावे, परन्तु मैं सफल नहीं हुआ। इतना करने से हम धर्म से उऋण हो गए और इस विषय की चर्चा करने वालों के हम निन्दा के पात्र नहीं रहे ॥४२-४३॥

कृतास्त्रं मन्यते बाल आत्मानमविचक्षणः ।
धार्तराष्ट्रो बलस्थं च पश्यत्यात्मानमातुरः ॥४४॥

अपने स्वरूप को नहीं पहिचानने वाला मूर्ख धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन, अपने को अस्त्र विद्या में कुशल और बलवान् मानता है। वह तो युद्ध के लिए बड़ा ही आतुर हो रहा है ॥ ४४ ॥

युज्यतां वाहिनी साधु वधसाध्या हि मे मताः ।
न धार्तराष्ट्राः शक्ष्यन्ति स्थातुं दृष्ट्वा धनञ्जयम् ॥४५॥

अब तो तुम भी अपनी सेना को सजा लो। वे बिना मारे वश में नहीं आवेंगे। जब उनके सन्मुख रण में अर्जुन पहुंचेगा, तो वे ठहर नहीं सकेंगे ॥ ४५ ॥

भीमसेनं च संक्रुद्धं यमौ चापि यमोपमौ ।
युयुधानद्वितीयं च धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥४६॥
अभिमन्युं द्रौपदेयान्विराटद्रुपदावपि ।
अक्षौहिणीपतींश्चाऽन्यान्नरेन्द्रान्भीमविक्रमान् ॥४७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रोध में भरे हुए भीमसेन, यम के समान भीषण यम (नकुल सहदेव) युयुधान और असहिष्णु धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, प्रतिविन्ध्य आदि द्रौपदी के पांच पुत्र, विराट, द्रुपद, इन सेनापति और महापराक्रमी अन्य राजाओं के बल को भी वे लोग नहीं सह सकेंगे ॥४६—४७॥

सारवद्बलमस्माकं दुष्प्रधर्षं दुरासदम् ।
धार्तराष्ट्रबलं संख्ये हनिष्यति न संशयः ॥४८॥
धृष्टद्युम्नमहं मन्ये सेनापतिमरिन्दम ।

हमारी सेना बड़ी शक्तिशालिनी, दुष्प्रधर्ष और दुर्गम है। जब युद्ध होगा-उस समय अवश्य दुर्योधन की सेना को नष्ट भ्रष्ट कर देगी। मेरी सम्मति में धृष्टद्युम्न ही सेनापति होने चाहिए

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्ते तु कृष्णेन सम्प्राहृष्यन्नरोत्तमाः ॥४९॥
तेषां प्रहृष्टमनसां नादः समभवन्महान् ।

वैशम्पायन बोले-हे राजन्! जब श्रीकृष्ण ने इतना कहा-तो सारे राजा प्रसन्न हो गए। उन प्रसन्न चित्त वाले राजाओं का महान् कोलाहल खड़ा हो गया ॥ ४९ ॥

योग इत्यथ सैन्यानां त्वरतां सम्प्रधावताम् ॥५०॥
हयवारणशब्दाश्च नेमिघोषाश्च सर्वतः ।
शङ्खदुन्दुभिघोषश्च तुमुलाः सर्वतोऽभवन् ॥५१॥

युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाओ-इस प्रकार कहते हुए और शीघ्रता के साथ इधर उधर दौड़ती हुई सेना तथा हाथी घोड़ों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निनाद, रथ की नेमियों का घोष, शङ्ख और दुन्दुभियों का शब्द, मिल कर महान् कोलाहल हो गया ॥ ५०-५१ ॥

तदुग्रं सागरनिभं क्षुब्धं बलसमागमम् ।
रथपत्तिगजोदग्रं महोर्मिभिरिवाऽऽकुलम् ॥५२॥

यह सेना का समागम, उछलते हुए समुद्र के समान प्रतीत होता था, रथ, पैदल, हाथी आदि के घूमने से वह सेना समुद्र, बड़ी २ लहरों से उभलता हुआ दिखाई दे रहा था ॥ ५२ ॥

धावतामाह्वयानानां तनुत्राणि च बध्नताम् ।
प्रयास्यतां पाण्डवानां ससैन्यानां समन्ततः ॥५३॥
गङ्गेव पूर्णा दुर्धर्षा समदृश्यत वाहिनी ।

आह्वान के शब्द करके दौड़ते हुए, कवच बांधते हुए तथा सेना के सहित इधर उधर दौड़ते हुए पाण्डवों की सेना जल से पूर्ण दुर्धर्ष गङ्गा नदी सी दिखाई देती थी ॥ ५३ ॥

अग्रानीके भीमसेनो माद्रीपुत्रौ च दंशितौ ॥५४॥
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
प्रभद्रकाश्च पञ्चाला भीमसेनमुखा ययुः ॥५५॥

इस सेना के अग्रभाग में भीमसेन, तय्यार हुए, माद्री-पुत्र (नकुल सहदेव) सुभद्रापुत्र अभिमन्यु, द्रौपदीपुत्र, पर्षतवंशोत्पन्न धृष्टद्युम्न थे। प्रभद्रक आदि पांचाल भीमसेनके साथ चल रहे थे।

ततः शब्दः समभवत्समुद्रस्येव पर्वणि ।
हृष्टानां सम्प्रयातानां घोषो दिवमिवाऽस्पृशत् ॥५६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर्व पर उछलते हुए समुद्र के सदृश इस समय सेना का कोलाहल हो रहा था। प्रसन्न होकर दौड़ते हुए वीरोंका नाद, मानो आकाश को छू रहा था ॥ ५६ ॥

प्रहृष्टा दंशिता योधाः परानीकविदारणाः ।
तेषां मध्ये ययौ राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥५७॥

सारे योद्धा बड़े प्रसन्न और तय्यार थे, जो शत्रु की सेना के विदारण करने में बड़े कुशल माने जाते थे। उन सब वीरों के मध्य में कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर पहुंचे ॥ ५७ ॥

शकटापणवेशाश्च यानयुग्यं च सर्वशः ।
कोशं यन्त्रायुधं चैव ये च वैद्याश्चिकित्सकाः ॥५८॥
फल्गु यच्च बलं किञ्चिद्यच्चाऽपि कृशदुर्बलम् ।
तत्संगृह्य ययौ राजा ये चापि परिचारकाः ॥५९॥

शकट (गाड़ी) आपण (बाजार) की वस्तु, वस्त्र, रथ, भार वहन करने वाली गाड़ी (कराची) कोश, यन्त्रायुध (तोप) चिकित्सा कुशल वैद्य, शक्तिशाली और उससे कुछ न्यून-बल-वाली सेना, सेवक आदि उपयोगी सामान को लेकर राजा युधिष्ठिर चल दिए।

उपप्लव्ये तु पाञ्चाली द्रौपदी सत्यवादिनी ।
सहस्त्रीभिर्निववृते दासीदाससमावृता ॥६०॥

सत्यवादिनी पञ्चाल-पुत्री द्रौपदी, दासदासी और अपनी सखियों के साथ उपप्लव्य नगर में रहने लगी ॥ ६० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृत्वा मूलप्रतीकारं गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः ।
स्कन्धावारेण महता प्रययुः पाण्डुनन्दनाः ॥६१॥

राजा युधिष्ठिर ने धन और स्त्रियों की रक्षा के लिए प्राकार (दीवार) रचना और योद्धाओं की नियुक्ति की। इसके अनन्तर बड़ी भारी सेना (लश्कर) के साथ, पाण्डुपुत्र चल दिए ॥ ६१ ॥

ददतो गां हिरण्यं च ब्राह्मणैरभिसंवृताः ।
स्तूयमाना ययू राजन्रथैर्मणिविभूषितैः ॥६२॥

हे राजन्! राजा युधिष्ठिर आदि पाण्डव, गाय और सुवर्ण का दान करते हुए ब्राह्मणों से घिरे हुए थे। सूत मागध इनकी स्तुति गा रहे थे। ये मणियों से विभूषित, रथों से चल दिए ॥६२॥

केकया धृष्टकेतुश्च पुत्रः काश्यस्य चाऽभिभुः ।
श्रेणिमान्वसुदानश्च शिखण्डी चाऽपराजितः ॥६३॥
हृष्टास्तुष्टाः कवचिनः सशस्त्राः समलंकृताः ।
राजानमन्वयुः सर्वे परिवार्य युधिष्ठिरम् ॥६४॥

केकय देश के पांच राजकुमार, धृष्टकेतु, काशीराज-पुत्र अभिभु, श्रेणिमान, वसुदान, विजयी शिखण्डी आदि वीर बड़े सन्तुष्ट प्रफुल्लित थे। इन्होंने कवच, अलङ्कार और शस्त्र धारण कर रखे थे। ये सब राजा युधिष्ठिर को घेर कर चल दिए ।६३-६४।

जघनार्धे विराटश्च याज्ञसेनिश्च सौमकिः ।
सुधर्मा कुन्तिभोजश्च धृष्टद्युम्नस्य चाऽऽत्मजाः ॥६५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सेना के पिछले भाग में विराट, सोमक-वंशी यज्ञ-सेन (द्रुपद) पुत्र धृष्टद्युम्न, सुधर्मा, कुन्तिभोज तथा धृष्टद्युम्न के पुत्र थे ॥ ६५ ॥

रथायुतानि चत्वारि हयाः पञ्चगुणास्तथा ।
पत्तिसैन्यं दशगुणं गजानामयुतानि षट् ॥६६॥

चालीस हजार रथ, दो लाख अश्व. चार लाख पैदल सेना और हाथी साठ हजार थे ॥ ६६ ॥

अनाधृष्टिश्चेकितानो धृष्टकेतुश्च सात्यकिः ।
परिवार्य ययुः सर्वे वासुदेवधनञ्जयौ ॥६७॥

अनाधृष्टि, चेकितान, धृष्टकेतु, सात्यकि, श्रीकृष्ण और अर्जुन के साथ चल रहे थे ॥ ६७ ॥

आसाद्य तु कुरुक्षेत्रं व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
पाण्डवाः समदृश्यन्त नर्दन्तो वृषभा इव ॥६८॥

दृढ़ सेना वाले, योद्धा कुरुक्षेत्र में पहुंचे । वहां पाण्डव, सेना सहित गर्जना करते हुए महा-शक्ति-शाली वृषभ की तरह प्रतीत होते थे ॥ ६८ ॥

तेऽवगाह्य कुरुक्षेत्रं शङ्खान्दध्मुररिन्दमाः ।
तथैव दध्मतुः शङ्खं वासुदेवधनञ्जयौ ॥६९॥

ये अरिमर्दन, कुरुक्षेत्र में पहुंच कर शंख बजाने लगे और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ने भी अपने २ शंख बजाए ॥ ६९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ।
निशम्य सर्वसैन्यानि समहृष्यन्त सर्वशः ॥७०॥

श्रीकृष्ण के पाञ्चजन्य शंख की ध्वनि वज्र की कड़क के समान भीषण थी, जिसको सुन कर पाण्डवों की सारी सेना प्रसन्न हो गई ॥ ७० ॥

शङ्खदुन्दुभिसंहृष्टः सिंहनादस्तरस्विनाम् ।
पृथिवीं चाऽन्तरिक्षं च सागरांश्चाऽन्वनादयत् ॥७१॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि कुरुक्षेत्र-प्रवेशे एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५१॥

इस समय महा-शक्ति-शाली योद्धाओं का सिंहनाद शंख और दुन्दुभियों से मिलकर पृथिवी, आकाश और समुद्र तक को शब्दायमान कर रहा था ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्व में पाण्डवों की सेना के कुरुक्षेत्र में पहुंचने का एक सौ इक्कावनवां अध्याय समाप्त हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ बावनवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततो देशो समे स्निग्धे प्रभूतयवसेन्धने ।
निवेशयामास तदा सेनां राजा युधिष्ठिरः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! कुरुक्षेत्र में पहुंचने के अनन्तर युधिष्ठिरने घास, चारा और इन्धन की अधिकता वाले सुन्दर सम प्रदेश में अपनी सेना का पड़ाव डाला ॥ १ ॥

परिहृत्य श्मशानानि देवतायतनानि च ।
आश्रमांश्च महर्षीणां तीर्थान्यायतनानि च ॥२॥
मधुरानूषरे देशे शुचौ पुण्ये महामतिः ।
निवेशं कारयामास कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥३॥

महामति कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर ने श्मशान, देवस्थान, महर्षियों के आश्रम, तीर्थ, धर्मशालाओं के स्थानों को छोड़ कर सुन्दर उपजाऊ पवित्र स्थान में अपनी सेना का शिबिर डाला ।२-३

ततश्च पुनरुत्थाय सुखी विश्रान्तवाहनः ।
प्रययौ पृथिवीपालैर्वृतः शतसहस्रशः ॥४॥

जब राजा युधिष्ठिर ने विश्राम कर लिया और इसके सारे वाहन अपना थकान निकाल चुके, तो यह सुखपूर्वक उठा और सहस्रों की संख्या में राजा महाराजाओं को साथ लेकर चल दिया।

विद्राव्य शतशो गुल्मान्धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान् ।
पर्यक्रामत्समन्ताच्च पार्थेन सह केशवः ॥५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धृतराष्ट्र-पुत्र राजा दुर्योधन के अनेक सैनिकों को इधर उधर भगाते हुए अर्जुन के साथ श्रीकृष्ण घूम रहे थे ॥ ५ ॥

शिबिरं मापयामास धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
सात्यकिश्च रथोदारो युयुधानश्च वीर्यवान् ॥६॥

पर्षतवंशोत्पन्न धृष्टद्युम्न के उत्तम रथ वाले सात्यकि, वीर्यवान् युयुधान ने शिबिर के योग्य भूमि की नाप की ॥ ६ ॥

आसाद्य सरितं पुण्यां कुरुक्षेत्रे हिरण्वतीम् ।
सूपतीर्थां शुचिजलां शर्करापङ्कवर्जिताम् ॥७॥

ये सब कुरुक्षेत्र में बहने वाली उत्तम २ तटों से युक्त, रेत कीचड़ से रहित सुन्दर जल से पूर्ण, हिरण्वती नाम्नी नदी पर पहुंचे।

खानयामास परिखां केशवस्तत्र भारत ।
गुप्त्यर्थमपि चाऽऽदिश्य बलं तत्र न्यवेशयत् ॥८॥

हे भारत ! वहां श्रीकृष्ण ने खाई खुदवाई और उसकी रक्षा के लिए बहुत सी सेना को आज्ञा देकर नियुक्त कर दिया ॥ ८ ॥

विधिर्यः शिबिरस्याऽऽसीत्पाण्डवानां महात्मनाम् ।
तद्विधानि नरेन्द्राणां कारयामास केशवः ॥९॥
प्रभूततरकाष्ठानि दुराधर्षतराणि च ।
भक्ष्यभोज्यान्नपानानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०॥
शिबिराणि महार्हाणि राज्ञां तत्र पृथक्पृथक् ।
विमानानीव राजेन्द्र निविष्टानि महीतले ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाबली पाण्डवों के शिबिर की जो रचना थी, अन्य राजाओं के भी उसी तरह के शिबिर श्रीकृष्ण ने बनवा दिए, जिनमें बहुत सा काष्ठ, भक्ष्य, भोज्य और अन्न-पान की सामग्री विद्यमान थी। ये शिबिर (खेमे) बड़े ही दुराधर्ष (आक्रमण के अयोग्य) थे। हे राजेन्द्र ! बड़े २ व्यय से बने हुए लाखों की संख्या में वहां की भूमि पर भिन्न २ राजाओं के पृथक् २ शिबिर बनाए गए थे; जो सात तल्ले(मंजिल) के ऊंचे २ महलों की तरह सुशोभित हो रहे थे ॥ ९—११ ॥

तत्राऽऽसञ्शिल्पिनः प्राज्ञाः शतशो दत्तवेतनाः।
सर्वोपकरणैर्युक्ता वैद्याः शास्त्रविशारदाः ॥१२॥

वहां सैकड़ों की संख्या में वेतन धारी बुद्धिमान् शिल्पी थे और सारे शिल्प चिकित्सा के साधनों (औजारों) से युक्त, शास्त्रों के ज्ञाता वैद्य थे ॥ १२ ॥

ज्याधनुर्वर्मशस्त्राणां तथैव मधुसर्पिषोः ।
ससर्जरसपांसूनां राशयः पर्वतोपमाः ॥१३॥

धनुष की डोरी, धनुष, कवच, शस्त्र, मधु, सर्पि, राल, मिट्टी के पर्वत के आकार में वहां ढेर के ढेर लगे हुए थे ॥ १३ ॥

बहूदकं सुयवसं तुषाङ्गारसमन्वितम् ।
शिबिरे शिबिरे राजा सञ्चकार युधिष्ठिरः ॥१४॥

बहुत सा जल, घास चारा, तुष और अग्नि का प्रबन्ध शिबिर शिबिर में राजा युधिष्ठिर ने करवादिया ॥ १४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महायन्त्राणि नाराचास्तोमराणि परश्वधाः ।
धनूंषि कवचादीनि ऋष्टयस्तूणसंयुताः ॥१५॥
गजाः कण्टकसन्नाहा लोहवर्मोत्तरच्छदाः ।
दृश्यन्ते तत्र गिर्याभाः सहस्रशतयोधिनः ॥१६॥

वहां पर बड़े २ यन्त्र (तोप आदि) बाण, तोमर, परशु, धनुष, कवच, ऋष्टि, तूणीर, गज, कांटेदार कवच, लोहे के कवच और उत्तरच्छदों (ओढ़ने के कवचों) का पर्वत के आकार में ढेर लग रहा था और वहां लाखों की संख्या में योद्धा घूम रहे थे।

निविष्टान्पाण्डवांस्तत्र ज्ञात्वा मित्राणि भारत ।
अभिसस्रुर्यथादेशं सबलाः सहवाहनाः ॥१७॥

हे भारत ! पाण्डवों को कुरुक्षेत्र में पहुँचे हुए देख कर उनके मित्र वहां पहुँचे और राजा युधिष्ठिर की आज्ञानुसार स्थान पर अपनी सेना और वाहनों का डेरा लगाया ॥१७॥

चरितब्रह्मचर्यास्ते सोमपा भूरिदक्षिणाः
जयाय पाण्डुपुत्राणां समाजग्मुर्महीक्षितः ॥१८॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि शिबिरादि निर्माणे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५२॥

ब्रह्मचर्य व्रत के धारण, अनेक बार बड़ी २ दक्षिणा देकर यज्ञ करने वाले, सोमपायी राजा, पाण्डवों की विजय के प्रयत्न में वहां आए ॥१८॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्व में शिबिर रचना का एक सौ बावनवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ तिरेपनवां अध्याय

जनमेजय उवाच—

युधिष्ठिरं सहानीकमुपायान्तं युयुत्सया ।
सन्निविष्टं कुरुक्षेत्रे वासुदेवेन पालितम् ॥१॥

विराटद्रुपदाभ्यां च सपुत्राभ्यां समन्वितम् ।
केकयैर्वृष्णिभिश्चैव पार्थिवैः शतशो वृतम् ॥२॥

महेन्द्रमिव चाऽऽदित्यैरभिगुप्तं महारथैः ।
श्रुत्वा दुर्योधनो राजा किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥३॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महामते ।
सम्भ्रमे तुमुले तस्मिन्यदासीत्कुरुजाङ्गले ॥४॥

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन् ! युद्ध की इच्छा से सेना के साथ आए हुए, श्रीकृष्ण से सुरक्षित, पुत्रों सहित विराट और द्रुपद से युक्त कुरुक्षेत्र में शिबिर (डेरे) डाले हुए, केकय-वृष्णि आदि अनेक वीरों से युक्त, देवों से इन्द्र के तुल्य अनेक महारथियों से सुरक्षित, धर्मराज युधिष्ठिर को सुनकर राजा दुर्योधन ने क्या किया । हे महामते ! यह जो कुरुजाङ्गल प्रदेश में घोर वीरों का जमघट हुआ—मैं उसके विषय में विस्तार से सुनना चाहता हूं ॥१-४॥

व्यथयेयुरिमे देवान्सेन्द्रानपि समागमे ।
पाण्डवा वासुदेवश्च विराटद्रुपदौ तथा ॥५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः शिखण्डी च महारथः ।
युधामन्युश्च विक्रान्तो देवैरपि दुरासदः ॥६॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन ।
कुरूणां पाण्डवानां च यद्यदासीद्विचेष्टितम् ॥७॥

हे तपोधन ! पाण्डव, श्रीकृष्ण, महारथी शिखण्डी, पराक्रमी युधामन्यु, विराट, द्रुपद, धृष्टद्युम्न आदि वीर, देवों से भी अजेय हैं। अब मैं उस समय होने वाली कौरव और पाण्डवों की जो २ चेष्टाएँ हैं, उनको सुनना चाहता हूँ ॥५-७॥

वैशम्पायन उवाच—

प्रतियाते तु दाशार्हे राजा दुर्योधनस्तदा ।
कर्णं दुःशासनं चैव शकुनिं चाऽब्रवीदिदम् ॥८॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! जब हस्तिनापुर से श्रीकृष्ण लौटे—तो राजा दुर्योधन ने कर्ण, दुःशासन और शकुनि से इस प्रकार कहा ॥८॥

अकृतेनैव कार्येण गतः पार्थाधोक्षजः ।
स एनान्मन्युनाऽऽविष्टो ध्रुवं धक्ष्यत्यसंशयम् ॥९॥

हे महाभागो ! श्रीकृष्ण, यहां से अपने कार्य में असफल हुए पाण्डवों के पास लौट गए हैं। वे अब क्रोध में भरे हुए हैं, इससे अवश्य पाण्डवों को युद्ध के लिए उत्तेजित करेंगे ॥९॥

इष्टो हि वासुदेवस्य पाण्डवैर्मम विग्रहः ।
भीमसेनार्जुनौ चैव दाशार्हस्य मते स्थितौ ॥१०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

वसुदेव-पुत्र कृष्ण तो पाण्डवों के साथ मेरा युद्ध चाह ही रहे हैं और अर्जुन तथा भीमसेन कृष्ण की आज्ञा के अनुकूल चलते ही हैं ॥१०॥

अजातशत्रुरत्यर्थं भीमसेनवशानुगः ।
निकृतश्च मया पूर्वं सह सर्वैः सहोदरैः ॥११॥

अजातशत्रु युधिष्ठिर भी भीमसेन के कथन में चलते हैं। मैंने उनके भाइयों के साथ पूर्व में उनका अपमान भी बहुत कर रखा है ॥११॥

विराटद्रुपदौ चैव कृतवैरौ मया सह ।
तौ च सेनाप्रणेतारौ वासुदेववशानुगौ ॥१२॥

मेरे साथ विराट और द्रुपद का वैर पहिले से ही बढ़ा हुआ है। ये सेना का सञ्चालन अच्छी तरह से जानते हैं और ये भी वसुदेव-पुत्र कृष्ण के वशवर्ती हैं ॥१२॥

भविता विग्रहः सोऽयं तुमुलो लोमहर्षणः ।
तस्मात्सांग्रामिकं सर्वं कारयध्वमतन्द्रिताः ॥१३॥

इन सब कारणों पर विचार करने से यही प्रतीत होता है, कि अब लोमहर्षण घमसान युद्ध होगा, इसलिए तुम लोग भी अब सावधान होकर युद्ध की सारी तय्यारी करो ॥१३॥

शिबिराणि कुरुक्षेत्रे क्रियन्तां वसुधाधिपाः ।
स्वपर्याप्तावकाशानि दुरादेयानि शत्रुभिः ॥१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब हमारे पक्ष के राजा भी कुरुक्षेत्र में अपने २ शिबिर बनावें, जिनमें पर्याप्त स्थान और जो शत्रुओं के आक्रमण के अयोग्य हों ॥१४॥

आसन्नजलकाष्ठानि शतशोऽथ सहस्रशः ।
अच्छेद्याहारमार्गाणि बन्धोच्छ्रयचितानि च ॥१५॥
विविधायुधपूर्णानि पताकाध्वजवन्ति च ।

उनमें जल और काष्ठ का पर्याप्त प्रबन्ध हो। जिनका आहार आने का मार्ग बन्द न किया जा सके। जो बन्धनकी दृढ़ता के साथ ऊँचे २ बनाए गए हों। जो अनेक आयुध, पताका और ध्वजाओं से सुशोभित हों, ऐसे सैकड़ों हजारों की संख्या में शिबिर बना डालो ॥१४-१५॥

समाश्च तेषां पन्थानः क्रियन्तां नगराद्बहिः ॥१६॥
प्रयाणं घुष्यतामद्य श्वोभूत इति मा चिरम् ।

अब नगर के बाहर से कुरुक्षेत्र तक का मार्ग साफ करवा दो और आज ही घोषणा कर दो—देर न करो, क्योंकि कल सेना कुरुक्षेत्र को प्रयाण करेगी ॥१६॥

ते तथेति प्रतिज्ञाय श्वोभूते चक्रिरे तथा ॥१७॥
हृष्टरूपा महात्मानो निवासाय महीक्षिताम् ।

कर्ण आदि ने कहा—अच्छी बात है। इतना कहकर इन प्रसन्न हुए कर्ण आदि महारथियों ने राजाओं के शिबिरों के लिए और कल कुरुक्षेत्र की ओर सेना का प्रयाण है, इसके लिए घोषणा करवा दी ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे तच्छ्रुत्वा राजशासनम् ॥१८॥
आसनेभ्यो महार्हेभ्य उदतिष्ठन्नमर्षिताः ।

सारे राजा, राजा दुर्योधन की यह आज्ञा सुनकर आवेश में भर गए और सब अपने २ अमूल्य आसनों पर से खड़े हो गये ।

बाहून्परिघसङ्काशान्संस्पृशन्तः शनैः शनैः ॥१९॥
काञ्चनाङ्गददीप्तांश्च चन्दनागुरुभूषितान् ।

ये परिघ (अर्गला) के समान सुवर्ण के आभूषणों से प्रदीप्त, चन्दन अगर से चर्चित भुजाओं को धीरे २ मलने लगे ।

उष्णीषाणि नियच्छन्तः पुण्डरीकनिभैः करैः ॥
अन्तरीयोत्तरीयाणि भूषणानि च सर्वशः ॥२०॥

ये राजा, कमल के समान हाथों से अपनी पगड़ी, पहिनने, ओढ़ने के वस्त्र और आभूषणों को ठीक करने लगे ॥२०॥

ते रथान्रथिनः श्रेष्ठा हयांश्च हयकोविदाः ।
सज्जयन्ति स्म नागांश्च नागशिक्षास्वनुष्ठिताः ॥२१॥

जो रथ, हाथी, अश्व आदि की विद्या के जानने वाले थे, वे वीर अपने २ रथ, हाथी और घोड़ों को सजाने लगे ॥२१॥

अथ वर्माणि चित्राणि काञ्चनानि बहूनि च ।
विविधानि च शस्त्राणि चक्रुः सर्वाणि सर्वशः ॥२२॥

इन्होंने सुवर्ण लोह आदि के अनेक अद्भुत कवच और अनेक प्रकार के शस्त्रों को यथास्थान धारण किया ॥२२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पदातयश्च पुरुषाः शस्त्राणि विविधानि च ।
उपाजह्रुः शरीरेषु हेमचित्राण्यनेकशः ॥२३॥

जो पदाति (पैदल) सेना थी, उसने भी अनेक भांति के शस्त्र और सुवर्ण जटित कवच अपने शरीर में धारण किए ॥२३॥

तदुत्सव इवोदग्रं सम्प्रहृष्टनरावृतम् ।
नगरं धार्तराष्ट्रस्य भारताऽऽसीत्समाकुलम् ॥२४॥

हे भारत ! यह सेना की उग्र हलचल उस समय उत्सव सा सूचित कर रही थी। इसमें जिस ओर देखो उधर ही प्रसन्न पुरुष दिखाई देते थे। इस समय राजा दुर्योधन के नगर हस्तिनापुर में बड़ा ही भीड़ भड़क्का हो रहा था ॥२४॥

जनौघसलितावर्तो रथनागाश्वमीनवान् ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः कोशसञ्चयरत्नवान् ॥२५॥
चित्राभरणवर्मोर्मिः शस्त्रनिर्मलफेनवान् ।
प्रासादमालाद्रिवृतो रथ्यापणमहाह्रदः ॥२६॥
योधचन्द्रोदयोद्धूतः कुरुराजमहार्णवः ।
व्यदृश्यत तदा राजंश्चन्द्रोदय इवोदधिः ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि दुर्योधनसैन्यसज्जकरणे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५३॥

हे राजन् ! इस समय दुर्योधन की सेना-समुद्र के समान प्रतीत होती थी, जिसमें सैनिकोंका समूह जलप्रवाह सा प्रतीत होता था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसमें रथ, हाथी और अश्व मीन आदि जलजन्तु थे। शंख दुन्दुभि आदि का शब्द समुद्र की ध्वनि थी। सेना का कोश (खजाना) समुद्र की रत्नराशि थी। सेना के विचित्र आभरण और कवच बड़ी २ लहरें, चमकते हुए शस्त्र, निर्मल फेन (झाग) थे। बड़े बड़े बने हुए प्रासादों (महलों) की मालाएं पर्वत के समान थीं। सेना में बनी हुई सड़क और बाजार बड़े २ ह्रद (तालाब) थे। योद्धाओं का चन्द्रके समान उदय था। इस प्रकार कुरुराज दुर्योधन की सेना का समुद्र उछल रहा था। यह सेना इस तरह उछलती थी, जैसे चन्द्रोदय के समय समुद्र उछलता है। ॥ २५-२७ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्व में दुर्योधन के सेना सजाने का एक सौ तरेपनवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ चौवनवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

वासुदेवस्य तद्वाक्यमनुस्मृत्य युधिष्ठिरः।
पुनः पप्रच्छ वार्ष्णेयं कथं मन्दोऽब्रवीदिदम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! राजा युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण के सन्धि विषयक वार्तालाप का फिर स्मरण आया। वे वृष्णि-वंश-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण से फिर पूछने लगे, कि दुर्बुद्धि दुर्योधन ने इस बात को किस तरह कहा था ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्मिन्नभ्यागते काले किं च नः क्षममच्युत ।
कथं च वर्तमाना वै स्वधर्मान्न च्यवेमहि ॥२॥

हे अच्युत ! इस समय के उपस्थित होने पर अब हमको क्या करना चाहिये । हम लोग किस तरह से व्यवहार करें, जिससे अपने क्षात्र-धर्म से च्युत न होवें ॥ २ ॥

दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च ।
वासुदेव मतज्ञोऽसि मम सभ्रातृकस्य च ॥३॥
विदुरस्याऽपि तद्वाक्यं श्रुतं भीष्मस्य चोभयोः ।
कुन्त्याश्च विपुलप्रज्ञ प्रज्ञा कार्त्स्न्येन ते श्रुता ॥४॥
सर्वमेतदतिक्रम्य विचार्य च पुनः पुनः ।
क्षमं यन्नो महाबाहो तद्ब्रवीह्यविचारयन् ॥५॥

हे वासुदेव ! आप दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि और भाइयों सहित मेरे सारे विचारों के जानने वाले हो । आपने विदुर और भीष्म इन दोनों के भी वचन सुन लिए हैं । हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! आपने माता कुन्ती की भी सारी बातें सुन ली । हे महाबाहो ! इन सब को छोड़ कर और स्वयं स्वतन्त्रता से विचार कर, विना किसी बाधा के कह दो, कि अब हमें क्या करना योग्य है ॥३-५॥

श्रुत्वैतद्धर्मराजस्य धर्मार्थसहितं वचः ।
मेघदुन्दुभिनिर्घोषः कृष्णो वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥६॥

हे राजन् ! इस प्रकार धर्म और नीति युक्त धर्मराज युधिष्ठिर के वचन सुनकर मेघ गर्जना और दुन्दुभि की ध्वनि के तुल्य गर्जते हुए श्रीकृष्ण कहने लगे ॥ ६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण उवाच—

उक्तवानस्मि यद्वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् ।
न तु तन्निकृतिप्रज्ञे कौरव्ये प्रतितिष्ठति ॥७॥

हे महाभाग ! मैंने राजा दुर्योधन से धर्म और नीति पूर्ण वचन कहे थे, परन्तु छल परायण बुद्धि वाले दुर्योधन के चित्त पर इनसे कोई प्रभाव नहीं पड़ा ॥ ७ ॥

न च भीष्मस्य दुर्मेधाः शृणोति विदुरस्य वा ।
मम वा भाषितं किञ्चित्सर्वमेवाऽतिवर्तते ॥८॥

इस दुर्बुद्धि ने न तो भीष्म न विदुर और न मेरे वचनों को कुछ सुना । उसने तो सबका कथन कान पर से निकाल दिया ।

नैष कामयते धर्मं नैष कामयते यशः ।
जितं स मन्यते सर्वं दुरात्मा कर्णमाश्रितः ॥९॥

इसे न तो धर्म की कामना है और न यह यश ही चाहता है । यह तो कर्ण की सहायता पाकर सबको जीता हुआ ही समझ रहा है ॥ ९ ॥

बन्धमाज्ञापयामास मम चापि सुयोधनः ।
न च तं लब्धवान्कामं दुरात्मा पापनिश्चयः ॥१०॥

इस पाप कर्म के निश्चय करने वाले दुरात्मा दुर्योधन ने तो मेरे बांध लेने का प्रयत्न किया था, परन्तु उस नीच की यह कामना पूर्ण नहीं हुई ॥ १० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न च भीष्मो न च द्रोणो युक्तं तत्राऽऽहतुर्वचः ।
सर्वे तमनुवर्तन्ते ऋते विदुरमच्युत ॥११॥

हे राजन् ! भीष्म या द्रोण भी उसके आगे खुल कर नहीं बोल पाते हैं, सबको उसके पीछे चलना पड़ता है । हाँ ? केवल बिदुर ही उसके आगे उसका खुलकर विरोध करता है ॥ ११ ॥

शकुनिः सौबलश्चैव कर्णदुःशासनावपि ।
त्वय्ययुक्तान्यभाषन्त मूढा मूढममर्षणम् ॥१२॥

सुबल-पुत्र शकुनि, कर्ण, दुःशासन आदि मूर्ख भी उसी असहन-शील मूर्ख दुर्योधन से तुम्हारे विरुद्ध ही कहते रहते हैं ।

किं च तेन मयोक्तेन यान्यभाषत कौरवः ।
संक्षेपेण दुरात्माऽसौ न युक्तं त्वयि वर्तते ॥१३॥
पार्थिवेषु न सर्वेषु य इमे तव सैनिकाः ।
यत्पापं यन्न कल्याणं सर्वं तस्मिन्प्रतिष्ठितम् ॥१४॥

कुरुराज दुर्योधन ने तुम्हारे विरुद्ध मुझे क्या २ कहा, इस सारी कथा के कहने से लाभ ही क्या है । सारांश यही है, कि वह दुरात्मा तुम्हारे विषय में उचित ढंग से बात नहीं करता है और न यह तुम्हारे साथी राजाओं को कुछ समझता है एवं न तुम्हारी सेना की परवाह करता है । जो कुछ पाप और अकल्याण है, वह सब कुछ आपके लिए उसने रख छोड़ा है ॥ १३—१४ ॥

न चाऽपि वयमत्यर्थं परित्यागेन कर्हिचित् ।
कौरवैः शममिच्छामस्तत्र युद्धमनन्तरम् ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम बिल्कुल ही राज्य का परित्याग करके सन्धि नहीं कर सकते। अब तो युद्ध बहुत ही समीप आ गया है ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच—

तच्छ्रुत्वा पार्थिवाः सर्वे वासुदेवस्य भाषितम् ।
अब्रुवन्तो मुखं राज्ञः समुदैक्षन्त भारत ॥१६॥

वैशम्पायन ने कहा—हे भारत ! इस प्रकार श्रीकृष्ण के वचन सुनकर सब राजा धर्मराज युधिष्ठिर के मुख को चुपचाप देखने लगे।

युधिष्ठिरस्त्वभिप्रायमभिलक्ष्य महीक्षिताम् ।
योगमाज्ञापयामास भीमार्जुनयमैः सह ॥१७॥

राजा युधिष्ठिर ने अपने साथी राजाओं का अभिप्राय समझ कर भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव के साथ मन्त्रणा करके युद्ध की तय्यारी के लिए आज्ञा दी ॥ १७ ॥

ततः किलकिलाभूतमनीकं पाण्डवस्य ह ।
आज्ञापिते तदा योगे समहृष्यन्त सैनिकाः ॥१८॥

इस समय पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर की सेना में कोलाहल मच गया। जब राजा युधिष्ठिर ने युद्ध की आज्ञा दे दी, तो उसको सुनकर सारे सैनिक बड़े प्रफुल्लित हुए ॥ १८ ॥

अवध्यानां वधं पश्यन्धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
निःश्वसन्भीमसेनं च विजयं चेदमब्रवीत् ॥१९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब धर्मराज युधिष्ठिर ने देखा, कि इस युद्ध में अवध्यों का भी वध करना पड़ेगा, तो वे दुःखपूर्ण निःश्वास लेकर भीमसेन और अर्जुन से कहने लगे ॥ १९ ॥

यदर्थं वनवासश्च प्राप्तं दुःखं च यन्मया ।
सोऽयमस्मानुपैत्येव परोऽनर्थः प्रयत्नतः ॥२०॥

हे भ्राताओ ! जिस अपने बन्धुओं के विनाश की आशङ्का से मैंने वनवास लिया और दुःख उठाया, अब वही महान् अनर्थ बड़ी तीव्रता के साथ हमको उपस्थित हो गया है ॥२०॥

तस्मिन्यत्नः कृतोऽस्माभिः स नो हीनः प्रयत्नतः ।
अकृते तु प्रयत्नेऽस्मानुपावृत्तः कलिर्महान् ॥२१॥

हमने युद्ध नहीं होने के लिए बड़ी तीव्रता से प्रयत्न किया, परन्तु हम उससे वञ्चित ही रहे और इस युद्ध के लिए कुछ भी यत्न नहीं किया, परन्तु यह कलह उपस्थित हो गया ॥२१॥

कथं ह्यवध्यैः संग्रामः कार्यः सह भविष्यति ।
कथं हत्वा गुरून्वृद्धान्विजयो नो भविष्यति ॥२२॥

अवध्य और पूज्य लोगों के साथ कैसे युद्ध किया जा सकेगा और वृद्ध तथा पूज्यों को मार कर हम कैसे सच्चे विजय प्राप्त करने वाले कहा सकेंगे ॥२२॥

तच्छ्रुत्वा धर्मराजस्य सव्यसाची परन्तपः ।
यदुक्तं वासुदेवेन श्रावयामास तद्वचः ॥२३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार धर्मराज के वचन सुनकर परन्तप, सव्यसाची अर्जुन ने भी श्रीकृष्ण के कहे हुए हस्तिनापुर की सभा का वृत्तान्त फिर दुहराया ॥२३॥

उक्तवान्देवकीपुत्रः कुन्त्याश्च विदुरस्य च ।
वचनं तत्त्वया राजन्निखिलेनाऽवधारितम् ॥२४॥

हे राजन् ! देवकी पुत्र श्रीकृष्ण, माता कुन्ती और विदुर ने जो वचन कहे हैं—वे सब आपने अच्छी तरह समझ लिए हैं ।

न च तौ वक्ष्यतोऽधर्ममिति मे नैष्ठिकी मतिः ।
नाऽपि युक्तं च कौन्तेय निवर्तितुमयुध्यतः॥२५॥

कुन्ती और विदुर हमको अधर्म का मार्ग नहीं बता सकते—यह मुझे निश्चय है । हे धर्मराज ! हमको विना युद्ध किए, अब पीछे हटना उचित नहीं है ॥२५॥

तच्छ्रुत्वा वासुदेवोऽपि सव्यसाचिवचस्तदा ।
स्मयमानोऽब्रवीद्वाक्यं पार्थमेवमिति ब्रुवन् ॥२६॥

अर्जुन के ये वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने मुस्कुराकर अर्जुन से कहा, कि तुम ठीक कह रहे हो ॥२६॥

ततस्ते धृतसङ्कल्पा युद्धाय सहसैनिकाः ।
पाण्डवेया महाराज तां रात्रिं सुखमावसन् ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि युधिष्ठिरार्जुनसंवादे चतुःपंचाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे महाराज ! इस प्रकार अपने सैनिकों के साथ पाण्डवों ने युद्ध का निश्चय किया और उस रात को सुख से व्यतीत की ॥२७॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्व में युधिष्ठिर और अर्जुन के सम्वाद का एक सौ चौवनवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ पचपनवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

व्युष्टायां वै रजन्यां हि राजा दुर्योधनस्ततः ।
व्यभजत्तान्यनीकानि दश चैकं च भारत ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत ! रात्रि के व्यतीत होने पर राजा दुर्योधन ने अपनी ग्यारह अक्षौहिणी सेना का विभाग किया ॥१॥

नरहस्तिरथाश्वानां सारं मध्यं च फल्गु च ।
सर्वेष्वेतेष्वनीकेषु सन्दिदेश नराधिपः ॥२॥

राजा दुर्योधन ने आगे, मध्य और पीछे रहने वाले उत्तम, मध्यम और अधम नर, हाथी, रथ तथा अश्वों की सेना के विभाग को अपने २ स्थान पर रहने की आज्ञा दी ॥२॥

सानुकर्षाः सतूणीराः सवरूथाः सतोमराः ।
सोपासङ्गाः सशक्तीकाः सनिषङ्गाः सहर्ष्टयः ॥३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सध्वजाः सपताकाश्च सशरासनतोमराः ।
रज्जुभिश्च विचित्राभिः सपाशाः सपरिच्छदाः ॥४॥
सकचग्रहविक्षेपाः सतैलगुडवालुकाः ।
साशीविषघटाः सर्वे ससर्जरसपांसवः ॥५॥
सघण्टफलकाः सर्वे सायोगुडजलोपलाः ।
सशालभिन्दिपालाश्च समधूच्छिष्टमुद्गराः ॥६॥
सकाण्डदण्डकाः सर्वे ससीरविषतोमराः ।
सशूर्पपिटकाः सर्वे सदात्रांकुशतोमराः ॥७॥
सकीलकवचाः सर्वे वाशीवृक्षादनान्विताः ।
व्याघ्रचर्मपरीवारा द्वीपिचर्मावृताश्च ते ॥८॥
सहर्ष्टयः सशृङ्गाश्च सप्रासविविधायुधाः ।
सकुठाराः सकुद्दालाः सतैलक्षौमसर्पिषः ॥९॥
रुक्मजालप्रतिच्छन्ना नानामणिविभूषिताः ।
चित्रानीकाः सुवपुषो ज्वलिता इव पावकाः ॥१०॥

अनुकर्ष, (युद्ध में रथ के टूटने पर उसके सुधारने का रथ के नीचे लगा हुआ काष्ठ) तूणीर, (रथ में लगा हुआ बाण कोष) वरूथ, (व्याघ्रादि चर्मों से बनी हुई रथ गुप्ति) तोमर, (लकड़ी में लगे हुए भाले) उपासंग, (हाथी घोड़ों से ले जाने योग्य बाण समूह) शक्ति, (लोह दण्ड) ऋष्टि, (काष्ठ दण्ड) ध्वजा, (झण्डे) पताका, (झण्डियां) शरासन तोमर, (धनुष से फैंके जाने वाले बड़े बाण) अनेक प्रकार की रज्जु, (गले में डालने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की पाश) परिच्छद, (विस्तार) कचग्रह विक्षेप, (बाल पकड़ने वाला लोह दण्ड) तैल, गुड़, बालुका, सर्पों के घट, कुटी हुई राल, घंटफलक (घंटियों सहित ढ़ाल) खड्ग, पट्टिश, छुरी आदि तप्त गुड़ का जल, पत्थर के गोले, शब्द करने वाले गोफलक, (गोफिए) मधूच्छिष्ट (गर्म करके फैंकने योग्य जल विशेष) मुद्गर, (मूसल जैसा दण्ड) काण्ड दण्ड, (बाण की फर से युक्त दण्ड) विष में बुझे हुए तोमर, शूर्प (तप्त तेल या गुड के फैंकने के छाज) पिटक, (पिटारी) दात्र, (दराँत) अंकुश लगे हुए तोमर, कील लगे हुए कवच, वाशी, (वसूली) वृक्षादन (लोह के कांटे कील आदि) व्याघ्र चर्म के आवरण, हाथियों के चर्म, ऋषि (बांके काष्ठ का दण्ड) शृङ्ग (बिगड़े रक्त के खैंचने वाले सींग) प्रास (भाले) आदि अनेक शस्त्र, कुठार, कुदाल, तैल और घृत के भीगे हुए घाव में भरने के वस्त्र आदि युद्ध की सामग्री, सुवर्ण और नाना प्रकार की मणियों से विभूषित सारे सैनिक अपने दिव्य शरीर से जलती हुई आग की तरह देदीप्यमान हो रहे थे ॥३-१०॥

तथा कवचिनः शूराः शस्त्रेषु कृतनिश्चयाः ।
कुलीना हययोनिज्ञाः सारथ्ये विनिवेशिताः ॥११॥
बद्धारिष्टा बद्धकक्षा बद्धध्वजपताकिनः ।
बद्धाभरणनिर्यूहा बद्धचर्मासिपट्टिशाः ॥१२॥

जो वीर, शस्त्र-विद्या में कुशल, कुलीन, अश्वों के तत्व के जानने वाले थे, उनको कवच पहरा २ कर रथों के सारथि पद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर नियुक्त किया। इनके औषधि आदि मंगल द्रव्य बँध रहे थे और ये कक्षा (अश्वों के शिर की मोती आदि की माला) आभरण (छोटी २ घंटी) निर्यूह (शिखर) आदि अश्वों की सामग्री से युक्त थे। इन्होंने ढाल, तलवार और पट्टिश नामक शस्त्र बांध रखे थे ॥११-१२॥

चतुर्युजो रथाः सर्वे सर्वे चोत्तमवाजिनः ।
सप्रासऋष्टिकाः सर्वे सर्वे शतशरासनाः ॥१३॥

सब के रथों में चार २ अश्व बँधे थे और सारे ही उत्तम २ अश्व थे। सबके पास भाले और ऋष्टि (काष्ठ-दण्ड) थे और सैकड़ों धनुषों से युक्त थे ॥१३॥

धुर्ययोर्हययोरेकस्तथाऽन्यौ पार्ष्णिसारथी ।
तौ चापि रथिनां श्रेष्ठौ रथी च हयवित्तथा ॥१४॥

आगे चलने वाले अश्वों के पास एक और दो चक्र रक्षक थे। ये दोनों महारथी थे। रथ में बैठ कर युद्ध करने वाला प्रत्येक महारथी भी अश्वों के हांकने में कुशल था ॥१४॥

नगराणीव गुप्तानि दुराधर्षाणि शत्रुभिः ।
आसन्रथसहस्राणि हेममालीनि सर्वशः ॥१५॥

शत्रुओं के आक्रमण के अयोग्य, सुरक्षित नगरों के समान सुवर्ण की मालाओं से सुशोभित सहस्रों रथ दुर्योधन की सेना में थे।

यथा रथास्तथा नागा बद्धकक्षाः स्वलंकृताः ।
बभूवुः सप्त पुरुषा रत्नवन्त इवाऽद्रयः ॥१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिस प्रकार के ये रथ थे, इसी तरह के मोती आदि की मालाओं से अलंकृत हाथी थे। इन पर बैठे हुए आभूषणों से अलंकृत सात वीर रत्नों के पर्वत के समान प्रतीत होते थे ॥१६॥

द्वावंकुशधरौ तत्र द्वावुत्तमधनुर्धरौ ।
द्वौ वरासिधरौ राजन्नेकः शक्तिपिनाकधृक् ॥१७॥

इन सात वीरों में दो के पास अंकुश, दो धनुष और दो खड्ग (तलवार) धारी थे एवं एक शक्ति और त्रिशूल धारी था ।१७

गजैर्मत्तैः समाकीर्णं सवर्मायुधकोशकैः ।
तद्बभूव बलं राजन्कौरव्यस्य महात्मनः ॥१८॥
आमुक्तकवचैर्युक्तैः सपताकैः स्वलंकृतैः ।
सादिभिश्चोपपन्नास्तु तथा चाऽयुतशो हयाः ॥१९॥

हे राजन्! इस प्रकार महावीर कुरुराज दुर्योधन की सेना कवच शस्त्र और कोश से भरे हुए मदोन्मत्त हाथियों से भरी पड़ी थी। इस सेनामें कवचधारी अलङ्कारों से युक्त पताकाओं से सुशोभित, अश्वारोहियों से समन्वित अनेक अश्व थे ॥ १८—१९ ॥

असंग्राहाः सुसम्पन्ना हेमभाण्डपरिच्छदाः ।
अनेकशतसाहस्राः सर्वे सादिवशे स्थिताः ॥२०॥

इन अश्वों में कोई भी अश्व, बेढ़ंगी रीति से आगे के पैर उठाकर खड़ा नहीं होता था। ये सब अच्छी तरह सिखाये हुए और सुवर्ण के आभरणों से सम्पन्न थे। लाखों की सख्या में इकट्ठे हुए ये सारे अश्व अपने सवार के संकेत पर चलते थे ॥२०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

नानारूपविकाराश्च नानाकवचशस्त्रिणः ।
पदातिनो नरास्तत्र बभूवुर्हेममालिनः ॥२१॥

अनेक प्रकार की वेष-भूषा, कवच और शस्त्रधारी पदाति सुशोभित हो रहे थे, जिन्होंने सुवर्ण की मालाएँ पहन रखी थी।

रथस्याऽऽसन्दश गजा गजस्य दश वाजिनः ।
नरा दश हयस्याऽऽसन्पादरक्षाः समन्ततः ॥२२॥

एक रथ के साथ दश हाथी, एक हाथी के साथ दश घोड़े, एक घोड़े के साथ चारों ओर दश पैदल थे ॥ २२ ॥

रथस्य नागाः पञ्चाशन्नागस्याऽऽसञ्शतं हयाः ।
हयस्य पुरुषाः सप्त भिन्नप्रन्वानकारिणः ॥२३॥

किसी स्थान पर एक प्रधान रथ के साथ पचास हाथी, एक हाथी के साथ सौ अश्व और एक अश्व के साथ लक्ष्य भेदन करने वाले धनुष-बाण-धारी सात पैदल सैनिक थे ॥ २३ ॥

सेना पञ्चशतं नागाः रथास्तावन्त एव च ।
दश सेना च पृतना पृतना दश वाहिनी ॥२४॥

पांच सौ हाथी, पांच सौ रथ की एक सेना, इस प्रकार की दश सेना पृतना और ऐसे ही दश पृतना वाहिनी कहाती हैं ॥२४॥

सेना च वाहिनी चैव पृतना ध्वजिनी चमूः ।
अक्षौहिणीति पर्यायैर्निरुक्ता च वरूथिनी ॥२५॥

सेना, वाहिनी, पृतना, ध्वजिनी, चमू, वरूथिनी और अक्षौहिणी, ये सब भिन्न २ सेना के विभागों के ही नाम हैं ॥ २५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवं व्यूढान्यनीकानि कौरवेयेण धीमता ।
अक्षौहिण्यो दशैका च संख्याताः सप्त चैव ह ॥२६॥
अक्षौहिण्यस्तु सप्तैव पाण्डवानामभूद्बलम् ।
अक्षौहिण्यो दशैका च कौरवाणामभूद्बलम् ॥२७॥

बुद्धिमान् कुरुराज ने अपनी सेना का अद्भुत ढंग से व्यूह बनाया, ग्यारह अक्षौहिणी सेना कुरुराज की थी और सात अक्षौहिणी सेना धर्मराज की पूर्व में ही गिनी जा चुकी । पाण्डवों की सेना केवल सात अक्षौहिणी थी और कौरवों की सेना ग्यारह अक्षौहिणी थी । इस प्रकार दोनों ओर की सेनाएँ अट्ठारह अक्षौहिणी वहां इकट्ठी हो रही थी ॥ २६—२७ ॥

नराणां पञ्चपञ्चाशदेषा पत्तिर्विधीयते ।
सेनामुखं च तिस्रस्ता गुल्म इत्यभिशब्दितम् ॥२८॥
त्रयो गुल्मा गणस्त्वासीद् गणास्त्वयुतशोऽभवन् ।
दुर्योधनस्य सेनासु योत्स्यमानाः प्रहारिणः ॥२९॥

पचपन सैनिकों की एक पत्ती और तीन पत्तियों की एक सेनामुख. जो गुल्म भी कहाते हैं। तीन गुल्म का एक गण होता है। कुरुराज की सेना में ऐसे हजारों गण थे। जिनमें उत्तम रीति से युद्ध करने वाले असंख्य योधा थे ॥ २८—२९ ॥

तत्र दुर्योधनो राजा शूरान्बुद्धिमतो नरान् ।
प्रसमीक्ष्य महाबाहुश्चक्रे सेनापतींस्तदा ॥३०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाबली राजा दुर्योधन ने शूरवीर, बुद्धिमान्, मनुष्यों को देखकर सेनापति बना दिया ॥ ३० ॥

पृथगक्षौहिणीनां च प्रणेतॄन्नरसत्तमान् ।
विधिवत्पूर्वमानीय पार्थिवानभ्यभाषत ॥३१॥
कृपं द्रोणं च शल्यं च सैन्धवं च जयद्रथम् ।
सुदक्षिणं च काम्बोजं कृतवर्माणमेव च ॥३२॥
द्रोणपुत्रं च कर्णं च भूरिश्रवसमेव च ।
शकुनिं सौबलं चैव बाह्लीकं च महाबलम् ॥३३॥
दिवसे दिवसे तेषां प्रतिवेलं च भारत ।
चक्रे स विविधाः पूजाः प्रत्यक्षं च पुनः पुनः ॥३४॥

कुरुराज ने कृप, द्रोण, शल्य, सिन्धुराज जयद्रथ, काम्बोजराज सुदक्षिण, कृतवर्मा, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, सुबल-पुत्र शकुनि, महाबली बाल्हीक को पृथक् २ अक्षौहिणी सेनाओं का सेनापति बना दिया। इनको बड़े आदर से बुलाकर राजा दुर्योधन ने प्रेमपूर्वक वार्तालाप की। हे भारत! प्रति समय राजा दुर्योधन इनको बुलाता और प्रति दिन उनकी अनेक भांति से पूजा करता था एवं उनके सन्मुख ही बार २ उनको सम्मानित करता था ॥ ३१—३४ ॥

तथा विनियताः सर्वे ये च तेषां पदानुगाः ।
बभूवुः सैनिका राज्ञां प्रियं राज्ञश्चिकीर्षवः ॥३५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या-
मुद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि दुर्योधनसैन्यविभागे
पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५५॥

इस प्रकार अपने २ उचित पद पर लगाए हुए ये महारथी और इनको पदानुचर तथा इन राजाओं के सैनिक, दुर्योधन के वशवर्ती हो रहे थे और वे इस कुरुराज के हित में प्राण अर्पण करने को भी तय्यार थे ॥ ३५॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्व में दुर्योधन के सेना विभाग का एक सौ पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ

एक सौ छप्पनवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततः शान्तनवं भीष्मं प्राञ्जलिर्धृतराष्ट्रजः ।
सह सर्वैर्महीपालैरिदं वचनमब्रवीत् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इसके अनन्तर एक दिन धृतराष्ट्र-पुत्र राजा दुर्योधन ने शान्तनु-पुत्र राजा भीष्म से सारे महीपालों के साथ हाथ जोड़ कर यह वचन कहा ॥ १॥

ऋते सेनाप्रणेतारं पृतनासु महत्स्वपि ।
दीर्यते युद्धमासाद्य पिपीलिकपुटः यथा ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे पितामह ! सेनाओं में सेनापति के विना बड़ी विशाल सेना भी युद्ध के समय पर चींटियों के समूह की तरह नष्ट भ्रष्ट हो जाती हैं ॥ २ ॥

नहि जातु द्वयोर्बुद्धिः समा भवति कर्हिचित् ।
शौर्यं च बलनेतॄणां स्पर्धते च परस्परम् ॥३॥

यदि दो सेनापति हों, तो उनका किसी भी विषय पर एक मत नहीं हो सकता। दो सेनापति अपने २ पराक्रम का अभिमान रखते हैं और वे परस्पर स्पर्धा करके झगड़ बैठते हैं ॥ ३ ॥

श्रूयते च महाप्राज्ञ हैहयानमितौजसः ।
अभ्ययुर्ब्राह्मणाः सर्वे समुच्छ्रितकुशध्वजाः ॥४॥

हे महाप्राज्ञ ! सुना जाता है, कि एक बार अत्यन्त तेजस्वी हैहयवंशी क्षत्रियों के साथ ब्राह्मणों का युद्ध ठन गया। सारे ब्राह्मण कुश और युद्ध के झंडे ले २ कर युद्ध के लिए दौड़ पड़े ।४।

तानभ्ययुस्तदा वैश्याः शूद्राश्चैव पितामह ।
एकतस्तु त्रयो वर्णा एकतः क्षत्रियर्षभाः ॥५॥

हे पितामह ! इस युद्ध में वैश्य और शूद्र भी ब्राह्मणों के साथ थे। इस प्रकार एक ओर तीनों वर्ण और दूसरी ओर क्षत्रिय योद्धा थे ॥५॥

ततो युद्धेष्वभज्यन्त त्रयो वर्णाः पुनः पुनः ।
क्षत्रियाश्च जयन्त्येव बहुलं चैकतो बलम् ॥६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब युद्ध होने लगा, तो बार २ तीनों वर्ण पराजित होकर भाग जाते थे और क्षत्रियों की विजय होती थी, क्योंकि उनकी सेना संगठित थी ॥६॥

ततस्ते क्षत्रियानेव पप्रच्छुर्द्विजसत्तमाः ।
तेभ्यः शशंसुर्धर्मज्ञा याथातथ्यं पितामह ॥७॥

हे पितामह ! उन ब्राह्मण श्रेष्ठों ने क्षत्रियों से ही पूछा कि, हम बार २ पराजित हो जाते हैं, इसका क्या कारण है। धर्म के ज्ञाता क्षत्रियों ने उनको इसका कारण बता दिया ॥७॥

वयमेकस्य शृण्वाना महाबुद्धिमतो रणे ।
भवन्तस्तु पृथक्सर्वे स्वबुद्धिवशवर्तिनः ॥८॥

वे कहने लगे–हे ब्राह्मणो ! हम किसी एक महा-बुद्धिमान् वीर की आज्ञा का अनुसरण करते हैं और आप लोग पृथक् २ अपनी २ बुद्धि से इधर के उधर चल पड़ते हो ॥८॥

ततस्ते ब्राह्मणाश्चक्रुरेकं सेनापतिं द्विजम् ।
नये सुकुशलं शूरमजयन्क्षत्रियांस्ततः ॥९॥

अब ब्राह्मणों ने भी अपने एक बुद्धिमान् और शूरवीर ब्राह्मण को सेनापति बनाया, जिससे उन्होंने क्षत्रियों को जीत लिया।

एवं ये कुशलं शूरं हितेप्सितमकल्मषम् ।
सेनापतिं प्रकुर्वन्ति ते जयन्ति रणे रिपून् ॥१०॥

इस तरह जो राजा अपने हितकारी, मन के अनुकूल, द्वेषहीन कुशल और शूर पुरुष को सेनापति बनाता है, वे ही रणमें शत्रुओं के जीतने में समर्थ होते हैं ॥ १० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भवानुशनसा तुल्यो हितैषी च सदा मम।
असंहार्यः स्थितो धर्मे स नः सेनापतिर्भव ॥११॥

आप राजनीति में शुक्राचार्य के समान हैं और सदा से मेरे हितकारी रहे हैं। आप धर्म में स्थित हैं। आप का न तो कोई संहार कर सकता है और न आपको अपनी ओर मिला सकता है। अब मेरी यही प्रार्थना है, कि आप हमारे सेनापति बन जाइए।

रश्मिवतामिवाऽऽदित्यो वीरुधामिव चन्द्रमाः।
कुबेर इव यक्षाणां देवानामिव वासवः ॥१२॥

पर्वतानां यथा मेरुः सुपर्णः पक्षिणां यथा।
कुमार इव देवानां वसूनामिव हव्यवाट् ॥१३॥

चमकने वालों में सूर्य, लताओं में चन्द्रमा, यक्षों में कुबेर, देवों में इन्द्र, पर्वतों में मेरु, पक्षियों में गरुड़, देवों में कार्त्तिकेय, वसुओं में अग्नि के समान आप हम लोगों में सेनापति बनने के योग्य हैं॥ १२-१३॥

भवता हि वयं गुप्ताः शक्रेणेव दिवौकसः।
अनाधृष्या भविष्यामस्त्रिदशानामपि ध्रुवम् ॥१४॥

इन्द्र से सुरक्षित देवों की भाँति, हम लोग, आपकी सहायता से देवों के भी आक्रमण के अयोग्य रहेंगे॥ १४॥

प्रयातु नो भवानग्रे देवानामिव पावकिः।
वयं त्वामनुयास्यामः सौरभेया इवर्षभम् ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवों के आगे चलने वाले कार्त्तिकेय सेनापति की भांति आप हमारे अग्रगामी बनें। हम सब आपके साथ महावृषभ के संग बछड़ों की तरह आपके पीछे २ चलेंगे ॥ १५॥

भीष्म उवाच—

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत।
यथैव हि भवन्तो मे तथैव मम पाण्डवाः ॥१६॥

भीष्म बोले-हे भारत! हे महाबाहो! जो तुमने कहा है, वह सब ठीक है, परन्तु जैसे तुम लोग मेरे प्रिय हो-वैसे ही पाण्डव भी मेरे प्रिय हैं ॥ १६ ॥

अपि चैव मया श्रेयो वाच्यं तेषां नराधिप।
संयोद्धव्यं तवार्थाय यथा मे समयः कृतः ॥१७॥

हे नराधिप! अब तो यही हो सकता है, कि जो उनके हित की बात हो, वह उनके पूछने पर उनको बता दूँ और युद्ध तुम्हारी ओर से करूँ। यही मेरा और तुम लोगों का निश्चय किया हुआ समय (शर्त) है ॥ १७ ॥

न तु पश्यामि योद्धारमात्मनः सदृशं भुवि।
ऋते तस्मान्नरव्याघ्रात्कुन्तीपुत्राद्धनञ्जयात् ॥१८॥

मैं इन दोनों सेनाओं में अपने समान किसी योद्धा को नहीं देखता हूँ। हां? कुन्ती-पुत्र, नरव्याघ्र धनञ्जय अर्जुन मेरे साथ युद्ध कर सकता है ॥ १८ ॥

स हि वेद महाबुद्धिर्दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः।
न तु मां विवृतो युद्धे जातु युद्ध्येत पाण्डवः ॥१९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युद्ध विद्या में कुशल यह अर्जुन अनेक दिव्य अस्त्रों को जानता है, परन्तु यह कभी स्पष्ट सामने आकर मुझसे युद्ध नहीं करेगा ॥ १९ ॥

अहं चैव क्षणेनैव निर्मनुष्यमिदं जगत् ।
कुर्यां शस्त्रबलेनैव ससुरासुरराक्षसम् ॥२०॥
न त्वेवोत्सादनीया मे पाण्डोः पुत्रा जनाधिप ।
तस्माद्योधान्हनिष्यामि प्रयोगेणाऽयुतं सदा ॥२१॥

हे जनाधिप ! मैं अपने शस्त्र के बल से क्षणभर में इस जगत् को मनुष्य, देवता, असुर और राक्षसों से रहित कर सकता हूँ, परन्तु इन पाण्डु के पुत्रों के उखाड़ देने में असमर्थ हूँ । बस ! मैं तो अपने युद्ध-कौशल से नित्य दश हजार योद्धाओं का नाश कर दिया करूंगा ॥ २०-२१ ॥

एवमेषां करिष्यामि निधनं कुरुनन्दन ।
न चेत्ते मां हनिष्यन्ति पूर्वमेव समागमे ॥२२॥

हे कुरुनन्दन ! जो वे युद्ध की पहली ही झपट में मेरा घात नहीं कर पावेंगे, तो मैं इस तरह उनकी सेना का विध्वँस उड़ा सकता हूँ ॥ २२ ॥

सेनापतिस्त्वहं राजन्समयेनाऽपरेण ते ।
भविष्यामि यथाकामं तन्मे श्रोतुमिहाऽर्हसि ॥२३॥

हे राजन् ! मेरे सेनापति बनने की एक और भी शर्त है, तुम उसको मान लोगे-तो मैं सेनापति बन जाऊँगा ॥ २३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्णो वा युद्ध्यतां पूर्वमहं वा पृथिवीपते ।
स्पर्धते हि सदाऽत्यर्थं सूतपुत्रो मया रणे । २४॥

हे पृथिवीपते ! यह सूत-पुत्र कर्ण सदा मेरे साथ झगड़ा रखता है, इससे या तो प्रथम वही युद्ध करले या प्रथम मैं ही युद्ध कर लूँ। (हम दोनों साथ २ युद्ध नहीं करेंगे) क्योंकि इस तरह विजय किस के कारण हुई-इसका निश्चय नहीं हो सकेगा ॥२४॥

कर्ण उवाच—

नाऽहं जीवति गाङ्गेये राजन्योत्स्ये कथञ्चन ।
हते भीष्मे तु योत्स्यामि सह गाण्डीवधन्वना ॥२५॥

कर्ण कहने लगे—हे राजन् ! मैं तो भीष्म के जीवित रहने तक युद्ध ही नहीं करूँगा । यदि भीष्म मारे गए, तो मैं गाण्डीव-धारी अर्जुन से युद्ध करूँगा ॥ २५

वैशम्पायन उवाच—

ततः सेनापतिं चक्रे विधिवद्भूरिदक्षिणम् ।
धृतराष्ट्रात्मजो भीष्मं सोऽभिषिक्तो व्यरोचत ॥२६॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इसके अनन्तर बहुत सी भेंट पूजा देकर धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन ने भीष्म को सेनापति पद पर अभिषिक्त कर दिया । ये इस पद को पाकर बड़े ही देदीप्यमान प्रतीत होने लगे ॥ २६ ॥

ततो भेरीश्च शङ्खांश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
वादयामासुरव्यग्रा वादका राजशासनात् ॥२७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब राजा की आज्ञा से बाजे बजाने वालों ने भेरी, शङ्ख आदि सैंकड़ों हजारों तरह के बाजे बड़ी शीघ्रता के साथ बजाए।

सिंहनादाश्च विविधा वाहनानां च निःस्वनाः ।
प्रादुरासन्ननभ्रे च वर्षं रुधिरकर्दमम् ॥२८॥
निर्घाताः पृथिवीकम्पा गजबृंहितनिःस्वनाः ।
आसंश्च सर्वयोधानां पातयन्तो मनांस्युत ॥२९॥

इस समय अनेक तरह के सिंहनाद और वाहनों के शब्द होने लगे। आकाश में बादल नहीं थे, तो भी रुधिर की वर्षा हो गई, जिससे बड़ी कीचड़ हुई। बिजली कड़कने लगी, पृथिवी कांप उठी और हाथी चिंघाड़ने लगे, इन उत्पातों से योद्धाओं के मन मुरझा गए॥ २८-२९ ॥

वाचश्चाऽप्यशरीरिण्यो दिवश्चोल्काः प्रपेदिरे ।
शिवाश्च भयवेदिन्यो नेदुर्दीप्ततरा भृशम् ॥३०॥

आकाश वाणी हुई और आकाश से ही टूट २ कर तारे गिरने लगे। लोमड़ी भयकारी वाणी से चिल्लाने लगी, जिनके मुख से आग की लपटें निकल रही थीं॥ ३० ॥

सैनापत्ये यदा राजा गाङ्गेयमभिषिक्तवान् ।
तदैतान्युग्ररूपाणि बभूवुः शतशो नृप ॥३१॥

हे नृप! जब राजा दुर्योधन ने सेनापति पद पर महात्मा भीष्म को अभिषिक्त किया। तो उसी समय ये सैंकड़ों उग्र उत्पात हुए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततः सेनापतिं कृत्वा भीष्मं परबलार्दनम् ।
वाचयित्वा द्विजश्रेष्ठान्गोभिर्निष्कैश्च भूरिशः ॥३२॥
वर्धमानो जयाशीर्भिर्निर्ययौ सैनिकैर्वृतः ।
आपगेयं पुरस्कृत्य भ्रातृभिः सहितस्तदा ॥३३॥
स्कन्धावारेण महता कुरुक्षेत्रं जगाम ह ॥३४॥

राजा दुर्योधन ने शत्रु-सेना-नाशक, भीष्म को सेनापति पद पर बैठा कर उत्तम २ ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करवाया और उनको गाय या सुवर्ण की मुहरें भेंट में दी। ब्राह्मणों के आशीर्वाद से प्रफुल्लित हुआ, सैनिकों से युक्त, राजा दुर्योधन, अपने भाइयों के साथ सेनापति भीष्म को आगे करके कुरुक्षेत्र को चल दिया। इसके साथ सेना के पड़ाव के खेमे आदि का बहुत अधिक सामान था ॥ ३२-३४ ॥

परिक्रम्य कुरुक्षेत्रं कर्णेन सह कौरवः ।
शिबिरं मापयामास समे देशो जनाधिप ॥३५॥

हे जनाधिप ! कुरुराज ने कर्ण के साथ कुरुक्षेत्र में घूमकर सम प्रदेश में अपने शिबिर डाले ॥ ३५ ॥

मधुरानूषरे देशे प्रभूतयवसेन्धने ।
यथैव हास्तिनपुरं तद्वच्छिबिरमाबभौ ॥३६॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि भीष्मसैनापत्ये षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुन्दर और अनूषर, (पैदावार के योग्य) घास और इन्धन से युक्त प्रदेश में इसकी सेना के शिबिर (छावनी) पड़े। वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे, जैसे दूसरा हस्तिनापुर बस रहा हो॥ ३६॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्व में भीष्म के सेनापति बनाने का एक सौ छप्पनवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ सत्तावनवां अध्याय

जनमेजय उवाच—

आपगेयं महात्मानं भीष्मं शस्त्रभृतां वरम्।
पितामहं भारतानां ध्वजं सर्वमहीक्षिताम्॥१॥
बृहस्पतिसमं बुद्ध्या क्षमया पृथिवीसमम्।
समुद्रमिव गाम्भीर्ये हिमवन्तमिव स्थिरम्॥२॥
प्रजापतिमिवौदार्ये तेजसा भास्करोपमम्।
महेन्द्रमिव शत्रूणां ध्वंसनं शरवृष्टिभिः॥३॥
रणयज्ञे प्रवितते सुभीमे लोमहर्षणे।
दीक्षितं चिररात्राय श्रुत्वा तत्र युधिष्ठिरः॥४॥
किमब्रवीन्महाबाहुः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
भीमसेनार्जुनौ वापि कृष्णो वा प्रत्यभाषत॥५॥

जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मर्षे! शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, भरत वंशज वीरों के पितामह, सारे राजाओं में ध्वजा की भांति ऊँचे,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्धिमें बृहस्पति के समान, क्षमामें पृथिवी तुल्य, गम्भीरतामें समुद्र के सदृश, स्थिरतामें हिमालयके तुल्य, उदारतामें प्रजापतिके समान, तेज में सूर्योपम, बाणवर्षा द्वारा इन्द्र के सदृश, शत्रु नाशक, लोमहर्षण, भयानक, रणयज्ञ के प्रवृत्त होने पर चिर काल तक उसकी दीक्षा धारण करने वाले, गङ्गापुत्र, महावीर भीष्म के सेनापति होने पर महाबाहु, सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, राजा युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, भीमसेन या अर्जुन क्या बोले ॥ १-५ ॥

वैशम्पायन उवाच —

आपद्धर्मार्थकुशलो महाबुद्धिर्युधिष्ठिरः ।
सर्वान्भ्रातॄन्समानीय वासुदेवं च शाश्वतम् ॥६॥
उवाच वदतां श्रेष्ठः सान्त्वपूर्वमिदं वचः ।

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन ! आपत्ति में भी धर्म और नीति में कुशल, महा बुद्धिमान् वाग्मी, राजा युधिष्ठिर, अपने सारे भाई और श्रीकृष्ण को बुलाकर बड़ी गम्भीरता पूर्वक यह वचन बोला ।

पर्याक्रामत सैन्यानि यत्तास्तिष्ठत दंशिताः ॥७॥
पितामहेन वो युद्धं पूर्वमेव भविष्यति ।
तस्मात्सप्तसु सेनासु प्रणेतॄन्मम पश्यत ॥८॥

तुम लोग सेनाओं में चक्कर लगाओ और देखो-कि वे तय्यार हो गई हैं। सबसे प्रथम भीष्म पितामह के साथ युद्ध होगा। अब तुम जाकर मेरी सात अक्षौहिणी सेना के सातों सेनापतियों को प्रथम देखो ॥ ७-८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण उवाच—

यथाऽर्हति भवान्वक्तुमस्मिन्काले ह्युपस्थिते ।
तथेदमर्थवद्वाक्यमुक्तं ते भरतर्षभ ॥९॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे भरतर्षभ ! इस समय के उपस्थित होने पर जैसा आपको कहना चाहिए था वैसा ही आपने विचार कर कहा है। यह तुम्हारा वाक्य बड़े ही गम्भीर अर्थ को धारण किए हुए है ॥९॥

रोचते मे महाबाहो क्रियतां यदनन्तरम् ।
नायकास्तव सेनायां क्रियन्तामिह सप्त वै ॥१०॥

हे महाबाहो ! अब मुझे भी शीघ्र से शीघ्र करने योग्य यही कार्य प्रतीत होता है, कि अपनी सेना के भी सात सेनापति बनाओ ।

वैशम्पायन उवाच—

ततो द्रुपदमानाय्य विराटं शिनिपुङ्गवम् ।
धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यं धृष्टकेतुं च पार्थिव ॥११॥
शिखण्डिनं च पाञ्चाल्यं सहदेवं च मागधम् ।
एतान्सप्त महाभागान्वीरान्युद्धाभिकांक्षिणः ॥१२॥
सेनाप्रणेतॄन्विधिवदभ्यषिञ्चद्युधिष्ठिरः ।
सर्वसेनापतिं चाऽत्र धृष्टद्युम्नं चकार ह ॥१३॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर ने द्रुपद, विराट, शिनि-वंश-श्रेष्ठ, सात्यकि, पञ्चालराज-पुत्र धृष्टद्युम्न और शिखण्डी, धृष्टकेतु, मगधराज सहदेव, इन सात महारथियों को बुलाया और इन महावीर, युद्ध के अभिलाषी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सातों योद्धाओं को राजा युधिष्ठिर ने विधि-पूर्वक सेनापति पद पर अभिषिक्त कर दिया तथा सारी सेना के सेनापति का अधिकार भी धृष्टद्युम्न को दे दिया ॥११-१३॥

द्रोणान्तहेतोरुत्पन्नो य इद्धाज्जातवेदसः ।
सर्वेषामेव तेषां तु समस्तानां महात्मनाम् ॥१४॥
सेनापतिपतिं चक्रे गुडाकेशं धनञ्जयम् ।
अर्जुनस्याऽपि नेता च संयन्ता चैव वाजिनाम् ॥१५॥
सङ्कर्षणानुजः श्रीमान्महाबुद्धिर्जनार्दनः ।

यह धृष्टद्युम्न प्रदीप्त यज्ञ की अग्नि से द्रोण के विनाश के लिए उत्पन्न हुआ था। इन सारे सेनापतियों के ऊपर गुड़ाकेश अर्जुन का अधिकार किया गया। अर्जुन के रथ के चलाने वाले तथा अर्जुन के भी नेता, महा-बुद्धिमान्, बलराम के अनुज, जनार्दन श्रीकृष्ण को बनाया गया ॥१४-१५॥

तद् दृष्ट्वोपस्थितं युद्धं समासन्नं महात्ययम् ॥१६॥
प्राविशद्भवनं राजन्पाण्डवानां हलायुधः ।
सहाऽक्रूरप्रभृतिभिर्गदसाम्बोद्धवादिभिः ॥१७॥
रौक्मिणेयाहुकसुतैश्चारुदेष्णपुरोगमैः ।
वृष्णिमुख्यैरधिगतैर्व्याघ्रैरिव बलोत्कटैः ॥१८॥
अभिगुप्तो महाबाहुर्मरुद्भिरिव वासवः ।

हे राजन् ! इस प्रकार महा-विनाशकारी समीप में ही उपस्थित हुए युद्ध को देख कर अक्रूर, गद, साम्ब, उद्धव, प्रद्युम्न,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आहुक-पुत्र, चारुदेष्ण आदि वृष्णि-वंश में प्रतिष्ठित सिंह के समान महाबली वीरों से देवों से इन्द्र के समान सुरक्षित, महाबाहु बलराम ने पाण्डवों के भवन में प्रवेश किया ॥१६-१८॥

नीलकौशेयवसनः कैलासशिखरोपमः ॥१९॥
सिंहखेलगतिः श्रीमान्मदरक्तान्तलोचनः ।

इन्होंने नीले रेशमी वस्त्र पहन रखे थे। इनका स्वरूप कैलाश पर्वत के शिखर के तुल्य था। ये सिंह के तुल्य गति से चलने वाले बड़े कान्तिमान् थे, जिनके नेत्र मद से रक्त हो रहे थे।

तं दृष्ट्वा धर्मराजश्च केशवश्च महाद्युतिः ॥२०॥
उदतिष्ठत्ततः पार्थो भीमकर्मा वृकोदरः ।
गाण्डीवधन्वा ये चाऽन्ये राजानस्तत्र केचन ॥२१॥
पूजयाञ्चक्रिरे ते वै समायान्तं हलायुधम् ।
ततस्तं पाण्डवो राजा करे पस्पर्श पाणिना ॥२२॥
वासुदेवपुरोगास्तं सर्व एवाऽभ्यवादयन् ।

इनको देख कर राजा युधिष्ठिर महा-बुद्धिमान्, श्रीकृष्ण, कुन्ती-पुत्र भीम-कर्म-कर्ता भीमसेन, गाण्डीव धनुष धारी अर्जुन तथा अन्य राजा खड़े हो गये। आये हुए बलराम की सबने पूजा की। राजा युधिष्ठिर ने इनसे हाथ मिलाया। श्रीकृष्ण आदि सारे राजाओं ने उनको प्रणाम किया ॥ २०—२२ ॥

विराटद्रुपदौ वृद्धावभिवाद्य हलायुधः ॥२३॥
युधिष्ठिरेण सहित उपाविशदरिन्दमः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलरामजी ने द्रुपद और बिराट, इन दोनों वृद्ध राजाओं को प्रणाम किया। इसके अनन्तर अरि-विजयी बलराम राजा युधिष्ठिर के साथ बैठ गए ॥ २३ ॥

ततस्तेषूपविष्टेषु पार्थिवेषु समन्ततः ॥
वासुदेवमभिप्रेक्ष्य रौहिणेयोऽभ्यभाषत ॥२४॥

सब ओर से सारे राजाओं के बैठ जाने पर वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण की ओर देखकर रोहिणी-पुत्र बलराम कहने लगे ॥ २४॥

भविताऽयं महारौद्रो दारुणः पुरुषक्षयः।
दिष्टमेतद्ध्रुवं मन्ये न शक्यमतिवर्तितुम् ॥२५॥

हे महाभागो! अब महा-रौद्र, दारुण, पुरुषों का विनाशकारी युद्ध होगा। मैं इसे अवश्य होनहार समझता हूँ। इसको टलाया नहीं जा सकता है ॥ २५ ॥

तस्माद्युद्धात्समुत्तीर्णानपि वः ससुहृज्जनान्।
अरोगानक्षतैर्देहैर्द्रष्टाऽस्मीति मतिर्मम ॥२६॥

तुम अपने सुहृज्जनों के साथ इस युद्ध में विजयी हो जाओ। मैं तो यही चाहता हूँ, कि तुम अपनी अक्षत देहों से अरोग रूपमें इस युद्ध के अन्त में मुझे दर्शन दो ॥ २६ ॥

समेतं पार्थिवं क्षत्रं कालपक्वमसंशयम्।
विमर्दश्च महान्भावी मांसशोणितकर्दमः ॥२७॥

क्षत्रिय राजाओं का यह समूह इकट्ठा हुआ है, जिसको निश्चय काल ने पका रखा है। अब तो माँस और रक्त की कीचड़ करदेने वाला महा-घोर युद्ध होकर रहेगा ॥ २७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उक्तो मया वासुदेवः पुनः पुनरुपह्वरे ॥
सम्बन्धिषु समां वृत्तिं वर्तस्व मधुसूदन ॥२८॥

मैंने बार २ एकान्त में वासुदेव से कहा है—हे मधुसूदन ! तुमको अपने सम्बन्धियों में समान वृत्ति से व्यवहार करना चाहिए।

पाण्डवा हि यथाऽस्माकं तथा दुर्योधनो नृपः ।
तस्याऽपि क्रियतां साह्यं स पर्येति पुनः पुनः ॥२९॥

जिस तरह पाण्डव हमारे सम्बन्धी हैं, उसी तरह राजा दुर्योधन भी हैं। तुमको उसकी भी सहायता करनी चाहिए, क्योंकि वह भी बार २ आता है ॥ २९ ॥

तच्च मे नाऽकरोद्वाक्यं त्वदर्थे मधुसूदनः ।
निर्विष्टः सर्वभावेन धनञ्जयमवेक्ष्य ह ॥३०॥

हे राजन् ! तुम्हारे हित में प्रवृत्त हुए, श्रीकृष्ण ने मेरी बात नहीं मानी। यह तो धनञ्जय अर्जुन के आग्रह से आपकी ही ओर सब भाव से हो रहे हैं ॥ ३० ॥

ध्रुवो जयः पाण्डवानामिति मे निश्चिता मतिः ।
तथा ह्यभिनिवेशोऽयं वासुदेवस्य भारत ॥३१॥

हे भारत ! मेरा तो यह निश्चित मत हो रहा है, कि इस युद्ध में पाण्डवों की विजय होगी और यही वासुदेव कृष्ण का भी विचार है ॥ ३१ ॥

न चाऽहमुत्सहे कृष्णमृते लोकमुदीक्षितुम् ।
ततोऽहमनुवर्तामि केशवस्य चिकीर्षितम् ॥३२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं कृष्ण के विना इस संसार की ओर देख भी नहीं सकता, इसी से श्रीकृष्ण की इच्छा के अनुसार चलता हूँ ॥ ३२ ॥

उभौ शिष्यौ हि मे वीरौ गदायुद्धविशारदौ ।
तुल्यस्नेहोऽस्म्यतो भीमे तथा दुर्योधने नृपे ॥३३॥

गदायुद्ध में विशारद भीम और दुर्योधन दोनों ही शिष्य हैं । इसी से भीम और दुर्योधन पर मेरा समान प्रेम है ॥ ३३ ॥

तस्माद्यास्यामि तीर्थानि सरस्वत्या निषेवितुम् ।
न हि शक्ष्यामि कौरव्यान्नश्यमानानुपेक्षितुम् ॥३४॥

इसी कारण से अब मैं सरस्वती नदी के तीर्थों पर जा रहा हूँ। मैं नष्ट होते हुए कौरवों को भी नहीं देखना चाहता हूँ ॥३४॥

एवमुक्त्वा महाबाहुरनुज्ञातश्च पाण्डवैः ।
तीर्थयात्रां ययौ रामो निवर्त्य मधुसूदनम् ॥३५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या-
मुद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि बलरामतीर्थयात्रा-
गमने सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५७॥

महाबाहु बलराम इतना कह कर चुप हो गए। पाण्डवों ने उन्हें ऐसा करने की अनुमति दे दी । बलराम भी पीछे २ चलते हुए श्रीकृष्ण को लौटा कर तीर्थ यात्रा के लिए चले गए ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्व में बलराम के तीर्थ यात्रा के प्रसंग का एक सौ सत्तावनवां अध्याय पूरा हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ अट्ठावनवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मकस्य महात्मनः ।
हिरण्यरोम्णो नृपतेः साक्षादिन्द्रसखस्य वै ॥१॥
आकूतीनामधिपतिर्भोजस्याऽतियशस्विनः ।
दाक्षिणात्यपतेः पुत्रो दिक्षु रुक्मीति विश्रुतः ॥२॥

वैशम्पायन बोले—हे ब्रह्मन् ! इसी समय इन्द्र के सखा, अत्यन्त यशस्वी, दक्षिण देश के स्वामी, महाबली, हिरण्यरोमा भीष्मक का एक पुत्र बड़ा प्रसिद्ध हुआ, जिसका नाम रुक्मी था और वह बड़ा सत्य-संकल्प धारी था ॥ १—२ ॥

यः किम्पुरुषसिंहस्य गन्धमादनवासिनः ।
कृत्स्नं शिष्यो धनुर्वेदं चतुष्पादमवाप्तवान् ॥३॥

इसने गन्धमादन पर्वत निवासी, किंपुरुषों (देव जाति) में श्रेष्ठ, द्रुम नामक महात्मा का शिष्य होकर धनुर्वेद के चारों पादों का अध्ययन किया था ॥ ३ ॥

यो माहेन्द्रं धनुर्लेभे तुल्यं गाण्डीवतेजसा ।
शार्ङ्गेण च महाबाहुः सस्मितं दिव्यलक्षणम् ॥४॥

इस महाबाहु ने गाण्डीव और शार्ङ्ग धनुष के तेज के समान तेज धारी दिव्य लक्षणों से युक्त, विकसित महेन्द्र के धनुष को प्राप्त किया था ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्रीण्येवैतानि दिव्यानि धनूंषि दिवि चारिणाम् ।
वारुणं गाण्डिवं तत्र माहेन्द्रं विजयं धनुः ।
शार्ङ्गं तु वैष्णवं प्राहुर्दिव्यं तेजोमयं धनुः ॥५॥
धारयामास तत्कृष्णः परसेनाभयावहम् ।

वरुण का गाण्डीव, महेन्द्र का विजय और विष्णु का शार्ङ्ग धनुष बड़ा ही दिव्य और तेजोमय हैं। देवों के ये तीन धनुष बड़े प्रसिद्ध हैं, शत्रुसेना के नाशक शार्ङ्ग-धनुष को श्रीकृष्ण धारण किये रहते हैं ॥ ५ ॥

गाण्डीवं पावकाल्लेभे खाण्डवे पाकशासनिः ॥६॥
द्रुमाद् रुक्मी महातेजा विजयं प्रत्यपद्यत ।

खाण्डव दाह के समय इन्द्र-पुत्र अर्जुन ने गाण्डीव धनुष अग्नि से प्राप्त किया था और महा तेजस्वी रुक्मी ने द्रुम नामक किंपुरुष से विजय धनुष प्राप्त किया ॥ ६ ॥

सञ्छिद्य मौरवान्पाशान्निहत्य मुरमोजसा ॥७॥
निर्जित्य नरकं भौममाहृत्य मणिकुण्डले ।
षोडशस्त्रीसहस्राणि रत्नानि विविधानि च ॥८॥
प्रतिपेदे हृषीकेशः शार्ङ्गं च धनुरुत्तमम् ।

श्रीकृष्ण ने मुर दैत्य की सारी पाश काट डाली और मुर को भी मार दिया। नरक और भौमासुर को जीत लिया। उनके मणि और कुण्डल छीन लिए। सोलह सहस्र स्त्री और अनेक भांति के रत्न तथा इस उत्तम शार्ङ्ग नामक धनुष को प्राप्त किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रुक्मी तु विजयं लब्ध्वा धनुर्मेघनिभस्वनम् ॥९॥
विभीषयन्निव जगत्पाण्डवानभ्यवर्तत ।

रुक्मी मेघ की गर्जना के तुल्य शब्द करने वाले विजय नामक धनुष को पाकर सारे जगत् को भयभीत करता हुआ पाण्डवों के पास पहुंचा ॥ ९ ॥

नाऽमृष्यत पुरा योऽसौ स्वबाहुबलगर्वितः ॥१०॥
रुक्मिण्या हरणं वीरो वासुदेवेन धीमता ।
कृत्वा प्रतिज्ञां नाऽहत्वा निवर्तिष्ये जनार्दनम् ॥११॥

इसने अपनी भुजाओं के बल का अहङ्कार करके बुद्धिमान् श्रीकृष्ण द्वारा किए गए रुक्मिणी हरण का बड़ा ही विरोध किया था। इसने प्रतिज्ञा की थी, कि मैं विना कृष्ण के मारे लौट कर नहीं आऊंगा ॥१०-११॥

ततोऽन्वधावद्वार्ष्णेयं सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
सेनया चतुरङ्गिण्या महत्या दूरपातया ॥१२॥

सम्पूर्ण शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, यह रुक्मी, विचित्र शस्त्र और कवच आदि धारण करने वाली, विशाल दूर तक फैली हुई वेग के साथ बहती हुई, गङ्गा की तरह वेगवती चतुरङ्गिणी सेना से वृष्णि-वंश-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण के पीछे दौड़ा ॥ १२ ॥

विचित्रायुधवर्मिण्या गङ्गयेव प्रवृद्धया ।
स समासाद्य वार्ष्णेयं योगानामीश्वरं प्रभुम् ॥१३॥
व्यसितो व्रीडितो राजन्नाजगाम स कुण्डिनम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन् ! यह योगेश्वर कृष्ण के पास पहुंच कर पराजित हो गया और लज्जित होकर कुण्डिन-पुर लौट आया ॥ १३ ॥

यत्रैव कृष्णेन रणे निर्जितः परवीरहा ॥१४॥
तत्र भोजकटं नाम कृतं नगरमुत्तमम् ।

शत्रु-विजयी रुक्मी को जिस स्थान पर श्रीकृष्ण ने रण में पराजित किया, उस स्थान पर भोजकट नामक उत्तम नगर बसाया गया ॥ १४ ॥

सैन्येन महता तेन प्रभूतगजवाजिना ॥१५॥
पुरं तद्भुवि विख्यातं नाम्ना भोजकटं नृप ।

हे नृप ! बहुत से हाथी घोड़ों से युक्त, विशाल सेना से भरा रहने के कारण वह भोजकट नगर पृथिवी पर बड़ा ही विख्यात हो गया। ॥ १५ ॥

स भोजराजः सैन्येन महता परिवारितः ॥१६॥
अक्षौहिण्या महावीर्यः पाण्डवान्क्षिप्रमागमत् ।

यही महाबली भोजराज रुक्मी, बड़ी भारी एक अक्षौहिणी सेना लेकर पाण्डवों के पास बड़ी शीघ्रता से पहुंचा ॥ १६ ॥

ततः स कवची धन्वी तली खड्गी शरासनी ॥१७॥
ध्वजेनाऽऽदित्यवर्णेन प्रविवेश महाचमूम् ।

इसने कवच, धन्व, (कमान) करतलत्राण, धनुष और खड्ग धारण कर रखे थे। सूर्य के समान चमकती हुई ध्वजा लिए हुए, यह पाण्डवों की महासेना में घुस गया ॥ १७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विदितः पाण्डवेयानां वासुदेवप्रियेप्सया ॥१८॥
युधिष्ठिरस्तु तं राजा प्रत्युद्गम्याऽभ्यपूजयत् ।

जब पाण्डवों को यह ज्ञात हो गया, कि यह श्रीकृष्ण के प्रसन्न करने को हमारी ही ओर आया है, तो राजा युधिष्ठिर ने अगवानी करके इसकी पूजा की ॥ १८ ॥

स पूजितः पाण्डुपुत्रैर्यथान्यायं सुसंस्तुतः ॥१९॥
प्रतिगृह्य तु तान्सर्वान्विश्रान्तः सहसैनिकः ।

पाण्डवों ने यथायोग्य इसकी पूजा और स्तुति की । इसने भी उन सबसे यथोचित रूपसे मिल कर सेना सहित विश्राम किया ।

उवाच मध्ये वीराणां कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥२०॥
सहायोऽस्मि स्थितो युद्धे यदि भीतोऽसि पाण्डव ।

यह समस्त वीरों के मध्य में कुन्तीपुत्र धनञ्जय से बोले- यदि तुम डर गए हो, तो मैं युद्ध में तुम्हारा सहायक होऊँगा । तुम किसी तरह का भय न करो ॥ २० ॥

करिष्यामि रणे साह्यमसह्यं तव शत्रुभिः ॥२१॥
न हि मे विक्रमे तुल्यः पुमानस्तीह कश्चन ।

मैं तुम्हारी रण में सहायता करूँगा । तुम्हारे शत्रु मेरे पराक्रम को नहीं सह सकेंगे । मेरे पराक्रम के समान पराक्रमधारी तो मुझे कोई वीर दिखाई ही नहीं देता है ॥ २१ ॥

हनिष्यामि रणे भागं यन्मे दास्यसि पाण्डव ॥२२॥
अपि द्रोणकृपौ वीरौ भीष्मकर्णावथो पुनः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे युधिष्ठिर ! युद्ध में जिसे मेरे भाग में कर दोगे-मैं उसे मार गिराऊँगा। उनमें चाहे द्रोण, कृप, भीष्म, कर्ण कोई भी क्यों न उपस्थित होवे ॥ २२ ॥

अथवा सर्व एवैते तिष्ठन्तु वसुधाधिपाः ॥२३॥
निहत्य समरे शत्रूंस्तव दास्यामि मेदिनीम् ।

अथवा ये सारे राजा भी अब चुपचाप बैठे रहें। मैं ही तुम्हारे शत्रुओं को मार कर तुम्हें पृथिवीका राज्य प्रदान कर दूँगा ॥२३॥

इत्युक्तो धर्मराजस्य केशवस्य च सन्निधौ ॥२४॥
शृण्वतां पार्थिवेन्द्राणामन्येषां चैव सर्वशः ।
वासुदेवमभिप्रेक्ष्य धर्मराजं च पाण्डवम् ॥२५॥
उवाच धीमान्कौन्तेयः प्रहस्य सखिपूर्वकम् ।
कौरवाणां कुले जातः पाण्डोः पुत्रो विशेषतः ॥२६॥
द्रोणं व्यपदिशञ्शिष्यो वासुदेवसहायवान् ।
भीतोऽस्मीति कथं ब्रूयां दधानो गाण्डिवं धनुः ।२७।

जब रुक्मी ने धर्मराज युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण तथा सारे राजा और सैनिकों के सन्मुख यह बात कही-तो बुद्धिमान् अर्जुन श्रीकृष्ण और पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर, की ओर देखकर हँसते हँसते मित्रता के साथ बोला—कि हम कौरवों के कुल में उत्पन्न हुए और महात्मा पाण्डु के पुत्र हैं। हमको द्रोणाचार्य के शिष्य होने का अभिमान है। श्रीकृष्ण हमारे सहायक हैं। जब मैं गाण्डीव धनुष को धारण करता हूँ, तो फिर डर गया हूं--यह कैसे हो सकता है ॥ २४-२७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युध्यमानस्य मे वीर गन्धर्वैः सुमहाबलैः ।
सहायो घोषयात्रायां कस्तदासीत्सखा मम ॥२८॥

हे वीर ! जब मैंने महाबली गन्धर्वों से युद्ध किया-उस घोष यात्रा में मेरा कौन सहायक था ॥ २८ ॥

तथा प्रतिभये तस्मिन्देवदानवसंकुले ।
खाण्डवे युद्ध्यमानस्य कः सहायस्तदाऽभवत् ॥२९॥

देव दानवों से भरे हुए, भयकारी, खाण्डव वन के दाह के समय मेरा कौन सहायक हुआ था ॥ २९ ॥

निवातकवचैर्युद्धे कालकेयैश्च दानवैः ।
तत्र मे युद्ध्यमानस्य कः सहायस्तदाभवत् ॥३०॥

जब मेरा निवात कवच और कालकेय दानवों से युद्ध हुआ तो उस युद्ध में युद्ध करते हुए मेरा कौन सहायक हुआ था ॥३०॥

तथा विराटनगरे कुरुभिः सह सङ्गरे ।
युद्ध्यतो बहुभिस्तत्र कः सहायोऽभवन्मम ॥३१॥

जब विराट नगर में बहुत से कौरव वीरों से युद्ध में सामना हुआ और बहुतों के साथ जब मेरे अकेले का ही युद्ध था, तो उस समय मेरा कौन सहायक था ॥ ३१ ॥

उपजीव्य रणे रुद्रं शक्रं वैश्रवणं यमम् ।
वरुणं पावकं चैव कृपं द्रोणं च माधवम् ॥३२॥
धारयन्गाण्डिवं दिव्यं धनुस्तेजोमयं दृढम् ।
अक्षय्यशरसंयुक्तो दिव्यास्त्रपरिबृंहितः ॥३३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कथमस्मद्विधो ब्रूयाद्भीतोऽस्मीति यशोहरम् ।
वचनं नरशार्दूल वज्रायुधमपि स्वयम् ॥३४॥

हे नरशार्दूल ! जब रण में विजय करने के लिए रुद्र, इन्द्र, वैश्रवण, यम, वरुण, अग्नि, कृप, द्रोण, श्रीकृष्ण की आराधना की है तथा मैं तेजोधारी दृढ़ गाण्डीव धनुष को धारण करता हूँ, अक्षय बाण और दिव्य अस्त्रों से देदीप्यमान हूं, तो मुझ सा वीर यश नाशक भय का कैसे आश्रय हो सकता है। मेरे सामने तो स्वयं वज्र धारी इन्द्र भी आवे, तो भी मैं यह यशोहारी वचन नहीं कह सकता, कि मैं डर गया हूँ ॥ ३२—३४ ॥

नाऽस्मि भीतो महाबाहो सहायार्थश्च नाऽस्ति मे ।
यथाकामं यथायोगं गच्छ वाऽन्यत्र तिष्ठ वा ॥३५॥

हे महाबाहो ! न तो मैं डरा हूँ और न मुझे सहायक की आवश्यकता है। यह आपकी इच्छा है, कि आप जो उचित समझे करें। आप चाहे अन्यत्र जावें या यहां हमारे पास रहें।

विनिवर्त्य ततो रुक्मी सेनां सागरसन्निभाम् ।
दुर्योधनमुपागच्छत्तथैव भरतर्षभ ॥३६॥

हे भरतर्षभ ! इतना सुनते ही समुद्र के समान उमलती हुई अपनी सेना को लेकर रुक्मी लौट पड़ा और उसी रूप में सीधा दुर्योधन के पास पहुंचा ॥ ३६ ॥

तथैव चाऽभिगम्यैनमुवाच वसुधाधिपः ।
प्रत्याख्यातश्च तेनाऽपि स तदा शूरमानिना ॥३७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधन के पास जाकर भी राजा रुक्मी ने उसी तरह कहा, यह भी अपनी शूरवीरता का अभिमान रखता था; इससे इसने भी इसको झिड़क सा दिया ॥ ३७ ॥

द्वावेव तु महाराज तस्माद्युद्धादपेयतुः ।
रौहिणेयश्च वार्ष्णेयो रुक्मी च वसुधाधिपः ॥३८॥

हे महाराज ! इस तरह इस विश्वव्यापी युद्ध से एक तो रोहणी-पुत्र वृष्णि-वंशोत्पन्न बलराम और दूसरा पृथिवीपति रुक्मी—ये दो वीर पृथक् हो गए ॥ ३८ ॥

गते रामे तीर्थयात्रां भीष्मकस्य सुते तथा ।
उपविशन्पाण्डवेया मन्त्राय पुनरेव च ॥३९॥

जब बलराम तीर्थ-यात्रा को चले गए और भीष्मक पुत्र रुक्मी भी लौट गया, तो फिर पाण्डव मन्त्रणा करने को बैठ गए।

समितिर्धर्मराजस्य सा पार्थिवसमाकुला ।
शुशुभे तारकैश्चित्रा द्यौश्चन्द्रेणेव भारत ॥४०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि रुक्मिप्रत्याख्याने अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५८॥

हे भारत ! राजाओं से भरी हुई, यह धर्मराज युधिष्ठिर की सभा, तारे और चन्द्रमा से भरे हुए आकाश की भांति सुशोभित हो रही थी ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्व में रुक्मी के प्रत्याख्यान का एक सौ अट्ठावनवां अध्याय पूरा हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ उनसठवां अध्याय

जनमेजय उवाच—

तथा व्यूढेष्वनीकेषु कुरुक्षेत्रे द्विजर्षभ ।
किमकुर्वंश्च कुरवः कालेनाऽभिप्रचोदिताः ॥१॥

जनमेजय बोले—हे द्विजर्षभ ! कुरुक्षेत्र में सेना के व्यूह रूप से पड़े रहने के अनन्तर काल के प्रेरित कौरवोंने क्या किया ।

वैशम्पायन उवाच—

तथा व्यूढेष्वनीकेषु यत्तेषु भरतर्षभ ।
धृतराष्ट्रो महाराज सञ्जयं वाक्यमब्रवीत् ॥२॥

वैशम्पायन बोले—हे भरतर्षभ ! राजन् ! जब इस प्रकार सेना अपना व्यूह बना चुकी, तो महाराज धृतराष्ट्र सञ्जय से यह वचन बोले ॥ २ ॥

एहि सञ्जय सर्वं मे आचक्ष्वाऽनवशेषतः ।
सेनानिवेशे यद्वृत्तं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥३॥

हे सञ्जय ! तुम यहा आओ और मुझ से कुरु और पाण्डवों की सेना में होने वाले सारे वृतान्त को सुनाओ ॥ ३ ॥

दिष्टमेव परं मन्ये पौरुषं चाऽप्यनर्थकम् ।
यदहं बुद्ध्यमानोऽपि युद्धदोषान्क्षयोदयान् ॥४॥
तथापि निकृतिप्रज्ञं पुत्रं दुर्द्यूतदेविनम् ।
न शक्नोमि नियन्तुं वा कर्तुं वा हितमात्मनः ॥५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मैं तो देव को ही प्रबल मानता हूँ, पौरुष तो निरर्थक ही है। यही कारण है, जो मैं युद्ध के विनाशकारी दोषों को जानता हुआ भी अशिष्टाचारी, द्यूत रचने वाले अपने पुत्र दुर्योधन को रोक कर अपना हित करने में समर्थ नहीं हो सकता हूँ ॥ ४—५ ॥

भवत्येव हि मे सूत बुद्धिर्दोषानुदर्शिनी ।
दुर्योधनं समासाद्य पुनः सा परिवर्तते ॥६॥

हे सूत ! मेरी बुद्धि इन सब बुराइयों को समझ लेती है, परन्तु जब दुर्योधन मिलता है तो वह सारी उलट पलट हो जाती हैं ॥ ६ ॥

एवङ्गते वै यद्भावि तद्भविष्यति सञ्जय ।
क्षत्रधर्मः किल रणे तनुत्यागो हि पूजितः ॥७॥

हे सञ्जय ! इस दशा में जो होनहार है, वह होकर ही रहेगी। खैर ? युद्ध में शरीर त्याग देना भी क्षत्रियों का पूजनीय धर्म है।

सञ्जय उवाच—

त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो महाराज यथेच्छसि ।
न तु दुर्योधने दोषमिममाधातुमर्हसि ॥८॥
शृणुष्वाऽनवशेषेण वदतो मम पार्थिव ।

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! आपने जो विचारा है, वह ठीक ही है। आपको यह प्रश्न करना ही चाहिए, परन्तु इस सारी बुराई को तुम्हें दुर्योधन पर ही नहीं डाल देनी चाहिए। हे राजन् ! अब जो मैं कहता हूँ, उसको तुम सुनो, मैं सम्पूर्ण रूपमें सुनाता हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

य आत्मनो दुश्चरितादशुभं प्राप्नुयान्नरः ॥
न स कालं न वा देवानेनसा गन्तुमर्हति ॥९॥

जो मनुष्य, अपने अशुभ कर्मों से दुःख प्राप्त करता है, उसका दोष न तो काल के ऊपर है और न उसमें दैव ही दोषी ठहरता है।

महाराज मनुष्येषु निन्द्यं यः सर्वमाचरेत् ।
स वध्यः सर्वलोकस्य निन्दितानि समाचरन् ॥१०॥

हे महाराज ! जो मनुष्य, अन्य मनुष्यों में निन्दा के योग्य व्यवहार को करता है, उस निन्दित कर्म करने वाले को मार देने का सबको अधिकार है ॥ १० ॥

निकारा मनुजश्रेष्ठ पाण्डवैस्त्वत्प्रतीक्षया ।
अनुभूताः सहामात्यैर्निकृतैरधिदेवने ॥११॥

हे मनुजश्रेष्ठ ! यह सब कुछ तिरस्कार पाण्डवों ने अपने मन्त्रियों के साथ तुम्हारी ही प्रतीक्षा में सहे हैं। तुमने देखा था, कि द्यूत के समय उनका कितना अपमान किया गया ॥ ११ ॥

हयानां च गजानां च राज्ञां चाऽमिततेजसाम् ।
वैशसं समरं वृत्तं यत्तन्मे शृणु सर्वशः ॥१२॥

हाथी, घोड़े, अत्यन्त तेजस्वी राजाओं का जो घोर विनाशकारी युद्ध जुट गया है, अब तुम उसका सारा वृतान्त सुनो ॥ १२॥

स्थिरो भूत्वा महाप्राज्ञ सर्वलोकक्षयोदयम् ।
यथाभूतं महायुद्धे श्रुत्वा चैकमना भव ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे महाप्राज्ञ ! सारे लोक का क्षयकारी यह युद्ध किस तरह खड़ा हो गया है, उसका वृतान्त तुम स्थिर होकर सुनो और महा-युद्ध में क्या हो रहा है-इसको सुन कर उस पर शान्त चित्त से विचार करो ॥ १३ ॥

न ह्येव कर्ता पुरुषः कर्मणोः शुभपापयोः ।
अस्वतन्त्रो हि पुरुषः कार्यते दारुयन्त्रवत् ॥१४॥

हे राजन् ! पाप और शुभ कर्मों के करने में पुरुष स्वतन्त्र नहीं है । पुरुष तो कठपुतली की तरह कर्मों के करने में परतन्त्र है ।

केचिदीश्वरनिर्दिष्टाः केचिदेव यदृच्छया ।
पूर्वकर्मभिरप्यन्ये त्रैधमेतत्प्रदृश्यते ।
तस्मादनर्थमापन्नः स्थिरो भूत्वा निशामय ॥१५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि सञ्जयवाक्ये ऊनषष्ट्यधि-कशततमोऽध्यायः ॥१५९॥ समाप्तं च सैन्यनिर्याणपर्व ।

इसमें कोई तो ईश्वर की इच्छा, कोई स्वभाव और कोई पूर्व कर्मोंके अनुसार इस जन्म में होने वाले कर्मों को मानते हैं । इस तरह परतन्त्रता को लोग तीन ढंग से मान रहे हैं । किसी भी तरह तुमको यह अनर्थ प्राप्त हो गया । अब तुम स्थिर होकर इसको सुनो ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्व में सञ्जय वाक्य का एक सौ उनसठवां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर सैन्यनिर्याणपर्व समाप्त हो गया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ उलूकदूतागमनपर्व

एक सौ साठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

हिरण्वत्यां निविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
न्यविशन्त महाराज कौरवेया यथाविधि ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! महावीर पाण्डवों के हिरण्वती नदी के तट पर शिबिर डाल लेने पर अपने सुभीते के अनुसार कौरवों ने भी अपने शिबिर डाल लिए ॥१॥

तत्र दुर्योधनो राजा निवेश्य बलमोजसा ।
सम्मानयित्वा नृपतीन्न्यस्य गुल्मांस्तथैव च ॥२॥
आरक्षस्य विधिं कृत्वा योधानां तत्र भारत ।
कर्णं दुःशासनं चैव शकुनिं चापि सौबलम् ॥३॥
आनाय्य नृपतिस्तत्र मन्त्रयामास भारत ।

हे भारत ! राजा दुर्योधन ने अपने प्रताप के अनुसार सेना का पड़ाव डाल कर और राजाओं का यथायोग्य सत्कार करके इधर उधर रक्षक सैनिकों के जत्थे डाल दिए । इस तरह रक्षक योद्धाओं को नियुक्त करके राजा दुर्योधन ने सुबल-पुत्र शकुनि, कर्ण और दुःशासन को बुला कर मन्त्रणा करना आरम्भ किया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्र दुर्योधनो राजा कर्णेन सह भारत ॥४॥
सम्भाषित्वा च कर्णेन भ्रात्रा दुःशासनेन च ।
सौबलेन च राजेन्द्र मन्त्रयित्वा नरर्षभ ॥५॥
आहूयोपह्वरे राजन्नुलूकमिदमब्रवीत् ।

हे भारत ! नरर्षभ ! राजन् ! इस प्रकार राजा दुर्योधन ने कर्ण, दुःशासन और शकुनि के साथ मन्त्रणा और बातचीत करके एकान्त में उलूक नामक दूत को बुलाया और उससे कहा।

उलूक गच्छ कैतव्य पाण्डवान्सहसोमकान् ॥६॥
गत्वा मम वचो ब्रूहि वासुदेवस्य शृण्वतः ।

हे कितवनन्दन ! उलूक ! सोमकवंशी क्षत्रियों के साथ बैठे हुए, पाण्डवों के पास जाकर तुम इस प्रकार कहना। उस समय वासुदेव कृष्ण भी वहीं सुनते हुए होने चाहिए ॥६॥

इदं तत्समनुप्राप्तं वर्षपूगाभिचिन्तितम् ॥७॥
पाण्डवानां कुरूणां च युद्धं लोकभयङ्करम् ।

हे महाभागो ! अनेक वर्षों से जिसका विचार हो रहा था, वह सब लोकों को भय उत्पादन करने वाला, विश्वव्यापी पाण्डव और कौरवों का युद्ध खड़ा हो गया है ॥७॥

यदेतत्कत्थनावाक्यं सञ्जयो महदब्रवीत् ॥८॥
वासुदेवसहायस्य गर्जतः सानुजस्य ते ।
मध्ये कुरूणां कौन्तेय तस्य कालोऽयमागतः ॥९॥
यथा वः सम्प्रतिज्ञातं तत्सर्वं क्रियतामिति ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे कौन्तेय ! तुम्हारे पास से लौट कर वासुदेव के साथ गर्जते हुए अपने छोटे भाई अर्जुन के सहित तुम्हारे सन्देश को सञ्जय ने कौरवों की सभा में सुनाया था। अब उसके पूरा करने का समय आ गया है। तुमने जो प्रतिज्ञा की थी, अब उसको ठीक २ पूरा करो ॥९॥

ज्येष्ठं तथैव कौन्तेय ब्रूयास्त्वं वचनान्मम ॥१०॥
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः सोमकैश्च सकेकयैः ।
कथं वा धार्मिको भूत्वा त्वमधर्मे मनः कृथाः ॥११॥

हे उलूक ! जिस समय सोमक और केकयों के साथ कुन्ती के ज्येष्ठ-पुत्र युधिष्ठिर बैठे हों—तब मेरी ओर से उनसे कहना, कि तुम तो धार्मिक बनते हो, फिर धार्मिक होकर भी इस भ्रातृ-युद्ध में कैसे प्रवृत्त हो रहे हो ॥१०-११॥

य इच्छसि जगत्सर्वं नश्यमानं नृशंसवत् ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो दाता त्वमिति मे मतिः ॥१२॥

मैं तो यह समझता था, कि तुम सारे प्राणियों के अभय देने वाले हो, फिर नीच मनुष्य की भांति सारे जगत् के नाशकारी इस युद्ध के करने की क्यों इच्छा कर रहे हो ॥१२॥

श्रूयते हि पुरा गीतः श्लोकोऽयं भरतर्षभ ।
प्राह्लदेनाऽथ भद्रं ते हृते राज्ये तु दैवतैः ॥१३॥

हे भरतर्षभ ! जब देवताओं ने दानवों के राज्य का अपहरण कर लिया—तब प्रह्लाद ने यह एक श्लोक कहा था ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यस्य धर्मध्वजो नित्यं सुरा ध्वज इवोच्छ्रितः ।
प्रच्छन्नानि च पापानि बैडालं नाम तद्व्रतम् ॥१४॥

हे देवो ! जिस धर्म के आडम्बर ध्वजा की तरह ऊंचे उठे रहते हैं और पाप जिसके भीतर छुपे रहते हैं—यह विडाल-व्रत कहाता है ॥१४॥

अत्र ते वर्तयिष्यामि आख्यानमिदमुत्तमम् ।
कथितं नारदेनेह पितुर्मम नराधिप ॥१५॥

हे नराधिप ! अत्र मैं तुमसे एक उपाख्यान कहला कर भेज रहा हूँ—जो नारदजी ने मेरे पिता के पास वर्णन किया था ।१५।

मार्जारः किल दुष्टात्मा निश्चेष्टः सर्वकर्मसु ।
उर्ध्वबाहुः स्थितो राजन्गङ्गातीरे कदाचन ॥१६॥

हे राजन् ! एक बार एक दुष्ट बिलाव गङ्गा के तीर पर ऊपर की ओर भुजा उठाए खड़ा था । यह ध्यान मग्न दिखाई देता था और किसी भी काम की ओर दृष्टि नहीं उठाता था ।१६।

स वै कृत्वा मनःशुद्धिं प्रत्ययार्थं शरीरिणाम् ।
करोमि धर्ममित्याह सर्वानेव शरीरिणः ॥१७॥

उसने अन्य जीव जन्तुओं का विश्वास उत्पन्न करने के लिए अपनी मन की शुद्धि का बहुत ही आडम्बर रचा । वह सारे प्राणियों से कहा करता, कि अब मैं धर्म का आचरण करने लगा हूँ ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्य कालेन महता विश्रम्भं जग्मुरण्डजाः ।
समेत्य च प्रशंसन्ति मार्जारं तं विशाम्पते ॥१८॥

हे विशाम्पते ! कुछ दिनों के अनन्तर उस बिलाव का अनेक पक्षियों को विश्वास हो गया। ये पक्षी जब कभी इकट्ठे होते—तो उसी बिलाव की प्रशंसा किया करते थे ॥१८॥

पूज्यमानस्तु तैः सर्वैः पक्षिभिः पक्षिभोजनः ।
आत्मकार्यं कृतं मेने चर्यायाश्च कृतं फलम् ॥१९॥

जब सारे पक्षियों ने अपने ही भोजन करने वाले बिलाव का बहुत ही आदर किया, तो उस बिलाव ने अपना कार्य सिद्ध हुआ समझा और अपनी धर्मचर्या को सफल हुआ जाना ॥१९॥

अथ दीर्घस्य कालस्य तं देशं मूषिका ययुः ।
ददृशुस्तं च ते तत्र धार्मिकं व्रतचारिणम् ॥२०॥

बहुत दिन के अनन्तर उस स्थान पर कुछ चूही चली आई, उन्होंने वहां उस व्रत करने वाले धूर्त बिलाव को देखा ॥२०॥

कार्येण महता युक्तं दम्भयुक्तेन भारत ।
तेषां मतिरियं राजन्नासीत्तत्र विनिश्चये ॥२१॥
बह्वमित्रा वयं सर्वे तेषां नो मातुलो ह्ययम् ।
रक्षां करोतु सततं वृद्धबालस्य सर्वशः ॥२२॥

हे भारत ! उन चूहों ने जब पाखण्ड युक्त महा तपश्चर्या में रत उस बिलाव को देखा—तो निश्चय किया, कि हम लोगों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनेक शत्रु हैं। हमको चाहिए, कि हम इसको अपना मातुल बनालें। यह हम सब बालक और वृद्धों की रक्षा करता रहेगा।२२।

उपगम्य तु ते सर्वे बिडालमिदमब्रुवन्।
भवत्प्रसादादिच्छामश्चर्तुं चैव यथासुखम् ॥२३॥
भवान्नो गतिरव्यग्रा भवान्नः परमः सुहृत्।
ते वयं सहिताः सर्वे भवन्तं शरणं गताः ॥२४॥

वे सारे बिलाव के समीप जाकर बोले–कि हम आपकी कृपा से सुख पूर्वक संसार में विचरना चाहते हैं। आप हमारे उत्तम-गति और परम सुहृद् हैं। आज हम सब आपकी शरण में आए हैं।२३-२४॥

भवान्धर्मपरो नित्यं भवान्धर्मे व्यवस्थितः।
स नो रक्ष महाप्रज्ञ त्रिदशानिव वज्रभृत् ॥२५॥

आप धर्म में संलग्न हैं तथा धर्म की व्यवस्था को जानने वाले हैं। हे महाप्रज्ञ! देवों की इन्द्र के समान आप हमारी रक्षा कीजिए ॥२५॥

एवमुक्तस्तु तैः सर्वैर्मूषिकैः स विशाम्पते।
प्रत्युवाच ततः सर्वान्मूषिकान्मूषिकान्तकृत् ॥२६॥

हे विशाम्पते! इस प्रकार जब मूषिकों ने कहा–तो मूषकों के नाशक उस बिलाव ने उन सारे मूषकों से कहा ॥२६॥

द्वयोर्योगं न पश्यामि तपसो रक्षणस्य च।
अवश्यं तु मया कार्यं वचनं भवतां हितम् ॥२७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे मूषको ! तप और तुम्हारी रक्षा-ये दोनों कार्य मैं एक दम कैसे कर सकता हूँ, परन्तु तो भी मुझे तुम्हारा वचन और हितकर कार्य अवश्य पूरा करना चाहिए ॥२७॥

युष्माभिरपि कर्तव्यं वचनं मम नित्यशः ।
तपसाऽस्मि परीश्रान्तो दृढं नियममास्थितः ॥२८॥

यह सब कुछ तभी हो सकेगा—जब तुम लोग भी मेरी आज्ञा का पालन करते रहोगे, क्योंकि मैंने दृढ़ नियमों के साथ तप करना आरम्भ कर रखा है और मैं इसमें बहुत ही थक जाता हूं।

न चापि गमने शक्तिं काञ्चित्पश्यामि चिन्तयन् ।
सोऽस्मि नेयः सदा तात नदीकूलमितः परम् ॥२९॥

मुझमें चलने फिरने की शक्ति अब बिलकुल नहीं रह गई है। हे मूषको ! तुमको चाहिए, कि तुम लोग, यहाँ से मुझे नदी के तट पर ले जाया करो ॥२९॥

तथेति तं प्रतिज्ञाय मूषिका भरतर्षभ ।
वृद्धबालमथो सर्वं मार्जाराय न्यवेदयन् ॥३०॥

हे भरतर्षभ ! उन मूषकों ने बिलाव की यह बात स्वीकार कर ली और वृद्ध तथा बालक सबको मार्जार के आगे उपस्थित कर दिया ॥३०॥

ततः स पापो दुष्टात्मा मूषिकानर्थ भक्षयन् ।
पीवरश्च सुवर्णश्च दृढबन्धश्च जायते ॥३१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस दुष्ट पापी बिलाव ने उन मूषकों का खाना आरम्भ किया। इससे वह पुष्ट, सुन्दर, दृढ़ अङ्ग वाला हो गया ॥३१॥

मूषिकाणां गणश्चाऽत्र भृशं संक्षीयतेऽथ सः ।
मार्जारो वर्धते चापि तेजोबलसमन्वितः ॥३२॥

इस प्रकार मूषकों का समूह तो क्षीण होने और बिलाव तेज तथा बल से सम्पन्न होकर बढ़ने लगा ॥३२॥

ततस्ते मूषिकाः सर्वे समेत्याऽन्योन्यमब्रुवन् ।
मातुलो वर्धते नित्यं वयं क्षीयामहे भृशम् ॥३३॥

अब उन सबने इकट्ठे होकर एक दूसरे से कहा, कि मामाजी तो नित्य पुष्ट होते जाते हैं और हम लोग नित्य घट रहे हैं ॥३३॥

ततः प्राज्ञतमः कश्चिद्डिण्डिको नाम मूषिकः ।
अब्रवीद्वचनं राजन्मूषिकाणां महागणम् ॥३४॥
गच्छतां वो नदीतीरं सहितानां विशेषतः ।
पृष्ठतोऽहं गमिष्यामि सहैव मातुलेन तु ॥३५॥

हे राजन् ! इन मूषकों में एक डिण्डिक नामक चूहा था। वह मूषकों के गण से यह वचन बोला, कि तुम लोग नदी के तीर पर बिलाव के साथ चलो और सारे इकट्ठे ही रहना। मैं मामा जी के पीछे २ चलूंगा ॥ ३४-३५ ॥

साधु साध्विति ते सर्वे पूजयाञ्चक्रिरे तदा ।
चक्रुश्चैव यथान्यायं डिण्डिकस्य वचोऽर्थवत् ॥३६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन चूहोंने डिण्डिक की बात का बड़े धन्यवाद के साथ समर्थन किया और उसकी बड़ी पूजा की। इन्होंने डिण्डिक के तत्त्व पूर्ण वचन को यथाशक्ति पूरा करने का प्रयत्न किया ॥३६॥

अविज्ञानात्ततः सोऽऽथ डिण्डिकं ह्युपभुक्तवान् ।
ततस्ते सहिताः सर्वे मन्त्रयामासुरञ्जसा ॥३७॥

बिलाव को इन सब बातों का कुछ भी पता नहीं था। उसने मौका देखकर डिण्डिक का भक्षण कर लिया। उन सब ने अब बड़ी शीघ्रता से अपनी सभा इकट्ठी की और विचार करना आरम्भ किया ॥ ३७ ॥

तत्र वृद्धतमः कश्चित्कोलिको नाम मूषिकः ।
अब्रवीद्वचनं राजञ्ज्ञातिमध्ये तथातथम् ॥३८॥

हे राजन्! उनमें एक अत्यन्त वृद्ध कोलिक नामक चूहा था। वह अपने बन्धुओं के मध्यमें इस प्रकार यथार्थ वचन कहने लगा।

न मातुलो धर्मकामश्छद्ममात्रं कृता शिखा ।
न मूलफलभक्षस्य विष्ठा भवति लोमशा ॥३९॥

यह हमारा मातुल धर्म की कामना से तपस्या नहीं कर रहा। इसने तो अपनी शिखा कपट से बढ़ा रखी है। यदि यह कन्द मूल फलों का भोजन करता है, तो इसकी विष्ठा लोमों से युक्त नहीं होनी चाहिए ॥ ३९ ॥

अस्य गात्राणि वर्धन्ते गणश्च परिहीयते ।
अद्य सप्ताष्टदिवसान्डिण्डिकोऽपि न दृश्यते ॥४०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसका शरीर तो पुष्ट होता जा रहा है और हम मूषकों का समूह क्षीण हो चला है। अब तो सात आठ दिन से डिण्डिक भी दिखाई नहीं देता है ॥ ४० ॥

एतच्छ्रुत्वा वचः सर्वे मूषिका विप्रदुद्रुवः ।
बिडालोऽपि स दुष्टात्मा जगामैव यथागतम् ॥४१॥

इतना सुनना था, कि सारे मूषक भाग गए। दुष्टात्मा बिलाव भी यह देखकर अपने अभीष्ट स्थान को चला गया ॥ ४१ ॥

तथा त्वमपि दुष्टात्मन्बैडालं व्रतमास्थितः ।
चरसि ज्ञातिषु सदा बिडालो मूषिकेष्विव ॥४१॥

हे दुष्टात्मन् ! तू ने भी उसी तरह का बिडाल व्रत रख छोड़ा है। तुम भी अपने बन्धुओं में उसी तरह का आचरण कर रहे हो-जैसा उस बिलाव ने मूषकों के साथ किया ॥ ४२ ॥

अन्यथा किल ते वाक्यमन्यथा कर्म दृश्यते ।
दम्भनार्थाय लोकस्य वेदाश्चोपशमश्च ते ॥४३॥

हे राजन् ! तुम्हारे वचन तो कुछ हैं और आचरण और ही ढंग का है। तुम्हारा यह वेद, ज्ञान और शांति पाठ-सब कुछ लोगों के ठगने के लिए ही दिखाई देता है ॥ ४३ ॥

त्यक्त्वा छद्म त्विदं राजन्क्षत्रधर्मं समाश्रितः ।
कुरु कार्याणि सर्वाणि धर्मिष्ठोऽसि नरर्षभ ॥४४॥

हे राजन् ! तुम क्षत्रिय धर्म का आचरण करने वाले हो-इससे तुम्हें अब अपने कपट व्यवहार का परित्याग कर देना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे नरर्षभ ! तुम धर्मात्मा कहाते हो-इससे सारे कार्यों को धर्मानुसार विचार कर व्यवहार में लाओ ॥ ४४ ॥

बाहुवीर्येण पृथिवीं लब्ध्वा भरतसत्तम ।
देहि दानं द्विजातिभ्यः पितृभ्यश्च यथोचितम् ॥४५॥

हे भरतसत्तम ! अब तो तुम अपनी भुजाओं से पृथिवी के भाग को जीतकर ब्राह्मण और पितरों को दान देने का प्रयत्न करो ॥ ४५ ॥

क्लिष्टाया वर्षपूगांश्च मातुर्मातृहिते स्थितः ।
प्रमार्जाऽश्रु रणे जित्वा सम्मानं परमावह ॥४६॥

तुम माता के बड़े भक्त हो । तुम्हारी माता कुन्ती अनेक वर्षों से क्लेश उठा रही है । अब तुम रण में विजय प्राप्त करके उसके आंसुओं का प्रमार्जन करो- यही उसका बहुत सम्मान होगा ॥४६॥

पञ्च ग्रामा वृता यत्नान्नाऽस्माभिरपवर्जिताः ।
युद्ध्यामहे कथं संख्ये कोपयेम च पाण्डवान् ॥४७॥

तुमने बड़े आग्रहसे पांच गांव मांगे थे, परन्तु हमने नहीं दिए। हम तो यही चाहते थे, कि किसी तरह पाण्डवों को कुपित करें, जिससे उनके साथ युद्ध कर सकें ॥ ४७ ॥

त्वत्कृते दुष्टभावस्य सन्त्यागो विदुरस्य च ।
जातुषे च गृहे दाहं स्मर तं पुरुषो भव ॥४८॥

हमारा तुम्हारे साथ सदा अनुचित व्यवहार रहा है । तुम्हारा पक्षपाती होने से हमने विदुर का भी परित्याग कर रखा है । अब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम लोग इन बातों तथा जतु-ग्रह के दाह की घटना का स्मरण करके पुंस्त्व का अवलम्बन करो ॥ ४८ ॥

यच्च कृष्णमवोचस्त्वमायान्तं कुरुसंसदि ।
अयमस्मि स्थितो राजञ्शमाय समराय च ॥४९॥
तस्याऽयमागतः कालः समरस्य नराधिप ।
एतदर्थं मया सर्वं कृतमेतद्युधिष्ठिर ॥५०॥

हे राजन् ! जब कृष्ण को कौरवों की सभा में तुमने भेजा था, तब उनसे कहा था, कि हम तो सन्धि और युद्ध दोनों को ही तय्यार हैं। हे नराधिप ! अब उस युद्ध का समय उपस्थित हो गया है। हे युधिष्ठिर ! इस युद्ध के लिए अब तक मैंने सब कुछ किया है ॥४९-५०॥

किं नु युद्धात्परं लाभं क्षत्रियो बहु मन्यते ।
किं च त्वं क्षत्रियकुले जातः सम्प्रस्थितो भुवि ॥५१॥

वीर क्षत्रिय, उपस्थित हुए युद्ध से अधिक अन्य किसी लाभ को नहीं मानते हैं। तुम क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए हो और पृथिवी पर विख्यात वीर हो ॥ ५१ ॥

द्रोणादस्त्राणि सम्प्राप्य कृपाच्च भरतर्षभ ।
तुल्ययोनौ समबले वासुदेवं समाश्रितः ॥५२॥
ब्रूयास्त्वं वासुदेवं च पाण्डवानां समीपतः ।
आत्मार्थं पाण्डवार्थं च यत्तो मां प्रतियोधय ॥५३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे भरतर्षभ ! तुमने द्रोणाचार्य और कृप से शस्त्र विद्या सीखी है। समान बलधारी तुम्हारा क्षत्रिय कुलमें जन्म है और वासुदेव कृष्ण के आश्रय में हो। यह सब कुछ पाण्डवों से कहकर पाण्डवों के सन्मुख ही कृष्ण से कहना, कि अब तुम अपने या पाण्डवों के हित के लिए सावधान हो जाओ-क्योंकि मुझसे तुमको युद्ध करना होगा ॥ ५२-५३ ॥

सभामध्ये च यद्रूपं मायया कृतवानसि ।
तत्तथैव पुनः कृत्वा सार्जुनो मामभिद्रव ॥५४॥

तुमने सभा के मध्य में जो माया से रूप धारण किया था— अब फिर वैसा ही रूप धारण करके अर्जुन के साथ जरा सामने आना ॥५४॥

इन्द्रजालं च माया वै कुहका वापि भीषणा ।
आत्तशस्त्रस्य संग्रामे वहन्ति प्रतिगर्जनाः ॥५५॥

इन्द्र-जाल, माया, कुहका (योगिनी सिद्धि) ये बड़ी भयानक होती हैं। ये शस्त्र लेकर संग्राम में युद्ध करने पर विपरीत कोप कर बैठती हैं ॥५५॥

वयमप्युत्सहेम द्यां खं च गच्छेम मायया ।
रसातलं विशामोऽपि ऐन्द्रं वा पुरमेव तु ॥५६॥

दर्शयेम च रूपाणि स्वशरीरे बहून्यपि ।
न तु पर्यायतः सिद्धिर्बुद्धिमाप्नोति मानुषीम् ॥५७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं भी माया से आकाश या स्वर्ग, पाताल वा इन्द्रपुर में उड़कर जा सकता हूँ। मैं अपने शरीर में बहुत से रूप दिखा सकता हूँ, परन्तु वास्तव में इनसे सच्ची सिद्धि नहीं हो सकती है और न इस तरह मनुष्यत्व के प्रकट करने वाली बुद्धि प्राप्त होती है ॥५७॥

मनसैव हि भूतानि धातैव कुरुते वशे ।
यद्ब्रवीषि च वार्ष्णेय धार्तराष्ट्रानहं रणे ॥५८॥
घातयित्वा प्रदास्यामि पार्थेभ्यो राज्यमुत्तमम् ।
आचचक्षे च मे सर्वं सञ्जयस्तव भाषितम् ॥५९॥
मद्द्वितीयेन पार्थेन वैरं वः सव्यसाचिना ।
स सत्यसङ्गरो भूत्वा पाण्डवार्थे पराक्रमी ॥६०॥
युद्ध्यस्वाऽद्य रणे यत्तः पश्यामः पुरुषो भव ।

विधाता ही एक ऐसा शक्तिशाली है, जो अपनी इच्छा के अनुसार प्राणियों को वश में कर लेता है। हे वार्ष्णेय ! जो तुमने कहा है, कि मैं धृतराष्ट्र-पुत्रों को रण में मरवाकर पाण्डवों को राज्य प्रदान कर दूंगा। सञ्जय ने तुम्हारा वह सारा भाषण मुझे सुना दिया है। तुमने कहा, कि दुर्योधन का वैर मुझसे और अर्जुन से ठना है। अब तुम अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करो और पाण्डवों के लिए बड़ी सावधानी से युद्ध करके अपना पराक्रम दिखाओ। हम यह सब कुछ देखना चाहते हैं। अब तुम वीर पुरुष बनकर सामने आओ ॥५८-६०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यस्तु शत्रुमभिज्ञाय शुद्धं पौरुषमास्थितः ॥६१॥
करोति द्विषतां शोकं स जीवति सुजीवितम् ।

जो अपने शत्रु को सन्मुख आया हुआ जानकर शुद्ध पराक्रम का अवलम्बन करता है तथा शत्रुओं को शोकमग्न बना देता है, उसीका जीवन धन्य मानना चाहिए ॥६१॥

अकस्माच्चैव ते कृष्ण ख्यातं लोके महद्यशः ॥६२॥
अद्येदानीं विजानीमः सन्ति षण्ढाः सशृङ्गकाः ।

हे कृष्ण ! तुम्हारा यश अचानक ही संसार में निरर्थक फैल गया है । आज हम सब लोग देख लेंगे, कि आप लोग पुरुषों के चिन्ह धारण करके भी निरे नपुंसक हो ॥६२॥

मद्विधो नापि नृपतिस्त्वयि युक्ताः कथञ्चन ॥६३॥
सन्नाहं संयुगे कर्तुं कंसभृत्ये विशेषतः ।

अब तक मेरे समान बली राजा कोई तुमसे युद्ध में नहीं भिड़ा है, जिसने युद्ध में तुम्हारा सामना किया हो और कंस-भृत्य कृष्ण के साथ तो यह विशेषता (खास तौर) से हुआ है, कि उनका किसी वीर से सामना नहीं हुआ है ॥६३॥

तं च तूवरकं बालं बह्वाशिनमविद्यकम् ॥६४॥
उलूक मद्वचो ब्रूहि असकृद्भीमसेनकम् ।
विराटनगरे पार्थ यस्त्वं सूदो ह्यभूः पुरा ॥६५॥
बल्लवो नाम विख्यातस्तन्ममैव हि पौरुषम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे उलूक! तुम बैल की तरह चरने वाले, विद्याहीन मूर्ख, भीमसेन से मेरा नाम लेकर बार २ कह देना, कि हे पार्थ! विराटनगर में जो तुम बल्लव नाम से विख्यात रसोइये बनकर दिन बिता चुके हो—यह हमारा ही पुरुषार्थ है ॥६४-६५॥

प्रतिज्ञातं सभामध्ये न तन्मिथ्या त्वया पुरा ॥६६॥
दुःशासनस्य रुधिरं पीयतां यदि शक्यते ।

तुमने पूर्वकाल में सभा में यह प्रतिज्ञा की है, कि मैं दुःशासन का युद्ध में रक्तपान करूँगा—अब यदि तुम पी सको, तो पी लेना। देखना? कहीं वह प्रतिज्ञा मिथ्या न हो जावे ॥६६॥

यद्ब्रवीषि च कौन्तेय धार्त्तराष्ट्रानहं रणे ॥६७॥
निहनिष्यामि तरसा तस्य कालोऽयमागतः ।

हे कुन्तीपुत्र! तुमने बड़े आवेश में आकर यह प्रतिज्ञा की थी, कि मैं रण में धृतराष्ट्र-पुत्रों का नाश करूँगा—अब उस प्रतिज्ञा के पूर्ण करने का समय आ चुका है ॥६७॥

त्वं हि भोज्ये पुरस्कार्यो भक्ष्ये पेये च भारत ॥६८॥
क्व युद्धं क्व च भोक्तव्यं युद्धस्व पुरुषो भव ।

हे भारत! तुम खाने पीने और भोजन करने में ही अग्रगण्य वीर हो, परन्तु कहाँ युद्ध और कहाँ भोजन। यदि तुम युद्ध कर सकते हो, तो करो और वीर पुरुष बन कर दिखाओ ॥ ६८ ॥

शयिष्यसे हतो भूमौ गदामालिङ्ग्य भारत ॥६९॥
तद्वृथा च सभामध्ये वल्गितं ते वृकोदर ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे भारत! वृकोदर! तुम अपनी गदा के चिपट कर रण भूमि में मारे हुए सो जाओगे। तुमने जो प्रथम सभा में बकवाद की थी, वह सब व्यर्थ जावेगी ॥ ६९ ॥

उलूक नकुलं ब्रूहि वचनान्मम भारत ॥७०॥
युद्ध्यस्वाऽद्य स्थिरो भूत्वा पश्यामस्तव पौरुषम् ।

हे उलूक! तुम मेरी ओर से नकुल से भी कहना, कि हे भारत! अब तुम दृढ़ होकर युद्ध करो, हम तुम्हारा पुरुषार्थ देखना चाहते हैं ॥ ७० ॥

युधिष्ठिरानुरागं च द्वेषं च मयि भारत ।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं स्मरेदानीं यथातथम् ॥७१॥

हे भारत! युधिष्ठिर के प्रति अपनी भक्ति, मुझसे द्वेष तथा द्रौपदी का क्लेश देखकर इस समय जो यथार्थ में करना है, उसे देखो ॥ ७१ ॥

ब्रूयास्त्वं सहदेवं च राजमध्ये वचो मम ।
युद्ध्यैदानीं रणे यत्तः क्लेशान्स्मर च पाण्डव ॥७२॥

हे दूत! तुम राजाओं की सभा के मध्य में सहदेव से भी कह देना, कि अब तुम सावधान होकर युद्ध करो और अपने क्लेशों का स्मरण करलो ॥७२॥

विराटद्रुपदौ चोभौ ब्रूयास्त्वं वचनान्मम ।
न दृष्टपूर्वा भर्तारो भृत्यैरपि महागुणैः ॥७३॥
तथाऽर्थपतिभिर्भृत्या यत्तः सृष्टा प्रजास्ततः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अश्लाघ्योऽयं नरपतिर्युवयोरिति चाऽऽगतम् ॥७४॥
ते यूयं संहता भूत्वा तद्वधार्थं ममापि च ।
आत्मार्थं पाण्डवार्थं च प्रयुद्ध्यध्वं मया सह ॥७५॥

हे उलूक ! मेरी ओर से विराट तथा द्रुपद से भी कह देना, कि हे महाभागो ! जब से सृष्टि हुई है, तब से महा-गुणी भृत्यों से युक्त भर्ता (राजा) और अर्थ-पतियों (राजाओं) से युक्त भृत्य गण नहीं हुए हैं। अब तुम लोग राजा युधिष्ठिर के साथ इस बात को पूर्ण करोगे। तुम दोनों यह कहते ही रहते थे, कि राजा दुर्योधन बड़ा निन्दनीय राजा है, इसीलिए तुम आए हो। अब तुम लोग अपने या पाण्डवों को हित के लिए जी तोड़ कर युद्ध कर लेना। ऐसे अप्रशंसा योग्य मुझ राजा के वध करने का यही अच्छा अवसर है। अब तुम लोग संगठित होकर मेरे साथ युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाओ ॥ ७३—७५ ॥

धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यं ब्रूयास्त्वं वचनान्मम ।
एष ते समयः प्राप्तो लब्धव्यश्च त्वयाऽपि सः॥७६॥
द्रोणमासाद्य समरे ज्ञास्यसे हितमुत्तमम् ।
युद्ध्यस्व ससुहृत्पापं कुरु कर्म सुदुष्करम् ॥७७॥

हे उलूक ! पाञ्चालराज पुत्र धृष्टद्युम्न से भी मेरा नाम लेकर कह देना, कि अब तुम्हारा भी समय आ गया है। द्रोण तुम्हें युद्ध में सामने मिलेगा। अब तुम द्रोण को सन्मुख देखकर अपने उत्तम हित को जान लेना। अपने सारे सुहृदों को साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेकर युद्ध करना और देखना तथा युद्ध में महा दुष्कर पराक्रम कर दिखाना ॥ ७६—७७ ॥

शिखण्डिनमथो ब्रूहि उलूक वचनान्मम ।
स्त्रीति मत्वा महाबाहुर्न हनिष्यति कौरवः ॥७८॥
गाङ्गेयो धन्विनां श्रेष्ठो युद्ध्येदानीं सुनिर्भयः ।
कुरु कर्म रणे यत्तः पश्यामः पौरुषं तव ॥७९॥

हे उलूक ! मेरी ओर से महारथी शिखण्डी से भी कह देना, कि तुमको स्त्री समझ कर महाबाहु कुरु-वंश-श्रेष्ठ महा धनुर्धर गङ्गा-पुत्र भीष्म नहीं मारेगा । अब तुम निर्भय होकर युद्ध करना । तुम बड़ी सावधानी से युद्ध में प्रवृत्त होना । हम तुम्हारा पुरुषार्थ देखना चाहते हैं ॥ ७८—७९ ॥

एवमुक्त्वा ततो राजा प्रहस्योलूकमब्रवीत् ।
धनञ्जयं पुनर्ब्रूहि वासुदेवस्य शृण्वतः ॥८०॥
अस्मान्वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम् ।
अथवा निर्जितोऽस्माभी रणे वीर शयिष्यसि ॥८१॥

इतना कह कर फिर राजा दुर्योधन कुछ हँस कर अपने दूत उलूक से बोला, कि तुम कृष्ण के सुनते २ धनञ्जय अर्जुन से कहना, कि हे वीर ! अब तुम हम लोगों का वध करके इस पृथिवी का शासन करो या हम से वध प्राप्त करके सदा के लिए रण भूमि में शयन कर लेना ॥ ८०—८१ ॥

राष्ट्रान्निर्वासनक्लेशं वनवासं च पाण्डव ।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं संस्मरन्पुरुषो भव ॥८२॥
यदर्थं क्षत्रिया सूते सर्वं तदिदमागतम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे अर्जुन! अपने राज्य से निकालने तथा वनवास के क्लेश एवं द्रौपदी के अपमान का स्मरण करके अब तुम वीर पुरुष बन जाओ। जिस लिए क्षत्राणी पुत्र उत्पन्न करती है, उसके दिखाने का यह समय आ गया है। ॥ ८२ ॥

बलं वीर्यं च शौर्यं च परं चाप्यस्त्रलाघवम् ॥८३॥
पौरुषं दर्शयन्युद्धे कोपस्य कुरु निष्कृतिम् ।

अब तुम अपना बलवीर्य, अस्त्र चलाने की स्फूर्ति (फुर्ती) और पुरुषार्थ, युद्धमें दिखलाकर अपने कोप का मार्जन करो ॥८३॥

परिक्लिष्टस्य दीनस्य दीर्घकालोषितस्य च ।
हृदयं कस्य न स्फोटेदैश्वर्याद् भ्रंशास्य च ॥८४॥
कुले जातस्य शूरस्य परवित्तेष्वगृद्ध्यतः ।
आस्थितं राज्यमाक्रम्य कोपं कस्य न दीपयेत् ॥७५॥

तुम लोग बड़े क्लेशित, दीन और चिरकाल से वनवास के कष्टों से श्रान्त हो रहे हो। तुम इस प्रकार ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो, कि जिसको देखकर सब का दया से हृदय फटने लगता है। तुम लोग, कुल में उत्पन्न शूरवीर हो और किसी के धन का लेने का लालच नहीं करते हो, मैंने तुम्हारे हड़ हुए राज्य पर आक्रमण किया है। इस प्रकार की घटना किसके कोप को प्रदीप्त नहीं कर देगी ॥ ८४-८५ ॥

यत्तदुक्तं महद्वाक्यं कर्मणा तद्विभाव्यताम् ।
अकर्मणा कत्थितेन सन्तः कुपुरुषं विदुः ॥८६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो तुमने पूर्वकाल में अपनी प्रशंसा के अनेक वचन कहे हैं, अब उनके पूरा करने का समय है। जो अपनी डींग मारता है और कुछ करके नहीं दिखाता, उसको विद्वान् कायर पुरुष कहते हैं।

अमित्राणां वशे स्थानं राज्यं च पुनरुद्धर।
द्वावर्थौ युद्धकामस्य तस्मात्तत्कुरु पौरुषम् ॥८७॥

तुम्हारा स्थान और राज्य-शत्रु के अधिकार में है। तुम इस का अब फिर उद्धार करो। युद्ध करने वाले के तो दोनों हाथों में लड्डू हैं, इससे तुम अब युद्ध को तय्यार होकर अपना पराक्रम दिखाओ ॥ ८७ ॥

पराजितोऽसि द्यूतेन कृष्णा चाऽऽनायिता सभाम्।
शक्योऽमर्षो मनुष्येण कर्तुं पुरुषमानिना ॥८८॥

तुम लोगों को द्यूत में जीता गया। द्रौपदी को सभा में लाया गया। यदि तुम मनुष्य हो और अपने पुरुष होने का अभिमान रखते हो तो तुमको इसका परिमार्जन करना चाहिए ॥ ८८ ॥

द्वादशैव तु वर्षाणि वने धिष्ण्याद्विवासितः।
संवत्सरं विराटस्य दास्यमारथाय चोषितः ॥८९॥
राष्ट्राच्चिर्वासनक्लेशं वनवासं च पाण्डव।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं संस्मरन्पुरुषो भव ॥९०॥

हमने तुमको बारह वर्ष तक के लिए अपने घर से निकाल दिया और एक वर्ष तक विराट का दास बनवाकर निवास करवाया। हे अर्जुन! अब तुम भी अपने राष्ट्र से निकालने और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वनवास के क्लेश तथा द्रौपदी के दुःख का स्मरण करके पुरुष बन जाओ ॥ ८९-९० ॥

अप्रियाणां च वचनं प्रब्रुवत्सु पुनः पुनः ।
अमर्षं दर्शयस्व त्वममर्षो ह्येव पौरुषम् ॥९१॥

जिन लोगों ने तुमसे क्रोध पूर्ण अप्रिय वचन बार २ कहे-उनको अब अपना भी तो क्रोध दिखाओ । संसार में तो ऐसे समय में क्रोध दिखाना ही पुरुष का पुरुषत्व है ॥ ९१ ॥

क्रोधो बलं तथा वीर्यं ज्ञानयोगोऽस्त्रलाघवम् ।
इह ते दृश्यतां पार्थ युद्ध्यस्व पुरुषो भव ॥९२॥

हे पार्थ ! हम लोग तुम्हारा क्रोध, बल, वीर्य, ज्ञानयोग और अस्त्र-लाघव (फुर्ती) देखना चाहते हैं—अब तुम उसके दिखाने को युद्ध करो और पुरुष बन कर दिखाओ ॥ ९२ ॥

लोहाभिसारो निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्दमम् ।
पुष्टास्तेऽश्वा भृता योधाः श्वो युद्ध्यस्व सकेशवः ॥९३॥

अब शस्त्रों का जो संस्कार होना था, वह हो चुका और कुरुक्षेत्र की भूमि भी कीचड़ से शून्य हो चुकी है। घोड़े पुष्ट हैं और योद्धाओं को भी वेतन मिल चुका है। अब तो तुम को केशव के साथ कल ही युद्ध के लिए निकल पड़ना चाहिए ॥ ९३ ॥

असमागम्य भीष्मेण संयुगे किं विकत्थसे ।
आरुरुक्षुर्यथा मन्दः पर्वतं गन्धमादनम् ॥९४॥
एवं कत्थसि कौन्तेय अकत्थन्पुरुषो भव ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब तक भीष्म से युद्ध में टक्कर न होवे-तब तक मिथ्या प्रशंसा करना व्यर्थ है । तुम्हारी तो उस मूर्ख के समान दशा है, जो मन से ही गन्धमादन पर्वत पर चढ़ने की चेष्टा करके अपनी डींग मारता है । ऐसे ही तुम अपनी बड़ाई मार रहे हो । अब तो तुम डींग न मार कर पुरुषत्व का अवलम्बन करो ॥ ९४ ॥

सूतपुत्रं सुदुर्धर्षं शल्यं च बलिनां वरम् ॥९५॥
द्रोणं च बलिनां श्रेष्ठं शचीपतिसमं युधि ।
अजित्वा संयुगे पार्थ राज्यं कथमिहेच्छसि ॥९६॥

हे अर्जुन ! दुराधर्ष सूत-पुत्र, कर्ण, बलवानों में श्रेष्ठ शल्य, युद्ध में इन्द्र के समान अद्वितीय महाबली द्रोण को युद्ध में विना जीते ही तुम राज्य की कैसे इच्छा कर रहे हो ॥ ९५-९६॥

ब्राह्मे धनुषि चाऽऽचार्यं वेदयोरन्तगं द्वयोः ।
युधि धुर्यमविक्षोभ्यमनीकचरमच्युतम् ॥९७॥
द्रोणं महाद्युतिं पार्थ जेतुमिच्छसि तन्मृषा ।

ब्रह्म-शक्ति और धनुष-शक्ति में जो आचार्य है । वेद और धनुर्वेद इन दोनों का जो पारगामी है । युद्ध में धुर के समान दृढ़, क्षुभित नहीं होने वाले, सेना में निर्भीक घूमने और विचलित नहीं होने वाले महा-कान्तिमान् द्रोण के जीतने की क्या तुम मिथ्या अभिलाषा कर रहे हो ॥ ९७ ॥

नहि शुश्रुम वातेन मेरुमुन्मथितं गिरिम् ॥९८॥
अनिलो वा वहेन्मेरुं द्यौर्वाऽपि निपतेन्महीम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युगं वा परिवर्तेत यद्येवं स्याद्यथाऽऽत्थ माम् ॥९९॥

हमने यह कहीं नहीं सुना, कि वायु ने मेरु पर्वत को उड़ा दिया हो या उसका धारण किया हो तथा द्युलोक पृथिवी पर गिर पड़ा हो। जो तुम कह रहे हो, वह तो तभी सत्य हो सकता है, जब युगों के धर्म विपरीत होकर बदल जावेंगे ॥ ९९ ॥

को ह्यरिंत जीविताकांक्षी प्राप्येममरिमर्दनम् ।
पार्थो वा इतरो वापि कोऽन्यः स्वस्ति गृहान्व्रजेत् ॥

ऐसा कौन अपना कल्याण का इच्छुक है, जो अरिमर्दन इस द्रोण का सामना पाकर भी अक्षत रह जावे। अर्जुन या अन्य कौन ऐसा वीर होगा, जो उनके सामने से सुख पूर्वक घर को लौट जावे ॥ १०० ॥

कथमाभ्यामभिध्यातः संस्पृष्टो दारुणेन वा ।
रणे जीवन्प्रमुच्येत पदा भूमिमुपस्पृशन् ॥१०१॥

ऐसा कौन पृथिवी पर चलने वाला मनुष्य होगा, जो इन दोनों भीष्म और द्रोण से मारने योग्य ठहराया जाकर तथा इनके दारुण शस्त्र की चोट खाकर रण से जीता ही चला जावे ॥१०१॥

किं दर्दुरः कूपशयो यथेमां न बुध्यसे राजचमूं समेताम् ।
दुराधर्षां देवचमूप्रकाशां गुप्तां नरेन्द्रैस्त्रिदशैरिव द्याम् ॥
प्राच्यैः प्रतीच्यैरथ दाक्षिणात्यैरुदीच्यकाम्बोजशकैः खशैश्च
शाल्वैःसमत्स्यैःकुरुमध्यदेश्यैर्म्लेच्छैःपुलिन्दैर्द्रविडान्ध्रकांच्यैः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नानाजनौघं युधि सम्प्रवृद्धं गाङ्गं यथा वेगसमाकुलीयम्
मां च स्थितं नागबलस्य मध्ये युयुत्ससे मन्द किमल्पबुद्धे ॥

हे अल्पबुद्धि ! मूर्ख क्या तू सचमुच कुए में रहने वाले मेढक के समान है, जो इकट्ठी हुई, दुराधर्ष, देवों की सेना के समान तेजस्विनी, देवों से सुरक्षित स्वर्गपुरी की भांति पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर के राजा, काम्बोज, शक, खश, शाल्व, मत्स्य, कुरु-देशोत्पन्न वीर, म्लेच्छ, पुलिन्द द्रविण, आंध्र और काञ्ची के राजाओं से सुरक्षित मेरी राजसेना को नहीं जान सका है। इस युद्ध में अनेक देशों का विशाल जन समूह अपार गङ्गा के प्रवाह की भांति इकट्ठा हुआ है। हाथियों के मध्य में खड़ा होकर मैं भी युद्ध करने वाला हूँ, फिर भी क्या तुम लोग युद्ध करने की इच्छा कर रहे हो ॥ १०२-१०४ ॥

अक्षय्यावेषुधी चैव अग्निदत्तं च ते रथम् ।
जानीमो हि रणे पार्थ केतुं दिव्यं च भारत ॥१०५॥

हे भारत ! तेरे अक्षय तूणीर और अग्नि का दिया हुआ जो रथ है, मैं उन्हें जानता हूँ। अब तो तेरे तूणीर, रथ और ध्वजा को हम युद्ध में ही देखेंगे ॥ १०५ ॥

अकत्थमानो युद्ध्यस्व कत्थसेऽर्जुन किं बहु ।
पर्यायात्सिद्धिरेतस्य नैतत्सिद्ध्यति कत्थनात् ॥१०६॥

हे अर्जुन ! अब तो तू बिना डींग मारे युद्ध कर। अपने डींग मारने से क्या प्रयोजन है। युद्ध की सिद्धि तो पराक्रम से है, युद्ध, मिथ्या प्रशंसा से नहीं जीता जा सकता है ॥१०६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदीदं कत्थनाल्लोके सिद्ध्येत्कर्म धनञ्जय ।
सर्वे भवेयुः सिद्धार्थाः कत्थने को हि दुर्गतः ॥१०७॥

हे धनञ्जय ! यदि किसी कर्म की सिद्धि वृथा डींग मारने से संसार में हो जावे, तो सारे प्रयोजन ही सिद्ध हो सकते हैं, क्योंकि मिथ्या प्रशंसा करने में कौन दरिद्री है ॥१०७॥

जानामि ते वासुदेवं सहायं जानामि ते गाण्डिवं तालमात्रम्
जानाम्यहं त्वादृशो नास्ति योद्धा जानानस्ते राज्यमेतद्धराभि

मैं तेरे सहायक वासुदेव और ताल वृक्ष के तुल्य दीर्घ गाण्डीव धनुष को जानता हूं । मैं यह भी जानता हूं, कि तेरे समान कोई योद्धा नहीं है । मैं इन सब बातों को जान कर भी तुम्हारे राज्य का अपहरण कर रहा हूं ॥१०८॥

न तु पर्यायधर्मेण सिद्धिं प्राप्नोति मानवः ।
मनसैवाऽनुकूलानि धातैव कुरुते वशे ॥१०९॥

मनुष्य, माया और छल आदि या कुल क्रमागत महत्व से सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता है । अपने मनोरथ के अनुकूल तो विधाता ही कार्य कर सकता हैं ॥१०९॥

त्रयोदश समा भुक्तं राज्यं विलपतस्तव ।
भूयश्चैव प्रशासिष्ये त्वां निहत्य सबान्धवम् ॥११०॥

हमने तुम्हारा राज्य तेरह वर्ष तक भोगा और तुम विलाप करते ही रह गए । मैं तो अब आगे भी तुम लोगों को मार कर फिर सारी पृथिवी का शासन करूँगा ॥११०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्व तदा गाण्डिवं तेऽभूद्यत्त्वं दासपणैर्जितः ।
क्व तदा भीमसेनस्य बलमासीच्च फाल्गुन ॥१११॥

हे अर्जुन ! जब तुमको दास बनाकर हमने जीता था, तब तुम्हारा धनुष कहां गया और उस समय भीमसेन का बल भी कहां था ॥१११॥

सगदाद्भीमसेनाद्वा फाल्गुनाद्वा सगाण्डिवात् ।
न वै मोक्षस्तदा योऽभूद्विना कृष्णानिमन्दिताम् ॥११२॥

उस समय तो गदा सहित भीम और गाण्डीव सहित तुम अर्जुन से भी तुम्हारा छुटकारा नहीं हुआ। वह छुटकारा तो द्रौपदी ही करा सकी ॥११२॥

सा वो दास्ये समापन्नान्मोचयामास पार्षती ।
अमानुष्यं समापन्नान्दासकर्मण्यवस्थितान् ॥११३॥

जब तुम दास भाव को प्राप्त हो रहे थे और मनुष्यता से हीन हो कर सेवा करने को तत्पर थे, तब द्रौपदी ने ही तुम्हारी मुक्ति करवाई ॥११६॥

अवोचं यत्षण्ढतिलानहं वस्तथ्यमेव तत् ।
धृता हि वेणी पार्थेन विराटनगरे तदा ॥११४॥

मैंने जो उस समय तुमको षण्ढतिल (नपुंसक) कहकर सम्बोधित किया—वह क्या झूंठ था। तुम (अर्जुन) ने स्वयं विराट नगर में नपुंसकों के समान गुथे बाल धारण किए हैं ॥११४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूदकर्मणि विश्रान्तं विराटस्य महानसे ।
भीमसेनेन कौन्तेय यत्तु तन्मम पौरुषम् ॥११५॥

हे कौन्तेय ! रसोई बनाकर विराटराज के रसोई घर में भीमसेन ने विश्राम किया है, यह हमारे ही पौरुष का फल है।

एवमेव सदा दण्डं क्षत्रियाः क्षत्रिये दधुः ।
वेणीं कृत्वा षण्ढवेषः कन्यां नर्तितवानसि ॥११६॥

क्षत्रिय लोग अपने शत्रु क्षत्रियों को इसी तरह दण्ड देते हैं। इसी दण्ड के कारण तुम भी नपुंसकों का वेष धारण करके कन्याओं को नाचना सिखाते रहे हो ॥११६॥

न भयाद्वासुदेवस्य न चापि तव फाल्गुन ।
राज्यं प्रतिप्रदास्यामि युद्ध्यस्व सहकेशवः ॥११७॥

हे अर्जुन ! तेरे या वासुदेव कृष्ण के भय से राज्य प्रदान नहीं करूँगा। अब तो तुम अपने सहायक कृष्ण को साथ लेकर युद्ध की तैयारी करो ॥११७॥

न माया हीन्द्रजालं वा कुहका वापि भीषणा ।
आत्तशस्त्रस्य संग्रामे वहन्ति प्रतिराजकाः ॥११८॥

माया, इन्द्रजाल, भयंकर कुहका (योगिनी) भी शस्त्र धारी को संग्राम में क्रोध उत्पन्न कराती है ॥११८॥

वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा ।
आसाद्य मामसंभ्रान्तं द्रविष्यन्ति दिशो दश ॥११९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हजारों कृष्ण और सैंकड़ों अर्जुन मुझ सफल शस्त्रधारी का युद्ध में सामना पाकर दशों दिशाओं को भाग जावेंगे ॥११९॥

संयुगं गच्छ भीष्मेण भिन्धि वा शिरसा गिरिम् ।
तरस्व वा महागाधं बाहुभ्यां पुरुषोदधिम् ॥१२०॥

भीष्म के साथ युद्ध करना, पर्वत में शिर मारना है या भुजाओं से महा अगाध, सेना के समुद्र का तरना है ॥१२०॥

शारद्वतमहामीनं विविंशतिमहोरगम् ।
बृहद्बलमहोद्वेलं सौमदत्तितिमिङ्गिलम् ॥१२१॥
भीष्मवेगमपर्यन्तं द्रोणग्राहदुरासदम् ।
कर्णशल्यझषावर्तं काम्बोजबडवामुखम् ॥१२२॥
दुःशासनौघं शलशल्यमत्स्यं सुषेणचित्रायुधनागनक्रम् ।
जयद्रथाद्रिं पुरुमित्रगाधं दुर्मर्षणोदं शकुनिप्रपातम् ॥१२३॥

इस समुद्र में शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य महामत्स्य, विविंशति महान् जलसर्प, बृहद्बल रूप महान् उद्वेल (वृद्धि), सोमदत्त रूपी बड़े २ जल जन्तु, भीष्म रूपी वेग, द्रोण रूपी दुरासद ग्राह, कर्ण शल्य आदि मीन समूह और कम्बोज बडवाग्नि का मुख है। इसका दुःशासन जल प्रवाह; शल और शल्य मत्स्य एव सुषेण और चित्रायुध, नाग और मगर हैं। इसका जयद्रथ पर्वत, पुरुमित्र गम्भीरता, दुर्मर्षण जल और शकुनि प्रपात, (ऊपर से पड़ने वाला प्रवाह) है ॥१२३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शस्त्रौघमक्षय्यमभिप्रवृद्धं यदाऽवगाह्यश्रमनष्टचेताः ।
भविष्यसि त्वं हतसर्वबान्धवस्तदा मनस्ते परितापमेष्यति ॥

इन बढ़े चढ़े अक्षय शस्त्र समूह के प्राप्त करने से जब तेरा श्रम से चित्त नष्ट हो जावेगा तथा सारे बन्धु बान्धव मारे जावेंगें। तभी तुम्हारे मन को संताप होगा ॥१२४॥

तदा मनस्ते त्रिदिवादिवाऽशुचेर्निवर्तिता पार्थ महीप्रशासनात्।
प्रशाम्य राज्यं हि सुदुर्लभं त्वया बुभूषितः स्वर्ग इवाऽतपस्विना।
इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि-
दुर्योधनवाक्ये षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६०॥

हे पार्थ ! उस समय पापी मनुष्य की स्वर्ग अभिलाषा के तुल्य, तेरा मन भी पृथिवी के शासन करने से विरक्त हो जावेगा। प्रथम अत्यन्त दुर्लभ राज्य का विनाश करके अब स्वर्ग के अभिलाषी तपोहीन पुरुष की भांति राज्य पाने की अभिलाषा कर रहे हो।

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत उलूकदूतागमनपर्व में दुर्योधन वाक्य का एकसौ साठवां अध्याय समाप्त हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ इकसठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

सेनानिवेशं सम्प्राप्तः कैतव्यः पाण्डवस्य ह ।
समागतः पाण्डवेयैर्युधिष्ठिरमभाषत ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! कितव-पुत्र उलूक भी राजा युधिष्ठिर के सेना के पड़ाव में पहुंचा और पाण्डवों से मिलकर राजा युधिष्ठिर से कहने लगा ॥१॥

अभिज्ञो दूतवाक्यानां यथोक्तं ब्रुवतो मम ।
दुर्योधनसमादेशं श्रुत्वा न क्रोद्धुमर्हसि ॥२॥

आप दूत के कर्म की कठिनता को जानते है, कि दूत स्वामी की आज्ञा के अनुसार ज्यों का त्यों संदेश पहुंचाया करता है, इसलिए तुम भी राजा दुर्योधन के आदेश को सुनकर मुझ पर अप्रसन्न न होना ॥२॥

युधिष्ठिर उवाच—

उलूक न भयं तेऽस्ति ब्रूहि त्वं विगतज्वरः ।
यन्मतं धार्तराष्ट्रस्य लुब्धस्याऽदीर्घदर्शिनः ॥३॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे उलूक! तुम कुछ भय न करो। तुम अपरिणामदर्शी लालची राजा दुर्योधन के अभिप्राय को निःशङ्क होकर कहो ॥३॥

ततो द्युतिमतां मध्ये पाण्डवानां महात्मनाम् ।
सृञ्जयानां च मत्स्यानां कृष्णस्य च यशस्विनः ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रुपदस्य सपुत्रस्य विराटस्य च सन्निधौ ।
भूमिपानां च सर्वेषां मध्ये वाक्यं जगाद ह ॥५॥

इसके अनन्तर कान्तिमान् महात्मा पाण्डव, सृञ्जय, (द्रुपद के वीर) मत्स्य वीर, यशस्वी कृष्ण, द्रुपदराज, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और विराट-राज तथा अन्य सारे राजाओं के सामने उलूक यह वचन बोला ॥४-५॥

उलूक उवाच—

इदं त्वामब्रवीद्राजा धार्तराष्ट्रो महामनाः ।
शृण्वतां कुरुवीराणां तन्निबोध युधिष्ठिर ॥६॥

हे युधिष्ठिर ! बड़े ऊंचे विचार रखने वाले राजा दुर्योधन ने सारे कुरुवीरों के सामने ही जो संदेश तुमको कहला भेजा है, उसे तुम ध्यान से सुनो ॥६॥

पराजितोऽसि द्यूतेन कृष्णा चाऽऽनायिता सभाम् ।
शक्योऽमर्षो मनुष्येण कर्तुं पुरुषमानिना ॥७॥

उन्होंने कहा है, कि हमने तुम्हें द्यूत (जुए) में हराया और द्रौपदी को अपमान-पूर्वक सभा में लाए। जब तुम अपने को पुरुष समझते हो, तो इससे तुमको कुछ तो आवेश आना चाहिए ॥७॥

द्वादशैव तु वर्षाणि वने धिष्ण्याद्विवासितः ।
संवत्सरं विराटस्य दास्यमास्थाय चोषितः ॥८॥

हमने ही तुमको बारह वर्ष तक अपने स्थान से बाहर बन में भटकाया और एक वर्ष तक राजा विराट का दास बनाकर गुप्त रूप से निवास करवाया ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अमर्षं राज्यहरणं वनवासं च पाण्डव ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं संस्मरन्पुरुषो भव ॥९॥

हे पाण्डव ! अपमान, राज्यहरण, वनवास और द्रौपदी के क्लेश को देख कर तुमको पुरुषार्थ का आश्रय करना चाहिए ॥९॥

अशक्तेन च यच्छप्तं भीमसेनेन पाण्डव ।
दुःशासनस्य रुधिरं पीयतां यदि शक्यते ॥१०॥

हे पाण्डव ! असमर्थ भीमसेन ने भी यह प्रतिज्ञा की थी, कि मैं दुःशासन के रक्त को युद्ध में पीऊंगा । अब यदि तुम्हारी शक्ति है—तो उसका रक्त पीकर दिखाओ ॥१०॥

लोहाभिसारो निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्दमम् ।
समः पन्था भृतास्तेऽश्वाः श्वो युध्यस्व सकेशवः ॥११

अब लोह निर्मित शस्त्रों का संस्कार हो चुका, कुरुक्षेत्र का प्रदेश भी कीचड़ से शून्य हो चुका, मार्ग समतल हो गए, अश्वों की थकान उतार दी गई, सैनिकों को वेतन दिया जा चुका, अब तो केशव को साथ लेकर तुमको कल से युद्ध में प्रवृत्त हो जाना चाहिए ।

असमागम्य भीष्मेण संयुगे किं विकत्थसे ।
आरुरुक्षुर्यथा मन्दः पर्वतं गन्धमादनम् ॥१२॥
एवं कत्थसि कौन्तेय अकत्थन्पुरुषो भव ।

जब तक भीष्म से युद्ध में झपट नहीं होती है, उससे पूर्व ही वृथा प्रशंसा मारने से क्या लाभ है । तुम्हारी तो यह दशा है, जैसे कोई मूर्ख गन्धमादन पर्वत पर चढ़ने की डींग मारता हो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे कौन्तेय ! तुम भी ऐसे ही डींग मार रहे हो—अब तो तुमको चुपचाप पराक्रम दिखाना चाहिए ॥१२॥

सूतपुत्रं सुदुर्धर्षं शल्यं च बलिनां वरम् ॥१३॥
द्रोणं च बलिनां श्रेष्ठं शचीपतिसमं युधि ।
अजित्वा संयुगे पार्थ राज्यं कथमिहेच्छसि ॥१४॥

हे पार्थ ! दुराधर्ष सूतपुत्र कर्ण महाबली शल्य, बलवानों में श्रेष्ठ, युद्ध में इन्द्र के सदृश, द्रोण को विना विजय किए तुम लोग, राज्य की कैसे इच्छा कर रहे हो । ।१३-१४॥

ब्राह्मे धनुषि चाचाऽऽर्यं वेदयोरन्तगं द्वयोः ।
युधि धुर्यमविक्षोभ्यमनीकचरमच्युतम् ॥१५॥
द्रोणं महाद्युतिं पार्थ जेतुमिच्छसि तन्मृषा ।

हे पार्थ ! ब्रह्मज्ञान और धनुर्वेद इन दोनों के पारगामी आचार्य युद्ध में सेना के अग्रभाग को धारण करने वाले, निर्भीक सेनाचारी, दृढ़, महाकान्तिमान्, द्रोण को क्या तुम जीतना चाहते हो । यह तो तुम्हारी अभिलाषा मिथ्या ही रहेगी ॥१५॥

नहि शुश्रुम वातेन मेरुमुन्मथितं गिरिम् ॥१६॥
अनिलो वा वहेन्मेरुं द्यौर्वापि निपतेन्महीम् ।
युगं वा परिवर्तेत यद्येवं स्याद्यथाऽऽत्थ माम् ॥१७॥

हमने यह कहीं नहीं सुना, कि मेरु पर्वत को वायु ने उड़ा दिया हो और न वायु मेरु पर्वत को धारण कर सकती है एवं न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकाश भूमि पर गिर सकता है। जो तुम लोग कह रहे हो, यदि ऐसा हुआ—तो यही समझना चाहिए, कि अब युगों के धर्म में परिवर्तन आ गया है ॥१६-१७॥

को ह्यस्ति जीविताकांक्षी प्राप्येममरिमर्दनम् ।
गजो वाजी रथो वापि पुनः स्वस्ति ग्रहान्व्रजेत् ॥१८॥

ऐसा कौन जीवन का अभिलाषी होगा—जो इस अरिमर्दन द्रोण के सामने युद्ध में आकर सुखपूर्वक जीता चला जावे। इसके सामने से तो हाथी, अश्व या रथ कोई भी अक्षत नहीं जा सकता है ॥१८।

कथमाभ्यामभिध्यातः संसृष्टो दारुणेन वा ।
रणे जीवन्विमुच्येत पदा भूमिमुपस्पृशन् ॥१९॥

भीष्म और द्रोण के यह सोचने पर कि "हमको इसे मारना है" फिर इनके दारुण शस्त्र की चोट खाकर पृथिवी पर पैर रख कर चलने वाला मनुष्य कैसे जीवित बच सकता है ॥१९॥

किं दर्दुरः कूपशयो यथेमां न बुद्ध्यसे राजचमूं समेताम्
दुराधर्षां देवचमूप्रकाशां गुप्तां नरेन्द्रैस्त्रिदशैरिव द्याम् ।२०।

प्राच्यैः प्रतीच्यैरथ दाक्षिणात्यै ।
रुदीच्यकाम्बोजशकैः खशैश्च ॥
शाल्वैः समत्स्यैः कुरुमुख्यदेश्यै ।
म्लेच्छैः पुलिन्दैर्द्रविडान्ध्रकाञ्च्यैः ॥२१॥

हे कौन्तेय ! तुम मैंडक की भांति इस इकट्ठी हुई मेरी राजाओं की सेना के प्रभाव को नहीं जानते हो। यह सेना तो—देव सेना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से जाज्वल्यमान, देवों से सुरक्षित, स्वर्गपुरी की तरह प्राच्य, प्रतीच्य, दाक्षिणात्य, उदीच्य, काम्बोज, शक, खश, शाल्व, मत्स्य, कुरुदेश के वीर, म्लेच्छ, पुलिन्द, द्रविण, अन्ध, काञ्ची-देशोत्पन्न राजाओं से सुरक्षित होने से बड़ी ही दुराधर्ष है ॥२१॥

नानाजनौघं युधि सम्प्रवृद्धं गाङ्गं यथा वेगमपारणीयम्
मां च स्थितं नागबलस्य मध्ये युयुत्ससे मन्द किमल्पबुद्धे

अनेक देशोत्पन्न वीर समूह से युद्ध में बढ़ा हुआ अपार गङ्गा के प्रवाह की तरह यह सेना का प्रवाह है। हे अल्पबुद्धि! मूर्ख हाथियों की सेना के मध्य में स्थित मुझसे क्या तू युद्ध की अभिलाषा कर रहा है ॥२२॥

इत्येवमुक्त्वा राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अभ्यावृत्य पुनर्जिष्णुमुलूकः प्रत्यभाषत ॥२३॥

इस प्रकार धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर से कह कर कुरुदूत उलूक लौटकर अर्जुन से कहने लगा ॥२३॥

अकत्थमानो युद्ध्यस्य कत्थसेऽर्जुन किं बहु ।
पर्यायात्सिद्धिरेतस्य नैतत्सिद्ध्यति कत्थनात् ॥२४॥

हे अर्जुन! तुमको विना अपनी प्रशंसा किए युद्ध करना चाहिए, व्यर्थ ही डींग मारने से क्या लाभ है। युद्ध की सिद्धि तो पराक्रम से है, यह कोरी बातें बनाने से सिद्ध नहीं होता है।

यदीदं कत्थनाल्लोके सिद्ध्येत्कर्म धनञ्जय ।
सर्वे भवेयुः सिद्धार्थाः कत्थने को हि दुर्गतः ॥२५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे धनञ्जय ! यदि इस प्रकार अपनी प्रशंसा करने से कार्य सिद्ध हो जाते, तो सबके सब कार्य पूरे हो जाते, क्योंकि अपनी बड़ाई मारने में कौन दरिद्री है ॥२५॥

जानामि ते वासुदेवं सहायं जानामि ते गाण्डिवं तालमात्रम्
जानाम्येतत्त्वादृशो नास्ति योद्धा जानानस्ते राज्मेतद्धरामि

मैं, यह भी जानता हूँ, तुम्हारा सहायक कृष्ण है और तेरे तालप्रमाण गाण्डीव धनुष को भी जानता हूँ, मुझे यह भी ज्ञात है, कि तेरे तुल्य योद्धा नहीं है। यह सब कुछ जान कर ही मैंने तुम्हारा राज्य छीना है ॥२६॥

न तु पर्यायधर्मेण राज्यं प्राप्नोति मानुषः ।
मनसैवाऽनुकूलानि विधाता कुरुते वशे ॥२७॥

मनुष्य, पर्याय (क्रम) से राज्य नहीं पा सकता है। जो मन के अनुकूल वस्तु है, उनको विधाता चाहता है, तो प्रदान करता है ॥२७॥

त्रयोदश समा भुक्तं राज्यं विलपतस्तव ।
भूयश्चैव प्रशासिष्ये निहत्य त्वां सबान्धवम् ॥२८॥

अब तक तेरह वर्ष तक तुम्हारे रोते पीटते रहने पर हमने राज्य भोगा और अब फिर तुमको बान्धव सहित मार कर इस सारी पृथिवी का शासन करेंगे ॥२८॥

क्व तदा गाण्डिवं तेऽभूद्यत्त्वं दासपणैर्जितः ।
क्व तदा भीमसेनस्य बलमासीच्च फाल्गुन ॥२९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम्हारा यह गाण्डीव धनुष, जब कहाँ गया था, जब तुमको दास बनाकर दाव पर लगा दिया था। हे अर्जुन ! उस समय भीमसेन का बल भी कहाँ चला गया था ॥२९॥

सगदाद्भीमसेनाद्वा पार्थाद्वाऽपि सगाण्डिवात् ।
न वै मोक्षस्तदा वोऽभूद्विना कृष्णामनिन्दिताम् ।३०।

गदाधारी भीम या गाण्डीव धारी अर्जुन से उस समय तुम लोगों का छुटकारा नहीं हुआ, किन्तु सर्व गुण सुन्दरी द्रौपदी ने ही तब तुम्हारी मुक्ति कराई ॥३०॥

सा वो दास्ये समापन्नान्मोक्षयामास पार्षती ।
अमानुष्यं समापन्नान्दासकर्मण्यवस्थितान् ॥३१॥

पर्षतवंशोत्पन्न द्रौपदी ने ही दासता को प्राप्त हुए या दास-कर्म करने को उद्यत मनुष्यताहीन तुम लोगों का छुटकारा कराया।

अवोचं यत्षण्ढतिलानहं वस्तथ्यमेव तत् ।
धृता हि वेणी पार्थेन विराटनगरे तदा ॥३२॥

हमने जो तुम लोगों को "षण्ढतिल" (नपुंसक) की पदवी दी थी, वह सत्य ही है। विराटनगर में अर्जुन ने वेणी धारण करके उसे सत्य सिद्ध कर दिया हैं ॥३२॥

सूदकर्मणि च श्रान्तं विराटस्य महानसे ।
भीमसेनेन कौन्तेय यच्च तन्मम पौरुषम् ॥३३॥

हे कौन्तेय ! विराट-राज की रसोई में सूद कर्म (रसोई) करते हुए, जो थकान प्राप्त की थी, वह सब हमारा ही पुरुषार्थ था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवमेतत्सदा दण्डं क्षत्रियाः क्षत्रिये दधुः ।
वेणीं कृत्वा षण्ढवेषः कन्यां नर्तितवानसि ॥३४॥

क्षत्रिय राजा अपने शत्रु क्षत्रियों को इसी तरह दण्ड देते हैं, जो कि तुमने स्त्रियों की वेणी बना कर विराट के रनिवास में कन्याओं को नचाया है ॥ ३४ ॥

न भयाद्वासुदेवस्य न चापि तव फाल्गुन ।
राज्यं प्रतिप्रदास्यामि युद्ध्यस्व सहकेशवः ॥३५॥

हे अर्जुन ! मैं कृष्ण या तुम्हारे भय से राज्य प्रदान नहीं कर सकता हूँ । अब तो तुमको कृष्ण को साथ लेकर युद्ध करना ही होगा ॥ ३५ ॥

न माया हीन्द्रजालं वा कुहका वापि भीषणा ।
आत्तशस्त्रस्य मे युद्धे वहन्ति प्रतिगर्जनाः ॥३६॥

अब माया, (छल) इन्द्र जाल, (बाजीगरी) भयानक कुहका, (ऐय्यारी) युद्धमें मुझ शस्त्रधारी के सन्मुख प्रतिगर्जना (निष्फलता) ही प्राप्त करेंगी ॥ ३६ ॥

वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा ।
आसाद्य माममोघेषुं द्रविष्यन्ति दिशो दश ॥३७॥

सहस्रों वासुदेव और सैंकड़ों अर्जुनों को मुझ सफल धनुर्धर को सन्मुख पाकर अवश्य दिशों दिशाओं को भागना पड़ेगा ।

संयुगं गच्छ भीष्मेण भिन्धि वा शिरसा गिरिम् ।
तरेमं वा महागाधं बाहुभ्यां पुरुषोदधिम् ॥३८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीष्म के साथ युद्ध करना, शिर से पर्वत के तोड़ने के बराबर है। तुमको इन मनुष्यों के समुद्र को अपनी भुजाओं से तरना पड़ेगा ॥ ३८ ॥

शारद्वतमहामीनं विविंशतिमहोरगम् ।
बृहद्बलमहोद्वेलं सौमदत्तितिमिङ्गिलम् ॥३९॥
भीष्मवेगमपर्यन्तं द्रोणग्राहदुरासदम् ।
कर्णशल्यझषावर्तं काम्बोजवडवामुखम् ॥४०॥
दुःशासनौघं शलशल्यमत्स्यं सुषेणचित्रायुधनागनक्रम् ।
जयद्रथाद्रिं पुरुमित्रगाधं दुर्मर्षणोदं शकुनिप्रपातम् ॥४१॥
शस्त्रौघमक्षय्यमतिप्रवृद्धं यदाऽवगाह्य श्रमनष्टचेताः ।
भविष्यसि त्वं हतसर्वबान्धवस्तदा मनस्ते परितापमेष्यति ॥

इस समुद्र में शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य, महामत्स्य, विविंशति, महोरग, (जलसर्प) बृहद्बल, महातरङ्ग, सोमदत्त का पुत्र (भूरिश्रवा) तिमिङ्गल, (अन्य जलजन्तु) भीष्म, वेग, द्रोणाचार्य, दुरासद ग्राह, कर्ण, शल्य आदि अनेक भंवर, काम्बोजराज बडवाग्नि, दुःशासन, प्रवाह, शल और उसका पुत्र अन्य मत्स्य, सुषेण जलहस्ती, चित्रायुध, नक्र (मगर) जयद्रथ, पर्वत, पुरुमित्र, गम्भीरता, दुर्मर्षण-जल, शकुनि तट है। हे अर्जुन! जब तुम शस्त्रों के समूह से पूर्ण अक्षय, बहुत बढ़े हुए इस युद्ध समुद्र में कूदोगे-तो इसके श्रम से तुम्हारा सारा ज्ञान नष्ट हो जावेगा। इसमें तुम्हारे सारे बान्धव नष्ट हो जावेंगे, तब तुम्हारा मन सन्तापित होगा ॥ ३९-४२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदा मनस्तेत्रिदिवादिवाऽशुचेर्निवर्तितापार्थमहीप्रशासनात्
प्रशाम्य राज्यं हि सुदुर्लभंत्वयाबुभूषितःस्वर्गइवाऽतपस्विना
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या-
मुद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि उलूकवाक्ये
एकषष्ट्योत्तरशततमोऽध्यायः ॥१६१॥

हे पार्थ ! उस समय ही तेरा मन पृथिवी के शासन से इस तरह हट जावेगा जैसे अशुचि मनुष्य की आशा स्वर्ग से हटी हुई होती है। अब तो तुमको चुपचाप बैठे रहना चाहिए, क्योंकि विना सुकर्म किये स्वर्ग के समान अब तुमको इस पृथिवी का राज्य मिलना कठिन है ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत उलूकदूतागमनपर्व में उलूक वाक्य का एक सौ इकसठवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ बासठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

उलूकस्त्वर्जुनं भूयो यथोक्तं वाक्यमब्रवीत् ।
आशीविषमिव क्रुद्धं तुदन्वाक्यशलाकया ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! अपनी वाणी रूपी शलाका (लोहछड़ी) से पीड़ित करते हुए उलूकदूत ने भुजंग की भांति कुपित हुए, अर्जुन से फिर उसी तरह के वाक्य कहे ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रुषिताः पाण्डवा भृशम् ।
प्रागेव भृशसंक्रुद्धाः कैतव्येनाऽपि धर्षिताः ॥२॥

उलूक के इन वचनों को सुनकर पाण्डव अत्यन्त कोप में भर गए। पाण्डव तो पहिले से ही अत्यन्त कुपित हो रहे थे, अब कितव-पुत्र उलूक ने और कुपित कर दिए ॥ २ ॥

आसनेषूदतिष्ठन्त बाहूंश्चैव प्रचिक्षिपुः ।
आशीविषा इव क्रुद्धा वीक्षाञ्चक्रुः परस्परम् ॥३॥

ये अपने २ आसनों पर खड़े हो गए और अपनी भुजाओंको फटकारने लगे। ये विषधर सर्प की भांति क्रोध में भरकर परस्पर एक दूसरे को देखने लगा। ॥ ३ ॥

अवांक्शिरा भीमसेनः समुदैक्षत केशवम् ।
नेत्राभ्यां लोहितान्ताभ्यामाशीविष इव श्वसन् ॥४॥

भीमसेन की आंखें लाल हो गई। वह क्रुद्ध सर्प की तरह श्वास लेने लगा। भीमसेन अपनी लाल आंखों से नीचा शिर किये हुए श्रीकृष्ण की ओर देखने लगे ॥ ४ ॥

आर्तं वातात्मजं दृष्ट्वा क्रोधेनाऽभिहतं भृशम् ।
उत्स्मयन्निव दाशार्हः कैतव्यं प्रत्यभाषत ॥५॥

वायुपुत्र भीमसेन को अत्यन्त कुपित और व्याकुल देखकर मुस्कुराते हुए, श्रीकृष्ण कितव-पुत्र उलूक से कहने लगे ॥ ५ ॥

प्रयाहि शीघ्रं कैतव्य ब्रूयाश्चैव सुयोधनम् ।
श्रुतं वाक्यं गृहीतोऽर्थो मतं यत्ते तथाऽस्तु तत् ॥६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

हे उलूक ! तू अब शीघ्र जा और दुर्योधन से कह दे, कि हमने तुम्हारे वचन सुन लिए और उनका अर्थ भी समझ लिया। जैसी तुम्हारी इच्छा है, अब उसी युद्ध का प्रारम्भ कर दिया जायगा ॥ ६ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुः केशवो राजसत्तम ।
पुनरेव महाप्राज्ञं युधिष्ठिरमुदैक्षत ॥७॥

हे राजसत्तम ! महाबाहु श्रीकृष्ण, इतना कह कर फिर महाबुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर की ओर देखने लगे ॥ ७ ॥

सृञ्जयानां च सर्वेषां कृष्णस्य च यशस्विनः ।
द्रुपदस्य सपुत्रस्य विराटस्य च सन्निधौ ॥८॥
भूमिपानां च सर्वेषां मध्ये वाक्यं जगाद ह ।
उलूकोऽप्यर्जुनं भूयो यथोक्तं वाक्यमब्रवीत् ॥९॥
आशीविषमिव क्रुद्धं तुदन्वाक्यशलाकया ।
कृष्णादींश्चैव तान्सर्वान्यथोक्तं वाक्यमब्रवीत् ॥१०॥
उलूकस्य तु तद्वाक्यं पापं दारुणमीरितम् ।
श्रुत्वा विचुक्षुभे पार्थो ललाटं चाऽप्यमार्जयत् ॥११॥

उलूक ने भी सारे सञ्जय (द्रुपदवीर) यशस्वी कृष्ण, धृष्टद्युम्न, द्रुपद, विराट तथा अन्य वीर राजाओं के सन्मुख क्रुद्ध हुए सर्प के सदृश अर्जुन तथा श्रीकृष्ण आदि वीरों को अपनी वाणी रूपी शलाका से पीड़ित करते हुए, वे ही दुर्योधन के वचन फिर सुना दिए। कुरुदूत उलूक के कहे हुए ये दारुण, पापपूर्ण वचन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुनकर अर्जुन बड़ा कुपित हुआ और उसके मस्तक पर पसीने आ गए। वह अपने ललाट को पोंछने लगा ॥ ११ ॥

तदवस्थं तदा दृष्ट्वा पार्थं सा समितिर्नृप ।
नाऽमृष्यन्त महाराज पाण्डवानां महारथाः ॥१२॥
अधिक्षेपेण कृष्णस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
श्रुत्वा ते पुरुषव्याघ्राः क्रोधाज्जज्वलुरच्युत ॥१३॥

हे महाराज ! इस दशा में अर्जुन को देखकर वह सारी राजसभा अधीर हो उठी। पाण्डवों के सारे महारथी, महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस अपमान को नहीं सह सके। हे अच्युत ! वे पुरुषव्याघ्र यह सब कुछ सुनकर क्रोध से प्रज्वलित हो उठे ॥ १३ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः ।
केकया भ्रातरः पञ्च राक्षसश्च घटोत्कचः ॥१४॥
द्रौपदेयाभिमन्युश्च धृष्टकेतुश्च पार्थिवः ।
भीमसेनश्च विक्रान्तो यमजौ च महारथौ ॥१५॥
उत्पेतुरासनात्सर्वे क्रोधसंरक्तलोचनाः ।
बाहून्प्रगृह्य रुचिरान्रक्तचन्दनरूषितान् ॥
अङ्गदैः पारिहार्यैश्च केयूरैश्च विभूषितान् ॥१६॥
दन्तान्दन्तेषु निष्पिष्य सृक्किणी परिलेलिहन् ।

धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, महारथी सात्यकि, केकय देशोत्पन्न पांच राजकुमार, घटोत्कच राक्षस, पांच द्रौपदीपुत्र, अभिमन्यु, राजा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धृष्टकेतु, महापराक्रमी भीमसेन, महारथी नकुल सहदेव की आंखें क्रोध से लाल हो गई और वे सारे अपने २ आसनों से खड़े हो गए। लालचन्दन से चर्चित अपनी सुन्दर, अङ्गद, (बाजूबन्द) कड़े और केयूर (बाहुभूषण) आदिसे विभूषित भुजाओं को फटकार और दांतों को कटकटा कर होठों को चाटने लगे ॥१६॥

तेषामाकारभावज्ञः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥१७॥
उदतिष्ठत्स वेगेन क्रोधेन प्रज्वलन्निव ।

इनके आकार और भावों को जान कर कुन्तीपुत्र भीमसेन क्रोध से जलता हुआ बड़े वेग से अपने आसनसे उठ खड़ा हुआ।

उद्वृत्य सहसा नेत्रे दन्तान्कटकटाय्य च ॥१८॥
हस्तं हस्तेन निष्पिष्य उलूकं वाक्यमब्रवीत् ।

यह क्रोध से आंखें चढ़ा कर और दांतों को कटकटाकर तथा हाथों को मलकर उलूक से कहने लगा ॥ १८ ॥

अशक्तानामिवास्माकं प्रोत्साहननिमित्तकम् ॥१९॥
श्रुतं ते वचनं मूर्ख यत्त्वां दुर्योधनोऽब्रवीत् ।

अरे मूर्ख ! तू ने हमको अशक्त समझ कर यह उत्साहित करने के वचन कहे हैं। तुझे जो दुर्योधन ने समझाया था, वे वचन हमने अब सुन लिए ॥ १९ ॥

तन्मे कथयतो मन्द शृणु वाक्यं दुरासदम् ॥२०॥
सर्वक्षत्रस्य मध्ये तं यद्वक्ष्यसि सुयोधनम् ।
शृण्वतः सूतपुत्रस्य पितुश्च त्वं दुरात्मनः ॥ २१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे मन्द ! अब मैं तुझे सब क्षत्रियों के मध्य में एक दुरासद (भीषण)वाक्य कहता हूँ, तू उसे दुर्योधन को जाकर सुना देना। उस समय दुर्योधन के समीप सूतपुत्र कर्ण और दुरात्मा तेरा पिता (शकुनि) भी होना चाहिए ॥ २०-२१ ॥

अस्माभिः प्रीतिकामैस्तु भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः।
मर्षितं ते दुराचार तत्त्वं न बहु मन्यसे ॥२२॥

अरे दुराचारी ! हमने अपने बड़े भ्राता राजा युधिष्ठिर के प्रसन्न करने को यह सब कुछ सहा था, परन्तु तू ने उसे कुछ भी नहीं समझा ॥ २२ ॥

प्रेषितश्च हृषीकेशः शमाकांक्षी कुरून्प्रति।
कुलस्य हितकामेन धर्मराजेन धीमता ॥२३॥

त्वं कालचोदितो नूनं गन्तुकामो यमक्षयम्।
गच्छस्वाऽऽहवमस्माभिस्तच्च श्वो भविता ध्रुवम् ॥२४॥

बुद्धिमान् धर्मराज ने अपने कुल के हित को ध्यान में रख कर सन्धि के लिए तुम्हारे पास हृषीकेश श्रीकृष्ण को भेजा था, परन्तु तू तो काल का प्रेरित हुआ, काल के गाल में जाना चाहता है। अब तू हमारे साथ युद्ध को तय्यार हो जा—कल से युद्ध का आरम्भ होगा ॥ २४ ॥

मयाऽपि च प्रतिज्ञातो वधः सभ्रातृकस्य ते।
स तथा भविता पाप नाऽत्र कार्या विचारणा ॥२५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अरे पापी ! मैंने भी तेरे भाइयों सहित तेरे वध की प्रतिज्ञा की है। वह जैसी की तैसी पूरी की जावेगी। अब इसमें कुछ विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥ २५ ॥

वेलामतिक्रमेत्सद्यः सागरो वरुणालयः ।
पर्वताश्च विशीर्येयुर्मयोक्तं न मृषा भवेत् ॥२६॥

वरुणालय समुद्र, अपनी मर्यादा छोड़ सकता है, पर्वत फट सकते हैं, परन्तु मेरी प्रतिज्ञा मिथ्या नहीं हो सकेगी ॥२६॥

सहायस्ते यदि यमः कुबेरो रुद्र एव वा ।
यथाप्रतिज्ञं दुर्बुद्धे प्रकरिष्यन्ति पाण्डवाः ।
दुःशासनस्य रुधिरं पाता चाऽस्मि यथेप्सितम् ॥२७॥

हे दुर्बुद्धि ! यदि तेरा सहायक यम, कुबेर और रुद्र भी खड़ा हो जावेगा, तो भी पाण्डव अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करके छोड़ेंगे। मैं तो अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार दुःशासन की छाती पर बैठकर उसका रक्तपान अवश्य करके दिखाऊँगा ॥२७॥

यश्चेह प्रतिसंरब्धः क्षत्रियो माऽभियास्यति ।
अपि भीष्मं पुरस्कृत्य तं नेष्यामि यमक्षयम् ॥२८॥

इस समय कोई भी आवेश में आकर क्षत्रिय मेरे सन्मुख आवेगा, चाहे वह भीष्म ही क्यों न हो—मैं उसे यमराज के घर पहुँचा दूँगा ॥२८॥

यच्चैतदुक्तं वचनं मया क्षत्रस्य संसदि ।
यथैतद्भविता सत्यं तथैवाऽऽत्मानमालभे ॥२९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने जो कुछ वचन क्षत्रियों की सभा में कहे थे—उनको ज्यों का त्यों पूरा करूँगा—इसके लिए मैं आत्मा की शपथ करता हूँ।

भीमसेनवचः श्रुत्वा सहदेवोऽप्यमर्षणः।
क्रोधसंरक्तनयनस्ततो वाक्यमुवाच ह ॥३०॥

भीमसेन के वचन सुनकर असहिष्णु सहदेव भी लाल आँखें करके यह वाक्य बोला ॥३०॥

शौटीरं शूरसदृशमनीकजनसंसदि।
शृणु पाप वचो मह्यं यद्वाच्यो हि पिता त्वया ॥३१॥
नाऽस्माकं भविता भेदः कदाचित्कुरुभिः सह।
धृतराष्ट्रस्य सम्बन्धो यदि न स्यात्त्वया सह ॥३२॥

अरे पापी! मैं सत्य-गर्व-धारी शूरवीर के योग्य वचन तुझसे कहता हूँ। तू उस वचन को सेना के वीर पुरुषों की सभा में अपने पिता शकुनि को सुना देना, कि हमारा कौरवों से कभी विद्रोह नहीं होता, जो राजा धृतराष्ट्र के साथ तेरा सम्बन्ध नहीं होता ॥३१-३२॥

त्वं तु लोकविनाशाय धृतराष्ट्रकुलस्य च।
उत्पन्नो वैरपुरुषः स्वकुलघ्नश्च पापकृत् ॥३३॥

हे शकुनि! तू तो संसार और राजा धृतराष्ट्र के कुल के विनाश के लिए मूर्तिमान् वैर बनकर उत्पन्न हुआ है। अरे पापी! तू तो अपने भी कुल का नाशक है ॥३३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जन्मप्रभृति चाऽस्माकं पिता ते पापपूरुषः ।
अहितानि नृशंसानि नित्यशः कर्तुमिच्छति ॥३४॥

तेरा पिता बड़ा पापी पुरुष है। वह तो जन्म से ही हमारा अहित और घातक कर्म करने का नित्य प्रयत्न करता रहता है।

तस्य वैरानुषङ्गस्य गन्तास्म्यन्तं सुदुर्गमम् ।
अहमादौ निहत्य त्वां शकुनेः सम्प्रपश्यतः ॥३५॥
ततोऽस्मि शकुनिं हन्ता मिषतां सर्वधन्विनाम् ।

मैं भी उसके वैर के दुर्गम अन्त को पार करके छोड़ूँगा। मैं तेरे पिता शकुनि के देखते २ प्रथम तुझे मारूँगा और फिर सारे धनुर्धरों के देखते हुए शकुनि को मार गिराऊँगा ॥३५॥

भीमस्य वचनं श्रुत्वा सहदेवस्य चोभयोः ॥३६॥
उवाच फाल्गुनो वाक्यं भीमसेनं स्मयन्निव ।

इस प्रकार भीमसेन और सहदेव इन दोनों के वचन सुनकर मुस्कुराते हुए अर्जुन, भीमसेन से ये वाक्य बोले ॥३६॥

भीमसेन न ते सन्ति येषां वैरं त्वया सह ॥३७॥
मन्दा गृहेषु सुखिनो मृत्युपाशवशं गताः ।

हे भीमसेन! जिनके साथ तेरा बैर है, वे मूर्ख अब नहीं बच सकेंगे। ये मूर्ख अब तक घरों में आनन्द उड़ा रहे थे, अब मृत्यु की पाश में बँध चुके हैं ॥३७॥

उलूकश्च न ते वाच्यः परुषं पुरुषोत्तम ॥३८॥
दूताः किमपराध्यन्ते यथोक्तस्याऽनुभाषिणः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे पुरुषोत्तम ! तुम्हें उलूक से कुछ कठोर वचन नहीं कहने चाहिए। दूत तो अपने स्वामी का संदेश लाते हैं, उनका स्वतन्त्र इसमें क्या अपराध है ॥३८॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्भीमं भीमपराक्रमम् ॥३९॥
धृष्टद्युम्नमुखान्वीरान्सुहृदः समभाषत ।

महाबाहु अर्जुन, महापराक्रमी भीम से इतना कह कर धृष्टद्युम्न आदि अपने मित्र वीरों से कहने लगा ॥३९॥

श्रुतं वस्तस्य पापस्य धार्तराष्ट्रस्य भाषितम् ॥४०॥
कुत्सनं वासुदेवस्य मम चैव विशेषतः ।
श्रुत्वा भवन्तः संरब्धा अस्माकं हितकाम्यया ॥४१॥

हे महारथियो ! तुमने पापी धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन के वचन सुन लिए होंगे, जिनमें श्रीकृष्ण और मेरी कितनी निन्दा की गई है। तुम लोग यह सुनकर हमारे हित की कामना से उस पर बिगड़ उठे हो ॥४०-४१॥

प्रभावाद्वासुदेवस्य भवतां च प्रयत्नतः ।
समग्रं पार्थिवं क्षत्रं सर्वं न गणयाम्यहम् ॥४२॥

मैं भी श्रीकृष्ण और तुम लोगों के प्रभाव और प्रयत्न से इस इकट्ठे हुए क्षत्रियों के समूह को कुछ नहीं गिनता हूं ॥४२॥

भवद्भिः समनुज्ञातो वाक्यमस्य यदुत्तरम् ।
उलूके प्रापयिष्यामि यद्वक्ष्यति सुयोधनम् ॥४३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि आप लोगों की अनुमति हो, तो इस वाक्य का उत्तर मैं उलूक द्वारा राजा दुर्योधन पर पहुँचा देना चाहता हूं ॥४३॥

श्वोभूते कत्थितस्याऽस्य प्रतिवाक्यं चमूमुखे ।
गाण्डीवेनाऽभिधास्यामि क्लीबा हि वचनोत्तराः ।४४।

मैं तो कल इस मुंहजोरी का उत्तर सेना के संघर्ष में गाण्डीव से ही दूँगा । डींग तो नपुंसक मारा करते हैं ॥४४॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे प्रशशंसुर्धनञ्जयम् ।
तेन वाक्योपचारेण विस्मिता राजसत्तमाः ॥४५॥

सारे राजाओं ने अर्जुन की बड़ी प्रशंसा की । उस वाक्य से सारे वीर राजा बड़े ही अचम्भित हुए ॥४५॥

अनुनीय च तान्सर्वान्यथामान्यं यथावयः ।
धर्मराजस्तदा वाक्यं तत्प्राप्यं प्रत्यभाषत ॥४६॥

अपनी २ वय और मर्यादा के अनुसार सबका आदर और सत्कार करके धर्मराज दुर्योधन से कहने योग्य संदेश को इस प्रकार सुनाने लगा ॥४६॥

आत्मानमवमन्वानो नहि स्यात्पार्थिवोत्तमः ।
तत्रोत्तरं प्रवक्ष्यामि तव शुश्रूषणे रतः ॥४७॥

कोई भी उत्तम राजा अपना अपमान नहीं सुन सकता है, परन्तु मैं तुम्हारा उत्तर देने के लिए यह सब कुछ सुनता रहा ॥४७॥

उलूकं भरतश्रेष्ठ सामपूर्वमथोर्जितम् ।
दुर्योधनस्य तद्वाक्यं निशम्य भरतर्षभः ॥४८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

अतिलोहितनेत्राभ्यामाशीविष इव श्वसन् ।
स्मयमान इव क्रोधात्सृक्किणी परिसंलिहन् ॥४९॥
जनार्दनमभिप्रेक्ष्य भ्रातॄंश्चैवेदमब्रवीत् ।
अभ्यभाषत कैतव्यं प्रगृह्य विपुलं भुजम् ॥५०॥
उलूक गच्छ कैतव्य ब्रूहि तात सुयोधनम् ।
कृतघ्नं वैरपुरुषं दुर्मतिं कुलापांसनम् ॥५१॥
पांडवेषु सदा पाप नित्यं जिह्मं प्रवर्तते ।

हे भारत ! भरतवंशश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर, दुर्योधन के वचन सुनकर विष भरे सर्प की तरह सांस लेने लगा और इसके नेत्र अत्यन्त लाल हो गए। यह कुछ मुस्कुराता भी जाता था, परन्तु अन्तर्हित क्रोध से अपने ओष्ठ प्रान्तों को चाट रहा था। यह जनार्दन श्रीकृष्ण की ओर देखकर अपने भाइयों से और अपनी भुजाओं को पकड़ कर कितव (छली) पुत्र उलूक से बोला–हे तात ! उलूक ! तुम जाओ और कृतघ्न, वैरमूर्ति दुर्मति, कुलनाशक राजा दुर्योधन से कह दो। अरे पापी ! तू सदा से पाण्डवों के साथ पाप पूर्ण कुटिल व्यवहार करता चला आ रहा है ॥४८-५१॥

स्ववीर्याद्यः पराक्रम्य पाप आह्वयते परान् ।
अभीतः पूरवन्वाक्यमेष वै क्षत्रियः पुमान् ॥५२॥

अरे पापी ! जो अपना पराक्रम करके अपने विरोधियों को ललकारता है और अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करता है, वही वीर क्षत्रिय कहाता है ॥५२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स पापः क्षत्रियो भूत्वा अस्मानाहूय संयुगे ।
मान्यामान्यान्पुरस्कृत्य युद्धं मा गाः कुलाधम ॥५३॥

अरे कुलाधम ! तू तो पापी क्षत्रिय है, जो मान्य भीष्म आदि और अमान्य लक्ष्मण आदि बालकों को आगे करके हमको युद्ध के लिए पुकार रहा है। दुष्ट ! इस तरह स्वार्थ-पूर्ण युद्ध का सङ्गठन तुझे नहीं करना चाहिए ॥५३॥

आत्मवीर्यं समाश्रित्य भृत्यवीर्यं च कौरव ।
आह्वयस्व रणे पार्थान्सर्वथा क्षत्रियो भव ॥५४॥

हे कौरव ! अपने पराक्रम को लेकर हम पाण्डवों के साथ युद्ध की घोषणा कर। जब ऐसा करेगा, तभी सच्चा क्षत्रिय हो सकेगा ।

परवीर्यं समाश्रित्य यः समाह्वयते परान् ।
अशक्तः स्वयमादातुमेतदेव नपुंसकम् ॥५५॥

अन्य के पराक्रम का आश्रय लेकर जो शत्रु को युद्ध के लिए आह्वान करता है और स्वयं युद्ध करने में असमर्थ होता है— वही नपुंसक है ॥५५॥

स त्वं परेषां वीर्येण आत्मानं बहु मन्यसे ।
कथमेवमशक्तस्त्वमस्मान्समभिगर्जसि ॥५६॥

तू तो अन्य के पराक्रम पर ही अपने को बहुत बड़ा वीर मानता है। इस प्रकार अशक्त होकर भी फिर हमारे प्रति क्या गर्जना करता है ॥५६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण उवाच—

मद्वचश्चापि भूयस्ते वक्तव्यः स सुयोधनः ।
श्व इदानीं प्रपद्येथाः पुरुषो भव दुर्मते ॥५७॥

श्रीकृष्ण बोले—हे उलूक ! तुम मेरे वचन भी राजा दुर्योधन से कह देना—हे दुर्मति ! दुर्योधन ! कल युद्ध होगा-तुम अपने इस वचन को पूरा करो और वीर पुरुष बनकर दिखाओ ॥५७॥

मन्यसे यच्च मूढ त्वं न योत्स्यति जनार्दनः ।
सारथ्येन वृतः पार्थैरिति त्वं न बिभेषि च ॥५८॥

अरे मूढ़ ! तू यह जानता है, कि कृष्ण युद्ध नहीं करेगा । अर्जुन ने उसे सारथि बनाना ही चाहा है, इसी कारण से तू नहीं डरता है ॥५८॥

जघन्यकालमप्येतन्न भवेत्सर्वपार्थिवान् ।
निर्दहेयमहं क्रोधात्तृणानीव हुताशनः ॥५९॥

परन्तु तुझे अन्तिम काल तक भी यह बात नहीं समझनी चाहिए थी । यदि मुझे क्रोध हो गया, तो मैं सारे राजाओं को तृणों को अग्नि के सदृश जला डालूंगा ॥५९॥

युधिष्ठिरनियोगात्तु फाल्गुनस्य महात्मनः ।
करिष्ये युध्यमानस्य सारथ्यं विजितात्मनः ॥६०॥

मैं राजा युधिष्ठिर और महात्मा अर्जुन की इच्छा से युद्ध करने में प्रवृत्त, महारथी अर्जुन का सारथि बनने को तय्यार हो गया हूँ ॥६०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यद्युत्पतसि लोकांस्त्रीन्यद्याविशसि भूतलम् ।
तत्र तत्राऽर्जुनरथं प्रभाते द्रक्ष्यसे पुनः ॥६१॥

यदि तू भाग कर त्रिलोकी में भी चला जावेगा या पाताल में जा घुसेगा-तो भी तू वहीं पर प्रातःकाल अर्जुन के रथ को देख लेगा।

यच्चापि भीमसेनस्य मन्यसे मोघभाषितम् ।
दुःशासनस्य रुधिरं पीतमद्याऽवधारय ॥६२॥

जो तू यह समझ रहा है, कि दुःशासनके रक्त पीने की भीमसेन की प्रतिज्ञा मिथ्या होगी-वह न समझना। अब तो दुःशासन का रक्त भीम द्वारा पिया हुआ ही तुमको समझना चाहिए ॥६२॥

न त्वां समीक्षते पार्थो नापि राजा युधिष्ठिरः ।
न भीमसेनो न यमौ प्रतिकूलप्रभाषिणम् ॥६३॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि उलूकदूताभिगमनपर्वणि कृष्णादिवाक्ये द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६२॥

राजा युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेन, नकुल और सहदेव, इन में से कोई सा भी तेरे इस प्रतिकूल भाषण की प्रतिष्ठा(परवाह) नहीं करता है ॥६३॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत उलूकदूताभिगमनपर्व में श्रीकृष्ण आदि के वाक्यों का एक सौ बासठवां अध्याय पूरा हुवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ तरेसठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

दुर्योधनस्य तद्वाक्यं निशम्य भरतर्षभ ।
नेत्राभ्यामतिताम्राभ्यां कैतव्यं समुदैक्षत ॥१॥
स केशवमभिप्रेक्ष्य गुडाकेशो महायशाः ।
अभ्यभाषत कैतव्यं प्रगृह्य विपुलं भुजम् ॥२॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ! महायशस्वी, गुडाकेश अर्जुन, दुर्योधन के इन वाक्यों को सुनकर अत्यन्त रक्त नेत्रों से कितव-पुत्र उलूक की ओर देखने लगे। अब अर्जुन ने अपनी भुजाओं को फटकारा और श्रीकृष्ण की ओर देखकर दुर्योधन के दूत उलूक से बोले ॥१—२॥

स्ववीर्यं यः समाश्रित्य समाह्वयति वै परान् ।
अभीतो युद्ध्यते शत्रून्स वै पुरुष उच्यते ॥३॥

जो मनुष्य, अपने विक्रम का आश्रय लेकर विरोधियों को युद्ध के लिए आमन्त्रित करता है और निर्भय होकर शत्रुओं से युद्ध करता है, वही वीर पुरुष कहाता है ॥३॥

परवीर्यं समाश्रित्य यः समाह्वयते परान् ।
क्षत्रबन्धुरशक्तत्वाल्लोके स पुरुषाधमः ॥४॥

जो अन्य के बल पर आश्रित होकर शत्रुओं को ललकारता है, वह नीच क्षत्रिय है और सँसार में उसे अधम पुरुष माना गया है ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स त्वं परेषां वीर्येण मन्यसे वीर्यमात्मनः ।
स्वयं कापुरुषो मूढ परांश्च क्षेप्तुमिच्छसि ॥५॥

हे मूढ़ ! तू अन्य के पराक्रम से अपने को बलवान् समझता है । तू स्वयं तो कायर पुरुष है और अन्य को कायर बता कर उस पर आक्षेप करता है ॥५॥

यस्त्वं वृद्धं सर्वराज्ञां हितबुद्धिं जितेन्द्रियम् ।
मरणाय महाप्राज्ञं दीक्षयित्वा विकत्थसे ॥६॥

हे दुर्मति ! सब राजाओं में वृद्ध, हितेच्छु, जितेन्द्रिय, महा-बुद्धिमान्, भीष्म को भी मरण-यज्ञ की दीक्षा में लगाकर अपनी मिथ्या प्रशंसा में लग रहे हो ॥ ६ ॥

भावस्ते विदितोऽस्माभिर्दुर्बुद्धे कुलपांसन ।
न हनिष्यन्ति गाङ्गेयं पाण्डवा घृणयेति हि ॥७॥

हे कुलनाशन ! दुर्बुद्धे ! हमने तेरा अभिप्राय समझ लिया है । तू यह समझता है, कि दया करके पाण्डव, वृद्ध भीष्म का वध नहीं करेंगे ॥ ७ ॥

यस्य वीर्यं समाश्रित्य धार्तराष्ट्र विकत्थसे ।
हन्ताऽस्मि प्रथमं भीष्मं मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥८॥

हे दुर्योधन ! जिस भीष्म के बल पर तू यह सारी डींग मार है, मैं उसी भीष्म का सारे धनुर्धरों के सामने सबसे प्रथम वध करूंगा ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

कैतव्य गत्वा भरतान्समेत्य सुयोधनं धार्तराष्ट्रं वदस्व ।
तथेत्युवाचाऽर्जुनः सव्यसाची निशाव्यपाये भविता विमर्दः

हे उलूक ! तुम भरतवंशोत्पन्न क्षत्रियों के सन्मुख जाकर धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन से कह देना, कि सव्यसाची अर्जुन ने तुम्हारे युद्धाह्वान को स्वीकार कर लिया है । अब रात्रि के व्यतीत होने पर कल युद्ध का आरम्भ अवश्य हो जावेगा ॥ ६ ॥

यद्वाऽब्रवीद्वाक्यमदीनसत्त्वो मध्ये कुरून्हर्षयन्सत्यसन्धः ।
अहं हन्ता सृञ्जयानामनीकं शाल्वेयकांश्चेति ममैष भारः ॥
कैतव्य गत्वा भरतान्समेत्य सुयोधनं धार्तराष्ट्रं वदस्व ॥
हन्यामहं द्रोणमृतेऽपि लोकं न ते भयं विद्यते पाण्डवेभ्यः ।
ततो हि ते लब्धतमं च राज्यमापद्गताः पांडवाश्चेति भावः॥
स दर्पपूर्णो न समीक्षसे त्वमनर्थमात्मन्यपि वर्तमानम् ।
तस्मादहं ते प्रथमं समूहे हन्ता समक्षं कुरुवृद्धमेव ॥१२॥

जो महा-ओजस्वी, सत्य-प्रतिज्ञ भीष्म ने कहा है, कि कैतव ! तुम भरत-वंशी-क्षत्रियों को इकट्ठा करके धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन से जाकर कह दो, कि मैं सृञ्जय और शाल्वेयों की सेना का अकेला ही नाश कर दूंगा । इसका भार मुझ पर है । मैं तो द्रोण की सहायता के विना ही सारे लोकों का विध्वंस कर सकता हूँ । तुमको पाण्डवों से कोई भय नहीं मानना चाहिए । इसीसे तुम यह समझ रहे हो, कि अब सारा राज्य हमारा ही होकर रहेगा और पाण्डव सदा आपत्ति में ही फँसे रहेंगे । यही कारण है, कि तू

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घमण्ड में आ रहा है और अपने ऊपर आये हुए अनर्थ को कुछ नहीं समझ रहा है, परन्तु मैं सब से प्रथम सब के सन्मुख इस विशाल सेना में प्रथम कुरुवृद्ध भीष्म का ही वध करूँगा।

सूर्योदये युक्तसेनः प्रतीक्ष्य ध्वजी रथी रक्षत सत्यसन्धम्।
अहं हि वः पश्यतां द्वीपमेनं भीष्मं रथात्पातयिष्यामि बाणैः

अब तुम सूर्योदय होते ही अपनी सेना को तय्यार कर लेना और जितने ध्वजाधारी महारथी हैं, वे सब सत्यप्रतिज्ञ भीष्म की रक्षा करना। मैं तुम लोगों के देखते २ तुम्हारे रक्षक, इस भीष्म को ही अपने बाणों से रथ से नीचे गिराऊँगा॥ १३॥

श्वोभूते कत्थनावाक्यं विज्ञास्यति सुयोधनः।
आचितं शरजालेन मया दृष्ट्वा पितामहम् ॥१४॥

कल सूर्योदय होने पर अपने मिथ्या प्रशंसापरक वचनों के सार को दुर्योधन देख लेगा-जब वह मेरे बाण समूह से पितामह-भीष्म को छिदा हुआ देखेगा॥ १४॥

यदुक्तश्च सभामध्ये पुरुषो ह्रस्वदर्शनः।
क्रुद्धेन भीमसेनेन भ्राता दुःशासनस्तव ॥१५॥
अधर्मज्ञो नित्यवैरी पापबुद्धिर्नृशंसवत्।
सत्यां प्रतिज्ञामचिराद् द्रक्ष्यसे तां सुयोधन ॥१६॥

जो सभा के मध्य में ह्रस्वाकारधारी (ठिंगने) तुम्हारे भ्राता दुःशासन के विषय में क्रुध हुए भीमसेन ने कहा है, हे सुयोधन! तुम उस प्रतिज्ञा को अब शीघ्र ही पूरी होती हुई देख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकोगे। यह तुम्हारा भाई, नीचों की तरह पाप बुद्धि, अधर्मी और नित्य वैर परायण है ॥ १५-१६ ॥

अभिमानस्य दर्पस्य क्रोधपारुष्ययोस्तथा ।
नैष्ठुर्यस्याऽवलेपस्य आत्मसम्भावनस्य च ॥१७॥
नृशंसतायास्तैक्ष्ण्यस्य धर्मविद्वेषणस्य च ।
अधर्मस्याऽतिवादस्य वृद्धातिक्रमणस्य च ॥१८॥
दर्शनस्य च चक्रस्य कृत्स्नस्याऽपनयस्य च ।
द्रक्ष्यसि त्वं फलं तीव्रमचिरेण सुयोधन ॥१९॥

हे सुयोधन! अभिमान, दर्प, क्रोध, कठोरता, हठ, घमण्ड, आत्म सम्भावन (अपने को बड़ा मानना) नीचता, तीक्ष्णता, धर्म-विद्वेष, अधर्म, निन्दा, वृद्धों के मान का परित्याग, अनीति और दुष्ट सहचरों की संगति का अब तुम शीघ्र ही तीव्रफल देखोगे।

वासुदेवद्वितीये हि मयि क्रुद्धे नराधम ।
आशा ते जीविते मूढ राज्ये वा केन हेतुना ॥२०॥

हे नराधम! श्रीकृष्ण के साथ मेरे क्रुद्ध हो जाने पर भी तुझे अब अपने राज्य और जीवन की कैसे आशा बनी हुई है ॥ २०॥

शान्ते भीष्मे तथा द्रोणे सूतपुत्रे च पातिते ।
निराशो जीविते राज्ये पुत्रेषु च भविष्यसि ॥२१॥

जब भीष्म शान्त हो जावेगा और द्रोण एवं सूतपुत्र युद्ध भूमि में गिर जावेंगे-तब तू अपने जीवन, राज्य और पुत्रों के जीवन में निराश होगा ॥ २१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्रातॄणां निधनं श्रुत्वा पुत्राणां च सुयोधन ।
भीमसेनेन निहतो दुष्कृतानि स्मरिष्यसि ॥२२॥

हे सुयोधन ! जब तेरे भाई और पुत्रों को भीमसेन द्वारा मारे हुए सुनेगा, तो तब तुझे अपने इन दुष्कर्मों पर पश्चात्ताप होगा ॥ २२ ॥

न द्वितीयां प्रतिज्ञां हि प्रतिजानामि कैतव ।
सत्यं ब्रवीम्यहं ह्येतत्सर्वं सत्यं भविष्यति ॥२३॥

हे उलूक ! मैं दूसरी प्रतिज्ञा करना नहीं जानता हूं-मैं तो यही सत्य कह रहा हूँ-कि जो मैंने कहा है, वह सब सत्य होकर रहेगा ।

युधिष्ठिरोऽपि कैतव्यमुलूकमिदमब्रवीत् ।
उलूक मद्वचो ब्रूहि गत्वा तात सुयोधनम् ॥२४॥
स्वेन वृत्तेन मे वृत्तं नाऽधिगन्तुं त्वमर्हसि ।
उभयोरन्तरं वेद सूनृतानृतयोरपि ॥२५॥

राजा युधिष्ठिर भी छली (जुआरी) शकुनि के पुत्र, उलूक से यह वचन बोला-हे तात ! उलूक ! तुम दुर्योधन के पास जाकर यह वचन कह देना, कि दुर्योधन ! तुम अपने में रखने वाले आचरण से हमको दूषित न करो । तुमको मेरे और अपने आचरण में झूँठ और सत्य के भेद-की तरह भेद को निकालना उचित है ॥ २४-२५ ॥

न चाऽहं कामये पापमपि कीटपिपीलयोः ।
किं पुनर्ज्ञातिषु वधं कामयेयं कथञ्चन ॥२६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं तो कीट पतङ्गों के साथ भी पाप का व्यवहार करना नहीं चाहता, फिर मैं अपने बान्धवों के वध की कैसे कामना कर सकता हूँ ॥२६॥

एतदर्थं मया तात पञ्च ग्रामा वृताः पुरा ।
कथं तव सुदुर्बुद्धे न प्रेक्ष्ये व्यसनं महत् ॥२७॥

हे तात ! यही तो बात थी, जिससे मैंने तुमसे केवल पांच गांव लेकर ही सन्धि कर लेनी चाही । हे दुर्बुद्धि ! मैं भविष्य में उठने वाली तेरी इस महान् विपत्ति की कैसे उपेक्षा कर सकता हूँ ।

स त्वं कामपरीतात्मा मूढभावाच्च कत्थसे ।
तथैव वासुदेवस्य न गृह्णासि हितं वचः ॥२८॥

तू अपने मनोरथों के अधीन होकर इतना मूढ़ हो गया है, जिससे अपनी मिथ्या प्रशंसा करता रहता है । यही कारण है, जो तू ने श्रीकृष्ण के वचनों को ग्रहण नहीं किया है ॥२८॥

किञ्च दानीं बहूक्तेन युद्ध्यस्व सह बान्धवैः ।
मम विप्रियकर्तारं कैतव्य ब्रूहि कौरवम् ॥२९॥
श्रुतं वाक्यं गृहीतोऽर्थो मतं यत्ते तथाऽस्तु तत् ।

हे उलूक ! अब अधिक कहने की क्या आवश्यकता है, तुम मेरे अहित करने वाले दुर्योधन से कह देना, कि अब तुम अपने बन्धुओं के सहित युद्ध को तय्यार हो जाओ । हमने तुम्हारा वाक्य सुन लिया और उसका अभिप्राय भी समझ लिया । इस समय जो तुम चाह रहे हो-हमें वही स्वीकार है ॥२९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीमसेनस्ततो वाक्यं भूय आह नृपात्मजम् ॥३०॥
उलूक मद्वचो ब्रूहि दुर्मतिं पापपूरुषम् ।
शठं नैकृतिकं पापं दुराचारं सुयोधनम् ॥३१॥
गृध्रोदरे वा वस्तव्यं पुरे वा नागसाह्वये ।

इसके अनन्तर भीमसेन ने फिर राजकुमार दुर्योधन से यह वचन कहा—हे उलूक ! तू उस दुर्मति, पापी, शठ, छली, दुराचारी दुर्योधन को इस मेरे वचन को सुना देना, कि अब तुम या तो गीधों के पेट में निवास करोगे या हस्तिनापुर में चैन से रह सकोगे ॥३०-३१॥

प्रतिज्ञातं मया यच्च सभामध्ये नराधम ॥३२॥
कर्ताऽहं तद्वचः सत्यं सत्येनैव शपामि ते ।

हे नराधम ! मैंने जो सभा के मध्य में प्रतिज्ञा की थी, मैं उस वचन को सत्य करके छोड़ूँगा, इसके लिए मैं सत्य की शपथ करता हूँ ॥३२॥

दुःशासनस्य रुधिरं हत्वा पास्याम्यहं मृधे ॥३३॥
सक्थिनी तव भंक्त्वैव हत्वा हि तव सोदरान् ।

मैं रण में दुःशासन को मारकर उसका रक्त पान करूँगा और तेरी जङ्घाओं की हड्डी तोड़ कर अन्य तेरे सहोदरों को मारे बिना नहीं छोड़ूँगा ॥३३॥

सर्वेषां धार्तराष्ट्राणामहं मृत्युः सुयोधन ॥३४॥
सर्वेषां राजपुत्राणामभिमन्युरसंशयम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्मणा तोषयिष्यामि भूयश्चैव वचः शृणु ॥३५॥

हे दुर्योधन ! मुझे तुम सारे धृतराष्ट्र-पुत्रों का काल समझो और सारे राजकुमार का अन्तक अभिमन्यु होगा—इसमें सन्देह नहीं समझना। मैं इन कर्मों को पूरा करके सज्जनों को सन्तुष्ट करूँगा। अब तुम मेरा एक वचन और सुनो ॥३४-३५॥

हत्वा सुयोधन त्वां वै सहितं सर्वसोदरैः ।
आक्रमिष्ये पदा मूर्ध्नि धर्मराजस्य पश्यतः ॥३६॥

हे सुयोधन ! तुम्हें सारे भाइयों के साथ मार कर तुम्हारे शिर में ठोकर लगा कर छोड़ूंगा। जिसको धर्मराज युधिष्ठिर अपनी आँखों से देखेगा ॥३६॥

नकुलस्तु ततो वाक्यमिदमाह महीपते ।
उलूक ब्रूहि कौरव्यं धार्तराष्ट्रं सुयोधनम् ॥३७॥
श्रुतं ते गदतो वाक्यं सर्वमेव यथातथम् ।
तथा कर्ताऽस्मि कौरव्य यथा त्वमनुशासि माम् ।३८।

हे महीपते ! फिर नकुल ने यह वाक्य कहा—हे उलूक ! तुम कुरुवंशोत्पन्न, धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन से कह देना—कि तुम्हारा वाक्य सुन लिया—जो तुम चाहते हो, वही हो जावेगा। हे कौरव्य ! तुमने जो मुझे आज्ञा दी है, मैं उसे सहर्ष स्वीकार करता हूँ ॥३८॥

सहदेवोऽपि नृपते इदमाह वचोऽर्थवत् ।
सुयोधन मतिर्या ते वृथैषा ते भविष्यति ॥३९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शोचिष्यसे महाराज सपुत्रज्ञातिबान्धवः ।
इमं च क्लेशमस्माकं हृष्टो यत्त्वं विकत्थसे ॥४०॥

हे नृपते ! सहदेव भी यह अर्थ-पूर्ण वचन कहने लगा—हे सुयोधन ! जो तुम मनोरथ कर रहे हो—वे सब मिथ्याहोंगे। हे महाराज ! अन्त में तुम अपने बन्धु बान्धवों के साथ पश्चात्ताप करोगे। जो तुम हमारे क्लेशों को बड़ी प्रसन्नता से वर्णन करते हो—इससे कुछ नहीं बनेगा ॥३९-४०॥

विराटद्रुपदौ वृद्धावुलूकमिदमूचतुः ।
दासभावं नियच्छेव साधोरिति मतिः सदा ॥
तौ च दासावदासौ वा पौरुषं यस्य यादृशम् ॥४१॥

वृद्ध विराट और द्रुपद ने भी उलूक से कहा—हे दुर्योधन ! हम तो सदा सत्पुरुष के दास रहते हैं—यही हमारा मत है। हम तेरे दास हैं या अदास हैं, यह तो तुम्हारे अपने पौरुष (आचरण) पर निर्धारित है ॥४१॥

शिखण्डी तु ततो वाक्यमुलूकमिदमब्रवीत् ।
वक्तव्यो भवता राजा पापेष्वभिरतः सदा ॥४२॥
पश्य त्वं मां रणे राजन्कुर्वाणं कर्म दारुणम् ।
यस्य वीर्यं समासाद्य मन्यसे विजयं युधि ॥४३॥
तमहं पातयिष्यामि रथात्तव पितामहम् ।
अहं भीष्मवधात्सृष्टो नूनं धात्रा महात्मना ॥४४॥
सोऽहं भीष्मं हनिष्यामि मिषतां सर्वधन्विनाम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसके अनन्तर शिखण्डी ने उलूक से कहा—हे उलूक! तुम सदा पाप कर्म में लीन राजा दुर्योधन से कहना—हे राजन्! तुम जिस भीष्म के पराक्रम पर उन्मत्त होकर अपनी विजय की अभिलाषा कर रहे हो—इसके लिए युद्ध में तुम मुझे दारुण कर्म करते देखोगे। मैं भीष्म पितामह को रथ से नीचे गिरा दूँगा। मुझे तो महाशक्ति विधाता ने भीष्म के मारने के लिए ही उत्पन्न किया है। अब मैं युद्ध के आरम्भ होने पर सारे धनुषधारियों के देखते २ भीष्म को मारूँगा ॥४२-४४॥

धृष्टद्युम्नोऽपि कैतव्यमुलूकमिदमब्रवीत् ॥४५॥
सुयोधनो मम वचो वक्तव्यो नृपतेः सुतः।
अहं द्रोणं हनिष्यामि सगणं सहबान्धवम् ॥४६॥
अवश्यं च मया कार्यं पूर्वेषां चरितं महत्।
कर्ता चाऽहं तथा कर्म यथा नाऽन्यः करिष्यति४॥७॥

धृष्टद्युम्न भी कितव-पुत्र उलूक से कहने लगा—हे उलूक! तुम मेरे वचनों को राजपुत्र सुयोधन से कह देना, कि मैं सेना और बन्धु-बान्धवों के सहित द्रोण का वध करूँगा। मुझे पूर्वजों के समान यह महान् कर्म करना ही है। मैं वह कर्म करके दिखाऊँगा, जिसको आज तक अन्य ने नहीं किया है ॥४५-४७॥

तमब्रवीद्धर्मराजः कारुण्यार्थं वचो महत्।
नाऽहं ज्ञातिवधं राजन्कामयेयं कथञ्चन ॥४८॥
तवैव दोषाद्दुर्बुद्धे सर्वमेतत्त्वनावृतम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्मराज ने भी दुर्योधन से दयालुता से कहला कर भेजा—हे राजन्! मैं अपने बान्धवों का वध नहीं चाहता हूँ। हे दुर्बुद्धि! यह जो कुछ हो रहा है, वह स्पष्ट है, कि यह सब तेरी बुद्धि का ही परिणाम है ॥४८॥

स गच्छ मा चिरं तात उलूक यदि मन्यसे ॥४९॥
इह वा तिष्ठ भद्रं ते वयं हि तव बान्धवाः ।

हे उलूक! तात! अब तुम जाना चाहते हो, तो जाओ-देर न करो और जो यहाँ ठहरने की इच्छा है, तो यहाँ ठहरो—हम भी तो तुम्हारे बान्धव हैं ॥४९॥

उलूकस्तु ततो राजन्धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥५०॥
आमन्त्र्य प्रययौ तत्र यत्र राजा सुयोधनः ।

हे राजन्! इसके अनन्तर उलूक भी धर्मराज युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर वहाँ चला आया—जहाँ पर राजा दुर्योधन थे ॥५०॥

उलूकस्तत आगम्य दुर्योधनममर्षणम् ॥५१॥
अर्जुनस्य समादेशं यथोक्तं सर्वमब्रवीत् ।
वासुदेवस्य भीमस्य धर्मराजस्य पौरुषम् ॥५२॥
नकुलस्य विराटस्य द्रुपदस्य च भारत ।
सहदेवस्य च वचो धृष्टद्युम्नशिखण्डिनोः ।
केशवार्जुनयोर्वाक्यं यथोक्तं सर्वमब्रवीत् ॥५३॥

हे भारत! उलूक ने आकर असहिष्णु राजा दुर्योधन से अर्जुन का सारा संदेश ज्यों का त्यों सुना दिया तथा श्रीकृष्ण,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीमसेन, धर्मराज, नकुल, सहदेव, विराट, द्रुपद, सहदेव, धृष्टद्युम्न और शिखण्डी को पुरुषार्थ-द्योतक वचन सुनाया एवं फिर श्रीकृष्ण और अर्जुन के संदेश को दुहराया ॥५१-५३॥

कैतव्यस्य तु तद्वाक्यं निशम्य भरतर्षभः ।
दुःशासनं च कर्णं च शकुनिं चापि भारत ॥५४॥
आज्ञापयत राज्ञश्च बलं मित्रबलं तथा ।
यथा प्रागुदयात्सर्वे युक्तास्तिष्ठन्त्यनीकिनः ॥५५॥

हे भारत ! भरतवंशश्रेष्ठ, दुर्योधन ने उलूक के वचन सुनकर दुःशासन, कर्ण, शकुनि, अन्य राजाओं, अपनी सेना और मित्र राजाओं की सेना को आज्ञा दी, कि कल सूर्योदय से पूर्व ही सारी सेना सजधज कर युद्ध के लिए तय्यार रहे ॥५४-५५॥

ततः कर्णसमादिष्टा दूताः सन्त्वरिता रथैः ।
उष्ट्रवामीभिरप्यन्ये सदश्वैश्च महाजवैः ॥५६॥
तूर्णं परिययुः सेनां कृत्स्नां कर्णस्य शासनात् ।
आज्ञापयन्तो राज्ञश्च योगः प्रागुदयादिति ॥५७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि उलूकापयाने त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६३॥

इसके अनन्तर कर्ण ने यह आज्ञा दूतों को सुनाई। वे दूत रथ, उष्ट्र, अश्व और महावेग शील अश्वों पर चढ़ कर शीघ्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारी सेना में घूम २ कर कर्ण का आदेश सुनाने लगे। उन्होंने सारे राजाओं को प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व युद्ध के लिए सन्नद्ध रहने की घोषणा सुनाई ॥५६-५७॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत उलूकदूतागमनपर्व में उलूक के लौट जाने का एक सौ तरेसठवां अध्याय पूरा हुआ।

एक सौ चौंसठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

उलूकस्य वचः श्रुत्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
सेनां निर्यापयामास धृष्टद्युम्नपुरोगमाम् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर ने उलूक के वचन सुन कर धृष्टद्युम्न के सेनापतित्व में चलने वाली अपनी सेना को युद्ध के लिए चलने को आज्ञा दी ॥१॥

पदातिनीं नागवतीं रथिनीमश्ववृन्दिनीम्।
चतुर्विधबलां भीमामकम्पां पृथिवीमिव ॥२॥
भीमसेनादिभिर्गुप्तां साऽर्जुनैश्च महारथैः।
धृष्टद्युम्नवशां दुर्गां सागरस्तिमितोपमाम् ॥३॥

यह सेना, पैदल, हाथी, रथ और अश्ववृन्द—इन चार अङ्गों से बड़ी भयङ्कर और पृथिवी के सदृश अचल थी। इसकी भीम-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सेन और अर्जुन आदि महारथी रक्षा कर रहे थे, जो समुद्र के तुल्य निश्चल और दुर्गम थी। इसका नेतृत्व द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न कर रहा था ॥२-३॥

तस्यास्त्वग्रे महेष्वासः पाञ्चाल्यो युद्धदुर्मदः ।
द्रोणाग्रेप्सुरनीकानि धृष्टद्युम्नो व्यकर्षत ॥४॥

इस सेना के अग्रभाग (हरोल) में पञ्चाल राजपुत्र, युद्धदुर्मद, महाधनुर्धर, धृष्टद्युम्न था, जो इन चारों प्रकार की सेना को अपने नेतृत्व में लिये जा रहा था। इसके मन में द्रोण के वध की बड़ी आकांक्षा थी ॥४॥

यथाबलं यथोत्साहं रथिनः समुपादिशत् ।
अर्जुनं सूतपुत्राय भीमं दुर्योधनाय च ॥५॥
धृष्टकेतुं च शल्याय गौतमायोत्तमौजसम् ।
अश्वत्थाम्ने च नकुलं शैब्यं च कृतवर्मणे ॥६॥
सैन्धवाय च वार्ष्णेयं युयुधानं समादिशत् ।
शिखण्डिनं च भीष्माय प्रमुखे समकल्पयत् ॥७॥
सहदेवं शकुनये चेकितानं शलाय वै ।
द्रौपदेयांस्तथा पञ्च त्रिगर्तेभ्यः समादिशत् ॥८॥
वृषसेनाय सौभद्रं शेषाणां च महीक्षिताम् ।
स समर्थं हितं मेने पार्थादभ्यधिकं रणे ॥९॥

इसने बल और वीरता के आधार पर एक २ महारथी वीर का एक २ शत्रु वीर से युद्ध करना नियत कर दिया। कर्ण के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ अर्जुन, दुर्योधन से भीम, शल्य से धृष्टकेतु, कृपाचार्य से उत्तमौजा, अश्वत्थामा से नकुल, कृतवर्मा से शैब्य और जयद्रथ से वृष्णिवंशश्रेष्ठ युयुधान को नियुक्त किया। सबसे प्रमुख स्थान भीष्म के साथ युद्ध करने को शिखण्डी को नियुक्त किया गया। शकुनि से सहदेव, शल से चेकितान एवं द्रौपदी के पांचों पुत्रों को त्रिगर्त से युद्ध करने को नियुक्त किया। वृषसेन तथा अन्य राजाओंसे सुभद्रा-पुत्र अभिमन्युका युद्ध निश्चित किया गया। सेनापति धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु को अर्जुन से भी अधिक रण-कुशल मानते थे ॥५-९॥

एवं विभज्य योधांस्तान्पृथक्च सह चैव ह।
ज्वालावर्णो महेष्वासो द्रोणमंशमकल्पयत् ॥१०॥

इस प्रकार पृथक् २ योद्धाओं की जोट नियुक्त करके अग्नि के तुल्य, तेजस्वी, महा धनुर्धर धृष्टद्युम्न ने अपना युद्ध द्रोणाचार्य के साथ निश्चित किया ॥१०॥

धृष्टद्युम्नो महेष्वासः सेनापतिपतिस्ततः।
विधिवद् व्यूह्य मेधावी युद्धाय धृतमानसः ॥११॥

उत्तम धनुष के धारण करने वाले, सेनापतियों के सेनापति मेधावी धृष्टद्युम्न ने विधि-पूर्वक सेना का व्यूह बनाया। अब यह युद्ध की प्रतीक्षा करने लगा ॥११॥

यथोद्दिष्टानि सैन्यानि पाण्डवानामयोजयत्।
जयाय पाण्डुपुत्राणां यत्तस्तस्थौ रणाजिरे ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि सेनापतिनियोगे चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६४॥ समाप्तं चोलूकदूतागमनपर्व ॥

युद्ध नीति के अनुसार इसने पाण्डवों की सेना का संयोजन किया। यह युद्ध भूमि में पाण्डवों की जय के लिए बड़ी सावधानी से डटा हुआ खड़ा था ॥१२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत उलूकदूतागमनपर्व में सेनापति के आज्ञा देने का एक सौ चौंसठवां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर उलूकदूतागमनपर्व समाप्त हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ रथातिरथसंख्यानपर्व

एक सौ पैंसठवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

प्रतिज्ञाते फाल्गुनेन वधे भीष्मस्य संयुगे ।
किमकुर्वत मे मन्दाः पुत्रा दुर्योधनादयः ॥१॥

धृतराष्ट्र कहने लगा—हे सञ्जय ! जब अर्जुन ने युद्ध में भीष्म के वध करने की प्रतिज्ञा की—तो मेरे निर्बुद्धि पुत्र, दुर्योधनादिकों ने क्या काम किया ॥१॥

हतमेव हि पश्यामि गाङ्गेयं पितरं रणे ।
वासुदेवसहायेन पार्थेन दृढधन्वना ॥२॥

मैं तो अब श्रीकृष्ण से सुरक्षित, दृढ़ धनुषधारी, अर्जुन द्वारा पितामह भीष्म को मारा हुआ ही देख रहा हूँ ॥२॥

स चाऽपरिमितप्रज्ञस्तच्छ्रुत्वा पार्थभाषितम् ।
किमुक्तवान्महेष्वासो भीष्मः प्रहरतां वरः ॥३॥

इस अर्जुन की प्रतिज्ञा को सुनकर महा बुद्धिमान, बड़े भारी धनुष के धारण करने वाले, प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ, भीष्म ने क्या कहा ॥३॥

सैनापत्यं च सम्प्राप्य कौरवाणां धुरन्धरः ।
किमचेष्टत गाङ्गेयो महाबुद्धिपराक्रमः ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कौरव सेना की धुर के धारण करने में समर्थ, महापराक्रमी गंगापुत्र भीष्म ने सेनापति पद प्राप्त करके क्या चेष्टाएँ की।

वैशम्पायन उवाच—

ततस्तत्सञ्जयस्तस्मै सर्वमेव न्यवेदयत्।
यथोक्तं कुरुवृद्धेन भीष्मेणाऽमिततेजसा ॥५॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! सञ्जय ने भी राजा धृतराष्ट्र से वह सारा कथन कह सुनाया, जो अत्यन्त तेजस्वी, कुरुवृद्ध भीष्म ने अर्जुन की प्रतिज्ञा को सुन कर कहा था ॥५॥

सञ्जय उवाच—

सैनापत्यमनुप्राप्य भीष्मः शान्तनवो नृप।
दुर्योधनमुवाचेदं वचनं हर्षयन्निव ॥६॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! शान्तनु-पुत्र, भीष्म कौरवों के सेनापति पद को पाकर दुर्योधन के हर्ष को बढ़ाता हुआ यह वचन बोला ॥६॥

नमस्कृत्य कुमाराय सेनान्ये शक्तिपाणये।
अहं सेनापतिस्तेऽद्य भविष्यामि न संशयः ॥७॥
सेनाकर्मण्यभिज्ञोऽस्मि व्यूहेषु विविधेषु च।
कर्म कारयितुं चैव भृतानप्यभृतांस्तथा ॥८॥

हे दुर्योधन! मैं शक्ति-धारी, देवों के सेनापति, कार्तिकेय कुमार को नमस्कार करके तेरी सेना के सेनापति पद को स्वीकार करता हूं। सेनापति के क्या कर्तव्य हैं या सेना के व्यूह किस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तरह रचे जाते हैं, मैं यह सब कुछ जानता हूँ एवं धन की इच्छा से आये हुए या सहायता करने के लिए आये हुए सैनिकों के साथ कैसे २ व्यवहार करना योग्य है-मैं यह सब कुछ जानता हूं ॥७८॥

यात्रायाने च युद्धे च तथा प्रशमनेषु च ।
भृशं वेद महाराज यथा वेद बृहस्पतिः ॥९॥

हे महाराज ! मैं युद्ध-यात्रा, युद्ध, सन्धि आदि राजनीतियों के विषयों को इसी तरह जानता हूँ, जैसे देवों के गुरु बृहस्पति जानते हैं ॥ ९ ॥

व्यूहानां च समारम्भान्दैवगान्धर्वमानुषान् ।
तैरहं मोहयिष्यामि पाण्डवान्व्येतु ते ज्वरः ॥१०॥

देव, गन्धर्व और मनुष्यों द्वारा जितने भी प्रकार से सेना के व्यूह (दुर्ग) रचे जाते हैं, मैं उनको रचकर पाण्डवों को मोहित कर दूंगा—तुम चिन्ता न करो ॥ १० ॥

सोऽहं योत्स्यामि तत्त्वेन पालयंस्तव वाहिनीम् ।
यथावच्छास्त्रतो राजन्व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥११॥

हे राजन् ! मैं तुम्हारी सेना की रक्षा करता हुआ, युद्ध-शास्त्र के नियमों के अनुसार युद्ध करूंगा । तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो ॥ ११ ॥

दुर्योधन उवाच—

विद्यते मे न गाङ्गेय भयं देवासुरेष्वपि ।
समस्तेषु महाबाहो सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किंपुनस्त्वयि दुर्धर्षे सैनापत्ये व्यवस्थिते ।
द्रोणे च पुरुषव्याघ्रे स्थिते युद्धाभिनन्दिनि ॥१३॥

दुर्योधन ने कहा—हे पितामह ! महाबाहो ! मैं आपसे सच कह रहा हूं, कि मुझे भय तो समस्त देव और असुरों से भी नहीं है, परन्तु अब तो आपने सेनापति पद स्वीकार कर लिया—आप जैसा दुर्धर्ष सेनापति के हो जाने पर फिर किसका भय रह सकता है। सब तरह युद्ध का स्वागत करने वाले पुरुष-श्रेष्ठ, द्रोणाचार्य भी युद्ध करने को तय्यार हैं ॥ १३ ॥

भवद्भ्यां पुरुषाग्र्याभ्यां स्थिताभ्यां विजये मम ।
न दुर्लभं कुरुश्रेष्ठ देवराज्यमपि ध्रुवम् ॥१४॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! वीरश्रेष्ठ आप दोनों के युद्ध के लिए स्थित रहने पर अब मुझे इन्द्र का राज्य भी दुर्लभ नहीं है—यह मुझे निश्चय हो चुका है ॥ १४ ॥

रथसंख्यां तु कार्त्स्न्येन परेषामात्मनस्तथा ।
तथैवाऽतिरथानां च वेत्तुमिच्छामि कौरव ॥१५॥

पितामहो हि कुशलः परेषामात्मनस्तथा ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वैः सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥१६॥

हे कौरव ! अब मैं अपनी और विरोधी पाण्डवों की रथी तथा अतिरथों की सारी संख्या जानना चाहता हूं । आप ही अपनी और विरोधियों की इस संख्या के जानने में समर्थ हैं । मैं इन सब राजाओं के साथ में इनकी संख्या सुनना चाहता हूँ ॥ १६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीष्म उवाच—

गान्धारे शृणु राजेन्द्र रथसंख्यां स्वके बले ।
ये रथाः पृथिवीपाल तथैवाऽतिरथाश्च ये ॥१७॥

भीष्म ने कहा—हे गान्धारी-पुत्र ! राजेन्द्र ! दुर्योधन ! तुम प्रथम अपनी सेना के रथ तथा अतिरथों की संख्या सुनो ॥ १७ ॥

बहूनीह सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
रथानां तव सेनायां यथामुख्यं तु मे शृणु ॥१८॥

हे राजन् ! तुम्हारी सेनामें सहस्र दशसहस्र, अरबों की संख्यामें रथी हैं, उन सबकी गणना नहीं हो सकती है, अब तो तुम अपने मुख्य २ वीरों की संख्या सुनो ॥ १८ ॥

भवानग्रे रथोदारः सह सर्वैः सहोदरैः ।
दुःशासनप्रभृतिभिर्भ्रातृभिः शतसंमितैः ॥१९॥
सर्वे कृतप्रहरणाश्छेदभेदविशारदाः ।
रथोपस्थे गजस्कंधे गदाप्रासासिचर्मणि ॥२०॥
संयन्तारः प्रहर्तारः कृतास्त्रा भारसाधनाः ।
इष्वस्त्रे द्रोणशिष्याश्च कृपस्य च शरद्वतः ॥२१॥

सबसे प्रथम तो आपही अपने सारे दुःशासन आदि सौ भाइयों के साथ उत्कृष्ट रथी हैं। तुम सारे शस्त्र विद्या में कुशल और मारकाट में विशारद हो। तुम लोग, रथ हाथियों पर चढ़ कर युद्ध में निपुण और गदा, प्रास तथा ढाल तलवार के युद्ध में कुशल हो। तुम अच्छे सारथि, प्रहारकर्त्ता, शस्त्र निपुण, भार के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उठाने में समर्थ, बाण-विद्या के ज्ञाता, शरद्वान् पुत्र, कृपाचार्य और द्रोण के शिष्य हो ॥ १९-२१ ॥

एते हनिष्यन्ति रणे पञ्चालान्युद्धदुर्मदान् ।
कृतकिल्बिषाः पाण्डवेयैर्धार्तराष्ट्रा मनस्विनः ॥२२॥

ये तुम्हारे भ्राता, युद्धदुर्मद पञ्चालों को रण में मार गिरावेंगे । इन महावीर भाइयों को भी पाण्डवों से पर्याप्त द्वेष है ॥ २२ ॥

तथाऽहं भरतश्रेष्ठ सर्वसेनापतिस्तव ।
शत्रून्विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान् ॥२३॥

हे भरतश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारे सारे सेनापतिओं का सेनापति हूं । मैं पाण्डवों को व्याकुल करके शत्रुओंका विध्वँस मचा दूँगा ॥२३॥

न त्वात्मनो गुणान्वक्तुमर्हामि विदितोऽस्मि ते ।
कृतवर्मा त्वतिरथो भोजः शस्त्रभृतां वरः । २४॥
अर्थसिद्धिं तव रणे करिष्यति न संशयः ।

तुम जानते हो, मैं अपनी प्रशँसा नहीं कर सकता । इसी तरह कृतवर्मा और शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ भोज अतिरथी हैं । ये युद्ध में तुम्हारे मनोरथ को सिद्ध करके रहेंगे ॥ २४ ॥

शस्त्रविद्भिरनाधृष्यो दूरपाती दृढायुधः ॥२५॥
हनिष्यति चमूं तेषां महेन्द्रो दानवानिव ।
मद्रराजो महेष्वासः शल्यो मेऽतिरथो मतः ॥२६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शस्त्रधारियों से आक्रमण के अयोग्य, दूर तक बाण फैंक देने वाला, दृढ़ शस्त्रधारी, महाधनुर्धर मद्रराज शल्य, सारी पाण्डव सेना को इस तरह छिन्न भिन्न कर देगा जैसे-इन्द्र दानवों को नष्ट भ्रष्ट कर देता है। मैं इसको बहुत बड़ा अतिरथी समझता हूं।

स्पर्धते वासुदेवेन नित्यं यो वै रणे रणे।
भागिनेयान्निजांस्त्यक्त्वा शल्यस्तेऽतिरथो मतः॥
एष योत्स्यति संग्रामे पाण्डवांश्च महारथान् ॥२७॥

यह सदा श्रीकृष्ण से प्रत्येक रण में स्पर्धा करता रहता है, जो महारथी अपने भानजे पाण्डवों को छोड़ कर तुम्हारे साथ हुआ है। यह संग्राम में महारथी पाण्डवों से घोर युद्ध करेगा।

सागरोर्मिसमैर्बाणैः प्लावयन्निव शात्रवान्।
भूरिश्रवाः कृतास्त्रश्च तव चापि हितः सुहृत् ॥२८॥

समुद्र की तरँगों के समान बाण छोड़ने वाला, भूरिश्रवा भी अस्त्र विद्या में बड़ा कुशल है। यह तुम्हारा बड़ा ही मित्र है, जो शत्रुओं को अपने बाणों से ढ़क देने में समर्थ है॥ २८॥

सौमदत्तिर्महेष्वासो रथयूथपयूथपः।
बलक्षयममित्राणां सुमहान्तं करिष्यति ॥२९॥

महा धनुषधारी सोमदत्त-पुत्र भी रथों के यूथपतियों का भी यूथपति है। यह भी शत्रुओं की सेना का बड़ा ही नाश कर सकेगा।

सिन्धुराजो महाराज मतो मे द्विगुणो रथः।
योत्स्यते समरे राजन्विक्रान्तो रथसत्तमः ॥३०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे महाराज ! सिन्धुराज जयद्रथ भी दो महारथियों के समान अकेला है। हे राजन् ! महारथी श्रेष्ठ भी युद्ध में बड़े पराक्रम के साथ युद्ध करेगा ॥ ३० ॥

द्रौपदीहरणे राजन्परिक्लिष्टश्च पाण्डवैः ।
संस्मरंस्तं परिक्लेशं योत्स्यते परवीरहा ॥३१॥

हे राजन् ! द्रौपदी के हरण के समय पाण्डवों ने इसको बड़ा अपमानित किया था। यह शत्रुवीरों का नाशक भी उस क्लेश का स्मरण करके महाघोर युद्ध करेगा ॥ ३१ ॥

एतेन हि तदा राजंस्तप आस्थाय दारुणम् ।
सुदुर्लभो वरो लब्धः पाण्डवान्योद्धुमाहवे ॥३२॥

हे राजन् ! इस जयद्रथ ने दारुण तप करके दुर्लभ वर प्राप्त कर लिया है, कि मैं रण में पाण्डवों के साथ युद्ध करने में समर्थ हो सकूँ ॥ ३२ ॥

स एष रथशार्दूलस्तद्वैरं संस्मरन्रणे ।
योत्स्यते पाण्डवैस्तात प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि
पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६५॥

हे तात ! यह महावीर जयद्रथ, उस पूर्व वैर का स्मरण करके दुस्त्यज प्राणों का पण (बाजी) लगा कर भी पाण्डवों से युद्ध करने से पीछे नहीं हटेगा ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्व में रथियों की गणना करने का एक सौ पैंसठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ छियासठवां अध्याय

भीष्म उवाच—

सुदक्षिणस्तु काम्बोजो रथ एकगुणो मतः ।
तवार्थसिद्धिमाकांक्षन्योत्स्यते समरे परैः ॥१॥

भीष्म कहने लगे—हे राजन् ! मुख्य २ गुणों का धारी काम्बोज-राज, सुदक्षिण भी महारथी है, वह भी तेरी विजय की आकांक्षा से शत्रुओं के साथ युद्ध करने को अच्छी तरह से सन्नद्ध है ॥१॥

एतस्य रथसिंहस्य तवाऽर्थे राजसत्तम ।
पराक्रमं यथेन्द्रस्य द्रक्ष्यन्ति कुरवो युधि ॥२॥

हे राजसत्तम ! इस महारथी-प्रवर के तुम्हारे निमित्त किये गए इन्द्र के तुल्य पराक्रम को युद्ध में सारे कौरव वीर देखेंगे ।२॥

एतस्य रथवंशे हि तिग्मवेगप्रहारिणः ।
काम्बोजानां महाराज शलभानामिवाऽऽयतिः ॥३॥

हे महाराज ! इस महारथी के वंशज बड़े ही तीव्र वेग से प्रहार करने वाले हैं । युद्ध में काम्बोजवीर, शत्रु सेना पर शलभ पक्षी की भाँति तीव्रवेग से झपट करेंगे ॥ ३ ॥

नीलो माहिष्मतीवासी नीलवर्मा रथस्तव ।
रथवंशेन कदनं शत्रूणां वै करिष्यति ॥४॥

महिष्मती का अधिपति, कृष्ण वर्ण राजा नीलवर्मा भी तुम्हारा ही रथी है । यह भी अपने वीरों के साथ शत्रु-सेना का भीषण विनाश करेगा ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृतवैरः पुरा चैव सहदेवेन मारिष ।
योत्स्यते सततं राजंस्तवाऽर्थे कुरुनन्दन ॥५॥

हे कुरु-वंश-श्रेष्ठ ! दुर्योधन ! इसका और सहदेव का दिग्विजय के समय से झगड़ा चला आता है, इससे यह तेरी विजय के निमित्त बड़े प्रयत्न से युद्ध करेगा ॥५॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सम्मतौ रथसत्तमौ ।
कृतिनौ समरे तात दृढवीर्यपराक्रमौ ॥६॥

हे तात ! अवन्ती देश निवासी विन्द और अनुविन्द—ये दोनों भाई भी बड़े माने हुए महारथी हैं । ये युद्ध विद्या में कुशल और दृढ़ पराक्रम करने वाले हैं ॥६॥

एतौ तौ पुरुषव्याघ्रौ रिपुसैन्यं प्रधक्ष्यतः ।
गदाप्रासासिनाराचैस्तोमरैश्च करच्युतैः ॥७॥

ये दोनों रथी, अपने हाथों से छोड़े हुए गदा, प्रास, खड्ग, बाण और तोमर आदि शस्त्रों से शत्रु सेना में आग सी लगा देंगे ॥७॥

युद्धाभिकामौ समरे क्रीडन्ताविव यूथपौ ।
यूथमध्ये महाराज विचरन्तौ कृतान्तवत् ॥८॥

हे महाराज ! जब युद्ध छिड़ जाता है, तो ये ही प्रत्येक से लड़ने की चेष्टा में आगे बढ़ते हैं और यूथपति हाथी की भांति रणभूमि में घूमते रहते हैं । ये शत्रुसेना के झुंड में घुसकर काल की सी लीला करने लगते हैं ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्रिगर्त्ता भ्रातरः पञ्च रथोदारा मता मम ।
कृतवैराश्च पार्थैस्ते विराटनगरे तदा ॥९॥

त्रिगर्त संज्ञक पांच भाई हैं, जो बड़े ही महारथी माने गए हैं। विराट नगर के युद्ध से इनका भी पाण्डवों से वैर चला आता है ॥९॥

मकरा इव राजेन्द्र समुद्धततरङ्गिणीम् ।
गङ्गां विक्षोभयिष्यन्ति पार्थानां युधि वाहिनीम् ॥१०॥

हे राजेन्द्र ! तरङ्गों से लहराती हुई गङ्गा नदी को मकर समूह के मथ डालने की भांति ये भी पाण्डवों की सेना को इसी तरह मथ डालने में समर्थ हैं ॥१०॥

ते रथाः पञ्च राजेन्द्र येषां सत्यरथो मुखम् ।
एते योत्स्यन्ति संग्रामे संस्मरन्तः पुरा कृतम् ॥११॥

हे राजेन्द्र ! ये पांच रथी हैं, इनमें सत्यरथ मुख्य है। ये विराटनगर के पराजय का स्मरण करके युद्ध में बड़ी वीरता से लड़ेंगे ॥ ११ ॥

व्यलीकं पाण्डवेयेन भीमसेनानुजेन ह ।
दिशो विजयता राजञ्श्वेतवाहेन भारत ॥१२॥
ते हनिष्यन्ति पार्थानां तानासाद्य महारथान् ।
वरान्वरान्महेष्वासान्क्षत्रियाणां धुरन्धरान् ॥१३॥

हे भरत-वंश-श्रेष्ठ ! महाराज ! जब श्वेत अश्वों के वाहन धारी अर्जुन ने दिग्विजय में त्रिगर्तों से युद्ध किया, उस समय से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीमसेन के अनुज महारथी अर्जुन से इन लोगों का बहुत द्वेष बढ़ रहा है। ये पांचों भाई, क्षत्रियों में प्रशंसित, महाधनुर्धर, उत्कृष्ट २ पाण्डवों के महारथियों को चुन २ कर मार डालेंगे ॥१२-१३॥

लक्ष्मणस्तव पुत्रश्च तथा दुःशासनस्य च।
उभौ तौ पुरुषव्याघ्रौ संग्रामेष्वपलायिनौ ॥१४॥
तरुणौ सुकुमारौ च राजपुत्रौ तरस्विनौ।
युद्धानां च विशेषज्ञौ प्रणेतारौ च सर्वशः ॥१५॥

तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण और दुःशासन का पुत्र—ये दोनों भी बड़े ही वीर और युद्ध से पद (कदम) नहीं हटाने वाले हैं। ये तरुण, सुकुमार, बड़े वेग-शील, राजकुमार हैं। दोनों ही युद्ध विद्या के रहस्यों के जानने वाले और सेना सञ्चालन में कुशल हैं।

रथौ तौ कुरुशार्दूल मतौ मे रथसत्तमौ।
क्षत्रधर्मरतौ वीरौ महत्कर्म करिष्यतिः ॥१६॥

हे कुरुशार्दूल! ये दोनों रथी भी अनेक महावीरों से श्रेष्ठ हैं। ये क्षत्रिय-कर्म में संलग्न रहने वाले हैं। ये भी युद्ध में महान् कर्म करके दिखलावेंगे ॥१६॥

दण्डधारो महाराज रथ एको नरर्षभ।
योत्स्यते तव संग्रामे स्वेन सैन्येन पालितः ॥१७॥

हे नरर्षभ! महाराज! दण्डधार नामक राजा भी मुख्य रथियों में है। वह अपनी सेना से सुरक्षित हो कर अच्छा युद्ध करेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बृहद्बलस्तथा राजा कौसल्यो रथसत्तमः ।
रथो मम मतस्तात महावेगपराक्रमः ॥१८॥

हे तात ! कोसल देश का राजा बृहद्बल भी रथियों में उत्तम है। इस महा-वेग-धारी रथी का मेरे चित्त में बड़ा आदर है ॥१८॥

एष योत्स्यति संग्रामे स्वान्बन्धून्सम्प्रहर्षयन् ।
उग्रायुधो महेष्वासो धार्तराष्ट्रहिते रतः ॥१९॥

अपनी सेना के सामन्तों को उत्साहित करके तुम्हारे हित में संलग्न होकर महाधनुर्धर उग्रायुद्ध भी घोर युद्ध करेगा ॥१९॥

कृपः शारद्वतो राजन्रथयूथपयूथपः ।
प्रियान्प्राणान्परित्यज्य प्रधक्ष्यति रिपूंस्तव ॥२०॥

हे राजन् ! शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य भी रथ यूथपों का यूथपति है। यह भी अपने प्रिय प्राणों का मोह छोड़ कर तुम्हारे शत्रुओं को भस्म कर डालेगा। ॥२०॥

गौतमस्य महर्षेर्य आचार्यस्य शरद्वतः ।
कार्तिकेय इवाऽजेयः शरस्तम्बात्सुतोऽभवत् ॥२१॥

महर्षि गौतम के वंशज आचार्य शरद्वान् के पुत्र यह कृपाचार्य भी कार्तिकेय की भांति शरों के स्तम्ब से उत्पन्न हुआ है ॥२१॥

एष सेनाः सुबहुला विविधायुधकार्मुकाः ।
अग्निवत्समरे तात चरिष्यति विनिर्दहन् ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि
षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे तात ! अनेक शस्त्र और धनुष धारण करने वाली यह विशाल हमारी सेना प्रज्वलित अग्नि की भांति, शत्रु सेना को भस्म करती हुई रणभूमि में विचरण करेगी ॥२२॥

इति- श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्व में रथियों की गणना का एक सौ छियासठवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ सड़सठवां अध्याय

भीष्म उवाच—

शकुनिर्मातुलस्तेऽसौ रथ एको नराधिप ।
प्रयुज्य पाण्डवैर्वैरं योत्स्यते नाऽत्र संशयः ॥१॥

भीष्म बोले—हे नराधिप ! तुम्हारा मातुल गान्धारराज ही बड़ा रथी है, जिसका पाण्डवों से वैर बढ़ रहा है। वह घमसान युद्ध करेगा-इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥१॥

एतस्य सेना दुर्धर्षा समरे प्रतियायिनः ।
विकृतायुधभूयिष्ठा वायुवेगसमा जवे ॥२॥

युद्ध-यात्रा के समय इसकी सेना बड़ी दुर्धर्ष सिद्ध होती रही है। इस सेना के पास भीषण शस्त्र हैं। यह सेना शत्रुओं पर वायु के वेग से झपटती हैं ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रोणपुत्रो महेष्वासः सर्वानेवाऽतिधन्विनः ।
समरे चित्रयोधी च दृढास्त्रश्च महारथः ॥३॥

महा धनुषधारी, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा भी सब धनुषधारियों में श्रेष्ठ वीर हैं। यह महारथी युद्ध में बड़े विचित्र कर्म करने वाला और शस्त्र विद्या में कुशल है। ॥३॥

एतस्य हि महाराज यथा गाण्डीवधन्वनः ।
शरासनविनिर्मुक्ताः संसक्ता यान्ति सायकाः ॥४॥

हे महाराज ! इस अश्वत्थामा के भी गाण्डीव-धारी अर्जुन की भांति, एक दूसरे से सटे हुए बाण धनुष से निकलते हैं ॥४॥

नैष शक्यो मया वीरः संख्यातुं रथसत्तमः ।
निर्दहेदपि लोकांस्त्रीनिच्छन्नेष महारथः ॥५॥

इस वीर श्रेष्ठ के गुणोंकी गणना करना दुर्लभ है। यह महारथी, यदि इच्छा करे-तो तीन लोकों को भी भस्म कर सकता है ॥५॥

क्रोधस्तेजश्च तपसा सम्भ्रतोऽऽश्रमवासिनाम् ।
द्रोणेनाऽनुगृहीतश्च दिव्यैरस्त्रैरुदारधीः ॥६॥

यह अश्वत्थामा आश्रम वासी मुनियों के तप और तेज से सम्पन्न है। उदार- अस्त्र-धारी द्रोणाचार्य ने इसको दिव्य अस्त्र प्रदान करके इस पर अनुग्रह किया है ॥६॥

दोषस्त्वस्य महानेको येनैव भरतर्षभ ।
न मे रथो नाऽतिरथो मतः पार्थिवसत्तम ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवितं प्रियमत्यर्थमायुष्कामः सदा द्विजः ।
न ह्यस्य सदृशः कश्चिदुभयोः सेनयोरपि ॥८॥

हे भरतर्षभ ! इसमें एक बड़ा ही दोष है; जिसके कारण इसे मैं न तो रथी कह सकता और न अतिरथी ही मानता हूँ। हे राजसत्तम ! यह विप्र-वंश-श्रेष्ठ, सदा अपनी आयु से मोह रखता है। इसको अपने प्राण बड़े ही प्रिय हैं। दोनों सेनाओं में इसके सदृश वीर मुझे तो दिखाई देता नहीं है ॥७-८॥

हन्यादेकरथेनैव देवानामपि वाहिनीम् ।
वपुष्मांस्तलघोषेण स्फोटयेदपि पर्वतान् ॥९॥

यह एक रथ से ही देवों की सेना को भी छिन्न भिन्न कर सकता है। यह विशाल-काय वीर अपनी हथेली के संकेत पर पर्वतों को भी फोड़ सकता है ॥९॥

असंख्येयगुणो वीरः प्रहन्ता दारुणद्युतिः ।
दण्डपाणिरिवाऽसह्यः कालवत्प्रचरिष्यति ॥१०॥

इस वीर में असंख्य गुण हैं। यह दारुण-कान्ति-धारी वीर अच्छे प्रहारों का कर्ता है। यह यमराज की भांति असहाय होकर रण भूमि में काल की तरह घूमता है ॥१०॥

युगान्ताग्निसमः क्रोधात्सिंहग्रीवो महाद्युतिः ।
एष भारतयुद्धस्य पृष्ठं संशमयिष्यति ॥११॥

सिंह के समान ग्रीवाधारी, महा कान्तिमान् अश्वत्थामा, प्रलयाग्नि के सदृश भयङ्कर हैं। हे भारत ! यह पाण्डव सेना के पृष्ठ-भाग का विनाशक होगा ॥ ११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पिता त्वस्य महातेजा वृद्धोऽपि युवभिर्वरः ।
रणे कर्म महत्कर्ता अत्र मे नाऽस्ति संशयः ॥१२॥

इसका पिता द्रोणाचार्य, महातेजस्वी है, जो वृद्ध होकर भी युवाओं से बली है। यह युद्ध में महान् कर्म करके दिखावेगा-इसमें मुझे तनिक भी संशय नहीं है ॥ १२ ॥

अस्त्रवेगानिलोद्धूतः सेनाकक्षेन्धनोत्थितः ।
पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि प्रधक्ष्यति रणे धृतः ॥१३॥

सेना रूपी घास फूस और इन्धन से उत्पन्न और अस्त्र वेग रूपी वायु से प्रदीप्त, यह द्रोण रूपी अग्नि रण में पाण्डवों की सेना को भस्म करके छोड़ेगा ॥ १३ ॥

रथयूथपयूथानां यूथपोऽयं नरर्षभः ।
भारद्वाजात्मजः कर्ता कर्म तीव्रं हितं तव ॥१४॥

यह रथों के यूथपतियों का भी यूथपति है। यह भरद्वाज-वंश-श्रेष्ठ, द्रोणाचार्य, तेरे हित करने के लिए रण में तीव्र कर्म करने में समर्थ होगा ॥ १४ ॥

सर्वमूर्धाभिषिक्तानामाचार्यः स्थविरो गुरुः ।
गच्छेदन्तं सृञ्जयानां प्रियस्त्वस्य धनञ्जयः ॥१५॥

यह सारे राजसत्तमों का आचार्य और वृद्ध गुरु है। यह सृञ्जयों का तो नाश उड़ा देगा-परन्तु इसका अर्जुन से प्रेम है।

नैष जातु महेष्वासः पार्थमक्लिष्टकारिणम् ।
हन्यादाचार्यकं दीप्तं संस्मृत्य गुणनिर्जितम् ॥१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह महाधनुर्धर, उत्कृष्ट कर्मकारी, द्रोणाचार्य अर्जुन का कभी वध नहीं करेगा। गुरु तो विद्यार्थी के गुणों से जीत लिया जाता है, इसको भी इस बात का बड़ा ही ध्यान है॥ १६॥

श्लाघतेऽयं सदा वीर पार्थस्य गुणविस्तरैः।
पुत्रादभ्यधिकं चैनं भारद्वाजोऽनुपश्यति ॥१७॥

हे वीरो! यह सदा अर्जुन के गुणों का विस्तार से वर्णन करता है। यह भरद्वाज-कुलोत्पन्न द्रोणाचार्य, अपने पुत्र से भी अधिक अर्जुन से प्रेम करता है॥ १७॥

हन्यादेकरथेनैव देवगन्धर्वमानुषान्।
एकीभूतानपि रणे दिव्यैरस्त्रैः प्रतापवान् ॥१८॥

यह प्रतापी द्रोणाचार्य, अकेला ही अपने रथ पर बैठ कर देव, गन्धर्व और मनुष्यों की इकट्ठी हुई सेना को अपने दिव्य अस्त्रों से रण में जीत सकता है॥ १८॥

पौरवो राजशार्दूलस्तव राजन्महारथः।
मतो मम रथोदारः परवीररथारुजः ॥१९॥

हे राजन्! तुम्हारी ओर राजाओं में श्रेष्ठ महारथी पौरव है, जो शत्रुसेना और रथों का नाशक है। मैं उनको बड़ा श्रेष्ठ महारथी मानता हूँ॥ १९॥

स्वेन सैन्येन महता प्रतपञ्शत्रुवाहिनीम्।
प्रधक्ष्यति स पाञ्चालान्कक्षमग्निगतिर्यथा ॥२०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह अपनी विशाल सेना से शत्रुसेना को उत्तप्त कर देगा एवं घास के ढ़ेर को अग्नि के समान यह पाञ्चालों को भस्म करने में भी समर्थ है ॥ २० ॥

सत्यश्रवा रथस्त्वेको राजपुत्रो बृहद्बलः ।
तव राजन्रिपुबले कालवत्प्रचरिष्यति ॥२१॥

हे राजन ! सत्यश्रवा रथी और राज-कुमार बृहद्बल, तुम्हारे वीर हैं, जो शत्रु सेना में काल के तुल्य स्वतन्त्र घूमने में समर्थ है।

एतस्य योधा राजेन्द्र विचित्रकवचायुधाः ।
विचरिष्यन्ति संग्रामे निघ्नन्तः शात्रवांस्तव ॥२२॥

हे राजेन्द्र ! इसके योद्धा, बड़े विचित्र कवच और शस्त्रधारी हैं। ये भी तेरे शत्रुओंका नाश करते हुए संग्राम में निर्द्वन्द्व चक्कर लगावेंगे

वृषसेनो रथस्तेऽग्र्यः कर्णपुत्रो महारथः ।
प्रधक्ष्यति रिपूणां ते बलं तु बलिनां वरः ॥२३॥

तुम्हारे पक्ष में कर्ण पुत्र, वृषसेन भी श्रेष्ठ रथी है। यह महा-बली भी, शत्रुसेना को क्षणभर में दग्ध कर देगा ॥ २३ ॥

जलसन्धो महातेजा राजन्रथवरस्तव ।
त्यक्ष्यते समरे प्राणान्माधवः परवीरहा ॥२४॥

हे राजन् ! महातेजस्वी, जलसन्ध भी तुम्हारा ही उत्तम रथी है। यह मधु-वंश-श्रेष्ठ, शत्रु नाशक, जलसन्ध तुम्हारे लिए युद्ध में प्राण छोड़ने को तय्यार है ॥ २४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एष योत्स्यति संग्रामे गजस्कन्धविशारदः ।
रथेन वा महाबाहुः क्षपयञ्शत्रुवाहिनीम् ॥२५॥

यह महाबाहु, हाथी पर या रथ पर सवार होकर शत्रुसेना को विध्वंस करता हुआ युद्ध करता है ॥ २५ ॥

रथ एष महाराज मतो मे राजसत्तम ।
त्वदर्थे त्यक्ष्यते प्राणान्सहसैन्यो महारणे ॥२६॥

हे राजाधिराज ! मैं इस रथी की बहुत ही प्रतिष्ठा करता हूँ, यह इस महान् युद्ध में तुम्हारे निमित्त सेना सहित अपने प्राणों का परित्याग कर सकता है ॥ २६ ॥

एष विक्रान्तयोधी च चित्रयोधी च सङ्गरे ।
वीतभीश्चाऽपि ते राजञ्शत्रुभिः सह योत्स्यते ॥२७॥

यह अद्भुत ढँग और अद्भुत पराक्रम से युद्ध करता है । हे राजन् ! यह निर्भय होकर तेरे शत्रुओं से युद्ध करेगा ॥२७॥

बाह्लीकोऽतिरथश्चैव समरे चाऽनिवर्त्तनः ।
मम राजन्मतो युद्धे शूरो वैवस्वतोपमः ॥२८॥

हे राजन् ! युद्ध से मुख नहीं फेरने वाला, बाह्लीक भी अतिरथी है । मैं तो इस शूरवीर को युद्ध में यमराज के समान भीषण समझता हूं ॥२८॥

नह्येष समरं प्राप्य निवर्त्तेत कथञ्चन ।
यथा सततगो राजन्स हि हन्यात्परान्रणे ॥२९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह युद्ध में आगे बढ़ कर पीछे कभी नहीं हटता है। यह बाल्हीक शत्रु पर सदा इस तरह झपटता है, कि उसकी सेना को रणभूमि में बिछाता ही दिखाई देता है ॥२९॥

सेनापतिर्महाराज सत्यवांस्ते महारथः ।
रणेष्वद्भुतकर्मा च रथी पररथारुजः ॥३०॥

हे महाराज ! महारथी सत्यवान् भी तुम्हारा सेनापति है। यह शत्रुओं के रथों का भङ्ग करने वाला, रण में अद्भुत कर्म दिखाता है ॥३०॥

एतस्य समरं दृष्ट्वा न व्यथाऽस्ति कथञ्चन ।
उत्स्मयन्नुत्पतत्येष परान्रथपथे स्थितान् ॥३१॥

इसके युद्ध का स्मरण करके कुछ भी व्यथा शेष नहीं रह जाती है। यह रथ के मार्ग में आने वाले शत्रुवीरों पर मुस्कुराता हुआ ही झपट पड़ता है ॥३१॥

एष चाऽरिषु विक्रान्तः कर्म सत्पुरुषोचितम् ।
कर्त्ता विमर्दे सुमहत्त्वदर्थे पुरुषोत्तमः ॥३२॥

यह बाल्हीक शत्रुओं के सन्मुख बड़ा पराक्रमी है। जब घोर युद्ध उपस्थित होगा-उस समय यह महावीर तुम्हारे निमित्त सत्पुरुषों के योग्य कर्मों को करके दिखावेगा ॥३२॥

अलम्बुषो राक्षसेन्द्रः क्रूरकर्मा महारथः ।
हनिष्यति परान्राजन्पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥३३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन् ! तुम्हारे पक्ष में क्रूर कर्म करने में समर्थ, महारथी राक्षसराज अलम्बुष है। यह भी पाण्डवों के साथ बढ़े हुए अपने वैर का स्मरण करके शत्रुसेना का नाश करेगा ॥३३॥

एष राक्षससैन्यानां सर्वेषां रथसत्तमः ।
मायावी दृढवैरश्च समरे विचरिष्यति ॥३४॥

यह सारी राक्षस सेनाओं में प्रसिद्ध वीर है, जो मायावी वैर का बदला लेने में बड़ा दृढ़ है। यह भी युद्ध में काल की तरह चक्कर लगावेगा ॥३४॥

प्राग्ज्योतिषाधिपो वीरो भगदत्तः प्रतापवान् ।
गजांकुशधरश्रेष्ठो रथे चैव विशारदः ॥३५॥

प्राग्जोतिषपुर का अधिपति प्रतापी भगदत्त भी बड़ा वीर है। यह हाथी की सवारी और रथ पर चढ़कर युद्ध करने में कुशल है ॥३५॥

एतेन युद्धमभवत्पुरा गाण्डीवधन्वना ।
दिवसान्सुबहून्राजन्नुभयोर्जयगृद्धिनोः ॥३६॥

हे राजन् ! इसका और गाण्डीव धारी अर्जुन का बहुत दिन तक युद्ध होता रहा है। दोनों ने अपनी २ विजय के लिए बड़ा ही प्रयत्न किया था ॥३६॥

ततः सखायं गान्धारे मानयन्पाकशासनम् ।
अकरोत्संविदं तेन पाण्डवेन महात्मना ॥३७॥

हे गान्धारी-पुत्र ! महाराज ! फिर इस भगदत्त ने अपने सखा इन्द्र के कथन से महात्मा पाण्डुपुत्र अर्जुन के साथ सन्धि कर ली थी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एष योत्स्यति संग्रामे गजस्कन्धविशारदः ।
ऐरावतगतो राजा देवानामिव वासवः ॥३८॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६७॥

ऐरावत हाथी पर बैठे हुए, देवों के राजा इन्द्र की भांति यह भी अपने गजराज पर बैठकर पाण्डवों से युद्ध करेगा-क्योंकि यह हाथी पर बैठने में बड़ा निपुण है॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्व में रथियों की गणना का एक सौ सड़सठवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ अड़सठवां अध्याय

भीष्म उवाच—

अचलो वृषकश्चैव सहितौ भ्रातरावुभौ ।
रथौ तव दुराधर्षौ शत्रून्विध्वंसयिष्यतः ॥१॥

भीष्म ने कहा—हे राजन्! तुम्हारे दुराधर्ष दो और रथी हैं, जिनका नाम अचल और वृषक है। ये दोनों भाई साथ रहते हैं। जो युद्ध में शत्रुओं का नाश करेंगे ॥ १ ॥

बलवन्तौ नरव्याघ्रौ दृढक्रोधौ प्रहारिणौ ।
गान्धारमुख्यौ तरुणौ दर्शनीयौ महाबलौ ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये दोनों भाई महाबली, नरश्रेष्ठ, दृढ़ क्रोध वाले और प्रहार करने में कुशल हैं। ये गान्धार देश के प्रधान वीर, युवा, सुन्दर और महाबली हैं ॥२॥

सखा ते दयितो नित्यं य एष रणकर्कशः।
उत्साहयति राजंस्त्वां विग्रहे पाण्डवैः सह ॥३॥

हे राजन्! तुम्हारा परम प्रिय मित्र रण में कर्कश, कर्ण भी पाण्डवों के साथ युद्ध होने के समय अपने युद्ध से तुमको उत्साहित करेगा ॥३॥

परुषः कत्थनो नीचः कर्णो वैकर्त्तनस्तव।
मन्त्री नेता च बन्धुश्च मानी चाऽत्यन्तमुच्छ्रितः ॥४॥

यह सूर्यपुत्र, कर्ण बड़ा कठोर, आत्म-प्रशंसक और नीच है। यही तुम्हारा मन्त्री, नेता और बन्धु बना है। यह बड़ा ही उद्धत स्वभाव वाला अभिमानी वीर है ॥४॥

एष नैव रथः कर्णो न चाऽप्यतिरथो रणे।
वियुक्तः कवचेनैष सहजेन विचेतनः ॥५॥

कुण्डलाभ्यां च दिव्याभ्यां वियुक्तः सततं घृणी।
अभिशापाच्च रामस्य ब्राह्मणस्य च भाषणात् ॥६॥

करणानां वियोगाच्च तेन मेऽर्धरथो मतः।
नैष फाल्गुनमासाद्य पुनर्जीवन्विमोक्ष्यते ॥७॥

मैं इस कर्ण को रथी या अतिरथी कुछ भी नहीं कह सकता, क्योंकि यह प्रमादी तो अपने साथ उत्पन्न हुए कवच से रहित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो चुका है। यह दयालु प्रकृति भी है, जिससे अपने कुण्डलों को भी गवां चुका। इसको ब्राह्मण बन कर विद्या ग्रहण करने से परशुराम का शाप लगा है। यह अपने कवच कुण्डलादि साधनों से हीन हो गया, इससे मुझे तो यह अर्द्ध रथी ही प्रतीत होता है। यह अर्जुन के सन्मुख जाकर फिर जीता नहीं लौट सकता है ॥७॥

ततोऽब्रवीत्पुनर्द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
एवमेतद्यथाऽऽत्थ त्वं न मिथ्याऽस्ति कदाचन ॥८॥
रणे रणेऽभिमानी च विमुखश्चाऽपि दृश्यते।
घृणी कर्णः प्रमादी च तेन मेऽर्धरथो मतः ॥९॥

भीष्म के इतना कहने पर द्रोणाचार्य बोले—जो तुम कह रहे हो—वह ठीक है। इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है। इसने प्रत्येक रण में अपना अभिमान और विमुखता ही दिखाई है। यह दयालु या घृणा करने वाला और बड़ा प्रमादी है, इससे मैं भी इसको अर्द्ध रथी ही मानता हूँ ॥९॥

एतच्छ्रुत्वा तु राधेयः क्रोधादुत्फाल्य लोचने।
उवाच भीष्मं राधेयस्तुदन्वाग्भिः प्रतोदवत् ॥१०॥

जब राधापुत्र कर्ण ने यह सुना—तो इसकी क्रोध से आंखें लाल हो गई। यह आंखें निकाल कर चाबुक के समान अपनी वाणी से पीड़ित करता हुआ भीष्म से कहने लगा ॥१०॥

पितामह यथेष्टं मां वाक्शरैरुपकृन्तसि।
अनागसं सदा द्वेषादेवमेव पदे पदे ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे पितामह ! तुम वाणी के बाणों से तुम्हारी इच्छा हो—जितना मुझे छेद लो। मैं तो सदा निर्दोष हूँ। तुम लोग द्वेष से पद पद पर मेरी ऐसे ही निन्दा करते आ रहे हो ॥११॥

मर्षयामि च तत्सर्वं दुर्योधनकृतेन वै।
त्वं तु मां मन्यसे मन्दं यथा कापुरुषं तथा ॥१२॥

मैं यह सब कुछ दुर्योधन के हित की चिन्ता से सह लेता हूँ। तुम तो मुझे कायर और मूर्ख ही समझते चले आ रहे हो।

भवानर्धरथो मह्यं मतो वै नाऽत्र संशयः।
सर्वस्य जगतश्चैव गाङ्गेयो न मृषा वदेत् ॥१३॥
कुरूणामहितो नित्यं न च राजाऽवबुध्यते।

मैं भी तो तुमको अर्धरथी ही मानता हूँ, यह भी तो निश्चय है। लोगों का विश्वास है, कि गाङ्गेय भीष्म मिथ्या नहीं कहता है। इससे तो ये कौरवों के अहितकारी ही सिद्ध हुए, परन्तु राजा दुर्योधन इस बात को नहीं जानता है ॥१३॥

को हि नाम समानेषु राजसूदारकर्मसु ॥१४॥
तेजोवधमिमं कुर्याद्भिभेदयिषुराहवे।
यथा त्वं गुणविद्वेषादपरागं चिकीर्षसि ॥१५॥

युद्ध में उत्तम कर्म कर दिखाने वाले, समान पराक्रम वाले इस राजसमूह में इस प्रकार भीष्म या द्रोण के अतिरिक्त कौन पुरुष होगा—जो इस तरह अपने ही वीरों के तेज का नाश करता रहेगा। यह तो युद्ध में फूट डालने का काम हुआ। तुम ही ऐसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो, जो अपने ईर्ष्या-द्वेष के कारण इस तरह की उलटी सीधी बातें बनाते हो ॥१४-१५॥

न ह्ययनैर्न पलितैर्न वित्तैर्न च बन्धुभिः ।
महारथत्वं संख्यातुं शक्यं क्षत्रस्य कौरव ॥१६॥
बलज्येष्ठं स्मृतं क्षत्रं मन्त्रज्येष्ठा द्विजातयः ।
धनज्येष्ठाः स्मृता वैश्याः शूद्रास्तु वयसाऽधिकाः१७॥

हे कौरव ! आयु में बड़ा होने या बाल श्वेत हो जाने, धन तथा बन्धुओं से क्षत्रियों में महारथीपन की संख्या नहीं हो सकती है। क्षत्रियों में तो बल की ही ज्येष्ठता मानी गई है। ब्राह्मणों में मन्त्र, वैश्योंमें धन और शूद्रोंमें आयु की ज्येष्ठता मानी जाती है।

यथेच्छकं स्वयं ब्रूया रथानतिरथांस्तथा ।
कामद्वेषसमायुक्तो मोहात्प्रकुरुते भवान् ॥१८॥
दुर्योधन महाबाहो साधु सम्यगवेक्ष्यताम् ।
त्वज्यतां दुष्टभावोऽयं भीष्मः किल्विषकृत्तव ॥१९॥

आप यह सब कुछ राग-द्वेष के वश में होकर ही अज्ञानता से कह रहे हो। हे महाबाहो ! दुर्योधन ! तुम इनकी नीचता अब अच्छी तरह देख लो। भीष्म को इस दुष्ट भाव को छोड़ देना चाहिए। यह बड़ा ही अनुचित पाप—पूर्ण कर्म करने में प्रवृत्त है ॥१८-१९॥

भिन्ना हि सेना नृपते दुःसन्धेया भवत्युत ।
मौला हि पुरुषव्याघ्र किमु नाना समुत्थिताः ॥२०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे नृपते ! जब सेना में फूट पड़ जाती है, तब उसमें एकता स्थापन करना बड़ा कठिन कार्य हो जाता है। हे पुरुष—व्याघ्र ! मूल सेना में भी ऐसा हो जाना सम्भव है। जिसमें तो नाना देशों से आई हुई इस सेना का तो कहना ही क्या है ॥२०॥

एषां द्वैधं समुत्पन्नं योधानां युधि भारत।
तेजोवधो नः क्रियते प्रत्यक्षेण विशेषतः ॥२१॥

हे भारत ! इस युद्ध में इस तरह तो योद्धाओं में फूट पड़ चुकी है। इस प्रकार किसी को किसी के तेज का वध नहीं करना चाहिए और विशेष करके प्रत्यक्ष तो कभी ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए ॥२१॥

रथानां क्व च विज्ञानं क्व च भीष्मोऽल्पचेतनः।
अहमावारयिष्यामि पाण्डवानामनीकिनीम् ॥२२॥

कहां तो रथियों की गणना का अवसर और कहां क्षुद्र विचार धारी भीष्म है। मैं तो अकेला ही पाण्डवों की सेना के रोकने की शक्ति रखता हूँ ॥२२॥

आसाद्य माममोघेषुं गमिष्यन्ति दिशो दश।
पाण्डवाः सहपञ्चालाः शार्दूलं वृषभा इव ॥२३॥

जब मैं सफल बाणों की वर्षा करूंगा, उस समय पाञ्चालों के साथ पाण्डव इस तरह दशों दिशाओं को भाग निकलेंगे—जैसे सिंह के सन्मुख वृष (बैल) भाग पड़ते हैं ॥२३॥

क्व च युद्धं विमर्दो वा मन्त्रे सुव्याहृतानि च।
क्व च भीष्मो गतवया मन्दात्मा कालचोदितः ॥२४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहाँ तो युद्ध, विचार-सङ्घर्ष और मन्त्रणा में उक्ति प्रयुक्ति और कहां यह वृद्ध, मूर्ख, काल के वशीभूत हुआ, क्षुद्र बुद्धि भीष्म है ॥२४॥

एकाकी स्पर्धते नित्यं सर्वेण जगता सह ।
न चाऽन्यं पुरुषं कश्चिन्मन्यते मोघदर्शनः ॥२५॥

यह व्यर्थ की बातें बनाने वाला भीष्म, अकेला ही सारे जगत् से स्पर्धा करता रहता है। यह अपने समान अन्य किसी को मनुष्य ही नहीं समझता है ॥२५॥

श्रोतव्यं खलु वृद्धानामिति शास्त्रनिदर्शनम् ।
न त्वेव ह्यतिवृद्धानां पुनर्बाला हि ते मताः ॥२६॥

यह ठीक है, कि वृद्धों की बातें सुननी चाहिए, परन्तु अत्यन्त वृद्धों की बातें तो काम की नहीं रह जाती हैं, वे तो बच्चे के समान ही अज्ञानी हो जाते हैं ॥२६॥

अहमेको हनिष्यामि पाण्डवानामनीकिनीम् ।
सुयुद्धे राजशार्दूल यशो भीष्मं गमिष्यति ॥२७॥
कृतः सेनापतिस्त्वेष त्वया भीष्मो नराधिप ।
सेनापतौ यशो गन्ता न तु योधान्कथञ्चन ॥२८॥

हे राजशार्दूल ! मैं अकेला तो इस युद्ध में पाण्डव सेना का नाश करूंगा और यश भीष्म को प्राप्त होगा। हे नराधिप ! क्योंकि तुमने इनको सेनापति बना दिया है। युद्ध के विजय का यश तो सेनापति को ही मिलता है, योद्धाओं को कोई यश नहीं मिलता ॥२७-२८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाऽहं जीवति गाङ्गेये योत्स्ये राजन्कथञ्चन ।
हते भीष्मे तु योद्धास्मि सर्वैरेव महारथैः ॥२९॥

हे राजन् ! भीष्म जब तक जीवित है, तब तक मैं युद्ध नहीं करूँगा । जब भीष्म मर लेगा, मैं तभी सारे महारथियों से अकेला ही भिड़ जाऊँगा ॥२९॥

भीष्म उवाच:—

समुद्यतोऽयं भारो मे सुमहान्सागरोपमः ।
धार्तराष्ट्रस्य संग्रामे वर्षपूगाभिचिन्तितः ॥३०॥
तस्मिन्नभ्यागते काले प्रतप्ते लोमहर्षणे ।
मिथो भेदो न मे कार्यस्तेन जीवसि सूतज ॥३१॥

भीष्म ने कहा—हे सूतपुत्र ! इस समुद्र के समान विशाल सेना का भार मुझे सौंपा गया है। धृतराष्ट्र-पुत्रों के साथ होने वाले इस संग्राम में अनेक वर्षों से इस पर विचार हो रहा था। अब इस लोमहर्षण भीषण समय के उपस्थित होने पर मैं परस्पर फूट डालना नहीं चाहता, इसी से तो तू अभी तक जीवित है।

न ह्ययं त्वद्य विक्रम्य स्थविरोऽपि शिशोस्तव ।
युद्धश्रद्धामहं छिन्द्यां जीवितस्य च सूतज ॥३२॥

हे सूतपुत्र ! नहीं तो मैं वृद्ध भी आज युद्ध द्वारा तुझ युवा की युद्ध की लालसा अभी पूरी करके तुझे प्राणों से वियुक्त कर सकता हूँ ॥३२॥

जामदग्न्येन रामेण महास्त्राणि विमुञ्चता ।
न मे व्यथा कृता काचित्त्वं तु मे किं करिष्यसि ।३३।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब मेरा जमदग्नि के पुत्र परशुराम से युद्ध छिड़ा तो उसने बड़े अस्त्र छोड़े-जब उनसे ही मुझे कोई व्यथा नहीं हुई—तो अब तू ही मेरा क्या कर सकता है ॥३३॥

कामं नैतत्प्रशंसन्ति सन्तः स्वबलसंस्तवम् ।
वक्ष्यामि तु त्वां सन्तप्तो निहीन कुलपांसन ॥३४॥

हे नीच-वृत्ति-धारी ! कुल-नाशक ! कर्ण ! महात्मा लोग कभी अपनी प्रशंसा नहीं किया करते हैं, परन्तु तूने मुझे इतना उत्तेजित कर दिया है, कि जिससे मुझे इतना कहना पड़ा है ॥३४॥

समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिराजस्वयंवरे ।
निर्जित्यैकरथेनैव याः कन्यास्तरसा हृताः ॥३५॥

तुमने सुना है, कि काशिराज की कन्या के स्वयम्बर में सारा क्षत्रिय समूह इकट्ठा था, परन्तु मैंने केवल अपने एक रथ की सहायता से ही उन कन्याओं का बड़े वेग से अपहरण कर लिया ।

ईदृशानां सहस्राणि विशिष्टानामथो पुनः ।
मयैकेन निरस्तानि ससैन्यानि रणाजिरे ॥३६॥

इस प्रकार के विशेष २ सैकड़ों कार्य मैंने किए हैं । मैंने अकेले ही रणाङ्गण में सहस्रों राजाओं को सेना के सहित भगा दिया है ।

त्वां प्राप्य वैरपुरुषं कुरूणामनयो महान् ।
उपस्थितो विनाशाय यतस्व पुरुषो भव ॥३७॥

तू तो वैर की प्रत्यक्ष मूर्ति है । तुझे प्राप्त करके कौरवों ने बड़ी ही अनीति की है । तू अपना विनाश आप करना चाहता है । अब तो कुछ सावधान होकर मनुष्य बनने का प्रयत्न कर ॥३७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युद्ध्यस्व समरे पार्थं येन विस्पर्धसे सह ।
द्रक्ष्यामि त्वां विनिर्मुक्त मस्माद्युद्धात्सुदुर्मते ॥३८॥

तू जिस अर्जुन से नित्य स्पर्धा (बराबरी) करता है, अब उससे युद्ध करके दिखा। हे दुर्मति ! मैं देखना चाहता हूँ, कि तू कैसे अर्जुन के सन्मुख से छुटकारा पाकर आ सकता है ॥३८॥

तमुवाच ततो राजा धार्तराष्ट्रः प्रतापवान् ।
मां समीक्षस्व गाङ्गेय कार्यं हि महदुद्यतम् ॥३९॥

इसके अनन्तर प्रतापी धृतराष्ट्र-पुत्र राजा दुर्योधन, भीष्म से कहने लगा—हे गाङ्गेय ! पितामह ! आप मेरी ओर देखो। अब झगड़े का समय नहीं है, बड़ा ही कार्य उपस्थित हो रहा है ॥३९॥

चिन्त्यतामिदमेकाग्रं मम निःश्रेयसं परम् ।
उभावपि भवन्तौ मे महत्कर्म करिष्यतः ॥४०॥

अब तो तुम ध्यान लगाकर मेरे कल्याण की बातें सोचो। तुम दोनों ही मेरी बड़ी सहायता करने वाले हो ॥४०॥

भूयश्च श्रोतुमिच्छामि परेषां रथसत्तमान् ।
ये चैवाऽतिरथास्तत्र ये चैव रथयूथपाः ॥४१॥

अब तो मैं शत्रुओं के वीरों के नाम सुनना चाहता हूँ। उनमें जो रथी, अतिरथी और रथ यूथपति हों, उनका वर्णन करो ।४१।

बलाबलममित्राणां श्रोतुमिच्छामि कौरव ।
प्रभातायां रजन्यां वै इदं युद्धं भविष्यति ॥४२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या-
मुद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि भीष्मकर्ण-
संवादे अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।

हे कौरव ! मैं शत्रुओं का बलाबल का संतोलन करना चाहता हूं । कल प्रातःकाल तो युद्ध भेरी बज ही जाने वाली है ॥४५॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्व में भीष्म और कर्ण के कलह का एक सौ अड़सठवां अध्याय समाप्त हुआ ।

एक सौ उनहत्तरवां अध्याय

भीष्मउवाच—

एते रथास्तवाऽऽख्यातास्तथैवाऽतिरथा नृप ।
ये चाऽप्यर्द्धरथा राजन्पाण्डवानामतः शृणु ॥१॥

भीष्म बोले—हे राजन् ! अब तक मैंने तुमको तुम्हारे ही रथी, अतिरथी और अर्धरथियों के नाम सुनाए हैं । अब तुम पाण्डवों के रथी, अतिरथी और अर्धरथियों के नाम सुनो ॥१॥

यदि कौतूहलं तेऽद्य पाण्डवानां बले नृप ।
रथसंख्यां शृणुष्व त्वं सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥२॥

हे राजन् ! जो तुम पाण्डवों के इन वीरों के जानने की इच्छा रखते हो—तो अब तुम पाण्डव-सेना के राजाओं के सहित रथियों की गणना सुनो ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वयं राजा रथोदारः पाण्डवः कुन्तिनन्दनः ।
अग्निवत्समरे तात चरिष्यति न संशयः ॥३॥

हे तात ! कुन्ती-नन्दन राजा युधिष्ठिर ही स्वयं रथि-श्रेष्ठ है । यह युद्ध-भूमि में अग्नि की भांति भ्रमण करेगा—इसमें सन्देह न समझो ॥३॥

भीमसेनस्तु राजेन्द्र रथोऽष्टगुणसम्मितः ।
न तस्याऽस्ति समो युद्धे गदया सायकैरपि ॥४॥
नागायुतबलो मानी तेजसा न स मानुषः ।

हे राजेन्द्र ! भीमसेन अकेला ही आठ रथियों के समान है । गदा-युद्ध में इसके बराबरी का वीर नहीं है । यह बाण चलाने में भी कुशल है । इसमें दस सहस्र हाथियों के समान बल है । यह बड़ा अभिमानी है । तेज में इसके सदृश कोई मनुष्य नहीं देखा जाता है ॥४॥

माद्रीपुत्रौ च रथिनौ द्वावेव पुरुषर्षभौ ॥५॥
अश्विनाविव रूपेण तेजसा च समन्वितौ ।

माद्री के पुत्र नकुल और सहदेव दोनों ही रथी और पुरुष-प्रवीर हैं । ये रूप और तेज में अश्विनीकुमारों के समान देदीप्यमान हैं ॥५॥

एते चमूमुखगताः स्मरन्तः क्लेशमुत्तमम् ॥६॥
रुद्रवत्प्रचरिष्यन्ति तत्र मे नाऽस्ति संशयः ।

ये दोनों सेना के अग्रभाग में स्थित होकर और अपने बनवास के क्लेशों का स्मरण करके रुद्र की तरह युद्ध में घूमेंगे—इसमें संशय नहीं है ॥५-६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वे एव महात्मानः शालस्तंभा इवोद्गताः ॥७॥
प्रादेशेनाऽधिकाः पुम्भिरन्यैस्ते च प्रमाणतः ।
सिंहसंहननाः सर्वे पाण्डुपुत्रा महाबलाः ॥८॥

ये महाबली सारे ही पाण्डुपुत्र, आत्माभिमानी और शाल के वृक्ष के समान उन्नत शरीरधारी हैं। ये अन्य वीरों से ऊँचाई में एक प्रादेश (बालिस्त) अधिक ऊँचे हैं। इनके सिंह के समान सुडोल शरीर हैं ॥७ ८॥

चरितब्रह्मचर्याश्च सर्वे तात तपस्विनः ।
ह्रीमन्तः पुरुषव्याघ्रा व्याघ्रा इव बलोत्कटाः ॥९॥

हे तात ! इन सारे ही पाण्डवों ने ब्रह्मचर्य का आचरण किया है, ये बड़े तपस्वी हैं। ये पुरुष-श्रेष्ठ, लज्जाशील और सिंह के सदृश उत्कृष्ट बलशाली हैं ॥९॥

जवे प्रहारे सम्मर्दे सर्व एवाऽतिमानुषाः ।
सर्वैर्जिता महीपाला दिग्जये भरतर्षभ ॥१०॥

हे भरतर्षभ ! ये सारे ही वेग, युद्ध और संघर्ष में अन्य मनुष्यों से अधिक कर्म करके दिखाने वाले हैं। इन्होंने दिग्विजय में सारे विरोधी राजाओं को जीत लिया था ॥१०॥

न चैषां पुरुषाः केचिदायुधानि गदाः शरान् ।
विषहन्ति सदा कर्तुमधिज्यान्यपि कौरव ॥११॥

हे कौरव ! कुछ पुरुष तो इनके गदा और बाणों के प्रहारों को सह भी नहीं सकते हैं और न इनके धनुष की डोरी को धनुष पर चढ़ा ही सकते हैं ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उद्यतां वा गदा गुर्वीः शरान्वा क्षेप्तुमाहवे ।
जवे लक्ष्यस्य हरणे भोज्ये पांसुविकर्षणे ॥१२॥
बालैरपि भवन्तस्तैः सर्व एव विशेषिताः।
एतत्सैन्यं समासाद्य सर्व एव बलोत्कटाः ॥१३॥
विध्वंसयिष्यन्ति रणे मा स्म तैः सह सङ्गमः ।

ऊपर उठी हुई भारी गदाओं के चलाने, संघर्ष के समय बाणों के फैंकने, वेग और लक्ष्यके बेंधने, भोजन या धूलि फैंकने में बचपन में ही इन पाण्डवों ने तुमसे विशेषता दिखाई है। ये उत्कृट बलशाली सारे ही पाण्डव, इस हमारी सेना में घुसकर इसका विध्वंस उड़ा देंगे। इनके साथ तो युद्ध नहीं छिड़े, तब तक ही अच्छा है ॥१२-१३॥

एकैकशस्ते सम्मर्दे हन्युः सर्वान्महीक्षितः ॥१४॥
प्रत्यक्षं तव राजेन्द्र राजसूये यथाऽभवत् ।

ये इतने बलशाली हैं, कि इनमें से प्रत्येक पाण्डव युद्ध छिड़ने पर तुम्हारे सारे राजाओं के मार देने में समर्थ है। हे राजेन्द्र ! यह सब कुछ तुम्हारे देखते २ राजसूय यज्ञ में हो चुका है ॥१४॥

द्रौपद्याश्च परिक्लेशं द्यूते च परुषा गिरः ॥१५॥
ते स्मरन्तश्च संग्रामे चरिष्यन्ति च रुद्रवत् ।

ये लोग, द्रौपदी के क्लेश और द्यूत काल की कठोर वाणी का स्मरण करके रुद्र की तरह रणभूमि में संचरण करेंगे ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोहिताक्षो गुडाकेशो नारायणसहायवान् ॥१६॥
उभयोः सेनयोर्वीरो रथो नाऽस्तीति तादृशः ।

रक्त-नेत्र-धारी, गुडाकेश अर्जुन के सारथि श्रीकृष्ण बने हुए हैं। इस अर्जुन के समान दोनों सेनाओं में कोई वीर या रथी नहीं है ॥१६॥

नहि देवेषु वा पूर्वं मनुष्येषूरगेषु च ॥१७॥
राक्षसेष्वथ यक्षेषु नरेषु कुत एव तु ।

देव, मनुष्य, उरग, राक्षस और यक्षों में भी अर्जुन के सदृश वीर प्राप्त नहीं हो सकते हैं, फिर तुम्हारी सेना के वीरों में कहाँ से मिल सकते हैं ॥१७॥

भूतोऽथवा भविष्यो वा रथः कश्चिन्मया श्रुतः ॥१८॥
समायुक्तो महाराज रथः पार्थस्य धीमतः ।

हे महाराज ! मैंने तो अब तक कोई भूतकाल में महारथी सुना नहीं है, जो युद्ध में अर्जुन के सन्मुख ठहर सका हो और न मुझे भविष्य में ऐसा किसी वीर के भविष्य में उत्पन्न हो जाने की आशा ही है॥ १८॥

वासुदेवश्च संयन्ता योद्धा चैव धनञ्जयः ॥१९॥
गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं ते चाऽश्वा वातरंहसः ।
अभेद्यं कवचं दिव्यमक्षय्यौ च महेषुधी ॥२०॥
अस्त्रग्रामश्च माहेन्द्रो रौद्रः कौबेर एव च ।
याम्यश्च वारुणश्चैव गदाश्चोग्रप्रदर्शनाः ॥२१॥
वज्रादीनि च मुख्यानि नानाप्रहरणानि च ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण सारथि, अर्जुन जैसा युद्ध करने वाला वीर, गाण्डीव जैसा धनुष, वायु के समान वेगशील अश्व, अभेद्य कवच, नहीं क्षीण होने वाले तूणीर, इन्द्र, रुद्र, कुबेर, यम और वरुण का प्रदान किया हुआ अस्त्र-समूह, भीषण रूप गदा, मुख्य २ वज्र, अनेक भांति के शस्त्र हैं। इन साधनों के रहते हुए कौन राजा युधिष्ठिर से युद्ध कर सकता है ॥१९-२१॥

दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ॥२२॥
हतान्येकरथेनाऽऽजौ कस्तस्य सदृशो रथः ।

हिरण्यपुर-निवासी सहस्रों दानवों को इस अकेले अर्जुन ने ही युद्ध में मार भगाया। इस अर्जुन की युद्ध में कौन बराबरी कर सकता है ॥२२॥

एष हन्याद्धि संरम्भी बलवान्सत्यविक्रमः ॥२३॥
तव सेनां महाबाहुः स्वां चैव परिपालयन् ।

यह सत्य पराक्रमी, महाबली, महाबाहु अर्जुन, क्रोध में भर कर तेरी सेना का नाश और अपनी सेना की रक्षा कर सकता है ॥२३॥

अहं चैनं प्रत्युदियामाचार्यो वा धनञ्जयम् ॥२४॥
न तृतीयोऽस्ति राजेन्द्र सेनयोरुभयोरपि ।
य एनं शरवर्षाणि वर्षन्तमुदियाद्रथी ॥२५॥
जीमूत इव घर्मान्ते महावातसमीरितः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजेन्द्र ! इस धनञ्जय के सामने तो मैं या द्रोणाचार्य ही जा सकते हैं। हमारे अतिरिक्त दोनों सेनाओं में अर्जुन से टक्कर लेने वाला कोई वीर दिखाई नहीं देता है, जो महारथी अर्जुन के बाण-वर्षा करने पर उसके सामने युद्ध के लिए ग्रीष्म-ऋतु के अन्त में महावायु से प्रेरित हुए मेघ की भाँति अपने बाणों की झड़ी लगा दे ॥२४-२५॥

समायुक्तस्तु कौन्तेयो वासुदेवसहायवान् ।
तरुणश्च कृती चैव जीर्णावावामुभावपि ॥२६॥

यह कुन्तीपुत्र अर्जुन, उत्तम २ साधनों से युक्त है और श्रीकृष्ण इसकी सहायता कर रहे हैं। यह तरुण और अस्त्र-शस्त्र में नया अभ्यास रखता है और हम दोनों (भीष्म और द्रोण) ही जीर्ण (वृद्ध) हो चुके हैं ॥२६॥

वैशम्पायन उवाच—

एतच्छ्रुत्वा तु भीष्मस्य राज्ञां दध्वंसिरे तदा ।
काञ्चनाङ्गदिनः पीना भुजाश्चन्दनरूषिताः ॥२७॥
मनोभिः सह संवेगैः संस्मृत्य च पुरातनम् ।
सामर्थ्यं पाण्डवेयानां यथा प्रत्यक्षदर्शनात् ॥२८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि पाण्डवरथातिरथ-संख्यायामूनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! भीष्म के वचन सुनकर सुवर्ण के आभूषणों से सुशोभित, चन्दन-चर्चित, राजाओं की पुष्ट भुजाएँ शिथिल सी दिखाई देने लगी। इन्होंने अपने वेगशील मन से पाण्डवों की प्राचीन शक्ति का स्मरण किया, जो इस समय प्रत्यक्ष सी दिखाई देने लगी ॥२६-२७॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत रथातिरथसख्यानपर्व में पांडवों के रथियों की संख्या का एक सौ उनहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ सत्तरवां अध्याय

भीष्म उवाच—

द्रौपदेया महाराज सर्वे पञ्च महारथाः।
वैराटिरुत्तरश्चैव रथोदारो मतो मम ॥१॥

भीष्म बोले—हे महाराज! द्रौपदी के पांचों पुत्र महारथी हैं। विराट-पुत्र उत्तर भी मेरी सम्मति में उत्कृष्ट रथी है ॥ १ ॥

अभिमन्युर्महाबाहू रथयूथपयूथपः।
समः पार्थेन समरे वासुदेवेन चाऽरिहा ॥२॥

महाबाहु अभिमन्यु भी रथियोंके यूथपतियों का भी यूथपति है। यह अरि-नाशक, युद्ध में अर्जुन और श्रीकृष्ण के समान पराक्रमी है ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च मनस्वी च दृढव्रतः ।
संस्मरन्वै परिक्लेशं स्वपितुर्विक्रमिष्यति ॥३॥

यह अस्त्र चलाने में बड़ी स्फूर्ति (फुर्ती) से काम करता है। यह दृढ़-व्रती, मनस्वी अभिमन्यु, अनेक विचित्र ढंग से युद्ध करता है। यह भी वनवास में अपने पिता के क्लेश का स्मरण करके पूर्ण विक्रम प्रदर्शित करेगा ॥ ३ ॥

सात्यकिर्माधवः शूरो रथयूथपयूथपः ।
एष वृष्णिप्रवीराणाममर्षी जितसाध्वसः ॥४॥

हे राजन्! यदु-वंश-श्रेष्ठ, सात्यकि भी रथियों के यूथपतियों का भी यूथपति है। यह वृष्णि-वीरों में बड़ा आवेश (जोश) वाला है। इसको कभी युद्ध में घबराहट नहीं होती है ॥ ४ ॥

उत्तमौजास्तथा राजन्रथोदारो मतो मम ।
युधामन्युश्च विक्रान्तो रथोदारो मतो मम ॥५॥

हे राजन्! उत्तमौजा वीर भी मेरी सम्मति में उदार रथी है और इसी भांति युधामन्यु भी उत्कृष्ट रथी माना जाता है ॥ ५ ॥

एतेषां बहुसाहस्रा रथा नागा हयास्तथा ।
योत्स्यन्ते ते तनूस्त्यक्त्वा कुन्तीपुत्रप्रियेप्सया ॥६॥

इनके साथ कई सहस्र रथ, हाथी और घोड़े हैं। ये कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर के हित के लिए प्राण देकर भी युद्ध करने को सन्नद्ध हैं ॥ ६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाण्डवैः सह राजेन्द्र तव सेनासु भारत ।
अग्निमारुतवद्राजन्नाह्वयन्तः परस्परम् ॥७॥

हे राजेन्द्र ! भरत-वंश-श्रेष्ठ ! दुर्योधन, ये सारे महारथी, पाण्डवों के साथ एक दूसरे को ललकारते हुए अग्नि और वायुकी तरह तेरी सेना में घुस पड़ेंगे ॥ ७ ॥

अजेयौ समरे वृद्धौ विराटद्रुपदौ तथा ।
महारथौ महावीर्यौ मतौ मे पुरुषर्षभौ ॥८॥
वयोवृद्धावपि हि तौ क्षत्रधर्मपरायणौ ।
यतिष्येते परं शक्त्या स्थितौ वीरगते पथि ॥९॥

ये वृद्ध, द्रुपद और विराट भी युद्ध में अजेय, महा पराक्रमी और महारथी हैं । मैं तो इनको वीर पुरुषमें बहुत ही श्रेष्ठ मानता हूँ । वे आयु में वृद्ध होकर भी क्षत्रिय-धर्म (युद्ध) में उत्साह के साथ सम्मिलित हैं । ये वीरों के आचरण करने योग्य मार्ग में स्थित होकर बड़ी शक्ति से पाण्डवों के विजय के लिए प्रयत्न करेंगे ॥९॥

सम्बन्धकेन राजेन्द्र तौ तु वीर्यबलान्वयात् ।
आर्यवृत्तौ महेष्वासौ स्नेहवीर्यसितावुभौ ॥१०॥
कारणं प्राप्य तु नराः सर्व एव महाभुजाः ।
शूरा वा कातरा वाऽपि भवन्ति कुरुपुङ्गव ॥११॥

हे कुरुपुङ्गव ! इन दोनों का प्रथम तो पाण्डवों से सम्बन्ध है, दूसरे ये स्वयं बल और पराक्रम से सम्पन्न है । ये आर्यों के आचरण से सुशोभित, महाधनुर्धर एवं स्नेह और पराक्रमसे उज्ज्वल हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी कारण के आ जाने पर सारे ही मनुष्य महा-भुज-वाले वीर या कायर हो जाते हैं ॥१०-११॥

एकायनगतावेतौ पार्थिवौ दृढधन्विनौ ।
प्राणांस्त्यक्त्वा परं शक्त्या घट्टितारौ परन्तप ॥१२॥

हे परन्तप ! इन दोनों राजाओं का एक ही स्वार्थ आ पड़ा है। ये दोनों महीपाल बड़े दृढ़ धनुषके धारण करने वाले हैं। ये अपने प्राणों को छोड़ कर सम्पूर्ण शक्ति के साथ तुमसे भिड़ जावेंगे।

पृथगक्षौहिणीभ्यां तावुभौ संयति दारुणौ ।
सम्बन्धिभावं रक्षन्तौ महत्कर्म करिष्यतः ॥१३॥

इन दोनों राजाओं के पास पृथक् २ एक अक्षौहिणी सेना है। ये दोनों ही युद्ध में बड़े दारुण हैं। ये अपने सम्बन्ध की रक्षा के निमित्त घोर युद्ध करने में तत्पर होंगे ॥१३॥

लोकवीरौ महेष्वासौ त्यक्तात्मानौ च भारत ।
प्रत्ययं परिरक्षन्तौ महत्कर्म करिष्यतः ॥१४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि
सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७०॥

हे भारत ! ये महाधनुषधारी, लोक प्रशंसित वीर राजा हैं। इनको इस युद्ध में अपने प्राणों की भी अपेक्षा (परवाह) नहीं है। ये अपने विश्वास और वचनकी रक्षा करते हुए घमसान युद्ध करेंगे।

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्व में पाण्डवों के रथियों की गणना का एक सौ सत्तरवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ इकत्तरवां अध्याय

भीष्म उवाच—

पञ्चालराजस्य सुतो राजन्परपुरञ्जयः ।
शिखण्डी रथमुख्यो मे मतः पार्थस्य भारत ॥१॥

भीष्म कहने लगे—हे भरत-वंश-श्रेष्ठ! राजन्! दुर्योधन! पञ्चालराज द्रुपद का पुत्र शिखण्डी भी, शत्रुओं के नगरों का विजेता और राजा युधिष्ठिर की सेना का मुख्य महारथी हैं ॥१॥

एष योत्स्यति संग्रामे नाशयन्पूर्वसंस्थितम् ।
परं यशो विप्रथयंस्तव सेनासु भारत ॥२॥

हे भारत! यह अपने पूर्वके स्वभाव या चिह्नों को नाश करके युद्ध में इतना पराक्रम दिखावेगा, जिससे तुम्हारी सेना में इसका यश फैलता चला जावेगा ॥ २ ॥

एतस्य बहुलाः सेनाः पञ्चालाश्च प्रभद्रकाः ।
तेनाऽसौ रथवंशेन महत्कर्म करिष्यति ॥३॥
धृष्टद्युम्नश्च सेनानीः सर्वसेनासु भारत ।
मतो मेऽतिरथो राजन्द्रोणशिष्यो महारथः ॥४॥

इसके पास पाञ्चाल और प्रभद्रकों की बहुत विशाल सेना है। यह इन वीरों के समूहके साथ युद्धमें महान् कर्म करके दिखावेगा। हे भारत! सारी सेनाओं का सबसे बड़ा सेनापति धृष्टद्युम्न बनाया गया है। मैं इसको अतिरथी मानता हूं। यह महारथी भी द्रोणाचार्य का ही शिष्य है ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एष योत्स्यति संग्रामे सूदयन्वै परान्रणे ।
भगवानिव संक्रुद्धः पिनाकी युगसंक्षये ॥५॥

यह रण में शत्रुओं का नाश करता हुआ, इस भांति घमसान युद्ध करेगा-जैसे प्रलयके समय भगवान् रुद्र कुपित हो रहे हो । ५॥

एतस्य तद्रथानीकं कथयन्ति रणप्रियाः ।
बहुत्वात्सागरप्रख्यं देवानामिव संयुगे ॥६॥

इसकी रथी और महारथियों की सेना को विशालता को देख कर रण के प्रेमी वीर समुद्र के सदृश समझते हैं । यह सेना देवों की सी सेना प्रतीत होती है ॥ ६ ॥

क्षत्रधर्मा तु राजेन्द्र मतो मेऽर्धरथो नृप ।
धृष्टद्युम्नस्य तनयो बाल्यान्नाऽतिकृतश्रमः ॥७॥

हे राजेन्द्र ! धृष्टद्युम्न के पुत्र क्षत्र-धर्मा ने युद्ध-कला में अधिक श्रम नहीं किया है । वह अभी बच्चा है, इससे इसको अर्धरथी ही समझना चाहिए ॥ ७ ॥

शिशुपालसुतो वीरश्चेदिराजो महारथः ।
धृष्टकेतुर्महेष्वासः सम्बन्धी पाण्डवस्य ह ॥८॥
एष चेदिपतिः शूरः सह पुत्रेण भारत ।
महारथानां सुकरं महत्कर्म करिष्यति ॥९॥

चेदिदेश का अधिपति, शिशुपाल का पुत्र, बड़ा वीर एवं महारथी है । यह धनुर्धर पाण्डवों का सम्बन्धी भी है । यह चेदिराज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धृष्टकेतु अपने पुत्र के साथ बड़ा वीर है। हे भारत ! यह भी महारथियों के योग्य, युद्धकर्म को अवश्य करके दिखादेगा ॥९॥

क्षत्रधर्मरतो मह्यं मतः परपुरञ्जयः ।
क्षत्रदेवस्तु राजेन्द्र पाण्डवेषु रथोत्तमः ॥१०॥

हे राजेन्द्र ! शत्रुओं के पुरों का विजेता, क्षत्रधर्म में निरत, राजा क्षत्रदेव भी पाण्डवों का उत्तम रथी है ॥ १० ॥

जयन्तश्चाऽमितौजाश्च सत्यजिच्च महारथः ।
महारथा महात्मानः सर्वे पाञ्चालसत्तमाः ॥११॥
योत्स्यन्ते समरे तात संरब्धा इव कुञ्जराः ।

जयन्त, अमितौजा और महारथी सत्यजित, ये सारे ही पाञ्चाल वीर, महात्मा और महारथी हैं। हे तात ! ये युद्ध में क्रुद्ध हुए हाथियों की तरह युद्ध करने वाले हैं ॥ ११ ॥

अजो भोजश्च विक्रान्तौ पाण्डवार्थे महारथौ ॥१२॥
योत्स्येते बलिनौ शूरौ परं शक्त्या क्षयिष्यतः ।

अज और भोज—ये दोनों महारथी भी पाण्डवों के निमित्त पराक्रम करने में उत्सुक हो रहे हैं। ये बलवान, शूरवीर अपनी सम्पूर्ण शक्ति से युद्ध और सेना का नाश करेंगे ॥१२॥

शीघ्रास्त्राश्चित्रयोद्धारः कृतिनो दृढविक्रमाः ॥१३॥
केकयाः पञ्च राजेन्द्र भ्रातरो दृढविक्रमाः ।
सर्वे चैव रथोदाराः सर्वे लोहितकध्वजाः ॥१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजेन्द्र ! शीघ्र अस्त्र के चलाने और विचित्र ढंग से युद्ध करने वाले पांचों भाई केकय राजकुमार दृढ़ पराक्रमी हैं। ये सारे उदार रथी और लाल ध्वजाधारी हैं ॥१३-१४॥

काशिकः सुकुमारश्च नीलो यश्चाऽपरो नृप ।
सूर्यदत्तश्च शङ्खश्च मदिराश्वश्च नामतः ॥१५॥
सर्व एव रथोदाराः सर्वे चाऽऽहवलक्षणाः ।
सर्वास्त्रविदुषः सर्वे महात्मानो मता मम ॥१६॥

हे नृप ! काशिक, सुकुमार, नील, सूर्यदत्त, शङ्ख, मदिराश्व— ये भी पांचों राजा उदार रथी हैं। ये सारे, युद्धों के दावपेंचों के समझने वाले, अस्त्र विद्या में कुशल और महात्मा हैं ॥१५-१६॥

वार्धक्षेमिर्महाराज मतो मम महारथः ।
चित्रायुधश्च नृपतिर्मतो मे रथसत्तमः ॥१७॥
स हि संग्रामशोभी च भक्तश्चापि किरीटिनः ।

हे महाराज ! राजा वर्धक्षेम का पुत्र वार्धक्षेमि भी महारथी माना जाता है। राजा चित्रायुध भी रथियों में उत्तम हैं। यह संग्राम में बड़ा ही सुशोभित होने वाला अर्जुन का भक्त है ॥१७॥

चेकितानः सत्यधृतिः पाण्डवानां महारथौ ।
द्वाविमौ पुरुषव्याघ्रौ रथोदारौ मतौ मम ॥१८॥

चेकितान और सत्यधृति भी पाण्डवों के महारथी हैं। ये दोनों महानुभाव, उदार रथि-प्रवर हैं ॥१८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याघ्रदत्तश्च राजेन्द्र चन्द्रसेनश्च भारत ।
मतौ मम रथोदारौ पाण्डवानां न संशयः ॥१९॥

हे राजेन्द्र ! भारत ! व्याघ्रदत्त, चन्द्रसेन, पाण्डवों के उदार महारथी हैं। इसमें सन्देह नहीं है ॥१९॥

सेनाबिन्दुश्च राजेन्द्र क्रोधहन्ता च नामतः ।
यः समो वासुदेवेन भीमसेनेन वा विभो ॥२०॥
स योत्स्यति हि विक्रम्य समरे तव सैनिकैः ।

हे राजेन्द्र ! सेनाबिन्दु या क्रोधहन्ता—पराक्रम में श्रीकृष्ण और भीमसेन के सदृश है। यह भी बड़े, पराक्रम से तुम्हारी सेना के साथ युद्ध करने में तत्पर होगा ॥२०॥

मां च द्रोणं कृपं चैव यथा सम्मन्यते भवान् ॥२१॥
तथा स समरश्लाघी मन्तव्यो रथसत्तमः ।

आप जैसा मुझे, द्रोण और कृप को मानते हो—उसी तरह का युद्ध में प्रशंसा पाने वाले इस महारथी सेनाबिन्दु को समझो।

काश्यः परमशीघ्रास्त्रः श्लाघनीयो नरोत्तमः ॥२२॥
रथ एकगुणो मह्यं ज्ञेयः परपुरञ्जयः ।

शत्रुओं के पुर का विजेता, सर्व श्रेष्ठ काशिराज, मनुष्यों में उत्तम और शीघ्र अस्त्र चलाने वाला है। मैं इसको रथियों में उत्तम समझता हूँ ॥२२॥

अयं च युधि विक्रान्तो मन्तव्योऽष्टगुणो रथः ॥२३॥
सत्यजित्समरश्लाघी द्रुपदस्याऽऽत्मजो युवा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गतः सोऽतिरथत्वं हि धृष्टद्युम्नेन सम्मितः ॥२४॥
पाण्डवानां यशस्कामः परं कर्म करिष्यति ।

युद्ध में प्रशंसा पाने वाला, महापराक्रमी, सत्यजित् आठ महारथियों के समान है। यह द्रुपद का पुत्र और युवावस्थाधारी है। यह धृष्टद्युम्न के तुल्य ही है। इससे इसको भी अतिरथी ही समझना चाहिए। यह पाण्डवों के यश की कामना करने वाला है, जो भयङ्कर युद्ध करेगा ॥२३-२४॥

अनुरक्तश्च शूरश्च रथोऽयमपरो महान् ॥२५॥
पाण्ड्यराजो महावीर्यः पाण्डवानां धुरन्धरः ।
दृढधन्वा महेष्वासः पाण्डवानां महारथः ॥२६॥

यह दूसरा रथिश्रेष्ठ है, जो शूरवीर और पाण्डवों का प्रेमी है। यह महापराक्रमी पाण्ड्यराज पाण्डवों के पक्ष का धारण करने वाला है। यह बड़ा दृढ़ धनुष का धारण करने वाला, महाधनुर्धर, पाण्डवों का महारथी है ॥२६॥

श्रेणिमान्कौरवश्रेष्ठ वसुदानश्च पार्थिवः ।
उभावेतावतिरथौ मतौ परपुरञ्जयौ ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७१॥

हे कौरव-श्रेष्ठ! श्रेणिमान् और राजा वसुदान—ये दोनों भी शत्रुओं के पुर के विजेता और अतिरथी हैं ॥२७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्व में पाण्डवों के रथियों की गणना का एक सौ इकहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ बहत्तरवां अध्याय

भीष्म उवाच—

रोचमानो महाराज पाण्डवानां महारथः।
योत्स्यतेऽमरवत्संख्ये परसैन्येषु भारत ॥१॥

भीष्म बोले—हे भरतवंशश्रेष्ठ, महाराज! पाण्डवों की सेना में एक रोचमान नामक और महारथी है, जो शत्रु सेना से युद्ध में देवों के सदृश युद्ध करेगा ॥१॥

पुरुजित्कुन्तिभोजश्च महेष्वासो महाबलः।
मातुलो भीमसेनस्य स च मेऽतिरथो मतः ॥२॥

महाधनुर्धर और महाबली, पुरुजित् और कुन्तिभोज, भीमसेन के मातुल (मामा) हैं, जो अतिरथी माने जाते हैं ॥२॥

एष वीरो महेष्वासः कृती च निपुणश्च ह।
चित्रयोधी च शक्तश्च मतो मे रथपुङ्गवः ॥३॥

यह महाधनुर्धर युद्ध विद्या में कुशल और अनुभवी है। यह विचित्र ढंग से युद्ध-कर्ता और रथिश्रेष्ठ है ॥३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स योत्स्यति हि विक्रम्य मघवानिव दानवैः ।
योधा ये चाऽस्य विख्याताः सर्वेयुद्धविशारदाः ॥४॥

यह भी दानवों से इन्द्र की भाँति पराक्रम करके युद्ध करेगा। इसके जितने योद्धा हैं, वे सब विख्यात और युद्ध विद्या के विशारद हैं ॥४॥

भागिनेयकृते वीरः स करिष्यति सङ्गरे ।
सुमहत्कर्म पाण्डूनां स्थितः प्रियहिते रतः ॥५॥

यह वीर भी अपने भानजे पाण्डवों के हित में तत्पर होकर युद्ध में महान् कर्म करके दिखावेगा ॥५॥

भैमसेनिर्महाराज हैडिम्बो राक्षसेश्वरः ।
मतो मे बहुमायावी रथयूथपयूथपः ॥६॥

हे महाराज ! हिडिम्बा राक्षसी से उत्पन्न राक्षसेश्वर एक घटोत्कच है, जो बड़ा मायावी और रथियों के यूथों के यूथपतियों का भी मुख्य अधिपति है ॥६॥

योत्स्यते समरे तात मायावी समरप्रियः ।
ये चाऽस्य राक्षसा वीराः सचिवा वशवर्तिनः ॥७॥

हे तात ! यह मायावी भी युद्ध से बड़ा प्रेम करता है। यह बड़ा घमसान युद्ध मचावेगा एवं इसके साथ के वीर राक्षस मन्त्री भी इसी के अनुचर और महापराक्रमी हैं ॥७॥

एते चाऽन्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः ।
समेताः पाण्डवस्याऽर्थे वासुदेवपुरोगमाः ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार अनेक देश और राष्ट्रों के महीपाल, पाण्डवों के हित करने के लिए इकट्ठे हो रहे हैं। इनमें श्रीकृष्ण मुख्य हैं।।८।।

एते प्राधान्यतो राजन्पाण्डवस्य महात्मनः।
रथाश्चाऽतिरथाश्चैव ये चाऽन्येर्धरथा नृप ।।९।।

हे राजन्! मैंने महाबली पाण्डवों के प्रसिद्ध रथी, अतिरथी और अर्धरथियों के नाम गिनाए हैं।

नेष्यन्ति समरे सेनां भीमां यौधिष्ठिरीं नृप।
महेन्द्रेणेव वीरेण पाल्यमानां किरीटिना ।।१०।।

हे राजन्! ये ही महारथी, राजा युधिष्ठिर की भीषण सेना का सञ्चालन करेंगे। इस सारी सेना की इन्द्र के तुल्य पराक्रमी वीर अर्जुन, रक्षा करने वाले होंगे।।९-१०।।

तैरहं समरे वीर मायाविद्भिर्जयैषिभिः।
योत्स्यामि जयमाकांक्षन्नथवा निधनं रणे ।।११।।
वासुदेवं च पार्थं च चक्रगाण्डीवधारिणौ।
सन्ध्यागताविवाऽर्केन्दू समेष्येते रथोत्तमौ ।।१२।।

हे वीर! मैं इन विजयाभिलाषी मायावियों के साथ युद्ध करूंगा। मैं या तो विजयी हो जाऊंगा या रण में मृत्यु प्राप्त करूंगा। मेरा युद्ध श्रीकृष्ण और अर्जुन से होगा, जो चक्र और गाण्डीव धनुष के धारण करने वाले हैं। ये दोनों महारथि प्रवर सूर्य और चन्द्रमा की भांति मेरे सन्मुख युद्ध करने आवेंगे ।।१२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये चैव ते रथोदाराः पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
सहसैन्यानहं तांश्च प्रतीयां रणमूर्धनि ॥१३॥

इस तरह पाण्डवों की सेना के महारथी या सैनिक हैं, मैं उन सब सैनिकों के विरुद्ध रणाङ्गण में पराक्रम दिखाऊंगा ॥१३॥

एते रथाश्चाऽतिरथाश्च तुभ्यं यथाप्रधानं नृप कीर्तिता मया ।
तथाऽपरे येऽर्धरथाश्च केचित्तथैव तेषामपि कौरवेन्द्र ॥१४॥

हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! राजन् ! जिस प्रकार मैंने तुमसे तुम्हारे रथी, अतिरथी और अर्धरथियों का वर्णन किया, उसी तरह तुमको मैंने पाण्डवों के रथी, अतिरथी और अर्धरथी सुना दिए ॥१४॥

अर्जुनं वासुदेवं च ये चाऽन्ये तत्र पार्थिवाः ।
सर्वांस्तान्वारयिष्यामि यावद् द्रक्ष्यामि भारत ॥१५॥

हे भारत ! अर्जुन, श्रीकृष्ण तथा अन्य राजाओं को जितनी दूर तक मेरी दृष्टि पहुँचेगी—मैं रोकता रहूँगा ॥१५॥

पाञ्चाल्यं तु महाबाहो नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा प्रतियुध्यन्तमाहवे ॥१६॥

हे महाबाहो ! मैं पाञ्चालराज के पुत्र शिखण्डी को युद्ध करता हुआ देखकर भी उसका वध नहीं करूँगा, चाहे वह कितने ही बाण छोड़ कर मेरे साथ युद्ध करे ॥१६॥

लोकस्तं वेद यदहं पितुः प्रियचिकीर्षया ।
प्राप्तं राज्यं परित्यज्य ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संसार मेरी इस प्रसिद्ध घटना को जानता है, कि मैंने अपने पिता का प्रिय करने के लिए प्राप्त हुए राज्य का परित्याग और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया है ॥१७॥

चित्राङ्गदं कौरवाणामाधिपत्येऽभ्यषेचयम् ।
विचित्रवीर्यं च शिशुं यौवराज्येऽभ्यषेचयम् ॥१८॥

मैंने चित्राङ्गद को कौरवों का राजा और बालक विचित्रवीर्य को युवराज पद पर अभिषिक्त किया था ॥१८॥

देवव्रतत्वं विज्ञाप्य पृथिवीं सर्वराजसु ।
नैव हन्यां स्त्रियं जातु न स्त्रीपूर्वं कदाचन ॥१९॥

मैं पृथिवी भर के राजाओं में देवव्रत नाम से प्रसिद्ध हूँ। मैं किसी स्त्री या पूर्व जन्म की स्त्री का वध नहीं करूँगा ॥१९॥

स हि स्त्रीपूर्वको राजञ्शिखण्डी यदि ते श्रुतः ।
कन्या भूत्वा पुमाञ्जातो न योत्स्ये तेन भारत ॥२०॥

हे राजन् ! तुमने शायद सुना होगा—कि शिखण्डी पूर्वजन्म में स्त्री था। हे भारत ! यह कन्या होकर फिर पुरुष बना है—मैं इससे युद्ध नहीं करूंगा ॥२०॥

सर्वांस्त्वन्यान्हनिष्यामि पार्थिवान्भरतर्षभ ।
यान्समेष्यामि समरे न तु कुन्तीसुतान्नृप ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७२॥ रथातिरथसंख्यानपर्व समाप्तम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे भरतर्षभ ! राजन् ! मैं सारे सामने आने वाले राजाओं को मार गिराऊंगा—परन्तु युद्ध में सन्मुख आए हुए कुन्तीपुत्रों का वध नहीं कर सकूंगा ॥२१॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्व में पाण्डवों के रथियों की गणना का एक सौ बहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर रथातिरथसंख्यानपर्व भी समाप्त हो गया।

अथ अम्बोपाख्यानपर्व

एक सौ तेहत्तरवां अध्याय

दुर्योधन उवाच—

किमर्थं भरतश्रेष्ठ नैव हन्याः शिखण्डिनम् ।
उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा समरेष्वाततायिनम् ॥१॥
पूर्वमुक्त्वा महाबाहो पञ्चालान्सह सोमकैः ।
हनिष्यामीति गाङ्गेय तन्मे ब्रूहि पितामह ॥२॥

दुर्योधन ने कहा—हे भरत-वंश-श्रेष्ठ ! यह क्या बात है, जो शस्त्र हाथ में लेकर अपने विनाश करने के लिए आये हुए आततायी को युद्ध में देख कर भी उसका वध करना आप अनुचित समझ रहे हो। हे महाबाहो ! गाङ्गेय, आपने तो पूर्व में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतिज्ञा की थी, कि मैं पाञ्चालों के साथ सोमक वंशी क्षत्रियों का युद्ध में विनाश कर दूंगा। हे पितामह! अब आप कैसे कच्चे हो रहे हो—मुझे समझा कर कहो ॥१-२॥

भीष्म उवाच—

शृणु दुर्योधन कथां सहैभिर्वसुधाधिपैः।
यदर्थं युधि सम्प्रेक्ष्य नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम् ॥३॥

हे दुर्योधन! तुम इन सारे राजाओं के साथ उस कथा को सुन लो-जिसके कारण मैं युद्ध करने को उपस्थित शिखण्डी को देख कर भी उसका वध नहीं करूंगा ॥३॥

महाराजो मम पिता शान्तनुर्लोकविश्रुतः।
दिष्टान्तमाप धर्मात्मा समये भरतर्षभ ॥४॥
ततोऽहं भरतश्रेष्ठ प्रतिज्ञां परिपालयन्।
चित्राङ्गदं भ्रातरं वै महाराज्येऽभ्यषेचयम् ॥५॥

हे भरतर्षभ! मेरे पिता महाराज शान्तनु, लोक प्रसिद्ध थे। जब समय पर उन धर्मात्मा मेरे पिता शान्तनु का देहान्त हो गया, तो मैंने अपनी प्रतिज्ञा का परिपालन किया और राजसिंहासन पर अपने छोटे भाई चित्राङ्गद को बैठा दिया ॥४—५॥

तस्मिंश्च निधनं प्राप्ते सत्यवत्या मते स्थितः।
विचित्रवीर्यं राजानमभ्यषिञ्चं यथाविधि ॥६॥

जब चित्राङ्गद गन्धर्वों द्वारा युद्ध में मार डाला गया—तो मैंने अपनी माता सत्यवती की इच्छानुसार फिर छोटे भाई विचित्रवीर्य को राजसिंहासन पर विधिपूर्वक अभिषिक्त कर दिया ॥६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मयाऽभिषिक्तो राजेन्द्र यवीयानपि धर्मतः ।
विचित्रवीर्यो धर्मात्मा मामेव समुदैक्षत ॥७॥

हे राजेन्द्र ! यद्यपि मैंने धर्मानुसार अपने छोटे भाई को राजसिंहासन दे दिया, परन्तु वह धर्मात्मा विचित्रवीर्य भी सारे राज्य-कार्यों में मेरी ही प्रतीक्षा करता रहता था ॥७॥

तस्य दारक्रियां तात चिकीर्षुरहमप्युत ।
अनुरूपादिव कुलादित्येव च मनो दधे ॥८॥

हे तात ! अब मैंने उसके विवाह के लिए चित्त में विचार किया, कि इसका किसी अनुकूल कुल में विवाह करना चाहिए।

तथाऽश्रौषं महाबाहो तिस्रः कन्याः स्वयंवराः ।
रूपेणाऽप्रतिमाः सर्वाः काशिराजसुतास्तदा ॥
अम्बां चैवाऽम्बिकां चैव तथैवाऽम्बालिकामपि ॥९॥
राजानश्च समाहूताः पृथिव्यां भरतर्षभ ।
अम्बा जेष्ठाऽभवत्तासामम्बिका त्वथ मध्यमा ॥१०॥
अम्बालिका च राजेन्द्र राजकन्या यवीयसी ।
सोऽहमेकरथेनैव गतः काशिपतेः पुरीम् ॥११॥
अपश्यं ता महाबाहो तिस्रः कन्याः स्वलंकृताः ।
राज्ञश्चैव समाहूतान्पार्थिवान्पृथिवीपते ॥१२॥

हे महाबाहो ! इसी समय मैंने सुना, कि काशिराज की तीन कन्याएँ अपना स्वयम्बर कर रही हैं। ये तीनों ही रूप में अनुपम थी। हे भरतर्षभ ! अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका—इन तीनों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कन्याओं के नाम थे। इनके लिए काशिराज ने पृथिवी भर के राजा बुला भेजे। इन तीनों राजकन्याओं में अम्बा बड़ी, अम्बिका मध्यमा और अम्बालिका सब से छोटी थी। मैं भी अपना एक रथ लेकर काशिराजकी पुरी में पहुंच गया। हे महाबाहो! पृथिवी-पते! वहां मैंने अलङ्कारों से आभूषित उन तीनों राजकन्याओं और सारे राजा महाराजाओं को देखा ॥९-१२॥

ततोऽहं तान्नृपान्सर्वानाहूय समरे स्थितान्।
रथमारोपयाञ्चक्रे कन्यास्ता भरतर्षभ ॥१३॥

हे भरतर्षभ! इसके अनन्तर मैंने सारे राजाओं को युद्ध के लिए ललकारा और तीनों कन्याओं को रथ में बैठाकर चल दिया।

वीर्यशुल्काश्च ता ज्ञात्वा समारोप्य रथं तदा।
अवोचं पार्थिवान्सर्वानहं तत्र समागतान् ॥
भीष्मः शान्तनवः कन्या हरतीति पुनः पुनः ॥१४॥
ते यतध्वं परं शक्त्या सर्वे मोक्षाय पार्थिवाः।
प्रसह्य हि हराम्येष मिषतां वो नरर्षभाः ॥१५॥

उन कन्याओं का मूल्य तो पराक्रम ही था, यह देखकर मैंने उन सब कन्याओं को रथ में चढ़ा लिया। अब मैंने उस स्वयम्वर में आये हुए सारे राजाओं से कहा—हे महीपालो! मैं शान्तनु का पुत्र भीष्म इन तीनों राजकन्याओं को बल पूर्वक छीन कर ले जा रहा हूँ। अब तुम सब अपनी सारी शक्ति लगा कर इन राज-कन्याओं को मुझसे छुड़ा लो। हे नरर्षभो! मैं तुम्हारे देखते २ इन्हें बल-पूर्वक ले जा रहा हूँ-तुम जो कुछ कर सकते हो-करो ॥१५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततस्तेपृथिवीपालाः समुत्पेतुरुदायुधाः ।
योगो योग इति क्रुद्धाः सारथीनभ्यचोदयन् ॥१६॥

भीष्म की यह ललकार सुनकर सारे राजाओं ने शस्त्र निकाल लिए और सारथियों को आज्ञा दी, कि तुम लोग शीघ्र से शीघ्र रथों को जोड़ो ॥१६॥

ते रथैर्गजसङ्काशैर्गजैश्च गजयोधिनः ।
पुष्टैश्चाऽश्वैर्महीपालाः समुत्पेतुरुदायुधाः ॥१७॥

अब वे राजा, हाथियों के तुल्य ऊंचे रथ, हाथियों के सवार, हाथी और अश्वारोही पुष्ट अश्वों पर चढ़कर एवं शस्त्र निकाल कर भीष्म पर झपटे ॥१७॥

ततस्ते मां महीपालाः सर्व एव विशाम्पते ।
रथव्रातेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥१८॥

हे विशाम्पते ! अब उन सारे राजाओं ने अपने रथ समूह के साथ मुझे चारों ओर से घेर लिया ॥१८॥

तानहं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवारयम् ।
सर्वान्नृपांश्चाऽप्यजयं देवराडिव दानवान् ॥१९॥

मैंने भी उन सब राजाओं को अपने बाणों की वर्षा से घेर डाला एवं दानवों को इन्द्र की तरह उनको जीत लिया ॥१९॥

अपातयं शरैर्दीप्तैः प्रहसन्भरतर्षभ ।
तेषामापततां चित्रान्ध्वजन्हेमपरिष्कृतान् ॥२०॥
एकैकेन हि बाणेन भूमौ पातितवानहम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हयांस्तेषां गजांश्चैव सारथींश्चाऽप्यहं रणे ॥२१॥

हे भरतर्षभ ! मैं हंसता २ ही अपने दीप्त शरों से शत्रुओं को गिराने लगा। जो राजा मेरे सामने आते थे, मैं सुवर्ण से चित्रित उनकी विचित्र ध्वजाओं को एक ही बाण से काट गिराता था और इसी तरह उस रण में उनके अश्व, हाथी और सारथियों को गिराने लगा ॥२०-२१॥

ते निवृत्ताश्च भग्नाश्च दृष्ट्वा तल्लाघवं मम ।
अथाऽहं हास्तिनपुरमायां जित्वा महीक्षितः ॥२२॥

जब उन राजाओं ने मेरी इतनी तीव्र गति देखी, तो वे रणक्षेत्र छोड़ कर भाग निकले। मैं उन राजाओं को जीत कर अपनी राजधानी हस्तिनापुर में चला आया ॥२२॥

ततोऽहं ताश्च कन्या वै भ्रातुरर्थाय भारत ।
तच्च कर्म महाबाहो सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७३॥

हे भारत ! मैंने इन तीनों राजकन्याओं का अपहरण अपने भाई विचित्रवीर्य के लिए किया था। हे महाबाहो ! मैंने अपने इस कर्म का सत्यवती से कथन किया ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में भीष्म द्वारा कन्याओं के अपहरण का एक सौ तेहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ चौहत्तरवां अध्याय

भीष्म उवाच—

ततोऽहं भरतश्रेष्ठ मातरं वीरमातरम् ।
अभिगम्योपसंगृह्य दाशेयीमिदमब्रुवम् ॥१॥
इमाः काशिपतेः कन्या मया निर्जित्य पार्थिवान् ।
विचित्रवीर्यस्य कृते वीर्यशुल्का हृता इति ॥२॥

भीष्म बोले—हे भरतश्रेष्ठ ! दाश-राज-कन्या, वीर पुत्रों के उत्पन्न करने वाली, अपनी माता सत्यवती के पास पहुँचकर और उसके चरणों का स्पर्श करके मैंने उससे कहा—हे माता ! ये तीनों काशिराज की पुत्री हैं, मैं सारे राजाओं को जीतकर विचित्रवीर्य के लिए इन तीनों राजकन्याओं को बल-पूर्वक छीन लाया हूं । इन कन्याओं को वही ग्रहण कर सकता था, जो अत्यन्त बलशाली हो ।

ततो मूर्धन्युपाघ्राय पर्यश्रुनयना नृप ।
आह सत्यवती हृष्टा दिष्ट्या पुत्र जितं त्वया ॥३॥

नृप ! माता ने मेरा शिर प्रेम से सूंघा और उसकी आंखों में स्नेह के आंसू भर आए । वह प्रसन्न होकर बोली-हे पुत्र ! बड़े हर्ष की बात है; कि तू ने इस विजय को प्राप्त किया ॥३॥

सत्यवत्यास्त्वनुमते विवाहे समुपस्थिते ।
उवाच वाक्यं सव्रीडा ज्येष्ठा काशिपतेः सुता ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब माता सत्यवती की अनुमति से विवाह काल उपस्थित हुआ—तो लज्जा के साथ काशिराज की बड़ी पुत्री अम्बा कहने लगी।

भीष्म त्वमसि धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः।
श्रुत्वा च वचनं धर्म्यं मह्यं कर्तुमिहाऽर्हसि ॥५॥

हे भीष्म! तुम धर्म के जानने वाले और सम्पूर्ण शास्त्र के मर्म को समझते हो। मैं तुमसे धर्मानुसार वचन कहती हूँ, तुम उसको सुनकर जो कुछ कर्तव्य हो-वह करना ॥ ५ ॥

मया शाल्वपतिः पूर्वं मनसाऽभिवृतो वरः।
तेन चाऽस्मि वृता पूर्वं रहस्यविदिते पितुः ॥६॥

हे महाभाग! मैंने अपने मनसे प्रथम शाल्वपति को वर रखा था और उसने भी मेरे पिता के अज्ञान में मुझे स्वीकार कर लेने का वचन दे दिया था ॥ ६ ॥

कथं मामन्यकामां त्वं राजधर्ममतीत्य वै।
वासयेथा गृहे भीष्म कौरवः सन्विशेषतः ॥७॥

जब मैं अन्य की अभिलाषा करती हूँ तो तुम उत्तम कुरुवंश में उत्पन्न होकर राजनीति के विरुद्ध मुझे अपने घर में कैसे रख सकते हो ॥ ७ ॥

एतद् बुद्ध्या विनिश्चित्य मनसा भरतर्षभ।
यत्क्षमं ते महाबाहो तदिहाऽऽरब्धुमर्हसि ॥८॥

हे भरतर्षभ! तुम अपने मनसे बुद्धि-पूर्वक इस विषय पर विचार कर लो और जो तुमको उचित प्रतीत हो- वही करो ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स मां प्रतीक्षते व्यक्तं शाल्वराजो विशाम्पते ।
तस्मान्मां त्वं कुरुश्रेष्ठ समनुज्ञातुमर्हसि ॥९॥

हे विशाम्पते ! शाल्वराज भी मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा—यह स्पष्ट है इन सब कारणों को सोचकर तुम्हें मुझे तो शाल्वराज के पास जाने की अनुमति दे देनी चाहिए ॥९॥

कृपां कुरु महाबाहो मयि धर्मभृतां वर ।
त्वं हि सत्यव्रतो वीर पृथिव्यामिति नः श्रुतम् ॥१०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि अंबावाक्ये चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७४॥

हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ ! महाबाहो ! तुम मुझ पर कृपा करो । हे वीर ! मैंने तो यह सुना है, कि तुम पृथिवी पर सत्यव्रत के पालन करने वाले हो ॥१०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में अम्बा के वाक्य का एक सौ चौहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकसौ पिचहत्तरवां अध्याय

भीष्म उवाच—

ततोऽहं समनुज्ञाप्य कालीं गन्धवतीं तदा ।
मन्त्रिणश्चर्त्विजश्चैव तथैव च पुरोहितान् ॥१॥
समनुज्ञासिषं कन्यामम्बां ज्येष्ठां नराधिप ।
अनुज्ञाता ययौ सा तु कन्या शाल्वपतेः पुरम् ॥२॥
वृद्धैर्द्विजातिभिर्गुप्ता धात्र्या चाऽनुगता तदा ।

भीष्म ने कहा—हे राजन् ! इसके अनन्तर मैंने अपनी माता सत्यवती, मन्त्री, ऋत्विक् और पुरोहितों से इस बात की आज्ञा लेकर ज्येष्ठ कन्या अम्बा को उसकी इच्छानुसार चले जाने की अनुमति दे दी । वह कन्या भी मेरी अनुमति पाकर शाल्वपति की राजधानी को चली गई । इस समय वृद्ध २ ब्राह्मण और उसकी धाय उसके साथ थी ॥१-२॥

अतीत्य च तमध्वानमासाद्य नृपतिं तथा ॥३॥
सा तमासाद्य राजानं शाल्वं वचनमब्रवीत् ।

अम्बा इतने लम्बे चौड़े मार्ग का अतिक्रमण करके राजा शाल्वपति के पास पहुंची और उससे यह वचन बोली ॥३॥

आगताऽहं महाबाहो त्वामुद्दिश्य महामते ॥४॥
तामब्रवीच्छाल्वपतिः स्मयन्निव विशाम्पते ।

हे महाबाहो ! महामते ! मैं तुम्हारे प्रेम से बद्ध थी, इससे तुम्हारे पास आ गई हूँ । हे राजन् ! यह सुनकर मुस्कुराता हुआ शाल्वपति अम्बा से बोला ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्वयाऽन्यपूर्वया नाऽहं भार्यार्थी वरवर्णिनि ॥५॥
गच्छ भद्रे पुनस्तत्र सकाशं भीष्मकस्य वै ।
नाऽहमिच्छामि भीष्मेण गृहीतां त्वां प्रसह्य वै ॥६॥

हे सुन्दरि ! अब तुम्हें दूसरे ने वर लिया-इससे मैं तुमको अपनी भार्या नहीं बना सकता हूँ । हे भद्रे ! तुम फिर उसी भीष्म के पास जाओ । जब तुम्हें भीष्म ने बल-पूर्वक छीन लिया, तो अब हम तुम्हें ग्रहण नहीं कर सकते हैं ॥५-६॥

त्वं हि भीष्मेण निर्जित्य नीता प्रीतिमती तदा ।
परामृश्य महायुद्धे निर्जित्य पृथिवीपतीन् ॥७॥

हे भद्रे ! तुम लोगों को भीष्म ने जीत कर ग्रहण किया है, इससे तुम्हारी उसमें अवश्य प्रीति हुई होगी ! उसने महायुद्ध में राजाओं को पराजित करके रथ में बैठाने के लिए तुम्हारा स्पर्श भी किया ही होगा ॥७॥

नाऽहं त्वय्यन्यपूर्वायां भार्यार्थी वरवर्णिनि ।
कथमस्मद्विधो राजा परपूर्वां प्रवेशयेत् ॥८॥

हे सुन्दरि ! जब तुम्हें अन्य ने ग्रहण कर लिया तो मैं फिर तुम्हें कैसे भार्या बनाने के लिए ग्रहण कर सकता हूं । मुझ जैसा धर्म भीरु राजा अन्य की विवाहित कन्या को कैसे ग्रहण कर सकता है ।

नारीं विदितविज्ञानः परेषां धर्ममादिशन् ।
यथेष्टं गम्यतां भद्रे मा त्वां कालोऽत्यगादयम् ॥९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं तो सारे धर्म के तत्वों का जानने वाला एवं अन्यों को धर्म का उपदेश देने वाला हूँ। हे भद्रे! तुम्हारी जहां पर इच्छा हो-तुम जाओ-अब तुमको समय व्यतीत नहीं करना चाहिए ॥८॥

अम्बा तमब्रवीद्राजन्ननङ्गशरपीडिता।
नैवं वद महीपाल नैतदेव कथञ्चन ॥१०॥

हे राजन्! शाल्वपति के प्रेमपाश में बंधी हुई अम्बा, उससे बोली-हे महीपाल! ऐसा न कहो-तुमको यह कहना कभी उचित नहीं है ॥१०॥

नाऽस्मि प्रीतिमती नीता भीष्मेणाऽमित्रकर्शन।
बलान्नीताऽस्मि रुदती विद्राव्य पृथिवीपतीन् ॥११॥

हे अमित्रकर्शन! मेरी भीष्म से कोई प्रीति नहीं थी। भीष्म ने तो सारे राजाओं को पराजित करके मेरा बलपूर्वक अपहरण किया था ॥११॥

भजस्व मां शाल्वपते भक्तां बालामनागसम्।
भक्तानां हि परित्यागो न धर्मेषु प्रशस्यते ॥१२॥

हे शाल्वपते! मैं तो तुमसे प्रेम करने वाली निरपराधिनी बाला हूँ, तुम मुझे स्वीकार करो। अपने भक्ति का त्याग करना धर्म-शास्त्र में प्रशंसित नहीं है ॥१२॥

साऽहमामन्त्र्य गाङ्गेयं समरेष्वनिवर्तिनम्।
अनुज्ञाता च तेनैव ततोऽहं भृशमागता ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने युद्ध में दुर्धर्ष भीष्म से तुम्हारे पास आने की अनुमति ले ली। उसने मुझे यहाँ आने की आज्ञा दे दी-इससे मैं बड़ी उत्सुकता के साथ तुम्हारे पास आई हूं ॥१३॥

न स भीष्मो महाबाहुर्मामिच्छति विशाम्पते।
भ्रातृहेतोः समारम्भो भीष्मस्येति श्रुतं मया ॥१४॥

हे विशाम्पते! महाबाहु भीष्म तो मुझे चाहता ही नहीं है। उसने तो यह सारा झगड़ा अपने भाई विचित्रवीर्य के लिए किया है-यह सुना जाता है ॥१४॥

भगिन्यौ मम ये नीते अम्बिकाम्बालिके नृप।
प्रादाद्विचित्रवीर्याय गाङ्गेयो हि यवीयसे ॥१५॥

हे नृप! इस गङ्गापुत्र भीष्म ने जो मेरी अन्य दो बहिनें अम्बिका और अम्बालिका का अपहरण किया था, वे भी उसने अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य को प्रदान कर दी ॥१५॥

यथा शाल्वपते नाऽन्यं वरं ध्यामि कथञ्चन।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र तथा मूर्धानमालभे ॥१६॥

हे शाल्वपते! पुरुष व्याघ्र! मैं तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी भी पति को नहीं चाहती हूं—इसके लिए मैं तुम्हारे शिर की शपथ खाती हूँ ॥१६॥

न चाऽन्यपूर्वा राजेन्द्र त्वामहं समुपस्थिता।
सत्यं ब्रवीमि शाल्वैतत्सत्येनाऽऽत्मानमालभे ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजेन्द्र ! मुझे किसी ने अब तक नहीं छुआ है। मैं अन्य की पत्नी बनकर तुम्हारे पास नहीं आई हूँ। हे शाल्व ! मैं यह सत्य कहती हूं और इसके लिए सत्य की शपथ भी खाती हूं ॥१७॥

भजस्व मां विशालाक्ष स्वयं कन्यामुपस्थिताम् ।
अनन्यपूर्वां राजेन्द्र त्वत्प्रसादाभिकांक्षिणीम् ॥१८॥

हे विशालाक्ष ! मैं कन्या हूं और तुम्हारे पास स्वयं उपस्थित हुई हूं। तुम मुझे प्रेम-पूर्वक स्वीकार करो। हे राजेन्द्र ! मुझे किसीने अपनी भार्या नहीं बनाया है। मैं तो तुम्हारे ही अनुग्रह की भिखारिनी हूं ॥१८॥

तामेवं भाषमाणां तु शाल्वः काशिपतेः सुताम् ।
अत्यजद्भरतश्रेष्ठ जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥१९॥

हे भरतश्रेष्ठ ! काशिपति की पुत्री अम्बा ने इतना कहा—परन्तु शाल्व ने फिर भी जीर्ण त्वचा (कांचुली) को सर्प की तरह अम्बा को छोड़ दिया ॥१९॥

एवं बहुविधैर्वाक्यैर्याच्यमानस्तया नृपः ।
नाऽश्रद्दधच्छाल्वपतिः कन्यायां भरतर्षभ ॥२०॥

हे भरतर्षभ ! उस अम्बा ने फिर भी अनेक भांति से याचना की; परन्तु उस कठोर शाल्वपति ने उस कन्या का विश्वास ही नहीं किया ॥२०॥

ततः सा मन्युनाऽऽविष्टा ज्येष्ठा काशिपतेः सुता ।
अब्रवीत्साश्रुनयना बाष्पविप्लुतया गिरा ॥२१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब काशिराज की ज्येष्ठ पुत्री अम्बा को आवेश आ गया और आंसुओं से गद्गद वाणी द्वारा रोती हुई वह शाल्व से कहने लगी ॥२१॥

त्वया त्यक्ता गमिष्यामि यत्र तत्र विशाम्पते ।
तत्र मे गतयः सन्तु सन्तः सत्यं यथा ध्रुवम् ॥२२॥

हे विशाम्पते ! शाल्व ! तू ने मुझे छोड़ दिया है, अब मैं दैववश कहीं भी जाऊंगी—परन्तु सज्जन मेरा आदर ही करेंगे, क्योंकि सत्य अटल होता है ॥२२॥

एवं तां भाषमाणां तु कन्यां शाल्वपतिस्तदा ।
परित्त्याज कौरव्य करुणं परिदेवतीम् ॥२३॥

हे कौरव्य ! अम्बा ने इस प्रकार बहुत कुछ कहा—परन्तु शाल्वपति ने बड़े करुण स्वर से रोती हुई अम्बा को अन्त में छोड़ ही दिया ॥२३॥

गच्छ गच्छेति तां शाल्वः पुनः पुनरभाषत ।
बिभेमि भीष्मात्सुश्रोणि त्वं च भीष्मपरिग्रहः ॥२४॥

शाल्व ने उसे बार २ यही कहा—कि तुम यहां से शीघ्र से शीघ्र चली जाओ । हे सुश्रोणि ! मैं तो भीष्म से डरता हूँ, क्योंकि तुम भीष्म की सम्पत्ति हो ॥२४॥

एवमुक्ता तु सा तेन शाल्वेनाऽदीर्घदर्शिना ।
निश्चक्राम पुराद्दीना रुदती कुररी यथा ॥२५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन् ! उस अदीर्घदर्शी शाल्व ने उसे अपने घर से निकाल दी। वह तपस्विनी, दीन अम्बा, कुररी पक्षी की तरह रोती चिल्लाती शाल्व की नगरी से चल पड़ी ॥२५॥

भीष्म उवाच—

निष्क्रामन्ती तु नगराच्चिन्तयामास दुःखिता ।
पृथिव्यां नाऽस्ति युवतिर्विषमस्थतरा मया ॥२६॥

बन्धुभिर्विप्रहीणाऽस्मि शाल्वेन च निराकृता ।
न च शक्यं पुनर्गन्तुं मया वारणसाह्वयम् ॥२७॥

भीष्म बोले—हे राजन् ! उस दुःखिनी अम्बा ने नगर से निकलते समय बड़ा सोच किया और कहने लगी—कि पृथिवी में अन्य कोई भी युवति राजकन्या मेरे तुल्य भाग्य हीन नहीं होगी। मेरा बन्धुओं से वियोग होगया। मुझे शाल्व ने भी छोड़ दिया। अब मैं फिर क्योंकर हस्तिनापुर जा सकती हूं ॥२६-२७॥

अनुज्ञाता तु भीष्मेण शाल्वमुद्दिश्य कारणम् ।
किं नु गर्हाम्यथाऽऽत्मानमथ भीष्मं दुरासदम् ॥२८॥

अथवा पितरं मूढं यो मेऽकार्षीत्स्वयंवरम् ।
मयाऽयं स्वकृतो दोषो याऽहं भीष्मरथात्तदा ॥२९॥

प्रवृत्ते दारुणे युद्धे शाल्वार्थं नाऽपतं पुरा ।
तस्येयं फलनिर्वृत्तिर्यदापन्नाऽस्मि मूढवत् ॥३०॥

मुझे शाल्व से प्रेम करने के कारण भीष्म ने भी यहां आने की अनुज्ञा दे दी। अब मैं इसको अपना दोष मानूं या दुर्धर्ष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीष्म को ही इसका अपराधी समझूँ, जो मुझे इस तरह छीन लाया या मेरा मूढ़ पिता ही अपराधी है, जिसने मेरे शाल्व के प्रेम को न देख कर मेरा स्वयम्वर रच डाला। बात तो यह है, कि यह सब कुछ मेरा ही दोष है, जो मैं दारुण युद्ध के समय शाल्व के प्रेम से भीष्म के रथसे नहीं कूद पड़ी। यह उसी भूलका परिणाम है, जो मैं किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ होकर विपत्ति में फँस गई हूं ॥२८-३०॥

धिग्भीष्मं धिक्च मे मन्दं पितरं मूढचेतसम् ।
येनाऽहं वीर्यशुल्केन पण्यस्त्रीव प्रवोदिता ॥३१॥

भीष्म और मेरे मूढ़ पिता को धिक्कार है, जिन्होंने पण्यस्त्री (मूल्य की स्त्री वेश्या) बनाकर पराक्रम के मूल्य में मेरा क्रय-विक्रय कर डाला ॥ ३१ ॥

धिङ् मां धिक् शाल्वराजानं धिग्धातारमथाऽपि वा ।
येषां दुर्नीतभावेन प्राप्ताऽस्म्यापदमुत्तमाम् ॥३२॥

मुझे भी धिक्कार है, जो मैं शाल्व जैसे अनात्मज्ञ से प्रेम करती हूं तथा शाल्व एवं सब के सूत्रधार विधाता को भी धिक्कार है, जिनकी इस दुर्नीति से मुझे इस आपत्ति में बुरी तरह फँसना पड़ा है॥३२॥

सर्वथा भागधेयानि स्वानि प्राप्नोति मानवः ।
अनयस्याऽस्य तु मुखं भीष्मः शान्तनवो मम ॥३३॥

यद्यपि मनुष्य अपने भाग्य के अनुसार सब कुछ पाता है, तो भी इस बुराई का स्रोत शान्तनु-पुत्र भीष्म ही है ॥३३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सा भीष्मे प्रतिकर्तव्यमहं पश्यामि साम्प्रतम् ।
तपसा वा युधा वापि दुःखहेतुः स मे मतः ॥३४॥

अब तो मुझे इस बात का भीष्म से ही बदला लेना चाहिए । इसके लिए चाहे मुझे तप करना पड़े या युद्ध करना पड़े-इसकी कुछ चिन्ता नहीं है, क्योंकि मेरे इस सारे दुःखका वही कारण है ।

को नु भीष्मं युधा जेतुमुत्सहेत महीपतिः ।
एवं सा परिनिश्चित्य जगाम नगराद्बहिः ॥३५॥

अब पृथिवी पर कौन ऐसा महीपति है, जो युद्ध में भीष्म को पराजित करदे । वह यह सोचती हुई नगर से बाहर निकली ॥३५॥

आश्रमं पुण्यशीलानां तापसानां महात्मनाम् ।
ततस्तामवसद्रात्रिं तापसैः परिवारिता ॥३६॥

अब रात होने वाली थी, वह कन्या पुण्यशील महात्मा तपस्वियों के आश्रम में पहुँची । तपस्वियों ने उसे घेर लिया और बड़ी सहानुभूति दिखाई ॥३६॥

आचख्यौ च यथावृत्तं सर्वमात्मनि भारत ।
विस्तरेण महाबाहो निखिलेन शुचिस्मिता ॥
हरणं च विसर्गं च शाल्वेन च विसर्जनम् ॥३७॥

हे महाबाहो ! भारत ! सुन्दरी अम्बा ने वह सारा वृत्तान्त-जो उसके साथ हुआ था-ज्यों का त्यों विस्तारसे कह सुनाया, कि किस तरह भीष्म ने उसका अपहरण किया—किस भांति शाल्व के पास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाने की भीष्म ने अनुमति प्रदान कर दी और कैसे फिर शाल्वपति ने उसको छोड़ दिया ॥३७॥

ततस्तत्र महानासीद् ब्राह्मणः संशितव्रतः ।
शैखावत्यस्तपोवृद्धः शास्त्रे चाऽऽरण्के गुरुः ॥३८॥

उस आश्रम में महा-तपस्वी, उपनिषदों के आचार्य-व्रतशील, महात्मा शैखावत्य रहते थे ॥३८॥

आर्तां तामाह स मुनिः शैखावत्यो महातपाः ।
निःश्वसन्तीं सतीं बालां दुःखशोकपरायणम् ॥३९॥

महातपस्वी महर्षि शैखावत्यने उस दुःख और शोकमें परायण, व्याकुल, निःश्वास लेती हुई उस सती अम्बा से कहा ॥३९॥

एवङ्गते तु किं भद्रे शक्यं कर्तुं तपस्विभिः ।
आश्रमस्थैर्महाभागे तपोयुक्तैर्महात्मभिः ॥४०॥

हे भद्रे ! महाभागे ! अब इस दशा में हम आश्रम वासी तपस्वी तेरी क्या सहायता कर सकते हैं—यह बताओ । यहां सारे महात्मा तप और व्रतादि से सम्पन्न है ॥४०॥

सा त्वेनमब्रवीद्राजन्क्रियतां मदनुग्रहः ।
प्राव्राज्यमहमिच्छामि तपस्तप्स्यामि दुश्चरम् ॥४१॥

हे राजन ! अम्बा इस मुनिराज से बोली—कि तुम मेरे ऊपर कृपा करो । मैं आपसे दीक्षा लेकर तप करना चाहती हूँ ॥४१॥

मयैव यानि कर्माणि पूर्वदेहे तु मूढया ।
कृतानि नूनं पापानि तेषामेतत्फलं ध्रुवम् ॥४२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने पूर्व जन्म में अज्ञान से कुछ पाप कर्म अवश्य किए हैं-यह उनका ही परिणाम ज्ञात होता है ॥४२॥

नोत्सहे तु पुनर्गन्तुं स्वजनं प्रति तापसाः ।
प्रत्याख्याता निरानन्दा शाल्वेन च निराकृता ॥४३॥

हे तपस्वियो ! अब मैं अपने स्वजनों के पास जाना नहीं चाहती हूं, क्योंकि शाल्वपति ने मेरा बड़ा निरादर के साथ परित्याग किया है । मैं इससे बहुत ही चिन्तित हूँ ॥४३॥

उपदिष्टमिहेच्छामि तापस्यं वीतकल्मषाः ।
युष्माभिर्देवसंकाशैः कृपा भवतु वो मयि ॥४४॥

हे पापरहित ! तपस्वियो ! मैं भी तपस्वियों के योग्य व्रतधारण करने को देव सदृश तुमसे उपदेश लेना चाहती हूं । आप लोग मुझ पर अनुग्रह करें ॥४४॥

स तामाश्वासयत्कन्यां दृष्टान्तागमहेतुभिः ।
सान्त्वयामास कार्यं च प्रतिजज्ञे द्विजैः सह ॥४५॥

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि शैखावत्यां-वासंवादे पंचसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७५॥

उस ऋषि ने भी शास्त्र, युक्ति और दृष्टान्त आदि देकर उस राजकन्या को सान्त्वना दी और तपोवनोचित कार्य करने का उपदेश दिया। उसने भी ब्राह्मण के साथ व्रताचरण की प्रतिज्ञा की ॥४५॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में शैखावत्य और अम्बा के सम्वाद का एक सौ पिचहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ छियत्तरवां अध्याय

भीष्म उवाच—

ततस्ते तापसाः सर्वे कार्यवन्तोऽभवंस्तदा ।
तां कन्यां चिन्तयन्तस्ते किं कार्यमिति धर्मिणः ॥१॥

भीष्म ने कहा---हे भारत ! इसके अनन्तर उन सारे धर्मात्मा तपस्वियों ने विचार किया, कि इस कन्या की सहायता के लिए क्या करना चाहिए ॥१॥

केचिदाहुः पितुर्वेश्म नीयतामिति तापसाः ।
केचिदस्मदुपालम्भे मतिं चक्रुर्हि तापसाः ॥२॥

किसी ने कहा—हे तपस्वियों ! तुम लोग इस कन्या को इसके पिता के यहां पहुंचा दो और कोई २ तपस्वी मेरी भी निन्दा करने लगे ॥२॥

केचिच्छाल्वपतिं गत्वा नियोज्यमिति मेनिरे ।
नेति केचिद्व्यवस्यन्ति प्रत्याख्याता हि तेन सा ॥३॥

कोई कहता था, कि शाल्व के पास जाकर इसके ग्रहण करने का अनुरोध करना चाहिए और कोई बोला, कि यह ठीक नहीं है, क्योंकि शाल्व ने इसका परित्याग कर दिया है ॥६॥

एवङ्गते तु किं शक्यं भद्रे कर्तुं मनीषिभिः ।
पुनरूचुश्च तां सर्वे तापसाः संशितव्रताः ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस दशा में वे सारे मुनि उस कन्या के कल्याण के लिए अनेक प्रकार से सोचने लगे। इसके अनन्तर फिर सारे व्रतशील तपस्वी उस कन्या से कहने लगे ॥४॥

अलं प्रव्रजितेनेह भद्रे शृणु हितं वचः।
इतो गच्छस्व भद्रं ते पितुरेव निवेशनम् ॥५॥

हे भद्रे! तुमको संन्यास नहीं लेना चाहिए। तुम प्रथम हमारा कल्याणकारी वचन सुनो। यहां से तुमको अपने पिता के घर पर चला जाना चाहिए ॥५॥

प्रतिपत्स्यति राजा स पिता ते यदनन्तरम्।
तत्र वत्स्यसि कल्याणि सुखं सर्वगुणान्विता ॥६॥

हे कल्याणि! तुम्हारा पिता यदि उचित समझेगा—तो तुमको किसी योग्य वर को प्रदान कर देगा। वहां तुम सब सुख के साधनों के साथ अपना जीवन व्यतीत करना ॥६॥

न च तेऽन्या गतिर्न्याय्या भवेद्भद्रे यथा पिता।
पतिर्वापि गतिर्नार्याः पिता वा वरवर्णिनि ॥७॥

हे भद्रे! पिता के पास जाने की बराबर तुम्हारे लिए अन्य सुन्दर मार्ग नहीं है। हे वरवर्णिनी! स्त्री का तो पति या पिता ही आश्रय होता है ॥७॥

गतिः पतिः समस्थाया विषमे च पिता गतिः।
प्रव्रज्या हि सुदुःखेयं सुकुमार्या विशेषतः ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पति के पास रहना स्त्री के लिए सब सुखों का साधन है। किसी प्रकार के संकट के पड़ने पर पिता के घर पर निवास करना उचित है। यह सन्यास ग्रहण करना तो बड़ा ही क्लेशदायक है, इस पर तुम एक सुकुमारी स्त्री हो ॥८॥

राजपुत्र्याः प्रकृत्या च कुमार्यास्तव भामिनि।
भद्रे दोषा हि विद्यन्ते बहवो वरवर्णिनि ॥९॥
आश्रमे वै वसन्त्यास्ते न भवेयुः पितुर्गृहे।

हे भद्रे! भामिनि! सुन्दरि! तुम राजपुत्री और स्वभाव से कोमल प्रकृति की कन्या हो। तुम्हारे वन में रहने से अनेक बुराइयों के उत्पन्न होने की अशङ्का है। पिता के घर पर इन दोषों के उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं है ॥९॥

ततस्त्वन्येऽब्रुवन्वाक्यं तापसास्तां तपस्विनीम् ॥१०॥
त्वामिहैकाकिनीं दृष्ट्वा निर्जने गहने वने।
प्रार्थयिष्यन्ति राजानस्तस्मान्मैवं मनः कृथाः ॥११॥

उस दुःखिनी कन्या से फिर अन्य तपस्वियों ने कहा—हे भद्रे! तुमको इस निर्जन वन में अकेली देखकर अनेक राजा तुम्हारे ग्रहण करने का अनुचित प्रयत्न करेंगे—इससे तुमको आश्रम में रहने का विचार छोड़ देना चाहिए ॥१०-११॥

अम्बोवाच—

न शक्यं काशिनगरं पुनर्गन्तुं पितुर्गृहान्।
अवज्ञाता भविष्यामि बान्धवानां न संशयः ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अम्बा बोली—हे तपस्वियो ! अब मैं फिर अपने पिता काशि-राज के भवन पर नहीं जा सकती हूं। वहां जाने पर मुझे अपने बान्धवों से भी अपमानित होना पड़ेगा--यह बिल्कुल ठीक बात है।

उषिताऽस्मि तथा बाल्ये पितुर्वेश्मनि तापसाः।
नाऽहं गमिष्ये भद्रं वस्तत्र यत्र पिता मम।
तपस्तप्तुमभीप्सामि तापसैः परिरक्षिता ॥१३॥

मैंने बाल्यावस्था में पिता के घर पर बड़े लाड़ चाव से निवास किया है। फिर अपमानित होकर कैसे रह सकती हूँ। हे मुनियो ! इसलिए मैं तो पिता के घर पर जा नहीं सकती हूं ॥१३॥

यथा परेऽपि मे लोके न स्यादेवं महात्ययः।
दौर्भाग्यं तापसश्रेष्ठास्तस्मात्तप्स्याम्यहं तपः ॥१४॥

अब तो तुम तपस्वी लोग ही मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हारी संरक्षता में तप करना चाहती हूं। जिससे परलोक में मेरा इस तरह का पतन न हो। हे तपस्वियो ! मेरे दुष्कर्मों की रेखाएँ शेष हैं। मैं उनका मार्जन करने के लिए अवश्य तपस्या करूंगी ॥१४॥

भीष्म उवाच—

इत्येवं तेषु विप्रेषु चिन्तयत्सु यथातथम्।
राजर्षिस्तद्वनं प्राप्तस्तपस्वी होत्रवाहनः ॥१५॥

भीष्म बोले— हे राजन् ! इस प्रकार वे सारे तपस्वी उस अम्बा के किसी हितकारी मार्ग का चिन्तन कर रहे थे, कि इसी बीच में वहां पर कोई राजर्षि, तपस्वी होत्रवाहन चला आया ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततस्ते तापसाः सर्वे पूजयन्ति स्म तं नृपम् ।
पूजाभिः स्वागताद्याभिरासनेनोदकेन च ॥१६॥

उस आश्रम निवासी सारे मुनियों ने उस राजर्षि होत्रवाहन तपस्वी की आसन, अर्घ्य-पाद्य एवं स्वागत आदि से बड़ी पूजा की।

तस्योपविष्टस्य सतो विश्रान्तस्योपशृण्वतः ।
पुनरेव कथां चक्रुः कन्यां प्रति वनौकसः ॥१७॥

जब शान्त होकर तपस्वी होत्रवाहन बैठ गए और कुछ सुनने की इच्छा की–तो उन वनवासी मुनियों ने उस अम्बा कन्या की सारी कथा उस राजर्षि को सुनाई ॥१७॥

अम्बायास्तां कथां श्रुत्वा काशिराजस्य भारत ।
राजर्षिः स महातेजा बभूवोद्विग्नमानसः ॥१८॥

हे भारत ! जब काशिराज की कन्या अम्बा की यह कथा सुनी, तो इसको सुनकर महातेजस्वी राजर्षि, महात्मा होत्रवाहन, बड़ा चिन्तित हुआ ॥१८॥

तां तथावादिनीं श्रुत्वा दृष्ट्वा च स महातपाः ।
राजर्षिः कृपयाऽऽविष्टो महात्मा होत्रवाहनः ॥१५॥

वह महातपस्वी, राजर्षि, महात्मा होत्रवाहन कन्या के इस भीष्म और शाल्व के सम्वाद को सुनकर बड़ा ही करुणातुर हो गया ॥१९॥

स वेपमान उत्थाय मातुस्तस्याः पिता तदा ।
तां कन्यामङ्कमारोप्य पर्याश्वासयत प्रभो ॥२०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे प्रभो ! यह तपस्वी होत्रवाहन, इस राजकन्या अम्बा के मातामह थे। वे कांपते २ उठ खड़े हुए और अम्बा को गोद में बैठाकर आश्वासन देने लगे ॥२०॥

स तामपृच्छत्कार्त्स्न्येन व्यसनोत्पत्तिमादितः ।
सा च तस्मै यथावृत्तं विस्तरेण न्यवेदयत् ॥२१॥

राजर्षि ने स्वयं कन्या से इस सारी विपत्ति का आरम्भ से वृतान्त पूछा। उस कन्या ने भी आरम्भ से ही वह सारा वृतान्त विस्तार से कह सुनाया ॥२१॥

ततः स राजर्षिरभूद् दुःखशोकसमन्वितः ।
कार्यं च प्रतिपेदे तन्मनसा सुमहातपाः ॥२२॥
अब्रवीद्वेपमानश्च कन्यामार्तां सुदुःखितः ।
मा गाः पितुर्गृहं भद्रे मातुस्ते जनको ह्यहम् ॥२३॥
दुःखं छिन्द्यामहं ते वै मयि वर्तस्व पुत्रिके ।
पर्याप्तं ते मनो वत्से यदेवं परिशुष्यसि ॥२४॥

यह सब कुछ सुन कर राजर्षि होत्रवाहन बड़ा दुःखी और उद्विग्न हुआ। उस महातपस्वी ने उस कन्या के विषय में मन से विचार कर कार्य निश्चित कर लिया। यह मुनि उस क्लेशित कन्या से कांपता २ दुःख पूर्वक कहने लगा—हे भद्रे ! तुम अब अपने पिता के न जाओ। मैं तेरा मातामह (नाना) हूँ। हे पुत्री ! मैं तेरे सारे दुःखों का विनाश करूँगा--तू मेरे साथ चल। हे वत्से ! इस दुःखद घटना से तुम्हारा मन बहुत क्षीण होगया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गच्छ मद्वचनाद्रामं जामदग्न्यं तपस्विनम् ।
रामस्ते सुमहद्दुःखं शोकं चैवाऽपनेष्यति ॥२५॥

हे पुत्री ! अब तुम मेरे वचन के अनुसार जमदग्नि-पुत्र परशुराम के पास जाओ । वही तुम्हारे इस महान् दुःख और शोक का नाश करेगा ॥२५॥

हनिष्यति रणे भीष्मं न करिष्यति चेद्वचः ।
तं गच्छ भार्गवश्रेष्ठं कालाग्निसमतेजसम् ॥२६॥
प्रतिष्ठापयिता स त्वां समे पथि महातपाः ।

यदि भीष्म ने परशुराम का वचन न माना, तो वह उसको रण में मार डालेगा । अब तुझे प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रचण्ड भार्गववंश श्रेष्ठ, परशुराम के पास ही जाना चाहिए । वही महा तपस्वी तुझे विपत्ति से निकाल कर सुख में संस्थापित कर सकता है ॥२६॥

ततस्तु सुस्वरं बाष्पमुत्सृजन्ती पुनः पुनः ॥२७॥
अब्रवीत्पितरं मातुः सा तदा होत्रवाहनम् ।

हे राजन् ! अब वह राजकन्या अम्बा उच्च स्वर से रोने लगी और अपने मातामह राजर्षि होत्रवाहन से बोली ॥२७॥

अभिवादयित्वा शिरसा गमिष्ये तव शासनात् ॥२८॥
अपि नामाऽद्य पश्येयमार्यं तं लोकविश्रुतम् ।
कथं च तीव्रं दुःखं मे नाशयिष्यति भार्गवः ॥
एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं यथा यास्यामि तत्र वै ॥२९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे मातामह ! मैं आपको शिर झुकाकर प्रणाम करके आपकी आज्ञानुसार परशुराम के पास चली जाऊँगी और उस लोक प्रसिद्ध जमदग्निपुत्र आर्य परशुराम को खोज कर वहां तक पहुँच भी जाऊंगी, परन्तु यह तो बताओ—कि वह भृगु-वंश-श्रेष्ठ, राम, मेरे दुःख को किस प्रकार नाश करेगा। मैं केवल यही सुनना चाहती हूँ। इसके अनन्तर मैं उसके पास चल दूंगी।२९।

होत्रवाहन उवाच—

रामं द्रक्ष्यसि भद्रे त्वं जामदग्न्यं महावने।
उग्रे तपसि वर्तन्तं सत्यसन्धं महाबलम् ॥३०॥

महेन्द्रं वै गिरिश्रेष्ठं रामो नित्यमुपास्ति ह।
ऋषयो वेदविद्वांसो गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥३१॥

होत्रवाहन बोला—हे पुत्री ! तू निर्जन वन में सत्यप्रतिज्ञ, परशुराम को तप करते हुए देखेगी। वह महाबली राम, बड़ा ही उग्र तप कर रहा है। यह महेन्द्र पर्वत पर अपना तप करता है और वहीं पर वेदज्ञ अनेक ऋषि और गन्धर्व अप्सरा आदि निवास करते हैं ॥३०-३१॥

तत्र गच्छस्व भद्रं ते ब्रूयाश्चैनं वचो मम।
अभिवाद्य च तं मूर्ध्ना तपोवृद्धं दृढव्रतम् ॥३२॥

हे भद्रे ! तुम वहां जाओ और मेरे इस वचन को उन्हें सुना देना। उस दृढ़-व्रत-धारी, तपस्वी को मस्तक झुका कर प्रणाम-पूर्वक सारी घटना को सुनाना ॥३२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रूयाश्चैनं पुनर्भद्रे यत्ते कार्यं मनीषितम् ।
मयि सङ्कीर्तिते रामः सर्वं तत्ते करिष्यति ॥३३॥
मम रामः सखा वत्से प्रीतियुक्तः सुहृच्च मे ।
जमदग्निसुतो वीरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥३४॥

हे भद्रे ! तू जो भी कुछ चाहती है, वह सब कुछ उनको बताना। जब तू मेरा नाम परशुराम से ले देगी—तो वह तेरा सब कुछ कार्य कर देगा। हे वत्से ! परशुराम मेरा सखा और प्रीति रखने वाला मित्र है। यह जमदग्नि-पुत्र, वीर परशुराम सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ है ॥३३-३४॥

एवं ब्रुवति कन्यां तु पार्थिवे होत्रवाहने ।
अकृतव्रणः प्रादुरासीद्रामस्याऽनुचरः प्रियः ॥३५॥

राजर्षि होत्रवाहन जब इस प्रकार उस राजकन्या अम्बा से कह रहे थे, तो उसी समय अकस्मात् परशुराम का प्रिय अनुचर अकृतव्रण वहां पर आ उपस्थित हुआ ॥३५॥

ततस्ते मुनयः सर्वे समुत्तस्थुः सहस्रशः ।
स च राजा वयोवृद्धः सृञ्जयो होत्रवाहनः ॥३६॥
ततो दृष्ट्वा कृतातिथ्यमन्योन्यं ते वनौकसः ।
सहिता भरतश्रेष्ठ निषेदुः परिवार्य तम् ॥३७॥
ततस्ते कथयामासुः कथास्तास्ता मनोरमाः ।
धन्या दिव्याश्च राजेन्द्र प्रीतिहर्षमुदा युताः ॥३८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसको देखकर वे सारे सहस्रों मुनि खड़े हो गए। हे भरत-श्रेष्ठ! सृञ्जयवंशोत्पन्न राजर्षि वृद्ध होत्रवाहन ने भी उसका स्वागत किया। जब उन वनवासियों ने एक दूसरे का स्वागत कर लिया, तो हे राजेन्द्र! वे सब मुनि लोग उसको घेर कर बैठ गए और बड़े हर्ष से युक्त होकर दिव्य एवं उत्तम २ मनोरम कथाएँ कहने लगे ॥ ३६-३८ ॥

ततः कथान्ते राजर्षिर्महात्मा होत्रवाहनः ।
रामं श्रेष्ठं महर्षीणामपृच्छदकृतव्रणम् ॥३९॥

जब बातचीत समाप्त हो गई, तो राजर्षि महात्मा होत्रवाहन ने महर्षियों में श्रेष्ठ, परशुराम के विषय में अकृतव्रण से प्रश्न किया।

क्व सम्प्रति महाबाहो जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
अकृतव्रण शक्यो वै द्रष्टुं वेदविदां वर ॥४०॥

हे महाबाहो! वेद के जानने वालों में श्रेष्ठ! अकृतव्रण! आज कल जमदग्नि-पुत्र प्रतापी परशुराम कहाँ पर है। उनसे यदि मिलना हो, तो वे कहां मिल सकते हैं ॥ ४० ॥

अकृतव्रण उवाच—

भवन्तमेव सततं रामः कीर्त्तयति प्रभो ।
सृञ्जयो मे प्रियसखो राजर्षिरिति पार्थिव ॥४१॥
इह रामः प्रभाते श्वो भवितेति मतिर्मम ।
द्रष्टाऽस्येनमिहाऽऽयान्तं तव दर्शनकांक्षया ॥४२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अकृतव्रण ने कहा—हे राजन्! महर्षि परशुराम बहुधा आपकी चर्चा करते हैं, कि सृञ्जय वंशोत्पन्न राजर्षि होत्रवाहन मेरा बड़ा ही प्रिय सखा है। परशुराम तो कल प्रातःकाल यहीं पर आ रहे हैं--मेरा ऐसा अनुमान है। तुम कल उन्हें यहीं पर देख लोगे, वे तुमसे मिलने को यहां आने का विचार ही कर रहे हैं ॥४१-४२॥

इयं च कन्या राजर्षे किमर्थं वनमागता।
कस्य चेयं तव च का भवतीच्छामि वेदितुम् ॥४३॥

हे राजर्षे! यह कन्या किसकी पुत्री और किस लिए वन में आई है। आपका इससे क्या सम्बन्ध है—मैं यह सारा वृत्तान्त जानना चाहता हूँ ॥४३॥

होत्रवाहन उवाच—

द्रौहित्रीयं मम विभो काशिराजसुता प्रिया।
ज्येष्ठा स्वयंवरे तस्थौ भगिनीभ्यां सहाऽनघ ॥४४॥
इयमम्बेति विख्याता ज्येष्ठा काशिपतेः सुता।
अम्बिकाम्बालिके कन्ये कनीयस्यौ तपोधन ॥४५॥

होत्रवाहन ने कहा—हे विभो! यह काशिराज की पुत्री और मेरी दौहित्री (दोहती) है। हे अनघ! अपनी दो बहिनों के साथ इसका स्वयम्बर था। इसका नाम अम्बा है। यह काशिराज की सब से बड़ी पुत्री है। हे तपोधन! इसकी दो छोटी बहिनों का नाम अम्बिका और अम्बालिका है ॥४४-४५॥

समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिपुर्यां ततोऽभवत्।
कन्यानिमित्तं विप्रर्षे तत्राऽऽसीदुत्सवो महान् ॥४६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततः किल महावीर्यो भीष्मः शान्तनवो नृपान् ।
अधिक्षिप्य महातेजास्तिस्रः कन्या जहार ताः ॥४७॥

हे ब्रह्मर्षे ! इन कन्याओं के ग्रहण करने के निमित्त काशीपुरी में क्षत्रिय राजाओं का बहुत बड़ा समूह इकट्ठा हो गया। जब यह महान् उत्सव हो रहा था, तो उसी समय महापराक्रमी महातेजस्वी शान्तनु-पुत्र भीष्म आया और सारे राजाओं को चेतावनी देकर इन तीनों कन्याओं का अपहरण करके चलता बना ॥ ४६-४७॥

निर्जित्य पृथिवीपालानथ भीष्मो गजाह्वयम् ।
आजगाम विशुद्धात्मा कन्याभिः सह भारतः ॥४८॥

हे महाभाग ! यह भरतवंश श्रेष्ठ, विशुद्धात्मा भीष्म सारे राजाओं को जीत कर उन कन्याओं के साथ हस्तिनापुर में पहुंचा।

सत्यवत्यै निवेद्याऽथ विवाहं समनन्तरम् ।
भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य समाज्ञापयत प्रभुः ॥४९॥

शक्तिशाली भीष्म ने इन कन्याओं को अपनी माता सत्यवती को समर्पित किया और अपने भाई विचित्रवीर्य के विवाह के लिए अनुमति दी ॥४९॥

तं तु वैवाहिकं दृष्ट्वा कन्येयं समुपार्जितम् ।
अब्रवीत्तत्र गाङ्गेयं मन्त्रिमध्ये द्विजर्षभ ॥५०॥
मया शाल्वपतिर्वीरो मनसाऽभिवृतः पतिः ।
न मामर्हसि धर्मज्ञ दातुं भ्रात्रेऽन्यमानसाम् ॥५१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे द्विजर्षभ ! इस विवाह की तय्यारी को देखकर इस कन्याने मन्त्रियों के मध्य में गङ्गापुत्र भीष्म से कहा–कि मैंने तो अपने मन से वीर शाल्वपति को पति रूप में वर रखा है । हे धर्मज्ञ ! जब मेरा मन अन्य का अभिलाषी है-तो इस दशा में तुमको मुझे अपने भाई को अर्पण करना उचित नहीं है ॥५०-५१॥

तच्छ्रुत्वा वचनं भीष्मः सम्मन्त्र्य सह मन्त्रिभिः ।
निश्चित्य विससर्जेमां सत्यवत्या मते स्थितः ॥५२॥

इतना सुनकर भीष्म ने अपने मन्त्रियों से सम्मति की और अपनी माता सत्यवती की अनुमति से इस कन्या को अपनी इच्छानुसार जाने की आज्ञा दे दी ॥५२॥

अनुज्ञाता तु भीष्मेण शाल्वं सौभपतिं ततः ।
कन्येयं मुदिता तत्र काले वचनमब्रवीत् ॥५३॥

भीष्म से विदा होकर यह कन्या सौभपति शाल्व के पास पहुँची और वहां इसने बड़ी प्रसन्नतासे समयानुसार यह वचन कहा ।

विसर्जिताऽस्मि भीष्मेण धर्मं मां प्रतिपादय ।
मनसाऽभिवृतः पूर्वं मया त्वं पार्थिवर्षभ ॥५४॥

हे पार्थिवर्षभ ! मैंने तुमको मनसे अपना पति बना रखा था । इस बात को मैंने भीष्म आदि को सुना दिया । उन्होंने मुझे तुम्हारे पास आने की आज्ञा दे दी । अब तुम मुझे धर्मानुसार ग्रहण करो ।

प्रत्याचख्यौ च शाल्वोऽस्याश्चारित्रस्याऽभिशङ्कितः ।
सेयं तपोवनं प्राप्ता तापस्येऽभिरता भृशम् ॥५५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शाल्वपति ने इस कन्या के ग्रहण करने का निषेध कर दिया। उसे इसके कन्यात्व के सुरक्षित रहने का सन्देह ही बना रहा। अब यह तपोवनमें चली आई है और उत्कट तपस्या करना चाहती है।

मया च प्रत्यभिज्ञाता वंशस्य परिकीर्त्तनात्।
अस्य दुःखस्य चोत्पत्तिं भीष्ममेवेह मन्यते ॥५६॥

जब इसने अपना वंश का वृत्तान्त सुनाया—तो मैंने इसे पहिचान लिया। मैं तो इसके इस सारे संकट की उत्पत्ति का कारण भीष्म को ही मानता हूं ॥५६॥

अम्बोवाच—

भगवन्नेवमेवेह यथाऽऽह पृथिवीपतिः।
शरीरकर्ता मातुर्मे सृञ्जयो होत्रवाहनः ॥५७॥

अम्बा बोली—हे भगवन्! जो पृथिवीपति, सृञ्जयवंशोत्पन्न राजर्षि होत्रवाहन ने कहा है-वह बिलकुल ठीक है। ये मेरी माता के पिता एवं मेरे मातामह हैं ॥५७॥

नह्युत्सहे स्वनगरं प्रतियातुं तपोधन।
अपमानभयाच्चैव व्रीडया च महामुने ॥५८॥

हे तपोधन! मैं अपने पिता के घर नहीं जा सकती हूं। हे महामुने! इसमें मुझे अपमानका भय है और लज्जा भी आती है।

यत्तु मां भगवान्रामो वक्ष्यति द्विजसत्तम।
तन्मे कार्यतमं कार्यमिति मे भगवन्मतिः ॥५९॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि होत्रवाहनांबासंवादे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे द्विजसत्तम ! अब जो मुझे भगवान् परशुराम कहेंगे-वही मेरा सर्वोत्तम कर्त्तव्य होगा-मैंने तो इस समय यही निश्चय किया है।

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें हयवाहन तथा अम्बाके सम्वादका एक सौ छियत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ सतहत्तरवां अध्याय

अकृतव्रण उवाच—

दुःखद्वयमिदं भद्रे कतरस्य चिकीर्षसि।
प्रतिकर्तव्यमबले तत्त्वं वत्से वदस्व मे ॥१॥

अकृतव्रण ने कहा-हे भद्रे ! वत्से ! अबले ! इस समय तुम्हारे ऊपर दो क्लेश इकट्ठे हो रहे हैं ! बताओ ? तुम किसका प्रतिकार करना चाहती हो ॥१॥

यदि सौभपतिर्भद्रे नियोक्तव्यो मतस्तव।
नियोक्ष्यति महात्मा स रामस्त्वद्धितकाम्यया ॥२॥
अथाऽऽपगेयं भीष्मं त्वं रामेणेच्छसि धीमता।
रणे विनिर्जितं द्रष्टुं कुर्यात्तदपि भार्गवः ॥३॥
सृञ्जयस्य वचः श्रुत्वा तव चैव शुचिस्मिते।
यदत्र ते भृशं कार्यं तदद्यैव विचिन्त्यताम् ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे भद्रे ! यदि तुम चाहती हो, कि सौभपति शाल्व को तुम्हारे विवाहके लिए तय्यार कर दिया जावे-तो वैसा भी भगवान् परशुराम कर सकते हैं वे महात्मा तुम्हारे हित की प्रेरणा से शाल्व को इसके लिए दबा देंगे और यदि तुम यह अभिलाषा करती हो, कि रणमें गङ्गापुत्र भीष्म को पराजित देखूं-तो हे शुचिस्मिते ! सृञ्जय-वंशोत्पन्न राजर्षि होत्रवाहन और तुम्हारे कथन से भृगु-वंश-श्रेष्ठ बुद्धिमान् परशुराम यह भी कर सकते हैं। अब जो तुमको करना हो उस पर विचार कर लो ॥२-४॥

अम्बोवाच—

अपनीताऽस्मि भीष्मेण भगवन्नविजानता ।
नाऽभिजानाति मे भीष्मो ब्रह्मञ्शाल्वगतं मनः ॥५॥

अम्बा बोली—हे भगवन् ! भीष्म ने मेरा अपहरण अज्ञान में कर डाला। वह यह नहीं जानता था, कि मैं शाल्वपति से विवाह करना चाहती हूं ॥५॥

एतद्विचार्य मनसा भवानेतद्विनिश्चयम् ।
विचिनोतु यथान्यायं विधानं क्रियतां तथा ॥६॥

इस सब विषय का आप विचार करके और बलाबल देखकर आप ही न्यायानुसार निश्चय करें, कि अब क्या करना चाहिए।

भीष्मे वा कुरुशार्दूले शाल्वराजेऽथवा पुनः ।
उभयोरेव वा ब्रह्मन्युक्तं यत्तत्समाचर ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे ब्रह्मन् ! कुरुवंशश्रेष्ठ भीष्म या शाल्वराज, इनमें जिसका प्रतिकार करना उचित है, उसी का तुम प्रयत्न करो ॥७॥

निवेदितं मया ह्येतद् दुःखमूलं यथातथम् ।
विधानं तत्र भगवन्कर्तुमर्हसि युक्तितः ॥८॥

हे भगवन् ! मैंने तो आप लोगों के सन्मुख अपने दुःख का ठीक २ मूल कारण रख दिया । अब आप ही इसका उचित उपाय करने में समर्थ हैं ॥८॥

अकृतव्रण उवाच—

उपपन्नमिदं भद्रे यदेवं वरवर्णिनि ।
धर्मं प्रति वचो ब्रूयाः शृणु चेदं वचो मम ॥९॥

अकृतव्रण ने कहा—हे भद्रे ! वरवर्णिनि ! तुमने जो धर्म का ध्यान रखकर यह वचन कहा—यह ठीक ही है । अब इस विषय में मेरा वचन सुनो ॥९॥

यदि त्वामापगेयो वै न नयेद्रजसाह्वयम् ।
शाल्वस्त्वां शिरसा भीरु गृह्णीयाद्रामचोदितः ॥१०॥

हे भीरु ! यदि भीष्म तुमको बल-पूर्वक हस्तिनापुर नहीं ले गया होता—तो परशुराम की प्रेरणा से शाल्व तुमको मस्तक झुकाकर ग्रहण कर लेता ॥१०॥

तेन त्वं निर्जिता भद्रे यस्मान्नीताऽसि भाविनि ।
संशयः शाल्वराजस्य तेन त्वयि सुमध्यमे ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे भद्रे ! भाविनि ! उसने तुमको जीत लिया और इसी से वह अपने साथ तुम्हें ले गया। हे सुमध्यमे ! इसीसे शाल्वराज को तुझ पर सन्देह खड़ा हो गया ॥१३॥

भीष्मः पुरुषमानी च जितकाशी तथैव च ।
तस्मात्प्रतिक्रिया युक्ता भीष्मे कारयितुं तव ॥१२॥

भीष्म भी अपने पराक्रम का अभिमानी और विजय का अभिलाषी है। इस समय तो भीष्म के ही गर्व को तोड़ने की उचित प्रतिक्रिया करनी चाहिए ॥१२॥

अम्बोवाच—

ममाऽप्येष सदा ब्रह्मन्हृदि कामोऽभिवर्त्तते ।
घातयेयं यदि रणे भीष्ममित्येव नित्यदा ॥१३॥

अम्बा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मेरे चित्त में भी इतना ही क्रोध भर रहा है, कि मैं किसी तरह युद्ध करके भीष्म का वध कर सकूँ ।

भीष्मं वा शाल्वराजं वा यं वा दोषेण गच्छसि ।
प्रशाधि तं महाबाहो यत्कृतेऽहं सुदुःखिता ॥१४॥

हे महाबाहो ! तुम लोग, भीष्म या शाल्व जिसको दोषी समझो-उसको दण्ड दो। मैं तो इन दोनों में से किसी के द्वारा अवश्य दुःखी की गई हूं ॥१४॥

भीष्म उवाच—

एवं कथयतामेव तेषां स दिवसो गतः ।
रात्रिश्च भरतश्रेष्ठ सुखशीतोष्णमारुता ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीष्म ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार की बातें करते २ उनका दिवस व्यतीत हो गया और सुखकारी शीतल, मन्द, सुगन्धि वायु से सुन्दर वह रात भी समाप्त हुई ॥१५॥

ततो रामः प्रादुरासीत्प्रज्वलन्निव तेजसा ।
शिष्यैः परिवृतो राजञ्जटाचीरधरो मुनिः ॥१६॥
धनुष्पाणिरदीनात्मा खड्गं बिभ्रत्परश्वधी ।
विरजा राजशार्दूल सृञ्जयं सोऽभ्ययान्नृपम् ॥१७॥

हे राजन् ! प्रातःकाल होते ही तेज से देदीप्यमान परशुराम वहां आकर उपस्थित हुए, जो शिष्य गणों से घिरे हुए, जटा चीर धारी, धनुर्धर, आत्माभिमानी, खड्ग और परशुधारी, रजोगुण रहित मुनि थे । हे राजशार्दूल ! वे आतेही सृञ्जय वंशोत्पन्न राजर्षि होत्रवाहन के पास पहुंचे ॥१६-१७॥

ततस्तं तापसा दृष्ट्वा स च राजा महातपाः ।
तस्थुः प्राञ्जलयो राजन्सा च कन्या तपस्विनी ॥१८॥

हे राजन् ! उन महामुनि परशुराम को उन तपस्वी और महातपा राजर्षि होत्रवाहन ने देखा । उनको देखकर सारे मुनि और वह कन्या हाथ जोड़कर खड़ी हो गई ॥१८॥

पूजयामासुरव्यग्रा मधुपर्केण भार्गवम् ।
अर्चितश्च यथान्यायं निषसाद सहैव तैः ॥१९॥

इन सब ने बड़ी सावधानी से भृगुवंशोत्पन्न परशुराम की मधुपर्क आदि से पूजा की । वह यथाविधि इनके सत्कार को ग्रहण करके उनके साथ ही वहां बैठ गया ॥१९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततः पूर्वव्यतीतानि कथयन्तौ स्म तावुभौ ।
आसातां जामदग्न्यश्च सृञ्जयश्चैव भारत ॥२०॥

हे भारत ! जब महर्षि परशुराम और राजर्षि होत्रवाहन बैठ गए, तो वे दोनों परस्पर पूर्वकाल की बातचीत करने लगे ॥२०॥

तथा कथान्ते राजर्षिर्भृगुश्रेष्ठं महाबलम् ।
उवाच मधुरं काले रामं वचनमर्थवत् ॥२१॥

जब बातचीत समाप्त हो गई—तो राजर्षि होत्रवाहन ने समय पर भृगुश्रेष्ठ महाबली परशुराम से इस प्रकार मधुर और सार्थक वचन कहा ॥२१॥

रामेयं मम दौहित्री काशिराजसुता प्रभो ।
अस्याः शृणु यथातत्त्वं कार्यं कार्यविशारद ॥२२॥

हे राम ! यह काशिराज की पुत्री और मेरी दौहित्री (दोहिती) राजकन्या अम्बा है । हे कार्य विशारद ! इस कन्या पर संकट उपस्थित हो रहा है—तुम उसको ध्यान से सुनो ॥२१

परमं कथ्यतां चेति तां रामः प्रत्यभाषत ।
ततः साऽभ्यवदद्रामं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥२३॥

परशुराम ने कहा—अच्छी बात है, तुम अपने कार्य को मुझे अच्छी तरह सुना दो । जब परशुराम ने इतना कहा—तो वह अग्नि के समान जाज्वलमान परशुराम से बोली ॥२३॥

ततोऽभिवाद्य चरणौ रामस्य शिरसा शुभौ ।
स्पृष्ट्वा पद्मदलाभाभ्यां पाणिभ्यामग्रतः स्थिता ॥२४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रुरोद सा शोकवती बाष्पव्याकुललोचना ।
प्रपेदे शरणं चैव शरण्यं भृगुनन्दनम् ॥२५॥

इसने प्रथम परशुराम के पवित्र चरणों का शिर से स्पर्श किया और कमल के समान कोमल हाथों से महर्षि के चरण छूकर उनके सन्मुख खड़ी हो गई। इसकी आंखों में पानी भर आया और शोकातुर होकर रोने लगी। यह शरणागत वत्सल भृगुनन्दन परशुराम की सहायता के लिए याचना करने लगी ॥२५॥

राम उवाच—

यथा त्वं सृञ्जयस्याऽस्य तथा मे त्वं नृपात्मजे ।
ब्रूहि यत्ते मनोदुःखं करिष्ये वचनं तव ॥२६॥

राम बोले--हे नृपकन्ये ! जैसी तुम इन महात्मा होत्रवाहन की दौहिती हो-वैसी ही मेरी भी हो। जो तेरे मन में दुःख हो-उसे सुनाओ--मैं उसको अवश्य नष्ट करूंगा ॥२६॥

अम्बोवाच—

भगवञ्शरणं त्वाऽद्य प्रपन्नाऽस्मि महाव्रतम् ।
शोकपङ्कार्णवान्मग्नां घोरादुद्धर मां विभो ॥२७॥

हे भगवन ! मैं तुम महाव्रती की शरण में प्राप्त हुई हूँ। तुम इस शोक रूपी कीचड़ से भरे हुए घोर संकट समुद्र से मेरा उद्धार करो ॥२७॥

भीष्म उवाच—

तस्याश्च दृष्ट्वा रूपं च वपुश्चाऽभिनवं पुनः ।
सौकुमार्यं परं चैव रामश्चिन्तापरोऽभवत् ॥२८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीष्म बोले—हे राजन् ! उसका रूप, नवीन शरीर और सुकुमारता देखकर परशुराम का चित्त बड़ा ही क्लेशित हुआ।

किमियं वक्ष्यतीत्येवं विममर्श भृगूद्वहः ।
इति दध्यौ चिरं रामः कृपयाऽभिपरिप्लुतः ॥२९॥

भृगुवंशश्रेष्ठ ! राम यही सोच रहा था, कि यह क्या कहेगी। दयाके वश में हुआ परशुराम उसके कथन की बड़े ध्यान से प्रतीक्षा कर रहा था ॥२९॥

कथ्यतामिति सा भूयो रामेणोक्ता शुचिस्मिता ।
सर्वमेव यथातत्त्वं कथयामास भार्गवे ॥३०॥

राम ने उस सुन्दर मुस्कानवाली अम्बा से फिर कहा—कि तुम अपना सारा वृतान्त सुनाती क्यों नहीं हो-शीघ्र सुनाओ-- इतना कहने पर उसने परशुराम से वह सारा वृतान्त कह सुनाया।

तच्छ्रुत्वा जामदग्न्यस्तु राजपुत्र्या वचस्तदा ।
उवाच तां वरारोहां निश्चित्याऽर्थविनिश्चयम् ॥३१॥

राजपुत्री के ये वचन सुनकर जमदग्नि-पुत्र परशुराम ने इस विषय में अपना कर्तव्य निश्चय करके उस सुन्दरी को सुनाया। राम उवाच—

प्रेषयिष्यामि भीष्माय कुरुश्रेष्ठाय भाविनि ।
करिष्यति वचो मह्यं श्रुत्वा च स नराधिपः ॥३२॥

राम बोले--हे भाविनी ! मैं अपना संदेश कुरुश्रेष्ठ भीष्म के पास भेजूंगा-- वह नरश्रेष्ठ मेरे वचन को सुनकर अवश्य उसको पूरा करेगा ॥३२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न चेत्करिष्यति वचो मयोक्तं जाह्नवीसुतः ।
धक्ष्याम्यहं रणे भद्रे सामात्यं शस्त्रतेजसा ॥३३॥

हे भद्रे ! यदि गङ्गापुत्र भीष्म ने मेरा वचन नहीं माना-तो मैं रण में उसके मन्त्रियों के साथ उसको अपने शस्त्र की अग्नि में भस्म कर डालूँगा ॥३३॥

अथवा ते मतिस्तत्र राजपुत्रि न वर्तते ।
यावच्छाल्वपतिं वीरं योजयाम्यत्र कर्मणि ॥३४॥

हे राजपुत्रि ! यदि तेरी इच्छा भीष्म के प्रति नहीं है-तो मैं वीर शाल्वपति को भी तुम्हारे ग्रहण करने को प्रेरित कर दूंगा ।

अम्बोवाच—

विसर्जिताऽहं भीष्मेण श्रुत्वैव भृगुनन्दन ।
शाल्वराजगतं भावं मम पूर्वं मनीषितम् ॥३५॥

अम्बा बोली–हे भृगुनन्दन ! भीष्म ने तो जब यह सुना, कि मेरा मन पूर्व से शाल्वराज पर आसक्त है, तो उसने मुझे शीघ्र ही उसके पास जाने की अनुमति दे दी ॥३५॥

सौभराजमुपेत्याऽहमवोचं दुर्वचं वचः ।
न च मां प्रत्यगृह्णात्स चारित्र्यपरिशङ्कितः ॥३६॥

मैंने शाल्वराज के पास जाकर कन्या के कथन के अयोग्य वचन भी कह दिया–तो भी उसने मेरे चरित्र पर शंका करके मेरे ग्रहण करने का निषेध कर दिया ॥३६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एतत्सर्वं विनिश्चित्य स्वबुद्ध्या भृगुनन्दन ।
यदत्रौपयिकं कार्यं तच्चिन्तयितुमर्हसि ॥३७॥

हे भृगुनन्दन ! तुम यह सब कुछ अपनी बुद्धि से निश्चित करके इस विषय में जो कुछ प्रतिकार करना है-उसका विचार करो ॥३७॥

मम तु व्यसनस्याऽस्य भीष्मो मूलं महाव्रतः ।
येनाऽहं वशमानीता समुत्क्षिप्य बलात्तदा ॥३८॥

मेरी सम्मति में तो इस सारे संकट का मूल कारण महाव्रती भीष्म है, जिसने मुझे रंगशाला से बल-पूर्वक उठाकर अपने वश (कब्जे) में कर लिया ॥३८॥

भीष्मं जहि महाबाहो यत्कृते दुःखमीदृशम् ।
प्राप्ताऽहं भृगुशार्दूल चराम्यप्रियमुत्तमम् ॥३९॥

हे महाबाहो ! अब तो आप भीष्म का ही वध करो-जिसके कारण मेरी यह दुर्दशा हुई है । हे भृगुशार्दूल ! मैं तो इसी से अपना बदला लेना चाहती हूँ ॥३९॥

स हि लुब्धश्च नीचश्च जितकाशी च भार्गव ।
तस्मात्प्रतिक्रिया कर्तुं युक्ता तस्मै त्वयाऽनघ ॥४०॥

हे भार्गव ! यह भीष्म, लुब्धक, नीच और केवल विजय का अभिलाषी है । हे अनघ ! इस दशा में तो तुमको भीष्मके विरुद्ध ही कार्यवाही करनी चाहिए ॥४०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एष मे क्रियमाणाया भारतेन तदा विभो ।
अभवद्धृदि सङ्कल्पो घातयेयं महाव्रतम् ॥४१॥

हे विभो ! जब इस भरतवंशोत्पन्न भीष्म ने मेरा अपहरण किया-उस समय भी मुझे मेरे हृदय में इस पर इतना ही क्रोध हुआ, कि मैं किसी प्रकार इस महाव्रती का वध कराऊं ॥४१॥

तस्मात्कामं ममाऽद्येमं रामं सम्पादयाऽनघ ।
जहि भीष्मं महाबाहो यथा वृत्रं पुरन्दरः ॥४२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि रामाम्बासंवादे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७७॥

हे राम ! अब आप मेरी इस कामना को सम्पूर्ण करो--हे महाबाहो ! वृत्रासुर को इन्द्र के तुल्य आप भी भीष्म के विनाश करने को तत्पर हो जाओ ॥४२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें राम और अम्बा के सम्वाद का एक सौ सतहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ अठहत्तरवां अध्याय

भीष्म उवाच—

एवमुक्तस्तदा रामो जहि भीष्ममिति प्रभो ।
उवाच रुदतीं कन्यां चोदयन्तीं पुनः पुनः ॥१॥

भीष्म ने कहा—हे प्रभो ! जब अम्बा ने परशुराम से भीष्म के मारने के लिए बार २ कहा-तो परशुराम भी भीष्म के मारण की बार २ प्ररेणा करने वाली, रोती हुई राजकन्या अम्बा से कहने लगे ॥१॥

काश्ये न कामं गृह्णामि शस्त्रं वै वरवर्णिनि ।
ऋते ब्रह्मविदां हेतोः किमन्यत्करवाणि ते ॥२॥

हे वरवर्णिनी ! काशिराज-पुत्री ! मैं तो अब ब्रह्मवादी मुनियों की रक्षा के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य के लिए शस्त्र ग्रहण करना नहीं चाहता हूं । अब तुम बताओ ? मैं तुम्हारी अन्य क्या सहायता कर सकता हूं ॥२॥

वाचा भीष्मश्च शाल्वश्च मम राज्ञि वशानुगौ ।
भविष्यतोऽनवद्याङ्गि तत्करिष्यामि मा शुच ॥३॥

हे राजपुत्री ! भीष्म और शाल्व दोनों ही मेरे वचन को मानने वाले हैं । हे सर्वाङ्गसुन्दरी ! तुम चिन्ता न करो--मैं तुम्हारे कार्य को करा दूंगा ॥ ३ ॥

न तु शस्त्रं ग्रहीष्यामि कथञ्चिदपि भाविनि ।
ऋते नियोगाद्विप्राणामेष मे समयः कृतः ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे भाविनि ! ब्राह्मणों की आज्ञा के बिना मैं शस्त्र तो किसी प्रकार ग्रहण कर नहीं सकता हूं-अब मेरी यही एक प्रतिज्ञा है।

अम्बोवाच—

मम दुःखं भगवता व्यपनेयं यतस्ततः।
तच्च भीष्मप्रसूतं मे तं जहीश्वर मा चिरम् ॥५॥

अम्बा बोली—हे महर्षे ! आपको मेरे दुःख का विनाश करना चाहिए और वह दुःख भीष्म के कारण उत्पन्न हुआ है। अब तुम उसका नाश करो—देर न लगाओ ॥५॥

राम उवाच—

काशिकन्ये पुनर्ब्रूहि भीष्मस्ते चरणावुभौ।
शिरसा वन्दनार्होऽपि ग्रहीष्यति गिरा मम ॥६॥

परशुराम बोले—हे काशिराज-कन्ये ! तुम कह क्या रही हो। भीष्म तुम्हारा वन्दनीय है, परन्तु वह भी मेरे वचन से तेरे दोनों चरणों को अपने मस्तक पर धारण कर लेगा ॥६॥

अम्बोवाच—

जहि भीष्मं रणे राम गर्जन्तमसुरं यथा।
समाहूतो रणे राम मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥
प्रतिश्रुतं च यदपि तत्सत्यं कर्तुमर्हसि ॥७॥

अम्बा ने कहा—हे राम ! ज्यों ही भीष्म तुमको रण में आने का आह्वान करे-त्योंही तुम गर्जते हुए असुर के तुल्य भीष्म का रण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में वध कर डालो। आपने मेरे दुःख निवृत्त करने की प्रतिज्ञा कर ली है। उसको सत्य करके दिखाओ ॥७॥

भीष्म उवाच—

तयोः संवदतोरेवं राजन्रामाम्बयोस्तदा।
ऋषिः परमधर्मात्मा इदं वचनमब्रवीत् ॥८॥

भीष्म ने कहा-हे राजन्! इस प्रकार परशुराम और अम्बा में बातचीत हो रही थी, कि उसी समय परम धर्मात्मा अकृतव्रण ऋषि यह वचन बोला ॥८॥

शरणागतां महाबाहो कन्यां न त्यक्तुमर्हसि।
यदि भीष्मो रणे राम समाहूतस्त्वया मृधे ॥९॥
निर्जितोऽस्मीति वा ब्रूयात्कुर्याद्वा वचनं तव।
कृतमस्या भवेत्कार्यं कन्याया भृगुनन्दन ॥१०॥
वाक्यं सत्यं च ते वीर भविष्यति कृतं विभो।

हे महाबाहो! राम! तुमको शरण में आई हुई इस कन्या का त्याग नहीं करना चाहिए। यदि आपने विनाशकारी युद्ध में भीष्म का आह्वान किया-तब वह या तो यह कहेगा, कि मैं हार चुका या तुम्हारे वचनों को मानेगा। हे भृगुनन्दन! इन दोनों प्रकार से इस कन्या का कार्य बन जावेगा। हे वीर! इस तरह तुम्हारे कहे हुए वचन भी सत्य सिद्ध हो जावेंगे ॥९-१०॥

इयं चापि प्रतिज्ञा ते तदा राम महामुने ॥११॥
जित्वा वै क्षत्रियान्सर्वान्ब्राह्मणेषु प्रतिश्रुता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

हे महामुने ! राम ! तुम्हारी तो यह प्रतिज्ञा ही है, जो सारे क्षत्रियों को जीत कर ब्राह्मणों के मध्य में की थी ॥११॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव रणे यदि ॥१२॥
ब्रह्मद्विड् भविता तं वै हनिष्यामीति भार्गव ।

हे भार्गव ! उस समय तुमने कहा था-कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कोई भी क्यों न हो-जो ब्रह्म-द्वेष करेगा--मैं उसका वध करे विना नहीं छोड़ूंगा ॥१२॥

शरणार्थे प्रपन्नानां भीतानां शरणार्थिनाम् ॥१३॥
न शक्ष्यामि परित्यागं कर्तुं जीवन्कथञ्चन ।

जो मनुष्य, शरण की इच्छा से भयभीत होकर शरण में आवेगा--मैं जीते जी उसका परित्याग नहीं करूंगा ॥१३॥

यश्च कृत्स्नं रणे क्षत्रं विजेष्यति समागतम् ॥१४॥
दीप्तात्मानमहं तं वै हनिष्यामीति भार्गव ।

हे भार्गव ! इसके अतिरिक्त आपने कहा था, कि जो क्षत्रिय सारे क्षत्रिय समाज का विजेता होगा-मैं उस देदीप्यमान तेजस्वी का भी वध करूंगा ॥१४॥

स एवं विजयी राम भीष्मः कुरुकुलोद्वहः ।
तेन युद्ध्यस्व संग्रामे समेत्य भृगुनन्दन ॥१५॥

हे भृगुनन्दन ! राम ! यह कुरु-कुल-श्रेष्ठ भीष्म सारे राजाओं का विजेता है । अब तुमको संग्राम में भीष्मसे भिड़कर युद्ध अवश्य करना चाहिए ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राम उवाच—

स्मराम्यहं पूर्वकृतां प्रतिज्ञामृषिसत्तम ।
तथैव च चरिष्यामि यथा साम्नैव लप्स्यते ॥१६॥

राम बोले—हे ऋषिसत्तम ! मुझे मेरी पूर्वकाल में की हुई प्रतिज्ञा का स्मरण है, परन्तु मैं तो उसी ढंग को स्वीकार करना चाहता हूँ, जिससे शान्ति से ही कार्य पूरा हो जावे ॥१६॥

कार्यमेतन्महद्ब्रह्मन्काशिकन्यामनोगतम् ।
गमिष्यामि स्वयं तत्र कन्यामादाय यत्र सः ॥१७॥

हे ब्रह्मन् ! काशिराज की कन्या का अभिलषित कार्य बड़ा कठिन है। मैं इस कन्या को लेकर भीष्म के पास स्वयं जाऊँगा।

यदि भीष्मो रणश्लाघी न करिष्यति मे वचः ।
हनिष्याम्येनमुद्रिक्तमिति मे निश्चिता मतिः ॥१८॥

रण का अभिमान रखने वाला भीष्म यदि मेरे वचन को नहीं मानेगा, तो फिर उस उद्दण्ड को मैं मारे विना नहीं छोड़ूंगा-यह मेरा निश्चित मत है ॥१८॥

न हि बाणा मयोत्सृष्टाः सज्जन्तीह शरीरिणाम् ।
कायेषु विदितं तुभ्यं पुरा क्षत्रियसङ्करे ॥१९॥

तुम जानते हो—कि मेरे छोड़े हुए बाण, प्राणियों के शरीर में लगते नहीं हैं और उनके प्राण निकल जाते हैं। यह तुमने पूर्वकाल में हुए क्षत्रियों के युद्ध में देख लिया है ॥१९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवमुक्त्वा ततो रामः सह तैर्ब्रह्मवादिभिः ।
प्रयाणाय मतिं कृत्वा समुत्तस्थौ महातपाः ॥२०॥

इतना कहकर महातपस्वी परशुराम, उन ब्रह्मवादी ब्रह्मर्षियों के साथ चलने को तय्यार होकर खड़े हो गए ॥२०॥

ततस्ते तामुषित्वा तु रजनीं तत्र तापसाः ।
हुताग्नयो जप्तजप्याः प्रतस्थुर्मज्जिघांसया ॥२१॥

उन तपस्वियों ने वह रात्रि तो वहीं पर व्यतीत की, फिर प्रातःकाल जप, हवन करके मेरे मारने की इच्छा से चल दिए ।

अभ्यगच्छत्ततो रामः सह तैर्ब्रह्मवादिभिः ।
कुरुक्षेत्रं महाराज कन्यया सह भारत ॥२२॥

हे महाराज ! भारत ! उस कन्या और ब्रह्मवादी मुनियों के साथ परशुराम कुरुक्षेत्र में पहुँचे ॥२२॥

न्यविशन्त ततः सर्वे परिगृह्य सरस्वतीम् ।
तापसास्ते महात्मानो भृगुश्रेष्ठपुरस्कृताः ॥२३॥

हे राजन् ! भृगु-वंश-श्रेष्ठ, परशुराम के साथ महात्मा, तपस्वी भी सरस्वती नदी के तट पर पहुँचे ॥२३॥

भीष्म उवाच—

ततस्तृतीये दिवसे सन्दिदेश व्यवस्थितः ।
कुरु प्रियं स मे राजन्प्राप्तोऽस्मीति महाव्रतः ॥२४॥

भीष्म बोले-हे राजन् ! उस नदीके तट पर स्थित होकर परशुराम मेरे पास तीसरे दिन संदेश लेकर पहुंचा, कि मैं व्रतशील

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परशुराम सरस्वती तट पर स्थित हूँ, तुमको मेरी अभिलाषा पूर्ण करनी चाहिए। मैं यहाँ तुम्हारे निमित्त ही आया हूँ ॥२४॥

तमागतमहं श्रुत्वा विषयान्तं महाबलम् ।
अभ्यगच्छं जवेनाऽऽशु प्रीत्या तेजोनिधिं प्रभुम् ॥२५॥

मैंने जब महाबली परशुराम का अपने देश में आना सुना—तो मैं शक्तिशाली तेजस्वी परशुराम के स्वागत के लिए शीघ्रता से चल पड़ा ॥२५॥

गां पुरस्कृत्य राजेन्द्र ब्राह्मणैः परिवारितः ।
ऋत्विग्भिर्देवकल्पैश्च तथैव च पुरोहितैः ॥२६॥

हे राजन् ! मैंने एक गौ अपने साथ ली और अनेक ब्राह्मण, देवों के सदृश ऋत्विक् और पुरोहितों के सहित गमन किया ॥२६॥

स मामभिगतं दृष्ट्वा जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
प्रतिजग्राह तां पूजां वचनं चेदमब्रवीत् ॥२७॥

जमदग्नि-पुत्र प्रतापी परशुराम ने वहां आए हुए मुझे देखा। उसने प्रथम मेरी पूजा ग्रहण की और पीछे यह वचन कहा ॥२७॥

राम उवाच—

भीष्म कां बुद्धिमास्थाय काशिराजसुता तदा ।
अकामेन त्वयाऽऽनीता पुनश्चैव विसर्जिता ॥२८॥

राम बोले—भीष्म ! तुम्हारे यह क्या मन में आई, जो तुमने काशिराज की पुत्री का निष्प्रयोजन अपहरण किया और फिर उसको निकाल दिया ॥२८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभ्रंशिता त्वया ह्रीयं धर्मादास्ते यशस्विनी ।
परामृष्टां त्वया हीमां को हि गन्तुमिहाऽर्हति ॥२९॥

हे भीष्म ! इस यशस्विनी को तू ने धर्म-मार्ग से च्युत कर दिया है। तू ने अपहरण के समय इसका स्पर्श किया है-अब इसको कौन ग्रहण कर सकता है ॥२९॥

प्रत्याख्याता हि शाल्वेन त्वया नीतेति भारत ।
तस्मादिमां मन्नियोगात्प्रतिगृह्णीष्व भारत ॥३०॥

इसको तू स्वयम्बर में से अपहरण कर लाया—इससे शाल्व ने भी परित्याग कर दिया। हे भारत ! अब तुम मेरी बात मानकर इसको ग्रहण करो ॥३०॥

स्वधर्मं पुरुषव्याघ्र राजपुत्री लभत्वियम् ।
न युक्तस्त्ववमानोऽयं राज्ञां कर्तुं त्वयाऽनघ ॥३१॥

हे पुरुषव्याघ्र ! अब यह राजपुत्री अपने धर्म (विवाह आदि) को प्राप्त करे। हे अनघ ! तुमको अन्य राजाओं का भी इस तरह अपमान कर देना उचित नहीं था ॥३१॥

ततस्तं वै विमनसमुदीक्ष्याऽहमथाऽब्रुवम् ।
नाऽहमेनां पुनर्दद्यां ब्रह्मन्भ्रात्रे कथञ्चन ॥३२॥

मैंने परशुराम को बड़ा ही उद्विग्न देख कर भी कहा—हे ब्रह्मन् ! अब मैं दुबारा इस कन्या को अपने भाई को किसी भी प्रकार नहीं दे सकता हूँ ॥३२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शाल्वस्याऽहमिति प्राह पुरा मामेव भार्गव ।
मया चैवाऽभ्यनुज्ञाता गतेयं नगरं प्रति ॥३३॥
न भयान्नाऽप्यनुक्रोशान्नाऽर्थलोभान्न काम्यया ।
क्षात्रं धर्ममहं जह्यामिति मे व्रतमाहितम् ॥३४॥

हे भार्गव ! इसने पूर्व में मुझे कह दिया था, कि मैं तो शाल्व को पति बनाना चाहती हूँ । मैंने इसको शाल्व के पास जाने की अनुमति देदी । यह शाल्व के नगर की ओर चली गई । भय, घृणा, धन के लोभ और किसी भी अभिलाषा से मैं क्षात्रधर्म को नहीं छोड़ सकता हूँ—यह मेरा दृढ़ व्रत है ॥३३-३४॥

अथ मामब्रवीद्रामः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ।
न करिष्यसि चेदेतद्वाक्यं मे नरपुङ्गव ॥३५॥
हनिष्यामि सहामात्यं त्वामद्येति पुनः पुनः ।
संरम्भादब्रवीद्रामः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥३६॥

इसके अनन्तर फिर परशुराम ने मुझसे क्रोध से लाल नेत्र करके कहा–हे नरपुङ्गव ! यदि तुम मेरे वचन को नहीं करोगे—तो मैं तुमको अपने मन्त्रियों के सहित आज ही मार डालूँगा। उसने मुझसे बार २ क्रोध से लाल आंखें करके बड़े आवेश में यह बात कही ॥३५-३६॥

तमहं गीर्भिरिष्टाभिः पुनः पुनररिन्दम ।
अयाचं भृगुशार्दूलं न चैव प्रशशाम सः ॥३७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे अरिन्दम ! मैंने भृगुवंशश्रेष्ठ परशुराम से बड़ी नम्र और प्रार्थना पूर्ण याचना की, परन्तु परशुराम का क्रोध शान्त नहीं हुआ ॥३७॥

प्रणम्य तमहं मूर्ध्ना भूयो ब्राह्मणसत्तमम् ।
अब्रुवं कारणं किं तद्यत्त्वं युद्धं मयेच्छसि ॥३८॥

मैंने ब्राह्मण-श्रेष्ठ परशुराम से फिर मस्तक झुका कर प्रणाम पूर्वक कहा—इसका कारण तो बताइये, कि आप मुझसे क्यों युद्ध करना चाहते हैं ॥३८॥

इष्वस्त्रं मम बालस्य भवतैव चतुर्विधम् ।
उपदिष्टं महाबाहो शिष्योऽस्मि तव भार्गव ॥३९॥

हे महाबाहो ! भार्गव ! मैं तो आपका बालक हूँ, आपने ही मुझे चारों प्रकार का बाण प्रयोग सिखाया है। मैं तो आपका शिष्य हूँ । आप मुझ पर कृपा करें ॥३९॥

ततो मामब्रवीद्रामः क्रोधसंरक्तलोचनः ।
जानीषे मां गुरुं भीष्म गृह्णासीमां न चैव ह ॥४०॥
सुतां काश्यस्य कौरव्य मत्प्रियार्थं महामते ।
न हि ते विद्यते शान्तिरन्यथा कुरुनन्दन ॥४१॥

इसके अनन्तर क्रोध से लाल आंखें करके परशुराम मुझसे बोले—हे भीष्म ! जो तू मुझे गुरु समझता है, तो इस काशिराज की कन्या को ग्रहण कर ले । हे महामते ! कौरव्य ! मेरी इसीमें सब कुछ अभिलाषा पूरी हो जावेगी । हे कुरुनन्दन ! यदि तुम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसको ग्रहण नहीं करोगे, तो किसी भांति भी तुम्हें चैन नहीं मिलेगा ॥४०-४१॥

गृहाणेमां महाबाहो रक्षस्व कुलमात्मनः ।
त्वया विभ्रंशिता हीयं भर्तारं नाऽधिगच्छति ॥४२॥

हे महाबाहो ! तुम इसको ग्रहण करके अपने कुल की रक्षा करो। तू ने ही इसको अपने स्थान से भ्रष्ट किया-जिससे इसको इसका पति प्राप्त नहीं हुआ ॥४२॥

तथा ब्रुवन्तं तमहं रामं परपुरञ्जयम् ।
नैतदेवं पुनर्भावि ब्रह्मर्षे किं श्रमेण ते ॥४३॥

जब उन्होंने ऐसा कहा-तो मैंने शत्रु-पुर-नाशक परशुराम से कहा--हे ब्रह्मर्षे ! यह तो अब हो नहीं सकता है। इस विषय में तुमको श्रम नहीं करना चाहिए ॥४३॥

गुरुत्वं त्वयि सम्प्रेक्ष्य जामदग्न्य पुरातनम् ।
प्रसादये त्वां भगवंस्त्यक्तैषा तु पुरा मया ॥४४॥

हे जामदग्न्य ! आप मेरे गुरु हैं। इस कारण मैं आप में प्राचीन गुरुत्व देखकर बड़ी श्रद्धा रखता हूँ। हे भगवन् ! आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। आप इसका आग्रह न करें, मैंने इसे पूर्वकाल में छोड़ दिया है ॥४४॥

को जातु परभावां हि नारीं व्यालीमवस्थिताम् ।
वासयेत गृहे जानन्स्त्रीणां दोषो महात्ययः ॥४५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसा कौन मनस्वी पुरुष होगा- जो पर पुरुष से प्रेम करने वाली सर्पिणी के सदृश स्त्री को अपने घर में रख लेगा । स्त्री का यह दोष तो बड़ा ही घातक है ॥४५॥

न भयाद्वासवस्याऽपि धर्मं जह्यां महाव्रत ।
प्रसीद मा वा यद्वा ते कार्यं तत्कुरु मा चिरम् ॥४६॥

हे महाव्रत ! मैं तो अपने व्रत को इन्द्र के भय से भी नहीं छोड़ सकता हूँ । अब आपकी इच्छा है, कि आप कृपा करें या न करें । जो आपको करना—हो वह करो--देर की क्या आवश्यकता है ॥४६॥

अयं चापि विशुद्धात्मन्पुराणे श्रूयते विभो ।
मरुत्तेन महाबुद्धे गीतः श्लोको महात्मना ॥४७॥
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥४८॥

हे महाबुद्धिमन् ! विशुद्धात्मन् ! प्रभो ! पुराणों में एक प्राचीन श्लोक महात्मा मरुत्त का कहा हुआ सुना जाता है, कि यदि गुरु मदोन्मत्त, कार्य अकार्य के जानने में असमर्थ एवं मार्ग छोड़कर जाने वाला हो-तो ऐसे गुरु का परित्याग कर देना ही श्रेयस्कर है ।

स त्वं गुरुरिति प्रेम्णा मया सम्मानितो भृशम् ।
गुरुवृत्तिं न जानीषे तस्माद्योत्स्यामि वै त्वया ॥४९॥

मैंने तो आपको गुरु मानकर आपका प्रेम-पूर्वक बड़ा आदर किया । परन्तु तुम तो गुरु के कर्तव्य को जानते ही नहीं हो । अब तो मेरा आपके साथ युद्ध ही होगा ॥४९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरुं न हन्यां समरे ब्राह्मणं च विशेषतः ।
विशेषतस्तपोवृद्धमेवं क्षान्तं मया तव ॥५०॥

मैं तो यही चाहता था, कि एक तो गुरु, दूसरे ब्राह्मण और फिर तपस्वी—ऐसे व्यक्ति को रण में नहीं मारना चाहिए—मैंने इसीलिए अब तक तुमको क्षमा कर रखा था ॥५०॥

उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा ब्राह्मणं क्षत्रबन्धुवत् ।
यो हन्यात्समरे क्रुद्धं युध्यन्तमपलायिनम् ॥५१॥

ब्रह्महत्या न तस्य स्यादिति धर्मेषु निश्चयः ।
क्षत्रियाणां स्थितो धर्मे क्षत्रियोऽस्मि तपोधन ॥५२॥

जो क्षत्रियों की भांति शस्त्र उठाकर युद्ध करने को आया हो और सामने से किसी भी तरह न हटता हो—ऐसे क्रोध में भरे हुए ब्राह्मणों का वध कर दिया जावे—तो भी ब्रह्महत्या नहीं लगेगी। ऐसा धर्म शास्त्र का निर्णय है। हे तपोधन ! मैं क्षत्रियों के धर्म में स्थित सच्चा क्षत्रिय हूँ ॥५१-५२॥

यो यथा वर्तते यस्मिंस्तस्मिन्नेव प्रवर्तयन् ।
नाऽधर्मं समवाप्नोति न चाऽश्रेयश्च विन्दति ॥५३॥

जो मनुष्य जिसके साथ जैसा व्यवहार करता है, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करता हुआ, मनुष्य अधर्म नहीं प्राप्त करता है और न वह अकल्याण को ही पाता है ॥५३॥

अर्थे वा यदि वा धर्मे समर्थो देशकालवित् ।
अर्थसंशयमापन्नः श्रेयान्निःसंशयो नरः ॥४५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं देशकाल का जानने वाला, राजनीति और धर्म नीति के निर्णय करने में समर्थ हूं। जब किसी अर्थ (विषय) में संशय हो-तो उसका नहीं करना ही उत्तम है; विशेषकर राजनीति में तो ऐसा करना हा चाहिए। जो बात संशय से रहित हो, उसका आचरण करना ही कल्याणकारी है ॥५४॥

यस्मात्संशयितेऽप्यर्थेऽयथान्यायं प्रवर्तसे ।
तस्माद्योत्स्यामि सहितस्त्वया राम महाहवे ॥५५॥

तुम संशय युक्त अर्थ में भी अनीति के साथ प्रवृत्त होना चाहते हो। हे राम ! यही कारण है, जिससे मैं तुम्हारे साथ महायुद्ध में प्रवृत्त होना चाहता हूं ॥५५॥

पश्य मे बाहुवीर्यं च विक्रमं चाऽतिमानुषम् ।
एवङ्गतेऽपि तु मया यच्छक्यं भृगुनन्दन ॥५६॥
तत्करिष्ये कुरुक्षेत्रे योत्स्ये विप्र त्वया सह ।
द्वन्द्वे राम यथेष्टं मे सज्जीभव महाद्युते ॥५७॥

हे भृगुनन्दन ! अब तुम मेरे बाहुबल और मनुष्यों को अतिक्रमण कर जाने वाले पराक्रम को देखना। इस दशा में जो कुछ मैं कर सकता हूं—वह करूंगा। हे विप्र ! अब तो कुरुक्षेत्र में तुम्हारे साथ युद्ध करना ही होगा। हे महाद्युते ! राम ! अब तुम मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाओ ॥५६-५७॥

तत्र त्वं निहतो राम मया शरशतार्दितः ।
प्राप्स्यसे निर्जिताँल्लोकाञ्शस्त्रपूतो महारणे ॥५८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राम ! इस युद्ध में तुम मेरे सैंकड़ों बाणों से पीड़ित होकर नष्ट हो जाओगे और इस तरह इस महारण में मेरे शस्त्रों से पवित्र होकर धर्म से प्राप्त करने योग्य लोकों को प्राप्त कर लोगे।

स गच्छ विनिवर्तस्व कुरुक्षेत्रं रणप्रिय ।
तत्रैष्यामि महाबाहो युद्धाय त्वां तपोधन ॥५९॥

हे रणप्रिय ! अब तुम लौट चलो और कुरुक्षेत्र में पधारो। हे महाबाहो ! तपोधन ! मैं भी युद्ध के लिए तुम्हारे साथ ही चलता हूँ ॥५९॥

अपि यत्र त्वया राम कृतं शौचं पुरा पितुः ।
तत्राऽहमपि हत्वा त्वां शौचं कर्ताऽस्मि भार्गव ॥६०॥

हे भार्गव ! जिस कुरुक्षेत्र में रक्त के कुण्ड भरकर तुमने अपने पिता का ऋण चुकाया—अब मैं भी उसी स्थान पर तुमको मार कर अपना ऋण चुकाऊँगा ॥६०॥

तत्र राम समागच्छ त्वरितं युद्धदुर्मद ।
व्यपनेष्यामि ते दर्पं पौराणं ब्राह्मणध्रुवः ॥६१॥

हे युद्धदुर्मद ! राम ! अब तुम शीघ्र चले आवो, मैं तुम्हारे पुराने घमण्ड को चूर करके छोड़ूंगा। इस तरह व्यवहार करके तो तुम ब्राह्मणों में निन्दित ही कहलाओगे ॥६१॥

यच्चापि कत्थसे राम बहुशः परिवत्सरे ।
निर्जिताः क्षत्रिया लोके मयैकेनेति तच्छृणु ॥६२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न तदा जातवान्भीष्मः क्षत्रियो वाऽपि मद्विधः ।
पश्चाज्जातानि तेजांसि तृणेषु ज्वलितं त्वया ॥६३॥

हे राम ! जो तुम यह बार २ कह रहे हो, कि मैंने अकेले ही एक वर्ष में बहुत से क्षत्रियों को जीत लिया, परन्तु उस समय भीष्म या भीष्म जैसा क्षत्रिय नहीं होगा। क्षत्रियों का तेज पीछे संगृहीत हुआ है। तुमने तो अपना पराक्रम तृण में जलने वाले अग्नि के सदृश दिखाया है ॥६२-६३॥

यस्ते युद्धमयं दर्पं कामं च व्यपनाशयेत् ।
सोऽहं जातो महाबाहो भीष्मः परपुरञ्जयः ॥
व्यपनेष्यामि ते दर्पं युद्धे राम न संशयः ॥६४॥

हे महाबाहो ! राम ! जो तेरे युद्ध-मय घमण्ड को चकनाचूर करने वाला है, वह शत्रुओं के समूह का नाशक भीष्म आज तेरे सम्मुख आया है। हे राम ! मैं युद्ध में तेरे अभिमान को चूर करके छोड़ूंगा ॥६४॥

भीष्म उवाच—

ततो मामब्रवीद्रामः प्रहसन्निव भारत ।
दिष्ट्या भीष्म मया सार्धं योद्धुमिच्छसि सङ्गरे ॥६५॥

भीष्म ने कहा—हे भारत ! मेरे इतना कहने पर हँसता हुआ परशुराम कहने लगा। हे भीष्म ! बड़ी प्रसन्नता की बात है, जो तू मुझ से रणभूमि में युद्ध करने को उद्यत हैं ॥६५॥

अयं गच्छामि कौरव्य कुरुक्षेत्रं त्वया सह ।
भाषितं ते करिष्यामि तत्राऽऽगच्छ परन्तप ॥६६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे कौरव्य ! लो--मैं तो अभी तेरे साथ रणक्षेत्र का चलता हूँ। हे परन्तप ! मैं तेरे कथन को पूरा करूंगा-तू शीघ्र आ जा।

तत्र त्वां निहतं माता मया शरशताचितम् ।
जाह्नवी पश्यतां भीष्म गृध्रकङ्कबलाशनम् ॥६७॥

हे भीष्म ! मेरे सैकड़ों बाणों के आघातों से युक्त तथा गीध, सियार और कागों के भोजन बने हुए, तुझको वहां पर तेरी माता गङ्गा देखेगी ॥६७॥

कृपणं त्वामभिप्रेक्ष्य सिद्धचारणसेविता ।
मया विनिहतं देवी रोदतामद्य पार्थिव ॥६८॥
अतदर्हा महाभागा भगीरथसुताऽनघा ।
या त्वामजीजनन्मन्दं युद्धकामुकमातुरम् ॥६९॥

हे राजकुमार ! सिद्ध और चारणादि देवों से सेवित, गंगादेवी दयनीय दशा और मृत्यु को प्राप्त तुझे देखकर आज रोदन करेगी। सब तरह से पूज्य, महाभागा भागीरथी, यद्यपि रोने के अयोग्य है, तो भी तुझ युद्धभिलाषी, आतुर (जल्दबाज) मूर्ख पुत्र के उत्पन्न करने से आज उसको रोना पड़ेगा ॥६९॥

एहि गच्छ मया भीष्म युद्धकामुक दुर्मद ।
गृहाण सर्वं कौरव्य रथादि भरतर्षभ ॥७०॥

हे युद्ध-कामुक ! दुर्दमनीय ! भीष्म ! आ और मेरे साथ चल। हे भरतवंशश्रेष्ठ ! कौरव्य ! तू अब सारी युद्ध की सामग्री रथ आदि अपने साथ ले ले ॥७०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति ब्रुवाणं तमहं रामं परपुरञ्जयम् ।
प्रणम्य शिरसा राममेवमस्त्वित्यथाऽब्रुवम् ॥७१॥

जब शत्रु-विजयी रामने इतना कहा—तो मैंने शिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा—अच्छी बात है ॥७१॥

एवमुक्त्वा ययौ रामः कुरुक्षेत्रं युयुत्सया ।
प्रविश्य नगरं चाऽहं सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥७२॥

इतना कहकर राम तो युद्ध की अभिलाषा से कुरुक्षेत्र पहुंचा और मैंने नगर में प्रवेश करके यह सारी घटना सत्यवती को सुनाई ॥७२॥

ततः कृतस्वस्त्ययनो मात्रा च प्रतिनन्दितः ।
द्विजातीन्वाच्य पुण्याहं स्वस्ति चैव महाद्युते ॥७३॥

हे महाद्युते ! माता सत्यवती ने मेरा मंगलाचार और मुझे उत्साहित किया । मैंने ब्राह्मणों से पुण्याहवाचन और स्वस्तिवाचन करवाया ॥७३॥

रथमास्थाय रुचिरं राजतं पाण्डुरैर्हयैः ।
सूपस्करं स्वधिष्ठानं वैयाघ्रपरिवारणम् ॥७४॥
उपपन्नं महाशस्त्रैः सर्वोपकरणान्वितम् ।
तत्कुलीनेन वीरेण हयशास्त्रविदा रणे ॥७५॥
यत्तं सूतेन शिष्टेन बहुशो दृष्टकर्मणा ।
दंशितः पाण्डुरेणाऽहं कवचेन वपुष्मता ॥७६॥
पाण्डुरं कार्मुकं गृह्य प्रायां भरतसत्तम ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे भरतसत्तम ! मैंने श्वेत अश्वों से युक्त चाँदी का बना हुआ रथ मंगवाया, जिसके सारे अङ्ग प्रत्यङ्ग दृढ़ थे। उसके चक्र(पहिए) भी बड़े ही सुचारु थे। उसमें सिंह की चर्म बिछी हुई थी। यह युद्ध की सामग्री तथा अनेक भांति के शस्त्रों से युक्त था। इस रथका सारथि एक कुलीन वीर था, जो अश्वविद्या का ज्ञाता, अनेक युद्धों का देखने वाला, बड़ा शिक्षित और अनुभवी व्यक्ति था। मैं उस रथ पर चढ़ गया। मैंने श्वेतवर्ण का दृढ़ कवच धारण कर लिया और श्वेतवर्ण का ही धनुष लेकर मैं युद्ध के लिए चल दिया।

पाण्डुरेणाऽऽतपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ॥७७॥
पाण्डुरैश्चापि व्यजनैर्वीज्यमानो नराधिप ।
शुक्लवासाः सितोष्णीषः सर्वशुक्लविभूषणः ॥७८॥
स्तूयमानो जयाशीर्भिर्निष्क्रम्य गजसाह्वयात् ।
कुरुक्षेत्रं रणक्षेत्रमुपायां भरतर्षभ ॥७९॥

हे नराधिप ! मेरे मस्तक पर उस समय श्वेत छत्र सुशोभित हो रहा था और श्वेत पंखों से ही मेरी हवा की जा रही थी। हे भरतर्षभ ! मैंने श्वेत वस्त्र और पगड़ी धारणकी थी और श्वेतवर्ण के ही आभूषण थे। उस समय बन्दी मागधादि स्तुति पाठ कर रहे थे। इस भांति मैं हस्तिनापुर से बाहर निकला और कुरुक्षेत्र में युद्धभूमि के स्थान पर पहुंच गया ॥७७-७९॥

ते हयाश्चोदितास्तेन सूतेन परमाहवे ।
अवहन्मां भृशं राजन्मनोमारुतरंहसः ॥८०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस सारथि ने उन अश्वों को उस प्रसिद्ध रणभूमि की ओर चलता किया। हे राजन्! वे हाँके हुए अश्व मन और वायु के वेग से मुझे ले उड़े ॥८०॥

गत्वाऽहं तत्कुरुक्षेत्रं स च रामः प्रतापवान्।
युद्धाय सहसा राजन्पराक्रान्तौ परस्परम् ॥८१॥

जब मैं कुरुक्षेत्र में पहुंचा, तो प्रतापी परशुराम सहसा युद्ध के लिए सन्मुख आया। अब हम दोनों एक दूसरे के सन्मुख पराक्रम करने को तय्यार हुए ॥८१॥

ततः सन्दर्शनेऽतिष्ठं रामस्याऽतितपस्विनः।
प्रगृह्य शङ्खप्रवरं ततः प्राधममुत्तमम् ॥८२॥

मैं अत्यन्त तपस्वी परशुराम के सन्मुख पहुंचा और मैंने अपना उत्तम शंख लेकर बड़े जोर से बजाया ॥८२॥

ततस्तत्र द्विजा राजंस्तापसाश्च वनौकसः।
अपश्यन्त रणं दिव्यं देवाः सेन्द्रगणास्तदा ॥८३॥

हे राजन्! उस स्थान पर अनेक वनवासी ब्राह्मण और तपस्वी, तथा इन्द्र सहित देवता, उस दिव्य युद्ध को देखने लगे ॥८३॥

ततो दिव्यानि माल्यानि प्रादुरासंस्ततस्ततः।
वादित्राणि च दिव्यानि मेघवृन्दानि चैव ह ॥८४॥

उस समय वहां आकाश से अनेक दिव्य मालाएँ गिरने लगी, अनेक भाँति के बाजे बजने लगे और मेघवृन्द उमड़ २ कर आ गए ॥८४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततस्ते तापसाः सर्वे भार्गवस्याऽनुयायिनः ।
प्रेक्षकाः समपद्यन्त परिवार्य रणाजिरम् ॥८५॥

हे राजन् ! भृगुवंशश्रेष्ठ परशुराम के वहाँ पर जितने साथी तपस्वी थे, वे भी रणभूमि को घेर कर इस युद्ध को देखने लगे ।

ततो मामब्रवीद्देवी सर्वभूतहितैषिणी ।
माता स्वरूपिणी राजन्किमिदं ते चिकीर्षितम् ॥८६॥

हे राजन् ! उस समय सब प्राणियों का कल्याण करने वाली मेरी माता गङ्गा-देवी, स्वरूप धारण करके मुझ से बोली- हे पुत्र ! तुम यह क्या कर रहे हो ॥८६॥

गत्वाऽहं जामदग्न्यं तु प्रयाचिष्ये कुरूद्वह ।
भीष्मेण सह मा योत्सीः शिष्येणेति पुनः पुनः ॥८७॥

हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! भीष्म ! मैं जमदग्नि-पुत्र परशुराम के पास जाकर बार २ याचना करूंगी, कि तुम अपने शिष्य भीष्म से युद्ध न करो ॥२७॥

मा मैवं पुत्र निर्बन्धं कुरु विप्रेण पार्थिव ।
जामदग्न्येन समरे योद्धुमित्येव भर्त्सयत् ॥८८॥

हे पुत्र ! तुम भो ब्रह्मर्षि, जमदग्नि पुत्र राम से युद्ध करने का आग्रह न करो-यही मेरी आज्ञा है। इस भांति माता ने मुझे फटकार बताई ॥८८॥

किं न वै क्षत्रियहणो हरतुल्यपराक्रमः ।
विदितः पुत्र रामस्ते यतस्तं योद्धुमिच्छसि ॥८९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे पुत्र ! क्या तुमको पता नहीं है, कि परशुराम रुद्र के तुल्य पराक्रमी और क्षत्रियों का नाशक है। फिर तुम उनसे युद्ध करने की कैसे अभिलाषा कर रहे हो ॥८९॥

ततोऽहमब्रुवं देवीमभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
सर्वं तद्भरतश्रेष्ठ यथावृत्तं स्वयंवरे ॥९०॥
यथा च रामो राजेन्द्र मया पूर्वं प्रचोदितः ।
काशिराजसुतायाश्च यथा कर्म पुरातनम् ॥९१॥

हे भरतश्रेष्ठ ! मैंने हाथ जोड़ और प्रणाम करके स्वयम्वर की सारी घटना माता को सुनायी और परशुराम को स्वयं आकर झगड़ा करने की भी कथा कही एवं काशिराज की पुत्री अम्बा की भी पुरानी कथा कह सुनाई। ९०-९-१॥

ततः सा राममभ्येत्य जननी मे महानदी ।
मदर्थं तमृषिं वीक्ष्य क्षमयामास भार्गवम् ॥९२॥
भीष्मेण सह मा योत्सीः शिष्येणेति वचोऽब्रवीत् ।

मेरी माता महानदी गङ्गा देवी अब भृगुवंशश्रेष्ठ परशुराम के पास पहुंची और उन ब्रह्मर्षि परशुराम से मिलकर मेरे लिए क्षमा याचना करने लगी, कि तुमको अपने शिष्य भीष्म से युद्ध नहीं करना चाहिए ॥९२॥

स च तामाह याचन्तीं भीष्ममेव निवर्तय ।
न च मे कुरुते काममित्यहं तमुपागमम् ॥९३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार क्षमा याचना करती हुई, माता गङ्गा देवी से परशुराम ने कहा—तुम भीष्म से ही कहो, कि वह लौट जावे । उसने मेरा वचन स्वीकार नहीं किया—इससे मैं उसके पास युद्धार्थ आया हूं ।

वैशम्पायन उवाच—

ततो गङ्गा सुतस्नेहाद्भीष्मं पुनरुपागमत् ।
न चाऽस्याश्चाऽकरोद्वाक्यं क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥९४॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! फिर पुत्र स्नेह के कारण गङ्गा भीष्म के पास आई, परन्तु भीष्म ने भी इसके वाक्य को नहीं माना। गंगा देवी के कहे हुए परशुराम के वचनों को सुनकर भीष्म की आंखें लाल हो गई ॥९४॥

अथाऽदृश्यत धर्मात्मा भृगुश्रेष्ठो महातपाः ।
आह्वयामास च तदा युद्धाय द्विजसत्तमः ॥९५॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि परशुरामभीष्मयोः कुरुक्षेत्रावतरणे अष्टसप्तत्युत्तर-शततमोऽध्यायः॥१७८॥

इसके अनन्तर भृगुवंशश्रेष्ठ, महातपस्वी, धर्मात्मा, परशुराम दिखाई पड़े और उसने भीष्म को युद्ध के लिए आह्वान किया ॥९५॥ । इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यान पर्व में परशुराम और भीष्म के कुरुक्षेत्र में पहुंचने के वृत्तान्त का एक सौ अठहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ उनासीवां अध्याय

भीष्म उवाच—

तमहं स्मयन्निव रणे प्रत्यभाषं व्यवस्थितम् ।
भूमिष्ठं नोत्सहे योद्धुं भवन्तं रथमास्थितः ॥१॥

भीष्म बोले—हे भरतश्रेष्ठ ! जब युद्ध आरम्भ होने वाला था— तो रणभूमि में नीचे ही स्थित परशुराम को देखकर मैंने हंसते २ कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं तो रथ में स्थित हूँ और तुम पृथिवी पर हो, मैं इस दशा में कभी आप से युद्ध नहीं करूंगा।

आरोह स्यन्दनं वीर कवचं च महाभुज ।
बधान समरे राम यदि योद्धुं मयेच्छसि ॥२॥

हे महाभुज वीर ! जो तुम्हें युद्ध करना है, तो इस युद्ध में रथ पर चढ़ जाओ और युद्धोपयोगी कवच धारण कर लो ॥२॥

ततो मामब्रवीद्रामः स्मयमानो रणाजिरे ।
रथो मे मेदिनी भीष्म वाहा वेदाः सदश्ववत् ॥३॥
सूतश्च मातरिश्वा वै कवचं वेदमातरः ।
सुसंवीतो रणे ताभिर्योत्स्येऽहं कुरुनन्दन ॥४॥

उस समय रणभूमि में मुस्कुराकर परशुराम ने कहा— हे भीष्म ! पृथिवी ही मेरा रथ और उत्तम अश्वों के समान वेद ही मेरे अश्व हैं। मेरा सारथि वायु एवं वेद माता गायत्री मेरा कवच है। हे कुरुनन्दन ! मैं इनसे ही अच्छादित हुआ तुमसे युद्ध करूंगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवंब्रुवाणो गान्धारे रामो मां सत्यविक्रमः ।
शरव्रातेन महता सर्वतः प्रत्यवारयत् ॥५॥

हे दुर्योधन ! इतना कहकर सत्यपराक्रमी परशुराम ने बड़े भारी शर समूह से मुझे सब ओर से घेर लिया ॥५॥

ततोऽपश्यं जामदग्न्यं रथमध्ये व्यवस्थितम् ।
सर्वायुधवरे श्रीमत्यद्भुतोपमदर्शने ॥६॥
मनसा विहिते पुण्ये विस्तीर्णे नगरोपमे ।
दिव्याश्वयुजि सन्नद्धे काञ्चनेन विभूषिते ॥७॥

थोड़ी ही देर में जमदग्नि-पुत्र परशुराम को रथ में बैठा देखा, जो रथ सारे उत्तम २ अश्वों से सुशोभित, कान्तिमान्, अद्भुत, विचार मात्र से प्राप्त और एक विस्तीर्ण नगर के बराबर विशाल था। उसमें दिव्य अश्व जुते हुए थे और वह सुवर्ण के कवच से विभूषित था। हे महाबाहो ! वह रथ, चन्द्र और सूर्य के चिन्हों से चिन्हित, सब तरह दृढ़ था ॥५-७॥

कवचेन महाबाहो सोमार्ककृतलक्ष्मणा ।
धनुर्धरो बद्धतूणो बद्धगोधांगुलित्रवान् ॥८॥
सारथ्यं कृतवांस्तत्र युयुत्सोरकृतव्रणः ।
सखा वेदविदत्यन्तं दयितो भार्गवस्य ह ॥९॥

युद्ध करने के अभिलाषी परशुराम के इस रथ का सारथि अकृतव्रण था, जिसने धनुष धारण कर रखा था, तूणीर (तरकस) कस लिया था और गोधा जन्तु के चर्म से बने हुए अङ्गलित्राण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

पहिन लिया था । यह भृगुवंशश्रेष्ठ परशुराम का वेद का जानने वाला, परम प्रिय सखा था ॥८-९॥

आह्वयानः स मां युद्धे मनो हर्षयतीव मे ।
पुनः पुनरभिक्रोशन्नभियाहीति भार्गवः ॥१०॥

परशुराम मुझे बार २ युद्ध के लिए आह्वान करने लगा—जिससे मेरा मन प्रफुल्लित होता था। भृगुवंशश्रेष्ठ परशुराम ने आओ—आओ—इस प्रकार चिल्लाने की झड़ी सी लगा दी ॥१०॥

तमादित्यमिवोद्यन्तमनाधृष्यं महाबलम् ।
क्षत्रियान्तकरं राममेकमेकः समासदम् ॥११॥

सूर्य के समान उदय होते हुए दुर्धर्ष, महाबली, क्षत्रियों के अन्तक, परशुराम से मैं युद्ध करने लगा। इस समय मैं और वे दोनों अकेले ही थे ॥११॥

ततोऽहं बाणपातेषु त्रिषु वाहान्निगृह्य वै ।
अवतीर्य धनुर्न्यस्य पदातिर्ऋषिसत्तमम् ॥१२॥

अभ्यागच्छं तदा राममर्चिष्यन्द्विजसत्तमम् ।
अभिवाद्य चैनं विधिवदब्रुवं वाक्यमुत्तमम् ।
योत्स्ये त्वया रणे राम सदृशेनाऽधिकेन वा ।
गुरुणा धर्मशीलेन जयमाशास्व मे विभो ॥१४॥

जब परशुराम के तीन बाण आ चुके, तो मैं अपने रथके अश्व रोक कर नीचे उतरा। मैंने धनुष उतार लिया और पैदल ही ऋषि श्रेष्ठ परशुरामके पास पहुंचा और उन द्विज-श्रेष्ठ की मैंने पूजा की।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार प्रणाम और विधि-पूर्वक उनकी पूजा करके मैंने कहा—हे राम ! मैं तुम से युद्ध अवश्य करूँगा-चाहे तुम मेरे सदृश हो या मुझसे अधिक हो। तुम धर्मशील गुरु हो—इससे मुझे विजय के लिए आशीर्वाद दीजिए ॥१२-१४॥

राम उवाच—

एवमेतत्कुरुश्रेष्ठ कर्तव्यं भूतिमिच्छता।
धर्मो ह्येष महाबाहो विशिष्टैः सह युध्यताम् ॥१५॥

परशुराम बोले—हे कुरुश्रेष्ठ ! कल्याण चाहने वाले पुरुषों को इसी प्रकार का शिष्टाचार दिखाना चाहिए। हे महाबाहो ! पूज्यों के साथ युद्ध होने पर यही धर्म माना गया है ॥१५॥

शपेयं त्वां न चेदवमागच्छेथा विशाम्पते।
युध्यस्व त्वं रणे यत्तो धैर्यमालम्ब्य कौरव ॥१६॥

हे विशाम्पते ! यदि तुम इस प्रकार से शिष्टाचार नहीं दिखाते तो मैं तुमको शाप दे देता। हे कौरव ! अब तुम धैर्य धारण करके सावधानी से युद्ध करो ॥१६॥

न तु ते जयमाशासे त्वां विजेतुमहं स्थितः।
गच्छ युध्यस्व धर्मेण प्रीतोऽस्मि चरितेन ते ॥१७॥

मैं तुम्हें विजय का आशीर्वाद कैसे दे सकता हूँ। मैं तो स्वयं ही तुमको जीतना चाहता हूं। अब तुम जाओ और धर्मपूर्वक युद्धके लिए सन्नद्ध हो जाओ। मैं तुम्हारे इस शिष्टाचारसे प्रसन्न हूं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततोऽहं तं नमस्कृत्य रथमारुह्य सत्वरः ।
प्राध्मापयं रणे शङ्खं पुनर्हेमपरिष्कृतम् ॥१८॥

मैंने उन को फिर प्रणाम किया और शीघ्रता से रथ पर चढ़ गया। इसके अनन्तर मैंने सुवर्ण से मँढ़े हुए दिव्य शंख को बजाया ॥१८॥

ततो युद्धं समभवन्मम तस्य च भारत ।
दिवसान्सुबहून्राजन्परस्परजिगीषया ॥१९॥

हे भारत ! अब मेरा और परशुराम का युद्ध होने लगा। हे राजन् ! अपनी २ विजय की अभिलाषा में यह युद्ध बहुत दिन तक चलता रहा ॥१९॥

स मे तस्मिन्रणे पूर्वं प्राहरत्कङ्कपत्रिभिः ।
षष्ट्या शतैश्च नवभिः शराणां नतपर्वणाम् ॥२०॥

उस रण में परशुराम ने कङ्क पक्षी की पांखों से विभूषित बाणों से मेरे ऊपर आक्रमण किया। इन नतपर्वधारी बाणों की संख्या नौ सौ साठ के लगभग होगी ॥२०॥

चत्वारस्तेन मे वाहाः सूतश्चैव विशांपते ।
प्रतिरुद्धास्तथैवाऽहं समरे दंशितः स्थितः ॥२१॥

हे विशाम्पते ! परशुराम ने मेरे चारों अश्व और सारथि को बाणों से आच्छादित कर दिया, तो भी मैं युद्ध में उसी वीरता के साथ डटा रहा ॥२१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नमस्कृत्य च देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ।
तमहं स्मयन्निव रणे प्रत्यभाषं व्यवस्थितम् ॥२२॥

मैंने देवता और विशेष कर ब्राह्मणों को नमस्कार करके रण में स्थित परशुराम से हंसते २ कहा ॥२२॥

आचार्यता मानिता मे निर्मर्यादे ह्यपि त्वयि ।
भूयश्च शृणु मे ब्रह्मन्सम्पदं धर्मसंग्रहे ॥२३॥
ये ते वेदाः शरीरस्था ब्राह्मण्यं यच्च ते महत् ।
तपश्च ते महत्तप्तं न तेभ्यः प्रहराम्यहम् ॥२४॥

हे ब्रह्मन् ! आपने यद्यपि अपनी मर्यादा छोड़ दी है, परन्तु मैं फिर भी आपको आचार्य मानता हूं । अब तुम एक बार जो धर्म का रहस्य है, उसे सुन लीजिए, कि जो तुम्हारे शरीर में वेदों की स्थिति है या जो ब्रह्मतेज है अथवा जो महान् तप इकट्ठा कर रखा है, मैं इस कारण तुम पर प्रहार नहीं करता हूं ॥२४॥

प्रहारे क्षत्रधर्मस्य यं त्वं राम समाश्रितः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियत्वं हि याति शस्त्रसमुद्यमात् ॥२५॥

हे राम ! तुमने जो क्षत्रियकर्म का आश्रय ले रखा है, मैं उस पर प्रहार करता हूँ । ज्योंही ब्राह्मण शस्त्र उठाता है, उसमें बहुत कुछ क्षत्रियत्व का संक्रमण हो जाता है ॥२५॥

पश्य मे धनुषो वीर्यं पश्य बाह्वोर्बलं मम ।
एष ते कार्मुकं वीर च्छिनद्मि निशितेषुणा ॥२६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे वीर ! अब तुम मेरे धनुष और भुजाओं के बलको देखो। मैं तुम्हारे इस धनुष को तीक्ष्ण बाणों से काट डालता हूँ।

तस्याऽहं निशितं भल्लं चिक्षेप भरतर्षभ।
तेनाऽस्य धनुषः कोटिं छित्वा भूमावपातयम् ॥२७॥

हे भरतर्षभ ! इसके अनन्तर मैंने एक बड़ा तीक्ष्ण बाण छोड़ा, जिसने उसके धनुष को काट कर भूमि पर गिरा दिया॥ २७ ॥

तथैव च पृषत्कानां शतानि नतपर्वणाम्।
चिक्षेप कङ्कपत्राणां जामदग्न्यरथं प्रति ॥२८॥

इसी तरह मैंने नतपर्व वाले कङ्कपत्र से विभूषित, सौ बाण परशुराम के रथ पर और छोड़े ॥२८॥

काये विषक्तास्तु तदा वायुना समुदीरिताः।
चेलुः क्षरन्तो रुधिरं नागा इव च ते शराः ॥२९॥

हे भारत ! वे वायु से प्रेरित बाण, परशुराम के शरीर में जाकर लगे, ये बाण सर्प की भांति रक्त बहाते हुए इधर उधर चल रहे थे ॥२९॥

क्षतजोक्षितसर्वाङ्गः क्षरन्स रुधिरं रणे।
बभौ रामस्तदा राजन्मेरुर्धातुमिवोत्सृजन् ॥३०॥

इस समय रणभूमि में परशुराम का सारा शरीर रक्त में भीग गया। रक्त के धारण करने वाले, परशुराम धातुओं को उगलते हुए मेरु पर्वत से प्रतीत होते थे ॥३०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हेमन्तान्तेऽशोक इव रक्तस्तबकमण्डितः ।
बभौ रामस्तथा राजन्प्रफुल्ल इव किंशुकः ॥३१॥

हे राजन् ! अब वसन्त में पुष्पों के गुच्छों और खिले हुए किंशुक (ढाक) के वृक्षों के सदृश परशुराम सुशोभित हो रहे थे।

ततोऽन्यद्धनुरादाय रामः क्रोधसमन्वितः ।
हेमपुङ्खान्सुनिशिताञ्शरांस्तान्हि ववर्ष सः ॥३२॥

अब क्रोध में भरकर परशुराम ने दूसरा धनुष उठाया। यह सुवर्ण के मूलों से सुशोभित तीक्ष्ण बाणों को बड़ी तीव्रता से छोड़ रहा था ॥३२॥

ते समासाद्य मां रौद्रा बहुधा मर्मभेदिनः ।
अकम्पयन्महावेगाः सर्पानलविषोपमाः ॥३३॥

प्रायः मर्म स्थान के भेद देने में समर्थ, भीषण बाण, फूत्कार और विष छोड़ने वाले सर्पों की भांति महावेग से मेरे पास लपलपाने लगे ॥३३॥

तमहं समवष्टभ्य पुनरात्मानमाहवे ।
शतसंख्यैः शरैः क्रुद्धस्तदा राममवाकिरम् ॥३४॥

हे भारत ! फिर मैंने अपने को सँम्हाला और क्रुद्ध होकर सैकड़ों की संख्या में बाण परशुराम पर छोड़े ॥३४॥

स तैरग्न्यर्कसङ्काशैः शरैराशीविषोपमैः ।
शितैरभ्यर्दितो रामो मन्दचेता इवाऽभवत् ॥३५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब अग्नि, सूर्य के समान दाहकारी, सर्प के समान विषैले, तीक्ष्ण बाणों से आक्रान्त परशुराम अचेत सा हो गया ॥३५॥

ततोऽहं कृपयाऽऽविष्टो विष्टभ्याऽऽत्मानमात्मना ।
धिग्धिगित्यब्रुवं युद्धं क्षत्रधर्मं च भारत ॥३६॥

हे भारत ! इस समय मुझे करुणा आगई और मैंने अपने आपको रोक लिया । मैंने युद्ध और क्षत्रिय धर्म को धिक्कार सा दिया, जिसके कारण पूज्यों से भी लड़ जाना पड़ता है ॥३६॥

असकृच्चाऽब्रुवं राजञ्शोकवेगपरिप्लुतः ।
अहो बत कृतं पापं मयेदं क्षत्रधर्मणा ॥३७॥

हे राजन् ! मैं शोक के वेग से परिप्लुत होकर बार २ कहने लगा, कि मैंने तो क्षत्रिय धर्म के पालन में यह महान् अधर्म कर लिया ॥३७॥

गुरुर्द्विजातिर्धर्मात्मा यदेवं पीडितः शरैः ।
ततो न प्राहरं भूयो जामदग्न्याय भारत ॥३८॥

हे भारत ! परशुराम तो मेरा गुरू, ब्राह्मण और धर्मात्मा है । इसको भी मैंने बाणों से पीड़ित कर दिया । इसके अनन्तर मैंने परशुराम पर प्रहार नहीं किया ॥३८॥

अथाऽवताप्य पृथिवीं पूषा दिवससंक्षये ।
जगामाऽस्तं सहस्रांशुस्ततो युद्धमुपारमत् ॥३९॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि राम-भीष्मयुद्धे अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहस्र किरण धारी सूर्य भी सारी पृथिवी को तपाकर दिवस के व्यतीत होने पर अस्त होने लगा। इससे युद्ध बन्द कर दिया गया ॥३९॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में राम और भीष्म के युद्ध का एक सौ उनासीवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ अस्सीवां अध्याय

भीष्म उवाच—

आत्मनस्तु ततः सूतो हयानां च विशाम्पते ।
मम चाऽपनयामास शल्यान्कुशलसम्मतः ॥१॥

भीष्म बोले—हे विशाम्पते ! इसके अनन्तर मेरे कुशल सारथि ने अश्व, मेरे और अपने सारे बाणों को निकाल डाला।

स्नातापवृत्तैस्तुरगैर्लब्धतोयैरविह्वलैः ।
प्रभाते चोदिते सूर्ये ततो युद्धमवर्तत ॥२॥

प्रातःकाल होने पर अश्वों को स्नान कराके टहलाया गया, उनको जलपान कराया, जिससे अश्वों को शान्ति प्राप्त हुई। सूर्य के उदय होने पर फिर युद्ध होने लगा ॥२॥

दृष्ट्वा मां तूर्णमायान्तं दंशितं स्यन्दने स्थितम् ।
अकरोद्रथमत्यर्थं रामः सज्जं प्रतापवान् ॥३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब परशुराम ने देखा, कि मैं रथ में बैठ कर बड़ी तय्यारी से युद्ध के लिए आ रहा हूँ—तो उस प्रतापी राम ने भी अपना रथ सुसज्जित किया ॥३॥

ततोऽहं राममायान्तं दृष्ट्वा समरकांक्षिणम् ।
धनुःश्रेष्ठं समुत्सृज्य सहसाऽवतरं रथात् ॥४॥

युद्ध की अभिलाषा से आते हुए परशुराम को देखकर मैंने धनुष रख दिया और मैं झटपट रथ से उतर पड़ा ॥४॥

अभिवाद्य तथैवाऽहं रथमारुह्य भारत ।
युयुत्सुर्जामदग्न्यस्य प्रमुखे वीतभीः स्थितः ॥५॥

हे भारत ! मैंने पूर्व की भांति फिर प्रणाम किया और झट रथ में चढ़ गया । अब जमदग्नि-पुत्र परशुराम से युद्ध करने की अभिलाषा से निर्भीक होकर उसके सन्मुख स्थित हुआ ॥५॥

ततोऽहं शरवर्षेण महता समवाकिरम् ।
स च मां शरवर्षेण वर्षन्तं समवाकिरत् ॥६॥

अब बड़े वेग से मैंने बाण वर्षा करना आरम्भ किया । मैं तो बाण चला ही रहा था, कि इसी अवस्था में परशुराम ने भी मुझे अपने बाण से ढक सा लिया ॥६॥

संक्रुद्धो जामदग्न्यस्तु पुनरेव सुतेजितान् ।
सम्प्रैषीन्मे शरान्घोरान्दीप्तास्यानुरगानिव ॥७॥

जमदग्नि-पुत्र परशुराम ने क्रुद्ध होकर सर्प के तुल्य लपलपाते मुख वाले, तीव्र बाणों को मेरी ओर चलाया ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततोऽहं निशितैर्भल्लैः शतशोऽथ सहस्रशः ।
अच्छिदं सहसा राजन्नन्तरिक्षे पुनः पुनः ॥८॥

हे राजन् ! मैंने भी सैकड़ों हजारों की संख्या में तीक्ष्ण बाण छोड़े—जिनसे परशुराम के बाणों को बीच में ही काट गिराया। अब प्रतापवान् परशुराम ने मेरे ऊपर दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया—मैंने उनको भी काट गिराया ॥८॥

ततस्त्वस्त्राणि दिव्यानि जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
मयि प्रयोजयामास तान्यहं प्रत्यषेधयम् ॥९॥

हे महाबाहो ! परशुराम ने फिर दिव्य अस्त्रों से कुछ अधिक कर दिखाना चाहा। इस समय आकाश में चारों ओर बड़ा घोर शब्द होने लगा ॥९॥

अस्त्रैरेव महाबाहो चिकीर्षन्नधिकां क्रियाम् ।
ततो दिवि महान्नादः प्रादुरासीत्समन्ततः ॥१०॥

मैंने भी जमदग्न्य परशुराम पर वायव्य अस्त्र का प्रयोग किया। हे भारत ! परशुराम ने उसे गुह्यकास्त्र से काट डाला ॥१०॥

ततोऽहमस्त्रं वायव्यं जामदग्न्ये प्रयुक्तवान् ।
प्रत्याजघ्ने च तद्रामो गुह्यकास्त्रेण भारत ॥११॥

मैंने भी अभिमन्त्रित करके अब आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया। वारुणास्त्र से परशुराम ने उसका भी प्रतिकार कर दिया।

ततोऽहमस्त्रमाग्नेयमनुमन्त्र्य प्रयुक्तवान् ।
वारुणेनैव तद्रामो वारयामास मे विभुः ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार मैं परशुराम के शस्त्रों को काट रहा था, कि अरि-विजयी, दिव्यशस्त्रों का प्रयोग ज्ञाता तेजस्वी, परशुराम भी मेरे अस्त्रों को काट डालता था ॥१२॥

एवमस्त्राणि दिव्यानि रामस्याऽहमवारयम् ।
रामश्च मम तेजस्वी दिव्यास्त्रविदरिन्दमः ॥१३॥

हे राजन् ! अब प्रतापी परशुराम ने मुझे बाईं ओर करके बड़े क्रोध के साथ मेरी छाती में अस्त्र का प्रहार किया ॥१३॥

ततो मां सव्यतो राजन्रामः कुर्वन्द्विजोत्तमः ।
उरस्यविध्यत्संक्रुद्धो जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥१४॥
ततोऽहं भरतश्रेष्ठ संन्यषीदं रथोत्तमे ।
ततो मां कश्मलाविष्टं सूतस्तूर्णमुदावहत् ॥१५॥

हे भरतश्रेष्ठ ! इस आघात से मैं उस रथ में अचेत सा हो गया। इस भांति मुझे अचेत देख कर सारथि शीघ्र मेरे रथ को वहां से लौटा लाया ॥१४–१५॥

ग्लायन्तं भरतश्रेष्ठ रामबाणप्रपीडितम् ।
ततो मामपयातं वै भृशं विद्धमचेतसम् ॥१६॥
रामस्याऽनुचरा हृष्टाः सर्वे दृष्ट्वा विचुक्रुशुः ।
अकृतव्रणप्रभृतयः काशिकन्या च भारत ॥१७॥

हे भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार परशुराम के बाण से विद्ध और उद्विग्न होकर अचेत दशा में जब मैं लौटा—तो काशिराज कन्या और अकृतव्रण आदि परशुराम के सेवक यह देखकर बड़ी आनन्द-ध्वनि करने लगे ॥१६-१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततस्तु लब्धसंज्ञोऽहं ज्ञात्वा सूतमथाऽब्रुवम् ।
याहि सूत यतो रामः सज्जोऽहं गतवेदनः ॥१८॥

जब मुझे चेतना प्राप्त हुई— तो मुझे युद्ध से लौटने का पता लगा। मैंने सारथि से कहा—हे सूत ! तुम उधर ही चलो—जहाँ परशुराम है। मेरी वेदना हट गई और मैं अब फिर युद्ध के लिए तय्यार हूँ ॥१८॥

ततो मामवहत्सूतो हयैः परमशोभितैः ।
नृत्यद्भिरिव कौरव्य मारुतप्रतिमैर्गतौ ॥१९॥

हे कौरव्य ! सूत ने भी उन उत्तम वायु, के समान वेगशील, नाचते हुए अश्वों से मुझे फिर युद्धभूमि में लौटाया ॥१९॥

ततोऽहं राममासाद्य बाणवर्षैश्च कौरव ।
अवाकिरं सुसंरब्धः संरब्धं च जिगीषया ॥२०॥

हे कौरव ! मैं परशुराम के पास पहुंचा। वह विजय की अभिलाषा में कुपित हो रहा था। मैंने भी क्रोध में भर कर उस पर बाण वर्षा करना आरम्भ किया ॥२०॥

तानापतत एवाऽसौ रामो बाणानजिह्मगान् ।
बाणैरेवाऽच्छिनत्तूर्णमेकैकं त्रिभिराहवे ॥२१॥

इस युद्ध में मेरे टेढ़े और तीखे बाणों को लपकते हुए देखकर परशुराम ने अपने तीन २ बाणों से मेरे एक २ बाण को काट डाला

ततस्ते सूदिताः सर्वे मम बाणाः सुसंशिताः ।
रामबाणैर्द्विधा च्छिन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन सब सैंकड़ों और सहस्रों की संख्या में छोड़े हुए मेरे तीक्ष्ण बाणों को परशुराम ने अपने बाणों से खण्ड २ कर दिया।

ततः पुनः शरं दीप्तं सुप्रभं कालसम्मितम् ।
असृजं जामदग्न्याय रामायाऽहं जिघांसया ॥२३॥

अब फिर मैंने काल के समान प्रदीप्त, चमकता हुआ बाण, परशुराम के मारने की इच्छा से उस पर छोड़ा ॥२३॥

तेन त्वभिहतो गाढं बाणवेगवशं गतः ।
मुमोह समरे रामो भूमौ च निपपात ह ॥२४॥

इस बाण से परशुराम के बड़ी गहरी चोट पहुंची। वह बाण के वेग के वश में हुआ अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ा ॥२४॥

ततो हाहाकृतं सर्वं रामे भूतलमाश्रिते ।
जगद्भारत संविग्नं यथाऽर्कपतने भवेत् ॥२५॥

हे भारत! जब परशुराम भूमि पर गिरे—तो सब ओर हाहाकार मच गया। जगत् इतना व्याकुल हो गया—जैसे आकाश से सूर्य के गिर जाने पर हो सकता है ॥२५॥

तत एनं समुद्विग्नाः सर्व एवाऽभिदुद्रुवुः ।
तपोधनास्ते सहसा काश्या च कुरुनन्दन ॥२६॥

हे कुरुनन्दन! अब सारे तपस्वी और काशिराज कन्या उद्विग्न होकर अचेत परशुराम के पास दौड़ी गई ॥२६॥

तत एनं परिष्वज्य शनैराश्वासयंस्तदा ।
पाणिभिर्जलशीतैश्च जयाशीर्भिश्च कौरव ॥२७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे कौरव ! इन सब ऋषि मुनियों ने आलिङ्गन, हाथ पैर दबाने, शीतल जल और जयाशिषों से परशुराम को शान्ति प्रदान की ॥२७॥

ततः स विह्वलं वाक्यं राम उत्थाय चाऽब्रवीत् ।
तिष्ठ भीष्म हतोऽसीति बाणं सन्धाय कार्मुके ॥२८॥
स मुक्तो न्यपतत्तूर्णं सव्ये पार्श्वे महाहवे ।
येनाऽहं भृशमुद्विग्नो व्याघूर्णित इव द्रुमः ॥२९॥

अब उठकर परशुराम ने बड़ा आतुर वचन कहा—हे भीष्म ! अब ठहर जा—मैं तुझे अभी मारता हूं। इतना कहकर परशुराम ने धनुष पर बाण चढ़ाया। उसने वह बाण उस युद्ध में छोड़ दिया, जो बायें पार्श्व में आकर लगा। उस बाण से मैं बड़ा व्याकुल हुआ और वृक्ष की तरह घूमने लगा ॥२८-२९॥

हत्वा हयांस्ततो रामः शीघ्रास्त्रेण महाहवे ।
अवाकिरन्मां विस्रब्धो बाणैस्तैर्लोमवाहिभिः ॥३०॥

इस भीषण युद्ध में परशुराम ने मेरे अश्वों को मार गिराया और निःशङ्क भाव से पङ्खधारी बाणों से मुझे व्याकुल कर दिया।

ततोऽहमपि शीघ्रास्त्रं समरप्रतिवारणम् ।
अवासृजं महाबाहो तेऽन्तराऽधिष्ठिताः शराः ॥३१॥
रामस्य मम चैवाऽऽशु व्योमाऽऽवृत्य समन्ततः ।
न स्म सूर्यः प्रतपति शरजालसमावृतः ॥३२॥
मातरिश्वा ततस्तस्मिन्मेघरुद्ध इवाऽभवत् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे महाबाहो ! मैंने इस युद्ध के प्रतिकार में एक शीघ्रगामी अस्त्र चलाया । इस समय परशुराम और मेरे बाण, सारे अन्तरिक्ष में चारों ओर भर गए । इन बाण समूह से ढ़का हुआ सूर्य भी अपना तेज नहीं छोड़ रहा था । बादलों में रुका हुआ सा वायु चलने लगा ॥३१-३२॥

ततो वायोः प्रकम्पाच्च सूर्यस्य च गभस्तिभिः ॥३३॥
अभिघातप्रभावाच्च पावकः समजायत ।

इस प्रकार वायु की रुकावट, सूर्य की किरण के रुकने और शस्त्रों के आघात प्रतिघात से वहाँ आग खड़ी हो गई ॥३३॥

ते शराः स्वसमुत्थेन प्रदीप्ताश्चित्रभानुना ॥३४॥
भूमौ सर्वे तदा राजन्भस्मभूताः प्रपेदिरे ।

अपने भीतर से निकलती हुई आग से बाण प्रज्वलित हो उठे और अनेक बाण भस्म होकर भूमि पर गिर पड़े ॥३४॥

तदा शतसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥३५॥
अयुतान्यथ खर्वाणि निखर्वाणि च कौरव ।
रामः शराणां संक्रुद्धो मयि तूर्णं न्यपातयत् ॥३६॥
ततोऽहं तानपि रणे शरैराशीविषोपमैः ।
सञ्छिद्य भूमौ नृपते पातयेयं नगानिव ॥३७॥

हे कौरव ! उस समय, शत, सहस्र, दश सहस्र, लाख, करोड़, अरब, खरब की संख्या में परशुराम ने क्रोध में भरकर मेरे ऊपर बाण छोड़े, परन्तु मैंने भी सर्प के समान भयानक बाणों से उनको काटकर छिन्न भिन्न पर्वतों की भांति भूमि पर गिरा दिया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवं तदभवद्युद्धं तदा भरतसत्तम ।
सन्ध्याकाले व्यतीते तु व्यपायात्स च मे गुरुः ॥३८॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि रामभीष्मयुद्धे अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८०॥

हे भरतसत्तम ! इस प्रकार वह भीषण युद्ध होता रहा । जब सायंकाल हो गया—तो मेरे गुरु परशुराम युद्ध से निवृत्त होकर लौट गए ॥३८॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में परशुराम और भीष्म के युद्ध का एक सौ अस्सीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

एक सौ इक्यासीवां अध्याय

भीष्म उवाच—

समागतस्य रामेण पुनरेवाऽतिदारुणम् ।
अन्येद्युस्तुमुलं युद्धं तदा भरतसत्तम ॥१॥

भीष्म ने कहा— हे भरतसत्तम ! जब दूसरे दिन परशुराम आए—तो फिर घसमान युद्ध होने लगा ॥१॥

ततो दिव्यास्त्रविच्छूरो दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः ।
अयोजयत्स धर्मात्मा दिवसे दिवसे विभुः ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे भारत ! इसी तरह दिव्य अस्त्रों के प्रयोगों का ज्ञाता, शूर-वीर, शक्तिशाली, धर्मात्मा परशुराम दिन प्रतिदिन नए २ दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करता था ॥२॥

तान्यहं तत्प्रतीघातैरस्त्रैरस्त्राणि भारत ।
व्यधमं तुमुले युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् ॥३॥

हे भारत ! मैं भी उन अस्त्रों को उनके घातक अस्त्रों से काट देता था। मैंने इस घोर संग्राम में दुस्त्यज प्राणों का पण (बाजी) लगा दिया ॥३॥

अस्त्रैरस्त्रेषु बहुधा हतेष्वेव च भारत ।
अक्रुध्यत महातेजास्त्यक्तप्राणः स संयुगे ॥४॥

हे भारत ! जब इस युद्ध में परशुराम के अनेक अस्त्र मैंने छिन्न भिन्न कर दिए, तो वे महातेजस्वी बड़े कुपित हुए और अपने प्राणों की ममता छोड़कर युद्ध में जुट गए ॥४॥

ततः शक्तिंप्राहिणोद्घोररूपामस्त्रे रुद्धे जामदग्न्यो महात्मा
कालोत्सृष्टांप्रज्वलितामिवोल्कांसन्दीप्ताग्रांतेजसा व्याप्यलोकम्

जब मैंने उनके अस्त्रों को रोक दिया, तो महात्मा परशुराम ने एक भयङ्कर शक्ति छोड़ी। यह शक्ति उल्कापात की भाँति अपने अग्रभाग से प्रज्वलित हो रही थी। इसने अपने प्रकाश से तीनों लोकों को व्याप्त कर लिया। परशुराम ने बड़े ही उचित समय पर इसका उपयोग किया ॥५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततोऽहं तामिषुभिर्दीप्यमानां समायान्तीमन्तकालार्कदीप्ताम्
छित्वा त्रिधा पातयामास भूमौ ततो ववौ पवनः पुण्यगन्धिः

काल के समान भयङ्कर और सूर्य के समान देदीप्यमान आती हुई शक्ति को देखकर मैंने भी अपने बाणों से उसके तीन टुकड़े कर के पृथिवी पर डाल दिए। इसके कट कर गिर जाने पर बड़ी सुन्दर सुगन्धि युक्त पवन चलने लगी ॥६॥

तस्यां छिन्नायां क्रोधदीप्तोऽथ रामः
शक्तीर्घोराः प्राहिणोद् द्वादशाऽन्याः ।
तासां रूपं भारत नोत शक्यं ।
तेजस्वित्वाल्लाघवाच्चैव वक्तुम् ॥७॥

इस शक्ति के छिन्न भिन्न हो जाने पर परशुराम क्रोध से जल उठे और उन्होंने फिर एक बार में ही बारह शक्तियों का प्रयोग किया। हे भारत ! उन शक्तियों के शीघ्रगामी और तेजस्वी होने से उनके स्वरूपका वर्णन करना बड़ा ही कठिन है ॥ ७ ॥

किन्त्वेवाऽहं विह्वलः सम्प्रदृश्य,
दिग्भ्यः सर्वास्ता महोल्का इवाग्नेः ।
नानारूपास्तेजसोग्रेण दीप्ता,
यथाऽऽदित्या द्वादश लोकसंक्षये ॥८॥

हे राजन् ! मैं उन शक्तियों को देखते ही व्याकुल हो उठा, क्योंकि वे तो सारी दिशाओं से उठी हुई अग्नि से प्रज्वलित महान् उल्कापात सी दिखाई देती थी। उनके अनेक रूप प्रलय के द्वादश आदित्यों के सदृश तेज से प्रदीप्त हो रहे थे ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततो जालं बाणमयं विवृत्तं सन्दृश्य भित्वा शरजालेनराजन्
द्वादशेषून्प्राहिणवं रणेऽहं ततः शक्तीरप्यधमं घोररूपाः ॥

हे राजन् ! इसी बीच में परशुराम ने बाणों का जाल सा बिछा दिया। जब मैंने यह देखा-तो अपने बाणों के समूह से उनको काट डाला। इस घोर युद्ध के समय में बारह बाण छोड़े, जिन्हों से मैंने उन भयङ्कर बारह शक्तियों को भी काट गिराया ॥९॥

ततो राजञ्जामदग्न्यो महात्माशक्तीर्घोराव्याक्षिपद्वेमदण्डाः
विचित्रिताःकाञ्चनपट्टनद्धा यथामहोल्का ज्वलितास्तथा ताः

हे राजन् ! इसके अनन्तर महात्मा जमदग्नि-पुत्र परशुराम ने सुवर्ण के दण्ड से युक्त, सुवर्ण के पत्रों से मंढ़ी हुई, प्रज्वलित, अनेक विचित्र शक्तियां फैंकी, जो उल्काओं की भांति बड़ी तीव्रता से चमक रही थी ॥ १० ॥

ताश्चाप्युग्राश्चर्मणा वारयित्वा खड्गे नाऽऽजौ पातयित्वा नरेन्द्र
बाणैर्दिव्यैर्जामदग्न्यस्य संख्ये दिव्यानश्वानभ्यवर्षं ससूतान्

हे नरेन्द्र ! उन उग्र शक्तियों को भी मैंने ढाल पर रोका तथा खड्ग से काट गिराया। इसके अतिरिक्त इस युद्ध में मैंने अपने दिव्य बाणों से परशुरामके सारथि सहित अश्वों को भी बेंध डाला

निर्मुक्तानां पन्नगानां सरूपा दृष्ट्वा शक्तीर्हेमचित्रा निकृत्ताः
प्रादुश्चक्रे दिव्यमस्त्रं महात्मा क्रोधाविष्टो हैहयेशप्रमाथी ॥

छोड़े हुए सर्पों के समान भीषण, सुवर्ण से चित्रित, अपनी शक्तियोंको चकना चूर हुई देखकर सहास्रार्जुनका नाशक, महात्मा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परशुराम क्रोध में भर गया और इस समय इसने फिर दिव्य अस्त्र निकाला ॥१२॥

ततः श्रेण्यः शलभानामिवोग्राः समापेतुर्विशिखानां प्रदीप्ताः
समाचिनोच्चापि भृशं शरीरं हयान्सूतं सरथं चैव मह्यम् ॥

परशुराम के छोड़े हुए बाणों की प्रदीप्त श्रेणी, शलभ पक्षियों की भांति आ २ कर गिरने लगी। इस बाण-पंक्ति ने आकर मेरे शरीर, रथ, सारथि और अश्वों को छेद डाला ॥१३॥

रथः शरैर्मे निचितः सर्वतोऽभूत्तथा वाहाः सारथिश्चैव राजन्
युगं रथेषां च तथैव चक्रे तथैवाऽक्षः शरकृत्तोऽथ भग्नः ॥

हे राजन्! इन बाणोंसे मेरा सारा रथ चारों ओर से भर गया। यही दशा अश्व और सारथि की हुई। रथ का युग (जुआ) और अक्ष (धुरा) बाण से कट कर गिर गया ॥१४॥

ततस्तस्मिन्बाणवर्षे व्यतीते शरौघेण प्रत्यवर्षं गुरुं तम्।
स विक्षतो मार्गणैर्ब्रह्मराशिर्देहादसक्तं मुमुचे भूरि रक्तम् ॥

जब परशुराम की बाण-वर्षा समाप्त हो गई, तब मैंने भी अपने गुरु परशुराम पर बाण वर्षा करना आरम्भ किया। मेरे बाणों से ब्रह्मर्षि परशुराम क्षत विक्षत हो गया और उसके शरीर से लगातार रक्त की धारा बह निकली ॥१५॥

यथा रामो बाणजालाभितप्तस्तथैवाऽहं सुभृशं गाढविद्धः।
ततो युद्धं व्यरमच्चाऽपराह्णे भानावस्तं प्रतियाते महीध्रम् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अम्बोपख्यानपर्वणि एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८१॥

जिस तरह परशुराम बाणों से बिंध रहा था, वही दशा मेरी भी हो रही थी। जब सायङ्काल का सूर्य अस्ताचल पर पहुंच गया-तो फिर युद्ध बन्द हो गया ॥१६॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में राम और भीष्म के युद्ध का एक सौ इक्कासीवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ बयासीवां अध्याय

भीष्म उवाच—

ततः प्रभाते राजेन्द्र सूर्ये विमलतां गते ।
भार्गवस्य मया सार्धं पुनर्युद्धमवर्तत ॥१॥

भीष्म बोले—हे राजेन्द्र! जब फिर प्रातःकाल हुआ और सूर्य अच्छी तरह निकल आया-तो फिर परशुराम के साथ मेरा युद्ध होने लगा ॥१॥

ततोऽभ्रान्ते रथे तिष्ठन्रामः प्रहरतां वरः ।
ववर्ष शरजालानि मयि मेघ इवाऽचले ॥२॥

प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ, परशुराम, अपने विशाल रथ में बैठकर पर्वत पर मेघ की भांति मुझ पर बाण वर्षा करने लगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततः सूतो मम सुहृच्छरवर्षेण ताडितः ।
अपयातो रथोपस्थान्मनो मम विषादयन् ॥३॥

इस बाण वर्षा से मेरा प्रिय सारथि बिंध गया और रथ पर से नीचे गिर पड़ा, जिससे मेरे मन को बड़ी पीड़ा हुई ॥३॥

ततः सूतो ममाऽत्यर्थं कश्मलं प्राविशन्महत् ।
पृथिव्यां च शराघातान्निपपात मुमोह च ॥४॥

इस मेरे सारथि के चित्त में बड़ी पीड़ा हुई। इस बाणों के आघात से वह पृथिवी पर गिरा और मूर्च्छित हो गया ॥४॥

ततः सूतोऽजहात्प्राणान्रामबाणप्रपीडितः ।
मुहूर्तादिव राजेन्द्र मां च भीराविशत्तदा ॥५॥

हे राजेन्द्र ! परशुराम के बाण से पीड़ित सारथि ने क्षण भर में अपने प्राणों का परित्याग कर दिया, इससे मेरे चित्त को बड़ा क्षोभ हुआ ॥५॥

ततः सूते हते तस्मिन्क्षिपतस्तस्य मे शरान् ।
प्रमत्तमनसो रामः प्राहिणोन्मृत्युसम्मितम् ॥६॥

जब सूत मारा गया और मैं दुःखी होकर उसके शरीरसे बाणों को निकाल रहा था, तो उसी समय मुझ उद्विग्न चित्त पर भी परशुराम ने मृत्यु तुल्य बाण का प्रहार किया ॥६॥

ततः सूतव्यसनिनं विप्लुतं मां स भार्गवः ।
शरेणाऽभ्यहनद्गाढं विकृष्य बलवद्धनुः ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भृगुवंशोत्पन्न परशुराम ने सारथि की मृत्यु से शोकातुर और व्याकुलता के समय बल-पूर्वक धनुष खींच कर बड़ी बुरी तरह मुझ पर प्रहार किया ॥७॥

स मे भुजान्तरे राजन्निपत्य रुधिराशनः ।
मयैव सह राजेन्द्र जगाम वसुधातलम् ॥८॥

हे राजन् ! वह रक्त का चाट जाने वाला बाण, मेरी छाती में आकर लगा । वह बाण मेरी छाती में गडा हुआ ही था, कि मैं उसके साथ भूमि पर गिर पड़ा ॥८॥

मत्वा तु निहतं रामस्ततो मां भरतर्षभ ।
मेघवद्विननादोच्चैर्जहृषे च पुनः पुनः ॥९॥

हे भरतर्षभ ! परशुरामने समझा कि मैं मर गया तो वह मेघ के समान बार २ गर्जना करने लगा और बड़ाही प्रसन्न हुआ ॥९॥

तथा तु पतिते राजन्मयि रामो मुदा युतः ।
उदक्रोशन्महानादं सह तैरनुयायिभिः ॥१०॥

हे राजन्! गिर जाने पर परशुराम बड़ा प्रसन्न हुआ । इस समय वह अपने साथियों के साथ बड़ी हर्ष ध्वनि करने लगा।

मम तत्राऽभवन्ये तु कुरवः पार्श्वतः स्थिताः ।
आगता अपि युद्धं तज्जनास्तत्र दिदृक्षवः ॥
आर्तिं परमिकां जग्मुस्ते तदा पतिते मयि ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस समय वहां जो कौरव मेरे पास स्थित थे तथा जो मनुष्य वहाँ युद्ध देखने आए थे, वे मुझे इस प्रकार गिरा हुआ देखकर बड़े चिन्तित हुए ॥११॥

ततोऽपश्यं पतितो राजसिंह द्विजानष्टौ सूर्यहुताशनाभान् ।
ते मां समन्तात्परिवार्य तस्थुःस्वबाहुभिःपरिधार्याऽऽजिमध्ये

हे राजसिंह ! रणभूमि में पड़े हुए, मैंने देखा-कि आठ ब्राह्मणों ने मुझे घेर कर अपनी गोदमें ले रखा है, जो ब्राह्मण, सूर्य और अग्नि के सदृश तेजस्वी थे ॥१२॥

रक्ष्यमाणश्च तैर्विप्रैर्नाऽहं भूमिमुपास्पृशम् ।
अन्तरिक्षे धृतो ह्यस्मि तैर्विप्रैर्बान्धवैरिव ॥१३॥

उन ब्राह्मणों ने मेरी इतनी रक्षा की, कि मैं पृथिवी पर भी नहीं गिरा । इन विप्रों ने बान्धवों की भांति मुझे बीच में ही अपनी गोद में उठाए रखा ॥१३॥

श्वसन्निवाऽन्तरिक्षे च जलबिन्दुभिरुक्षितः ।
ततस्ते ब्राह्मणा राजन्नब्रुवन्परिगृह्य माम् ॥१४॥
मा भैरिति समं सर्वे स्वस्ति तेऽस्त्विति चाऽसकृत् ।
ततस्तेषामहं वाग्भिस्तर्पितः सहसोत्थितः ।
मातरं सरितां श्रेष्ठामपश्यं रथमास्थिताम् ॥१५॥

मैं गोद में ही कुछ श्वास ले रहा था । उन्होंने जल के छींटे देकर सचेत किया । हे राजन् ! इसके अनन्तर मुझे ग्रहण करके वे सारे ब्राह्मण एक साथ बोले-तुम डरो नहीं, तुम्हारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कल्याण हो। जब उन्होंने बार २ ऐसा कहा-तो मैं उनकी वाणी से तर्पित होकर एक दम खड़ा हो गया। उसी समय मैंने अपनी माता गङ्गा देवी को वहां उपस्थित देखा ॥१४-१५॥

हयाश्च मे संगृहीतास्तयाऽऽसन्महानद्या संयति कौरवेन्द्र ।
पादौ जनन्याः प्रतिगृह्य चाऽहं तथा पितॄणां रथमभ्यरोहम्॥

हे कौरवेन्द्र ! उस महायुद्ध में मेरे अश्वों को महानदी मेरी माता गंगादेवी ने रोके। मैंने अपनी माता के चरणों का स्पर्श किया और पितरों को प्रणाम करके रथ पर फिर चढ़ गया ॥१६॥

ररक्ष सा मां सरथं हयांश्चोपस्कराणि च ।
तामहं प्राञ्जलिर्भूत्वा पुनरेव व्यसर्जयम् ॥१७॥

उसने मेरे रथ, अश्व और युद्ध के अन्य साधनों की रक्षा की। मैंने हाथ जोड़ कर अपनी माता गङ्गा देवी को फिर वापिस लौटा दिया ॥१७॥

ततोऽहं स्वयमुद्यम्य हयांस्तान्वातरंहसः ।
अयुध्यं जामदग्न्येन निवृत्तेऽहनि भारत ॥१८॥

हे भारत ! अब मैंने अपने वायु के समान वेगशील अश्वों को स्वयं चलाया और सायंकाल तक परशुराम से युद्ध करता रहा।

ततोऽहं भरतश्रेष्ठ वेगवन्तं महाबलम् ।
अमुञ्चं समरे बाणं रामाय हृदयच्छिदम् ॥१९॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अब मैंने भी बड़े वेग वाले शक्तिशाली बाण को परशुराम पर छोड़ा, जिसने परशुराम के हृदय को छेद डाला।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततो जगाम वसुधां मम बाणप्रपीडितः ।
जानुभ्यां धनुरुत्सृज्य रामो मोहवशं गतः ॥२०॥

हे राजन् ! मेरे बाण की पीड़ा से व्यथित हुआ परशुराम भी गोडे टेककर पृथिवी पर गिर गया। इसके हाथ से धनुष छूट पड़ा और यह मूर्च्छित हो गया ॥२०॥

ततस्तस्मिन्निपतिते रामे भूरिसहस्रदे ।
आवव्रुर्जलदा व्योम क्षरन्तो रुधिरं बहु ॥२१॥
उल्काश्च शतशः पेतुः सनिर्घाताः सकम्पनाः ।
अर्कं च सहसा दीप्तं स्वर्भानुरभिसंवृणोत् ॥२२॥

सहस्रों सुवर्ण मुद्राओं के दानी परशुराम के गिर जाने पर आकाश में बादल छा गए और वे बहुत सा रक्त बरसाने लगे। बड़ी कड़क के साथ बिजली और लपलपाते उल्कापात होने लगे। चमकते हुए सूर्य को अचानक राहु ने ग्रस लिया ॥२१-२२॥

ववुश्च वाताः परुषाश्चलिता च वसुन्धरा ।
गृध्रा बलाश्च कङ्काश्च परिपेतुर्मुदा युताः ॥२३॥

कठोर पवन चलने लगा; पृथिवी हिल गई। गीध, बगुले, कौवे आदि पक्षी वहां आ २ कर प्रेम से गिरने लगे ॥२३॥

दीप्तायां दिशि गोमायुर्दारुणं मुहुरुन्नदत् ।
अनाहता दुन्दुभयो विनेदुर्भृशनिःस्वनाः ॥२४॥

दिशाएँ प्रज्वलित हो उठी। गीदड़ बार २ दारुण शब्द करने लगे। विना बजाई हुई दुन्दुभियां अत्यन्त वेग से बजने लगीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एतदौत्पातिकं सर्वं व्योमासीद्भयङ्करम् ।
विसंज्ञकल्पे धरणीं गते रामे महात्मनि ॥२५॥

इस समय भयंकर उत्पात होने लगे। ज्योंही महात्मा परशुराम, मूर्च्छित होकर भूमि में पड़े-त्योंही ये सारे उत्पात हुए।

ततो वै सहसोत्थाय रामो मामभ्यवर्तत ।
पुनर्युद्धाय कौरव्य विह्वलः क्रोधमूर्छितः ॥२६॥

हे कौरव्य ! अब अचानक परशुराम खड़ा हो गया और युद्ध के लिए बड़े क्रोध में भरकर आतुरता के साथ दौड़ा ॥२६॥

आददानो महाबाहुः कार्मुकं बलसन्निभम् ।
ततो मय्याददानं तं राममेव न्यवारयन् ॥२७॥

महाबाहु परशुराम ने अब बड़ा शक्तिमान् गन्धकरसवत्तीव्र धनुष लिया। मैंने अपने ऊपर झपटते हुए परशुराम को वहीं रोक दिया ॥२७॥

महर्षयः कृपायुक्ताः क्रोधाविष्टोऽथ भार्गवः ।
स मेऽहरदमेयात्मा शरं कालानलोपमम् ॥२८॥

महर्षि लोग तो मुझ पर दया कर रहे थे और परशुराम क्रोध में भर रहा था। इस महाशक्तिशाली ने फिर मेरे ऊपर कालाग्नि के तुल्य बाण का प्रयोग किया ॥२८॥

ततो रविर्मन्त्रमरीचिमण्डलो जगामाऽस्तं पांसुपुञ्जावगूढः ।
निशा व्यगाहत्सुखशीतमारुता ततो युद्धं प्रत्यवहारयावः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन्! धूलि से व्याप्त, निस्तेज, मन्त्र-मयी किरण माला धारी-सूर्य मण्डल में छुप गया। सुख और शीतल वायु वाली रात हो गई। इस समय हम दोनों ने फिर युद्ध बन्द कर दिया ॥२९॥

एवं राजन्नवहारो बभूव ततः पुनर्विमलेऽभूत्सुघोरम्।
कल्यं कल्यं विंशतिं वै दिनानि तथैव चाऽन्यानि दिनानि त्रीणि

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि रामभीष्मयुद्धे द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८२॥

हे राजन्! इस प्रकार प्रातःकाल होने पर घोर युद्ध हुआ। यह व्यवहार नित्य चल रहा था। इस प्रकार युद्ध होते २ तेईस दिन व्यतीत हो गए ॥३०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में परशुराम भीष्म के युद्ध का एक सौ बयासीवां अध्याय समाप्त हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ तिरासीवां अध्याय

भीष्म उवाच—

ततोऽहं निशि राजेन्द्र प्रणम्य शिरसा तदा।
ब्राह्मणानां पितॄणां च देवतानां च सर्वशः ॥१॥
नक्तञ्चराणां भूतानां राजन्यानां विशाम्पते।
शयनं प्राप्य रहिते मनसा समचिन्तयम् ॥२॥
जामदग्न्येन मे युद्धमिदं परमदारुणम्।
अहानि च बहून्यद्य वर्तते सुमहात्ययम् ॥३॥
न च रामं महावीर्यं शक्नोमि रणमूर्धनि।
विजेतुं समरे विप्रं जामदग्न्यं महाबलम् ॥४॥
यदि शक्यो मया जेतुं जामदग्न्यः प्रतापवान्।
दैवतानि प्रसन्नानि दर्शयन्तु निशां मम ॥५॥

भीष्म कहने लगे—हे राजेन्द्र! इसके अनन्तर रात को मैं ब्राह्मण, पितर, देवता, निशाचर, भूत और राजाओं को मन ही मन प्रणाम करके एकान्त में शयन पर लेटा हुआ था। लेटे २ मैंने सोचा—जमदग्नि-पुत्र परशुराम से मेरा यह परम दारुण युद्ध चल रहा है। इस महाघोर युद्ध को चलते हुए बहुत दिन व्यतीत हो गए। मैं इस रण में महाबली परशुराम के जीतने में समर्थ नहीं हो सका हूं। यदि मैं प्रतापवान् परशुराम के जीतने में समर्थ हो सकता हूँ-तो आज रात में देवता प्रसन्न होकर मुझे दर्शन देवें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततो निशि च राजेन्द्र प्रसुप्तः शरविक्षतः ।
दक्षिणेनेह पार्श्वेन प्रभातसमये तदा ॥६॥
ततोऽहं विप्रमुख्यैस्तैर्यैरस्मि पतितो रथात् ।
उत्थापितो धृतश्चैव मा भैरिति च सान्त्वितः ॥७॥
त एव मां महाराज स्वप्नदर्शनमेत्य वै ।
परिवार्याऽब्रुवन्वाक्यं तन्निबोध कुरूद्वह ॥८॥

हे राजेन्द्र ! इस प्रकार बाणों से विक्षत (जख्मी) हुआ, मैं रात में सो रहा था और प्रातःकाल होने वाला था, तो उस समय दांयी ओर से वे ब्राह्मणश्रेष्ठ आते दिखाई पड़े—जिन्होंने रथ से गिरने के समय मुझे उठाया और गोद में धारण किया था। इन्होंने मुझे आश्वासन दिया, कि तुम डरो मत। हे महाराज ! इन ब्राह्मणों ने स्वप्न में दर्शन देकर जो वाक्य मुझसे कहे—हे कुरूद्वह ! तुम उनको ध्यान से सुनो ॥६-८॥

उत्तिष्ठ मा भैर्गाङ्गेय न भयं तेऽस्ति किञ्चन ।
रक्षामहे त्वां कौरव्य स्वशरीरं हि नो भवान् ॥९॥

हे गाङ्गेय ! उठ-खड़ा हो—तुम्हें कुछ भय नहीं है। हे कौरव्य ! तुम्हारी हम रक्षा कर रहे हैं। तुम तो हमारे ही शरीर हो ॥९॥

न त्वां रामो रणे जेता जामदग्न्यः कथञ्चन ।
त्वमेव समरे रामं विजेता भरतर्षभ ॥१०॥

हे भरतर्षभ ! तुमको जमदग्नि-पुत्र राम कभी नहीं जीत सकता है। समय पर तुम ही परशुराम को जीत लोगे ॥१०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

इदमस्त्रं सुदयितं प्रत्यभिज्ञास्यते भवान् ।
विदितं हि तवाऽप्येतत्पूर्वस्मिन्देहधारणे ॥११॥
प्राजापत्यं विश्वकृतं प्रस्वापं नाम भारत ।
नहीदं वेद रामोऽपि पृथिव्यां वा पुमान्क्वचित् ॥१२॥

हे भारत ! यह विश्वकर्मा का बनाया हुआ परमप्रिय प्रस्वाप नामक प्रजापति का अस्त्र है । इसको परशुराम भी नहीं जानता है और न अन्य किसी पुरुष को इसके रहस्य का ज्ञान है । तुम इसके प्रयोग को रण में जान लोगे, क्योंकि तुम्हें पूर्वजन्म में इसके प्रयोग का ज्ञान था ॥११-१२॥

तत्स्मरस्व महाबाहो भृशं संयोजयस्व च ।
उपस्थास्यति राजेन्द्र स्वयमेव तवाऽनघ ॥१३॥

हे महाबाहो ! तुम उसका स्मरण करो और अच्छी तरह इसका उपयोग करो । हे अनघ ! राजेन्द्र ! तुम्हें यह अस्त्र स्वयं ही प्राप्त हो जावेगा ॥१३॥

येन सर्वान्महावीर्यान्प्रशासिष्यसि कौरव ।
न च रामः क्षयं गन्ता तेनाऽस्त्रेण नराधिप ॥१४॥
एनसा न तु संयोगं प्राप्स्यसे जातु मानद ।
स्वप्स्यते जामदग्न्योऽसौ त्वद्बाणबलपीडितः ॥१५॥

हे कौरव ! उस शस्त्र से तुम सब महाबलियों का प्रशासन कर सकोगे । इसके प्रयोग से परशुराम की मृत्यु भी नहीं होगी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे माननीय ! इससे तुम, पाप से भी संयुक्त न होगे । इस अस्त्र के द्वारा फैंके हुए बाण से पीड़ित होकर परशुराम प्रसुप्त सा होजावेगा

ततो जित्वा त्वमेवैनं पुनरुत्थापयिष्यसि ।
अस्त्रेण दयितेनाऽऽजौ भीष्म सम्बोधनेन वै ॥१६॥

हे भीष्म ! परशुराम को जीतकर फिर तुम ही प्रिय सम्बोधन शस्त्र से इसको फिर युद्ध भूमि में सचेत कर सकोगे ॥१६॥

एवं कुरुष्व कौरव्य प्रभाते रथमास्थितः ।
प्रसुप्तं वा मृतं वेति तुल्यं मन्यामहे वयम् ॥१७॥

हे कौरव्य ! प्रातःकाल रथ में बैठ कर यही सब कुछ करना । हम तो प्रसुप्त और मृत को एक सा ही समझते हैं ॥१७॥

न च रामेण मर्तव्यं कदाचिदपि पार्थिव ।
ततः समुत्पन्नमिदं प्रस्वापं युज्यतामिति ॥१८॥

हे पार्थिव ! परशुराम कभी मर तो सकता नहीं है, इससे यही उचित है, कि तुम इस पर प्रस्वाप अस्त्र का प्रयोग करो ॥१८॥

इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता राजन्सर्व एव द्विजोत्तमाः ।
अष्टौ सदृशरूपास्ते सर्वे भासुरमूर्तयः ॥१९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या-मुद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि भीष्मप्रस्वापनास्त्रलाभे त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हे राजन् ! इतना कहकर वे द्विजश्रेष्ठ अन्तर्भूत हो गए। ये आठों ही द्विजोत्तम एक समान तेज की दिव्य मूर्ति थे ॥१६॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में भीष्म को प्रस्वाप अस्त्र की प्राप्ति का एक सौ तिरासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

एक सौ चौरासीवां अध्याय

भीष्म उवाच—

ततो रात्रौ व्यतीतायां प्रतिबुद्धोऽस्मि भारत ।
ततः सञ्चिन्त्य वै स्वप्नमवापं हर्षमुत्तमम् ॥१॥
ततः समभवद्युद्धं मम तस्य च भारत ।
तुमुलं सर्वभूतानां लोमहर्षणमद्भुतम् ॥२॥

भीष्म बोले—हे भारत ! जब रात व्यतीत हो गई-तब प्रातः-काल उठा। मैं इस स्वप्नको विचार २ कर बड़ाही हर्षित हो रहा था। हे भारत ! अब मेरा और परशुराम का फिर युद्ध होने लगा। यह युद्ध महाभयङ्कर और अद्भुत था; जिसको देखकर समस्त प्राणियों के रोमाञ्च खड़े हो जाते थे ॥२॥

ततो बाणमयं वर्षं ववर्ष मयि भार्गवः ।
न्यवारयमहं तच्च शरजालेन भारत ॥३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परशुराम ने मेरे ऊपर बाण बरसाना आरम्भ किया। हे भारत! मैं भी अपने बाणों के समूह से उनकी बाण वर्षा को रोक रहा था ॥३॥

ततः परमसंक्रुद्धः पुनरेव महातपाः।
ह्यस्तनेन च कोपेन शक्तिं वै प्राहिणोन्मयि ॥४॥

महातपस्वी परशुराम, पूर्व दिन के कोप से मेरे ऊपर बड़ा ही कुपित हो रहा था, अब उसने बड़े वेग से मेरे ऊपर शक्ति का प्रहार किया ॥४॥

इन्द्राशनिसमस्पर्शां यमदण्डसमप्रभाम्।
ज्वलन्तीमग्निवत्संख्ये लेलिहानां समन्ततः ॥५॥

यह शक्ति इन्द्र के वज्र के समान कठोर और यम दण्ड के तुल्य भयङ्कर थी। यह युद्ध में अग्नि के समान प्रज्वलित हुई चारों दिशाओं को चाट सी रही थी ॥५॥

ततो भरतशार्दूल धिष्ण्यमाकाशगं यथा।
स मामभ्यवधीत्तूर्णं जत्रुदेशे कुरूद्वह ॥६॥

हे भरत-शार्दूल! कुरूद्वह! वह शक्ति प्रज्वलित वेदी या नक्षत्र के समान प्रदीप्त और आकाश में चमकती हुई बड़ी शीघ्रता से मेरे जत्रु-प्रदेश (जोतों) में आकर लगी ॥६॥

अथाऽस्त्रमस्त्रवद्घोरं गिरेर्गैरिकधातुवत्।
रामेण सुमहाबाहो क्षतस्य क्षतजेक्षण ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

हे महाबाहो ! विशालनेत्र ! इसके आघात से पर्वत के गैरिकादि धातुओं से मिली हुई जलधारा के तुल्य महती रक्त धारा परशुराम के किए हुए क्षत (जख्म) से बह निकली ॥७॥

ततोऽहं जामदग्न्याय भृशं क्रोधसमन्वितः ।
चिक्षेप मृत्युसङ्काशं बाणं सर्पविषोपमम् ॥८॥
स तेनाऽभिहतो वीरो ललाटे द्विजसत्तमः ।
अशोभत महाराज सशृङ्ग इव पर्वतः ॥९॥

अब मैंने भी कुपित होकर परशुराम के ऊपर अत्यन्त क्रोध में भर कर विषैले सर्प के समान भयङ्कर और मृत्यु तुल्य बाण फैंका । यह बाण परशुराम के ललाटमें जाकर लगा । हे महाराज ! इस बाणसे परशुराम, शिखर धारी पर्वत सा प्रतीत होता था ॥९॥

स संरब्धः समावृत्य शरं कालान्तकोपमम् ।
सन्दधे बलवत्कृष्य घोरं शत्रुनिबर्हणम् ॥१०॥

इससे परशुराम क्रोध में भर गया और उसने कालान्तक (मृत्यु) के तुल्य भयानक बाण को शत्रुनाशक घोर धनुष पर बड़े बल के साथ चढ़ाया ॥१०॥

स वक्षसि पपातोग्रः शरो व्याल इव श्वसन् ।
महीं राजंस्ततश्चाऽहमगमं रुधिराविलः ॥११॥

हे राजन् ! सर्प की तरह सनसनाता हुआ वह बाण मेरी छाती में आकर लगा । इस बाण के आघात से रक्त में भीग कर मैं पृथिवी पर गिर गया । ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्प्राप्य तु पुनः संज्ञां जामदग्न्याय धीमते ।
प्राहिण्वं विमलां शक्तिं ज्वलन्तीमशनीमिव ॥१२॥

जब मुझे शीघ्र ही चेतना आ गई-तो मैं झटपट उठा और मैंने भी महाबली परशुराम पर वज्र के समान जाज्वल्यमान चमचमाती हुई शक्ति का प्रहार किया ॥१२॥

सा तस्य द्विजमुख्यस्य निपपात भुजान्तरे ।
विह्वलश्चाऽभवद्राजन्वेपथुश्चैनमाविशत् ॥१३॥

वह शक्ति, उस द्विज-राज परशुराम की छाती पर जाकर लगी। हे राजन्! इस शक्ति के लगते ही यह विह्वल हो गया और इसके शरीर में कँपकँपी होने लगी ॥१३॥

तत एनं परिष्वज्य सखा विप्रो महातपाः ।
अकृतव्रणः शुभैर्वाक्यैराश्वासयदनेकधा ॥१४॥

अब इसको गोदी में लेकर महातपस्वी सुहृत्, ब्रह्मर्षि, अकृत-व्रण ने अनेक भांति से उसको सान्त्वना दी ॥१४॥

समाश्वस्तस्ततो रामः क्रोधामर्षसमन्वितः ।
प्रादुश्चक्रे तदा ब्राह्मं परमास्त्रं महाव्रतः ॥१५॥

जब परशुराम को धैर्य आया, तो वह क्रोध और आवेश में भर गया। अब महाव्रती परशुराम ने महाशक्ति शाली ब्रह्मास्त्र का प्रादुर्भाव किया ॥१५॥

ततस्तत्प्रतिघातार्थं ब्राह्ममेवाऽस्त्रमुत्तमम् ।
मया प्रयुक्तं जज्वाल युगान्तमिव दर्शयत् ॥१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने भी उसकें प्रतिकार में ब्रह्मास्त्र का ही प्रयोग किया। मेरे ब्रह्मास्त्र के प्रयोग करते ही प्रलय काल सा दिखाई देने लगा।

तयोर्ब्रह्मास्त्रयोरासीदन्तरा वै समागमः।
असम्प्राप्यैव रामं च मां च भारतसत्तम ॥१७॥

हे भरतसत्तम! उन दोनों ब्रह्मास्त्रों की मध्य में ही टक्कर हो गई। उनमें से एक भी मेरे या परशुराम के पास नहीं पहुंच सका ॥१७॥

ततो व्योम्नि प्रादुरभूत्तेज एव हि केवलम्।
भूतानि चैव सर्वाणि जग्मुरार्तिं विशाम्पते ॥१८॥

हे विशाम्पते! आकाश में उन दोनों का तेज बड़ा ही प्रदीप्त हो रहा था, जिससे सारे प्राणियों को बेचैनी खड़ी हो गई ॥१८॥

ऋषयश्च सगन्धर्वा देवताश्चैव भारत।
सन्तापं परमं जग्मुरस्त्रतेजोभिपीडिताः ॥१९॥

हे भारत! इन अस्त्रों के तेज से पीड़ित, गन्धर्व, ऋषि, और देवता, बड़े ही सन्ताप को प्राप्त हुए ॥१९॥

ततश्चचाल पृथिवी सपर्वतवनद्रुमा।
सन्तप्तानि च भूतानि विषादं जग्मुरुत्तमम् ॥२०॥

हे राजन्! पर्वत वन और वृक्षों से युक्त सारी पृथिवी काँपने लगी, सारे प्राणी सन्तुष्ट हो गये और उनको बड़ा ही विषाद होने लगा ॥२०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रजज्वाल नभो राजन्धूमायन्ते दिशो दश ।
न स्थातुमन्तरिक्षे च शेकुराकाशगास्तदा ॥२१॥

हे राजन् ! सारा आकाश जल रहा था और दिशाएँ धूम से भर गई थीं। इस समय कोई भी आकाश चारी पक्षी आकाश में दिखाई नहीं देते थे ॥२१॥

ततो हाहाकृते लोके सदेवासुरराक्षसे ।
इदमन्तरमित्येवं मोक्तुकामोऽस्मि भारत ॥२२॥

हे भारत ! अब सारे देव, असुर और राक्षस हाहाकार कर रहे थे। मैंने इसी बीच में उस प्रस्वाप अस्त्र के छोड़ने का विचार किया ॥२२॥

प्रस्वापमस्त्रं त्वरितो वचनाद् ब्रह्मवादिनाम् ।
विचित्रं च तदस्त्रं मे मनसि प्रत्यभात्तदा ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या-
मुद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि परस्परब्रह्मास्त्रप्रयोगे
चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८४॥

ब्रह्मज्ञानी मुनियों के वचन से वह विचित्र प्रस्वापास्त्र, शीघ्र ही मेरे मन में प्रभासित हो गया ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में भीष्म और परशुराम के परस्पर ब्रह्मास्त्र प्रयोग का एक सौ-चौरासीवां अध्याय समाप्त हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ पिच्चासीवां अध्याय

भीष्म उवाच—

ततो हलहलाशब्दो दिवि राजन्महानभूत् ।
प्रस्वापं भीष्म मा स्राक्षीरिति कौरवनन्दन ॥१॥
अयुञ्जमेव चैवाऽहं तदस्त्रं भृगुनन्दने ।

भीष्म बोले—हे राजन् ! इस समय आकाश में हाहाकार मच गया और यह शब्द कान में आने लगा—कि हे कौरव नृप ! भीष्म ! तुम प्रस्वापास्त्र का प्रयोग मत करो, परन्तु मैंने तो परशुराम पर उस अस्त्र को छोड़ ही दिया ॥१॥

प्रस्वापं मां प्रयुञ्जानं नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥२॥
एते वियति कौरव्य दिवि देवगणाः स्थिताः ।
ते त्वां निवारयन्त्यद्य प्रस्वापं मा प्रयोजय ॥३॥
रामस्तपस्वी ब्रह्मण्यो ब्राह्मणश्च गुरुश्च ते ।
तस्याऽवमानं कौरव्य मा स्म कार्षीः कथञ्चन ॥४॥

हे राजन् ! जब मैं प्रस्वापास्त्र का प्रयोग कर रहा था तब मुझसे नारदजी ने कहा—हे कौरव्य ! ये आकाश और अन्तरिक्ष में खड़े हुए देवगण आज तुम्हें रोक रहे हैं, कि तुम प्रस्वापास्त्र का प्रयोग न करो । परशुराम तपस्वी, ब्राह्मण और ब्राह्मणों का रक्षक तथा तुम्हारा गुरु है । हे कौरव्य ! तुमको उनका अपमान कभी नहीं करना चाहिए ॥२-४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तयोऽपश्यं दिविष्ठान्वै तानष्टौ ब्रह्मवादिनः ।
ते मां स्मयन्तो राजेन्द्र शनकैरिदमब्रुवन् ॥५॥

हे राजेन्द्र ! इसी समय मैंने आकाश में स्थित उन्हीं आठ ब्रह्मर्षियों को फिर देखा । उन्होंने हंसते २ मुझे धीरे से यह वचन कहा ॥५॥

यथाऽऽह भरतश्रेष्ठ नारदस्तत्तथा कुरु ।
एतद्धि परमं श्रेयो लोकानां भरतर्षभ ॥६॥

हे भरतश्रेष्ठ ! जो ये नारदजी कह रहे हैं, तुम वैसा ही करो। हे भरतर्षभ ! इसी में संसार का परम कल्याण है ॥६॥

ततश्च प्रतिसंहृत्य तदस्त्रं स्वापनं महत् ।
ब्रह्मास्त्रं दीपयाञ्चक्रे तस्मिन्युधि यथाविधि ॥७॥

अब मैंने उस प्रस्वापन महास्त्र का तो संहार कर लिया परन्तु विधिपूर्वक युद्ध आरम्भ होने पर फिर उसी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया।

ततो रामो हृषितो राजसिंह दृष्ट्वा तदस्त्रं विनिवर्तितं वै ।
जितोऽस्मि भीष्मेण सुमन्दबुद्धिरित्येव वाक्यं सहसा व्यमुञ्चत् ॥

हे राजसिंह ! उस प्रस्वापन अस्त्र को लौट जाता देखकर परशुराम बड़ा हर्षित हुआ और मुझ मन्दबुद्धि को भीष्म ने पराजित कर दिया, यह वाक्य सहसा परशुराम के मुख से निकल पड़ा ॥ ८ ॥

ततोऽपश्यत्पितरं जामदग्न्यः पितुस्तथा पितरं चाऽस्य मान्यम्
ते तत्र चैनं परिवार्य तस्थुरूचुश्चैनं सान्त्वपूर्वं तदानीम् ॥९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस समय परशुराम ने मान्यवर अपने पिता और पितामह के दर्शन किए। वे इसको चारों ओर से घेर कर खड़े हो गए और बड़ी शांति के साथ इससे कहने लगे ॥९॥

पितर ऊचुः—

मा स्मैवं साहसं तात पुनः कार्षीः कथञ्चन ।
भीष्मेण संयुगं गन्तुं क्षत्रियेण विशेषतः ॥१०॥
क्षत्रियस्य तु धर्मोऽयं यद्युद्धं भृगुनन्दन ।
स्वाध्यायो व्रतचर्याऽथ ब्राह्मणानां परं धनम् ॥११॥

पिता बोले—हे तात ! तुम अब आगे कभी साहस न करना। न तो भीष्म से युद्ध करना और न किसी क्षत्रिय से युद्ध करने की सोचना। हे भृगुनन्दन ! युद्ध करना तो क्षत्रिय का ही धर्म माना गया है। स्वाध्याय और व्रतचर्या ही ब्राह्मण का परम धन है।

इदं निमित्ते कस्मिंश्चिदस्माभिः प्रागुदाहृतम् ।
शस्त्रधारणमत्युग्रं तच्चाऽकार्यं कृतं त्वया ॥१२॥

किसी निमित्त से हमने तुमको शस्त्र धारण का उपदेश किया था। अब यह व्यर्थ शस्त्रधारण करना तुम्हारे लिए अकार्य है।

वत्स पर्याप्तमेतावद्भीष्मेण सह संयुगे ।
विमर्दस्ते महाबाहो व्यपयाहि रणादितः ॥१३॥

हे वत्स ! भीष्म के साथ इतना ही युद्ध पर्याप्त है। महाबाहो ! अब तुम्हारा और इनका संघर्ष बहुत हो चुका-अब तुम रण से निवृत्त हो जावो ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर्याप्तमेतद्भद्रं ते तव कार्मुकधारणम् ।
विसर्जयैतद्दुर्धर्ष तपस्तप्यस्व भार्गव ॥१४॥

हे दुर्धर्ष ! भार्गव ! तुम्हारे लिए धनुष धारण करना पर्याप्त है। अब तुम धनुष को छोड़ दो और तप का आचरण करो ॥१४॥

एष भीष्मः शान्तनवो देवैः सर्वैर्निवारितः ।
निवर्तस्व रणादस्मादिति चैव प्रसादितः ॥१५॥

शान्तनुपुत्र भीष्म को भी सारे देवों ने युद्ध से निवृत्त कर दिया है। "हे भीष्म ! तुम युद्ध से हट जाओ" यह कहकर उसको इस बात पर प्रसन्न भी कर लिया है ॥१५॥

रामेण सह मा योत्सीर्गुरुणेति पुनः पुनः ।
न हि रामो रणे जेतुं त्वया न्याय्यः कुरूद्वह ॥१५॥
मानं कुरुष्व गाङ्गेय ब्राह्मणस्य रणाजिरे ।

तुम अपने गुरु परशुराम से युद्ध न करो। हे कुरूद्वह ! तुम को रण में राम को जीतना उचित नहीं है। हे गाङ्गेय ! इस रणाङ्गण में तुम ब्राह्मण-वंशोत्पन्न परशुराम का आदर करो ॥१६॥

वयं तु गुरवस्तुभ्यं तस्मात्त्वां वारयामहे ॥१७॥
भीष्मो वसूनामन्यतमो दिष्ट्या जीवसि पुत्रक ।
गाङ्गेयः शान्तनोः पुत्रो वसुरेष महायशाः ॥१८॥

हे भार्गव ! हम तुम्हारे पूज्य गुरु हैं, इससे तुमको युद्ध से रोक रहे हैं। हे पुत्र ! राम ! भीष्म आठ वसुओं में से एक है। इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को संसार में जीवित ही रहने देना योग्य है। यह शान्तनु और और गङ्गा का पुत्र है। यही महायशस्वी वसु है ॥१७-१८॥

कथं शक्यस्त्वया जेतुं निवर्तस्वेह भार्गव ।
अर्जुनः पाण्डवश्रेष्ठः पुरन्दरसुतो बली ॥१९॥
नरः प्रजापतिर्वीरः पूर्वदेवः सनातनः ।
सव्यसाचीति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ॥
भीष्ममृत्युर्यथाकालं विहितो वै स्वयम्भुवा ॥२०॥

हे भार्गव ! तुम उसको कैसे जीत सकते हो। अब तुम युद्ध से निवृत्त हो जाओ। पाण्डवों में श्रेष्ठ, इन्द्रपुत्र, बलवान, प्रजापति, वीर, नरावतार, सनातन देव मूर्ति, सव्यसाची अर्जुन है, जो तीनों लोकोंमें महापराक्रमी विख्यात है। स्वयम्भू ब्रह्मा ने भीष्म की मृत्यु अर्जुन द्वारा ही रची है ॥१९-२०॥

भीष्म उवाच—

एवमुक्तः स पितृभिः पितॄन्रामोऽब्रवीदिदम् ।
नाऽहं युधि निवर्तेयमिति मे व्रतमाहितम् ॥२१॥
न निवर्तितपूर्वश्च कदाचिद्रणमूर्धनि ।
निवर्त्यतामापगेयः कामं युद्धात्पितामहाः ॥२२॥
न त्वहं विनिवर्तिष्ये युद्धादस्मात्कथञ्चन ।

भीष्म बोले—हे राजन् ! जब पितरों ने परशुराम से इतना कहा—तो वे अपने पितरों से कहने लगे—मैं युद्ध से नहीं हटा करता—यह मेरा दृढ़-व्रत है। मैं तो किसी भी युद्ध में प्रवृत्त होकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उससे फिर कभी नहीं हटा हूँ। हे पितरो! यदि लौटना है, तो युद्ध से गङ्गापुत्र भीष्म ही लौट जावे। मैं तो इस युद्ध से किसी प्रकार लौट नहीं सकता हूँ ॥२१-२२॥

ततस्ते मुनयो राजन्नृचीकप्रमुखास्तदा ॥२३॥
नारदेनैव सहिताः समागम्येदमब्रुवन्।
निवर्तस्व रणात्तात मानयस्व द्विजोत्तमम् ॥२४॥
इत्यवोचमहं तांश्च क्षत्रधर्मव्यपेक्षया।
मम व्रतमिदं लोके नाऽहं युद्धात्कदाचन ॥२५॥
विमुखो विनिवर्तेयं पृष्ठतोऽभ्याहतः शरैः।

हे राजन्! इसके अनन्तर ऋचीक आदि मुनि नारदजी के साथ इकट्ठे हो मेरे पास आकर बोले—हे तात! तुम रण से लौट जाओ और इस ब्राह्मण का मान रख दो। मैंने क्षत्रिय धर्म को ध्यान में रखकर उन सबसे कहा—मेरी भी यही प्रतिज्ञा है, कि मैं कभी भी युद्ध से पीठ पर बाण खाता हुआ नहीं लौटता हूं ॥२५॥

नाऽहं लोभान्न कार्पण्यान्न भयान्नाऽर्थकारणात् ॥२६॥
त्यजेयं शाश्वतं धर्ममिति मे निश्चिता मतिः।

मैं लोभ, कायरता; भय या धन के कारण कभी भी अपने शाश्वत धर्म को नहीं छोड़ूंगा—यह मेरा निश्चय है ॥२६॥

ततस्ते मुनयः सर्वे नारदप्रमुखा नृप ॥२७॥
भागीरथी च मे माता रणमध्यं प्रपेदिरे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे नृप ! इसके अनन्तर नारद आदि सारे ऋषि लोग और भागीरथी (गङ्गा) मेरी माता, रण के मध्य में पहुँची ॥२७॥

तथैवाऽऽत्तशरो धन्वी तथैव दृढनिश्चयः ॥
स्थिरोहमाहवे योद्धुं ततस्ते राममब्रुवन् ॥२८॥
समेत्य सहिता भूयः समरे भृगुनन्दनम् ।
नावनीतं हि हृदयं विप्राणां शाम्य भार्गव ॥२९॥

इस समय मैंने बाण और धनुष उसी दृढ़ता से धारण कर रखे थे और वही मेरा दृढ़ निश्चय था। मैं रण-भूमि में युद्ध के लिए सन्नद्ध हुआ खड़ा था, तब वे सब लोग भृगुनन्दन परशुराम के पास इकट्ठे होकर पहुंचे और कहने लगे-- हे भार्गव ! ब्राह्मणों का हृदय नवनीत (मक्खन) की भांति अत्यन्त ही कोमल होता है। तुमको ही अपनी कोमलता के कारण शान्त हो जाना चाहिए ॥३८-२९॥

राम राम निवर्तस्व युद्धादस्माद् द्विजोत्तम ।
अवध्यो वै त्वया भीष्मस्त्वं च भीष्मस्य भार्गव ॥३०॥

हे द्विजोत्तम ! राम ! तुम अब इस युद्ध से पृथक् हो जाओ। हे भार्गव ! न तो तुमको भीष्म मारना चाहिए और न भीष्म को तुम्हें मारना उचित है ॥३०॥

एवं ब्रुवन्तस्ते सर्वे प्रतिरुद्ध्य रणाजिरम् ।
न्यासयाञ्चक्रिरे शस्त्रं पितरो भृगुनन्दनम् ॥३१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार कहते हुए उन पितरों ने यज्ञभूमि को रोक लिया और भृगुनन्दन परशुराम से शस्त्र त्याग करवा दिया ॥३१॥

ततोऽहं पुनरेवाऽथ तानष्टौ ब्रह्मवादिनः ।
अद्राक्षं दीप्यमानान्वै ग्रहानष्टाविवोदितान् ॥३२॥

इसी समय मुझे भी फिर वे ही आठ ब्रह्मवादी ऋषि दिखाई पड़े, जो उदय को प्राप्त हुए ग्रहों की तरह देदीप्यमान हो रहे थे।

ते मां सप्रणयं वाक्यमब्रुवन्समरे स्थितम् ।
प्रैहि रामं महाबाहो गुरुं लोकहितं कुरु ॥३३॥

उन्होंने प्रेमपूर्वक युद्धभूमि में स्थित मुझसे कहा— हे महाबाहो ! तुम अपने गुरु परशुराम के पास जाओ और सँसार का कल्याण करो ॥३३॥

दृष्ट्वा निवर्तितं रामं सुहृद्वाक्येन तेन वै ।
लोकानां च हितं कुर्वन्नहमप्याददे वचः ॥३४॥

मैंने देखा, कि परशुराम युद्ध से निवृत्त हो चुका है, तो अपने हितकर्ताओं के वाक्य से संसार का हित दृष्टि में रखकर मैंने भी उन ब्रह्मवादियों का वचन स्वीकार कर लिया ॥३४॥

ततोऽहं राममासाद्य ववन्दे भृशविक्षतः ।
रामश्चाऽभ्युत्स्मयन्प्रेम्णा मामुवाच महातपाः ॥३५॥

यद्यपि मैं बहुत ही घायल था, तो भी परशुराम के समीप पहुँचा और उनको झुक कर प्रणाम किया। मुझे देख कर महातपस्वी परशुराम प्रेम से मुस्कुराये और कहने लगे ॥३५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन्क्षत्रियः पृथिवीचरः ।
गम्यतां भीष्म युद्धेऽस्मिंस्तोषितोऽहं भृशं त्वया ॥३६॥

हे भीष्म ! आजकल पृथिवी पर तेरे सदृश कोई क्षत्रिय नहीं है । अब तुम जाओ, तुमने इस युद्ध में मुझे सन्तुष्ट कर दिया है ।

मम चैव समक्षं तां कन्यामाहूय भार्गवः ।
उक्तवान्दीनया वाचा मध्ये तेषां महात्मनाम् ॥३७॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि युद्ध-निवृत्तौ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८५॥

मेरे सामने ही भृगुनन्दन परशुराम ने उस कन्या को बुलाया और उन सब महात्माओं के मध्य में उससे बड़ी दीन वाणी से यह कहा ॥३७॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में भीष्म परशुराम के युद्ध के निवृत्त होने का एक सौ पिचासीवां अध्याय समाप्त हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ छियासीवां अध्याय

राम उवाच—

प्रत्यक्षमेतल्लोकानां सर्वेषामेव भाविनि ।
यथा शक्त्या मया युद्धं कृतं वै पौरुषं परम् ॥१॥
न चैवमपि शक्नोमि भीष्मं शस्त्रभृतां वरम् ।
विशेषयितुमत्यर्थमुत्तमास्त्राणि दर्शयन् ॥२॥

परशुराम बोले–हे भाविनि ! सारे संसार को प्रत्यक्ष हो गया, कि मैंने यथाशक्ति तुम्हारे लिए युद्ध किया और अपना पुरुषार्थ दिखलाया, परन्तु मैं शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, भीष्म को अच्छी तरह जीतने में समर्थ नहीं हुआ। यद्यपि मैंने उत्तम २ शस्त्रों का प्रयोग किया, परन्तु वे सब असफल रहे ॥१-२॥

एषा मे परमा शक्तिरेतन्मे परमं बलम् ।
यथेष्टं गम्यतां भद्रे किमन्यद्वा करोमि ते ॥३॥

हे भद्रे ! मेरी तो यही सबसे बड़ी शक्ति थी और यही बड़ा बल था। अब तुम अपनी इच्छानुसार जाओ–इस परिस्थिति में जो कुछ मैं और कर सकता हूँ-वह बताओ ॥३॥

भीष्ममेव प्रपद्यस्व न तेऽन्या विद्यते गतिः ।
निर्जितो ह्यस्मि भीष्मेण महास्त्राणि प्रमुञ्चता ॥४॥

अब तो तू भीष्म के पास स्वयं जा सकती है, तेरे पास अन्य कोई मार्ग नहीं है। महान् अस्त्रों का प्रयोग करके मुझे भीष्मने जीत लिया ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवमुक्त्वा ततो रामो विनिःश्वस्य महामनाः ।
तूष्णीमासीत्ततः कन्या प्रोवाच भृगुनन्दनम् ॥५॥

इतना कहकर मनस्वी परशुराम ने लम्बी सांस मारी और फिर वह चुप हो गया। अब भृगुनन्दन राम से वह राजकन्या अम्बा कहने लगी ॥५॥

भगवन्नेवमेवैतद्यथाऽऽह भगवांस्तथा ।
अजेयो युधि भीष्मोऽयमपि देवैरुदारधीः ॥६॥
यथाशक्ति यथोत्साहं मम कार्यं कृतं त्वया ।
अनिवार्यं रणे वीर्यमस्त्राणि विविधानि च ॥७॥
न चैव शक्यते युद्धे विशेषयितुमन्ततः ।
न चाऽहमेनं यास्यामि पुनर्भीष्मं कथञ्चन ॥८॥

हे भगवन्! आप कह रहे हैं-वह ठीक है । यह महाबली भीष्म युद्ध में देवों से भी दुर्जय है । अपनी शक्ति और उत्साह के अनुसार आपने मेरा कार्य किया और युद्ध में महान् पराक्रम तथा अनेक दिव्य अस्त्रों का प्रयोग दिखाया, परन्तु फिर भी युद्ध में भीष्म को पराजित करने में समर्थ न हो सके। मैं तो भीष्म के समीप अब किसी प्रकार जा नहीं सकती हूँ ॥ ६-८ ॥

गमिष्यामि तु तत्राऽहं यत्र भीष्मं तपोधन ।
समरे पातयिष्यामि स्वयमेव भृगूद्वह ॥९॥

हे भृगूद्वह ! तपोधन, राम ! अब तो मैं भीष्म के सन्मुख तभी जाऊंगी-जब मैं उसको युद्धमें गिरा देनेकी शक्ति प्राप्त कर लूंगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवमुक्त्वा ययौ कन्या रोषव्याकुललोचना ।
तापस्ये धृतसङ्कल्पा सा मे चिन्तयती वधम् ॥१०॥

हे राजन् ! इतना कहकर रोष से व्याकुल नेत्र किए हुए मेरे वध के विचार में निमग्न, तपस्या की अभिलाषा करती हुई, वह राजकन्या वहां से चली गई ॥१०॥

ततो महेन्द्रं सहितैर्मुनिभिर्भृगुसत्तमः ।
यथागतं तथा सोऽगान्मामुपामन्त्र्य भारत ॥११॥

हे भारत ! इसके अनन्तर मुझसे विदा होकर भृगुवंशश्रेष्ठ परशुराम भी जिस प्रकार आये थे, उसी तरह अपने मुनियों के साथ महेन्द्र पर्वत को चले गए ॥११॥

ततो रथं समारुह्य स्तूयमानो द्विजातिभिः ।
प्रविश्य नगरं मात्रे सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥१२॥

अब मैंने भी ब्राह्मणों की स्तुतियों के साथ हस्तिनापुर में प्रवेश किया और युद्ध के सारे समाचार अपनी माता सत्यवती को सुनाए ॥१२॥

यथावृत्तं महाराज सा च मां प्रत्यनन्दत ।
पुरुषांश्चाऽऽदिशं प्राज्ञान्कन्यावृत्तान्तकर्मणि ॥१३॥

हे महाराज ! मुझसे ज्यों के त्यों वृत्तान्त सुनकर सत्यवती ने मेरा बड़ा उत्साह बढ़ाया । अब मैंने इस कन्या के वृत्तान्तों के जानने के लिए विद्वान् पुरुषों को नियुक्त किया ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिवसे दिवसे ह्यस्या गतिजल्पितचेष्टितम् ।
प्रत्याहरंश्च मे युक्ताः स्थिताः प्रियहिते सदा ॥१४॥

हे राजन् ! मेरे हित में तत्पर, नियुक्त किये हुए वे पुरुष, मेरे पास आकर राजकन्या अम्बा की प्रतिदिन की गति और चेष्टाओं का वर्णन करते थे ॥१४॥

यदैव हि वनं प्रायात्सा कन्या तपसे धृता ।
तदैव व्यथितो दीनो गतचेता इवाऽभवम् ॥१५॥

जब वह कन्या तप के लिए वन में घुसी, मैं उसी समय दीन और कातर होकर अचेत सा हो गया ॥१५॥

न हि मां क्षत्रियः कश्चिद्वीर्येण व्यजयद्युधि ।
ऋते ब्रह्मविदस्तात तपसा संशितव्रतात् ॥१६॥

हे तात ! मुझे कोई क्षत्रिय तो युद्ध में अपने पराक्रम से जीत नहीं सकता था । हां ! तप से शक्ति प्राप्त किये हुए ब्रह्मज्ञानी मुझे जीतने में समर्थ हो सकता था ॥१६॥

अपि चैतन्मया राजन्नारदेऽपि निवेदितम् ।
व्यासे चैव तथा कार्यं तौ चोभौ मामवोचताम् ॥१७॥

हे राजन् ! मैंने इस विषय की चर्चा नारद मुनि और वेदव्यास से की—उन दोनों ने मुझे यह कहा ॥१७॥

न विषादस्त्वया कार्यो भीष्म काशिसुतां प्रति ।
दैवं पुरुषकारेण को निवर्तितुमुत्सहेत् ॥१८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे भीष्म ! काशिराज की सुता के विषय में तुम्हें दुःख नहीं मानना चाहिए। कौन ऐसा पुरुष है, जो पुरुषार्थ से दैव को अपने वश में कर सकता है ॥१८॥

सा कन्या तु महाराज प्रविश्याऽऽश्रममण्डलम् ।
यमुनातीरमाश्रित्य तपस्तेपेऽतिमानुषम् ॥१९॥

हे महाराज ! वह कन्या आश्रमों के समूह में पहुंची और यमुना तीर पर आश्रम बना कर मनुष्यों से अनाचरणीय तप का अनुष्ठान करने लगी ॥१९॥

निराहारा कृशा रूक्षा जटिला मलपङ्किनी ।
षण्मासान्वायुभक्षा च स्थाणुभूता तपोधना ॥२०॥

इस तपस्विनी कन्या ने निराहार रह कर छः महीने तक वायु का भक्षण किया, जिससे स्थाणु (शुष्क काष्ठ) के समान जड़ीभूत हो गई। इसके मैल और जटा बढ़ गई एवं इसका शरीर सूख कर महान् कृश हो गया ॥२०॥

यमुनाजलमाश्रित्य संवत्सरमथाऽपरम् ।
उदवासं निराहारा पारयामास भाविनी ॥२१॥

इस मनस्विनी कन्या ने यमुना के जल में प्रवेश करके तथा एक वर्ष तक निराहार व्रत परायण रह कर बास किया ॥२१॥

शीर्णपर्णेन चैकेन पारयामास सा परम् ।
संवत्सरं तीव्रकोपा पादांगुष्ठाग्रधिष्ठिता ॥२२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह तीव्र कोपधारिणी राजकन्या-अपने पैर के अंगुष्ठ भाग का आश्रय लेकर तथा एक सूखे पत्ते का आहार करके एक वर्ष तक व्रत करती रही ॥२२॥

एवं द्वादश वर्षाणि तापयामास रोदसी ।
निवर्त्यमानाऽपि च सा ज्ञातिभिर्नैव शक्यते ॥२३॥

इसने बारह वर्ष तक युद्ध किया और पृथिवी तथा आकाश को तपा डाला। इसके बन्धुओं ने भी इसको बहुत रोका, परन्तु यह उनके कहने से भी न रुकी ॥२३॥

ततोऽगमद्वत्सभूमिं सिद्धचारणसेविताम् ।
आश्रमं पुण्यशीलानां तापसानां महात्मनाम् ॥२४॥

यह अब सिद्ध और चारणों से सेवित वत्स भूमि पर पहुँची, वहां पर महाभाग पुण्यात्मा ऋषियों के आश्रम थे ॥२४॥

तत्र पुण्येषु तीर्थेषु साऽऽप्लुताङ्गी दिवानिशम् ।
व्यचरत्काशिकन्या सा यथाकामविचारिणी ॥२५॥

वह काशिराज पुत्री, उस प्रदेश के पवित्र तीर्थों के जलों में एक दिन स्नान करने लगी। यह अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ जाना चाहती—चली जाती थी ॥२५॥

नन्दाश्रमे महाराज तथोलूकाश्रमे शुभे ।
च्यवनस्याऽऽश्रमे चैव ब्रह्मणः स्थान एव च ॥२६॥
प्रयागे देवयजने देवारण्येषु चैव ह ।
भोगवत्यां महाराज कौशिकस्याऽऽश्रमे तथा ॥२७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माण्डव्यस्याऽऽश्रमे राजन्दिलीपस्याऽऽश्रमे तथा ।
रामह्रदे च कौरव्य पैलगर्गस्य चाऽऽश्रमे ॥२८॥
एतेषु तीर्थेषु तदा काशिकन्या विशाम्पते ।
आप्लावयत गात्राणि व्रतमास्थाय दुष्करम् ॥२९॥

हे महाराज ! नन्दाश्रम, उलूकाश्रम, च्यवनाश्रम, ब्रह्मस्थान, प्रयाग, देवयजन, देवारण्य, भोगवती, कौशिक, माण्डव्य मुनि के आश्रम, दिलीपाश्रम, रामह्रद, पैलगर्गाश्रम आदि तीर्थ स्थानों पर यह काशिराज कन्या पहुँचती और परम दुष्कर व्रत का आचरण करती हुई अपने शरीर को तीर्थों में धोती थी ॥२६-२९॥

तामब्रवीच्च कौरव्य मम माता जले स्थिता ।
किमर्थं क्लिश्यसे भद्रे तथ्यमेव वदस्व मे ॥३०॥

हे कौरव्य ! एक दिन वह राजकन्या जल में स्थित थी, तब मेरी माता गङ्गादेवी उससे बोलीं—हे भद्रे ! तू इतना कष्ट क्यों उठा रही है--मुझे सत्य २ इसका कारण बता ॥३०॥

सैनामथाऽब्रवीद्राजन्कृताञ्जलिरनिन्दिता ।
भीष्मेण समरे रामो निर्जितश्चारुलोचने ॥३१॥
कोऽन्यस्तमुत्सहेज्जेतुमुद्यतेषु महीपतिः ।

हे राजन् ! इस सर्वाङ्ग-सुन्दरी कन्या ने मेरी माता गङ्गादेवीसे कहा-- हे चारुलोचने ! भीष्म ने युद्ध में परशुराम को जीत लिया । अब कौन सा शस्त्रधारी राजा है, जो भीष्म को युद्ध में पराजित कर सके ॥३१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साऽहं भीष्मविनाशाय तपस्तप्स्ये सुदारुणम् ॥३२॥
विचरामि महीं देवि यथा हन्यामहं नृपम् ।
एतद्व्रतफलं देवि परमस्मिन्यथा हि मे ॥३३॥

मैंने भीष्म के वध के लिए यह दारुण तप करना आरम्भ किया है। हे देवि ! मैं इसीलिए पृथिवी पर घूमती हूं, कि किसी प्रकार राजकुमार भीष्म का वध कर सकूं। हे देवि ! यही मेरे व्रत का परम उद्देश्य है। मैं यही चाहती हूँ, कि इस तप में मुझे यह सिद्धि मिल जावे ॥३२-३३॥

ततोऽब्रवीत्सागरगा जिह्मं चरसि भाविनि ।
नैष कामोऽनवद्याङ्गि शक्यः प्राप्तुं त्वयाऽबले ॥३४॥

अब गङ्गादेवी ने कहा—हे भाविनि ! तू तो बड़ा विपरीत कार्य करना चाहती है। हे सर्वाङ्गसुन्दरि ! अब तो तुम अपने इस मनोरथ प्राप्त करने में सफलता नहीं कर सकोगी ॥३४॥

यदि भीष्मविनाशाय काश्ये चरसि वै व्रतम् ।
व्रतस्था च शरीरं त्वं यदि नाम विमोक्ष्यसि ॥३५॥
नदी भविष्यसि शुभे कुटिला वार्षिकोदका ।
दुस्तीर्था न तु विज्ञेया वार्षिकी नाऽष्टमासिकी ॥३६॥
भीमग्राहवती घोरा सर्वभूतभयङ्करी ।

हे काशिराज कन्ये ! जो तुम भीष्म के विनाश के लिए व्रत करती हुई अपने शरीर को छोड़ोगी, तो तुम वर्ष दिन तक बहने वाली टेढ़ी सीधी नदी बनोगी, इस वार्षिकी शब्द का अभिप्राय यही है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि वर्ष दिन में चार महीने तक बहोगी-न तो आठ महीने ही तुम में जल रहेगा और न वर्ष दिन तक जल रहेगा। इस प्रकार तुम निन्दनीय तीर्थ कहलाओगी । भयानक ग्राह होने से तुम सब प्राणियोंको भयङ्कर और घोर प्रतीत होगी ॥३५-३६॥

एवमुक्त्वा ततो राजन्काशिकन्यां न्यवर्तत ॥३७॥
माता मम महाभागा स्मयमानेव भाविनी ।

हे राजन् ! मेरी माता महाभागा गङ्गदेवी ने इतना कह कर हंसते २ महाभागा काशिराज कन्या अम्बा को विदा किया ॥३७॥

कदाचिदष्टमे मासि कदाचिद्दशमे तथा ।
न प्राश्नीतोदकमपि पुनः सा वरवर्णिनी ॥३८॥

यह सुन्दरी काशिराज कन्या कभी तो आठ और कभी दश महीने तक जल भी नहीं पीती थी ॥३८॥

सा वत्सभूमिं कौरव्य तीर्थलोभात्ततस्ततः ।
पतिता परिधावन्ती पुनः काशिपतेः सुता ॥३९॥
सा नदी वत्सभूम्यां तु प्रथिताऽम्बेति भारत ।
वार्षिकी ग्राहबहुला दुस्तीर्था कुटिला तथा ॥४०॥

हे कौरव्य ! तीर्थ के लोभ से फिर वत्सभूमि में वह काशिराज कन्या घूमने लगी । हे भारत ! वहां पर वह शरीर छोड़कर नदी बन गई, जिसका नाम अम्बा नदी है । यह चार महीने बहती है, इसमें बहुत से ग्राह होने से यह बड़ी दुस्तर और कुटिल है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सा कन्या तपसा तेन देहार्धेन व्यजायत ।
नदी च राजन्वत्सेषु कन्या चैवाऽभवत्तदा ॥४१॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि अम्बातपस्यायां षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८६॥

हे राजन् ! यह कन्या आधे भाग से तो वत्सदेश में नदी बन गई और आधे भाग से कन्या ही बनी रही ॥४१॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में अम्बा की तपस्या का एक सौ छियासीवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ सत्तासीवां अध्याय

भीष्म उवाच—

ततस्ते तापसाः सर्वे तपसे धृतनिश्चयाम् ।
दृष्ट्वा न्यवर्तयंस्तात किं कार्यमिति चाऽब्रुवन् ॥१॥

भीष्म बोले—हे तात ! उस स्थान के अनेक तपस्वियों ने तप करने में दृढ़ प्रतिज्ञा धारण करने वाली राजकन्या अम्बा को बहुत रोका एवं इससे इतने कठिन तप करने का कारण भी पूछा ।

तानुवाच ततः कन्या तपोवृद्धानृषींस्तदा ।
निराकृताऽस्मि भीष्मेण भ्रंशिता पतिधर्मतः ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब राजकन्या अम्बा ने इन तप वृद्ध ऋषियों को बताया--कि मुझे भीष्म ने क्लेशित किया तथा मेरे पति ग्रहण करने में विघ्न खड़ा कर दिया ॥२॥

वधार्थं तस्य दीक्षा मे न लोकार्थं तपोधनाः ।
निहत्य भीष्मं गच्छेयं शान्तिमित्येव निश्चयः ॥३॥

हे तपोधनो ! मैं तो यह उग्र तप उसके वध के लिए ही कर रही हूं—मैं किसी लोक की प्राप्ति करना नहीं चाहती हूं । यदि मैं भीष्म का वध कर लूं—तो मुझे शान्ति मिल सकती है—यह निश्चय है ॥३॥

यत्कृते दुःखवसतिमिमां प्राप्ताऽस्मि शाश्वतीम् ।
पतिलोकाद्विहीना च नैव स्त्री न पुमानिह ॥४॥

इस भीष्म के कारण से ही मुझे यह सारी विपत्ति प्राप्त हुई है । मैं अपने पतिगृह से विहीन हो गई और अब न तो स्त्री हूं और न पुरुष ही गिनी जा सकती हूं ॥४॥

नाऽहत्वा युधि गाङ्गेयं निवर्तिष्ये तपोधनाः ।
एष मे हृदि सङ्कल्पो यदिदं कथितं मया ॥५॥

हे तपोधनो ! मैं युद्ध में गङ्गापुत्र भीष्म के मारे विना इस तपस्या को नहीं छोड़ सकती हूं । मेरे हृदय में जो सङ्कल्प था, वह मैंने तुम को सुना दिया ॥५॥

स्त्रीभावे परिनिर्विण्णा पुंस्त्वार्थे कृतनिश्चया ।
भीष्मे प्रतिचिकीर्षामि नाऽस्मि वार्येति वै पुनः ॥६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब मैं स्त्री योनि से खिन्न हो गई हूँ और पुरुष जन्म प्राप्त करना चाहती हूँ। मैं तो भीष्म से बदला लेना चाहती हूँ—इसके लिए तुमको मुझे इस कार्य से नहीं रोकना चाहिए ॥६॥

तां देवो दर्शयामास शूलपाणिरुमापतिः ।
मध्ये तेषां महर्षीणां स्वेन रूपेण तापसीम् ॥७॥

इसी बीच में उन तपस्वियों के मध्य में शूल धारण करने वाले उमापति शङ्कर उस तपस्विनी कन्या को दिखाई पड़े ॥७॥

छन्द्यमाना वरेणाऽथ सा वव्रे मत्पराजयम् ।
हनिष्यसीति तां देवः प्रत्युवाच मनस्विनीम् ॥८॥

उन्होंने इससे वर मांगने को कहा—तो इसने मेरा पराजय उससे माँग लिया। महादेव ने उस यशस्विनी को वरदान दे दिया, कि तुम भीष्म को मार सकोगी ॥८॥

ततः सा पुनरेवाऽथ कन्या रुद्रमुवाच ह ।
उपपद्येत्कथं देव स्त्रिया युधि जयो मम ॥९॥

अब राजकन्या अम्बा ने फिर भगवान् शङ्कर से कहा—हे देव ! मुझ स्त्री को युद्ध में भीष्म से कैसे विजय प्राप्त हो सकेगी ॥९॥

स्त्रीभावेन च मे गाढं मनः शान्तमुमापते ।
प्रतिश्रुतश्च भूतेश त्वया भीष्मपराजयः ॥१०॥

हे उमापते ! मैं तो स्त्री हूँ और तपस्या से मेरा मन और शान्त हो गया है। हे भूतेश ! तुमने तो भीष्म का मुझसे पराजित होने का वरदान दे दिया है ॥१०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथा स सत्यो भवति तथा कुरु वृषध्वज ।
यथा हन्यां समागम्य भीष्मं शान्तनवं युधि ॥११॥

हे वृषध्वज ! अब यह जिस तरह सत्य हो सके—आप वही प्रयत्न करें । जिससे मैं शान्तनुपुत्र भीष्म को युद्ध में प्राप्त करके मार डालूं ॥११॥

तामुवाच महादेवः कन्यां किल वृषध्वजः ।
न मे वागनृतं प्राह सत्यं भद्रे भविष्यति ॥१२॥

वृषध्वज, महादेव, उस कन्या से बोले—हे भद्रे ! मेरी वाणी अनृत नहीं हो सकती है । हे भद्रे ! अब तो यह सत्य होकर ही रहेगी ॥ १२ ॥

हनिष्यसि रणे भीष्मं पुरुषत्वं च लप्स्यसे ।
स्मरिष्यासि च तत्सर्वं देहमन्यं गता सती ॥१३॥

तुझे पुंस्त्व प्राप्त होगा और तू युद्ध में भीष्म को मार सकेगी एवं अन्य देह में भी तुझे यह सारी प्रतीति ज्यों की त्यों बनी रहेगी ॥१३॥

द्रुपदस्य कुले जाता भविष्यसि महारथः ।
शीघ्रास्त्रश्चित्रयोधी च भविष्यसि सुसम्मतः ॥१४॥

तू द्रुपद के कुल में महारथी होकर जन्म लेगी । उस समय तू बड़ी शीघ्रता से विचित्र ढङ्ग से युद्ध करने वाली वीरों में मान्य होगी ॥१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथोक्तमेव कल्याणि सर्वमेतद्भविष्यति ।
भविष्यसि पुमान्पश्चात्कस्माच्चित्कालपर्ययात् ॥१५॥

हे कल्याणि ! जो कुछ मैंने कहा है—वह सब कुछ होगा। कुछ काल के अनन्तर तुम स्वयं पुरुष बन जाओगी ॥१५॥

एवमुक्त्वा महादेवः कपर्दी वृषभध्वजः ।
पश्यतामेव विप्राणां तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥१६॥

कपर्द धारी, वृषभध्वज, महादेव, इतना कह कर सारे ब्राह्मणों के देखते २ अन्तर्हित हो गए ॥१६॥

ततः सा पश्यतां तेषां महर्षीणामनिन्दिता ।
समाहृत्य वनात्तस्मात्काष्ठानि वरवर्णिनी ॥१७॥
चितां कृत्वा सुमहतीं प्रदाय च हुताशनम् ।
प्रदीप्तेऽग्नौ महाराज रोषदीप्तेन चेतसा ॥१८॥
उक्त्वा भीष्मवधायेति प्रविविवेश हुताशनम् ।
ज्येष्ठा काशिसुता राजन्यमुनामभितो नदीम् ॥१९॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि अम्बा-हुताशनप्रवेशे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८७॥

हे महाराज ! इसके अनन्तर वह सुन्दरी सर्वगुणसम्पन्न, काशिराज की ज्येष्ठ कन्या अम्बा, यमुना नदी के तट पर विशाल चिता बना कर मैं भीष्म का वध कर सकूं—इस वाक्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को कहती हुई कोप से आविष्ट चित्त होकर अग्नि में घुस गई। इसने वन में इधर उधर से काष्ठ का संचयन करके चिता बनाई।

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में अम्बा के हुताशन प्रवेश का एक सौ सत्तासीवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ अट्ठासीवां अध्याय

दुर्योधन उवाच—

कथं शिखण्डी गाङ्गेय कन्या भूत्वा पुरा तदा।
पुरुषोऽभूद्युधि श्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥

दुर्योधन कहने लगा-हे युधिश्रेष्ठ! पितामह! गाङ्गेय! शिखण्डी किस प्रकार प्रथम कन्या हुआ और फिर कैसे पुरुष बना-आप मुझे इसका वृत्तान्त सुनाओ ॥१॥

भीष्म उवाच—

भार्या तु तस्य राजेन्द्र द्रुपदस्य महीपतेः।
महिषी दयिता ह्यासीदपुत्रा च विशाम्पते ॥२॥

भीष्म ने कहा—हे राजेन्द्र! विशाम्पते! महीपति द्रुपद की रानी पुत्र हीन थी, जो उन्हें बड़ी ही प्रिय थी। ॥२॥

एतस्मिन्नेव काले तु द्रुपदो वै महीपतिः।
अपत्यार्थे महाराज तोषयामास शङ्करम् ॥३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्मद्वधार्थं निश्चित्य तपो घोरं समास्थितः ।
ऋते कन्यां महादेव पुत्रो मे स्यादिति ब्रुवन् ॥४॥
भगवन्पुत्रमिच्छामि भीष्मं प्रतिचिकीर्षया ।
इत्युक्तो देवदेवेन स्त्रीपुमांस्ते भविष्यति ॥५॥
निवर्तस्व महीपाल नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।

हे महाराज ! इसी समय में राजा द्रुपद ने पुत्रोत्पत्ति के लिए भगवान् शंकर को प्रसन्न किया । इसने भी मेरे वध के लिए महा-घोर तप किया । इसने शङ्कर से वरदान मांगा-हे महादेव ! कन्या के अतिरिक्त मेरे एक पुत्र होना चाहिए । हे भगवन् ! मैं तो भीष्म का प्रतीकार करने को एक पुत्र की अभिलाषा करता हूं । इसके इतना कहने पर देवाधिदेव शंकर ने कहा—तेरे स्त्री और पुरुष दोनों के चिन्हधारण सन्तान उत्पन्न होगी । हे महीपाल ! अब तुम जाओ—मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता है ॥३-५॥

स तु गत्वा च नगरं भार्यामिदमुवाच ह ॥६॥
कृतो यत्नो महादेवस्तपसाऽऽराधितो मया ।
कन्या भूत्वा पुमान्भावी इति चोक्तोऽस्मि शम्भुना ॥

द्रुपदराज अपने नगर में पहुंचा और अपनी भार्या से बोला—मैंने पुत्र के लिए प्रयत्न किया है और तप करके महादेव को प्रसन्न कर लिया है । भगवान् शंकर ने कहा है, कि प्रथम कन्या होकर वही सन्तान फिर तुम्हारे पुत्र बन जावेगी ॥६-७॥

पुनः पुनर्याच्यमानो दिष्टमित्यब्रवीच्छिवः ।
न तदन्यच्च भविता भवितव्यं हि तत्तथा ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने बार २ उनकी प्रार्थना की, परन्तु शिव ने कहा ऐसा ही होगा। यह अब विरुद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि होनहार ऐसा ही है ॥८॥

ततः सा नियता भूत्वा ऋतुकाले मनस्विनी ।
पत्नी द्रुपदराजस्य द्रुपदं प्रविवेश ह ॥९॥

इसके अनन्तर मनस्विनी द्रुपदराज पत्नी ऋतुकाल के नियमों से युक्त हुई और द्रुपद के साथ मिथुनी भाव को प्राप्त हुई।

लेभे गर्भं यथाकालं विधिदृष्टेन कर्मणा ।
पार्षतस्य महीपाल यथा मां नारदोऽब्रवीत् ॥१०॥

हे महीपाल ! दैव की प्रेरणा से द्रुपदराज के द्वारा उसकी महिषी के गर्भ की स्थिति हो गई। यह बात मुझे नारद ने सुनाई थी ॥१०॥

ततो दधार सा देवी गर्भं राजीवलोचना ।
तां स राजा प्रियां भार्यां द्रुपदः कुरुनन्दन ॥११॥
पुत्रस्नेहान्महाबाहुः सुखं पर्यचरत्तदा ।
सर्वानभिप्रायकृतान्भार्याऽलभत कौरव ॥१२॥
अपुत्रस्य सतो राज्ञो द्रुपदस्य महीपतेः ।

अब कमल के समान नेत्र वाली रानी ने गर्भ धारण किया। हे कुरुनन्दन ! महाबाहु द्रुपदराज ने पुत्र के स्नेह से अपनी प्रिय भार्या की बड़े सुख से सेवा शुश्रूषा की। हे कौरव ! गर्भकाल में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो रानी की अभिलाषा होती थी, वे सब पूरी कर दी जाती थी, क्योंकि राजा द्रुपद, पुत्र हीन होने से क्लेशित था ॥११-१२॥

यथाकालं तु सा देवी महिषी द्रुपदस्य ह ॥१३॥
कन्यां प्रवररूपां तु प्राजायत नराधिप ।

हे नराधिप ! राजा द्रुपद की रानी ने समय पर एक अतीव सुन्दर कन्या उत्पन्न की ॥१३॥

अपुत्रस्य तु राज्ञः सा द्रुपदस्य मनस्विनी ॥१४॥
ख्यापयामास राजेन्द्र पुत्रो ह्येष ममेति वै ।

हे राजेन्द्र ! पुत्रहीन राजा द्रुपद की रानी ने यह प्रसिद्ध कर दिया, कि मेरे पुत्र उत्पन्न हुआ है ॥१४॥

ततः स राजा द्रुपदः प्रच्छन्नाया नराधिप ॥१५॥
पुत्रवत्पुत्रकार्याणि सर्वाणि समकारयत् ।

हे नराधिप ! राजा द्रुपद ने भी उस प्रच्छन्न कन्या के सारे संस्कार आदि कार्य पुत्र के समान ही पूरे किए ॥१५॥

रक्षणं चैव मन्त्रस्य महिषी द्रुपदस्य सा ॥१६॥
चकार सर्वयत्नेन ब्रुवाणा पुत्र इत्युत ।

राजा द्रुपद की रानी ने अपनी कन्या को पुत्र कहकर प्रसिद्ध किया, अतएव वह इस प्रच्छन्न कार्य की बड़ी ही सावधानी से सब यत्नों से रक्षा करती रहती थी ॥१६॥

न च तां वेद नगरे कश्चिदन्यत्र पार्षतात् ॥१७॥
श्रद्दधानो हि तद्वाक्यं देवस्याऽच्युततेजसः ।
छादायामास तां कन्यां पुमानिति च सोऽब्रवीत् ।१८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा द्रुपद को छोड़ कर नगर में कोई भी इस घटना का रहस्य नहीं जानता था। राजा द्रुपद देवाधिदेव महादेव के वचन पर श्रद्धा करके ऐसा कर रहा था। उसने भी इस कन्या को छुपाया और सर्वत्र यही प्रसिद्ध किया, कि मेरे पुत्र उत्पन्न हुआ है

जातकर्माणि सर्वाणि कारयामास पार्थिवाः।
पुंवद्विधानयुक्तानि शिखण्डीति च तां विदुः ॥१९॥

राजा द्रुपद ने जात-कर्म आदि सारे संस्कार पुत्र की भांति विधि-पूर्वक कराए। यही वह कन्या फिर शिखण्डी के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१९॥

अहमेकस्तु चारेण वचनान्नारदस्य च।
ज्ञातवान्देववाक्येन अम्बायास्तपसा तथा ॥२०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि शिखण्ड्युत्पत्ताव-
ष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८८॥

मैं तो किसी गुप्तचर नारद तथा अम्बा की तपस्या के वृत्तान्त और आकाश वाणी से यह वृतान्त पहिले ही जान चुका था ॥२०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में शिखण्डी की उत्पत्ति का एक सौ अट्ठासीवां अध्याय समाप्त हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ नवासीवां अध्याय

भीष्म उवाच—

चकार यत्नं द्रुपदः सुतायाः सर्वकर्मसु ।
ततो लेख्यादिषु तथा शिल्पेषु च परन्तप ॥१॥

भीष्म बोले—हे परन्तप ! राजा द्रुपद ने अपनी पुत्री को सारे कार्य करना सिखवाया । उसने लिखना, पढ़ना और शिल्पकार्य में उसको निपुण बनाया ॥१॥

इष्वस्त्रे चैव राजेन्द्र द्रोणशिष्यो बभूव ह ।
तस्य माता महाराज राजानं वरवर्णिनी ॥२॥
चोदयामास भार्यार्थं कन्यायाः पुत्रवत्तदा ।

हे राजेन्द्र ! बाणविद्या में यह भी द्रोण का ही शिष्य हुआ । हे महाराज ! इसकी सुन्दरी माता ने अपनी इस कन्या का पुत्र की भांति विवाह करने का भी अपने पति से आग्रह किया ॥२॥

ततस्तां पार्षतो दृष्ट्वा कन्यां सम्प्राप्तयौवनाम् ।
स्त्रियं मत्वा ततश्चिन्तां प्रपेदे सह भार्यया ॥३॥

राजा द्रुपद भी यौवन प्राप्त अपनी कन्या को देखकर चिन्ता करने लगा, कि इसका विवाह कन्या से या किसी वर से निश्चित करूं । इसको कन्या समझ कर राजा के चित्त पर चिन्ता ने अपना प्रभाव डाल दिया ॥३॥

द्रुपद उवाच—

कन्या ममेयं सम्प्राप्ता यौवनं शोकवर्धिनी ।
मया प्रच्छादिता चेयं वचनाच्छूलपाणिनः ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रुपद बोले—हे प्रिये ! यह मेरी कन्या यौवन को प्राप्त हो गई, इससे मेरा शोक बढ़ता जा रहा है। मैंने इसको शूलपाणि शंकर के वचन से अब तक छुपा रखा था ॥४॥

भार्योवाच—

न तन्मिथ्या महाराज भविष्यति कथञ्चन।
त्रैलोक्यकर्ता कस्माद्धि वृथा वक्तुमिहाऽर्हति ॥५॥

भार्या बोली—हे महाराज ! आप चिन्ता न करें—यह वचन कभी मिथ्या नहीं होगा। जो त्रैलोक्य के कर्ता हैं, वे कैसे वृथा वचन बोल सकते हैं ॥५॥

यदि ते रोचते राजन्वक्ष्यामि शृणु मे वचः।
श्रुत्वेदानीं प्रपद्येथाः स्वां मतिं पृषतात्मज ॥६॥

हे राजन् ! यदि तुमको अच्छा प्रतीत हो, तो मैं तुमसे एक वचन कहती हूँ। हे पृषतात्मज ! इसको सुनकर जो तुमको उचित प्रतीत हो—वह करना ॥६॥

क्रियतामस्य यत्नेन विधिवद्दारसंग्रहः।
भविता तद्वचः सत्यमिति मे निश्चिता मतिः ॥७॥

अब तुम बड़ी सावधानी से इसका विवाह कर दो। मुझे तो निश्चय है, कि भगवान् शंकर का वचन सच्चा होगा ॥७॥

ततस्तौ निश्चयं कृत्वा तस्मिन्कार्येऽथ दम्पती।
वरयाञ्चक्रतुः कन्यां दशार्णाधिपतेः सुताम् ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब इन दोनों पति और पत्नी ने निश्चित करके दशार्ण देश के अधिपति की कन्या से इसका विवाह निश्चित कर दिया।

ततो राजा द्रुपदो राजसिंहः सर्वान्राज्ञः कुलतः सन्निशाम्य।
दाशार्णकस्य नृपतेस्तनूजां शिखण्डिने वरयामास दारान् ॥

राजाओं में श्रेष्ठ, राजा द्रुपद ने दशार्ण देश के राजा के कुल का कीर्तन करके उसकी कन्या को अपने बनावटी पुत्र शिखण्डी के लिए स्वीकार कर लिया ॥९॥

हिरण्यवर्मेति नृपो योऽसौ दाशार्णकः स्मृतः।
स च प्रादान्महीपालः कन्यां तस्मै शिखण्डिने ॥१०॥

दशार्ण देश का राजा हिरण्यवर्मा था। इस महीपाल ने शिखण्डी के लिए अपनी कन्या प्रदान कर दी ॥१०॥

स च राजा दशार्णेषु महानासीत्सुदुर्जयः।
हिरण्यवर्मा दुर्धर्षो महासेनो महामनाः ॥११॥

यह राजा हिरण्यवर्मा दशार्ण देश में बड़ा दुर्जय था। यह बड़ा दुर्धर्ष और महामनस्वी था। इसके पास बहुत विशाल सेना थी ॥११॥

कृते विवाहे तु तदा सा कन्या राजसत्तम।
यौवनं समनुप्राप्ता सा च कन्या शिखण्डिनी ॥१२॥

हे राजसत्तम! जब यह विवाह हो गया—तो वह कन्या भी युवति हुई और शिखण्डी भी तो कन्या ही थी ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृतदारः शिखण्डी च काम्पिल्यं पुनरागमत् ।
ततः सा वेद तां कन्यां कञ्चित्कालं स्त्रियं किल ।
हिरण्यवर्मणः कन्या ज्ञात्वा तां तु शिखण्डिनीम् ।१३।

शिखण्डी अपनी भार्या को ग्रहण करके कभी काम्पिल्य देशमें पहुँचा। इस समय उस कन्या ने यह जाना, कि यह मेरा पति भी कन्या ही है। उसे यह भी पता हो गया, कि कुछ दिन तक ही स्त्री रहेगा ॥१३॥

धात्रीणां च सखीनां च व्रीडयाना न्यवेदयत् ।
कन्यां पञ्चालराजस्य सुतां तां वै शिखण्डिनीम् ॥१४॥

हिरण्यवर्मा की कन्या ने अपने पति को शिखण्डिनी कन्या समझ कर लज्जा के साथ अपनी धाय या सखियों को इसका सारा वृत्तान्त कह सुनाया, कि यह पाञ्चालराज की कन्या शिखण्डी नहीं–शिखण्डिनी है ॥१४॥

ततस्ता राजशार्दूल धात्र्यो दाशार्णिकास्तदा ।
जग्मुरार्तिं परां प्रेष्याः प्रेषयामासुरेव च ॥१५॥

हे राजशार्दूल ! अब वे दशार्ण देश की सखी या धाय बड़ी दुःखी हुई और उन्होंने अपने देश के अधिपति के पास अपनी दासियां भेजी ॥१५॥

ततो दशार्णाधिपतेः प्रेष्याः सर्वा न्यवेदयन् ।
विप्रलम्भं यथावृत्तं स च चुक्रोध पार्थिवः ॥१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसके अनन्तर उन दासियों ने दशार्णाधिपति से शिखण्डी के कन्या होने की बात कह डाली। दशार्ण देश का राजा इस उलटे वृत्तान्त को सुनकर बड़ा ही कुपित हुआ ॥१६॥

शिखण्ड्यपि महाराज पुंवद्राजकुले तदा ।
विजहार मुदा युक्तः स्त्रीत्वं नैवाऽतिरोचयन् ॥१७॥

हे महाराज ! शिखण्डी भी उस राजगृह में राजकुमर का सा व्यवहार करता रहता था। वह बड़ी प्रीति से रनिवास में रह रहा था, परन्तु उसको भी अपना स्त्री भाव पसन्द नहीं था ॥१७॥

ततः कतिपयाहस्य तच्छ्रुत्वा भरतर्षभ ।
हिरण्यवर्मा राजेन्द्र रोषादार्तिं जगाम ह ॥१८॥

हे भरतर्षभ ! राजेन्द्र, जब राजा हिरण्यवर्मा ने कुछ दिन में यह वृत्तान्त सुना-तो वह बड़ी तीव्र पीड़ा को प्राप्त हुआ ॥१८॥

ततो दाशार्णको राजा तीव्रकोपसमन्वितः ।
दूतं प्रस्थापयामास द्रुपदस्य निवेशनम् ॥१९॥

इसके अनन्तर दशार्णराज ने तीव्र कोप से युक्त होकर राजा द्रुपद की राजधानी को दूत भेजे ॥१९॥

ततो द्रुपदमासाद्य दूतः काञ्चनवर्मणः ।
एक एकान्तमुत्सार्य रहो वचनमब्रवीत् ॥२०॥

इस हिरण्यवर्मा का दूत राजा द्रुपद के पास पहुंचा । इसने सबको वहां से हटाकर एकान्त में यह वचन कहा ॥२०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दाशार्णराजो राजंस्त्वामिदं वचनमब्रवीत् ।
अभिषङ्गात्प्रकुपितो विप्रलब्धस्त्वयाऽनघ ॥२१॥

हे राजन् ! दशार्णराज ने तुमको यह संदेशा भेजा है। हे अनघ ! तुमने उनको ठगकर उनका अपमान किया है, इससे वे बड़े ही कुपित हो रहे हैं ॥२१॥

अवमन्यसे मां नृपते नूनं दुर्मन्त्रितं तव ।
यन्मे कन्यां स्वकन्यार्थे मोहाद्याचितवानसि ॥२२॥

हे नृपते ! तुम्हारी यह दुश्चेष्टा से मेरा बड़ा ही अपमान हुआ है, जो तुमने अपनी कन्या का अपने मोह के कारण मेरी कन्या से विवाह करा दिया ॥ २२ ॥

तस्याऽद्य विप्रलम्भस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते ।
एष त्वां सजनामात्यमुद्धरामि स्थिरो भव ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते० अम्बोपाख्यानपर्वणि हिरण्यवर्मदूतागमने ऊननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८९॥

हे दुर्मति ! अब तुम इस अपमान का फल भोगो। अब मैं तुमको अपने अमात्य और जनों के साथ उखाड़ कर छोड़ूंगा— तुम सावधान हो जाओ ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में हिरण्यवर्मा के दूत के अपमान का एक सौ नवासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ नव्वेवां अध्याय

भीष्म उवाच—

एवमुक्तस्य दूतेन द्रुपदस्य तदा नृप ।
चोरस्येव गृहीतस्य न प्रावर्तत भारती ॥१॥

भीष्म बोले—हे राजन् ! जब दूत ने इतना कहा-तो पकड़े हुए चोर की भांति उसकी कुछ भी वाणी मुख से नहीं निकली ।

स यत्नमकरोत्तीव्रं सम्बन्धिन्यनुमानने ।
दूतैर्मधुरसम्भाषैर्न तदस्तीति सन्दिशन् ॥२॥

इसने अपने सम्बन्धी हिरण्यवर्मा को शान्त करने के लिए बड़ा यत्न किया और मधुर भाषण करने वाले दूतों द्वारा यह कहला भेजा, कि ऐसा नहीं है ॥२॥

स राजा भूय एवाऽथ ज्ञात्वा तत्त्वमथाऽगमत् ।
कन्येति पाञ्चालसुतां त्वरमाणो विनिर्ययौ ॥३॥
ततः सम्प्रेषयामास मित्राणाममितौजसाम् ।
दुहितुर्विप्रलम्भं तं धात्रीणां वचनात्तदा ॥४॥

उस राजा हिरण्यवर्मा ने फिर खोज की और इस बात को सत्य पाया, तो इसने बड़ी शीघ्रता से युद्ध-यात्रा (चढ़ाई) कर दी। इसने अपने अत्यन्त तेजस्वी मित्रों के पास भी धायों के द्वारा यह समाचार कहला भेजा, कि इस प्रकार मेरी कन्या की प्रवञ्चना की गई है ॥३-४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततः समुदयं कृत्वा बलानां राजसत्तमः ।
अभियाने मतिं चक्रे द्रुपदं प्रति भारत ॥५॥

हे भारत ! इस महाबली राजा ने बहुत सी सेना इकट्ठी की और द्रुपद पर चढ़ाई करने का निश्चय कर लिया ॥५॥

ततः सम्मन्त्रयामास मन्त्रिभिः स महीपतिः ।
हिरण्यवर्मा राजेन्द्र पाञ्चाल्यं पार्थिवं प्रति ॥६॥

राजा हिरण्यवर्मा ने अपने मन्त्रियों के साथ पाञ्चालराज द्वारा की गई इस घटना के विषय में सम्मति की ॥ ६ ॥

तत्र वै निश्चितं तेषामभूद्राज्ञां महात्मनाम् ।
तथ्यं भवति चेदेतत्कन्या राजञ्शिखण्डिनी ॥७॥
बध्वा पञ्चालराजानमानयिष्यामहे गृहम् ।

उन सब महाबली राजाओंने निश्चित किया, कि यदि शिखण्डी सचमुच ही शिखण्डिनी कन्या हुआ-तो हम पाञ्चालराज द्रुपद को बांध कर अवश्य तुम्हारे घर ले आवेंगे ॥७॥

अन्यं राजानमाधाय पञ्चालेषु नरेश्वरम् ॥८॥
घातयिष्याम नृपतिं पाञ्चालं सशिखण्डिनम् ॥९॥

यही नहीं, हम पाञ्चाल देश का राजा ही दूसरा बना देंगे और इस राजा द्रुपद को शिखण्डी के सहित मार डालेंगे ॥८॥

तत्तदाऽनृतमाज्ञाय पुनर्दूतान्नराधिपाः ।
प्रास्थापयत्पार्षताय निहन्मीति स्थिरो भव ॥१०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा हिरण्यवर्मा ने द्रुपद के दूतों को फिर झूठा समझा और अपना दूत भेजा, कि अब तुम सावधान हो जाओ-मैं तुम्हारे वध के लिए आ रहा हूँ ॥१०॥

भीष्म उवाच—

स हि प्रकृत्या वै भीतः किल्बिषी च नराधिपः ।
भयं तीव्रमनुप्राप्तो द्रुपदः पृथिवीपतिः ॥११॥

भीष्म ने कहा—इस राजा के मन में तो पाप था, इससे यह पृथिवीपति द्रुपदराज बहुत ही भयभीत हुआ ॥११॥

विसृज्य दूतान्दाशार्णे द्रुपदः शोकमूर्छितः ।
समेत्य भार्यां रहिते वाक्यमाह नराधिपः ॥१२॥
भयेन महताऽऽविष्टो हृदि शोकेन चाऽऽहतः ।
पाञ्चालराजो दयितां मातरं वै शिखण्डिनः ॥१३॥
अभियास्यति मां कोपात्सम्बन्धी सुमहाबलः ।
हिरण्यवर्मा नृपतिः कर्षमाणो वरूथिनीम् ॥१४॥

राजा द्रुपद ने दशार्ण देश को दूत भेजकर आप शोक से व्याकुल हो गया। द्रुपदराज अपनी प्रिय भार्या शिखण्डी की माता के पास पहुँचा और एकान्त में यह वचन बोला—हे भद्रे! मैं बड़े भय से व्याकुल हो रहा हूँ। मेरे हृदय में शोक की कील गड गई है। महाबली मेरा सम्बन्धी हिरण्यवर्मा मुझ पर चढ़ा आ रहा है। इसके साथ बहुत बड़ी सेना है ॥१२-१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किमिदानीं करिष्यावो मूढो कन्यामिमां प्रति ।
शिखण्डी किल पुत्रस्ते कन्येति परिशङ्कितः ॥१५॥

अब हम क्या करें; हम तो दोनों किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो रहे हैं। शिखण्डी जो तेरा पुत्र बना है, उसे कन्या बताया जा रहा है।

इति सञ्चिन्त्य यत्नेन समित्रः सबलानुगः ।
वञ्चितोऽस्मीति मन्वानो मां किलोद्धर्तुमिच्छति ।१६॥

राजा हिरण्यवर्मा ने इसको अपना अपमान समझा, इस लिए वह विचार करके बड़े यत्न के साथ मित्र और सेना साथ लिए मेरे ऊपर चढ़ा आता है और मुझे उखाड़ देना चाहता है।

किमत्र तथ्यं सुश्रोणि मिथ्या किं ब्रूहि शोभने ।
श्रुत्वा त्वत्तः शुभं वाक्यं संविधास्याम्यहं तथा ।१७

हे सुश्रोणि ! शोभने ! इसमें कौन सी बात सत्य और कौन सी मिथ्या है। इस विषय में तुमसे सुनकर मैं वैसा ही प्रयत्न करूंगा ॥ १७ ॥

अहं हि संशयं प्राप्तो बाला चेयं शिखण्डिनी ।
त्वं च राज्ञि महत्कृच्छ्रं सम्प्राप्ता वरवर्णिनि । १८॥

हे प्रिये ! मुझे भी यह संदेह हो रहा है, कि अभी तक यह शिखण्डी कन्या ही है। हे सुन्दरी ! रानी ! अब तुम भी बड़ी विपत्ति में पड़ गई हो ॥१८॥

सा त्वं सर्वविमोक्षाय तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः ।
तथा विदध्यां सुश्रोणि कृत्यमाशु शुचिस्मिते ॥१९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे सुश्रोणि ! अब तुमसे मैं इसका सारा तत्व पूछ रहा हूँ। तुम सबके छुटकारे का ध्यान करके मुझे सत्य २ बताओ। हे शुचिस्मिते ! मैं फिर इस समय उसी ढंग के उपाय का अवलम्बन करूं ॥१९॥

शिखण्डिनि च मा भैस्त्वं विधास्ये तत्र तत्त्वतः ।
कृपयाऽहं वरारोहे वञ्चितः पुत्रधर्मतः ॥२०॥
मया दाशार्णको राजा वञ्चितः स महीपतिः ।
तदाचक्ष्व महाभागे विधास्ये तत्र यद्धितम् ॥२१॥

हे वरारोहे ! अब तुम शिखण्डी के विषय में भय मत करो। मैं कृपा पूर्वक कोई न कोई उपाय निकाल दूंगा। तुमने ही अपनी इस पुत्री को पुत्र कहकर मुझे प्रवञ्चित किया था। इसी से मैंने भी दशार्ण देश के राजा की प्रवञ्चना करडाली। हे महाभागे! अब तुम इस विषय में कुछ सम्मति प्रदान करो। इसमें जो हितकारी कार्य होगा—मैं वही कर डालूँगा ॥२०-२१॥

जानता हि नरेन्द्रेण ख्यापनार्थं परस्य वै ।
प्रकाशं चोदिता देवी प्रत्युवाच महीपतिम् ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि
द्रुपदप्रश्ने नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९०॥

यद्यपि द्रुपदराज सब कुछ जानता था, परन्तु दूसरे को अपनी निर्दोषता दिखाने के लिए सबके सन्मुख अपनी रानी से पूछा। इतना सुनकर रानी भी राजा से कहने लगी ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में द्रुपद प्रश्न का एक सौ नव्वेवां अध्याय समाप्त हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ इक्यानवेवां अध्याय

भीष्म उवाच—

ततः शिखण्डिनो माता यथातत्त्वं नराधिप ।
आचचक्षे महाबाहो भर्त्रे कन्यां शिखण्डिनीम् ॥१॥

अपुत्रया मया राजन्सपत्नीनां भयादिदम् ।
कन्या शिखण्डिनी जाता पुरुषो वै निवेदिता ॥२॥

भीष्म ने कहा—हे नराधिप ! अब शिखण्डी की माता ने ठीक २ कहा—हे महाबाहो ! मैंने अपनी सपत्नी (सोतों) के भय से शिखण्डी के कन्या होने पर भी आप से मैंने इसको पुत्र बताया, क्योंकि मैं पुत्र-हीन थी ॥१-२॥

त्वया चैव नरश्रेष्ठ तन्मे प्रीत्याऽनुमोदितम् ।
पुत्रकर्म कृतं चैव कन्यायाः पार्थिवर्षभ ॥३॥

हे नरश्रेष्ठ ! आपने भी मेरे प्रेम से इस बात का अनुमोदन किया । हे पार्थिवर्षभ ! आपने इस कन्या के सारे ही संस्कार आदि पुत्र की भांति किए थे ॥३॥

भार्या चोढा त्वया राजन्दशार्णाधिपतेः सुता ।
मया च प्रत्यभिहितं देववाक्यार्थदर्शनात् ॥
कन्या भूत्वा पुमान्भावीत्येवं चैतदुपेक्षितम् ॥४॥

हे राजन् ! आपने इसके लिए दशार्ण देश के राजा की कन्या भी इसकी भार्या बनाकर स्वीकार कर ली । मैंने भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसका अनुमोदन किया, क्योंकि मुझे भगवान् शंकर के वचन में विश्वास था। उनका वरदान था, कि यह कन्या होकर फिर पुत्र बन जावेगा, इसी से मैंने इस बात की उपेक्षा कर दी ॥४॥

एतच्छ्रुत्वा द्रुपदो यज्ञसेनः सर्वं तत्त्वं मन्त्रविद्भ्यो निवेद्य।
मन्त्रं राजा मन्त्रयामास राजन्यथायुक्तं रक्षणे वै प्रजानाम् ॥

हे राजन्! यज्ञ-सेन द्रुपद ने इतना सुनकर यह सारा घटना-चक्र अपने मन्त्रियों को सुनाया और अपने इन बुद्धिमान् मन्त्रियों के साथ इस पर यथायोग्य विचार किया, जिससे प्रजा की रक्षा हो सके ॥५॥

सम्बन्धकं चैव समर्थ्य तस्मिन्दाशार्णके वै नृपतौ नरेन्द्र।
स्वयं कृत्वा विप्रलम्भं यथावन्मन्त्रैकाग्रो निश्चयं वै जगाम ॥

हे नरेन्द्र! इसने मन्त्रियों से अपने और दशार्ण देश के राजा के सम्बध की पुष्टि की। इसने अब भी मन्त्रियों की प्रवञ्चना ही की और एकाग्रता के साथ विचार करके यह निश्चय किया ॥६॥

स्वभावगुप्तं नगरमापत्काले तु भारत।
गोपयामास राजेन्द्र सर्वतः समलंकृतम् ॥७॥

हे भारत! राजेन्द्र! राजा द्रुपद का नगर यद्यपि स्वभाव से सुरक्षित था, तो भी इस आपत्काल में उसे और भी सुरक्षित किया गया, उसको सब ओर से सजा भी दिया गया ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आर्तिं च परमां राजा जगाम सह भार्यया ।
दशार्णपतिना सार्धं विरोधे भरतर्षभ ॥८॥

हे भरतर्षभ ! दशार्ण पति के साथ विरोध बढ़ जाने से अपनी धर्मपत्नी के साथ राजा द्रुपद को बड़ी चिन्ता हो रही थी।

कथं सम्बन्धिना सार्धं न मे स्याद्विग्रहो महान् ।
इति सञ्चिन्त्य मनसा देवतामर्चयत्तदा ॥९॥

यह यही विचार रहा था, कि किस प्रकार अपने सम्बन्धी के साथ मेरा युद्ध न हो। इसने यह सोचकर अपने इष्टदेव की पूजा की ॥९॥

तं तु दृष्ट्वा तदा राजन्देवी देवपरं तदा ।
अर्चां प्रयुञ्जानमथो भार्या वचनमब्रवीत् ॥१०॥

हे राजन् ! राजपत्नी ने जब राज्य को देवता की पूजा करते देखा, तो वह राजा से यह वचन बोली ॥१०॥

देवानां प्रतिपत्तिश्च सत्यं साधुमता सताम् ।
किमु दुःखार्णवं प्राप्य तस्मादर्चयतां गुरून् ॥११॥

हे राजन् ! सम्पत्ति के समय में भी देवों की पूजा करना सज्जनों को कल्याण कारी है, परन्तु विपत्ति के आने पर तो उनकी पूजा अवश्य दुःख का नाश कर देगी, इससे तुमको अवश्य उनकी पूजा करनी चाहिए ॥११॥

दैवतानि च सर्वाणि पूज्यन्तां भूरिदक्षिणम् ।
अग्नयश्चापि हूयन्तां दाशार्णप्रतिषेधने ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब तुम दशार्ण देश के राजा की शान्ति के लिए बड़ी २ दक्षिणाओं के साथ सारे देवों की पूजा और अग्नि में हवन करो।

अयुद्धेन निवृत्तिं च मनसा चिन्तय प्रभो ।
देवतानां प्रसादेन सर्वमेतद्भविष्यति ॥१३॥

हे प्रभो ! तुम अपने मन में यह ध्यान रक्खो, कि विना युद्ध ही इस विपत्ति से छुटकारा प्राप्त हो जावे, क्योंकि देवताओं के अनुग्रह से यह सब कुछ हो सकता है ॥१३॥

मन्त्रिभिर्मन्त्रितं सार्धं त्वया पृथुललोचन ।
पुरस्याऽस्याऽविनाशाय यच्च राजंस्तथा कुरु ॥१४॥

हे विशालनेत्र ! राजन् ! तुमने जो मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करके इस पुर की रक्षा के निमित्त जिन कर्मों का विचार किया है, उनका भी प्रयोग करो ॥१४॥

दैवं हि मानुषोपेतं भृशं सिद्ध्यति पार्थिव ।
परस्परविरोधाद्धि सिद्धिरस्ति न चैतयोः ॥१५॥

हे राजन् ! मनुष्य के उद्योग के साथ जब देवता की सहायता होती है, तभी कार्य सिद्ध हो जाता है। यदि इनमें से एक में भी न्यूनता रह जावेगी—तो कार्य की सिद्धि में उतना ही विघ्न शेष रहेगा ॥ १५॥

तस्माद्विधाय नगरे विधानं सचिवैः सह ।
अर्चयस्व यथाकामं दैवतानि विशाम्पते ॥१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इससे तुम अपने मन्त्रियों के साथ अपने पुर की रक्षा का विधान अवश्य करो। हे विशाम्पते ! अपनी शक्ति और श्रद्धा के अनुसार देवों का अर्चन करो ।।१६।।

एवं सम्भाषमाणौ तु दृष्ट्वा शोकपरायणौ ।
शिखण्डिनी तदा कन्या व्रीडितेव तपस्विनी ।।१७।।

हे राजन् ! इनको इस प्रकार शोक परायण होकर बातें करते देखकर वह विचारी शिखण्डिनी कन्या बड़ी लज्जित हुई ।।१७।।

ततः सा चिन्तयामास मत्कृते दुःखतावुभौ ।
इमाविति ततश्चक्रे मतिं प्राणविनाशने ।।१८।।

इसने सोचा, कि ये दोनों तो मेरे कारण से दुःखी हैं। इस लिए मुझे अपने प्राणों का नाश कर देना चाहिए ।।१८।।

एवं सा निश्चयं कृत्वा भृशं शोकपरायणा ।
निर्जगाम गृहं त्यक्त्वा गहनं निर्जनं वनम् ।।१९।।

हे राजन् ! वह शिखण्डिनी कन्या यह निश्चय करसे शोकातुर हुई घर छोड़कर गहन निर्जन वन को चली गई ।।१९।।

यक्षेणर्द्धिमता राजन्स्थूणाकर्णेन पालितम् ।
तद्भयादेव च जनो विसर्जयति तद्वनम् ।।२०।।

हे राजन् ! इस वनकी परम ऐश्वर्यशाली स्थूणाकर्ण रक्षा करता था। इसी यक्ष के भय से लोग इस वन को छोड़ २ कर, भाग जाते थे ।।२०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्र च स्थूणभवनं सुधामृत्तिकलेपनम् ।
लाजोल्लापिकधूमाढ्यमुच्चप्राकारतोरणम् ॥२१॥
तत्प्रविश्य शिखण्डी सा द्रुपदस्याऽऽत्मजा नृप ।
अनश्नाना बहुतिथं शरीरमुदशोषयत् ॥२२॥

वहाँ पर स्थूणा-कर्ण का महल बड़ा सुन्दर था, जिस पर चारों ओर से स्वच्छ कली पोती हुई थी। इसके चारों ओर ऊंचा परकोटा और बड़ा सुन्दर ऊँचा द्वार था। उशीर (खश) आदि से मिश्रित हवन सामग्री के हवन की धूम से सुगन्धि हो रहा था। हे राजन्! वह राजा द्रुपद की कन्या शिखण्डिनी उसमें घुस गई। वहां पर निराहार रहकर अपना शरीर सुखाने लगी ॥२१-२२॥

दर्शयामास तां यक्षः स्थूणो मार्दवसंयुतः ।
किमर्थोऽयं तवाऽरम्भः करिष्ये ब्रूहि मा चिरम् ॥२३॥

इसको किसी दिन स्थूणाकर्ण यक्ष ने बड़ी कोमलता के साथ अपने दर्शन दिए और कहा—हे कन्ये! तुम्हारा यह सारा उद्योग किस लिए हो रहा है। तुम मुझे शीघ्र सुनाओ--मैं इसको पूरा करूंगा

अशक्यमिति सा यक्षं पुनः पुनरुवाच ह ।
करिष्यामीति वै क्षिप्रं प्रत्युवाचाऽथ गुह्यकः ॥२४॥

इस कन्याने कहा—मेरा कार्य बड़ा अशक्य है, तुम उसको कर नहीं सकोगे। इस प्रकार कन्याने बार २ कहा। यक्षने भी बार २ यही कहा, कि नहीं तुम सुनाओ। मैं अवश्य उसको पूरा करूंगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धनेश्वरस्याऽनुचरो वरदोऽस्मि नृपात्मजे।
अदेयमपि दास्यामि ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥२५॥

हे नृपात्मजे! मैं धनेश्वर कुबेर का अनुचर यक्ष हूं। जो कुछ नहीं देने योग्य होता है—मैं उसे भी दे सकता हूँ। जो तू कहना चाहती है—वह प्रथम मुझे उसे सुना दे ॥२५॥

ततः शिखण्डी तत्सर्वमखिलेन न्यवेदयत्।
तस्मै यक्षप्रधानाय स्थूणाकर्णाय भारत ॥२६॥

हे भारत! इसके अनन्तर उस शिखण्डिनी ने वह सारा वृत्तान्त उस यक्षराज स्थूणाकर्ण को सुना दिया ॥२६॥

शिखण्ड्युवाच—

अपुत्रो मे पिता यक्ष न चिरान्नाशमेष्यति।
अभियास्यति सक्रोधो दशार्णाधिपतिर्हि तम् ॥२७॥

शिखण्डी कहने लगा—हे यक्षराज! मेरा पिता अपुत्र है-अब वह शीघ्र विनष्ट हो जावेगा। दशार्ण देश का राजा बड़े क्रोधमें भर कर युद्ध करने के लिए उन पर चढ़ा चला आ रहा है ॥२७॥

महाबलो महोत्साहः सहेमकवचो नृपः।
तस्माद्रक्षस्व मां यक्ष मातरं पितरं च मे ॥२८॥

यह राजा दशार्णपति, महाबली, महोत्साही और सुवर्ण के कवचों से सम्पन्न है। हे यक्षराज! अब आज आप मेरी और मेरे माता पिता की रक्षा कीजिए ॥ २८ ॥

प्रतिज्ञातो हि भवता दुःखप्रतिशमो मम।
भवेयं पुरुषो यक्ष त्वत्प्रसादादनिन्दितः ॥२९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपने मेरे दुःख के नाश करने की प्रतिज्ञा कर ली है। हे यक्षराज ! मैं तुम्हारी अनुकम्पा से एक उत्तम पुरुष भी बन जाऊंगा ॥२९॥

यावदेव स राजा वै नोपयाति पुरं मम ।
तावदेव महायक्ष प्रसादं कुरु गुह्यक ॥३०॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि स्थूणाकर्णसमागमे एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः।१९१।

हे महायक्ष ! गुह्यक ! जब तक दशार्ण देशाधिपति हमारे नगर को आकर विध्वंस नहीं कर डालता है, उससे पूर्व ही तुम पहुंच कर हम पर कृपा करो ॥३०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में स्थूणाकर्ण के समागम का एक सौ इक्यानवेवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ बानवेवां अध्याय

भीष्म उवाच—

शिखण्डिवाक्यं श्रुत्वाऽथ स यक्षो भरतर्षभ ।
प्रोवाच मनसा चिन्त्य दैवेनोपनिपीडितः ॥१॥
भवितव्यं तथा तद्धि मम दुःखाय कौरव ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीष्म ने कहा—हे भरतर्षभ ! वह यक्षराज, शिखण्डी के वचन सुनकर दैव की प्रेरणा से मन में विचार कर यह वचन बोला—हे कौरव ! मेरे दुःख के निमित्त ऐसी ही होनहार थी ॥१॥

भद्रे कामं करिष्यामि समयं तु निबोध मे ॥२॥
किञ्चित्कालान्तरे दास्ये पुल्लिङ्गं स्वमिदं तव ।
आगन्तव्यं त्वया काले सत्यं चैव वदस्व मे ॥३॥

हे भद्रे ! मैं तुम्हारी कामना पूर्ण करूंगा-परन्तु तुम मेरे समय (शर्त) को ध्यान से सुन लो । मैं कुछ काल के लिए तुमको अपने पुरुष चिह्न दे दूंगा-फिर तुमको निश्चित समय पर यहीं आना होगा-यह मुझ से सत्य प्रतिज्ञा कर जाओ ॥२-३॥

प्रभुः सङ्कल्पसिद्धोऽस्मि कामचारी विहङ्गमः ।
मत्प्रसादात्पुरं चैव त्राहि बन्धूंश्च केवलम् ॥४॥

मैं शक्तिशाली हूं और अपने संकल्प के अनुसार सब कुछ कर सकता हूं । मैं अपनी कामना के अनुसार ही आकाश में उड़ सकता हूं ॥४॥

स्त्रीलिङ्गं धारयिष्यामि तवेदं पार्थिवात्मजे ।
सत्यं मे प्रतिजानीहि करिष्यामि प्रियं तव ॥५॥

हे राजकन्ये ! मैं कुछ काल के लिए तुम्हारे ये स्त्री लिङ्ग धारण कर लूंगा । तुम मेरी प्रतिज्ञा को सत्य समझो । मैं तुम्हारा अवश्य प्रिय करूंगा ॥५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिखण्ड्युवाच—

प्रतिदास्यामि भगवन्पुल्लिङ्गं तव सुव्रत ।
किञ्चित्कालान्तरं स्त्रीत्वं धारयस्व निशाचर ॥६॥

शिखण्डी बोला—हे भगवन्! सुव्रत ! निशाचर ! मैं तुमको तुम्हारे पुरुष चिह्न लौटा दूंगा-तुम कुछ काल तक मेरे इन स्त्री लिङ्गों को धारण कर लो ॥६॥

प्रतियाते दशार्णे तु पार्थिवे हेमवर्मणि ।
कन्यैव हि भविष्यामि पुरुषस्त्वं भविष्यसि ॥७॥

जब सुवर्ण का कवच-धारी राजा दशार्ण देशाधिपति लौट जावेगा, तब तुम पुरुष हो जाना और मैं कन्या ही बन जाऊंगी ।

भीष्म उवाच—

इत्युक्त्वा समयं तत्र चक्राते तावुभौ नृप ।
अन्योन्यस्याऽभिसन्देहे तौ संक्रामयतां ततः ॥८॥

भीष्म ने कहा—हे नृप ! इस तरह उन दोनों ने परस्पर बात-चीत करके अपना समय (शर्त) निश्चित कर लिया और एक दूसरे ने अपनी २ देह में एक दूसरे के चिह्नों को धारण किया ।

स्त्रीलिङ्गं धारयामास स्थूणायक्षोऽथ भारत ।
यक्षरूपं च तद्दीप्तं शिखण्डी प्रत्यपद्यत ॥९॥

हे भारत ! स्थूणाकर्ण यक्ष ने तो स्त्री के चिन्ह धारण कर लिए और इस शिखण्डी को उस यक्ष का सुन्दर रूप प्राप्त हो गया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततः शिखण्डी पाञ्चाल्यः पुन्स्त्वमासाद्य पार्थिव ।
विवेश नगरं हृष्टः पितरं च समासदत् ॥१०॥

हे राजन्! अब पाञ्चाल राजकुमार पुरुषत्व प्राप्त करके अपने नगर में आया और पिता के पास पहुंचा ॥१०॥

यथावृत्तं तु तत्सर्वमाचख्यौ द्रुपदस्य तत् ।
द्रुपदस्तस्य तच्छ्रुत्वा हर्षमाहारयत्परम् ॥११॥

उसने अपना सारा वृत्तान्त द्रुपद को सुनाया। द्रुपद यह सुन कर बड़े हर्ष को प्राप्त हुआ ॥११॥

सभार्यस्तच्च सस्मार महेश्वरवचस्तदा ।
ततः सम्प्रेषयामास दशार्णाधिपतेर्नृपः ॥१२॥
पुरुषोऽयं मम सुतः श्रद्धत्तां मे भवानिति ।

राजा द्रुपद को अपनी भार्या के साथ महेश्वर के वचन का स्मरण आया। अब राजाने दशार्णाधिपति के पास अपने पुत्र को भेजा--कि देखो? यह मेरा पुत्र कन्या नहीं है, पुरुष है। तुमको मेरे वचन में श्रद्धा करनी चाहिए थी ॥१२॥

अथ दाशार्णको राजा सहसाऽभ्यागमत्तदा ॥१३॥
पञ्चालराजं द्रुपदं दुःखशोकसमन्वितः ।
ततः काम्पिल्यमासाद्य दशार्णाधिपतिस्ततः ॥१४॥
प्रेषयामास सत्कृत्य दूतं ब्रह्मविदां वरम् ।

अब दशार्ण देश का राजा दुःख और शोक के साथ पञ्चाल-राज द्रुपद की ओर बड़ी शीघ्रता से चला आ रहा था। दशार्णा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धिपति काम्पिल्य नगरी तक आ पहुँचा। यहां उसने एक वेद के ज्ञाता अपने दूत का सत्कार करके द्रुपद के पास भेजा ॥१३-१४॥

ब्रूहि मद्वचनाद्दूत पाञ्चाल्यं तं नृपाधमम् ॥१५॥
यन्मे कन्यां स्वकन्यार्थे वृतवानसि दुर्मते।
फलं तस्याऽवलेपस्य द्रक्ष्यस्यद्य न संशयः ॥१६॥

हे दूत! तुम दुर्मति पञ्चालराज के पास जाकर मेरी ओर से कहना— हे दुर्मते! जो तुमने अपनी कन्या के लिए मेरी कन्या का वरण कर लिया—इस दुरभिमान का तुम शीघ्र ही फल पाओगे-इसमें संदेह नहीं है ॥१५-१६॥

एवमुक्तश्च तेनाऽसौ ब्राह्मणो राजसत्तम।
दूतः प्रयातो नगरं दाशार्णनृपचोदितः ॥१७॥

हे राजसत्तम! राजा के इतना कहने पर वह ब्राह्मण दूत, दशार्णाधिपति की आज्ञा से द्रुपद नगर की ओर चल दिया।

तत आसादयामास पुरोधा द्रुपदं पुरे।
तस्मै पाञ्चालको राजा गामर्घ्यं च सुसत्कृतम् ॥१८॥
प्रापयामास राजेन्द्र सह तेन शिखण्डिना।
तां पूजां नाऽभ्यनन्दत्स वाक्यं चेदमुवाच ह ॥१९॥
यदुक्तं तेन वीरेण राज्ञा काञ्चनवर्मणा।
यत्तेऽहमधमाचार दुहित्राऽस्म्यभिवञ्चितः ॥२०॥
तस्य पापस्य करणात्फलं प्राप्नुहि दुर्मते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस दशार्ण देश के राजा के पुरोहित ब्राह्मण दूत ने पञ्चाल नगर में पहुंचकर द्रुपद से भेंट की। राजा द्रुपद ने भी इस पुरोहित का पाद्य, अर्घ और गौदान करके बड़ा सत्कार किया है। हे राजेन्द्र ! राजा द्रुपद उसी अपने पुत्र शिखण्डी के साथ दशार्णाधिपति के पुरोहित की अगवानी को पहुंचा। पुरोहित ने इनकी पूजा को स्वीकार नहीं किया और जो राजा हिरण्यवर्मा ने वचन कहा था-वह कहा-हे अधमाचार ! तू ने अपनी कन्या के लिए मेरी कन्या को ग्रहण करके मुझे अपमानित किया है। हे दुर्मते ! अब तुम इस पापाचरण का शीघ्र ही फल पावोगे ॥१८-२०॥

देहि युद्धं नरपते ममाऽद्य रणमूर्धनि ॥२१॥
उद्धरिष्यामि ते सद्यः सामात्यसुतबान्धवम् ।

हे नरपते ! अब तुम रणांगण में मुझसे युद्ध करने को तय्यार हो जाओ। मैं मन्त्री, पुत्र और बान्धवों सहित तेरा विनाश करके छोड़ूंगा ॥२१॥

तदुपालम्भसंयुक्तं श्रावितः किल पार्थिवः ॥२२॥
दशार्णपतिना चोक्तो मन्त्रिमध्ये पुरोधसा ।
अभवद्भरतश्रेष्ठ द्रुपदः प्रणयानतः ॥२३॥

हे राजन् ! दशार्णपति के सन्देश से युक्त पुरोहित ने मन्त्रियों के मध्य में इस प्रकार फटकार और उलाहने के वचन राजा द्रुपद को सुनाए। हे भरतश्रेष्ठ ! इन वचनों को सुनकर द्रुपद नम्रता के साथ झुक गया ॥२२-२३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदाह मां भवान्ब्रह्मन्सम्बन्धिवचनाद्वचः ।
अस्योत्तरं प्रतिवचो दूतो राज्ञे वदिष्यति ॥२४॥

हे ब्रह्मन् ! आपने जो मुझे मेरे सम्बन्धी के वचनों को सुनाया-इसका प्रत्युत्तर मेरा दूत पहुंच कर दशार्णपति को सुनावेगा ॥२४॥

ततः सम्प्रेषयामास द्रुपदोऽपि महात्मने ।
हिरण्यवर्मणे दूतं ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥२५॥

इसके अनन्तर द्रुपदराज ने भी महात्मा हिरण्यवर्मा के पा अपने किसी वेदपारगामी दूत को भेजा ॥२५॥

तमागम्य तु राजानं दशार्णाधिपतिं तदा ।
तद्वाक्यमाददे राजन्यदुक्तं द्रुपदेन ह ॥२६॥

हे राजन् ! द्रुपद का दूत भी राजा दशार्णाधिपति के पास पहुंचा और जो द्रुपद ने वाक्य कहे थे, वे हिरण्यवर्मा को सुना दिए ॥२६॥

आगमः क्रियतां व्यक्तः कुमारोऽयं सुतो मम ।
मिथ्यैतदुक्तं केनाऽपि तदश्रद्धेयमित्युत ॥२७॥

हे राजन् ! आप इसकी अच्छी तरह परीक्षा कर लो । मेरा पुत्र कन्या नहीं-कुमार है । किसी ने आपसे मिथ्या कह दिया है । आप इस पर विश्वास न करें ॥२७॥

ततः स राजा द्रुपदस्य श्रुत्वा विमर्षयुक्तो युवतीर्वरिष्ठाः ।
सम्प्रेषयामास सुचारुरूपाः शिखण्डिनं स्त्री पुमान्वेति वेत्तुम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब राजा दशार्णाधिपति ने राजा द्रुपद के वचनों को सुना और उन पर बड़ा विचार किया। इसने बड़ी श्रेष्ठ सुन्दरी युवतियां स्त्री द्रुपद के घर पर शिखण्डी, कुमार है या कन्या— यह जानने को भेजी ॥२८॥

ताः प्रेषितास्तत्त्वभावं विदित्वा प्रीत्या राज्ञे तच्छशंसुर्हि सर्वम्
शिखण्डिनं पुरुषं कौरवेन्द्र दाशार्णराजाय महानुभावम् ॥

हे कौरवेन्द्र ! उन भेजी हुई स्त्रियों ने सारे तत्व का पता लगा लिया और बड़ी प्रसन्नता के साथ दशार्णाधिपति के पास पहुँची। उन्होंने जाकर उससे, महानुभाव शिखण्डी के पुरुष होने की सूचना दी ॥२९॥

ततः कृत्वा तु राजा स आगमं प्रीतिमानथ ।
सम्बन्धिना समागम्य हृष्टो वासमुवास ह ॥३०॥
शिखण्डिने च मुदितः प्रादाद्वित्तं जनेश्वरः ।
हस्तिनोऽश्वांश्च गाश्चैव दास्योऽथ बहुलास्तथा ॥३१॥
पूजितश्च प्रतिययौ निर्भर्त्स्य तनयां किल ।

अब राजा हिरण्यवर्मा द्रुपदराज के पास आया और बड़ा प्रसन्न हुआ। अपने सम्बन्धी राजा द्रुपदसे मिलकर हिरण्यवर्मा ने एक स्थान में ही निवास किया। राजा हिरण्यवर्मा ने प्रसन्न होकर शिखण्डी को बहुत सा धन, हाथी, घोड़े एवं दासी प्रदान की। राजा ने शिखण्डी की पूजा की और वह अपनी पुत्री को फटकार कर वहां से अपनी राजधानी की ओर चला गया ॥३१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विनीतकिल्बिषे प्रीते हेमवर्मणि पार्थिवे ॥३२॥
प्रतियाते दशार्णे तु हृष्टरूपा शिखण्डिनी ।

आवेश हीन होकर राजा हेमवर्मा के प्रेम-पूर्वक दशार्ण देश को चले जाने पर शिखण्डिनी कन्या बहुत प्रसन्न हुई ॥३२॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य कुबेरो नरवाहनः ।
लोकयात्रां प्रकुर्वाणः स्थूणस्याऽगान्निवेशनम् ॥३३॥

कुछ दिन के अनन्तर मनुष्यों द्वारा ले जाने योग्य वाहन पालकी में बैठ कर लोक यात्रा करता हुआ कुबेर स्थूणाकर्ण यक्ष के भवन पर पहुँचा ॥३३॥

स तद्गृहस्योपरि वर्त्तमान आलोकयामास धनाधिगोप्ता ।
स्थूणस्य यक्षस्य विवेश वेश्म स्वलंकृतं माल्यगुणैर्विचित्रैः॥

धनाधिपति कुबेर ने स्थूणाकर्ण के भवन पर आकर देखा, कि वह भवन विचित्र मालाओं से सुशोभित है। इसने आकर इस यक्षराज के भवन में प्रवेश किया ॥३४॥

लाज्यैश्च गन्धैश्च तथा वितानैरभ्यर्चितं धूपनधूपितं च ।
ध्वजैः पताकाभिरलंकृतं च भक्ष्यान्नपेयामिषदन्तहोमम्॥३५॥

उशीर (खश), गन्ध आदि वस्तुओं से समन्वित, वितानों (शामियानों) से युक्त, धूप देने की धूप से सुगन्धित, ध्वजा-पताकाओं से अलंकृत, भक्ष्य, अन्न, पीने योग्य तथा मांसादि भोजन सामिग्री से यह भवन उपपन्न था ॥३५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्स्थानं तस्य दृष्ट्वा तु सर्वतः समलंकृतम् ।
मणिरत्नसुवर्णानां मालाभिः परिपूरितम् ॥३६॥

नानाकुसुमगन्धाढ्यं सिक्तसम्मृष्टशोभितम् ।
अथाऽब्रवीद्यक्षपतिस्तान्यक्षाननुगांस्तदा ॥३७॥

स्वलंकृतमिदं वेश्म स्थूणस्याऽमितविक्रमाः ।
नोपसर्पति मां चैव कस्मादद्य स मन्दधीः ॥३८॥

यक्षाधिपति कुबेर ने मणि, रत्न, सुवर्ण आदि की मालाओं से भरे हुए, सब ओर से अलंकृत, अनेक भांति के पुष्पों से समन्वित, झाड़ बुहार कर छिड़काव करने से उज्ज्वल, यक्षराज के इस भवन को देखा। अब कुबेर ने अपने अनुचर यक्षों से कहा-- हे पराक्रमियो ! यह सब तरह से विभूषित स्थूणाकर्ण का भवन है। यह मूर्ख आज मेरे स्वागत के लिए कैसे बाहर नहीं आ रहा है ॥३६-३८॥

यस्माज्जानन्स मंदात्मा मामसौ नोपसर्पति ।
तस्मात्तस्मै महादण्डो धार्यः स्यादिति मे मतिः ॥३९॥

इस मूर्ख को मेरे आगमन का पता है और यह फिर भी नहीं आ रहा है; इसलिए मुझे इसको महान् दण्ड देना चाहिए— ऐसी मेरी इच्छा है ॥३९॥

यक्षा ऊचु—

द्रुपदस्य सुता राजन्राज्ञो जाता शिखण्डिनी ।
तस्या निमित्ते कस्मिंश्चिद्प्रादात्पुरुषलक्षणम् ॥४०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अग्रहील्लक्षणं स्त्रीणां स्त्रीभूतो तिष्ठते गृहे ।
नोपसर्पति तेनाऽसौ सव्रीडः स्त्रीसरूपवान् ॥४१॥

यक्षों ने कहा—हे राजन्! राजा द्रुपद के एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जिसका नाम शिखण्डिनी है। उसके लिए किसी कारण से इस यक्ष ने अपने पुरुष चिन्ह दे दिए हैं और उसके स्त्री चिन्ह इसने ले लिए हैं। अब यह स्त्री बना हुआ घर के भीतर बैठा है। यह स्त्री रूप धारी है, इससे लज्जा के कारण बाहर नहीं आ रहा है॥४०-४१॥

एतस्मात्कारणाद्राजन्स्थूणो न त्वाऽद्य सर्पति ।
श्रुत्वा कुरु यथान्यायं विमानमिह तिष्ठताम् ॥४२॥

हे राजन्! यही कारण है, जो आज स्थूणाकर्ण तुम्हारे सन्मुख नहीं आया है। अब आपकी इच्छा में आवे—वह करो। आप का विमान यहीं ठहरा हुआ है ॥४२॥

आनीयतां स्थूण इति ततो यक्षाधिपोऽब्रवीत् ।
कर्ताऽस्मि निग्रहं तस्य प्रत्युवाच पुनः पुनः ॥४३॥

यक्षाधिपति कुबेर ने कहा—स्थूणाकर्ण को यहां लाओ। आज मैं उसको मेरे सन्मुख स्वागत को न आने का अवश्य दण्ड दूंगा ॥४३॥

सोऽभ्यगच्छत यक्षेन्द्रमाहूतः पृथिवीपते ।
स्त्रीसरूपो महाराज तस्थौ व्रीडासमन्वितः ॥४४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे पृथिवीपते ! कुबेर का दूत यक्ष के पास पहुँचा और स्थूणाकर्ण यक्षराज को बुलाने लगा। हे महाराज ! वह तो स्त्री रूप में बैठा था, इससे उसको बड़ी लज्जा आई ॥४४॥

तं शशापाऽथ संक्रुद्धो धनदः कुरुनन्दन ।
एवमेव भवत्वद्य स्त्रीत्वं पापस्य गुह्यकाः ॥४५॥

हे कुरुनन्दन ! क्रुद्ध होकर धनाधिपति ने उसको शाप दे दिया। हे यक्षो ! अब से आगे इस पापी को अपना यही स्त्री स्वरूप प्राप्त रहे ॥४५॥

ततोऽब्रवीद्यक्षपतिर्महात्मा यस्माददास्त्ववमन्येह यक्षान् ।
शिखण्डिनो लक्षणं पापबुद्धेः स्त्रीलक्षणं चाऽग्रहीः पापकर्मन्

अब महात्मा यक्षपति कुबेर ने कहा—जो तू ने यक्षों की अवहेलना करके पाप-बुद्धि शिखण्डी को पुरुष चिन्ह दे दिए और हे पाप-कर्मन् ! तू ने स्वयं स्त्री चिन्ह ले लिए—इसका यही दण्ड है, कि तू सदा स्त्री ही बना रहे ॥४६॥

अप्रवृत्तं सुदुर्बुद्धे यस्मादेतत्त्वया कृतम् ।
तस्मादद्यप्रभृत्येव स्त्री त्वं सा पुरुषस्तथा ॥४७॥

हे दुर्बुद्धि ! तू ने यह अनुचित बात कर डाली और तू ने ऐसा स्वयं ही किया है, इससे आगे तू तो स्त्री ही रहेगा और कन्या पुरुष ही बन जावेगी ॥४७॥

ततः प्रसादयामासुर्यक्षा वैश्रवणं किल ।
स्थूणस्याऽर्थे कुरुष्वाऽन्तं शापस्येति पुनः पुनः ॥४८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यक्षों ने प्रार्थना करके कुबेर को प्रसन्न कर लिया और बार २ यही आग्रह किया, कि तुम स्थूणाकर्ण के इस शाप का मोचन करो ॥४८॥

ततो महात्मा यक्षेन्द्रः प्रत्युवाचाऽनुगामिनः ।
सर्वान्यक्षगणांस्तात शापस्याऽन्तचिकीर्षया ॥४९॥

हे तात ! अब महात्मा कुबेर ने सारे अपने अनुगामी यक्षों से शाप के अन्त करने के ध्यान से कहा ॥४९॥

शिखण्डिनि हते यक्षाः स्वं रूपं प्रतिपत्स्यते ।
स्थूणो यक्षो निरुद्वेगो भवत्विति महामनाः ॥५०॥

हे यक्षो ! जब शिखण्डी मार लिया जावेगा—तब इसको अपना रूप मिलेगा । अब महात्मा स्थूणाकर्ण को चिन्ता नहीं करनी चाहिए ॥५०॥

इत्युक्त्वा भगवान्देवो यक्षराजः सुपूजितः ।
प्रययौ सहितः सर्वैर्निमेषान्तरचारिभिः ॥५१॥

जब भगवान् यक्षराज कुबेर ने इतना कहा—तो अन्य यक्षों ने कुबेर को बड़ा धन्यवाद दिया । अब यह क्षण भर में दूर उड़ जाने वाले अपने सारे अनुचरों के साथ चल दिया ॥५१॥

स्थूणस्तु शापं सम्प्राप्य तत्रैव न्यवसत्तदा ।
समये चाऽगमत्तूर्णं शिखण्डी तं क्षपाचरम् ॥५२॥

स्थूणाकर्ण तो शाप पाकर उसी भवन में रहने लगा । कुछ दिन के अनन्तर अपने समय (शर्त) के अनुसार शिखण्डी उस रात्रि में घूमने वाले यक्षराज के पास पहुंचा ॥५२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोऽभिगम्याऽब्रवीद्वाक्यं प्राप्तोऽस्मि भगवन्निति ।
तमब्रवीत्ततः स्थूणः प्रीतोऽस्मीति पुनः पुनः ॥५३॥

इसने आकर यक्षराज से कहा—हे भगवन् ! मैं आ पहुंचा हूं । यक्ष ने शिखण्डी से बार २ कहा—मैं तुझ पर बड़ा प्रसन्न हूं ।

आर्जवेनाऽऽगतं दृष्ट्वा राजपुत्रं शिखण्डिनम् ।
सर्वमेव यथावृत्तमाचचक्षे शिखण्डिने ॥५४॥

बड़ी नम्रता से आये हुए राजपुत्र शिखण्डी को देखकर उसने शिखण्डी से यक्षपति कुबेर का सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥५४॥

यक्ष उवाच—

शप्तो वैश्रवणेनाऽहं त्वत्कृते पार्थिवात्मज ।
गच्छेदानीं यथाकामं चर लोकान्यथासुखम् ॥५५॥

यक्ष बोला—हे राजपुत्र ! तुम्हारे कारण से मुझे यक्षपति कुबेरने शाप दे डाला है, अब तुम अपनी इच्छानुसार जाओ और अपने सुखके अनुसार लोकों का अनुभव करो ॥५५॥

दिष्टमेतत्पुरा मन्ये न शक्यमतिवर्तितुम् ।
गमनं तव चेतो हि पौलस्त्यस्य च दर्शनम् ॥५६॥

मैं तो तुम्हारे यहां आने और उसी समय कुबेर के यहां आ जाने को अपने पूर्वजन्म के कर्मों के आधार पर दैवी घटना मानता हूं । जिस दैवी घटना का कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता है ।

भीष्म उवाच—

एवमुक्तः शिखण्डी तु स्थूणयक्षेण भारत ।
प्रत्याजगाम नगरं हर्षेण महता वृतः ॥५७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीष्म ने कहा—हे भारत ! जब स्थूणाकर्ण यक्ष ने इतना कहा, तो शिखण्डी बहुत ही हर्षित हुआ और वह बड़े हर्ष के साथ अपने नगर को लौट आया ॥५७॥

पूजयामास विविधैर्गन्धमाल्यैर्महाधनैः ।
द्विजातीन्देवताश्चैव चैत्यानथ चतुष्पथान् ॥५८॥

इसने अनेक भांति की माला और बहुत धन से देव, ब्राह्मण, चैत्य (देवालय) और चतुष्पथ (चौराहों) की पूजा की।

द्रुपदः सह पुत्रेण सिद्धार्थेन शिखण्डिना ।
मुदं च परमां लेभे पाञ्चाल्यः सह बान्धवैः ॥५९॥

पाञ्चालराज द्रुपद ने भी जब देखा, कि मेरे पुत्र शिखण्डीका कार्य सिद्ध हो गया-तो वह अपने पुत्र तथा बान्धवों के सहित बहुत आनन्दित हुआ ॥५९॥

शिष्यार्थं प्रददौ चाऽथ द्रोणाय कुरुपुङ्गव ।
शिखण्डिनं महाराज पुत्रं स्त्रीपूर्विणं तथा ॥६०॥

हे कुरुपुङ्गव ! महाराज ! अब द्रुपद ने पूर्व में स्त्रीभूत अपने पुत्र शिखण्डीको द्रोणाचार्यके पास शस्त्र विद्या सीखनेको छोड़ दिया

प्रतिपेदे चतुष्पादं धनुर्वेदं नृपात्मजः ।
शिखण्डी सह युष्माभिर्धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥६१॥

इस राजकुमार शिखण्डी ने भी चतुष्पाद (ग्रहण, धारण प्रयोग, प्रतीकार) पूर्ण धनुर्वेद को तुम लोगों के साथ ही शीघ्र पढ़ डाला। द्रुपद के दूसरे राजकुमार धृष्टद्युम्न ने भी द्रोणाचार्य के पास ही सारा धनुर्वेद सीखा है। ॥६१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मम त्वेतच्चरास्तात यथावत्प्रत्यवेदयन् ।
जडान्धबधिराकारा ये मुक्ता द्रुपदे मया ॥६२॥
एवमेष महाराज स्त्रीपुमान्द्रुपदात्मनः ।
स सम्भूतः कुरुश्रेष्ठ शिखण्डी रथसत्तमः ॥६३॥

हे तात ! मैंने जो द्रुपद की राजधानी में जड़, (पागल) अन्धे, बधिर रूपधारी गुप्तचर छोड़ रखे थे, उन्होंने मुझे यह वृत्तान्त सुनाया था। हे महाराज ! इस प्रकार यह द्रुपद-पुत्र शिखण्डी स्त्री और पुरुष दोनों भांति का है। हे कुरुश्रेष्ठ ! यही रथियों में श्रेष्ठ राजकुमार शिखण्डी की उत्पत्ति है ॥६२-६३॥

ज्येष्ठा काशिपतेः कन्या अम्बानामेति विश्रुता ।
द्रुपदस्य कुले जाता शिखण्डी भरतर्षभ ॥६४॥

हे भरतर्षभ ! काशिराज की ज्येष्ठ पुत्री जो अम्बा नाम से प्रसिद्ध है, उसी ने द्रुपद के कुल में जन्म लिया है ॥६४॥

नाऽहमेनं धनुष्पाणिं युयुत्सुं समुपस्थितम् ।
मुहूर्तमपि पश्येयं प्रहरेयं न चाऽप्युत ॥६५॥

जब मैं धनुष हाथ में लेकर युद्ध की इच्छा से सन्मुख आये हुए इस शिखण्डी को क्षण भर भी देख लूंगा-तो मैं शीघ्र ही अपना प्रहार करना बन्द कर दूंगा ॥६५॥

व्रतमेतन्मम सदा पृथिव्यामपि विश्रुतम् ।
स्त्रियां स्त्रीपूर्वके चैव स्त्रीनाम्नि स्त्रीसरूपिणि ॥६६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न मुञ्चेयमहं बाणमिति कौरवनन्दन ।
न हन्यामहमेतेन कारणेन शिखण्डिनम् ॥६७॥

हे कौरवनन्दन ! मेरा तो यह सदा से व्रत है, जो पृथिवी पर प्रसिद्ध है, कि स्त्री, भूतपूर्वा स्त्री, स्त्री नाम या स्त्री आकार धारी व्यक्ति पर मैं बाण नहीं छोड़ूंगा । यही कारण है, कि मैं शिखण्डी को नहीं मारूंगा ॥६६-६७॥

एतत्तत्त्वमहं वेद जन्म तात शिखण्डिनः ।
ततो नैनं हनिष्यामि समरेष्वाततायिनम् ॥६८॥

हे तात ! इस शिखण्डी के जन्म और तत्व को मैं जानता हूँ । इसी कारण से इस आततायी को युद्ध में नहीं मारूंगा ॥६८॥

यदि भीष्मः स्त्रियं हन्यात्सन्तः कुर्युर्विगर्हणम् ।
नैनं तस्माद्धनिष्यामि दृष्ट्वाऽपि समरे स्थितम् ॥६९॥

यदि मैं भीष्म स्त्री का वध कर दूँ, तो सज्जन मेरी अवश्य निन्दा करेंगे । बस ! मैं इस कारण से युद्ध में सन्मुख स्थित रहने पर भी इसको नहीं मार सकता हूँ ॥६९॥

वैशम्पायन उवाच—

एतच्छ्रुत्वा तु कौरव्यो राजा दुर्योधनस्तदा ।
मुहूर्तमिव स ध्यात्वा भीष्मे युक्तममन्यत ॥७०॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि शिखण्डिपुन्स्त्वप्राप्तौ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैशम्पानन बोले-हे राजन्! इतना सुनकर कुरुराज दुर्योधन ने थोड़ी देर सोचा और भीष्म के इस विचार को युक्ति-युक्त ही समझा ॥७०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में शिखण्डी के पुन्स्त्व प्राप्ति का एक सौ बानवेवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

एक सौ तिरानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

प्रभातायां तु शर्वर्यां पुनरेव सुतस्तव ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पितामहमपृच्छत ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! फिर प्रातःकाल होते ही तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने सारी सेना के मध्य में भीष्मपितामह से पूछा ॥१॥

पाण्डवेयस्य गाङ्गेय यदेतत्सैन्यमुद्यतम् ।
प्रभूतनरनागाश्वं महारथसमाकुलम् ॥२॥
भीमार्जुनप्रभृतिभिर्महेष्वासैर्महाबलैः ।
लोकपालसमैर्गुप्तं धृष्टद्युम्नपुरोगमैः ॥३॥
अप्रधृष्यमनावार्यमुद्धूतमिव सागरम् ।
सेनासागरमक्षोभ्यमपि देवैर्महाहवे ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केन कालेन गाङ्गेय क्षपयेथा महाद्युते ।
आचार्यो वा महेष्वासः कृपो वाऽऽशु महाबलः ॥५॥
कर्णो वा समरश्लाघी द्रौणिर्वा द्विजसत्तमः ।
दिव्यास्त्रविदुषः सर्वे भवन्तो हि बले मम ॥६॥
एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं परं कौतूहलं हि मे ।
हृदि नित्यं महाबाहो वक्तुमर्हसि तन्मम ॥७॥

हे महाद्युते ! गाङ्गेय ! यह जो पाण्डवों के बहुत से मनुष्य, हाथी और अश्वों से युक्त, महारथियों से पूर्ण, महाधनुर्धर और महाबली भीम और अर्जुन तथा लोकपालों के तुल्य धृष्टद्युम्न जैसे मुख्य वीरों से सुरक्षित, दुर्धर्ष, रोकी नहीं जाने वाली, उफ-लते हुए समुद्र के समान उद्धत, महायुद्ध में देवों से भी अक्षोभ्य, इस सेना सागर को आप कितने समय में क्षीण कर डालेंगे। महाधनुर्धर द्रोणाचार्य, महाबली कृप, समर में प्रशंसा प्राप्त कर्ण द्विजश्रेष्ठ, द्रोण-पुत्र, अश्वत्थामा, इस सेना को कितने २ दिनों में नष्ट कर सकते हैं। आप सब लोग मेरी सेना में बड़े ही दिव्य अस्त्रों के जानने वाले हो, मैं यह सब कुछ जानना चाहता हूँ- इस के जानने की मेरे हृदय में बहुत ही उत्कण्ठा है। हे महाबाहो ! आपको मुझे यह सब कुछ सुना देना चाहिए। ॥२-७॥

भीष्म उवाच—

अनुरूपं कुरुश्रेष्ठ त्वय्येतत्पृथिवीपते ।
बलाबलममित्राणां तेषां यदिह पृच्छसि ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीष्म ने कहा—हे पृथिवीपते! कुरुश्रेष्ठ! तुमको अपना और शत्रुओं का बलाबल को जान ही लेना चाहिए। तुमने प्रश्न ठीक ही किया है ॥८॥

शृणु राजन्मम रणे या शक्तिः परमा भवेत्।
शस्त्रवीर्ये रणे यच्च भुजयोश्च महाभुज ॥९॥

हे राजन्! मेरी जो युद्ध में सब से अधिक शक्ति है, मैं प्रथम उसे बता देता हूँ। हे महाभुज! इसके अतिरिक्त शस्त्रों का या महाभुजाओं का जो पराक्रम है—मैं उसे भी बता देना चाहता हूँ।

आर्जवेनैव युद्धेन योद्धव्य इतरो जनः।
मायायुद्धेन मायावी इत्येतद्धर्मनिश्चयः ॥१०॥

जो मनुष्य धर्म से युद्ध करता हो—उससे सरलता के साथ धर्मानुसार युद्ध करना चाहिए और जो माया के साथ युद्ध करना चाहता है; उससे माया (छल) करके युद्ध करने में कोई अधर्म नहीं है। यह सब धर्म की व्यवस्था है ॥१०॥

हन्यामहं महाभाग पाण्डवानामनीकिनीम्।
दिवसे दिवसे कृत्वा भागं प्रागाह्निकं मम ॥११॥
योधानां दशसाहस्रं कृत्वा भागं महाद्युते।
सहस्रं रथिनामेकमेष भागो मतो मम ॥१२॥

हे महाभाग! मैं पाण्डवों की सेना के एक २ भाग को प्रति दिन, दिन के पूर्वार्द्ध में ही नष्ट कर दूँगा। हे महाद्युते! उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

विभाग इस प्रकार करता हूँ, कि दश हज़ार योद्धा और एक सहस्र रथी, यह एक भाग माना गया है ॥११-१२॥

अनेनाऽहं विधानेन सन्नद्धः सततोत्थितः ।
क्षपयेयं महत्सैन्यं कालेनाऽनेन भारत ॥१३॥

हे भारत ! मैं इसी विभाग से सर्वदा बड़ी सावधानी और तय्यारी से पाण्डवों की सेना का नाश कर दूँगा । इस प्रकार जितने दिन में सेना का नाश हो- उसको तुम गणित से लगा लो । मैं इसी काल में उनकी सारी सेना का नाश कर सकूंगा ॥१३॥

मुञ्चेयं यदि वाऽस्त्राणि महान्ति समरे स्थितः ।
शतसाहस्रघातीनि हन्यां मासेन भारत ॥१४॥

यदि इतनी सेना का नाश न कर सकूं—तो युद्ध में स्थित हुआ ही अपने शस्त्र छोड़कर अलग हो जाऊँगा । हे भारत ! यदि शत सहस्र (एक लाख) घाती शस्त्रों का प्रयोग करूँ—तो मैं पाण्डवों की इस सारी सेना का नाश एक मास में कर सकता हूँ ॥१४॥

सञ्जय उवाच—

श्रुत्वा भीष्मस्य तद्वाक्यं राजा दुर्योधनस्ततः ।
पर्यपृच्छत राजेन्द्र द्रोणमङ्गिरसां वरम् ॥१५॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! राजा दुर्योधन, भीष्म के ये वाक्य सुनकर अङ्गिरस कुल में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य से पूछने लगा ।

आचार्य केन कालेन पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ।
निहन्या इति तं द्रोणः प्रत्युवाच हसन्निव ॥१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थविरोऽस्मि महाबाहो मन्दप्राणविचेष्टितः ।
शस्त्राग्निना निर्दहेयं पाण्डवानामनीकिनीम् ॥१७॥
यथा भीष्मः शान्तनवो मासेनेति मतिर्मम ।
एषा मे परमा शक्तिरेतन्मे परमं बलम् ॥१८॥

हे आचार्य ! आप कितने समय में पाण्डवों की सारी सेना को मार सकते हो । दुर्योधन की यह बात सुनकर हँसता हुआ द्रोण, कहने लगा-हे महाबाहो ! मैं तो अब बुड्ढा हो गया हूँ। मेरे प्राण और चेष्टा मन्द पड़ चुकी है-तो भी मैं भीष्म के कथनानुसार अपने शस्त्रों की अग्नि द्वारा पाण्डवों की सेना को जैसे शान्तनु-पुत्र भीष्म ने कहा है-मैं भी एक महीने में जला सकता हूँ । बस? मेरी इतनी ही शक्ति और इतना ही बल है ।

द्वाभ्यामेव तु मासाभ्यां कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् ।
द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे बलक्षयम् ॥१९॥
कर्णस्तु पञ्चरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित् ।

शरद्वान् के वंशज कृपाचार्य ने कहा—मैं इस सेना का नाश दो महीने में कर सकता हूँ और द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने दश दिन में इस सारी सेना के फूँक देने की बात कही और महान् अस्त्रों के ज्ञाता कर्ण ने पांच रात में ही सारी सेना के नष्ट करने की प्रतिज्ञा की ॥१९॥

तच्छ्रुत्वा सूतपुत्रस्य वाक्यं सागरगासुतः ॥२०॥
जहास सस्वनं हासं वाक्यं चेदमुवाच ह ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूतपुत्र कर्ण के वचन सुनकर गङ्गापुत्र भीष्म, बड़े उच्च स्वर में हँसा और यह वचन बोला ॥२०॥

न हि यावद्रणे पार्थं बाणशङ्खधनुर्धरम् ॥२१॥
वासुदेवसमायुक्तं रथेनाऽऽयान्तमाहवे ।
समागच्छसि राधेय तेनैवमभिमन्यसे ॥
शक्यमेवं च भूयश्च त्वया वक्तुं यथेष्टतः ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि भीष्मादिशक्तिकथने त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९३॥

हे राधेय ! जब तक तुम रण में बाण, शंख और धनुष धारण करने वाले, श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन को रथ के द्वारा आया हुआ नहीं देखोगे—तब तक ऐसा ही कहोगे—इस समय तो तुमको जो कुछ अपनी जिह्वा (जुबान) से डींग मारनी हो-मार लो। इस तरह अपनी प्रशंसा की बात तो अपनी इच्छानुसार कितनी ही कह सकते हो ॥२१-२२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में भीष्म आदि की शक्ति के कथन का एक सौ तिरानवेवां अध्याय समाप्त हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ चौरानवेवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

एतच्छ्रुत्वा तु कौन्तेयः सर्वान्भ्रातॄनुपह्वरे ।
आहूय भरतश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे भरतश्रेष्ठ ! कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर इतना वचन सुनकर और एकान्त में अपने भाइयों को बुलाकर यह वचन बोला ॥१।

युधिष्ठिर उवाच—

धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु ये चारपुरुषा मम ।
ते प्रवृत्तिं प्रयच्छन्ति ममेमां व्युषितां निशाम् ॥२॥
दुर्योधनः किलाऽपृच्छदापगेयं महाव्रतम् ।
केन कालेन पाण्डूनां हन्याः सैन्यमिति प्रभो ॥३॥
मासेनेति च तेनोक्तो धार्तराष्ट्रः सुदुर्मतिः ।
तावता चापि कालेन द्रोणोऽपि प्रतिजज्ञिवान् ॥४॥

हे महानुभावो ! जो मेरे गुप्तचर धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन की सेना में हैं, उन्होंने रात्रि व्यतीत होते ही मुझे यह समाचार सुनाया है, कि दुर्योधन ने महाव्रती भीष्म से यह बात पूछी थी—कि हे प्रभो ! आप पाण्डवों की सेना को कितने समय में नष्ट कर सकते हो । भीष्म ने दुर्मति दुर्योधन से कहा है, कि मैं एक मास में इस सारी सेना का नाश कर दूँगा और द्रोण ने भी एक ही मास में मेरी सेना के नाश करने की बात कही हैं ॥२-४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गौतमो द्विगुणं कालमुक्तवानिति नः श्रुतम् ।
द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित् ॥५॥
तथा दिव्यास्त्रवित्कर्णः सम्पृष्टः कुरुसंसदि ।
पञ्चभिर्दिवसैर्हन्तुं स सैन्यं प्रतिजज्ञिवान् ॥६॥

गौतम वंशोद्भव कृपाचार्य ने दो मास इसके लिए बताये । महाशक्तिधारी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने दश रात में सारी सेना के नाश का वचन दिया । जब दिव्य अस्त्रों के प्रयोग कर्त्ता कर्ण से कुरु सभा में पूछा गया-तो उसने पांच रात में ही सारी सेना के मार देने की प्रतिज्ञा की है ॥६॥

तस्मादहमपीच्छामि श्रोतुमर्जुन ते वचः ।
कालेन कियता शत्रून्क्षपयेरिति फाल्गुन ॥७॥

हे अर्जुन ! अब मैं भी तुम्हारे वचन सुनना चाहता हूँ । हे अर्जुन ! तुम भी कितने समय में शत्रुओं की सेना का नाश करसकोगे ॥७॥

एवमुक्तो गुडाकेशः पार्थिवेन धनञ्जयः ।
वासुदेवं समीक्ष्येदं वचनं प्रत्यभाषत ॥८॥

हे राजन् ! जब राजा युधिष्ठिर ने धनञ्जय अर्जुन से इतना कहा—तो अर्जुन श्रीकृष्ण की ओर देखकर ये वचन बोले ॥८॥

सर्व एते महात्मानः कृतास्त्राश्चित्रयोधिनः ।
असंशयं महाराज हन्युरेव न संशयः ॥९॥
अपैतु ते मनस्तापो यथा सत्यं ब्रवीम्यहम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

.CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हन्यामेकरथेनैव वासुदेवसहायवान् ॥१०॥
सामरानपि लोकांस्त्रीन्सर्वान्स्थावरजङ्गमान् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च निमेषादिति मे मतिः ॥११॥
यत्तद्घोरं पशुपतिः प्रादादस्त्रं महन्मम ।
कैराते द्वन्द्वयुद्धे तु तदिदं मयि वर्तते ॥१२॥

हे महाराज ! ये सब लोग महाबली, तीव्रवेग से शस्त्र चलाने वाले विचित्र योद्धा हैं। हे महाराज ! यह निश्चय इतने ही समय में सेना का वध कर सकते हैं-इसमें सन्देह की क्या बात है, परन्तु मैं भी सत्य कहता हूँ, जिसको सुनकर तुम्हारे मन का सन्ताप दूर हो जाना चाहिए, कि यदि मेरी सहायता पर श्रीकृष्ण होंगे-तो मैं अकेला ही देवों के साथ इस सारी चराचर त्रिलोकी एवं भूत, भविष्य और वर्तमान में होने वाले वीरों को एक ही क्षणमें मार सकता हूँ। यह मेरा निश्चय है, क्योंकि पशुपति शंकर ने किरात वेष धारण करके मेरे साथ युद्ध किया और उसमें प्रसन्न होकर मुझे पाशुपतास्त्र प्रदान कर दिया है, जो मेरे पास विद्यमान है ॥९-१२॥

यद्युगान्ते पशुपतिः सर्वभूतानि संहरन् ।
प्रयुङ्क्ते पुरुषव्याघ्र तदिदं मयि वर्तते ॥१३॥

हे पुरुषव्याघ्र ! पशुपति शंकर, समस्त प्राणियों के संहार करने के समय जिस पाशुपतास्त्र का प्रयोग करते हैं, वही मेरे पास है ॥१३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तन्न जानाति गङ्गेयो न द्रोणो न च गौतमः ।
न च द्रोणसुतो राजन्कुत एव तु सूतजः ॥१४॥

हे राजन् ! इस शस्त्र का प्रयोग, गङ्गापुत्र भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, गौतम कुलोत्पन्न कृप और द्रोणसुत अश्वत्थामा भी नहीं जानता है, सूतपुत्र कर्ण तो जान ही क्या सकता है ॥१४॥

न तु युक्तं रणे हन्तुं दिव्यैरस्त्रैः पृथग्जनम् ।
आर्जवेनैव युद्धेन विजेष्यामो वयं परान् ॥१५॥

साधारण जनों का दिव्य अस्त्र से वध करना योग्य नहीं है, अत एव सरल युद्ध से ही मैं शत्रुओं को जीतना चाहता हूं ॥१५॥

तथेमे पुरुषव्याघ्राः सहायास्तव पार्थिव ।
सर्वे दिव्यास्त्रविद्वांसः सर्वे युद्धाभिकांक्षिणः ॥१६॥

हे राजन् ! जितने तुम्हारे सहायक राजा हैं, वे सारे दिव्य अस्त्रों के प्रयोगों के ज्ञाता और सारे ही युद्ध के अभिलाषी हैं ।

वेदान्तावभृथस्नाताः सर्व एतेऽपराजिताः ।
निहन्युः समरे सेनां देवानामपि पाण्डव ॥१७॥

हे पाण्डव ! इन राजाओं ने वेद के अन्तिम यज्ञ (सोम) का स्नान किया है और ये किसी से भी पराजित होने वाले नहीं है । ये युद्ध में देवों की सेना का भी वध, कर देने में समर्थ हैं ।

शिखण्डी युयुधानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
भीमसेनो यमौ चोभौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥१८॥
विराटद्रुपदौ चोभौ भीष्मद्रोणसमौ युधि ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शङ्खश्चैव महाबाहुर्हैडिम्बश्च महाबलः ॥१९॥
पुत्रोऽस्याऽञ्जनपर्वा तु महाबलपराक्रमः ।
शैनेयश्च महाबाहुः सहायो रणकोविदः ॥२०॥
अभिमन्युश्च बलवान्द्रौपद्याः पञ्च चाऽऽत्मजाः ।
स्वयं चापि समर्थोऽसि त्रैलोक्योत्सादनेऽपि च ॥२१॥

शिखण्डी, युयुधान, पर्वतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न, भीमसेन, नकुल, सहदेव, युधामन्यु, उत्तमौजा, विराट, द्रुपद, भीष्म, द्रोण महाबाहु शंख, महाबली हिडिम्बापुत्र घटोत्कच, इसका पुत्र महापराक्रमी अञ्जनपर्वा, महाबाहु, सहायभूत, रणकोविद, सात्यकि, बलवान् अभिमन्यु, द्रौपदी के पांच पुत्र; ये सारे वीर त्रिलोकी के भी उखाड़ देने में समर्थ हैं और तुम स्वयं भी इनके ही समान वीर हो ॥ १८-२१॥

क्रोधाद्यं पुरुषं पश्येस्तथा शक्रसमद्युते ।
स क्षिप्रं न भवेद्व्यक्तमिति त्वां वेद्मि कौरव ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि अर्जुनवाक्ये चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९४॥

हे इन्द्र के समान कान्तिधारी ! कौरव ! तुम जिस पुरुष को क्रोध भरी दृष्टि से देखते हो—वह फिर शीघ्र ही संसार में नहीं रह सकता है-यह मैं सब जानता हूँ ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में अर्जुन के वाक्य का एक सौ चौरानवेवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ पिच्चानवेवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततः प्रभाते विमले धार्तराष्ट्रेण चोदिताः ।
दुर्योधनेन राजानः प्रययुः पाण्डवान्प्रति ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! जब निर्मल प्रातःकाल हो गया, तो धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन के आदेश से सारे राजा पाण्डवों की ओर बढ़ने लगे ॥१॥

आप्लाव्य शुचयः सर्वे स्रग्विणः शुक्लवाससः ।
गृहीतशस्त्रा ध्वजिनः स्वस्ति वाच्य हुताग्नयः ॥२॥

सबने स्नान करके अपने को शुद्ध कर लिया और शुद्ध वस्त्र तथा मालाएँ पहन ली। इन सारे राजाओं ने शस्त्र ग्रहण कर रखे थे और ध्वजाएँ ऊपर उठा रखी थी। इन्होंने ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति वाचन कराके हवन किया ॥२॥

सर्वे ब्रह्मविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ।
सर्वे कामकृतश्चैव सर्वे चाऽऽहवलक्षणाः ॥३॥

सारे ब्रह्मज्ञानी शूर और सच्चरित्र थे। सबने अपनी अभिलाषा प्राप्त कर ली थी और सारे युद्ध के ज्ञाता थे ॥३॥

आहवेषु पराँल्लोकाञ्जिगीषन्तो महाबलाः ।
एकाग्रमनसः सर्वे श्रद्दधानाः परस्परम् ॥४॥

ये महाबली युद्ध में अन्य लोकों का भी विजय कर लेना सरल समझते थे। इन सबके मन एकाग्र और परस्पर श्रद्धा रखने वाले हैं ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विन्दानुविन्दावावान्त्यौ केकया बाह्लिकैः सह ।
प्रययुः सर्व एवैते भारद्वाजपुरोगमाः ॥५॥

प्रथम अवन्ती देश के राजकुमार विन्द और अनुविन्द तथा बाल्हिकों के साथ केकय देशज वीर—ये सब भरद्वाजवंशोद्भव, द्रोणाचार्य को आगे लेकर चल दिए ॥५॥

अश्वत्थामा शान्तनवः सैन्धवोऽथ जयद्रथः ।
दाक्षिणात्याः प्रतीच्याश्च पार्वतीयाश्च ये नृपाः ॥६॥
गान्धारराजः शकुनीः प्राच्योदीच्याश्च सर्वशः ।
शकाः किराता यवनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥७॥
स्वैः स्वैरनीकैः सहिताः परिवार्य महारथम् ।
एते महारथाः सर्वे द्वितीये निर्ययुर्बले ॥८॥

अश्वत्थामा, शान्तनु-पुत्र भीष्म, सैन्धवाधिपति जयद्रथ तथा दक्षिण, पश्चिम, पूर्व, उत्तर एवं पर्वतीय राजा, गान्धार राज शकुनि, शक, किरात, यवन, शिबि, और वसाति-ये सब महारथी, अपनी २ सेना लेकर महारथी द्रोणाचार्य को घेर कर दूसरी सेना की टुकड़ी के साथ श्रेणी बनाकर चल दिए ॥६-८॥

कृतवर्मा सहानीकस्त्रिगर्तश्च महारथः ।
दुर्योधनश्च नृपतिर्भ्रातृभिः परिवारितः ॥९॥
शलो भूरिश्रवाः शल्यः कौसल्योऽथ बृहद्रथः ।
एते पश्चादनुगता धार्तराष्ट्रपुरोगमाः ॥१०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृतवर्मा सेना सहित महारथी त्रिगर्त, शल, भूरिश्रवा, शल्य कौसल देश का राजा, बृहद्रथ आदि वीर, दुर्योधनको आगे करके चल पड़े और आप सब पीछे २ चल रहे थे ॥९-१०॥

ते समेत्य यथान्यायं धार्तराष्ट्रा महाबलाः ।
कुरुक्षेत्रस्य पश्चार्धे व्यवातिष्ठन्त दंशिताः ॥११॥

महाबली धृतराष्ट्र-पुत्रों ने सेना की परिपाटी के अनुसार तय्यार होकर कुरुक्षेत्र के पिछले आधे भाग में अपना पड़ाव डाल दिया ॥११॥

दुर्योधनस्तु शिबिरं कारयामास भारत ।
यथैव हास्तिनपुरं द्वितीयं समलंकृतम् ॥१२॥

हे भारत ! दुर्योधन ने शिबिर की रचना करवाई। यह शिबिर समूह द्वितीय हस्तिनापुर सा प्रतीत होता था, जो सब ओर से अलंकृत था ॥ १२ ॥

न विशेषं विजानन्ति पुरस्य शिबिरस्य वा ।
कुशला अपि राजेन्द्र नरा नगरवासिनः ॥१३॥

हे राजेन्द्र ! हस्तिनापुर निवासी चतुर मनुष्य भी उन शिबिरों में घुसते हुए यह नहीं जान पाते थे, कि हम शिबिर में घुस रहे हैं या हस्तिनापुर में प्रवेश कर रहे हैं ॥१३॥

तादृशान्येव दुर्गाणि राज्ञामपि महीपतिः ।
कारयामास कौरव्यः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन्! इसी प्रकार कुरुराज महीपति, दुर्योधन ने सैंकड़ों और हजारों की संख्या में उन राजाओं के दुर्ग बनवा दिए ॥१४॥

पञ्चयोजनमुत्सृज्य मण्डलं तद्रणाजिरम् ।
सेनानिवेशास्ते राजन्नाविशञ्छतसङ्घशः ॥१५॥

हे राजन्! इन दोनों सेनाओं ने पांच योजन (बीस कोश) का अन्तर (फासला) छोड़कर अपना पड़ाव डाला, जो सैंकड़ों और सहस्रों की टोली के रूप में पड़ा था ॥१५॥

तत्र ते पृथिवीपाला यथोत्साहं यथाबलम् ।
विविशुः शिबिराण्यत्र द्रव्यवन्ति सहस्रशः ॥१६॥

इसके अनन्तर जो राजा अपने बल और उत्साह में भरे हुए थे; वे बड़े मूल्यवान् (कीमती) सहस्रों शिबिरों में प्रविष्ट हुए॥१६॥

तेषां दुर्योधनो राजा ससैन्यानां महात्मनाम् ।
व्यादिदेश सबाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ॥१७॥

हे राजन्! राजा दुर्योधन ने महावीर अपने और बाहर के सैनिकों का भक्ष्य भोज्य आदि का उत्तम प्रबन्ध कर दिया ॥१७॥

स नागाश्वमनुष्याणां ये च शिल्पोपजीविनः ।
ये चाऽन्येऽनुगतास्तत्र सूतमागधवन्दिनः ॥१८॥
वणिजो गणिकाश्चारा ये चैव प्रेक्षका जनाः ।
सर्वांस्तान्कौरवो राजा विधिवत्प्रत्यवैक्षत ॥१९॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि कौरवसैन्यनिर्याणे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हाथी, अश्व, मनुष्य, शिल्प से जीविका करने वाले शूद्र, सूत, मागध, बन्दी, तथा अन्य अनुचर, वणिक्, गणिका, गुप्तचर एवं देखने वाले मनुष्य थे, उन सबकी राजा दुर्योधन ने देख पड़ताल करके प्रबन्ध करा दिया ॥१९॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्व में कौरवोंकी सेना के निर्याण का एक सौ पिच्चानवेवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ छियानवेवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

तथैव राजा कौन्तेयो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
धृष्टद्युम्नमुखान्वीरांश्चोदयामास भारत ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत! इसी प्रकार धर्म-पुत्र कौन्तेय युधिष्ठिर ने भी धृष्टद्युम्न आदि महारथी वीरों को युद्ध के लिये प्रेरित किया ॥१॥

चेदिकाशिकरूषाणां नेतारं दृढविक्रमम् ।
सेनापतिममित्रघ्नं धृष्टकेतुमथाऽऽदिशत् ॥२॥

धर्मराज ने चेदि, काशि, करूष देश के नेता, दृढ़-पराक्रमी शत्रु-नाशक सेनापति धृष्टकेतु को भी ऐसी ही आज्ञा दी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विराटं द्रुपदं चैव युयुधानं शिखण्डिनम् ।
पाञ्चाल्यौ च महेष्वासौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥३॥

विराट, द्रुपद, युयुधान, शिखण्डी, पञ्चाल देश के वीर धनुर्धर युधाभन्यु और उत्तमौजा इन सबको भी धर्मराज ने इसी तरह प्रेरित किया ॥३॥

ते शूराश्चित्रवर्माणस्तप्तकुण्डलधारिणः ।
आज्यावसिक्ता ज्वलिता धिष्ण्येष्विव हुताशनाः ॥४॥
अशोभन्त महेष्वासा ग्रहाः प्रज्वलिता इव ।

इन शूरवीरों ने वेदियों में घृत से अभिषिक्त प्रज्वलित अग्नियों के तुल्य विचित्र कवच और चमचमाते कुण्डल धारण कर रखे थे। ये सारे ही धनुर्धर देदीप्यमान ग्रहों के सदृश शोभित हो रहे थे ॥४॥

अथ सैन्यं यथायोगं पूजयित्वा नरर्षभः ॥५॥
दिदेश तान्यनीकानि प्रयाणाय महीपतिः ।

इसके अनन्तर नरश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ने यथायोग्य सैनिकों की पूजा करके अपनी सेना के लिए युद्ध यात्रा की आज्ञा दी ॥ ५ ॥

तेषां युधिष्ठिरो राजा ससैन्यानां महात्मनाम् ॥६॥
व्यादिदेश सबाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ।
स गजाश्वमनुष्याणां ये च शिल्पोपजीविनः ॥७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब राजा युधिष्ठिर ने महावीरों से युक्त अपनी और बाहर की सेना तथा हाथी, घोड़े, मनुष्य और शिल्पोपजीवियों के भक्ष्य एवं भोज्य की उत्तम व्यवस्था कर दी ॥६-७॥

अभिमन्युं बृहन्तं च द्रौपदेयांश्च सर्वशः ।
धृष्टद्युम्नमुखानेतान्प्राहिणोत्पाण्डुनन्दनः ॥८॥

इसके अनन्तर पाण्डुनन्दन धर्मराज ने अभिमन्यु, बृहन्त, द्रौपदी-पुत्र और धृष्टद्युम्न आदि नेताओं को भेजा ॥८॥

भीमं च युयुधानं च पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
द्वितीयं प्रेषयामास बलस्कन्धं युधिष्ठिरः ॥९॥

भीम, युयुधान और पाण्डुपुत्र अर्जुन के सहित, दूसरे सेना के समूह को दूसरी ओर से भेजा ॥९॥

भाण्डं समारोपयतां चरतां सम्प्रधावताम् ।
हृष्टानां तत्र योधानां शब्दो दिवमिवाऽस्पृशत् ॥१०॥

युद्ध के सामान को इकट्ठा करते हुए, इधर उधर दौड़ते भागते हुए, प्रसन्नचित्त योद्धाओं का कोलाहल आकाश तक पहुंच रहा था ॥१०॥

स्वयमेव ततः पश्चाद्विराटद्रुपदान्वितः ।
अथाऽपरैर्महीपालैः सह प्रायान्महीपतिः ॥११॥

इनके चले जाने पर द्रुपद और विराट तथा अन्य वृद्ध राजाओं के सहित स्वयं धर्मराज युधिष्ठिर चल पड़े ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीमधन्वायनी सेना धृष्टद्युम्नेन पालिता ।
गङ्गेव पूर्णा स्तिमिता स्यन्दमाना व्यदृश्यत ॥१२॥

भीषण धनुष धारण करने वाली धृष्टद्युम्न से सुरक्षित पाण्डवों की सेना, गङ्गा के समान निश्चल और उमड़ती हुई सी दिखाई पड़ रही थी ॥१२॥

ततः पुनरनीकानि न्ययोजयत बुद्धिमान् ।
मोहयन्धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां बुद्धिनिश्चयम् ॥१३॥

बुद्धिमान् धर्मराज ने अपनी सेना को इस प्रकार से चलाया, जिससे धृतराष्ट्र के पुत्रों की बुद्धि की दृढ़ता विलीन हो गई॥१३॥

द्रौपदेयान्महेष्वासानभिमन्युं च पाण्डवः ।
नकुलं सहदेवं च सर्वांश्चैव प्रभद्रकान् ॥१४॥
दश चाऽश्वसहस्राणि द्विसहस्राणि दन्तिनाम् ।
अयुतं च पदातीनां रथाः पञ्चशतं तथा ॥१५॥
भीमसेनस्य दुर्धर्षं प्रथमं प्रादिशद्बलम् ।

धर्मराज ने महाधनुर्धर द्रौपदीपुत्र अभिमन्यु, नकुल, सहदेव, सारे प्रभद्रक वीर, दश सहस्र अश्व, दो सहस्र हाथी, दश सहस्र पैदल सैनिक, पांच सौ रथ, इस प्रकार सेना समुदाय को बनाकर भीमसेन के साथ चलने का आदेश दिया ॥१४-१५॥

मध्यमे च विराटं च जयत्सेनं च पाण्डवः ॥१६॥
महारथौ च पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वीर्यवन्तौ महात्मानौ गदाकार्मुकधारिणौ ॥१७॥
अन्वयातां तदा मध्ये वासुदेवधनञ्जयौ ।

राजा युधिष्ठिर ने मध्यम सेना समुदाय में विराट, जयत्सेन, पञ्चाल राजकुमार महारथी, महापराक्रमी, गदा-धनुष-धारी, महात्मा युधामन्यु और उत्तमौजा श्रीकृष्ण और अर्जुन के पीछे २ चलने लगे ॥१६-१७॥

बभूवुरतिसंरब्धाः कृतप्रहरणा नराः ॥१८॥
तेषां विंशतिसाहस्रा हयाः शूरैरधिष्ठिताः ।
पञ्च नागसहस्राणि रथवंशाश्च सर्वशः ॥१९॥

इस समुदाय में बड़े ही आवेश में भरे हुए, शस्त्र चलाने में कुशल वीर थे। इस सेना में बीस हजार अश्वों पर सैनिक सवार थे। पांच हजार हाथी और रथ थे ॥१८-१९॥

पदातयश्च ये शूराः कार्मुकासिगदाधराः ।
सहस्रशोऽन्वयुः पश्चादग्रतश्च सहस्रशः ॥२०॥

धनुष, खड्ग, गदा-धारी, पैदल शूर वीर सैनिक, आगे पीछे सहस्रों की संख्या में चल रहे थे ॥२०॥

युधिष्ठिरो यत्र सैन्ये स्वयमेव बलार्णवे ।
तत्र ते पृथिवीपाला भूयिष्ठं पर्यवस्थिताः ॥२१॥

जिस सेना के समुदाय में स्वयं राजा युधिष्ठिर थे, उसी सेना में अनेक महावीर राजा विद्यमान थे ॥२१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्र नागसहस्राणि हयानामयुतानि च ।
तथा रथसहस्राणि पदातीनां च भारत ॥२२॥

हे भारत ! इस समुदाय (टोली) में भी एक सहस्र हाथी, दश सहस्र अश्व और इतने ही रथ तथा पैदल सैनिक विद्यमान थे।

चेकितानः स्वसैन्येन महता पार्थिवर्षभ ।
धृष्टकेतुश्च चेदीनां प्रणेता पार्थिवो ययौ ॥२३॥

हे पार्थिवर्षभ ! चेकितान भी अपनी विशाल सेना के साथ एवं राजा धृष्टकेतु अपने चेदिवंशज वीरों की सेना लेकर चल रहा था ॥२३॥

सात्यकिश्च महेष्वासो वृष्णीनां प्रवरो रथः ।
वृतः शतसहस्रेण रथानां प्रणुदन्बली ॥२४॥

महाधनुर्धर वृष्णियों में श्रेष्ठ, महारथी बलवान् सात्यकि, सैकड़ों हजारों की संख्या में रथों को साथ लेकर चल दिया ॥२४॥

क्षत्रदेवब्रह्मदेवौ रथस्थौ पुरुषर्षभौ ।
जघनं पालयन्तौ च पृष्ठतोऽनुप्रजग्मतुः ॥२५॥

क्षत्रदेव, ब्रह्मदेव, पुरुषप्रवीर भी रथ में बैठे हुए तथा सेना के पिछले भाग की रक्षा करते हुए चले जा रहे थे ॥२५॥

शकटापणवेशाश्च यानं युग्यं च सर्वशः ।
तत्र नागसहस्राणि हयानामयुतानि च ।
फल्गु सर्वं कलत्रं च यकिञ्चित्कृशदुर्बलम् ॥२६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारत संस्कृत सीरीज़ की स्थापना

माननीय महोदय !

महाभारत के बहुत से माननीय सदस्यों के परामर्श पर संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों का संस्कृत एवं हिन्दी में सुलभ, सुन्दर और सस्ते संस्करण प्रकाशित करने के लिये हमने महाभारत प्रकाशक मंडल के साथ २ भारत संस्कृत सीरीज की स्थापना की है।

आपको यह जानकर अवश्य आश्चर्य होगा कि बहुत से संस्कृत ग्रन्थ ऐसे हैं जो यूरोप के जर्मनी, इंगलेंड, अमेरिका और पेरिस आदि देशों में तो छपे हैं परन्तु आज तक भारतवर्ष में नहीं छपे। यह घटना भारतीयों के लिये कितनी अशोभा जनक है। तथा ऐसे तो हजारों ग्रन्थ हैं जो अभी तक हिन्दी भाषा द्वारा प्रकाश में नहीं आये हैं। ऐसे ग्रन्थों का प्रकाशन करना हमारा प्रथम ध्येय है।

हमारा विचार यह भी है, कि इस समय संसार की समस्त भाषायें उन्नति कर रही है, सभी भाषाओं में वर्तमान, युग का नवीन साहित्य वृद्धि कर रहा है, परन्तु संस्कृत साहित्य में एक भी नया ग्रन्थ नवीन विषयों पर प्रकाशित नहीं हुआ है। आज संसार में नये २ आविष्कार, संसार के नवीन इतिहास, और नवीन विचारों से संस्कृत साहित्य को भरपूर करके भविष्य के लिये भी कुछ सामग्री निर्माण करनी चाहिये, जिस प्रकार आज हम अपने पूर्वजों की महान रचनाओं का आनन्द ले रहे हैं, इसी प्रकार हमें भविष्य के लिये भी कुछ संस्कृत साहित्य का निर्माण करना चाहिये। अतः हम चाहते हैं कि भिन्न २ विषयों पर संस्कृत के अनेकानेक विद्वानों द्वारा ग्रन्थों का निर्माण करा कर प्रकाशित किया जावे।

आप से हमारी प्रार्थना है कि आप भी इस विषय पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने विचारों से हमें सूचित करें, तथा इस कार्य में हमारा पूर्ण साथ दें। यदि आप महानुभावों ने इस पवित्र कार्य में योग प्रदान किया तो निस्संदेह संस्कृत साहित्य में भारी वृद्धि होगी। इस विषय में आप हमें इस प्रकार सहायता और परामर्श प्रदान कर सकते हैं:—

(१) किस प्रकार के कौन २ ग्रन्थ संस्कृत भाषा में निर्माण कराये जावे!

(२) प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में किन २ का हिन्दी अनुवाद कराया जावे।

(३) सीरीज के सदस्यों में अपना शुभ नाम लिखावें।

आशा है संस्कृत साहित्य के प्रेमी इस ओर शीघ्र ध्यान देकर उत्तर प्रदान करेंगे।

भवदीय कृपा कांक्षी—

चतुरसेन गुप्त

प्रबन्धक

महाभारत प्रकाशक मंडल

मालीवाड़ा—गली लंगड़े वाली देहली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi